गोम्मटसार कर्मकाण्ड

शिबिर

(भाग - १)

-: वक्ता एवं लेखिका :-

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

-: संपादक :-

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

-: प्रकाशक :-

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०००२२.

टेलिफोन : ९७५७३ ९३६३७

Website : http://www.jainsiddhant.org

Mobile Application : JainSiddhant

गोम्मटसार कर्मकाण्ड

शिबिर - भाग १

प्रथम संस्करण **२६ जनवरी २०२४** **१००० प्रत**

-: प्राप्तिस्थान :-

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०००२२.

टेलिफोन : ९७५७३ ९३६३७

हमारे प्रकाशन

१) जैनतत्त्व परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	२५/-
२) जिनागम का कारण-कार्य रहस्य	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	२५/-
३) करणानुयोग परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
४) पंचलब्धि	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
५) भक्तामर स्तोत्र प्रवचन	- मराठी	१५/-
६) स्वानुभव	- मराठी	६/-
७) परमात्मा कसे बनाल !	- मराठी	६/-
८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	१५०/-
९) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	१५०/-
१०) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	१००/-
११) सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल	-हिन्दी, गुजराती	५०/-
१२) सर्वज्ञकथित जैन सिद्धान्त (भाग १ और २)	- हिन्दी	२५०/-
१३) पंच परावर्तन	- हिन्दी	१५०/-
१४) गोम्मटसार कर्मकाण्ड शिबिर (भाग १ और २)	- हिन्दी	३५०/-
१५) गुणस्थान शिबिर	- हिन्दी	२००/-

मूल्य रु. ३५०/- (भाग १ और २)

‘उज्ज्वल’ टीम - समय समर्पण

निशा शेठ, अहमदाबाद	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर, प्रबंधक	पिनांग शाह, कोयम्बतूर	स्क्राइबर
राजीव जैन, दिल्ली	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	हर्षिता जैन, मुंबई	स्क्राइबर
अलका जैन, दिल्ली	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	डॉ. कल्पना शाह, मुंबई	स्क्राइबर
सुषमा चाणेकर, नासिक	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	ऋषभ जैन, दिल्ली	स्क्राइबर
वैशाली शहा, पूना	प्रूफ रीडर	अदिति जैन, बेंगलोर	स्क्राइबर
नीतु कौशल, भोपाल	प्रूफ रीडर	एना जैन, बेंगलोर	स्क्राइबर
साहिल गंगवाल, पूना	स्क्राइबर	नेहा गोगरी, मुंबई	स्क्राइबर

-: दातारों की नामावलि :-

१००००० मुमुक्षु महिला मंडल, कोलकाता
५१००० अनंतराय शेठ, पार्ला मुंबई
५१००० अलका जैन और स्वाध्याय मंडल, दिल्ली
५०००० अरविंद शाह, आंकलाव, गुजरात/USA
२१००० पल्लवी और इन्द्रजीत शहा, औरंगाबाद
२१००० शैलेश मुक्कीरवार, ठाणे
२१००० वीतरागविज्ञान स्वाध्याय मंडल, पुणे
२१००० लक्ष्मी शशांक शहा, मुंबई
२१००० नेहा जितेन गोगरी, मुंबई
२१००० निशा जिनेश शेठ, अहमदाबाद
१५००० दिलीप और संध्या बेलोकर, डासाला
११००० माणिक पाटनी, नगर
११००० यशवंत के. जैन, बेंगलोर
११००० रेश्मा अभिषेक काला, जयपुर
११००० शाश्वतधाम, उदयपुर

$ ५०१ ऋचा और अनंत पाटनी, शिकागो
$ ५०१ शीतल और क्षितिज शाह, डलास
$ ५०१ रोशनी और हंसिल शाह, डलास
$ ५०० देशना और डॉ. गौरव शाह, शिकागो
$ ५०० प्रमिला और सुरेश जैन, डलास
$ ३०१ मयंक और सेजल शाह, डलास
$ २५१ धर्मेश और जुली कामदार, डलास

११००० सुशीला जयंती गाला, मुंबई
११००० रेखा कमल जैन, गाजियाबाद
१०००० शोभनाबेन शाह, दुबई
१०००० स्व. डॉ विजयकुमार शहा, मुंबई
हस्ते तेजस्विनी शहा
१०००० कृतिका और नैन्सी जैन, होशंगाबाद
१०००० महेश और दक्षा हरिया, मुंबई
८६०० नरेश मोता, मुंबई
८५०० आकाश कामदार, राजकोट
७५०० मीनाक्षी शहा, म्हसरूल
५१११ नवलगुंड, हुबली
५००० पन्ना, घाटकोपर
५००० रतनचंद और पुष्पा जैन, होशंगाबाद
५००० अजित सोनाज, अकलुज
५००० शीलारानी रमेशचंद्र जैन, बड़ौदा

$ २५१ रागिनी शाह, डलास
$ २०० अनिला शाह, डलास
$ १५१ डॉ. जयश्री अशोक दोशी, डलास
$ १०८ समित, किन्नरी, सोहम और
श्रुती, श्रेया शाह, डलास
$ ५० अवनि शाह, डलास
$ ५०१ स्वाती कलमकर, डलास

मनोगत 'उज्ज्वल' टीम का

जैनकुल में जन्म से मिली विरासत ऐसे जैनधर्म को जानने की जिज्ञासा लौकिक पढ़ाई के समय से थी। प्रथमानुयोग के ग्रंथों ने इस जिज्ञासा को बढ़ाने का ही काम किया, मूल बेसिक से लेकर जटिल विषयों को समझने की इच्छा बनी ही रही। इन्टरनेट का चलान जब शुरू हुआ तब इंजीनियरिंग क्षेत्र में काम करते हुये भी Jainism पर ऑनलाइन सर्चिंग चलती रहती थी। जब हमने अपने व्यावसायिक जीवन से निवृत्ति लेकर जैनधर्म समझने के लिये समय देना निश्चित किया तब पढ़ने के लिये मटीरियल ढूंढ़ना शुरू किया। कई विद्वानों के अलग-अलग विषयों पर प्रवचन सुने। ऐसे ही ऑनलाइन/ऑफलाइन ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यह खोज www.jainSiddhant.org पर खत्म हुयी। जितने शास्त्रों के नाम भी मालूम नहीं थे उन पर आद्योपांत स्वाध्याय के प्रवचन एक साथ एक ही जगह पर दिखायी दिये। इतने प्रवचन उस समय डाउनलोड कर पाना आसान नहीं था तो सारे CD, VCDs कुरिअर से मंगवाये।

आदरणीय डॉ. उज्ज्वलाजी शहा और पं. दिनेशजी शहा द्वारा दैनिक स्वाध्याय और शिबिर में पढ़ाये गये जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त और करणानुयोग के विषय CD, VCDs के माध्यम से हम कुछ वर्षों से सुन रहे थे। वेबसाइट पर से 'सर्वज्ञ कथित जैन भूगोल' पुस्तक एवं व्हिडिओ प्रवचनों के आधार से स्वाध्याय किया तब तीन लोक का स्वरूप समझ में आया। प्रथमानुयोग के ग्रंथों में पढ़े हुये सिद्धशिला, मनुष्यलोक, त्रसनाड़ी, पंचमेरु, नंदीश्वरद्वीप, विजयार्ध पर्वतादि कई बातें और पूजा विधानादि में आनेवाले तीन लोक संबंधी अकृत्रिम जिनालयादि कई बातें समझ में आयी। सर्वज्ञकथित जैनधर्म तो अगाध है, करणानुयोग की सूक्ष्मता से सर्वज्ञ के स्वरूप की अपार महिमा आती है ! भेदज्ञान की कला को अमूल्य बल मिलता है।

दसलक्षण पर्व २०१७ में जब आप अहमदाबाद पधारे तब आप दोनों से प्रत्यक्ष परिचय हुआ। तभी से आपसे स्वाध्याय और भेदज्ञान की कला का सतत मार्गदर्शन मिल रहा है। वैसे वेबसाइट, पेनड्राइव्ह वगैरह टेक्निकल काम चल रहे थे परंतु अप्रैल २०२१ में डॉ. उज्ज्वलाजी शहा का पंचपरावर्तन ट्रान्स्क्रिप्शन के अंतर्गत प्रथम फोन आया तब से प्रवचनों को पुस्तकरूप देने का कार्य अविरत चल रहा है। पंचपरावर्तन पुस्तक पर काम करते हुये मनुष्यभव की दुर्लभता का वास्तविक अर्थ समझ में आया। स्क्राइब करते करते सभी शिबिर प्रवचनों को पुस्तकरूप से तैयार करने का विचार पक्का होता गया। 'सर्वज्ञकथित जैन सिद्धान्त' प्रवचनों का स्क्राइब पूर्ण होने से पहले

ही टीम के सदस्यों ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड शिबिर के प्रवचनों को स्क्राइब करने में सहर्ष स्वीकृति और उत्साह जताया।

हमारी 'उज्ज्वल टीम' में प्रोफेशनल यंग्स्टर्स भी हैं और रिटायर्ड सिनियर्स भी ! प्रोफेशनल्स जो नियमित स्वाध्याय की अग्रिमता से जुड़े हैं और स्वाध्यायी सिनियर्स जो अद्यतन कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी सीखकर बड़ी लगन से अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं। डॉ. उज्ज्वलाजी एवं पं. दिनेशजी के अत्यंत रोचक तरीके से पढ़ाये हुये करणानुयोग के कठिन से कठिन विषय भी रुचिवंत ज्ञान पिपासु साधर्मी तक आसानी से पहुंचे और आगामी पीढ़ीयां भी इस अमूल्य धरोहर का लाभ ले सके इसी उद्देश्य से उज्ज्वल टीम अपना समय समर्पित कर रही है। दैनिक स्वाध्याय या शिबिरों के माध्यम से इन विषयों को जिन्होंने सरलता से पढ़ा है, समझा है उन्हें यह लालच रहता ही है कि यह अनमोल खज़ाना सभी के लिये सुगमता से उपलब्ध हो। यही कारण है कि आजकल की व्यस्त जीवनशैली में भी टीम स्क्राइब और प्रूफ रीडिंग के लिये नियमित समय निकाल लेती है। आप सभी टीम मेम्बर्स के सतत समर्पण से ही यह काम संभव हुआ है जो बहुत ही सराहनीय है, आप सभी का बहुत बहुत धन्यवाद।

ट्रान्स्क्रिप्शन कार्य से मुझे जो व्यक्तिगत लाभ हुआ है वह शब्दों में अवर्णनीय है ! जैनधर्म और जिनागम के रहस्य समझने की बचपन से जो चाह थी उसे तो मार्ग मिला ही, गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा समझाया हुआ 'द्रव्यानुयोग', 'वस्तु का स्वरूप - दिगंबर जैनधर्म' सूक्ष्मता से समझने में अत्यंत बल मिला ! आप दोनों ने जैनधर्म की प्रभावना में अगाध कार्य किया है, जो आगम और अध्यात्म का ज्ञान हमें परोसा है यह आपका हम पर परम उपकार है। वर्तमान एवं आगामी पीढ़ी के लिये यह खज़ाना अत्यंत सुलभता से मोबाईल ॲप्लिकेशन JainSiddhant पर भी उपलब्ध रहेगा।

वस्तुस्वरूप समझने की शुरुआत तो अभी पहला कदम है। जिनवाणी माँ से खुद की पहचान कैसे हो यह बार-बार समझानेवाली माता समान आपका समागम, मार्गदर्शन और आशीर्वाद मुझे प्राप्त होता रहा है यह मेरा परम सौभाग्य है !

- **निशा शेठ (अहमदाबाद)**

आदरणीय डॉ. उज्ज्वला शहाजी से प्रथम बार भोपाल शिबिर में मिलना हुआ। ऐसा लगा मानों ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी के लेक्चरर को मैं सुन रहा हूं। तत्पश्चात् मैं नियमितरूप से डॉ. साहब के प्रवचनों का लाभ ले रहा हूं। हम दोनों - मैंने व अलका ने सम्यग्दर्शन, पंचलब्धि आदि शिबिर पूरे नियमित सुने। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड

विषय पर आद्योपांत २४५ प्रवचन सुने। आप इस काल में हमारे लिये मोक्षमार्ग की प्रेरणा के स्रोत बने।

आपके द्वारा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड शिबिर के प्रवचनों को ग्रंथ का रूप देने के लिये आमंत्रण मानों हमारे मनुष्यजीवन के सार्थक होने के समान था ! स्क्राइब, प्रूफ रीडिंग इत्यादि कम्प्यूटर पर कार्य करने का विशेष अनुभव नहीं था, फिर भी निशाजी ने बहुत मेहनत व धैर्य से हमें इस टीम में बनाये रखा। कभी भी कोई समस्या आती थी तो निशाजी अपना पूर्ण सहयोग देती रही।

मैं आपका बहुत आभारी हूं आपने मुझे पुन: विद्यार्थी बनने का अवसर प्रदान किया। मैं इतना भाग्यशाली हूं मुझे The Best Teacher of this Planet से पढ़ने का सौभाग्य मिला ! जिनवाणी की सेवा करने का अवसर मिला !

- **राजीव जैन (दिल्ली/बेंगलोर)**

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड पर आदरणीय डॉ. उज्ज्वलाजी साहब के लेक्चर्स को स्क्राइब करने का जो स्वर्णिम अवसर मिला उसके आनंद को कुछ शब्दों में बताना कठिन है। यह हमारे जीवन की एक अपूर्व घटना या फेज था। सबसे अच्छी फीलिंग तो यह आयी कि उन्होंने हमें इस लायक समझा ! क्योंकि काम कम्प्यूटर पर करना था और इसकी जानकारी कम थी। तो उस तरह की बहुत टेक्निकल जानकारी बढ़ी जो निशाजी ने अलग से समय दे-देकर सिखाई। आपका भी आभार है। आज हर रिटायर्ड आदमी अपने समय को बिताने के लिये परेशान सा रहता है जबकि हम तो अपने समय का अद्वितीय उपयोग कर रहे हैं। सारा दिन कहां बीत जाता है पता ही नहीं चलता है। सारा दिन स्वाध्याय ही तो हो रहा है और इस बहाने माँ जिनवाणी की सेवा का भी अवसर मिला है। यानी चहुँ तरफा लाभ ही लाभ - प्रसन्नता ही प्रसन्नता ! मन में बहुत संतोष है कि आदरणीय पंडितजी साहब व डॉक्टर साहब ने जो अथक मेहनत से पढ़ाया है उसका आनेवाली पीढ़ी भी लाभ ले पायेगी। एक लोभ भी था - इस पढाई लिखाई के दौरान जाने कब उपयोग स्वसन्मुख हो जाये ! इन्हीं भावनाओं से प्रेरित हो यह काम संपन्न हुआ। आप सब के आभारी हैं हम।

- **अलका जैन (दिल्ली/बेंगलोर)**

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद ! आपने हमें जिनवाणी की सेवा करने का मौका दिया। इस प्रोजेक्ट से हमारा निजी स्वाध्याय भी हुआ और यह प्रतीत हुआ कि द्रव्यानुयोग समझने के लिये करणानुयोग बहुत जरूरी है।

आपने बहुत मेहनत से जो कर्मकाण्ड के रहस्य समझे, वह इतनी सरल भाषा में समझाये हैं कि कोई भी सहज समझ सकता है। यह जिनवाणी की अमूल्य संपदा आपने जो समाज को दी है वह भविष्य में करणानुयोग के अभ्यास करनेवालों के लिये बहुत मददगार साबित होगी। पुन: पुन: आभार।

- **सुषमा चाणेकर (नासिक)**

आदरणीय डॉ. उज्ज्वलाजी और पं. दिनेशभाई का परिचय सन १९९९ में हुआ। मेरे लिये तो आध्यात्मिक माता-पिता के रूप में वे मेरे जीवन में आये हैं। उनका जीवन ही एक मिसाल है क्योंकि आध्यात्मिक और लौकिक जीवन कैसा होना चाहिये इसका वे सबसे बड़ा उदाहरण है।

उज्ज्वलाजीने करणानुयोग का रहस्य अत्यंत सरल कर किसी भी आयु के लोगों को समझ में आये इस रूप से उपलब्ध कर दिया है। आपने जो पुरुषार्थ से पं. टोडरमलजी द्वारा लिखी अध्यात्म टीका और उस पर आपने जिस सरलता से गणित समझाया है वह प्रेरणादायक और प्रशंसनीय है। हमे ऐसा लगता है मानो हम साक्षात् पं. टोडरमलजी को ही सुन रहे हैं। आपकी वाणी और ट्रान्स्क्रिप्शन ने हम सभी को मोह निंद्रा से जगा दिया है। यह सब सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड के स्क्राइब और प्रूफ रीडिंग के द्वारा प्राप्त हुआ।

गुरुदेवश्री हमेशा कहते थे कि दिन में दो-चार घंटे का स्वाध्याय होना चाहिये। और मैं अपने आपको भाग्यमान महसूस कर रहा हूं कि कर्मकाण्ड, गुणस्थान और अभी लब्धिसार-क्षपणासार के स्क्राइब द्वारा मेरा और सभी टीमवालों का निजी स्वाध्याय जोर शोर से हो रहा है।

जैसे माता-पिता के आभार का वर्णन इस जग में कोई नहीं कर सकता, वैसे ही आपकी प्रेरणा और स्वाध्याय प्रति प्रेम का वर्णन करना अशक्य है। विषय कषायों में क्षणिक सुख कैसे प्राप्त हो इसके लिये सारी दुनिया सलाह देती है, लेकिन सच्चे मोक्षमार्ग पर चलने की दिशा सिर्फ आपसे मिली है जिनके लिये मैं बहुत आभारी हूं।

निशाजी का भी आभार क्योंकि उनके नेतृत्व में यह सारा कार्य बहुत आसानी से हम पूरा कर सके हैं और आनेवाली पीढ़ी इसका लाभ ले सकेगी। यह अमूल्य निधि का लाभ सारी दुनिया ले सके और जल्द से जल्द स्वसन्मुख होने का प्रयास करे ऐसी भावना है।

- **पिनांग शाह (मुंबई/कोयम्बतूर)**

कोटि कोटि वंदन ! बहुत बहुत धन्यवाद पं. दिनेशभाई शहा और विदुषी डॉ. उज्ज्वला शहा - मुझे यह सौभाग्य प्रदान करने का, अपने साथ लेकर इस मंगलमय कार्य में भागीदार बनाकर आगे बढ़ाते रहने का ! मुझे इस काबिल बनाने का जिसे जैनीझम की A B C D भी नहीं आती थी, आपने अपने स्नेह से मुझमें इस जीवन को सफल बनाने की जागृति प्रदान की। इन प्रवचनों को सुनकर लिखने में उस टॉपिक की अंडरस्टँडिंग तो आती ही है और उसीमें डूब जाते हैं सारी दुनिया को भूलकर। बहुत ही अच्छा लग रहा है यह कार्य करते हुये और उम्मीद करती हूं आगे भी सहभागी रह सकूं। पुन: पुन: करबद्ध धन्यवाद इस मनुष्यभव की सार्थकता का अनुभव करवाने के लिये। आपकी लाँग अँड हॅप्पी लाइफ की कामना करती हूं।

- **डॉ. कल्पना शाह (मुंबई)**

मुझे यह बताते हुये बहुत खुशी हो रही है कि मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ – अक्षरश: स्वाध्याय को स्क्राइब करने का। मेरी करणानुयोग के विषय संबंधी बहुत भ्रांतियां चल रही थी परंतु स्क्राइब के कारण भ्रांतियों का निराकरण भी हुआ और समाधान भी मिला। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन का मर्म भी ख्याल में आने लगा। जब मैं प्रवचन सुनते सुनते स्क्राइब करता हूं तो ऐसा लगता है अरे ! सर्वज्ञ भगवान का अनंत ज्ञान कितना महिमावंत है !

यह करणानुयोग का विषय द्रव्यानुयोग समझने में कितना कार्यकारी है यह आपने बहुत अच्छी तरह से बताया और करणानुयोग के अभ्यास करने की हम सबको प्रेरणा दी और बहुत ही सरल करके हमें समझाया और जिनवाणी के इस पावन कार्य को करने का मौका दिया। आपका हृदयपूर्वक आभार !

- **हार्दिक वधानी (वसई, मुंबई)**

मैं आपका अपने हृदय में अंत:करण से आभार मानती हूं कि आपने मुझे इस जिनवाणी के प्रभावना के कार्य में शामिल किया। हमारा कार्य तो बहुत ही सरल है, परंतु स्क्राइब करते समय जब मैं प्रवचन सुनती हूं तो ऐसा लगता है कि आपने इतने कठिन विषय को कितना सरल करके समझाया और हमें करणानुयोग के स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी। आगे भी मैं इस कार्य में अवश्य ही शामिल होऊंगी।

- **हर्षिता वधानी (वसई, मुंबई)**

आप दोनों का अनेक वर्षों से जिनवाणी के सभी अनुयोगों का गहन अध्ययन है। आपने अपना पूरा जीवन जिनवाणी के प्रति समर्पित किया है। आपने करणानुयोग

के अनेक कठिन और महत्वपूर्ण विषय बहुत सरल और आसान करके हमें सिखाये हैं। मैं आप सभी को धन्यवाद देना चाहती हूं कि आपने मुझे जिनवाणी के प्रभावना के मंगलमय कार्य में सहभागी किया। आपने समय-समय पर मुझे मार्गदर्शन दिया जिससे मेरा रिव्ह्यु काम सरलता से हुआ। इस प्रॉजेक्ट में काम करने से मुझे करणानुयोग का अभ्यास करने की प्रेरणा मिली, मेरी रुचि भी बढ़ी है। आपका यह अमूल्य योगदान सभी आत्मार्थियों को हमेशा लाभदायक रहेगा। पुन: पुन: आभार !

- **वैशाली शहा (पूना)**

आपका सरल, सुबोध भाषाप्रयोग एवं लौकिक उदाहरणों से कठिन विषय भी सरलता से समझ में आ सके। जिनवाणी की सेवा में हम जैसे अनेक जीवों के लिये आपका गज़ब का योगदान रहा है। तत्त्वज्ञान व कर्मविज्ञान समझने और समझाने में आपने पूरा जीवन समर्पित किया है। मेरे लिये व आनेवाली पीढ़ियों के लिये आप प्रेरणास्रोत हैं। आपकी जीवनशैली सराहनीय और अनुकरणीय है।

पं. टोडरमलजी की भावना थी कि जन-जन का करणानुयोग में प्रवेश हो सके। उनकी भावना को आपने यथार्थ में साकार किया है। कर्मकाण्ड द्वारा भावों की सूक्ष्मता, कर्मविज्ञान व अनंत की अनंतता का भान, सर्वज्ञता की अपार महिमा आपके कारण ही आयी है। हम सभी ऐसी सामर्थ्य होने पर भी तुच्छ क्षयोपशम ज्ञान में मग्न हैं। अब आपकी प्रेरणा से शीघ्र ही सर्वज्ञदेव के बताये मार्ग पर चले यही मंगल भावना है। मेरा महाभाग्य है कि मैं इस प्रोजेक्ट में शामिल हो सकी। आप दोनों का आशीर्वाद मुझ पर सदा बना रहे। पंडीतजी का और आपका बहु त बहुत आभार !

- **नीतु कौशल (भोपाल)**

It's a blessing to us that we are given this wonderful opportunity to do something meaningful with our lives. While scribing, we are not just typing; we also understand the difficult topics covered by both our respected speakers. They made it very easy for us to comprehend. The times we are not able to scribe, only draws our attention to the fact that we are wasting our time and not doing what we should actually be doing in this short lifespan like an inner calling. Thank you respected uncleji and antyji for including us in the scribing project.

- **Ankit Jain and Anna Jain (Banglore)**

एक आगम-अध्यात्म रहस्यज्ञ दंपति

महामोहनगरी मुंबई के एक उपनगर सायन(पूर्व) में रहनेवाला एक पढ़ा लिखा युगल दंपति निर्मोहत्व की साधना में रत है। एक MBBS लेडी डॉक्टर है और उसका पति MA, LLB वकील है। वे एक दूसरे की मदद करते हुये कर्मों का ऑपरेशन कर रहे हैं और सच्चे मोक्षमार्ग की वकालत कर रहे हैं। लेडी डॉक्टर का नाम है डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दिनेशभाई शहा और वकील का नाम है पं. श्री दिनेशभाई शहा। जब दोनों ने आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी (सोनगढ़) के आध्यात्मिक प्रवचनों को सुना और आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी की अनुपम कृति 'मोक्षमार्गप्रकाशक' को एवं गोम्मटसारादि की टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' को पढ़ा तो हृदय परिवर्तित हो गया। दोनों को ऐसी रुचि लगी कि दोनों ने अपना-अपना व्यावसायिक अर्थोपार्जन का कार्य पूर्णत: छोड़कर पूर्णत: आगम-अध्यात्म के अभ्यास में लगा दिया। इस प्रकार एक मलम की डॉक्टर कलम की डॉक्टर बन गयी।

पश्चात् दोनों ने द्रव्यानुयोग की दृष्टिपूर्वक करणानुयोग कथित संसार परिभ्रमणरूप रोगों की जड़ - मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के उन्मूलन के लिये मोक्षमार्ग की प्रॅक्टिस प्रारंभ कर दी। जैसे नेत्रों के मोतियाबिंद के ऑपरेशन के जगह-जगह नेत्र विशेषज्ञ डॉक्टरों के द्वारा शिबिर लगते रहते हैं, ठीक वैसे ही इन दोनों ने जगह-जगह मिथ्यात्व के ऑपरेशन के शिबिर लगाना प्रारंभ कर दिये। इन शिबिरों में डॉ. उज्ज्वलाजी ६-६ घंटे प्रतिदिन बोलते हुये भी कभी थकती नहीं दिखी। उनके निवास पर तो यह प्रतिदिन आगम-अध्यात्म के अभ्यासरूप शिबिर चलता ही रहता है।

उनके अनुसार जिनागम के गहरे अभ्यास की रुचि ब्र. यशपालजी (अन्नाजी) की गुणस्थान प्रवेशिका से और अर्थसंदृष्टियों को सूक्ष्मता से समझने की रुचि ब्र. बिमलाबेन, जबलपुर/जयपुर के सहयोग से लगी। प्रारंभ में डॉ. उज्ज्वलाबेन ने एक लेखमाला 'चिरकाल पुरानी सुनो अपनी कहानी' पं. प्रकाशजी हितैषीजी द्वारा संपादित 'सन्मति-संदेश' पत्रिका में लिखी थी। पश्चात् बीस प्ररूपणाओं को पढ़कर ज्ञान के साथ भेदविज्ञान को पक्का किया। इधर कर्म-नोकर्म का स्वरूप स्पष्ट होता गया और उधर अंतरंग में अपनी 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्' रूप श्रद्धा पुष्ट होती गयी। मेरे जीवन में

भी आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी की कृति 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का, पू. गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हृदयग्राही आध्यात्मिक प्रवचनों का एवं श्रीमद् राजचंद्रजी की रचनाओं - 'आत्मसिद्धि', 'अपूर्व अवसर', 'अमूल्य तत्त्वविचार' आदि का गहरा प्रभाव पड़ा है। वस्तुत: मेरे ऊपर आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी का एवं श्रीमद् राजचंद्रजी का परोक्ष उपकार और श्री कानजीस्वामीजी का साक्षात् उपकार रहा है।

वर्तमानकाल में मैं डॉ. उज्ज्वला दि. शहा को करणानुयोग विशेषज्ञ तो मानता ही हूं, साथ में मैं उनको लौकिक गणित से परे लोकोत्तर/अलौकिक गणित का विशेष विशेषज्ञ मानता हूं। सातिशय प्रज्ञा के धनी आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका के तीसरे भाग 'अर्थसंदृष्टि अधिकार' में जो कर्म प्रकृतियों के विवेचन के संदर्भ में प्रयुक्त गणितीय विषयों का विवेचन/स्पष्टीकरण है जो अत्यंत क्लिष्ट है, उसे डॉ. उज्ज्वलाजी ने स्वयं भलीभांति समझकर हम लोगों को समझाया है। आधुनिक विज्ञान एवं उच्च गणित के शोधार्थी छात्रों को भी आश्चर्यचकित करनेवाले करणसूत्र एवं चिन्हों द्वारा असंख्यात-अनंत-अनंतानंतों के गणित अवश्य ही समझने योग्य हैं। वस्तुत: जो गणित – Log and Calculus मैंने अपनी इंजीनियरिंग पढ़ाई में पढ़े थे, जिसे आजकल के वैज्ञानिकों की खोज माना जाता है, परंतु ये सब गणितीय सूत्र formulae उपरोक्त ग्रंथों में मूल प्राकृत में उपलब्ध हैं। पं. टोडरमलजी के ये सारे ग्रंथ गोम्मटसार (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार) की टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' ढूंढ़ारी/राजस्थानी लोकभाषा में लिखे गये हैं। अब इनका अनुवाद वर्तमान प्रचलित हिंदी भाषा में डॉ. उज्ज्वलाबेन ने करके प्रकाशित भी कर दिये हैं।

आपके द्वारा लिखित जैनतत्त्व परिचय, कारण-कार्य रहस्य, करणानुयोग परिचय, पंचलब्धि पुस्तकों ने मुमुक्षु समाज पर बड़ा उपकार किया है। ये सभी पुस्तकें हिंदी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, तमिल भाषाओं में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। समग्र जिनागम के रहस्य समझने के लिये, मिथ्यात्व के परिहार के लिये, मोक्षमार्ग पर कदम बढ़ाने के लिये, आगम व अध्यात्म दृष्टि के कथनों के पीछे छिपे हुये अभिप्रायों को एवं अंतर को समझना अत्यंतावश्यक है। आगम दृष्टि में जीव की चतुर्गति परिभ्रमणरूप संसार अवस्था का विवेचन उसके निमित्त कारणों की प्रधानता से होता है और अध्यात्म दृष्टि में उपादान कारण की प्रधानता से होता है। आगम दृष्टि में निमित्तकारणों

का मूल्यांकन उपादानकारण के व्यापार से कभी कम नहीं आंका जाता है और परसंयोगजनित जीव की नैमित्तिक अवस्था उतनी ही भूतार्थ कही जाती है जितनी उसकी स्वाभाविक अवस्था। क्योंकि कार्योत्पत्ति में उपादान एवं अंतरंग निमित्त (कर्मोदय) - दोनों को उत्पादक सामग्री माना जाता है। उसमें उपादान कारण अनुरूप होता है और निमित्तकारण अनुकूल होता है। अन्य बाह्य कारण अकारणवत् ही रहते हैं। जीव के जो-जो भावबंध के कारण कहे हैं, वे-वे भावमोक्ष के कारण नहीं, और जो-जो भावमोक्ष के कारण हैं, वे-वे भाव संसार/बंध के कारण नहीं।

अध्यात्म दृष्टि आत्मा में गुणस्थान, मार्गणास्थानादि कर्म सापेक्ष पर्यायगत भेदभावों को भी त्रिकाली स्व-स्वभावरूप (अस्तित्वरूप) से स्वीकार नहीं करती, वह तो 'सकल निरावरण अखंड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षणरूप जो निज परमात्मद्रव्य है वह ही मैं हूं' ऐसा स्वीकार करती है। जबकि आगम दृष्टि में समस्त कर्म सापेक्ष जीव के गुणस्थान-मार्गणास्थानादि विकारी-अविकारी भावों को ही विस्तार से समझाती है। जो आत्मा के आश्रित हो उसे ही अध्यात्म कहते हैं। अथवा रागादि परद्रव्यों के आलंबन से रहित विशुद्ध आधारभूत निज शुद्धात्मा में लीनता-स्थिरता करना ही अध्यात्म है।

जीव को कार्यकारी जीव-कर्मादिक का व त्रिलोकादिक का स्वरूप जैसा केवलज्ञान द्वारा जाना गया है वैसा निरूपण करणानुयोग में किया गया है। करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग लगने पर व्रत-दानादि करने या जिनेन्द्रदेव की भक्ति करने से भी अधिक मंद कषाय हो सकती है, इसलिये इसका फल अति उत्तम होता है। व्रत-दानादिक कषाय घटाने के बाह्य निमित्त के साधन हैं और करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं सो यह अंतरंग निमित्त का साधन है, इसलिये यह विशेष कार्यकारी है। यद्यपि आत्मानुभव तो सर्वोत्तम कार्य है परंतु सामान्य अनुभव में उपयोग टिकता नहीं है, तब अन्य विकल्प होते हैं, तब यदि वहां करणानुयोग का अभ्यास हो तो उस विचार में उपयोग लगाना श्रेष्ठ है।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका में पं. टोडरमलजी ने चरणानुयोग के पक्षपाती को 'स्थूलाभासबुद्धि' कहा है और द्रव्यानुयोग के पक्षपाती को 'सूक्ष्माभासबुद्धि' कहा है। तथा व्रत पालने में, दान देने में, भक्ति करने में, उदासीनता इत्यादि शुभकार्यों में

ज्ञानाभ्यास (शास्त्राभ्यास) को ही प्रधान कहा है। वस्तुत: जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्वार्थों के श्रद्धान-ज्ञान बिना अज्ञानपूर्वक क्रियाकांड से सम्यक् चारित्र नहीं होता। गोम्मटसारादि करणानुयोग के शास्त्रों के अभ्यास से जीवादिक का जानना यथार्थ होता है क्योंकि संसार है वह जीव और कर्म के संबंधरूप है तथा इनके विशेष जानने पर इनके संबंध का अभाव होता है वही मोक्ष है। सामान्य जानने से विशेष जानना बलवान होता है।

डॉ. उज्ज्वलाबेन के द्वारा देवलाली, गजपंथा, भोपाल में लगाये गये करणानुयोग के शिबिरों में मैंने उनके ज्ञान की निर्मलता, विशदता, स्पष्टता को साक्षात् देखा है। She is goddess of learning ! उनके कंठ में सरस्वती का निवास है। प्रवचनसार गाथा २५१ तात्पर्यवृत्ति टिका (जदि दंसणेण सुद्धा, सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता...) में कहा है - यदि स्त्री सम्यग्दर्शन से शुद्ध हो, ग्यारहअंगरूप सूत्र-आगम के अध्ययन से भी संयुक्त हो.... इससे विदित होता है कि सम्यग्दृष्टि स्त्री को ११ अंग तक का ज्ञान प्रगट हो सकता है। यदि आज द्वादशांग श्रुत में से एकादशांगश्रुत उपलब्ध होता तो डॉ. उज्ज्वलाबेन उसे भी कंठाग्र कर लेती। चारों अनुयोगों का ज्ञान आपको है। प्रतिदिन ६-६ घंटे गोम्मटसार करणानुयोग के विषयों पर प्रसन्नचित्त से स्पष्टतापूर्वक प्रवचन देना - यह आपके सम्यक्त्वी होने की ओर इशारा करता है। आप वस्तुत: सिद्धान्त मर्मज्ञ सिद्धांताचार्या हैं। लौकिक शिक्षा से MBBS डॉक्टर होते हुये भी करणानुयोग के अभ्यास से आप गणितज्ञ किंवा गणिताचार्य इंजीनियर बन गई हैं। आपने 'अर्थसंदृष्टि अधिकार' जैसे क्लिष्ट-कठिन विषय को भी 'स्वयंबुद्ध' हो समझ लिया। बीच-बीच में आप पू. गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का नामोल्लेख किये बिना नहीं रहती कि उनको मात्र द्रव्यानुयोग का ही नहीं, बल्कि करणानुयोग का भी गहरा अभ्यास/ज्ञान था। समयसारादि जो अध्यात्म ग्रंथ हैं, उन पर भी आपने प्रवचन किये हैं। आप शतायु स्वस्थ रह ज्ञानगंगा में हम सबको स्नान कराती रहें।

- **ब्र. हेमचन्द जैन 'हेम'**
(देवलाली)
३१/१०/२०२३

प्रकाशकीय

डॉ. उज्ज्वला - मेरी धर्मपत्नी - उसके द्वारा लिखित और अनुवादित तथा मेरे द्वारा अनुवादित अनेक ग्रंथों का प्रकाशन कार्य कहो या व्यवस्था कहो मैं गत करीबन २५-३० सालों से करता आया हूं। ८-१० साल पहले से ही हम दोनों ने प्रकाशन का कार्य बंद करने की बात नक्की की थी। सभी छोटे-बड़े हिन्दी ग्रंथों की १०००-१००० प्रतियां छपवाकर सबको नि:शुल्क वितरण किया था। दिल्ली के अमितजी जैन DTDCवालों ने इसमें अमूल्य सहकार दिया था, वितरण की पूरी जिम्मेदारी वह भी अपने खर्चे से उन्होंने ली थी। मराठी भाषा में छपी हुयी पुस्तकें सेंकड़ों की संख्या में अनेक गावों में निःशुल्क भेजकर हमने निर्भार होकर सांस ली थी। मगर... ना हमारी इच्छा के कारण कोई कार्य होता है, ना ही इच्छा से कोई कार्य रुकता है। जो होनी होनेवाली होती है वह होकर ही रहती है।

'पंचपरावर्तन' विषय पर उज्ज्वलाजी ने ३४ घण्टों का शिबिर लिया था और मैंने लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पर दो शिबिर में मिलकर ६० घण्टे पढ़ाया था। इनका अक्षरश: लेखन-स्क्राइब करके इसकी ७३० एवं ११३० पृष्ठों की १०००-१००० पुस्तकें छपवाकर हमने निःशुल्क वितरीत की। हां, हमारे दातारों की यह कमाल थी। पूरा कोरोना का काल इसकी स्क्राइब टीम ने स्क्राइबिंग की मेहनत की और हम दोनों ने प्रूफरीडिंग की मेहनत की। फिर विश्राम की सांस लेनी चाही परंतु हमारी स्क्राइब टीम लीडर निशा शेठ, अहमदाबाद ने तो बीड़ा उठाया है कि मैं सभी शिबिरों की पुस्तकें बनाऊंगी। उसमें अनेक साथी मिल गये। उन सबकी जितनी तारीफ की जाये कम है।

हमारे दातार भी कुछ कम नहीं, कैसे भी उनको पता लगता है कि नयी पुस्तकें बन रही हैं तो जेब और दिल खोलकर दानराशि की बरसात कर देते हैं। दातारों ने नाम छापने के लिये मना करने पर भी मैंने उनकी नामावली छापी है। उनकी भावना की मैं कदर करता हूं, लेकिन हमारे मना करने पर भी पैसे देकर वे हमें उपकृत करते हैं। हमारे पर बार-बार उनके उपकार निरंतर चालू ही हैं। जब कार्य होता है तो अनेक निमित्त स्वयमेव हाजिर हो जाते हैं, इसकी प्रतीति पल-पल में होती रहती है।

हमारे स्क्राइब टीम के प्रत्येक सदस्य का मैं अत्यंत ऋणी हूं। दिनरात कमरतोड़ मेहनत करके उन्होंने इतना बड़ा कार्य सम्पन्न किया है। उन सबका मैं और सौ. उज्ज्वला दोनों ही अत्यंत आभारी हैं।

- **पं. दिनेशभाई शहा**

मेरी बात

कर्मकाण्ड यह सर्वज्ञ भगवान ने कर्म के बारे में जानकर बताया हुआ विज्ञान है, सायन्स है। कर्म के बारे में समाज में अनेक उलटी-पुलटी भ्रांत कल्पनायें चलती हैं। अन्यमतियों की तो बात छोड़ दो, जैनियों में भी ऐसी भ्रांतियां कुछ कम नहीं हैं। ईश्वर को अकर्ता माननेवाले भी कर्म को कर्ता-हर्ता मानते हैं। कर्म जो अचेतन है, पुद्गल है वही जीव को संसार में भटका रहा है, वही जीव को क्रोधादि कषाय कराता है, वही सुख-दुःख देता है, वही हंसाता-रुलाता है ऐसी एक ना दो, अनेक कल्पनायें समाज में प्रचलित हैं। कर्म को काट दो ऐसा उपदेश भी धर्म के नाम पर दिया जाता है। लोगों ने कर्म का हौआ बना दिया है। नहीं समझे ? जैसे छोटे बच्चे खाना नहीं खाते या कोई बात नहीं मानते तो उन्हें डराने के लिये कहते हैं कि देख, हौआ आयेगा; मराठी में कहते हैं कि भूत आयेगा; वैसे ही लोग डरते-डराते हैं कि हमारे कर्म हमें बुरा फल देंगे।

अंधेरे में जिन्हें डर लगता है तो उनके लिये उपाय क्या करना ? वहां प्रकाश कर दो तो वहां कोई हौआ-बौआ नहीं है इस बात का पता चलेगा तो डर भी भाग जायेगा। उसीतरह कर्म क्या चीज़ है, वह कहां से आता है, कैसे फल देता है, कैसे चला जाता है इसके बारे में सर्वज्ञ कथित बातों को हम जानेंगे तो हमें सही ज्ञान होगा। सही ज्ञान होने से मैं स्वयं जीव हूं और वह कर्म तो अचेतन जड़ है जो मेरे से अत्यंत भिन्न परपदार्थ है जिसके उदय में, जिसके फलस्वरूप जो बातें होती हैं वे भी मेरे से जुदी हैं आदि बातें समझ में आती है; तब हमें भेदज्ञान करके आत्मानुभव करना अत्यंत सहज, सरल और सुलभ होता है।

कर्म क्या है, जीव का और कर्म का संबंध कैसे होता है, बंधने के बाद सत्ता में रहते हुये उसमें कौन-कौनसे परिवर्तन होते हैं, कर्म के उदय में कौनसी बातें होती हैं, कर्म के कितने प्रकार हैं, उनका विभाजन कैसे होता है - आदि अनेक बातों का अत्यंत रोचक वर्णन इस कर्मकाण्ड में आता है। कर्म की अवस्थाओं का और जीव के परिणामों का यानी जीव की अवस्थाओं का निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है। दो भिन्न द्रव्य अपने-अपने में परिणमित होते रहते हैं तब ऐसा लगता है कि उस द्रव्य के कारण इस द्रव्य में कार्य हुआ, तब उस द्रव्य पर कारण होने का आरोप आता है, उसे निमित्त कहते हैं।

निमित्त की परिभाषा सबको मालूम है न ! 'जो स्वयं तो कार्यरूप न परिणमे,

परंतु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता है उसे निमित्त कहते हैं।' निमित्त, उपादान, निमित्त-नैमित्तिक संबंध, उपादान कारण के भेद-प्रभेद आदि विषयों की चर्चा मैंने 'कारण-कार्य रहस्य' पुस्तक में विस्तार से की है। द्रव्यानुयोग के सभी सिद्धान्तों को जानकर, उन्हें ख्याल में रखकर हम कर्म की विस्तृत जानकारी प्राप्त करते हैं तो हमारी भ्रमणायें मिट जाती हैं।

करणानुयोग में निमित्त की मुख्यता से कथन होता है। कथन निमित्त से करने पर भी कार्य तो उपादान से ही होता है। कर्म के बंध, उदय, सत्त्व की यहां विस्तृत जानकारी है। इन सभी में प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग की अपेक्षा से भेद होते हैं; उनमें भी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, जघन्य-अजघन्य भेद हैं जो कि सादि, अनादि, धृव, अध्रुव प्रकार के होते हैं।

कौनसे गुणस्थानों में कौनसी कर्मप्रकृतियां बंधती हैं, कौनसी नहीं बंधती और कौनसी बंधने से रुकती है इस बात को यहां बंध, अबंध और बंधव्युच्छित्ति के प्रकरण में समझाया है। उसीतरह उदय, अनुदय और उदयव्युच्छित्ति की बात समझायी है। सत्त्व के बारे में भी सत्त्व, असत्त्व, सत्त्व की व्युच्छित्ति गुणस्थानों में बतायी है। अनेक जीवों की अपेक्षा से ये बातें समझाने के बाद एक जीव की अपेक्षा एक काल में, किसी गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है उसे बंधस्थान, जितनी प्रकृतियों का उदय होता है उसे उदयस्थान और जितनी प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है उसे सत्त्वस्थान कहते हैं - उन बातों की चर्चा की है। मोहनीय कर्म के ये बंधस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान गुणस्थानों के अनुसार अलग-अलग पाये जाते हैं परंतु नामकर्म के इन स्थानों में बहुत विविधता पायी जाती है। नामकर्म के उदयस्थानों में तो अलग-अलग कालों में विशिष्ट प्रकृतियों का उदय पाया जाता है। इन सबका विस्तृत वर्णन यहां कर्मकाण्ड में किया है।

बंधस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानों के अनेक संयोग - अलग-अलग कॉम्बिनेशन्स भी यहां बतायें हैं। अत्यंत रोचक ऐसा यह विषय है। जितना-जितना पढ़ते जाते हैं, उतनी-उतनी इस विषय संबंधी स्पष्टता-क्लॅरिटि होती है। सभी गुणस्थानों में और मार्गणाओं में कर्म के बंध, उदय, सत्त्व का पता चलता है; संसारमार्ग और मोक्षमार्ग का स्वरूप - उसका रहस्य स्पष्ट रीति से ख्याल में आता है।

ग्रंथ स्वयं पढ़कर समझना आसान बात है। पं. टोडरमलजी द्वारा लिखित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथों का स्वाध्याय

इ. स. १९९३ से हम दोनों ने प्रारंभ किया था। ये सब ग्रंथ ढूंढ़ारी भाषा में थे। उसके पश्चात् इन सभी ग्रंथों को मैंने सामूहिक स्वाध्याय में आद्योपांत पढ़ाया था। उस जमाने में उनकी ऑडिओ रिकॉर्डिंग नहीं होती थी। इ. स. २००३ नवम्बर से धवला का स्वाध्याय शुरू किया तबसे कॉम्प्यूटर रिकॉर्डिंग शुरू की।

इन तीनों ग्रंथो की मैंने ढूंढ़ारी भाषा में से हिन्दी में अनुवादित करके हम दोनों ने उन्हें प्रकाशित किया। फिर उन पर घर में भी हिन्दी में दुबारा सामूहिक स्वाध्याय में पढ़ाया और इन ग्रंथों पर अनेक बार देवलाली में शिबिर लिये। हमारे शिबिरों की यह विशेषता रही है कि देवलाली में हम ५ दिन का शिबिर लगाते हैं, प्रतिदिन ६-६ घण्टे पढ़ाते हैं, तो ३० घण्टों में एक ही वक्ता एक ही विषय पर पूरा शिबिर लेता है। उनमें से कर्मकाण्ड पुस्तक के आधार से चार शिबिर हुये थे। हर बार उनकी व्हिडिओ रिकॉर्डिंग नहीं हुयी थी। पहली दो बार जो शिबिर हुये उनके जो कुल ६० घण्टों के प्रवचन हुये उनको हमारी निशा शेठ के निर्देशन में हमारी स्क्राइब टीम ने अक्षररूप से उतारा है - उनको पुस्तकरूप में टाइप किया है। अत्यंत मेहनत का और जवाबदारी का काम प्रत्येक व्यक्ति ने खूब निभाया है।

पहला शिबिर १४ मार्च २००९ से १८ मार्च २००९ तक हुआ और दूसरा शिबिर ३० जून २०१० से ४ जुलाई २०१० तक हुआ था। शिबिरों की तैयारी तो २-३ महीनों से चलती है मगर उन्हीं को पुस्तकरूप में छापने के पीछे अनेक लोगों की साल - दो साल की कड़ी मेहनत लगी हुयी है। हम दोनों ने भी १५-१५ बार इनकी प्रूफ रीडिंग की है, हमारा भी विषय और पक्का हो गया।

शिबिरों में प्रत्यक्ष सुनने से तो सबसे अधिक लाभ होता है परंतु विषय को बारंबार पढ़कर दृढ़ता के लिये ग्रंथों की - पुस्तकों की आवश्यकता और उपयोगिता है ही। वाचकगण इनका अधिकाधिक लाभ लें - यही शुभकामना !

- **डॉ. उज्ज्वला दि. शहा**

– विषय सूची –

१. शास्त्राभ्यास की महिमा १
२. कर्मबंध के प्रकार एवं कारण २४
३. मूलप्रकृति - घातिकर्म, अघातिकर्म ४३
४. उत्तरप्रकृतियां ६६
५. निषेक रचना और स्पर्धक रचना ८६
६. घातिकर्म - सर्वघाति, देशघाति १०७
७. कर्म पर निक्षेप १२८
८. कर्मों के नोकर्म १५०
९. बंध के प्रकार १७१
१०. तीर्थंकर प्रकृति – विशेषतायें; बंधव्युच्छित्ति १९१
११. बंधव्युच्छित्ति २१२
१२. शंका-समाधान; बंधव्युच्छित्ति २३३
१३. ध्रुवबंधी, प्रतिपक्ष, अप्रतिपक्ष प्रकृतियां २५५
१४. बंध - सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव २७६
१५. व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतियां २९६
१६. मूलप्रकृति - उत्कृष्ट स्थितिबंध ३१६
१७. उत्तरप्रकृतियां - उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबंध ३३७
१८. एकेन्द्रियादिकों में स्थितिबंध ३५६
१९. आबाधाकाल, आबाधाकांडक ३७६
२०. निषेक रचना ३९७
२१. अनुभाग बंध, सादि अनादि पुद्गल ४१७
२२. प्रदेशबंध - बटवारा ४३८
२३. प्रदेशबंध - एकभाग, बहुभाग ४५८
२४. उत्तरप्रकृतियों में बटवारा ४७९
२५. सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का बटवारा ५००
२६. बंधस्थान, योगस्थान ५२१
२७. योगस्थान - प्रकार ५४०
२८. प्रकृति - उदय और उदयव्युच्छित्ति ५६१
२९. उदयव्युच्छित्ति ५८१
३०. उदयस्थान ६०१

१. शास्त्राभ्यास की महिमा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

॥ॐ शुद्धात्मने नमः॥

॥मंगलाचरण॥

परम भए सब खंडिकैं, करमकांड समुदाय।
सहज अखंडित ज्ञानमय, जयवंते जिनराय॥१॥
विघनहरन मंगलकरन, नमौ सिद्ध सुखकार।
नेमिचंद जिन जगतपति साधुवचन गुनधार॥२॥

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य द्वारा रचित गोम्मटसार ग्रंथ की पं. टोडरमलजी द्वारा लिखित जो भाषाटीका है, जिसका नाम है सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका; उसमें से जीवकाण्ड का तो अपना यहां दो बार शिबिर हो चुका है। हमने विस्तार से अभ्यास भी किया है। अब यहां सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड का हम स्वाध्याय करेंगे। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जो है भाषाटीका; भाषाटीका किसे कहा ? पं. टोडरमलजीसाहब की बहुत इच्छा थी कि जन-जन इस विषय को समझें, ऐसी उनकी बहुत भावना थी।

इस गोम्मटसार ग्रंथ के टीकाकार सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य हैं; उन्हें सिद्धान्तचक्रवर्ती क्यों कहा? हां, शरदभाई पता है ? सिद्धान्त ? चक्रवर्ती तो हमें पता है। कितने चक्रवर्ती हुये ? *श्रोता: बारह।* बारह हुये। उनको चक्रवर्ती क्यों कहा ? *श्रोता: उन्होंने छह खण्डों को जीत लिया।* छह खण्डों को जीत लिया। नेमिचन्द्र आचार्य को चक्रवर्ती क्यों कहा ? सिद्धान्त के चक्रवर्ती। सिद्धान्त किसको कहते हैं ? यह षट्खण्डागम है। धरसेन आचार्य ने दो शिष्यों को - भूतबलि और पुष्पदन्त को पढ़ाया, फिर उन्होंने जो पहले में पहले ग्रंथ की रचना की जिसको प्रथम श्रुतस्कंध कहते हैं; उसका नाम है षट्खण्डागम; उसके छह खण्ड हैं। इन छहों खण्डों के जो विशारद हैं - जो विशेषज्ञ हैं, इनका अभ्यास किया है, उनको कहते हैं सिद्धान्तचक्रवर्ती। ऐसे जो सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य करणानुयोग के बहुत ज्ञानी थे।

चामुण्डराय का नाम सुना है ? क्या किया उन्होंने ? *श्रोता: बाहुबलीजी की मूर्ति।* उतना ही हमें पता है। वह कार्य तो महान है ही है, उन्होंने उससे भी बहुत बड़ा महान कार्य किया है ! क्या किया ? वे तत्त्वज्ञानी थे, बहुत अभ्यासी थे, उन्होंने आचार्यश्री को प्रश्न किया - यह नामकर्मों के बंध में जो अलग-अलग जीवपद होते हैं उसका जरा मुझे स्वरूप बताइये। उन्होंने तो अपने लिये प्रश्न पूछा था। हमें तो पता ही नहीं नामकर्म क्या है और जीवपद क्या होते हैं ! सीखेंगे हम। तो आचार्यश्री को करुणा आयी। आचार्यों की विशेषता है, वे वीतरागी संत हैं, कोई जिज्ञासु जीव सामने हो तो करुणाबुद्धि से वे उपदेश देते हैं। तो उन्होंने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की; जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार आदि सभी ग्रंथों की उन्होंने रचना की। चामुण्डराय भी तत्त्वज्ञानी थे। कर्णाटक भाषा में उन्होंने टीका लिखी उस मूल गोम्मटसार पर। वह कर्णाटक टीका पढ़कर - सुनकर केशववर्णी नाम के कोई ब्रह्मचारी हो गये, उन्होंने संस्कृत में टीका लिखी। लिपि थी कन्नड़, कन्नड़ लिपि में संस्कृत टीका लिखी।

अब ये पं. टोडरमलजी तो जयपुर निवासी। वे कन्नड़ भाषा कैसे जानते थे पता नहीं। फिर भी उन्होंने उस कन्नड़ लिपि में लिखित संस्कृत का ज्ञान किया। उसमें तो केवल संस्कृत ही नहीं, अत्यंत कठिन ऐसा गणित भी है। उसका अभ्यास करते हुये देशभाषा यानी पं. टोडरमलजीसाहब के समय की जो ढूंढ़ारी भाषा है, उस भाषा में उन्होंने इसकी रचना की है। लोग डरते थे गणित से। एक तो संस्कृत नहीं आती थी तो संस्कृत से डरते थे। उन्होंने देशभाषा में उसकी रचना की। गणित से डर लगता था तो उसमें से गणित को उन्होंने अलग निकाल दिया; निकाल दिया यानी निकाल बाहर नहीं किया; उसकी अलग से संदृष्टी अधिकार नामक ग्रंथ रचना की और उसमें से जो कोई गणित का सरल भाग है वह उदाहरण के तौर पर वहां वैसा ही रखा। स्वयं उन्होंने लिखा है ग्रंथ में; उन्होंने जब यह सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका लिखी है, वे स्वयं लिखते हैं। अन्य-अन्य जो पक्षपाती हैं न ! वे कहते हैं कि द्रव्यानुयोग ही पढ़ना चाहिये, प्रथमानुयोग ही पढ़ना चाहिये, यह पढ़ने से क्या होता है ? कुछ करेंगे तो लाभ होगा, तो चरणानुयोग की ही मुख्यता चाहिये। उनको उन्होंने बहुत विस्तार से उत्तर दिया है जिसकी चर्चा हमने जीवकाण्ड शिबिर के समय भी की थी।

पं. टोडरमलजी का कहना है कि करणानुयोग का स्वयं अभ्यास करो, जितना हो उतना करो। लोग कहते हैं हमको समझ में नहीं आता है। जितना समझ में आवे उतना करो। टीव्ही सीरियल देखकर कभी ऐसा नहीं लगता है हम बीच में ही देखेंगे तो क्या होगा ? हमको समझ में आयेगा कि नहीं आयेगा ? दूसरी भाषा में कोई सीरियल होगी तो हमको समझ में आयेगी कि नहीं आयेगी ? वहां रुचिपूर्वक सुनते भी हैं और समझते भी हैं। आपके हिंदी भाषिकों के बच्चे हिंदी सीखते हैं और गुजरातियों के बच्चे गुजराती सीखते हैं। कितने साल में सीखते हैं? हां, बचपन से ही सीखते हैं। और मद्रासी बच्चे ? कौन सिखाता है ? अरे हम उनसे जिस भाषा में बोलते हैं, वह भाषा वे सीख जाते हैं। बच्चे को जनम के बाद महीने के अंदर ही क्या-क्या सुनाते हैं ? महीने भर के अंदर ही क्या सुनाना चालू करते हैं उसको ? उसकी बारात तक ले आते हैं। किसको बुलाना ? क्या करना ? हां ! हम बच्चे के साथ बातें करते रहते हैं और बच्चा अपनी भाषा सीख जाता है। परंतु करणानुयोग हम सुनना ही नहीं चाहते हैं तो हम समझेंगे कैसे ? जो भाषा हम सुनते हैं वह हमें आत्मसात हो जाती है। कोई बात नहीं, पहली बार सुना तो लगता है जरा अटपटा है। ये हमारे आज के छोटे-छोटे बच्चे कॉम्प्यूटर पर बैठकर क्या-क्या करते हैं हमको तो कुछ समझ में नहीं आता। कैसे ? एक अक्षर दबायें फिर दूसरा अक्षर कहां है ? हम ढूंढ़ते हैं। तो हम जिन बातों को बार-बार सुनते हैं, समझते हैं, वे हम जरूर जान सकते हैं। उसमें कोई ऐसी भावना मत रखना मन में कि यह बात मैं नहीं समझूंगा। पं. टोडरमलजीसाहब ने स्वयं लिखा है कि जन-जन इसको समझे। मैं उन्हींकी भाषा में बताउंगी आपको।

देखो, कोई मंद बुद्धि कहता है इस गोम्मटसार शास्त्र विषैं तो गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन करि बहुत कठिनता सुनिये है। मैं उसका हिंदी करके बोलूंगी कि हमने ऐसा सुना है कि गोम्मटसार में गणित की बहुत कठिन ऐसी समस्यायें हैं, उनको हल कर दिये हैं। तो इसमें हमारा प्रवेश कैसे हो सकता है ? यह तो हमें बहुत कठिन लगता है; उनको वे कहते हैं **भय मत करो। इस भाषाटीका में गणित आदि का अर्थ सुगमरूप करके कहा है।** बहुत सरल करके समझाया है। **इसलिये प्रवेश पाना कठिन नहीं रहा और इस शास्त्र में कहीं सामान्य कथन है और कहीं**

विशेष है। कहीं सुगम है, कहीं कठिन है। वहां यदि सर्व अभ्यास बने तो ठीक ही है और नहीं बनता तो अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बने वैसा इसका अभ्यास करो। करो, ऐसा कहते हैं; कौन ? पं. टोडरमलजी, जिनके मोक्षमार्गप्रकाशक हमारे दैनिक स्वाध्याय का विषय है। हम सभी ग्रंथ पढ़ते ही पढ़ते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक का भी अवश्य स्वाध्याय करते ही हैं। उन्हीं पं. टोडरमलजी ने ये सारे सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक करणानुयोग के विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं। उनकी बुद्धि तो कोई अपूर्व थी परंतु उनके कारण आज इतने साल के बाद भी उनके ग्रंथों को पढ़कर हम भी इन कठिन विषय में प्रवेश पा सकते हैं। **अपने उपाय में आलस्य करना नाहीं**, यह उनकी भाषा है। यानी अपनी तरफ से उसमें कोई आलस मत करना। बिलकुल समझ में आवे ऐसी बात है, कोई कठिनाई है नहीं। आज तो हम कितने कठिन-कठिन विषय समझते हैं, सुनते हैं, अभ्यास करते हैं; तो यह कोई कठिन बात है नहीं। उन्होंने बहुत विस्तार से इसकी बात की है, उसमें तो चरणानुयोग के पक्षपाती को कहा है कि आप तप करना चाहते हैं, तो यह स्वाध्याय अंतरंग तप है। दान करना चाहते हैं तो ज्ञानदान जैसा कोई दान नहीं है। व्रतादि करना चाहते हैं तो पहले जीव क्या है ? अजीव क्या है ? कर्म क्या है ? इसको जानो। जीवों को जाने बिना उनकी हिंसा से कैसे बच सकते हो ? यानी हर एक अनुयोग के पक्षपाती को उन्होंने अपनी भाषा में वहां उत्तर भी दिया है।

वहां पर और एक बात कहते हैं, उन्होंने एक उदाहरण देकर बताया है कि जैसे चतुर किसान अपनी शक्ति के अनुसार जितना बन सके उतना खेत संवारता है और फिर समय पर बीज बोता है। हमारे पास बहुत जमीन है, तो क्या करें ? साल भर वह संवारते ही रहें ? तो जमीन संवारते-संवारते इतना काल गया कि बीज बोने के लिये अवसर ही नहीं मिला, समय चला गया न उसका ? तो क्या होगा ? उसको चतुर कौन कहेगा ? उसके हाथ में तो कुछ बात आनेवाली नहीं है। बस उसने तो जमीन को ही संवारा है, उसीमें ही उसका समय बीत गया। वैसे ही मनुष्यभव जो इतना दुर्लभ है, वह कितना दुर्लभ है देखेंगे हम ! ऐसा दुर्लभ में दुर्लभ मनुष्यभव पाकर भी, हमने इस मनुष्यभव में क्या किया ? जैसे वह किसान है न ! खेत संवारते ही रह गया, बीज बोया ही नहीं, ऐसे देखो, हम भी क्या कर रहे हैं ? जैसे जो किसान चतुर था, समय पर

जिसने बीज बोया है, उसको धान की प्राप्ति हो गयी। **वैसे ही तू भी जो अपनी शक्ति के अनुसार व्याकरणादिक का अभ्यास से थोड़ी बहुत बुद्धि को संवारी।** व्याकरण का पक्षपाती कह रहा था, भाषा का पक्षपाती कह रहा था मैं संस्कृत प्राकृत पढ़ूंगा, थोड़ा विद्वान हो जाऊंगा भाषा का और फिर इसका अभ्यास करूंगा। तो कहते हैं **जितना कार्यकारी है उतना अभ्यास करके अपने बुद्धि को थोड़ा बहुत संवारकर जब तक मनुष्यपर्याय और इन्द्रियों की प्रबलता इत्यादिक है तब तक।**

हम क्या कहते हैं हम तो बुढ़ापे में अभ्यास करेंगे। क्यों ? अभी हमारा समय कैसा है ? पैसे कमाने का है। जवानी में हम अभी पैसा कमायेंगे, थोड़ा अन्य कोई समाज का कार्य करेंगे, अन्य-अन्य बातें करेंगे और आप जैसे जब हम बूढ़े हो जायेंगे तब हम भी स्वाध्याय करेंगे। आप अभी स्वाध्याय करना, हम हमारी तरफ से होगा उतना आपको सहाय करेंगे। आप जरूर अभ्यास करना। परंतु जब हम बूढ़े हो जाते हैं तो बैठा नहीं जाता, सुना नहीं जाता, है न ! फिर मंदिर में ले जाने के लिये, कार तो है घर में दो-चार, परंतु बच्चों को समय कहां है जो हमें ले जावें ? ऐसी आफत आ जाती है। रमेशभाई, मुझे आज तक ऐसा कोई भी नवयुवान नहीं मिला कि जो कहता है अभी हमारे पैसे कमाने के दिन हैं, मैं बुढ़ापे में शादी करूंगा। शादी भी होती है, बच्चें भी होते हैं, वे पढ़ते भी रहते हैं, अपना धंधा भी चलता रहता है। यहां स्वाध्याय के लिये कुछ ऐसा अटकाव तो है ही नहीं, क्यों ? जब हमारी बुद्धि तेज है न ! तब हम बहुत जल्दी से उसको ग्रास्प कर सकते हैं और इसमें तो अपना कल्याण है। किसीको कुछ दिखाना नहीं है और यहां कुछ ज्यादा पढ़े तो हम जल्दी मोक्ष जायेंगे ऐसी बात नहीं है। परंतु हमें भेदज्ञान करना है, अपना स्वरूप जानना है। यह मूल बात कभी नहीं भूलना।

अभी भी हम जो कर्मों का अभ्यास कर रहे हैं; इसको अजीवकाण्ड नाम दिया है, कर्मकाण्ड नहीं। अजीवकाण्ड लिखा है इसमें। पहले तो हमने जीवकाण्ड देखा। देखो, हमें जीव और अजीव दोनों का ज्ञान करना है और इस अजीव से हम भिन्न कैसे हैं वह पहचानना है। हमें तो अपनी पहचान करनी है। परंतु अभी तक हमने भूल क्या की है ? अपने को पहचाना नहीं है। हमें देखना है ये कर्मों के कैसे-कैसे निमित्त बनते हैं, उनकी अवस्थायें कैसी क्या होती हैं, क्योंकि मुक्त तो होना है न हमें ? हम सब

कहते हैं हमें मुक्ति चाहिये। मुक्ति चाहिये यानी हम बंधे हैं यह नक्की है। जो बंधा नहीं वह क्यों कहेगा मुझे छूटना है ? छूटना चाहता है उसका अर्थ क्या हुआ कि वह बंधा हुआ है। अब हम द्रव्यानुयोग में कहेंगे कि अपने राग से बंधा हुआ है। फिर भी यहां कहेंगे निमित्तरूप से कर्म से बंधा है और हमारे भगवान सभी आठों कर्मों से मुक्त हो गये हैं। तो कैसे-कैसे बंधे थे और कैसे-कैसे मुक्त हुये हैं यह हमें जानना है। यात्रा तो हम करते हैं, कठिन से कठिन पर्वत हो, चढ़ाई पर चढ़कर जाते हैं, आज तो कैलाश की भी यात्रा करनेवाले लोग हैं। है न ! कितनी भी कठिनाई क्यों न हो हम जरूर यात्रा करते हैं और अच्छा भी है, करना भी चाहिये। क्योंकि जहां से, जिस क्षेत्र से कोई जीव मोक्ष पधारे हैं, उस क्षेत्र को देखकर हमें उनकी याद आती है। उनका हम आदर्श सामने रखते हैं। यहां भी हमें तो उन्होंने किस पद्धति से, किस मार्ग का अवलंबन करके, यह प्राप्त किया है ? उसको जानना तो और ज्यादा आवश्यक है। पहाड़ चढ़कर जाना वह मुश्किली सहन होती है परंतु यहां कर्मकाण्ड पढ़ना यह बोझ लगता है। है कि नहीं ऐसे ? वहां तो हम घर-बार बंद करके सब चले जाते हैं यात्रा में, परंतु शिबिर में ? क्यों ? यहां तो रुचिवाले आते हैं। कोई बात नहीं।

यहां तो पं. टोडरमलजी कहते हैं कि **जब तक मनुष्यपर्याय और इन्द्रियों की प्रबलता इत्यादि वर्तती है, तब तक तत्त्वज्ञान का कारण जो शास्त्र उनका अभ्यास करेगा तो तुझको सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयेगी।** अभी इसमें बहुत सारी बातें हैं, यह तो पीठिकारूप से उन्होंने दी हैं तो उसको देखते हुये अब हम आगे बढ़ेंगे। शास्त्राभ्यास की महिमा कहते हुये उन्होंने ख़ास करके करणानुयोग की बहुत ही उपयोगिता और आवश्यकता बतायी है। हमें तो अभी द्रव्यानुयोग की महत्ता बताने की जरूरत नहीं है क्योंकि द्रव्यानुयोग तो हमने गुरुदेवश्री से पाया है और उन्होंने बहुत सरल करके हमको परोस दिया है। इतना सरल कि जो विषय कठिन में कठिन लगता था, आज हमारे बच्चे-बच्चे भी उसका सही मर्म समझ गये हैं; मर्म की बात है। गुरुदेवश्री के तो नितांत उपकार हैं, अत्यंत उपकार हैं, अनंत उपकार हैं कि उन्होंने द्रव्यानुयोग हमारे हाथ में ऐसा परोस दिया है। उस द्रव्यानुयोग को ख्याल में रखकर हमें करणानुयोग का अभ्यास करना है। हमें अपना स्वरूप जानना है; हम इन सबसे

भिन्न हैं यह बात ख्याल में लेनी है। इनके साथ- कर्मों के साथ अपना निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है और कुछ नहीं बनता है। फिर भी कर्मों का जो ज्ञान कर रहे हैं, वह निमित्त का ज्ञान किया जाता है। द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त ऐसे हैं कि उन पर विचार किया जाता है, उनको बारंबार अपने निर्णय में लिया जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जाता है। करणानुयोग की बात ऐसी है कि जो द्रव्यानुयोग के हम सिद्धान्त पढ़ते हैं उनमें बहुत दृढ़ता आती है, मजबूती आती है।

सर्वज्ञ की महिमा तो करणानुयोग बिना आती ही नहीं है। क्यों ? क्योंकि सर्वज्ञ का जो स्वरूप है इसका थोड़ा अंदाजा आता है। ये बातें बतायी किसने ? तो सर्वज्ञ भगवान ने बतायी हैं। तो केवलज्ञान क्या है उसका विचार आता है, उसकी महिमा भासित होती है। यह तो श्रुतज्ञानियों ने लिखा हुआ है, तो श्रुतज्ञानी भी इतना जानते हैं। कैसे जानते हैं ? आगम के द्वारा जानते हैं। गोम्मटसार में इसमें गाथा आयी है। जितना केवलज्ञानी जानते हैं, उतना ही श्रुतज्ञानी जानते हैं और जो केवलज्ञान में और श्रुतज्ञान में अंतर मानेगा वह मिथ्यादृष्टि है। इतना ही अंतर है कि वे प्रत्यक्ष जानते हैं और श्रुतज्ञानी परोक्ष जानते हैं। वे भी छह द्रव्य जानते हैं और हम भी छह द्रव्य जानते हैं। वे भी जानते हैं कि प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं और हम भी जानते हैं प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं। वे भी कहते हैं हर समय हर द्रव्य के, हर गुण की पर्याय हो रही है, अपने स्वयं के कारण। हम भी ये जान रहे हैं। तो हमारा जानना कैसा है ? हम परोक्ष जानते हैं और वे प्रत्यक्ष जानते हैं। जैसे हम पॅथॉलॉजिस्ट के पास जाते हैं न ! हमने आपसे पूछा आपकी ब्लड शुगर कितनी है ? आपका ब्लड काउंट कितना है ? तो हम झट से बता देते हैं इतना-इतना है। कैसे पता आपको ? अरे ! यह देखो रिटन मॅटर है हमारे पास। पॅथॉलॉजिस्ट ने यह रिपोर्ट बनाकर दी है। आपने स्वयं जांच करके देखा था ? नहीं देखा था। कितना विश्वास है ? *श्रोता: पूरा हंड्रेड पर्सेंट।* हां, पूरा हंड्रेड कि टू हंड्रेड पर्सेंट ? *श्रोता: टू हंड्रेड पर्सेंट।* अच्छा ! टू हंड्रेड पर्सेंट और ये सारी बातें किसने देखी ? आपने कैसे जाना कि यह इतने से आलू के टुकड़े में; कितना ? सुई के नोंक के ऊपर जो आलू का इतना छोटासा टुकड़ा; आलू है, प्याज है, कोई कन्दमूल है; उसमें अनंत जीव हैं। उस टुकड़े में असंख्यात तो शरीर हैं निगोद के और एक-एक शरीर में

अनंत जीव हैं। कितने अनंत ? आज तक जितने सिद्ध हुये हैं उनसे भी अनंतगुणे। हां, इतने जीव हैं उसमें। किसने जाना है ? हमें तो कोई दिखायी नहीं देते माइक्रोस्कोप में। केवलज्ञानी ने जाना। कितना विश्वास है ? अब कहो टू हंड्रेड पर्सेंट- जितना वह पॅथॉलॉजिस्ट के रिपोर्ट के ऊपर विश्वास है। जब आता है - अरे शुगर इतनी है। भले वह दूसरे का रिपोर्ट आपके माथे मढ़ जाये कोई बात नहीं है। तो जो डॉक्टर बतावे वैसा करते हैं और यहां सर्वज्ञ भगवान बता रहें हैं यह जीव का स्वरूप है, यह कर्म का स्वरूप है, यहां इतने जीव रहते हैं, इस अवस्था में अनंत जीवराशि वहां पायी जाती है। तो वहां कितना विश्वास है हमारा ? ख्याल में आता है न ?

हमने सर्वज्ञ का स्वरूप अभी तक जाना है शास्त्र से, परंतु उसको यहां बुद्धि में नहीं लिया। अभी अपनी बुद्धि से उसका निर्णय ठीक से नहीं हुआ है क्योंकि यह मूल में मूल हमारे जो उपदेश दाता हैं, वे सर्वज्ञ भगवान हैं। कुंदकुंद आचार्य भी लिखते हैं, गोम्मटसार में भी लिखते हैं कि ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं। कोई नहीं कहता यह ऐसा मैं कह रहा हूं। मैंने यह बात बतायी, मैंने यह बात निकाली ऐसा कोई कहता हो तो वह तो छद्मस्थ की बात हुयी। वह तो सर्वज्ञ की बात है नहीं। आचार्यों ने जो कुछ भी लिखा है, वह जो मूल परंपरा के अनुसार था वही लिखा है। परंपरा से भटककर जिन्होंने जो कोई रचना की है- वह कितनी नितांत गलत है और कितनी मिथ्यावादी है वह तो पता है। गुरुदेवश्री ने भी उसके बारे में बहुत बार बताया है। हम यह जो अभी करणानुयोग का अभ्यास करने जा रहे हैं, यहां तो पं. टोडरमलजी ने लिखा है कि **यह शास्त्राभ्यास अवश्य करना।** कहते हैं **शास्त्राभ्यास करने का समय पाना महा दुर्लभ है।** हमारे लिये नहीं कह रहे हैं। आप कहते हैं, हां, बराबर है हमको धंधे से फुरसत नहीं मिलती, उसकी बात नहीं कर रहे हैं।

पं. टोडरमलजी बता रहे हैं चारों गति के जो सभी अनंत जीव हैं उनकी अपेक्षा शास्त्राभ्यास का जो अवसर है, वह अवसर पाना अत्यंत दुर्लभ है। कैसे ? एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पर्यंत समझते हैं ? एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के तो मन ही नहीं है। मन से क्या होता है ? हां, जो सुनते हैं वह याद करते हैं, याद रहता है। जो याद में है उस पर विचार करते हैं। विचार करते हैं कि

ठीक क्या है और अठीक क्या है, सही क्या है और गलत क्या है इसका निर्णय करते हैं। इसलिये मनवालों को ही यह ज्ञान होता है। कौनसा ? सम्यग्ज्ञान; मनवालों को होता है सम्यग्दर्शन; बिना मनवालों को होता ही नहीं उस पर्याय में। हां, वे एकेन्द्रिय से आयेंगे, संज्ञी पंचेन्द्रिय बनेंगे और जिनेन्द्र भगवान का उपदेश सुनकर उस पर विचार करेंगे, तत्त्वनिर्णय करेंगे, तो उनको सम्यग्दर्शन अवश्य होगा। परंतु वह निचली अवस्थाओं में नहीं होता। एक तो संज्ञी पंचेन्द्रियों को ही सम्यक्त्व होता है क्योंकि जिनागम का उपदेश सुनने की और निर्णय करने की आवश्यकता है।

पं. दौलतरामजी ने भी कहा है न 'दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।' यह नरभव कितना कठिन है वह बता रहे हैं यहां पर। एकेन्द्रिय से असंज्ञी तक के तो मन ही नहीं है। चतुरिन्द्रिय तक तो कान ही नहीं हैं। कर्ण ही नहीं हैं न ! सुनते ही नहीं और हम सुनते हैं तो क्या ? हां, मैं तो हमेशा बताती हूं ये द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों को कर्णेन्द्रिय नहीं हैं, एकेन्द्रिय की तो बात छोड़ दो। भाषा बोलनेवाले कौन हैं ? द्वीन्द्रिय हैं, त्रीन्द्रिय हैं, चतुरिन्द्रिय हैं और पंचेन्द्रिय हैं। उनमें से भी हम पंचेन्द्रिय को बाजू में रखते हैं। क्यों ? क्योंकि वे सुनते भी हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मात्र बोलते हैं, सुनते नहीं हैं और पंचेन्द्रिय सुनते भी हैं, बोलते भी हैं। हम भी क्या करते हैं मंदिरजी में जाकर ? भगवान को सुनाते हैं। जो केवलज्ञानी हैं उनको सुनाते हैं और भगवान ने जो बताया है वह सुनते नहीं हैं। तो हमारी पोझिशन कैसी हुयी ? विकलेन्द्रिय जैसी हो गयी है ! हमें सर्वज्ञ ने जो बात बतायी है, जो मार्ग बताया है उस पर जरूर गौर करना है।

यह क्यों दुर्लभ है ? **तो एकेन्द्रियों के तो मन ही नहीं है, नारकी तो वेदना से पीड़ित हैं, तिर्यंच तो विवेक से रहित हैं और देव तो विषयासक्त हैं।** क्योंकि हमें लगता है न ! वहां बहुत सुख होगा। कहां ? स्वर्गों में, जहां देवों को कोई धन कमाने के लिये बाहर दौड़ना नहीं पड़ता है और देवियों को बच्चों के पीछे रात-दिन लगना नहीं पड़ता है। यहां भी बच्चे कुछ नहीं कहते, हमारा ही राग उनमें अटका है। वहां कोई बच्चें नहीं होते स्वर्गों में। सारे युवान ही पैदा होते हैं। *श्रोता: बाल भी नहीं होते।* बाल भी नहीं हैं और बच्चें भी नहीं हैं, यहां तो हमारा टाइम बाल और बच्चों में ही जाता है।

मनुष्यों के अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास होता है और मनुष्यपर्याय पाना ही द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से अत्यंत दुर्लभ है। द्रव्य से दुर्लभ है यानी मनुष्यों की संख्या अल्प है, संख्यात है। कौनसे ? पर्याप्त मनुष्यों की। क्षेत्र से दुर्लभ यानी मनुष्यक्षेत्र कितना है ? ढाईद्वीप जितना। और तिर्यंचों का कितना है ? पूरा लोक। देव कहां पर हैं ? *श्रोता: ऊर्ध्वलोक।* ऊर्ध्व नहीं, तीनों लोक में हैं क्योंकि अधोलोक में भवनवासी हैं; मध्यलोक में व्यंतर और ज्योतिषि रहते हैं और ऊपर विमानवासी देव हैं। नारकी अपने-अपने क्षेत्र में, नीचे अधोलोक में रहते हैं। तो मनुष्यों का क्षेत्र सबसे कम है। द्रव्य, क्षेत्र हुआ; काल - लगातार मनुष्यों में रहने का काल। मनुष्य मरकर मनुष्य, मनुष्य मरकर मनुष्य, कितना काल होता है अश्विनभाई ? *श्रोता: पृथक्त्व कोटिपूर्व।* पृथक्त्व कोटिपूर्व। पर्याप्त मनुष्य के २४, अपर्याप्त का १, फिर पर्याप्त के २४ भव हो सकते हैं, लगातार भवों की बात है। २००० सागर की बात नहीं है, लगातार भवों की बात है; लगातार इतने भव हो सकते हैं। अभी उसके डीटेल में नहीं जायेंगे, हमने बहुत बार लिया है यहां पर। भाव से दुर्लभ ? जिन परिणामों से मनुष्य आयु बंधती है, वे परिणाम होना दुर्लभ है। पुण्य परिणाम होकर स्वर्ग में जाना सुलभ है। अरे ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी जाते हैं। पाप परिणाम होकर नरक में जाना सुलभ है और तिर्यंचगति में जाना तो चलता ही है, निगोद आदि में तो सारी अनंतराशि तो वहीं पर पड़ी है। परंतु मनुष्यपर्याय पाना अत्यंत दुर्लभ है।

मनुष्यपर्याय पाना दुर्लभ है, फिर उच्चकुल है, शरीर की निरोगता है, इन्द्रियों की प्रबलता है, बुद्धि की तीक्ष्णता इतनी है कि जो सुनते हैं उसका हम निर्णय कर सके। ये उत्तरोत्तर जितनी दुर्लभ बातें हैं इनके लिये अभी क्या करना चाहिये हमें ? शरदभाई ? यह पाने के लिये क्या करेंगे अभी हम ? हम हैं, ये सभी ऑब्स्टेकल्स पार करके हम आये हैं। मनुष्यभव भी है, इन्द्रियों की प्रबलता, उच्चकुल भी है और यह शास्त्राभ्यास हमारे हाथ में आया है। द्रव्यानुयोग तो हमने पाया ही है। हम उसके इतने अभ्यासी हैं, परंतु हम उसको २४ घंटे तो पढ़ नहीं सकते। भगवान महावीर की वाणी को अभी तक हमारे इन पूर्वजों ने सम्हालकर रखा है हमारे लिये। कोई हमारा पूर्वज हमारे लिये सम्पत्ति छोड़ देगा तो क्या करेंगे ? क्या दूसरों को बांट देंगे ? उसकी तो

बहुत महिमा आती है और यह सारा जो अमूल्य खज़ाना है हमारे पास ! इसको हम प्राप्त करें तो इसमें हमारा कल्याण है और किसीका कल्याण नहीं करना है। हमें ऐसा लगता है कि हम इसको नहीं पढ़ेंगे तो इस धर्म का क्या होगा ? क्या लगता है ? इस जैनधर्म का क्या होगा ? उसका विनाश हो जायेगा। अरे ! उसका कुछ विनाश नहीं होनेवाला, वह तीन काल में रहनेवाला है। तू अगर इसको नहीं पढ़ेगा तो तेरा क्या होगा ? इसका विचार करना चाहिये। अगर हम इस तत्त्व को नहीं सुनेंगे, नहीं समझेंगे और अपना कल्याण अभी नहीं करेंगे तो हमारा क्या होगा ? क्या-क्या होकर कहां-कहां यह जीव भटकेगा और कैसे-कैसे कर्म भी बंधेंगे ? जीव का एक भी परिणाम फोकट नहीं जाता। क्या कहा ? एक भी - पुण्य का होगा, पाप का होगा या वीतराग परिणाम होगा, कोई फोकट नहीं जायेगा। पुण्य और पाप से कर्मबंध होगा ही होगा।

हमें तो ऐसा लगता है हां, अभी पुण्य कर रहे हैं अच्छा है, हमको संयोग कितने अच्छे हैं। देखो, हमने पूर्व भव में पुण्य किया था न ! इसलिये मनुष्य हुये और आप पुण्य का निषेध कर रहे हैं। पुण्य का कौन निषेध कर रहा है ? पुण्य को अपना मानेंगे और उससे कल्याण होगा मानेंगे तो इस मान्यता का निषेध हो रहा है। पुण्य तो हो रहा है न ? यह सारे कर्मकाण्ड की रचना की है आचार्यों ने, तो उनको मालूम नहीं था कि इसमें टाइमपास क्यों करना ? यह टाइमपास नहीं है। जो आत्मानुभवी संत हैं उन्होंने भी कर्मकाण्ड का बारंबार अभ्यास किया है क्योंकि उसमें उपयोग अत्यंत सूक्ष्म होता है। जब उसका अभ्यास करते हैं तो दुनिया में क्या हो रहा है कुछ पता नहीं चलता। आप घंटा दो घंटे पढ़ो, तो इतना समय हो गया ऐसा देखना पड़ता है, घड़ी देखनी पड़ती है, अपना उपयोग इतना सूक्ष्म होता है। इसके अभ्यास में हम सही बातें जानते हैं। हमारा उपयोग अन्य में भी बहुत सूक्ष्म होता है; पैसे कमाने में, धंधे में, टीव्ही में, बहुत सारे विषयों में उपयोग को सूक्ष्म बनाते हैं यानी उसमें इतना लगातार लगाते हैं कि हम दुनिया भूल जाते हैं; वैसी बात नहीं है। वे रागवाली बातें हैं। इसको जब हम पढ़ते हैं, तब यहां कोई राग की बात नहीं है। जो सत्य स्वरूप भगवान ने बताया है उसीको हम जानते हैं और उसमें इतना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग हो जाता है।

मुनियों के लिये यह असंख्यातगुणा निर्जरा का कारण कहा। कौनसा ? शास्त्र

का अभ्यास, चिंतन वगैरह भी। हम कहेंगे यह तो शुभभाव है न ! हां, परंतु उनका वीतरागता के सहित उपयोग इसमें लगा है, तो इससे उनकी असंख्यातगुणा निर्जरा होती है। धर्मध्यान के हम भेद देखते हैं उसमें भी विपाकविचय, अपायविचय वगैरह जो धर्मध्यान हैं उसमें तो कर्मों के बारें में ही उनका चिंतवन चलता है। इतना क्या इसमें है कि ये ज्ञानी पुरुष भी इसका लगातार अभ्यास करते हैं ? हमें भी थोड़ी उत्सुकता होनी स्वाभाविक है। पं. टोडरमलजी ने स्वयं लिखा है कि मैंने इसमें से गणित का पार्ट अलग कर दिया है, उसका अलग अधिकार बनाया है। जिसको चाहिये वे संस्कृत में से पढ़े, मूल गणित वहां से पढ़े। और जिनको अधिक रुचि है वे संदृष्टि अधिकार में से पढ़े। परंतु जन-जन के लिये मैंने भाषाटीका लिखी है। पं. टोडरमलजी ने अपनी भाषा में इसका वर्णन किया है। अब उसीके आधार से हम भी यहां थोड़ा अभ्यास करेंगे। कोई पुस्तक में से हम डायरेक्ट लेनेवाले नहीं हैं। हम अपनी भाषा में देखेंगे कि यह कर्म क्या है, उसके क्या-क्या शब्द हैं जो बारंबार आते हैं। अरे ! हमारा कर्म का बहुत खोटा उदय चल रहा है वगैरह शब्द तो हम ऐसे बोलते हैं, प्रयोग करते हैं परंतु हमें उसका सही अर्थ क्या है वह पता नहीं है। हम जरूर उन शब्दों को गौर करेंगे, उनके मूल तक जाकर सादी भाषा में, सरल अपनी भाषा में उसको सीखेंगे। हम पहली गाथा गोम्मटसार की लेंगे प्राकृत में से और फिर अपना विषय चलायेंगे।

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं।
सम्मत्तरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं॥ १॥

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती यहां कर्मकाण्ड लिखने की शुरुआत करते हैं और यहां से उन्होंने कर्म क्या है, उसके कितने भेद हैं, वे क्या-क्या हैं, उनके नाम क्या हैं आदि सभी बातें विस्तार से समझायी हैं। हम भी यहां देखेंगे, इसकी चर्चा करेंगे। कर्म को प्रकृति भी कहते हैं। प्रकृति किसको कहेंगे ? कर्म के जो भेद हैं उनको बतायेंगे यहां पर। कर्म कहने से सभी कर्म उसमें आ जाते हैं और जब हम कहेंगे कर्म के कितने भेद हैं तो हम उसके भेद करेंगे; कोई घातिकर्म हैं, कोई अघातिकर्म हैं। फिर उनके और भेद करेंगे तो उनको क्या कहेंगे ? मूलप्रकृति; प्रकृति का अर्थ क्या है ? जिसको हम कहते हैं न ! इसका मिजाज़ कैसा है ? यह गरम मिजाज़ का है। प्रकृति

स्वभाव को कहते हैं। तो यहां कर्मों में भी अलग-अलग स्वभाववाले कर्म हैं।

पहले में पहले कर्म हैं कि नहीं हैं यह हमें प्रश्न उठना स्वाभाविक है। यह कर्म क्या बात है हमने कभी देखा नहीं। आपने देखा ? अंतराय कर्म देखा होगा न ? क्योंकि वह आड़ा आता है न ! तो हम नहीं आ सकते शास्त्र स्वाध्याय में। यह कैसा होता है ? काला होता है कि गोरा होता है ? हां, बोलो बहन ? अंतराय कर्म काला, गोरा, लाल, पीला होता होगा कि नहीं होता होगा ? उसको कलर-वर्ण तो होगा कि नहीं ? नहीं कहते हैं। *श्रोता: होगा।* होगा। अच्छा ! क्यों होगा? *श्रोता: कर्म पुद्गल है।* हां, कर्म पुद्गल है। हमें दिखायी नहीं देता इन्द्रियों से। परंतु जो-जो पुद्गल है, हमने पुद्गल का क्या लक्षण बांधा है ? जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं वह पुद्गल है। कर्म पुद्गल है तो उसमें स्पर्श भी होगा- हल्का, भारी। उसमें कोई रस भी होगा, चखा नहीं कभी हमने। वर्ण भी होगा उसका और गंध भी होगा। हम नहीं जानते तो क्या ? भगवान तो जानते हैं क्योंकि कर्म जो हम कहते हैं वह तो अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं का समूह है और हर एक परमाणु को अपना-अपना स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है उसकी पर्याय अलग-अलग चल रही हैं वहां पर। हां, बिलकुल, हमें तो निर्णय करना है। कौनसा कलर, आपने देखा है क्या ? उसकी बात नहीं है। उसमें है कि नहीं इसकी हम चर्चा करेंगे और हमारी जो चर्चा होगी वह आगम के आधार से होगी। जो चीजें हमें नहीं दिखायी देती हैं, उनको देखना है तो आगम के चक्षु लगाना। हां, तो सब कुछ दिख जायेगा। हां ? *श्रोता: कहां मिलते हैं ?* सब जगह फ्री में मिलते हैं मगर हम लगाते नहीं न !

देखो, सभी जो चारों गति के जीव हैं न ! वे तो इन्द्रियचक्षुवाले हैं, इन्द्रियों से जानते हैं। देव-नारकी वे अवधिचक्षुवाले हैं, वे अवधिज्ञान से जानते हैं और ये मुनिराज हैं, ये जो आगमचक्षु से जानते हैं और भगवान तो सर्वत: चक्षुवाले हैं, पूरे असंख्यात आत्मप्रदेशों से वे जानते-देखते रहते हैं। ये जो आगमचक्षु हैं उनके द्वारा हम यह सारा निर्णय करेंगे। यह जो कर्म की बात यहां हम लेने जा रहे हैं तो उसमें पहले में पहले हमें यह बात मूल में ध्यान में रखनी है। अभी जो कर्मों की बात चलेगी, कहेंगे जीव ने कर्म को बांधा, जीव ने कर्म का उपशम किया या जो कोई कर्म की अवस्थायें बनेंगी। एक बात ख्याल में रखना योग्य है कि जीव और कर्म दो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। प्रत्येक

द्रव्य की अपनी अवस्था, अपने में, स्वयं के कारण से होती है, किसी अन्य द्रव्य के कारण होती ही नहीं। कर्म की जो कोई अवस्था हो रही है, वह कर्म में कर्म के कारण उसकी अपनी योग्यता से होती है और जीव में जो कोई अवस्था होती है वह जीव में अपनी योग्यता से होती है।

दो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं; दोनों की अवस्था एक साथ होती है तो हमें ऐसा लगता है; लगता है हां, होता नहीं है। लगता है, भासित होता है कि इसने इसका कार्य किया या इसने इसका कार्य किया। उसको क्या कहते हैं ? निमित्त-नैमित्तिक संबंध। इसका विषय बहुत चला है अपना, द्रव्यानुयोग में तो चलता ही है। जीव की जो कोई अवस्थायें होती हैं, उसके जो कोई राग-द्वेष के परिणाम हो या जो कोई उसके संवर-निर्जरा के परिणाम या मोक्ष का परिणाम हो, वे उसके अपने कारण से होते हैं और कर्म की जो कोई अवस्थायें बन रही हैं वे उसके अपने कारण से। जड़ में भी उसमें अपनी शक्ति है। परंतु ॲट अ टाइम दोनों एक समय में होते हैं तो हमें ऐसा भासित होता है कि इसके कारण यह हुआ। केवलज्ञानावरण का क्षय हुआ तभी तो केवलज्ञान हुआ कि नहीं जीव को ? क्यों प्रफुलभाई ? हां, इसको तो केवलज्ञानावरण ने रोका था। तो जीव से वह पॉवरफुल हो गया। कौन ? अचेतन ! जड़द्रव्य चेतनद्रव्य से इतना पॉवरफुल हुआ कि उसने केवलज्ञान को रोका, क्या ऐसा है ? *श्रोता: नहीं।* हमें अभी क्यों ज्ञान हो रहा है ? हमें कर्म का क्षयोपशम हो रहा है, क्या इसलिये ज्ञान हो रहा है ? ज्ञान तो अपना स्वभाव है। स्वभाव को किसी पर की अपेक्षा नहीं होती है। तो क्या जीव इतना हीन हो गया कि जड़ के कारण उसे ज्ञान हो जाये? पुस्तक से तो ज्ञान हो रहा है कि नहीं ? देखो, अभी सामने पुस्तक नहीं है तो कितनी आकुलता हो रही है कि हमें पुस्तक कब मिलेगी ? मिलेगी तभी तो हमें ज्ञान हो जायेगा। होता है कि नहीं ऐसा ? तो सुनने के कारण तो ज्ञान होगा ? नहीं, परंतु हम तो अभी क्या करनेवाले हैं ? अभी थोड़ा पुण्य करके स्वर्ग में जायेंगे। वहां से कहां जायेंगे ?*श्रोता: सीमंधर के पास।* सीमंधर भगवान के पास, अच्छा ! दूसरे कोई नहीं चलेंगे। जुगमंधर, बाहु, सुबाहु कोई नहीं चलेंगे, हां। वहां जायेंगे तो क्या करेंगे ? दिव्यध्वनि सुनेंगे। दिव्यध्वनि से तो ज्ञान होगा कि नहीं, बोलो बहन ? स्वामीजी ने कितनी बार समझाया है। अरे ! यह तो तू चेतन को

अचेतन मान रहा है ! अचेतन से, जड़ से मुझे ज्ञान हो रहा है? मैं तो ज्ञान का पिंड हूं। यह जो कोई ज्ञान की पर्याय निकलती है, यहां से निकलती है। हां, सामने कोई निमित्त होगा उस समय परंतु निमित्त से कुछ नहीं होता है।

यहां द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त क्यों निकाले ? क्योंकि यह तो मूल है। इसको अगर भूल जायेंगे तो हम कर्म के साथ बह जायेंगे कहीं न कहीं। ऐसा लगेगा वह अभी कल से भगवान की पूजा छोड़कर, कर्म की करनी पड़ेगी कि मुझे छोड़ दो, अभी कोई रास्ता दिखा दो। क्योंकि अन्यमति तो कर्म को भले माने या न माने, हम जैनी तो मानते हैं। कैसा मानते हैं ? भगवान तो हमारे कुछ नहीं करते हैं परंतु कर्म जरूर करते हैं। क्योंकि कर्म का अभी क्या है ? हमारा उदय चल रहा है। वह उदय क्या होता है ? वह पता नहीं मगर कर्म का उदय चल रहा है इसलिये हम बहुत दुःखी हैं। तो सुखी कब होंगे ? पुण्य का उदय चालू हो जायेगा तो हम सुखी बन जायेंगे। देखो, अभी इसीलिये निमित्त-नैमित्तिक संबंध का हमने यहां विषय निकाला है। क्योंकि कुछ लोग नये हैं न ! रोज के स्वाध्यायी हैं उनको तो यह पता ही है कि निमित्त कार्य में कुछ नहीं करता है; जीव अपनी योग्यता से - अपने स्वयं के उपादान से, उसका हर एक कार्य, हर एक समय की पर्याय, अपने उपादान से होती है। अनादि से अनंतकाल तक की सभी द्रव्यों की सभी पर्यायें यानी एक-एक समय की पर्याय सुनिश्चित है, निश्चित तो है ही है, वह अपने स्वयं के कारण अपने समय पर होती है। फिर भी अभी हम यहां कर्म संबंधी ज्ञान करने जा रहे हैं क्योंकि हमने अपने को कर्मरूप ही माना है, कर्म के उदयरूप ही माना है। अगर नहीं मानते तो इसको समझाने की कोई जरूरत नहीं थी। हम इसका ज्ञान करके भी इससे भिन्न हमारा स्वरूप कैसा है इस बात को बारंबार याद करेंगे। इसलिये हमने यह बात उठायी है।

अब यहां जो मूल बात है ये कर्म क्यों बंध रहे हैं ? सिद्धों को बंध रहे हैं ? *श्रोता: नहीं।* नहीं बंध रहे हैं ? क्यों नहीं बंध रहें हैं ? *श्रोता: उनको आठ कर्मों का अभाव हो गया है।* हां, उनको आठ कर्मों का अभाव हो गया है, इसलिये नहीं बंध रहे हैं। तो हमें क्यों बंध रहे हैं ? तो पहले में पहले कैसे बंधे ? सबसे शुरुआत में कैसे बंधे ? हां, पहले कैसे बंधे होंगे ? जीव प्युअर था ? *श्रोता: नहीं।* नहीं, यानी अनादि से ही जीव कर्म से

बंधा हुआ है। अनादि क्या होता है ? देखो, अभी आगे भी ये शब्द बारंबार आनेवाले हैं। चार शब्द आयेंगे- अनादि, अनंत, सादि और सांत। अनादि - अन् आदि; जिसकी शुरुआत नहीं है उसको अनादि कहेंगे। अनंत - जिसका अंत नहीं होता उसको अनंत कहेंगे। एक होता है सादि; शादी नहीं सादि; स प्लस आदि - जिसकी शुरुआत है, जिसकी बंधने के लिये शुरुआत हुयी है उसको कहेंगे सादि और एक होता है सांत यानी जिसका अंत है उसको कहेंगे सांत। मिथ्यात्व कब से चला आ रहा है हमारा ? अनादि से। वह भी प्रवाहरूप से। वह भी एक-एक समय का मिथ्यात्व-मिथ्यात्व-मिथ्यात्व करके; कबसे है ? तो अनादि से है। जिसको सम्यग्दर्शन हो गया, क्या कहेंगे उसको? मिथ्यात्व अनादि से था वह सांत हो गया। यह शांत हुआ कहते हैं यानी उसका अभी अंत हुआ। हिंदी में कहते हैं न! यह हमारे फलां-फलां शांत हो गये।

अच्छा ! तो यह मिथ्यात्व अनादि से है और अभी नष्ट हो गया तो कहेंगे अनादिसांत। अभव्यों का कैसा है ? वे कभी मुक्त होंगे ही नहीं, सम्यग्दर्शन भी नहीं प्राप्त होगा उनको, तो कहेंगे उनका मिथ्यात्व अनादिअनंत है। कोई ऐसा है कि उसने मिथ्यात्व का अभाव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। यह ऐसे गॅरंटी नहीं कि वह वैसे सम्यक्त्व के साथ मोक्ष ही चला जायेगा। फिर वापस मिथ्यात्व में भी आ सकता है। तो उसका मिथ्यात्व कैसा है अभी ? सादि। उसको कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि; ये शब्द आगे भी आनेवाले हैं; तो उसको कहेंगे सादि मिथ्यादृष्टि। परंतु अभी उसका मिथ्यात्व कैसा है ? नष्ट होनेवाला ही है। क्यों ? एक बार उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है तो अधिक से अधिक अर्धपुद्गलपरावर्तन काल में वह नियम से मोक्ष जायेगा ही जायेगा, उससे अधिक संसार में नहीं रहेगा, तो उसको कहेंगे सादिसांत मिथ्यात्व; मिथ्यात्व सादि और सांत और सम्यक्त्व कैसा है ? जैसे क्षायिक सम्यक्त्व कैसा है ? *श्रोता: सादि है*/ सादि है और अनंतकाल तक रहेगा क्योंकि सिद्धों में भी रहेगा। तो ये चार प्रकार से कालों का वर्णन आता है। आगे भी जब कहीं हम कहेंगे सादिसांत है या यह सादि मिथ्यादृष्टि है तब उसका ऐसा अर्थ समझना चाहिये। यह तो अभी हमने बताया।

ये जो कर्म और जीव हैं, वे अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। यह मूल में मूल बात है। यदि ऐसा नहीं होता तो जो कोई शुद्ध जीव है, उसने एक बार मोक्ष

प्राप्त किया और फिर उसको बंध होने लगा तो ऐसा मोक्ष कौन चाहेगा ? क्योंकि उसको प्राप्त करने का कोई फ़ायदा नहीं है। जैसे परमाणु विभावरूप कब कहलाता है ? जब स्कंधरूप हो जाता है। स्कंध में विभाव है और एक सिंगल परमाणु होता है तो स्वभाव है। परंतु उसका स्वभाव से विभाव और विभाव से स्वभाव चलता रहता है। जीव में ऐसी विशेषता है, एक बार स्वभावरूप परिणम गया, सिद्ध बन गया तो दुबारा विभावरूप नहीं होता। एक बार उसने मोक्ष प्राप्त कर दिया तो अन्यमति जैसे समझते हैं, वैसे दूसरों का भला करने के लिये भगवान फिर से अवतार लेते हैं न ! ऐसा नहीं होता है। जीव मुक्त हो गया तो बस वहीं पर अनंतकाल तक सुख में विराजमान रहेगा।

यहां जो अभी कर्म और जीव हैं, वे अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। जीव और कर्म का एक बंधानरूप हुआ है, जिसको हम बंध कह रहे हैं। बंध शब्द क्या सूचित करता है ? वहां दो वस्तुयें हैं। एक का एक से बंध हुआ ऐसा कोई कहेंगे क्या ? जिसको हम बंधन कहेंगे या संबंध भी कहते हैं। संबंध कब कहते हैं ? दो भिन्न-भिन्न चीजें होगी तब। भाई-बहन का संबंध है, पति-पत्नी का संबंध है, मां-बेटी का संबंध है। संबंध क्या सूचित करता है ? दो चीजें। ऐसे यहां जीव और कर्म का अनादि से ही संबंध है कहा, बंध है कहा। क्यों ? ये भिन्न चीजें हैं और भिन्न हो सकती हैं और अनंत जीवों ने भिन्न करके अपना स्वरूप प्राप्त किया है। अभी तक कितने सिद्ध हुये हैं मालूम है ? हर छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव संसार से मुक्त हो जाते हैं, सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं। ऐसा कब से चल रहा है ? अनादि से। अनंत बार ऐसे छह महीने हो गये हैं। अनंत बार छह सौ आठ जीव मुक्त हो गये हैं। तो कितने जीव सिद्ध हैं ? अनंत-अनंत-अनंत सिद्ध हैं। इतने अनंत जीवों ने जो बात प्राप्त की है, अपने स्वरूप की प्राप्ति की है वह सहज सुगम होगी कि दुर्लभ होगी बहुत ? बिलकुल सुगम है। *श्रोता: सुगम है।* बिलकुल सुगम होनी ही चाहिये क्योंकि जो बात अनंतों ने प्राप्त की है वह बिलकुल सुगम होनी चाहिये। उसका रास्ता भी सुगम है और जिसको जिज्ञासा है उसको वह सहज प्राप्त भी होता है। इसीको कहते हैं सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध। जिसको कहीं भी थोड़ी भी जिज्ञासा हो जाती है, अपने स्वरूप संबंधी विचार भी आता है, उसको मार्ग न मिले ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता।

हम देखते हैं न ! प्रथमानुयोग में देखते हैं और अन्यत्र भी बातें देखते हैं कि अन्य किसी संप्रदाय में जन्मता है और उसको यह मार्ग हाथ में आता है। गुरुदेवश्री को समयसार की प्राप्ति हुयी। आप कहां से आये थे यहां पर ? जन्म कहीं अन्य लिया और फिर पुरुषार्थ से अपना मार्ग मिल गया न ? जिसको जहां अंदर से रुचि जागृत होती है, उसने भले किसी भी कौम में जन्म लिया हो, उसको तो इस मार्ग की अवश्य प्राप्ति हो जाती है। यानी निमित्तों के लिये हमें कहीं रुकना नहीं पड़ता है यह बात तो मूल में है। तो यहां भी जो हम देख रहे हैं, यह जीव और कर्मों की यहां बात चलेगी। अभी उसीकी बात अपनी शुरू हो गयी यहां से। ये जो कर्म और जो जीव हैं, वे सहजरूप से बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। जैसे सोना जो पृथ्वी में मिलता है। कैसे मिलता है ? चौबीस कॅरट कि तेइस कॅरट का ? वैसा नहीं मिलता है ! वह तो खदान में मिलता है; मिट्टी से मिली-जुली अवस्था में, जिसको पाषाण कहते हैं, सुवर्णपाषाण ! वह तो सुवर्णपाषाण के रूप में पाया जाता है फिर भी उसमें तो पाषाण यानी मिट्टी अलग है और सुवर्ण अलग है। अलग-अलग है फिर भी मिली-जुली अवस्था में पाया जाता है और फिर उस पर जो कोई प्रोसेस करके उसको शुद्ध किया जाता है।

ऐसे ही जीव और कर्म अनादि से बंधी हुयी अवस्था में ही हैं। किसीने उनका बंध नहीं किया है। ऐसे ही नॅचरली वे पाये जाते हैं। अब क्या होता है हर समय ? कि जीव के जो कोई परिणाम चल रहे हैं, मिथ्यात्व है, राग है, द्वेष है - उसके कारण उसके प्रदेशों में जो कोई अनंतानंत कार्माणवर्गणा पड़ी हैं वहां पर, वे अपनी स्वयं की योग्यता से कर्मरूप परिणमित होती हैं। कोई वहां करनेवाला नहीं है, कोई अपने पाप-पुण्य का लिखनेवाला कोई है नहीं, ऐसी तो मान्यता जैनियों में है ही नहीं किसीकी। फिर भी वहां जो कार्माणवर्गणा है, वह अपनी स्वयं की योग्यता से कर्मरूप होती है। वह क्यों होती है ? उसमें जीव का क्या निमित्त है ? जीव में ऐसे क्या होता है ? यह जो नयी कार्माणवर्गणा, कर्मरूप होती हैं उसको हम कहेंगे बंध हुआ। इस बंध को क्या कहते हैं ? वह जीव के साथ बंधा। कैसा बंधा ? उसका एक नाम है, संश्लेष संबंध हुआ। क्या कहा ? *श्रोता: संश्लेष।* संश्लेष। संश्लेष संबंध का अर्थ क्या है ? ऐसा संबंध कि वह जल्दी नहीं छूटता है। कैसा ? जैसे हमने गहने पहने, वस्त्र पहने हैं। तो हम क्या कर

सकते हैं ? चेंज कर सकते हैं हम; घर पर रखें, दूसरे पहनकर आ गये। हमको नहीं चाहिये तो हमने उतारकर छोड़ दिये उनको। तो क्या ऐसे कर्म को छोड़ सकते हैं ? *श्रोता: नहीं।* आप कहेंगे देह को भी साथ में लाते हैं न ! हम आये हैं तो देह को भी लाये हैं साथ में। देह भी है हमारे साथ जन्म से। तो कहते हैं वह भी एक भव के लिये है। देह भी यहां छोड़कर चले जाते हैं। क्या लेकर जाते हैं साथ में ? *श्रोता: कर्म।* कर्म, हां। तेजसशरीर और कार्माणशरीर दोनों, क्योंकि वे ऐसे जीव के साथ बंधे हैं, वे भवों-भवों तक चलते हैं। उसमें क्या होता है ? नये-नये कर्म परमाणु आकर मिलते रहते हैं और जिनकी स्थिति पूरी हुयी वे निकल जाते हैं। जब कर्म बंधते हैं तभी उसमें यह निश्चित होता है, मैं इस जीव को क्या फल दूंगा। ऐसी वहां कोई इच्छा तो है नहीं उसकी, परंतु उसी समय निश्चित होता है कि वह इस जीव के साथ कितने समय तक बंधा हुआ रहेगा। उसको कहेंगे उसकी स्थिति। वह कैसा फल देगा ? उसको कहेंगे अनुभाग। यह तभी निश्चित होता है और फिर उसकी स्थिति पूरी होने पर कर्म निकल जाता है। यानी कर्मरूप था वह अकर्मरूप होता है। अन्य पुद्गल वर्गणारूप परिणमन हो जाता है। पहले कार्माणवर्गणा से कर्मरूप हुआ था, अब कर्म से अकर्म होता है।

भले वहां पर ही पड़ा रहे, अभी उसका जीव के साथ कोई निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं बनता। जिसको हम कर्म का उदय कहते हैं, वह कर्म का उदय क्या है ? जब वह कर्म अकर्मरूप होने लगता है, उसी एक समय में, उसका जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनना है, जिसको हम उदय कहते हैं। उदय होना यानी अपनी स्थिति पूरी होने के बाद कर्म का जो फल मिलता है, उसको कहेंगे कर्म का उदय। कब मिलता है ? स्थिति पूरी होने पर। अब अंदर पड़े-पड़े क्या होता है ? उसका जीव को कितना लाभ मिलता है या कुछ हानि होती है ? कुछ नहीं होती है। जीव ने कर्म बंधने के समय तो उसको कुछ उसका एहसास नहीं हो रहा है, कोई वजन नहीं बढ़ रहा है। फिर वह सत्ता में पड़ा है, तब भी कुछ उसको पता नहीं उसका। फल कब मिलता है ? जब उदय में आता है। तो अभी जीव मजे से पाप कर रहा है। क्या कर रहा है ? मजे से पाप कर रहा है। यानी पाप करने में उसको मजा आ रहा है। फिर भी जो पाप का बंध कर रहा है, उसका फल अभी नहीं मिल रहा है उसको। अभी किसका फल मिल

रहा है ? *श्रोता: पूर्व कर्म का।* पूर्व कर्म का। भले वह पुण्यरूप हो या पापरूप हो।

अभी जो उसके उदय आ रहा है पूर्व कर्म का और अभी नया जो पाप बांध रहा है, यदि उसका उसे पता होता...। व्यापार में हम बहुत कुशल हैं। हां, यह धंधा नफा में चल रहा है कि टोटे में, वह बराबर उसको पता चल रहा है न ! फ़ायदा हो रहा है कि नुकसान हो रहा है इसका उसे बराबर पता है और हर साल तो हिसाब भी करता है, वह भी दो प्रकार के ! हां, एक दिखाने के लिये, एक अपने लिये। क्यों ? करते हैं न ! यहां तो ऐसा कोई हिसाब ही नहीं। अभी मार्च एंडिंग आया न ! तो हमारे परिणामों का कहां हिसाब चल रहा है यहां पर ? यहां जो पूर्व कर्म बांधकर ले आया है तो उसके उदय में हम कहते हैं न ! हमारे संयोग बहुत अच्छे हैं। देखो, हमने पूर्व में पुण्य किये हैं न ! हमारे संयोग कितने अच्छे हैं। हमें सब अनुकूलता है। बच्चे अच्छी तरह मानते हैं हमारे। पैसों की कोई कमी नहीं। अमे सुखी छिअे, यह गुजराती में कहते हैं। आपने सुना है ? नहीं। कैसे सुखी हो ? हमारे पास घर है, गाड़ी है और बच्चे हैं।

फिर उसके बाद अमे सुखी छिअे उसके बाद एक-एक लिस्ट बाहर आती है। अभी यह कमर का दर्द बहुत है, मम्मीजी की तबियत अच्छी नहीं है या हमारे बच्चे ऐसा है वह वैसा है। हम सुखी हैं, क्यों ? हमारे पूर्व पुण्य का उदय चल रहा है इसलिये उसने क्या माना ? क्यों उदय चल रहा है ? अरे हमने पूर्व में अच्छे कर्म बांधे थे न ! तो हम भोग रहे हैं। तो उसने क्या माना ? बंध अच्छा माना कि बुरा माना ? *श्रोता: अच्छा माना।* हां, जब बंध को अच्छा मान रहा है वह मोक्ष को अच्छा नहीं मानेगा। उसके अभिप्राय में पड़ा है यह और कहता है हमें तो सम्यग्दर्शन नहीं होता है, क्या ? यह तो अभिप्राय की भूल तो वैसी की वैसी है। हम तो अच्छे संयोगों में बहुत रचे-पचे हैं, अच्छा लग रहा है हमें और संयोग बुरे होते तो हम कोसते रहते हैं। अरे क्या करें ? हमारे कर्म का उदय ऐसा बुरा चल रहा है ! हम कैसे-कैसे प्रतिकूल प्रसंगों में अटक गये हैं।

अरे ! संयोग अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, आप तो भिन्न हो न उनसे ? हमारी सारी ज़िन्दगी किसमें चली जाती है ? संयोगों को सुधारने में, जिनसे हमें भिन्न जानना है। कर्मों से भी हमें भिन्न पहचानना है अपने को, संयोगों से भी भिन्न पहचानना है। तो

पहले-पहले क्या करने लगता है ? संयोगों को अनुकूल बनाओ फिर मैं उससे भिन्न हूं यह जानो। कैसी अटपटी बात है ! अरे प्रतिकूलता है तो अच्छा है न ! प्रतिकूल हो तो उससे भिन्नता जानने में और सुविधा है। उसमें हमारा लक्ष नहीं जाता। हम तो पहले उसे अनुकूल बनाना चाहते हैं। किसको ? *श्रोता: संयोगों को।* संयोगों को। तो वे कैसे पलटेंगे ? कर्मों के कारण बनेंगे। तो क्या करना पड़ेगा अभी ? कर्मों के गीत गायेंगे ? तो यह कहते हैं कि कर्म का बंध जानने से भी कुछ नहीं होगा। अष्टपाहुड़ में बात आयी थी न परसों ? बंध को जान लिया; किसीने जान लिया, मैं कैसा बंधा हूं ? रस्सी से बंधा हूं, साकल से बंधा हूं, बहुत अच्छी तरह जान लिया तो छूटेगा कि नहीं छूटेगा ? जानने से कुछ नहीं छूटेगा। यह बंध से छुटकारा पाने का क्या रास्ता है ? समयसार में मिलता है, गुरुदेवश्री बारंबार बता रहे हैं। यहां भी हम जानकर, उससे भेदज्ञान करेंगे तो हमें उसमें से रास्ता मिलनेवाला है। यहां भी ऐसे हम बारंबार भेदज्ञान की बातें उठायेंगे क्योंकि यहां तो करणानुयोग के द्वारा भी हमें वीतरागता की प्राप्ति करनी है।

चारों अनुयोगों के द्वारा वीतरागता की प्राप्ति होती है। भगवान को दिव्यध्वनि में कहने के लिये कुछ नहीं था इसलिये करणानुयोग बताया ? क्या हुआ ? दिव्यध्वनि में चारों अनुयोग आयेंगे कि नहीं आयेंगे ? गुरुदेवश्री ने भी करणानुयोग पर प्रवचन किये थे, महिलायें बताती हैं न ! ब्रह्मचारी बहनें ! सोनगढ़ में धवला के आठ भागों पर उनके प्रवचन हुये थे जब रेकॉर्डिंग नहीं चलती थी। आपको पता है ? दो बार हुये थे। हां, जीतूभाई और बहुत सारी ब्रह्मचारी बहनें बताती भी हैं। हमने तो सुना नहीं न, उन्हींके मुंह से सुना है। जयधवला का भी उनका अभ्यास था और उन्होंने करणानुयोग के जितने उद्धरण दिये हैं, हमारे सभी ग्रंथों के पीछे मैंने लिखकर रखें हैं। गुरुदेवश्री ने बताये हुये करणानुयोग के सूक्ष्म सिद्धान्त से पता चलता है कि उनका कितना अभ्यास था ! कहीं चूक भी नहीं है करणानुयोग के बारे में उनकी। भले हमें तो समयसार मिला उनसे, फिर भी उनका अपना करणानुयोग का अभ्यास बहुत था। उस अभ्यास की दृढ़ता बिना गुरुदेवश्री इतनी सहजता से करणानुयोग संबंधी सूक्ष्म कथन नहीं करते। करणानुयोग के अभ्यास से द्रव्यानुयोग एकदम सरल और दृढ़ हो जाता है।

हम यहां देख रहें हैं कि जो कर्म सत्ता में पड़ा है, उससे कुछ फ़ायदा-टोटा नहीं

होता है। बंध के समय भी उसका हमें कुछ एहसास नहीं होता है कि कितना नुकसान कर रहा है या कितना फ़ायदा कर रहा है ? उसका उदय होता है, तब जो कुछ उसका निमित्त बनता है। केवल निमित्त बनता है ऐसा नहीं। जीव फिर उसको अपनेरूप मानने लगता है तो उसको उसमें दुःख होता रहता है। कुछ संयोग अच्छे रहे तो उसमें सुख मानता है और अपने को उतने मात्र मानता रहता है। इसलिये उसका जो कर्मबंध का सायकल - दुष्टचक्र अनादि से चला आ रहा है, वह चलता ही रहा है। क्योंकि अभी हम मनुष्य हैं। मनुष्यों में तो लगातार ज्यादा नहीं रह सकते, अभी-अभी हमने निश्चित किया। तो कहां भटककर आये और कहां-कहां जाकर आये हैं। हेड क्वार्टर तो अपना निगोद है ही है। कहीं से भूल भटककर वहीं चले जाते हैं क्योंकि वहां रहने का काल अनंतकाल है। वहां से हम आये हैं और हमें सभी सुविधायें उपलब्ध हैं, शास्त्र स्वाध्याय आदि की। तो इसमें हमें झट से झट अपना कल्याण करना चाहिये। हमें तो अन्य की ही महत्ता आती है न ! किसकी ? करोड़ों की, अब्जों की। जिसको यह संख्या में बहुत अच्छा लगता है न उसको तो असंख्यात और अनंत पढ़ना चाहिये। इसमें तो सारी बातें हम असंख्यात की और अनंतों की करते हैं। हमारे यहां अब्जों और करोड़ों कुछ चलते ही नहीं है, करणानुयोग में। हम तो अनंतों में डील करते हैं।

अभी हम देख रहे हैं कि जैसे यह सुवर्णपाषाण है उसमें सोना और मिट्टी मिली हुयी अवस्था में पाये जाते हैं, ऐसे ही जीव और कर्म अनादि से ही बंधे हुये हैं। उसको किसीने बांधा नहीं है। तो बंधे हुये हैं तो क्या होगा ? हर समय जिनके अभी काल पूरा हुआ है रहने का, मेरी भाषा में कॉन्ट्रॅक्ट पूरा हुआ है जिनका; उनका क्या होगा ? वे कर्म परमाणु छूटकर अन्य पुद्गल अवस्थारूप हो जायेंगे और उसी समय नये-नये बंधेंगे। हर समय हो रहा है। जैसे हमारे पास कोई पानी का हौद है बड़ा। उसमें ऊपर की ओर से पांच नलों से पानी अंदर आ रहा है और नीचे के लेव्हल में पांच नल लगे हैं उसमें से पानी बाहर जा रहा है। तो वह हौद कब खाली हो जायेगा ? *श्रोता: कभी नहीं होगा।* कभी नहीं होगा क्योंकि नया-नया आ रहा है और पहलेवाला नीचे से जा रहा है, बह रहा है। ऐसे ही हमारा हो रहा है। कब से ? अनादि से। क्योंकि हम हर समय अनंत परमाणुओं को बांधते हैं। वे कितने बांधते हैं ? वह सारी टोटल आ जायेगी अभी।

हर समय हम अनंत परमाणुओं को बांधते हैं। वे सत्ता में, स्टॉक में कुछ काल तक रहते हैं और अपना-अपना काल पूरा होने पर जिसको हम उदय कहते हैं, उदय में आकर निकल जाते हैं। जिसको सामान्य ऑर्डिनरि निर्जरा भी कहते हैं, वह मोक्षमार्गवाली निर्जरा नहीं है ! कर्म बंधते हैं, सत्ता में रहते हैं और निकल जाते हैं। जो नये-नये आते हैं, बंधते हैं उसको कहेंगे बंध। जो सत्ता में रहते हैं उसको कहेंगे सत्त्व या सत्ता और जो हर समय निकल जाते हैं उसको कहेंगे उदय। कर्मों की ये तीन मुख्य अवस्थायें देखी न हमने ? नया बंध हो रहा है, फिर बंधने के बाद कर्म सत्ता में पड़ा रहता है और जब उदय के योग्य होता है तब उदय आकर खिर जाता है, उसको उदय कहेंगे। अभी हम कर्मों की केवल इन तीन अवस्थाओं पर गौर करेंगे। बंध होता है, सत्ता में रहता है और फिर वह निकल जाता है। तो यह जो बंध रहे हैं न ! कर्म परमाणु बंध रहे हैं यानी कार्माणवर्गणा कर्मरूप हो रही है। अभी तो हमने कर्मों के भेदों को यहां देखा नहीं है, देखेंगे हम।

इतनी बात सुन लो कि वे आठ कर्मरूप होते हैं। इन कर्मों का जो अलग-अलग प्रकृतियोंरूप हो जाना, वे क्यों होते हैं, कैसे होते हैं उसकी चर्चा करेंगे। उसको कहेंगे प्रकृतिबंध। कितनी संख्या में परमाणु आते हैं ? नंबर ऑफ़ परमाणु, जो एक समय में बंधते हैं, उसको कहेंगे प्रदेशबंध; परमाणु को प्रदेश कहा। जब बंधते हैं तभी यह निश्चित होता है कि वह कर्म कितने काल तक जीव के साथ रहेगा- उसको कहेंगे स्थितिबंध। कर्मों की स्थिति बंधती है। अब वे कितने अनुभागवाले हैं - कितने तीव्र यानी कितनी इन्टेन्सिटीवाले हैं उसको कहेंगे अनुभागबंध।

कर्म इन चार प्रकार से बंधते हैं, चार ही प्रकार से वे सत्ता में विद्यमान रहते हैं और जब उदय में आयेंगे तभी प्रकृति का उदय, नंबर ऑफ़ परमाणु- प्रदेशों का उदय, स्थिति यानी एक समयवाला ही उदय होता है उसको स्थिति का उदय कहते हैं और अनुभाग यानी कितना फल देता है उसको अनुभाग का उदय कहते हैं। इसकी चर्चा हम आगामी लेक्चर में करेंगे, यहां हम रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२. कर्मबंध के प्रकार एवं कारण

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य रचित गोम्मटसार कर्मकाण्ड की यह जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका है, उसके आधार से हम यहां स्वाध्याय कर रहे हैं। हमने देखा था कि जीव और कर्म अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं; किसीने उनका बंध कराया नहीं है। यह बात सहज ही प्राकृतिक ऐसी ही पायी जाती है। यह जो अनादि का संबंध पाया जाता है उसमें जीवद्रव्य तो स्वतंत्र है और कर्म भी स्वतंत्र पुद्गलद्रव्य है। दोनों ही अपने-अपने स्वभावरूप से या विभावरूप से, स्वयं अपनी योग्यता से परिणमन करते हैं। हमें उनकी भिन्नता को पहचानना है।

इसमें जो जीव है, कर्मों से बंधा हुआ है; फिर भी जीवद्रव्य की हम बात करते हैं तो जीव कैसा है ? तो वह एक है, अरूपी है, ज्ञानादि अनंत गुणों का पिंड है, असंख्यातप्रदेशी है, संकोच-विस्तारवाला है। परंतु संकोच-विस्तार होना जीव का स्वभाव नहीं है। सिद्धों में तो संकोच-विस्तार नहीं हो रहा है। परंतु अभी संसार अवस्था में प्रदेशों का संकोच और विस्तार पाया जाता है। यहां जीव एक है और कर्म परमाणु अनंतानंत हैं। उसमें भी एक-एक परमाणु स्वतंत्र द्रव्य है और प्रत्येक द्रव्य की इतनी स्वतंत्रता है कि वह स्वयं अपने से, अपनी योग्यता से, यथासमय अपनी विशिष्ट पर्यायरूप से परिणमित होता है। यहां तो कर्मों का ज्ञान कराया जाता है। निमित्तों से कार्य नहीं होता है फिर भी ज्ञान की ऐसी विशेषता है, वह स्व को भी जानता है, पर को भी जानता है, पूरे विश्व को जानता है, निमित्तों को भी जानता है। यहां निमित्तों से कार्य नहीं होता फिर भी निमित्त होता अवश्य है और विशिष्ट कार्य में उसके उचित निमित्त भी पाया जाता है। हमें न उसको हटाना है न जुटाना है। कुछ नहीं करना है हमें। सिर्फ उसका सही ज्ञान करना है। निमित्त से कार्य नहीं होता है ऐसी श्रद्धा करनी है।

यहां जो हम कर्मों की बातें देख रहे हैं कर्म तो जड़ है, उसमें कुछ जानने की शक्ति नहीं है। उसको कुछ ऐसा पता नहीं है कि इस जीव को यह अच्छा फल दूं कि इसको बुरा फल दूं। हम तो राग-द्वेषवश सोचेंगे भी कि इसको हटाऊं, इसको जुटाऊं। परंतु कर्म में तो ऐसी कोई बात नहीं है। कर्म में तो जड़ परमाणु हैं। उनको क्या पता

कि मैं किस कर्मरूप से परिणमित हो जाऊं और जीव को कैसा फल दूं ? अभी यह पुण्य बहुत हुआ है तो इसको अच्छा फल दूं, इसको बुरा फल दूं, ऐसा कुछ होता ही नहीं है। जीव ही स्वयं अपने-अपने राग-द्वेषरूप परिणमित होता है, यह उसका अपना अज्ञान है। तो इस अज्ञान को दूर करने का मार्ग है सही ज्ञान करना। जिनेन्द्र भगवान ने जो हमें चारों अनुयोगों के द्वारा यहां उपदेश दिया है, उसमें से करणानुयोग के द्वारा हमारा यहां स्वाध्याय चल रहा है। चारों ही अनुयोग उतने ही कार्यकारी हैं। ऐसा नहीं समझना कि हम यहां करणानुयोग का अभ्यास कर रहे हैं तो द्रव्यानुयोग कुछ काम का नहीं है, ऐसा नहीं है। द्रव्यानुयोग का अभ्यास कर रहे हैं तो अन्य अनुयोग कार्यकारी नहीं है ऐसा भी नहीं है। चारों ही अनुयोगों में से वीतरागता कैसे हासिल करना, इसकी ट्रिक, इसका मर्म हमें समझ में आये तो हमें लाभ ही लाभ है।

यहां हम कर्मों की बात देख रहे थे कि हर समय जीव जो कुछ परिणाम करता है तो उसकी सत्ता में उसके प्रदेशों में जो पुराने कर्म परमाणु बंधे हुये पाये जाते हैं उनका उदय पाया जाता है। अभी यह बंध और उदय थोड़ी-थोड़ी चर्चा चलेगी अपनी। तो कर्म के उदय के कारण वहां कैसे निमित्त बनता है और कौनसा बंध किस कारण होता है उसकी चर्चा अभी हम करने जा रहे हैं। हमने देखा था कि हर समय जीव को चार प्रकार का बंध होता है। बंध तो एक ही होता है, उसको हम चार प्रकार से समझते हैं। कर्म का बंध हुआ ऐसा जब कहते हैं, तो कौनसी प्रकृति बंधी ? उसको कहेंगे प्रकृतिबंध। हमने अभी प्रकृतियों के नाम नहीं देखे हैं, देखेंगे। तो जो-जो कर्मप्रकृतियां बंधती हैं, उसको कहेंगे प्रकृतिबंध। प्रत्येक कर्म के जितने नंबर ऑफ़ परमाणु बंधते हैं - संख्या में, उसको कहेंगे प्रदेशबंध। प्रत्येक परमाणु कितने काल बाद उदय में आयेगा वह उसकी स्थिति कहलाती है, उसको कहेंगे स्थितिबंध और उसमें फल देने की जो शक्ति है, किसीमें कम है, किसीमें अधिक है तो उसको कहेंगे अनुभागबंध। बंधने के समय ही यह सब निश्चित होता है।

यह ज़रूरी नहीं है कि जैसा बंधा है वैसा ही उदय में आवे। क्या कहा ? जैसा बंधा है वैसा ही उदय में आवे ऐसा कोई ज़रूरी नहीं है क्योंकि बंधने के बाद कर्मों में बहुत उथल-पुथल होती रहती हैं। यह हमें पता नहीं है; हमें तो बंध का भी पता नहीं है।

तो यह बंध कैसे होता है, क्यों होता है और उसमें ये जो आठों ही कर्मों का बंध हो रहा है और प्रत्येक का अपना-अपना काल पूरा होने पर उसका उदय भी होता रहता है। तो यह उदय भी चल रहा है, नया बंध भी चल रहा है। फिर उदय, नया बंध - उदय, नया बंध यह तो चलता ही रहा है। एक समय भी फुरसत नहीं है; हर समय नया-नया बंध हो रहा है और हर समय- हर समय की बात है। मरने के बाद भी दूसरा भव धारण करता है, विग्रहगति में एक, दो या तीन समय चले जायेंगे तो वहां भी कर्म का बंधना और खिरना चल ही रहा है। तो इसमें से छूटने का कोई तरीका तो होगा कि नहीं होगा ? हम मोक्ष के लिये और छूटने के लिये उपाय कर रहे हैं तो क्या कर रहे हैं यह सोचने का इस समय अवसर आया है; अभी समय आया है कि क्या जो हम अभी तक उपाय कर रहे हैं, वह सही है कि नहीं है, क्यों? क्योंकि मोक्ष के लिये हमने जो उपाय किये हैं या अपनी कल्पना से मान लिये या किसीसे सुनकर मान लिये, तो ये सही हैं कि नहीं हैं ? भगवान ने क्या बताया है और हम क्या सोच रहे हैं ? इसमें क्या-क्या बातें होती हैं ? कर्म के बंध से छूटने का मार्ग क्या है और कैसे छूटा जा सकता है, इसकी हम यहां चर्चा करेंगे। क्योंकि छूटने का कुछ न कुछ मार्ग तो होना ही चाहिये।

हमने वह मार्ग क्या माना था ? कुछ पूजा-पाठ करेंगे, दया-दान करेंगे, यात्रा करेंगे तो हमारा अच्छा होगा, मोक्ष के प्रति हम थोड़े अग्रसर हो जायेंगे ऐसा लगता था। हमारे लगने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। उसका जो सही उपाय है और वह एक मात्र, एक ही उपाय होता है; कोई दो-चार-पांच उपाय नहीं होते कि कोई इस मार्ग से चढ़े, कोई उस मार्ग से चढ़े; ऐसी कोई बात नहीं होती। भेदज्ञान के बिना, अपना स्वरूप भिन्न जाने बिना यह बात हासिल नहीं होती है। तो यह प्राप्त करने के लिये, इस बंध से छुटकारा हमें प्राप्त करना है तो उसका सही ज्ञान हम यहां करेंगे। इसमें से कितनी ही बातें हमने बहुत बार यहां स्वाध्याय में ली थी, पंचलब्धि और करणानुयोग पुस्तक में से। फिर भी जो नये लोग हैं, जिनका अभी इसका अभ्यास नहीं हुआ है, जिन्होंने नहीं सुना है, ऐसे लोगों को साथ लेकर हम चल रहे हैं। इसलिये कुछ रिपिटिशन होगी तो अच्छा होगा न ? हमारा पक्का हो ही जायेगा। आपका नहीं तो मेरा तो पक्का हो जायेगा। यह अभी हम प्रकृति किसको कहते हैं देखेंगे। ये सारी ही बातें

करणानुयोग यानी यह जो कर्मकाण्ड है उसके आधार से ही चल रही हैं। यहां तो प्रकृति कहो, शील कहो, स्वभाव कहो, एक ही बात है। हम गाथा भी पढ़ेंगे उसकी।

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

यह तो पहले हमने देखा था कि कर्म और जीव अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं और उसको यहां कनकपत्थर यानी सुवर्णपत्थर की उपमा देकर समझाया है। यह तो हमने बात की थी। अब कोई प्रश्न पूछता है कि जीव तो अमूर्तिक है और पुद्गल तो मूर्तिक है, तो मूर्तिक और अमूर्तिक का बंध कैसे हो सकता है ? यदि कोई नया बंध होगा तो नहीं हो सकता था परंतु यह जीव अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाया जाता है। जो अनादि से है उसमें अपना कोई वहां तर्क नहीं चलता है। देखिये वस्तु के स्वभाव में तर्क नहीं चलता क्योंकि हमें आदत है प्रत्येक में क्यों कहकर तर्क लगाने की। एक बात है कि जो स्वभाव है, वह क्यों है इसका जवाब देने के लिये वस्तुस्वभाव कोई बाध्य नहीं है। दूसरी बात, सर्वज्ञ भगवान की वाणी जो हम तक चली आयी है, गणधरों ने जिसकी रचना की है और आचार्यों की परंपरा से आज तक आ गयी है और जो मूल सूत्रों में उपलब्ध है, वह प्रमाण है; सौ टक्का सही है; उसको सिद्ध करने के लिये अन्य किसी प्रमाण की ज़रूरत नहीं है।

यहां देवलाली में सूर्य कौनसी दिशा में उगता है ? कहां गये अमृतभाई ? *श्रोता: पूर्व दिशा में उगता है।* पूर्व दिशा में उगता है। क्यों ? अरे ! जहां उगता है उसीको तो हम पूर्व कहते हैं। तो यह सूर्य उगने के बाद कौनसे टॉर्च से देखते हैं कि उगा कि नहीं उगा ? *श्रोता: स्वयं प्रकाशित है।* हां, स्वयं प्रकाशित है, उसका प्रकाश देखने के लिये हमें दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। भगवान की वाणी स्वयं प्रमाण है और उसको आज के सायन्स ने प्रूव्ह किया है कि नहीं किया; ये हमारे विशेषज्ञ, वैज्ञानिक क्या कहते हैं; विज्ञान ने सिद्ध किया तो हम मानेंगे, नहीं तो नहीं मानेंगे; ऐसे कहनेवाले भी बहुत मिलते हैं। वैज्ञानिक यानी सायंटिस्ट हम किसको कहते हैं ? मेरी भाषा, मेरी परिभाषा है - जिसकी खोज कभी पूरी नहीं होती उसको कहेंगे सायंटिस्ट। अरे रिसर्च

कर रहे हैं, बना नहीं रहे हैं। फाइंड आउट कर रहे हैं, ढूंढ़ रहे हैं, उनको जो मालूम नहीं है और सर्वज्ञ किसे कहते हैं ? जिनको अभी ढूंढ़ने के लिये कुछ बाकी नहीं रहा। अनादि से अनंतकाल तक की सभी बातें वे जानते हैं। अरे ! सायंटिस्ट क्या ढूंढ़नेवाले हैं वह भी उन्होंने अनादिकाल पहले से जाना है।

सर्वज्ञ की बातें हम तभी मानेंगे जब सायन्स उसको प्रूव्ह करेगा, यह बात बिलकुल गले नहीं उतरती। वह तो बिलकुल बच्चों जैसी बातें हैं। क्योंकि हम अपना ज्ञान, हमारा जितना थोड़ासा जो क्षयोपशमज्ञान ज्ञान है, वह भी आधा-अधूरा है और वह भी जो कुछ जानते हैं अत्यंत अल्प और परोक्ष जानते हैं। जिसको हम विश्व कहते हैं, छह द्रव्य कहते हैं उनके बारे में तो कुछ नहीं जानते, पुद्गल के बारे में थोड़ा कुछ जानते हैं, वैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किये और कुछ उन्हें लगा कि ऐसा लगता है, उनमें भी थिअरीज होती हैं, फॅक्टस् नहीं होते। मालूम है, सायंटिस्ट जो हैं वे थिअरीज पुट अप करते हैं। यहां होगा कोई सायंटिस्ट ? हां। यह तो वस्तुस्थिति अलग बात है और थिअरीज यानी यह ऐसा हो सकता है-ऐसा हो सकता है, यह कुछ वे सामने प्रस्तुत करते हैं कि ऐसा हो सकता है। हमें तो उसीको अंगीकार करना है जो सर्वज्ञ भगवान ने स्वयं केवलज्ञान के द्वारा जानकर बतायी हुयी बातें हैं। उसके लिये हमें अन्य कुछ प्रूफ, दलील, सिद्ध करने के लिये कोई हेतु ढूंढ़ने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि भगवान की वाणी स्वयं में ही प्रमाण है। हमने बहुत बार सर्वज्ञ का स्वरूप भी अन्य शास्त्रों के आधार से यहां देखा है। अब उसकी चर्चा नहीं करते हुये हम कर्म की बात देखेंगे।

एक बात यहां मूल गाथा में लिखी है कि जीव का भी अस्तित्व स्वयंसिद्ध है और कर्म का भी अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। कैसे स्वयंसिद्ध है ? क्योंकि मैं हूं यह बात हर जीव को पता है। मान्यता जो है, अहम् ऐसी मान्यता जीवद्रव्य के बिना नहीं हो सकती। आप कहेंगे कितने ही जीव अहम् को नहीं जान रहे हैं। क्या एकेन्द्रियों को नहीं पता है कि मुझे डर लग रहा है, मुझे कुछ भूख लग रही है, मुझे जो कुछ हो रहा है ? द्वीन्द्रिय जीव तो रेंगते हुये चले भी जाते हैं, उनको भी भय लगता है। तो मुझे भय लग रहा है ऐसे उनको पता है कि नहीं पता ? मैं कौन हूं इसके बारे में उनके भ्रम चल रहा है। क्या कहा ? मैं कौन हूं इसमें बहुत भ्रम चल रहा है परतुं मैं हूं यह मानने का हर एक

जीव का स्वभाव है। यह एकेन्द्रिय हो या पंचेन्द्रिय हो, मैं हूं इस बारे में उसे कोई संदेह नहीं है। जहां मैं हूं ऐसी मान्यता चल रही है वह जीवद्रव्य है। यहां जानने की नहीं, मानने की बात उठायी है, मूल ग्रंथ में देखो। अहम् इत्यादि मानना जीव बिना नाही सम्भवे है। ग्रंथ में मूल गाथा में लिखा है **तयोरस्तित्वं स्वयं सिद्धम्** दोनों का, जीव का भी और कर्म का भी। जीव की बात हो गयी तो कर्म का अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है ?

कोई दरिद्री है, कोई धनवान है। कोई धनवान है देखते-देखते अभी एक समय में कोई भूकंप आता है, कुछ अन्य बात होती है तो वह करोड़पति का रोड़पति हो जाता है। कोई बहुत हेल्दी, निरोगी है तो एक क्षण में उसके कुछ बहुत भयंकर बिमारी हो जाती है, पॅरॅलिसिस हो जाता है। देखते हैं न हम ये बातें ? एक ही घर के अलग-अलग जो सदस्य हैं, उनमें भी उनके अलग-अलग संयोग बनते हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि अभी तो इस भव में तो समान चल रहा है, फिर भी उनमें इतना डिफरन्स क्यों ? दिखने में कहो या संयोगों में इतनी विविधता क्यों दिखायी देती है ? क्योंकि वहां कर्म का अस्तित्व है। यह बात ही सिद्ध करती है कि वहां कर्म का अस्तित्व है। तो इन दोनों का ही अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। दोनों ही भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं फिर भी दोनों ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं और दोनों का ही एक दूसरे से निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। इसीलिये जीव भ्रम से मान लेता है कि यह जो कोई अवस्था बन रही है, वह मेरी है। वह कैसी-कैसी होती है उसकी बात हम देखेंगे अभी।

यहां जो हमने चार प्रकार के बंध के नाम लिखे हैं, यहां चार्ट में लिखें हैं न ! चार प्रकार के बंध हमने देखे, नया बंध जो होता है उसकी बात है यहां पर। नया बंध यानी हर समय जो बंध हो रहा है, हमने चार प्रकार देखे थे न ! कौन-कौनसे ? *श्रोता: प्रकृतिबंध।* प्रकृतिबंध। *श्रोता: प्रदेशबंध।* प्रदेशबंध। *श्रोता: स्थितिबंध।* स्थितिबंध और अनुभागबंध। प्रश्न है यह क्यों होता है ? बंध होता है तो क्यों होता है ? आप कहेंगे जीव के परिणाम से होता है। तो जीव के परिणाम क्यों होते हैं ? राग-द्वेष क्यों होते हैं ? सिद्धों के नहीं होते, हमें क्यों होते हैं ? *श्रोता: स्वभाव को नहीं जाना इसलिये।* हां, स्वभाव को नहीं जाना, परंतु क्यों नहीं जाना ? *श्रोता: मोहोदय है।* हां, वहां भी पूर्व कर्मोदय निमित्त है।

कर्मबंध के कारण		
नया बंध	**जीव के परिणाम**	**पूर्व कर्मोदय**
प्रकृतिबंध प्रदेशबंध स्थितिबंध अनुभागबंध	योग	शरीर नामकर्म का उदय
	कषाय (मि. अ. प्र. क.)	मोहनीयकर्म का उदय

देखो, यहां तीन बातें ॲट अ टाइम हो रही हैं। तीन कौनसी बातें हो रही हैं ? नया बंध हो रहा है, उसी समय जीव के कुछ परिणाम हो रहे हैं और उसी समय... *श्रोता: पूर्व कर्म का उदय चल रहा है।* पूर्व कर्म का उदय चल रहा है। कौनसी तीन बातें ? नया बंध, *श्रोता: जीव के परिणाम।* जीव के परिणाम और पूर्व कर्म का उदय। इस कर्म की बात नहीं है, हां। अभी इसमें हम निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखेंगे। ये क्यों होते हैं ? तो प्रत्येक का अपने-अपने स्वयं के कारण से विभावरूप परिणमन हो रहा है। फिर भी निमित्त की भाषा में बोलना है। अभी हम भाषा निमित्त की जरूर कहेंगे। वह निमित्त-नैमित्तिक संबंध है यह समझना अभी आपका कर्तव्य है। हम हर बार उसको नहीं दोहरायेंगे। नहीं भी दोहरायेंगे तो आप समझ लेना कि यहां निमित्त-नैमित्तिक की चर्चा चल रही है।

तीन बातें हमने देखी, नया बंध हो रहा है। क्यों हो रहा है ? जीव मोह-राग-द्वेष कर रहा है। क्यों कर रहा है ? पुराने कर्मों का उदय हो रहा है। यह आस्रव किसको कहते हैं ? *श्रोता: कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं।* कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं ? हम जायेंगे कुंदकुंद आचार्य के पास, समयसार के पाठी हैं हम। समयसार लेना है न ? हां, समयसार १६४-१६५ गाथा देखेंगे हम; वहां किसको आस्रव कहा ? कुंदकुंद आचार्य ने भी और अमृतचन्द्र आचार्य ने भी। हम मूल गाथा से देखते हैं, वैसे तो सारे विद्वान यहां बैठे हैं मेरे सामने। यह तो हम सब तत्त्व की रुचि है इसलिये इकट्ठे हुये हैं। ये कोई मुझे सुनने नहीं आये हैं, जिनवाणी सुनने के लिये आये हैं। हां देखो, यहां क्या कहते हैं मूल गाथा में ? यहां कहते हैं नये कर्मों के आस्रवण का जो कारण है वह

वास्तविक आस्रव है, वह दो प्रकार का है - चेतन और अचेतन। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये जीव के परिणाम और उसके कारणभूत पुराने कर्मों का उदय ये वास्तविक आस्रव हैं। तो योग है तो क्यों होता है ? देखो, जैसे हमें मिथ्यात्व क्यों होता है ? पुराने मिथ्यात्व कर्म के उदय में मिथ्यात्व होता है। कषाय क्यों होते हैं ? पुराने चारित्रमोहनीय के उदय में; अभी हमने ये नाम सीखे नहीं हैं, सीखेंगे; पुराने चारित्रमोहनीय के उदय में कषाय होते हैं। तो योग क्यों होता है ? कौनसा पुराना हमारा कर्म है कि हमारे योग होता है ? आत्मप्रदेशों की चंचलता क्यों होती है ? जो सयोगी केवली के होती है और अयोगी के नहीं होती है ? *श्रोता: शरीर नामकर्म के उदय में।* हां, तो कहते हैं शरीर नामकर्म के उदय में आत्मप्रदेशों का कंपन होता है।

शरीर नामकर्म; अभी हमने तो नामकर्म के भेद देखे नहीं हैं, फिर भी अभी थोड़ी बात सुनेंगे न ! कुछ बातें तो पहले सुननी पड़ेगी, बाद में हमें उसका स्पष्टीकरण आयेगा। तो पांच प्रकार के शरीर नामकर्म हैं। पांच शरीर तो मालूम हैं। शरीर कौनसे हैं ? *श्रोता: औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्माण।* औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्माण। उसी नाम के नामकर्म भी हैं; औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियिकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म, तेजसशरीर नामकर्म और कार्माणशरीर नामकर्म। तो मेरा प्रश्न है यह औदारिकशरीर नामकर्म कौनसी वर्गणा से बना है ? *श्रोता: आहारवर्गणा से।* आहारवर्गणा से, सबका एक ही उत्तर है। अश्विनभाई आप तो बहुत पढ़े हो ? क्या कहते हैं निलेशभाई ? *श्रोता: कार्माणवर्गणा से।* कार्माणवर्गणा से, क्यों ? अरे ! हम नामकर्म की बात कर रहे हैं न ! औदारिकशरीर नामकर्म की बात कर रहे हैं; नामकर्म किससे बना है ? *श्रोता: कार्माणवर्गणा से।* हां, पांचों शरीर नामकर्म कार्माणवर्गणा से बने हैं और अगर हम केवल पूछेंगे औदारिकशरीर किससे बना हैं ? तो आहारवर्गणा से कह दो। ख्याल में आयी बात ?

यहां जो है नामकर्म के उदय से; कौनसे ? शरीर नाम के नामकर्म के उदय से, उसमें अंगोपांग भी लगा लेते हैं, अंगोपांग नामकर्म। तो इनसे क्या होता है कि आत्मप्रदेशों की चंचलता होती है। जैसे लोहचुंबक में लोहे को आकर्षण करने की शक्ति होती है न ! मॅग्नेटिक। ऐसे ही यहां भी योग के कारण जीव में कर्म और नोकर्म

को आकर्षण करने की शक्ति उत्पन्न होती है। देखो, पांच शरीर नामकर्म हैं; उनमें से कार्माणशरीर नामकर्म को अलग रखते हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तेजसशरीर नामकर्म के उदय से नोकर्मवर्गणा का ग्रहण होता है। यह नोकर्मवर्गणा किसको कहते हैं ? शरीर, मन, वाणी आदि के जो परमाणु हैं, श्वासोच्छ्वास, भाषा इसका जो ग्रहण होता है, तेजस का भी, इसको कहेंगे नोकर्मवर्गणा, नोकर्मशरीर। तो उन चारों का जो ग्रहण होता है उसको कहेंगे नोकर्म का ग्रहण। शरीर के परमाणुओं के ग्रहण को कहेंगे नोकर्म का ग्रहण और अकेले कर्म का ग्रहण अलग। तो इसको कर्म और नोकर्म कहा। योग से क्या होता है ? कर्म का भी ग्रहण होता है और नोकर्म का भी ग्रहण होता है। हमारे हर एक के जैसे कर्म हर समय बंध रहे हैं वैसे शरीर के भी अनंतानंत परमाणु हर समय हम ग्रहण कर रहे हैं, इसको कहते हैं नोकर्म आहार।

आपने सुना होगा जीव आहारक है कि अनाहारक है ? हमने यह बात जीवकाण्ड में पढ़ी थी। यहां आहारक कहने से नोकर्म आहार की बात है। शरीर के परमाणु यानी तेजसशरीर के और अन्य शरीर के औदारिक आदि शरीर के परमाणु जीव ग्रहण करता है, उसको कहेंगे नोकर्म का ग्रहण और कार्माण परमाणुओं का जो ग्रहण होता है, उसको कहेंगे कर्म का ग्रहण। यानी योग के कारण कर्म भी आते हैं और नोकर्म यानी शरीर के परमाणु भी आते हैं। जिस जाति के कर्म का उदय है; हमारे आपके औदारिकशरीर नामकर्म का उदय चल रहा है; कार्माण का भी है, उसकी बात बाद में करेंगे। हम किस जाति के परमाणुओं का ग्रहण कर रहे हैं ? औदारिक जाति के जो हैं तो आहारवर्गणा; उसमें भी औदारिकरूप परिणमित होनेवाली अलग जाति है, वैक्रियिकरूप परिणमित होनेवाली अलग जाति है। अब देव आयेंगे न यहां पर पंचकल्याणक में ? कौनसी जाति की वर्गणा लेंगे ? *श्रोता: वैक्रियिक।* वैक्रियिक। क्यों ? उनके वैक्रियिकशरीर नामकर्म का उदय पाया जाता है। तेजस का तो हम सब हर समय ग्रहण कर रहे हैं और कर्म भी हम उसी जाति के ग्रहण करते हैं जैसे उनके उदय होते हैं। वे बातें बाद में देखेंगे कि कौन-कौनसे कर्मों का उदय है ? उसमें जीव के कैसे-कैसे भाव होते हैं ? उस-उस जाति के कर्म का भी ग्रहण करते हैं।

यहां समयसार में कर्म और नोकर्म संबंधी १९ नंबर की गाथा आती है न ! मैं

जुदा हूं और ये कर्म-नोकर्म अलग हैं और जब तक उसमें यह मैं हूं, यह मेरा है, मैं इस रूप हूं, ऐसी भावना है, ऐसी मान्यता चल रही है, तब तक जीव मिथ्यादृष्टि है। हम उसके और गहराई तक जा रहे हैं कि हर समय जीव इनको ग्रहण कर रहा है। ये तो जड़ परमाणु हैं, अनंतानंत परमाणु हम ग्रहण करते हैं। जैसे अभी हमने कर्म की बात देखी न ! हर समय हम अनंत कर्म परमाणु बांधते हैं और हर समय अनंत छूटते हैं। ऐसे ही हर समय शरीर के भी अनंत परमाणु ग्रहण करते हैं हम और अनंत छूटते चले जाते हैं। ऐसा कब तक चलेगा ? मरण के समय तक। मरण के समय भी अनंत ग्रहण करते हैं और सारे के सारे छूट जाते हैं न ? हम ही इन्हें छोड़कर चले जाते हैं। क्या लेकर जाते हैं साथ में ? शरीर तो नहीं ले जा सकते। *श्रोता: कार्माण-तेजस।* अच्छा-अच्छा ! कार्माण-तेजस। कुछ तो ले जाते हैं न ! हां और यहां का क्या ले जाते हैं ? कुछ नहीं। परंतु वह कमाने के लिये जितने पाप परिणाम किये होंगे या जो पुण्य भी किये, वे सब साथ में ले जायेंगे। क्या कहते हैं ? जिसके लिये इतना पाप किया वे सारा यहां छोड़कर चले जानेवाले हैं। अच्छा है न ! **परोपकाराय सतां विभूतयः** क्या परोपकार करते हैं ? पूरा बच्चों के लिये छोड़कर जाते हैं और उनके लिये जो पाप बांधा वह लेकर जाते हैं साथ में। भाई, मैंने बीना शहर में प्रवचन में एक बात की थी कि यदि छोड़कर नहीं सब कुछ साथ में लेकर जा सकते होते तो कितना छोड़ते ? किसके लिये छोड़ते ? हां, किसीके लिये कुछ नहीं छोड़ते यदि साथ में ले जा सकते थे तो, सब कुछ बांधकर ले जाते। है न ? जीव ऐसा ही है स्वार्थी।

हमें पता नहीं है कि हर समय कितने कर्मों का बंध हो रहा है, हम क्या-क्या ग्रहण कर रहे हैं और क्या-क्या छोड़ रहे हैं। शरीर के भी परमाणु हर समय नये आते हैं और पुराने चले जाते हैं। हम तो दर्पण में सुबह देखते हैं उठते ही पहले में पहले, क्या देखते हैं ? सब ठीक-ठाक है न ! हमें तो पता ही नहीं चलता है कि रातभर में कितने अनंत आये और कितने अनंत चले गये। फिर बर्थडे भी मनाते हैं; कौनसे परमाणुओं का मनाते होंगे पता नहीं क्योंकि हर समय नये-नये परमाणुओं की धूल आती है और पुरानी धूल चली जाती है। देखो, हमें पता ही नहीं न हम कौन हैं और हम किसमें अपनत्व मानकर क्या-क्या कर रहे हैं। हमारी जो सुबह से रात तक जो कोई

क्रियायें चल रही हैं और नींद में भी जो चलती रहती हैं, अपने को क्या मानकर चल रही हैं ? अभी हम डिसाइड करेंगे, हम दो खाते खोलनेवाले हैं; अभी टाइम है थोड़ा।

यहां कहते हैं कि योग क्या है ? ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्माणशरीर नामकर्म जो हैं, उनके उदय में जीव शरीर के परमाणुओं को ग्रहण करता है और कर्म के परमाणुओं को भी ग्रहण करता है। नोकर्म का जो ग्रहण होता है उसको कहेंगे नोकर्म आहार। आहार भी छह प्रकार का होता है; सुना है कभी ? एक होता है कर्म का आहार, एक है नोकर्म का आहार, एक है लेपाहार, ओजाहार, कवलाहार और मानसिक आहार। यहां तो कर्म की बात चलेगी, नोकर्म की बात थोड़ी हम गौण करके आगे चलेंगे। हम चर्चा कर रहे हैं कि यह क्यों ग्रहण करता है ? तो ग्रंथ में उसको उदाहरण दिया है कि जैसे तपा हुआ लोहा, आपने कभी देखा होगा पानी में डाल दो तो क्या होता है ? वह वॉटर ऐसे सक् करता है, हां, तो यहां लिखा है देखो- **तप्तायसपिंडं जलमिव** कि बहुत तप्तायमान हुआ लोह का पिंड जल में डालने पर जल को सर्वांगपने से शोषता है; पूरे सभी ओर से उसको शोष लेता है। वैसे ही पांचों ही शरीर नामकर्म के उदय में जीव कर्मों को और नोकर्मों को खींच लेता है, शोषण करता है, उसको उसरूप परिणमाता है। तो कितने परमाणुओं को ग्रहण करता है ? आगे गोम्मटसार में चौथी गाथा में लिखा है कि कितने परमाणुओं को ग्रहण करता है। तो कहते हैं अनंत परमाणुओं को ग्रहण करता है। एक समय में अनंत परमाणुओं को ग्रहण करता है उसको कहते हैं समयप्रबद्ध। यह बात अभी आयेगी, यह नाम हम बारंबार लेंगे। समयप्रबद्ध यानी एक समय में बंधे हुये; प्रबद्ध- विशेषरूप से बंधे हैं।

एक समय में जितनी संख्या में कर्मों के परमाणु बंधते हैं; अनंत होते हैं उनको कहेंगे एक समयप्रबद्ध। तो वे कितने हैं ? तो कहते हैं अभव्यराशि से अनंतगुणा और सिद्धराशि के अनंतवें भागवाला जो पर्टिक्युलर अनंत है- विवक्षित अनंत; उतने परमाणु जीव हर समय ग्रहण करता है। उसमें भी व्हेरिएशन्स होते हैं। क्यों ? यहां लिखा है न ! यह जो प्रदेश का बंध है वह योग से होता है। जहां योग ज्यादा, वहां अधिक नंबर ऑफ़ परमाणु यानी अधिक संख्या में परमाणु बंधते हैं। परमाणु कितने प्रमाण में बंधते हैं, उससे कोई फल नहीं उसको। फिर भी जितना योग ज्यादा है उतना बंधनेवाले

परमाणुओं का प्रमाण भी ज्यादा है। ऐसा भी है- अभी मिथ्यादृष्टि को अधिक प्रकृतियां बंधेगी; तो उन सबमें डिव्हिजन हो जायेगी; तो एक-एक के खाते में परमाणु कम आ जायेंगे। सम्यग्दृष्टि हुआ तो कम प्रकृतियां बंधेगी, तो एक-एक प्रकृति में अधिक माल बट जायेगा। तो उसका तो प्रदेशबंध बढ़ेगा। उससे उसको कोई दुःख नहीं है। हां, यह जीव को जो कोई फल मिलता है, वह कर्म के अनुभाग के उदय में मिलता है। कितना अनुभाग और वह क्यों बंधा था ? तो कषाय से बंधा था।

यहां हम पहले योग की चर्चा करेंगे। जितना योग अधिक उतने परमाणु अधिक संख्या में बंध जायेंगे। ऐसा नहीं कि सम्यग्दृष्टि होने पर यह योग कम हो जायेगा, ऐसी कोई बात नहीं। वह एकेन्द्रियादि में कम होता है और संज्ञी पंचेन्द्रियों में अधिक होता है। ऐसा भी नहीं है कि जीव ऐसा बैठ जाये निश्चल, हिले-डुले नहीं तो योग कम है और ऐसा भी नहीं है कि हिलने-डुलने-चलनेवाले को योग ज्यादा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है, कोई द्वीन्द्रिय चल रहा है और भगवान समवशरण में विराजमान हैं- किसका योग ज्यादा है ? *श्रोता: भगवान का ज्यादा है।* भगवान का ज्यादा है, हां, यानी योग से हिलने-डुलने का वैसा कोई रिलेशन नहीं। समय-समय प्रति इतने जो परमाणु ग्रहण होते हैं इनको कहेंगे कार्माणवर्गणा। देखो, अभी ये शब्द आनेवाले हैं और उनके अर्थ भी हम आगे चलकर देखेंगे। यह वर्गणा किसको कहना और वर्ग किसको कहना और स्पर्धक किसको कहना, निषेक किसको कहना इसकी चर्चा तो बाद में चलेगी। अभी तो हम कर्मों के नाम देखेंगे; उनके भेद-प्रभेद देखेंगे और उनकी सामान्य चर्चा पहले करेंगे; फिर उनकी और सूक्ष्म चर्चा में चले जायेंगे।

यहां तो कहते हैं कि जितने परमाणु बंधते हैं एक समयप्रबद्ध प्रमाण यानी अनंत परमाणु बंधते हैं और उतने ही खिरते भी हैं। परंतु ॲट अ टाइम बंधनेवाले ॲट अ टाइम नहीं खिरते। क्या कहा ? जो एक समय में बंधे हैं, उनका डिस्ट्रिब्यूशन यानी उनका ऐसा विभाजन हो जाता है। कितने ? जैसे मिथ्यात्व का आपने सुना होगा, ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है। तो उसकी निषेक रचना यानी एक-एक लॉट एक-एक समय में ऐसी पूरी रचना होती है, आबाधाकाल छोड़कर। यह आबाधा क्या है ? वह भी देखेंगे। इतने समयों की उसकी निषेक रचना में एक-एक समय में परमाणुओं

का एक-एक लॉट ऐसा पड़ा है। एक समय में तो कोई एक ही उदय में आयेगा। परंतु उसके पूर्व में बंधा हुआ, उसके पूर्व में बंधा हुआ, उसके पूर्व में बंधा हुआ वे भी उदय में आयेंगे। उदय जो होता है, वह अलग-अलग समयों में बंधे हुये का होता है। बंध होता है तो एक समय में बंधा हुआ कर्म सागरों तक उसका डिस्ट्रिब्यूशन होता है और अलग-अलग समयों में बंधा हुआ एक समय में उदय में आता है। कैसे ? जैसे हमने बँक में कोई डिपॉझिट रखे हैं। कोई तो दस साल पहले रखा था; कोई पांच साल पहले रखा था; कोई चार साल पहले रखा था; कोई दो महीने पहले रखा था। जिसकी-जिसकी मॅच्युरिटी डेट आज की है, उन सबका आज हमें ॲग्रिगेट पैसा मिलेगा। वैसे ही हमने अलग-अलग समयों में कर्म कभी बांधे थे, पर जिसके-जिसके उदय का समय आया है, जिसकी-जिसकी स्थिति पूरी हुयी है उसका हमें ॲग्रिगेट फल आज मिलता है। इसलिये हमें ऐसा लगता है हमने तो कोई पाप किया नहीं है। तो फिर हमें कर्मों का यह आकरा-कठिन फल क्यों यानी ऐसे संयोग क्यों? ऐसा प्रश्न उठता है हमें।

यह हमने अलग-अलग समयों में जो कोई बंध किया था, उसमें भी बहुत व्हेरिएशन्स होते हैं। पहले बंधा हुआ उसकी कुछ उदीरणा होगी, कहीं अपकर्षण होगा, उत्कर्षण होगा, उसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। यहां बंधने के समय और उदय के समय में क्या-क्या हो रहा है उसकी पहले स्थूलरूप से चर्चा चलेगी। जितना बंधता है उतना ही समयप्रबद्ध खिरता भी है। जितने का बंध हो रहा है, जितने अनंत परमाणु बंधते हैं, उतने ही अनंत परमाणु खिर जाते हैं। फिर भी स्टॉक में - सत्ता में अनंतानंत पड़े रहते हैं। उससे असंख्यातगुणावाला बड़ा अनंत, उसका गणित है, उसकी टर्मिनॉलॉजि भी; उसको हम अभी नहीं देखेंगे। यानी पुराना जो कर्म का स्कंध - पिंड पूरा पड़ा है, उसमें नये अनंत आते हैं और पुराने कुछ अनंत उसमें से चले जाते हैं। तो यह कर्म का पिंड उतना का उतना बना रहता है। इसलिये तो उसको कर्म भूभृत कहा। कहां कहा निलेशभाई ? 'भेत्तारं कर्मभूभृताम्।' *श्रोता: तत्त्वार्थसूत्र में मंगलाचरण में कहा है।* तत्त्वार्थसूत्र में मंगलाचरण में कहा है। ये तो कर्म के भूभृत यानी पर्वत कैसे हैं उसको देखेंगे हम। मुनिराजों के भी जो हमें ऐसा लगता है, मुनिराज हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, भावलिंगी संत हैं; उनका तो कर्म कम हुआ होगा न ! कुछ नहीं। जितना पूरा खिपाते-

खिपाते, असंख्यातगुणा निर्जरा करते-करते-करते भी चौदहवें गुणस्थान के अंत समय में जितने परमाणु रहते हैं न, वे जितने खिर गये उनसे भी असंख्यातगुणे बाकी रहते हैं। पता ही नहीं न हमें क्या हो रहा है ? कहां क्या हो रहा है ? हम देखेंगे ज़रूर।

अभी हम कर्मों के सामान्य भेद देखेंगे। कर्म कहने से तो सामान्य कर्म ऐसा ही हम कहेंगे, उसके भेद हैं द्रव्य और भाव; हम द्रव्यकर्म, भावकर्म किसको कहते हैं ? द्रव्यकर्म यानी जड़कर्म। भावकर्म यानी क्या ? *श्रोता: जीव के परिणाम।* हां, जीव के परिणाम राग-द्वेष-मोह और नोकर्म यानी शरीर, मन, वाणी। हम कर्मकाण्ड की मूल गाथा देखेंगे। पुद्गल पिंड को दो प्रकार का कहा द्रव्यकर्म और भावकर्म, गाथा पढ़ेंगे।

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

कर्म की शक्ति को बताया, हम हिंदी में पढ़ेंगे। देखो, **कर्म सामान्य भावरूप कर्मत्व करि एक प्रकार** यानी कर्मत्व की अपेक्षा से कर्म को हम कर्म कहेंगे। अब **वही कर्म द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है।** कैसा ? द्रव्यकर्म और भावकर्म दोनों ही पुद्गल कर्म के ऊपर घटित कर रहे हैं, कभी सुना है ? देखो, **वहां ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलद्रव्य का पिंड वह द्रव्यकर्म है।** वह तो हमें सबको पता है। **उस पिंड में फल देने की जो शक्ति है उसको भावकर्म कहते हैं।** ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि में जो फल देने की शक्ति है उस शक्ति को भावकर्म कहा है। **अथवा कार्य में कारण के उपचार से उस शक्ति से उत्पन्न भय, अज्ञान व क्रोधादिक को भी भावकर्म कहते हैं।** हम जो भावकर्म कह रहे हैं वह उपचार की भाषा है। भावकर्म, मूल में निश्चय से भावकर्म किसको कहना ? पुद्गल कर्म में जो फल देने की शक्ति है, वह उसका भाव है। वह कर्म का भाव है उसको भावकर्म कहा है और उसके उदय में उसके निमित्त से, *श्रोता: उपचार से।* हां, यहां जो राग-द्वेष-मोह उत्पन्न होते हैं, उनको हम उपचार से भावकर्म कहते हैं।

आगम में कहां क्या-क्या बातें आती हैं, उनको भी जानेंगे न ! हम सामान्यपने कर्म के आठ भेद करेंगे। वे कौन-कौनसे कर्म हैं उनके नाम देखेंगे; उनके क्या-क्या

प्रकार हैं हम देखेंगे। आपने बहुत बार सुना होगा कि कर्मों के मुख्य दो भेद करते हैं। कौन-कौनसे ? घातिकर्म और अघातिकर्म। यह घातिकर्म क्या है और अघातिकर्म क्या है ? कहते हैं जो जीव का, हां, किसका घात करता है ? जीव का? नहीं, तो ? *श्रोता: गुणों का।* गुणों का ? जो गुणों का घात करे वह घातिकर्म ? *श्रोता: पर्याय का।* पर्याय का ? *श्रोता: अनुजीवी गुण का।* अनुजीवी गुण का ? यानी गुण नष्ट हो जाते हैं ? आप कहते हैं गुणों की पर्याय का नाश होता है यानी पर्याय होती ही नहीं है? देखो जीव का जो स्वभाव है वह पर्याय में प्रकट न होना उसको घात करना कहते हैं; यह तो कथन है। वे जड़ कर्म अपना कुछ घात नहीं करते हैं।

गुरुदेवश्री के प्रवचन में बहुत बार सुना होगा भावघातिकर्म, सुना है ? यह तो द्रव्यघातिकर्म की बात है। भावघातिकर्म जीव के परिणाम को कहा है। ज्ञानियों की जो अपेक्षा है वह हम समझेंगे। जीव अपने ही राग-द्वेष के परिणाम के द्वारा अपना ही घात कर रहा है। जीव दुःखी क्यों है ? हम दुःखी क्यों हैं ? कोई कहते हैं मेरे पास पैसा नहीं है, कोई कहता है मुझे शिक्षण नहीं है, कोई कहता है मुझे नौकरी नहीं है, कोई कहेगा मुझे बाल-बच्चे नहीं हैं, इसीलिये हम दुःखी हैं। क्या यह सच है ? संयोग के कारण जीव कभी दुःखी हुआ ही नहीं है। वह अपने अज्ञान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष के कारण दुःखी है और उसके जो सारे सुखी होने के उपाय हैं वे संयोगों में हो रहे हैं। दुःख का कारण और है और वह सुखी होने के लिये कुछ अन्य उपाय कर रहा है। कब सुखी होगा ? *श्रोता: तीन काल में नहीं।* तीन काल में नहीं, फिर भी हम उसीको कर रहे हैं, हां।

यहां चार्ट में हम देखते हैं। हम पहले उनके केवल मुख्य-मुख्य नाम देखेंगे। यहां दो विभाजन किये हैं कर्मों के और फिर उनके हम आठ और भेद करेंगे। ये जो आठ भेद यहां लिखें हैं, आठ नाम उनको कहेंगे मूलप्रकृति। क्या कहेंगे ? *श्रोता: मूलप्रकृति।* मूलप्रकृति। प्रकृति यानी स्वभाव। यह कर्म का जो स्वभाव है-ज्ञानावरण का अलग है, दर्शनावरण का अलग है, मोहनीय का अलग है; वह कैसे अलग है उसकी भी चर्चा करेंगे। पहले उनके नाम तो सीखेंगे क्योंकि नाम बताये बिना उसकी चर्चा कैसे करेंगे ? शास्त्र की भाषा में उसको कहेंगे पहले निर्देश करेंगे, फिर उसका लक्षण बतायेंगे। यहां हम उनके नाम देखते हैं।

कर्म प्रकृति १४८ (१२२)

घातिकर्म		**अघातिकर्म**		
१. ज्ञानावरण	५	५. वेदनीय	२	
२. दर्शनावरण	९	६. आयु	४	
३. मोहनीय	२८	७. नाम	९३	(६७)
४. अंतराय	५	८. गोत्र	२	
	४७		१०१	(७५)

उदय ८ का, बंध ७ या ८ का, सत्त्व ८ का

घातिकर्म - जीव का स्वभाव जो है उसमें इसका निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। जीव का स्वभाव है ज्ञान है, दर्शन है, सम्यक्त्व है, उसका वीतराग स्वभाव है; दान-लाभ-भोग आदि भी उसके स्वभाव हैं। इस स्वभाव को पर्याय में प्रकट न होने में जिसका निमित्त बनता है ऐसे जो कर्म हैं उनको कहेंगे घातिकर्म और जीव के गुणों के साथ जिनका कुछ संबंध नहीं है उनको कहेंगे अघातिकर्म। मुख्यरूप से यहां दो भेद कर रहे हैं। घातिकर्मों के चार नाम यहां लिखे हैं देखिये। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय। कौनसे बताये, लक्ष्मी ? *श्रोता: ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय।* ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय। अब अघातिकर्मों के नाम देखते हैं वेदनीय,आयु, नाम और गोत्र। ये आठ मूल भेद हुये। इनको कहेंगे हम मूलप्रकृति। प्रकृति यानी कर्म, कर्म को ही प्रकृति कहते हैं। ये जो आठ मूलप्रकृति हैं, उनकी ही अभी चर्चा चलेगी। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये तो चार घातिया हैं, कहेंगे कि वे जीव के गुणों का घात करते हैं, परंतु यह जो भाषा है वह अभी हमें समझनी चाहिये और वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र वे तो वैसा जीव के गुणों का घात नहीं करते हैं, तो उनको कहेंगे अघातिया।

अब आयुकर्म की बात अलग है। उसमें जीव कितने साल तक जीता है, उसकी आयु कितनी लंबी है वह है। बाकी जो हैं, इनमें से ज्ञानावरण का क्या कार्य है ? तो ज्ञान पर आवरण डाले। ऐसा नहीं कि अंदर ज्ञान पड़ा है और उसके ऊपर आकर आवरण

डाल दिया, ऐसा नहीं है। जीव स्वयं अपनी योग्यता से हीन ज्ञानरूप परिणमित होता है तब हम कहेंगे वहां ज्ञानावरण कर्म का उदय चल रहा है। दर्शनावरण- जीव का स्वभाव जानना-देखनेवाला जो दर्शन है; दर्शन शब्द दो प्रकार से आता है। एक श्रद्धा के लिये भी दर्शन शब्द आता है जैसे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन। वह श्रद्धा के अर्थ में आता है और जो जानना-देखना, ज्ञान-दर्शन स्वभाव है वहां भी दर्शन शब्द आता है जिसका अर्थ होता है सामान्य अवलोकन; डिफरन्शिअेट किये बिना जो ग्रहण करना है; पदार्थों में यह अलग है, यह अलग है, इसको पहिचाने बिना जो उसकी सत्ता मात्र का ग्रहण होता है उसको कहेंगे दर्शन और दर्शन के जो भेद देखेंगे हम, तो उसके प्रतिपक्षी वे दर्शनावरण कर्म हैं। हम ज्ञानावरणादि की चर्चा करेंगे। हम अभी डायरेक्ट पढ़ेंगे - करणानुयोग परिचय पुस्तक, ११ नंबर का पेज, पहला पॅरेग्राफ -

इन चार घातिकर्मों का फल गुणों की अवस्था में निमित्त होता है इसलिये उन्हें जीवविपाकी कर्म कहते हैं। यह जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी की चर्चा फिर बाद में करनेवाले हैं। अभी तो इतना ही समझना कि उनका गुणों के साथ कुछ निमित्तपना बनता है। **ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म जीव के ज्ञान और दर्शन गुणों की शक्ति उनकी पर्यायों में व्यक्त नहीं होने देते, इसलिये उन्हें आवरण डालनेवाले कर्म कहते हैं।** यह आवरण कौनसे गुणस्थान तक होता है मालूम है ? ज्ञानावरण और दर्शनावरण ? *श्रोता: बारहवें गुणस्थान तक।* हां, बारहवें, बारहवें गुणस्थान तक। इसलिये बारहवें गुणस्थान तक के जीवों का क्या नाम है ? *श्रोता: छद्मस्थ।* छद्मस्थ; छद्म का अर्थ होता है आवरण। जैसे गृह में रहनेवाले गृहस्थ, ऐसे हम सब कैसे हैं ? आवरण में रहनेवाले हैं। ऐसे क्या है ? उनका नाम है छद्मस्थ और बाद में केवलज्ञान होने पर उनको कहेंगे सर्वज्ञ। तो छद्मस्थ का अर्थ क्या है ? जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मों का अभी उदय चल रहा है; उदय हो, क्षयोपशम हो, यथायोग्य तो उसको कहेंगे छद्मस्थ। ये आवरणवाले दो कर्म हैं और अंतराय कैसा है ? बाधा डालनेवाला है, विघ्न डालनेवाला है। किसमें ? दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। मोहनीय की बात मैंने छोड़ दी है, बाद में बताऊंगी।

यह विघ्न डालनेवाला जो कर्म है, किसमें-किसमें ? ये जो दान, लाभ वगैरह जो

हैं न ! वे जीव के गुण हैं। फिर भी उन्हें बताने के लिये हम अभी हमारे लौकिक उदाहरण देखेंगे। जो दान में विघ्न डालता है यानी क्या करता है ? हम दान देना चाहते हैं संस्था में, देना भी चाहिये। इतना भव्य आयोजन जो किया है उन्होंने। फिर दूसरे किसीने बताया, मत देना; तो क्या हुआ ? *श्रोता: बाधा आ गयी।* हां, बाधा आ गयी न ? तो यह हो गया दानांतराय, अंतराय। वैसे भी तो हम नहीं देना चाहते थे पर अच्छा हुआ न किसीने बताया ! यह दानांतराय। लाभांतराय- हमें लाभ होना था, बँक में से आज हमारे पैसे आनेवाले थे। क्या हुआ ? *श्रोता: हड़ताल हुआ।* हड़ताल हुआ, क्या होली की छुट्टी आयी। तो बीच में अंतराय हो गया लाभ में। दान, लाभ, भोग और उपभोग। यह दो-दो बार क्यों कहा ? भोग किसको कहते हैं ? *श्रोता: एक बार भोगे।* एक बार भोगे उसको भोग कहते हैं। उपभोग ? *श्रोता: बार-बार।* उपभोग यानी बार-बार भोगता है। आपको नहीं मालूम ? इंडिया में हम उपभोग करते हैं और अमेरिकावाले यहां, स्वातीबहन, हां, भोग करते हैं। किसका ? थाली का ? जीमने की थाली का ? कैसे ? *श्रोता: डिस्पोजेबल होते हैं।* हां, डिस्पोजेबल होते हैं न ! क्यों रजनीभाई ? एक बार उसमें से भोजन कर देते हैं, उसको फेंक देते हैं और हम क्या ? वही थाली बार-बार धोकर यूज़ करते हैं। हम क्या करते हैं उसका ? उपभोग। यह तो उदाहरण है। हम किसीको कुछ टीका-टिप्पणी नहीं कर रहे हैं। हां-हां, ये तो ऐसे वॉशिंग्टनवाले हैं, हमारे दोनों का मिलकर वहां जैन सेंटर में दस दिन के लिये दिन में आठ-आठ घंटे कार्यक्रम रखते हैं और वहां सभी लोग जो आते हैं, वे तो भोजन के लिये स्टील की थालियां यूज़ करते हैं। क्यों ? क्योंकि दसलक्षण के दिनों में डिस्पोजेबल थाली यूज करेंगे तो ये तो सारे सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होंगे वहां क्योंकि गार्बेज आठ दिन तक पड़ा रहेगा तो कितने जीवों की उत्पत्ति होगी। सारे भाई लोग - पुरुष वर्ग वहां व्हॉलंटिअर वर्क करते हैं। बहनें सब वह कुकिंग का काम देखती हैं और साठ-साठ लोग इकट्ठा भोजन करते हैं। वहां सबकी व्यवस्था करते हैं। हमारे हिंदुस्तान में तो बहुत सुलभ है, वहां व्यवस्था करना बहुत-बहुत कठिन बात है। वहां कोई हेल्प नहीं मिलती है। वहां सारे अहमिंद्र हैं ! हां, जहां स्वामी और सेवक का भेद नहीं है न ! अच्छी बात है !

कहने का प्रयोजन यह है कि भोग क्या होता है और उपभोग क्या होता है ?

जैसे रोटी हमने एक बार खा ली, उसी रोटी को दुबारा कैसे खायेंगे ? तो हमने उसका भोग किया। उपभोग यानी जो कोई वस्तुयें हैं, गहने हैं, कपड़े हैं; उनका हम उपभोग करते हैं, बार-बार यूज़ करते हैं और एक है वीर्य; वीर्य यानी पुरुषार्थ, तो इसमें जो बाधा लावे उसको कहेंगे अंतराय कर्म। यह तो निमित्त है। हम तो स्वयं नहीं जाना चाहते और फिर बता देते हैं, यह अंतराय कर्म आड़ा आया न ! इसलिये हम नहीं आये। वह कर्म दिखता है हमें तभी। क्योंकि पंडितों को उन्हींकी भाषा में बोले तो अच्छा लगता है न ! इसलिये हम अंतराय कर्म को बीच में लाते हैं, तो ये हैं विघ्नवाले कर्म। मोहनीय की बात छोड़ दी हमने बीच में, फिर उसको भी लेते हैं। मोहनीय के दो भेद हैं- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। यह दर्शनमोहनीय आपने सुना होगा, उसका नाम है मिथ्यात्व। अभी मुख्यतः उसकी बात करते हैं क्योंकि वह अनादि से चला आ रहा है। चारित्रमोहनीय के भेदों की भी चर्चा करेंगे हम।

अभी पहले थोड़े नाम देख लेते हैं सभी। अघातिकर्मों में वेदनीय है। वेदनीय में क्या होता है ? *श्रोता: सातावेदनीय, असातावेदनीय।* सातावेदनीय, असातावेदनीय। हम सब परिचित हैं उनसे। यह पंखा जो है वह बंद है और वह पंखा चालू है। यह किस कर्म के उदय से चालू है और वह किस कर्म के उदय से बंद है ? *श्रोता: साता।* हां, वह साता और यह ? *श्रोता: असाता।* वह साता और यह असाता। यह आपका साता उधर है या आपका असाता इधर है ? क्या है ? आप बीच में है न ! पंखे का घूमना या नहीं घूमना साता-असाता के कारण नहीं होता। पुद्गल की जो कुछ रचना हो रही है वह पुद्गल के अपने कारण से होती है, उसमें कोई कर्म का निमित्त नहीं है। हम स्वयं उसमें इष्ट-अनिष्टपना की कल्पना करते हैं। जहां वह मोहनीयवाला फेविकॉल होगा न, गोंद, तो वह साता या असाता का काम करते हैं। मुनिराज को कोई मोह है ही नहीं है, तो उनके लिये जो कोई बाह्य संयोग हैं वे सुख-दुःख के कारण नहीं हैं, क्योंकि उनकी संयोगों में इष्ट-अनिष्टपने की खोटी मान्यता नहीं है। तो उनको वे सुख-दुःख उत्पन्न नहीं करते हैं। अब और भी चर्चा चलेगी, हम आगामी क्लास में इसकी चर्चा करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

३. मूलप्रकृति - घातिकर्म, अघातिकर्म

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। उन्होंने तो जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि ग्रंथ लिखे, उनमें से कर्मकाण्ड की बात यहां चलेगी और यहां पं. टोडरमलजी लिखित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका को आधारभूत मानकर उसके आधार से हम बातें देख रहे हैं। हमने देखा है कि कर्मों के घाति और अघाति ऐसे दो भेद हैं; और भी भेद करेंगे तो उनके आठ भेद होते हैं तथा आठ भेदों के और भेद करेंगे तो १४८ होते हैं। उनके भी बहुत सारे भेद करेंगे तो असंख्यात लोकप्रमाण भेद हो जाते हैं। मूल गाथा में ही लिखा है, ७ नंबर की गाथा में लिखते हैं।

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण घादित्ति अघादित्तिय होंति सण्णाओ ॥७॥

हमने आठ कर्म देखे, उनको दो मूल भेदों में विभाजित किये - घातिकर्म और अघातिकर्म और उसीकी हम प्रकृतियां देखेंगे जिनको हम उत्तरप्रकृति कहते हैं। हमने आठ कर्म देखे हैं, उनका नाम क्या है ? मूलप्रकृति। उनमें से हर एक के हम और भेद करेंगे; भेद और प्रभेद कहेंगे न ? डिव्हिजन और सबडिव्हिजन, तो उनको हम कहेंगे उत्तरप्रकृति। आठ हैं मूलप्रकृति और मूलप्रकृतियों के भेदों को कहेंगे उत्तरप्रकृति। हमने मूलप्रकृतियों के आठ नाम देखे थे; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये घातिकर्म हुये। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये अघातिकर्म हुये। प्रत्येक का वर्णन शास्त्र में तो दिया ही है, हम भी यहां देखते हैं। पंचलब्धि पुस्तक में ११ नंबर का पृष्ठ है, वहां ये मूलप्रकृतियों के नाम निम्नप्रकार लिखे हैं। देखो, सेंटर में ही लिखे हैं आठ नाम **ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम** और **गोत्र।** स्वभाव के अनुसार ये नाम हैं। प्रकृति स्वभाव को कहते हैं न ? हर एक का अपना-अपना स्वभाव, हर एक का अपना-अपना फल अलग-अलग है।

ये आठ कर्म क्यों बने ? जीव तो एक परिणाम करता है। एक परिणाम से तो कार्माणवर्गणा एक कर्मरूप होनी चाहिये थी। ये आठ होते हैं इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ होता है निमित्त से कार्य नहीं होता। यदि निमित्त से ही कार्य होना होता तो

सभी कर्म परमाणु एक जैसे परिणमते, परंतु एक ही परिणाम से; देखो इसका अर्थ है, कार्माणवर्गणा ही अलग-अलग प्रकार की होती हैं। 'जैन तत्त्वमीमांसा' में भी यह बात पं. फूलचन्दजी शास्त्री ने लिखी है कि यह तो कार्माणवर्गणा ही अलग-अलग प्रकार की होती हैं; कुछ ऐसी हैं कि जो ज्ञानावरणरूप परिणमित होती हैं; कुछ ऐसी हैं जो दर्शनावरणरूप परिणमती हैं; ऐसे आठों में ही लगा लेना। तो वे अपनी-अपनी स्वयं की योग्यता से उस-उस कर्मरूप से परिणमित होती हैं। अब ये जो परिणमित होती हैं; कैसे परिणमित होती हैं ? कोई करनेवाला है क्या वहां पर ? कोई वहां बैठा है कि गाइड लाइन देवें ? यहां चले जाओ ज्ञानावरण में, चलो दर्शनावरण में चले जाओ। जैसे हम भोजन ग्रहण करते हैं और उसमें से कुछ अंश तो लोहीरूप यानी खून हो जाता है, कुछ हड्डी में चला जाता है कुछ और किसीमें और कुछ तो विष्टारूप से निकल जाता है। तो इसका डिव्हिजन कौन करता है ? विभाजन कौन करता है ? तो कोई करनेवाला नहीं है, स्वयं वे परमाणु अपनी योग्यता से उसरूप परिणमित होते हैं।

ऐसा ही है यहां पर भी, क्योंकि ये सारे जड़ परमाणु हैं न ? उनमें कुछ जानने की शक्ति तो है नहीं है, मैं इसरूप परिणम जाऊं। हम तो सारा कार्य इच्छा से होता है ऐसा मानते हैं और हम चाहे वह करे- वह हमारा पुरुषार्थ है ऐसा मानते हैं क्योंकि हमने पुरुषार्थ को सही नहीं पहिचाना। कौनसे द्रव्य में पुरुषार्थ है, आपको पता है ? *श्रोता: हर एक द्रव्य में।* हर एक द्रव्य में, बहुत अच्छा ! क्यों हर एक द्रव्य में ? क्योंकि हर एक द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायरूप से परिणमित होता है और हर एक पर्याय में तो उसके पांच समवाय लगते ही हैं। षट्कारक तो लगते हैं, पर पांच समवाय जिसको हम कहते हैं स्वभाव है, पुरुषार्थ है, काललब्धि है, होनहार है और निमित्त है। पांचों समवाय उस एक-एक समय की पर्याय में लगते ही हैं और हर एक द्रव्य परिणमित हो रहा है। हर एक द्रव्य में अपना पुरुषार्थ भी चल रहा है। यह जो जड़ वस्तु है पेन्सिल, यह नीचे से ऊपर गयी, तो हमने उठायी इसलिये गयी ऐसा लगता है। लगता है, लगता बहुत कुछ है हमें; परंतु हमें वस्तुस्वरूप क्या है उसे पहचानना है, वह भी जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा से यानी उनके उपदेश के अनुसार। पेन्सिल का अपना पुरुषार्थ चलता है। इस पेन्सिल का यहां से यहां जो गमन हो रहा है या यहां स्थिररूप परिणमन हो रहा है,

वह उसकी अपनी स्वयं की योग्यता से, अपने स्वयं के पुरुषार्थ से हो रहा है। यहां भी हम जो देख रहें हैं कि ये कार्माणवर्गणा का जो आठ कर्मरूप विभाजन होता है, उनका अपनी-अपनी योग्यता से अलग-अलग परिणमन होता है। ये जो आठ कर्म हैं इनको दृष्टांत देकर शास्त्र में समझाया है।

हम देख रहे थे पंचलब्धि पुस्तक में ११ नंबर का पृष्ठ। वहां लिखे हैं आठ नाम- **ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम** और **गोत्र।** अब ज्ञानावरण का अर्थ क्या है ? ज्ञान पर आवरण; उसकी तो चर्चा हमने सुबह की थी। गुण पर तो कोई आवरण डाल नहीं सकता, फिर भी जीव अपनी योग्यता से पर्याय में ज्ञान की हीन अवस्थारूप परिणमित होता है, तो वहां कहते हैं कर्म ने ज्ञान पर आवरण डाला। यह भाषा है, यह पद्धति है कथन की, निमित्त से कथन किया जाता है। कथनी निमित्त से होती है, परंतु कार्य उपादान से होता है। कथन करने में कोई दोष नहीं है, परंतु यदि हम वैसा ही माने, तो यह हमारी गलती है, हमारी अपनी भूल है। शास्त्र पढ़ने की भी पद्धति होती है, वहां लिखा कुछ और होता है और हमें समझना कुछ और है। व्यवहार में यानी लौकिक में तो हम बहुत चतुर हैं; बोलते कुछ और हैं, समझते कुछ और हैं। जब मुंबई से निकलकर ट्रेन से आये तो देवलाली आयी कहा न ! देवलाली आयी, उठ खड़े हो जाओ, सामान ले चलो, निपटो चलो। तो देवलाली आयी कि हम देवलाली के पास गये ? *श्रोता: हम देवलाली के पास गये।* हां, फिर भी कहते कुछ और हैं और समझते कुछ और हैं। वहां तो बहुत चतुर हैं हम। वैसे यहां शास्त्र की कैसी पद्धति है कथन की, वह कथन पद्धति हमें समझना चाहिये।

उस पॅरेग्राफ के अंत में जो एक नंबर का ज्ञानावरण का लिखा है न ? उसके लास्ट में। तो कहते हैं **दो द्रव्यों की भिन्नता हमेशा ख्याल में रखकर इस विधान का अर्थ समझना इष्ट है। नहीं तो, कर्म को जीव का भला बुरा करनेवाला मानोगी तो पराधीनता की कल्पना से दुःखी बनोगी।** कल्पना से; हम जो सारे दुःखी हो रहे हैं, कल्पना में ही दुःखी हो रहे हैं। कल रात को मुझे सपना आया है, मुझे महाभयंकर कॅन्सर की बिमारी हो गयी है, तो भाई यहां कौनसा अस्पताल है देवलाली में ? कहां भर्ती कराओगे हमको ? देवलाली के कौन हैं यहां हमेशा रहनेवाले ? आपको

मालूम है न ! यहां कौनसा है ? *श्रोता: जयराम हॉस्पिटल।* जयराम हॉस्पिटल ? वह तो मुझे बराबर ठीक करेगा कि नहीं करेगा हॉस्पिटल ? *श्रोता: नहीं करेगा।* क्यों नहीं करेगा ? अरे ! सपने में, सपने में कॅन्सर हुआ है। उसका तो उपाय है जाग जाना। उसके लिये किसी हॉस्पिटल की जरूरत नहीं है। ऐसे ही हम कल्पना में दुःखी हो रहे हैं। हम इन पुद्गलों में इष्ट-अनिष्टपना की कल्पना करते हैं और राग-द्वेष करते रहते हैं। कितने पुद्गल इष्ट होते हैं और कितने अनिष्ट होते हैं ? *श्रोता: कोई इष्ट-अनिष्ट नहीं है।* कोई इष्ट-अनिष्ट नहीं हैं; सब पुद्गल तो जड़, अचेतन हैं, उसमें क्या इष्टपना और अनिष्टपना ? *श्रोता: फिर भी पंखा इष्ट है।* पंखा इष्ट है ? यह पंखेवाला पुद्गल कोई भिन्न पुद्गल होना चाहिये, जो गर्मी में ही इष्ट लगता है और सर्दियों में अनिष्ट लगता है।

देखो, हम अपनी कल्पना से ही भला-बुरा मानकर उसमें राग-द्वेष करते हैं। अब हम आगे देखेंगे। आठों ही कर्मों को दृष्टांत देकर समझाया है, मूल ग्रंथों में ये दृष्टांत दिये हैं। अंतिम पॅरेग्राफ, वहां जो ज्ञानावरण के लिये दृष्टांत दिया है- किसी मूर्ति के मुंह पर; मूर्ति यानी स्टॅच्यु; उस पर वस्त्र डाले तो क्या होगा ? बराबर पूरे डीटेल्स ख्याल में नहीं आयेंगे, धुंधलासा हो जायेगा। यहां लिखते हैं, **जिसतरह देवता की मूर्ति का मुख वस्त्र से ढका हुआ हो तो वस्त्र के कारण हमें मूर्ति का विशेष ज्ञान नहीं हो सकता, उसतरह ज्ञानावरण कर्म ज्ञानपर आवरण डालता है।** ये दृष्टांत होते हैं और वे एकदेश यानी थोड़ेसे ही लागू होते हैं। जैसे अंदर मूर्ति है और ऊपर वस्त्र डालने से अस्पष्ट हो रहा है ऐसा ज्ञान का नहीं है। ज्ञान प्रकट है और ऊपर आवरण आया ऐसा नहीं है। पर्याय में वह हीन ज्ञानरूप से परिणमित हुआ है।

दर्शन की बात देखते हैं, दर्शनावरण कर्म दर्शन पर आवरण डालता है। जीव का स्वभाव है ज्ञान और दर्शन। देखो, यह स्वभाव ऐसा है कि उस पर पूर्ण आवरण कोई डाल ही नहीं सकता। एक निमित्त की भाषा में भी पूरा-पूरा आवरण हो ही नहीं सकता। जीव किसी भी हीन में हीन पर्यायरूप से परिणमित हो रहा हो। सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त जो जघन्य में जघन्य ज्ञानधारी जीव है उसके भी ज्ञान का कुछ न कुछ अंश पर्याय में प्रकट है ही। उतना भी नहीं रहे तो जीव जड़ हो जायेगा। इतना स्वभाव का अंश तो वहां है ही है। स्वभाव का अंश किसीके कम है, किसीके अधिक है,

किसीके बहुत अधिक है, किसीके पूरा का पूरा स्वभाव प्रकट है जैसे केवलज्ञानियों के। ज्ञान अपना स्वभाव है और जितना कुछ प्रकट है वह मेरा स्वयं के स्वभाव का अंश है।

जैसे सूर्य प्रकाशित है और बादल आते हैं, तो क्या होता है ? प्रकाश धुंधला हो जाता है न ! यह जो धुंधला प्रकाश है वह बादल के कारण है कि सूर्य के कारण है ? *श्रोता: बादल के कारण।* बादल के कारण, क्या हुआ ? मंद प्रकाश बादल के कारण है कि धुंधलापन बादल के कारण है ? *श्रोता: धुंधलापन।* और वहां जो प्रकाश है, वह तो सूर्य के प्रकाश का अंश है। ऐसे ही यहां जो कोई हम आवरण कहते हैं यह हमारा ज्ञान बहुत हीन हो रहा है। क्यों ? ज्ञानावरण के कारण। जो प्रकट है वह हमारा स्वभाव का अंश है। वहां कर्मों में क्षयोपशम हुआ इसलिये हमारा वह ज्ञान प्रकट है, ऐसा नहीं है। हम कहते हैं न ! इनके ज्ञान का क्षयोपशम बहुत है। क्यों ? क्योंकि उनके ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बहुत है। ऐसा नहीं है, हम पराधीन नहीं हैं। जो कुछ स्वभाव का अंश प्रकट है, वह स्वभाव के कारण है और वहां जो कोई धुंधलापन कहो, वहां जो कोई निमित्तरूप से जो ज्ञान, जो हमारा स्वभाव, केवलज्ञान स्वभाव जो प्रकट नहीं हो रहा है तो निमित्त को आरोपित करके हम यह कर्म के कारण है ऐसा कहेंगे। ज्ञानावरण में भी ऐसा ही समझना। दर्शनावरण में भी ऐसा ही समझना कि दर्शन जीव का स्वभाव है और पर्याय में वह प्रकट नहीं हो रहा है। कौनसा ? केवलदर्शन हमारा स्वभाव है। जैसे सर्वज्ञत्व, केवलज्ञान हमारा स्वभाव है परंतु पर्याय में प्रकट नहीं है। ऐसे केवलदर्शन हमारा स्वभाव है, पर्याय में प्रकट नहीं है तो कर्म के ऊपर आरोप किया जाता है कि यह कर्म के कारण प्रकट नहीं हुआ।

दर्शनावरण का वहां दृष्टांत दिया है, १२ पृष्ठ पर दूसरी लाइन - **जिसतरह राजद्वार में खड़ा द्वारपाल राजा को मिलने देने से इन्कार करता है-राजा को देखने नहीं देता, उसतरह।** यह तो बिलकुल स्थूल दृष्टांत देकर समझाया है क्योंकि क्या है, जब हम किसी विषय में प्रवेश करते हैं तो शुरू में ऐसे स्थूल, मोटे दृष्टांत देते हैं ताकि विषय समझ में आवे। आगे चलकर जब और स्पष्टरूप से पढ़ते हैं तो ख्याल में आता है कि यह तो बहुत ही स्थूल उदाहरण है। **उसतरह दर्शनावरण कर्म दर्शनपर आवरण डालता है।** दर्शन का अर्थ है सामान्य अवलोकन, उसकी चर्चा सुबह की थी।

हमने मोहनीय कर्म के दो भेद देखे थे। याद है ? *श्रोता: दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय।* दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। **मोहनीय कर्म जीव को मोहित करता है**, मोहनीय नाम है न ! **मोहित करता है, असावधान करता है। जिसतरह मद्य या अन्य मादक पदार्थों का सेवन करने से जीव बेभान होता है,** सुध खो बैठता है न वह ! **उसकी मति मोहित होती है; उसतरह मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित करता है।** अभी-अभी हमने उसके दो भेद देखे, **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व कर्म के उदय में जीव को मिथ्यात्व होता है।** क्या होता है ? जो श्रद्धा गुण है उसका सम्यक् रूप से परिणमन होना स्वभाव है, परंतु अभी मिथ्यारूप से परिणमित हो रहा है, विपरीतरूप से परिणमित होता है। ज्ञानावरण से ज्ञान की हीनता होती है; दर्शनावरण से दर्शन की हीनता होती है; परंतु मोहनीय से विपरीतता होती है। श्रद्धा की विपरीतता को मिथ्यात्व कहते हैं और चारित्र की विपरीतता को राग-द्वेष कहते हैं। चारित्र की स्वभावपर्याय को क्या कहते हैं ? वीतरागता, अंतरंग में स्थिरता, शुद्धभाव; परंतु शुद्धभाव में विपरीतता हो रही है तो क्या हो रहा है ? अशुद्धभाव हो रहा है। कौनसा अशुद्ध ? शुद्धभाव यानी धर्म और जो धर्म नहीं उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: अधर्म।* अधर्म।

अधर्म के कौनसे दो भेद हैं ? हां, बोलो। *श्रोता: अधर्म में भेद नहीं हैं।* अधर्म में भेद नहीं हैं ? हां ? जो शुद्धभाव नहीं है बोलो अश्विनभाई। *श्रोता: शुभाशुभ।* शुभाशुभ दोनों; पुण्य भी और पाप भी। क्या कहा उसको ? अधर्म। हम यहां अधर्म करने आये हैं क्या ? आप कहेंगे हम स्वाध्याय कर रहे हैं, पुण्य बांध रहे हैं, अधर्म कर रहे हैं क्या ? *श्रोता: हां।* देखो, यह कैसे पक्के हैं, अधर्म कर रहे हैं, उनको डर नहीं लगता बोलने को, क्यों अधर्म कर रहे हैं ? *श्रोता: डर क्यों नहीं लगता है ?* डर क्यों नहीं लगता है पूछते हैं, क्योंकि आगम के अनुकूल बोल रहे हैं हम। भगवान ने जो बताया है वैसा बोल रहे हैं, उसमें डर क्या है ? जो जैन नहीं हैं उसको क्या कहेंगे ? यह अजैन है। तो जो धर्म नहीं उसको क्या कहेंगे ? क्योंकि धर्म किसको कहना ? वीतरागता धर्म है; जो वीतरागता नहीं है वह सारा अधर्म है यह मानना है न ! वहां छोड़ने को कौन बोल रहा है। आपके कहने से छूटनेवाला भी नहीं है। अरे आप क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं

छोड़ सकते हैं, पुण्य क्या छोड़ोगे ? जिसको पूरी दुनिया पाप कहती है उसको नहीं छोड़ रहे हैं तो पुण्य को बुरा कहने से कोई पुण्य छोड़नेवाला थोड़े ही है ? वह अपने समय में आयेगा और छूटेगा। कोई सही जानेगा, सही पहचानेगा, उसका अभिप्राय सही हो जायेगा तो पुण्य भी छूट जायेगा। किंतु छोड़ने लायक है ऐसे पहले श्रद्धा में लेना है। श्रद्धा की जो विपरीतता चल रही है, यह सबसे बुरी में बुरी बात है। अभी हम चर्चा करेंगे क्यों इतना सारा बंध हो रहा है। बंध का मुख्य कारण मिथ्यात्व है, वह तो किसीको पाप ही नहीं लगता है। कोई हिंसा, झूठ, चोरी करे तो पाप लगता है; परंतु यह जो मान्यता की विपरीतता है, जो मूल में भूल है और उसको टाले बिना मोक्षमार्ग की शुरुआत ही नहीं होती है, वह पाप है ऐसा कभी लगता ही नहीं है। उसकी चर्चा करेंगे।

मोहनीय के दो भेद देखें। श्रद्धा की विपरीतता जिस कारण होती है, जिस निमित्त से होती है उसको कहेंगे दर्शनमोहनीय कर्म और चारित्रमोहनीय कर्म के उदय में क्या होता है ? क्रोध, मान, माया, लोभ। वीतरागता जो धर्म है, उसके विपरीतभाव कषाय है। **अंतराय कर्म विघ्न** डालनेवाला, **बाधा डालनेवाला कर्म है। दातार और पात्र में अंतर डाले वह अंतराय है। जिसतरह राजा किसीको दान देना चाहता है परंतु उसका भण्डारी**, यह खजिनदार होता है न, वह रोक देता है, अभी खजिना खाली हो जायेगा, राजा को सलाह देता है 'रुको जरा' यह दृष्टांत है। **दान देने में बाधा डालता है, उसतरह अंतराय कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य,** ये सभी **जीव के गुण हैं।** हमने चर्चा की थी तो लौकिक दृष्टांत देकर बाहर से- बाह्य चीजों की अपेक्षा समझाया था। परंतु ये सभी जीव के गुण हैं। जीव अपने को ही दान देता है; किसका ? स्वभाव का। तो यह दान, लाभ, किसका लाभ होता है ? अतीन्द्रिय सुख का लाभ स्वयं को होता है; अतीन्द्रिय सुख का भोग स्वयं करता है; बारंबार उसका उपभोग करता है। वीर्य यानी उसका जो पुरुषार्थ है, बल है, अपने बल से वह स्वभावपर्याय प्रकट होती है। मिथ्यात्व में भी पुरुषार्थ कर रहा है, परंतु उलटा पुरुषार्थ कर रहा है, हां।

हम पुरुषार्थी हैं कि नहीं हैं ? हम लौकिक पुरुषार्थ, पैसा कमाया उसको पुरुषार्थ मानते हैं, परंतु जीव का पुरुषार्थ कौनसे गुण की पर्याय है ? *श्रोता: वीर्य गुण*

की पर्याय है। वीर्य गुण की पर्याय है। प्रत्येक गुण जो है, वह द्रव्य में है कि द्रव्य के बाहर है ? पहले नक्की करना है। *श्रोता: द्रव्य में है।* द्रव्य में है, शरीर में तो नहीं है और शरीर के बाहर अन्यत्र तो है ही नहीं है। पैसे में तो नहीं है अपना गुण। तो उसकी वीर्य गुण की पर्याय कहां पर होगी ? जितना बड़ा द्रव्य है उतना बड़ा उसका प्रत्येक गुण है और उतनी बड़ी प्रत्येक गुण की पर्याय है। कोई भी पर्याय अपने गुण से - द्रव्य के क्षेत्र से बाहर जा ही नहीं सकती है। तो हमने क्या पुरुषार्थ किया ? बहुत पैसा कमाया, इतना शिक्षण लिया, इतना समाज का कार्य किया, देखो, इतने शास्त्र लिखे, छपाये, हमने पुरुषार्थ किया। क्या हमारा पुरुषार्थ अपने द्रव्य के बाहर चलता होगा ? *श्रोता: नहीं चलता है।* नहीं चलता है। तो यह पुरुषार्थ जो पर्याय वह अपने में होती है; यह सभी में लगाना- दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। उसमें जो जीव का स्वभाव है, यह सारा स्वभाव का अंश है; वह पर्याय में पूर्ण प्रकट नहीं होता है तो उसको हम कहेंगे अंतराय कर्म के कारण हुआ। यह बाहर की चीजों में अंतराय पड़ना वह तो उपचार की बात है; वह तो सच्चा है भी नहीं है। तो यहां क्या कहते हैं ? लास्ट लाइन, **स्वरूप की रचना पर्याय में करना वीर्य गुण का कार्य है।**

अब हम अघातिकर्मों की चर्चा करेंगे - वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। वेदनीय कर्म के निमित्त से क्या होता है ? ऐसा हम कहेंगे अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलते हैं, वह तो कथन की बात है; जो कोई संयोग हैं, उसमें अनुकूलता लगती है; जो कोई संयोग हैं, उसमें प्रतिकूलता लगती है। संयोगों की रचना यह कर्म नहीं कर रहा है। यह मंदिर की, ये महलों की रचना, ये कर्म नहीं कर रहे हैं। परंतु यह जो रचना हुयी है, वह पुद्गल के अपने कारण से हुयी है, उसमें जीव को सुखरूप परिणमन लगता है, इष्टता लगती है या अनिष्टता लगती है। इष्टता-अनिष्टता तो मोहनीय से लगती है। हां, जहां मोहनीय विद्यमान है, मोहनीय का उदय है, वहां संयोगों में अनुकूलता भासित होती है, वह साता का कार्य और जहां प्रतिकूलता भासित होती है वह असाता का कार्य है। कोई बहुत अनिष्ट संयोग बाहर में दिख रहे हैं दूसरों को, इसलिये वह असाता का कार्य चल रहा है ऐसा हम नहीं कह सकते। फिर भी हम स्थूलरूप से ऐसा कहेंगे संयोगों की अनुकूलता है न ? सातावेदनीय है। यानी ऐसा कहना कोई बड़ी गलती नहीं है यानी

शुरू में स्थूलता से कह देने में कोई आपत्ति नहीं है। बहुत कोई भूल है ऐसी बात नहीं, पर सूक्ष्मता उसकी भी जानने योग्य है। तो कहते हैं **वेदनीय कर्म के निमित्त से अनुकूल या प्रतिकूल संयोग मिलते हैं और मोहनीय कर्म के निमित्त से जीव उनमें इष्ट अनिष्ट कल्पना करके सुखी-दुःखी होता है। सुख-दुःख का अनुभव करानेवाला वेदनीय है।** वेदनीय यानी वेदता है, जीव वेदन करता है, किसका ? सुख का या दुःख का। इसलिये वह जीव उसको अनुकूल लगे तब सुखरूप वेदन करता है तो उसको हम सातावेदनीय कहेंगे। दुखरूप वेदन करता है तो असातावेदनीय कहेंगे।

यह सच्चे आत्मिक सुख की बात नहीं है, नहीं तो हम कहेंगे कि भगवान को तो पूर्ण अतीन्द्रिय अनंतसुख है, तो कौनसे कर्म के कारण है ? भगवान को अनंतसुख है, कौनसे कर्म के कारण, साता कि असाता ? *श्रोता: साता।* वह तो स्वभाव है। यह जो हम साता-असाता की बात कर रहे हैं वह इन्द्रियजन्य सुख-दुःख की बात है और वह सुख-दुःख भी मोहनीय के सद्भाव में होगा अन्यथा नहीं होगा। **आयुकर्म के निमित्त से जीव विवक्षित पर्याय में** पर्याय यानी भव; यह एक समयवाली पर्याय की बात नहीं है, मनुष्यभव को मनुष्यपर्याय कहेंगे। **विवक्षित पर्याय में** यानी **गति में जीवन व्यतीत करता है। यानी भव धारण करने के निमित्त से जो प्राप्त हो वह आयु है।** आयुकर्म क्या करता है ? हमें इस मनुष्यपर्याय को छोड़कर अन्यत्र जाने नहीं देता। अच्छा है न ? अच्छा हमने माना कि नहीं माना ? कर्म से छूटना है कि नहीं छूटना ? अभी आयुकर्म से छुड़ा देते हैं कोई आपको, भला कि बुरा ? डॉक्टर के पास क्यों भागते हैं ? अरे ! आयुकर्म कहीं खत्म नहीं हो जाये, हां, उसको बढ़ाना चाहते हैं। यह जो आयुकर्म है न ! हम पूर्वभव में बांधकर आये हैं; उसका एक परमाणु भी बढ़नेवाला नहीं है और एक समय भी बढ़नेवाला नहीं है। निश्चित समय पर मरण होगा ही होगा क्योंकि उसके पहले आगामी भव की तैयारी हो जाती है हमारी। सारा एकदम ऑटोमॅटिक रिझर्वेशन चलता है यहां पर।

देवलाली में आना है तो कौनसी ट्रेन से आयें ? कहां जायें ? कहां उतर जायें ? आने पर ऑफिस बंद हो तो कहां ठहरें ? सारी रात कहां गुजारे ? कितनी चिंता होती है। यहां से परभव में जाने की कोई चिंता नहीं क्योंकि सारा ऑटोमॅटिक फिक्स अपने

आप हो जाता है। नामकर्म का बंध हो जाता है, आयु का होता है, सबका हो जाता है, चिंता नहीं न, इसलिये ! हम अनंत बार जन्म-मरण करते आये हैं क्योंकि कोई चिंता ही नहीं उसमें और भटकने में बहुत मजा आ रहा है। क्यों भाई ? हां, यह भटकने से अभी कंटाले नहीं न हम। तो आयुकर्म क्या करता है ? आयु यहां समाप्त होने को आयी, किसीका मरण सामने दिख रहा हो या हो गया हो तो हम कितने रोते हैं ? क्यों रोते हैं ? आयुकर्म ने तो हमें यहां बंदी बनाकर रखा है; कारावास है, यहां से छूटने नहीं देता है और हम ऐसे कैदी हैं - आयडियल ! क्या ? कि कारावास है वह टूट जाये, दीवार गिर जाये तो कोई कैदी हो तो भाग जाये, इतना सयाना कैदी भी होता है और हम यहां आयु समाप्त होनी होती है तो डॉक्टर के पास भागते हैं पहले, अरे ! इसको ठीक करो, हमारा कारावास टूट रहा है, हम कहीं भाग न जाये। *श्रोता: किडनी चेंज करेंगे, हार्ट चेंज...* अरे ! सब कुछ, ये कहते हैं कि किडनी चेंज करेंगे, हार्ट चेंज करेंगे, ट्रान्स्प्लांट हो सकता है। देखो, भेदविज्ञान करना आजकल बहुत आसान हो गया है। जो कुछ ट्रान्स्प्लांट हो सकता है, वह मैं नहीं हूं ऐसा समझ लेना। शरीर का कोई ऐसा पुर्जा नहीं, जो ट्रान्स्प्लांट नहीं हो सकता। अरे ! न्यू बॉर्न बच्चा है उसको भी पूरा होल ब्लड ट्रान्स्फ्यूजन कर देते हैं; जाँडिस होता है तो पूरा ब्लड निकाल लेते हैं दूसरा डालते हैं। और भी क्या-क्या नहीं ट्रान्स्प्लांट होता ! हार्ट, लिव्हर, किडनी सब कुछ जो बदल देते हैं उसरूप हम कहां हैं ? यह पूरा एक जॉइंट निकालकर दूसरा स्टील का जॉइंट बदलकर अंदर डाल देते हैं न, नी जॉइंट ! तो उसरूप हम कहां हैं ? अगर हम होते उसरूप तो उसको बदल नहीं सकते थे, यह भेदज्ञान तो कितना आसान है न !

जिसतरह बंदिगृह में कैदी को श्रृंखला से बांधते हैं या लकड़ी के खोड़े में उसका पैर बांध देते हैं जिस कारण वह कैदी अपना स्थान छोड़कर कहीं जा न सके, उसी जगह स्थित रहे, उसतरह आयुकर्म जीव को विवक्षित पर्याय में यानी **मनुष्यपर्याय** में**, तिर्यंचपर्याय आदि में स्थित रखता है।** हमने तो आयु को बहुत अच्छा माना है। हमें बाकी सभी कर्मों का अभाव हो तो चलेगा, आयुकर्म नहीं जाना चाहिये। **नामकर्म के उदय से शरीरादिक संबंधी रचना होती है।** उसके तो बहुत सारे भेद हैं। शरीरादिक में बहुत सारी बातें हैं। वे क्या-क्या हैं उनकी भी चर्चा करेंगे।

तो इनकी रचना होती है नामकर्म के उदय में। **नाना प्रकार का अर्थात् अनेक प्रकार का कार्य उत्पन्न करे वह नामकर्म है।** शास्त्र में उसको चित्रकार की उपमा दी है। जैसे, चित्रकार क्या करता है ? अनेक रंगों के, अनेक प्रकार के, अनेक आकार के चित्र बनाता है। वैसे ही **नामकर्म जीव को नरनारकादिरूप अनेक प्रकार करता है**। यह सारी जो शरीरादि की रचना है, कितना लंबा होना है, कितनी हड्डियां कैसी होनी हैं, बालों का रंग क्या होगा, आंखें कैसी होगी, नाक का क्या शेप होगा- ये सब क्या हैं, किसकी रचना है ? नामकर्म की रचना है। **गोत्रकर्म के निमित्त से जीव को उच्च या नीच गोत्र प्राप्त होता है। जिसतरह कुम्हार मिट्टी की बड़ी या छोटी चीजें बनाता है, मूल्यवान या कम मूल्य की हलकी चीजें बनाता है, उसतरह गोत्रकर्म जीव को उच्च या नीच दशा को प्राप्त कराता है।** यह उनके हमने कुछ कार्य देखे। उसके उदय में जो कुछ कार्य बनते हैं। यहां बोर्ड पर जो लिखा है न ! उसको देखते हैं जरा।

पाप-पुण्य

घातिकर्म	**अघातिकर्म**	
सभी पापरूप ही हैं	**पुण्य**	**पाप**
ज्ञानावरण	सातावेदनीय	असातावेदनीय
दर्शनावरण	शुभआयु	अशुभआयु- नरकायु
मोहनीय	शुभनाम	अशुभनाम
अंतराय	उच्चगोत्र	नीचगोत्र

- बंध ७ का निरंतर, आयु का बंध कभी-कभी -

हमने जो आठ कर्म देखे हैं ज्ञानावरण आदि, इनमें पुण्य-पाप का थोड़ा हम भेद देखेंगे। हिसाब लगाना है न ? हमें हिसाब लगाना है पुण्य-पाप का। इन आठ कर्मों में पुण्यरूप कौनसे हैं और पापरूप कौनसे हैं ? इनको हम देख रहे हैं। ये जो घातिकर्म हैं- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इनमें कितने पुण्यरूप हैं, कोई बतायेगा मुझे ? *श्रोता: सभी पापरूप हैं।* सभी पापरूप हैं, लिखा है इसलिये ? *श्रोता: नहीं-नहीं।* यहां लिखा है सभी पापरूप ही, ही लगाया, सभी पापरूप हैं। इनका

हिसाब बाद में लगायेंगे। पहले चार्ट पर लिखा था कि ज्ञानावरण पांच अलग-अलग प्रकार के हैं; दर्शनावरण नौ प्रकार के हैं; मोहनीय है वे अट्ठाइस हैं और अंतराय पांच हैं। इन ४७ प्रकृतियों में से एक भी प्रकृति पुण्यरूप हैं ही नहीं, सभी पापरूप हैं। पाप-पुण्य का भेद कहां होता है ? यह सारा भेद अघातिकर्मों में होता है।

अघातिकर्मों में जो चारों मूलप्रकृति हैं उनमें पुण्यरूप भी कुछ हैं और पापरूप भी कुछ हैं। जैसे वेदनीय कर्म में सातावेदनीय वह शुभरूप यानी पुण्यरूप प्रकृति है; असातावेदनीय वह पापरूप प्रकृति है। आयु में शुभआयु, शुभ कौनसी हैं ? देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु तीन आयु शुभआयु हैं और एक नरकायु है वह अशुभआयु है। नामकर्म में कितने ही शुभनामकर्म हैं और कितने ही अशुभनामकर्म हैं। गोत्र में उच्चगोत्र शुभ प्रकृति और नीचगोत्र अशुभ प्रकृति है। ये जो हैं शुभ प्रकृतियां और अशुभ प्रकृतियां, ये ऐसे भेद हैं उनके।

आठों ही कर्मों का उदय निरंतर चलता है। उदय की बात चल रही है, बंध की नहीं; क्या कहा ? आठों ही कर्मों का उदय निरंतर चल रहा है और बंध ? आयु कभी-कभी बंधती है। जब आयु बंधती है तब आठ कर्म बंधते हैं और जब आयु नहीं बंधती है तब सात कर्म बंधते हैं। कब बंधेंगे ? शुभ करेंगे तो बंधेंगे कि अशुभ करेंगे तो बंधेंगे ? *श्रोता: मध्यम परिणामों में।* आयु की बात नहीं है, जो हर समय सात कर्म तो बंध ही रहे हैं; तो शुभभाव से बंधेंगे कि अशुभभाव से बंधेंगे ? *श्रोता: दोनों से।* दोनों से बंधेंगे। हम पुण्य परिणाम करें या पाप परिणाम करें तो सात कर्मों का बंध तो निरंतर चल ही रहा है। बंध कितने का चल रहा है निरंतर ? *श्रोता: सात का।* सात का, उनमें चार कर्म कैसे हैं ? *श्रोता: पापरूप।* पापरूप ही हैं; अभी हम स्वाध्याय कर रहे हैं, तो ये चार कर्म बंध रहें हैं कि नहीं बंध रहे हैं ? *श्रोता: बंध रहे हैं।* बंध रहे हैं; वे कैसे बंध रहे हैं ? पापरूप ही हैं। तो यह करने का क्या फायदा ? पांच दिन वेस्ट हो गये हमारे। तो कहते हैं ये जो अघातिकर्म हैं न, उसमें दो प्रकार के कर्म हैं। कौनसे ? पुण्यरूप भी हैं और पापरूप भी हैं। जब हम पुण्य कर रहे हैं; दया, दान, व्रत आदि कर रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं, स्वाध्याय कर रहे हैं, ये सारे शुभभाव हैं; उस समय घातिकर्म जो बंध रहे हैं वे तो पापरूप ही हैं और पुण्य कहां बंध रहा है ? अघाति में। कौनसा पुण्य बंधेगा ?

सातावेदनीय बंधेगा, शुभआयु बंधेगी, नामकर्म में शुभ प्रकृति बंधेगी और उच्चगोत्र बंधेगा। जीव को क्या मिलेगा ? *श्रोता: संयोग और...* संयोग मिलेगा; शरीर को जो कुछ गोरा-भूरा बनना है वह बनेगा; उच्चकुल मिलेगा; शुभआयु की जो कुछ दीर्घता है वह मिलेगी, उसमें जीव को क्या मिला ? जीव के गुणों में निमित्त होनेवाले ये घातिकर्म बंधते हैं, जो पापरूप ही बंध रहे हैं। हमने इतना सारा पुण्य कमाया, कहां गया ? उसका क्या हुआ ? जीव को कुछ नहीं मिला, क्यों नहीं मिला उसे आगे चलकर देखेंगे।

ये कर्म जो उदयरूप होते हैं उनमें कुछ हैं जीवविपाकी - जीव को फल मिलता है; कोई हैं पुद्गलविपाकी - पुद्गल में फल मिलता है; कोई क्षेत्रविपाकी - विशिष्ट क्षेत्र में उसका उदय होता है; और कोई है भवविपाकी- जो आयुकर्म है, जो भव में उसका निमित्त बनता है। तो इनमें ये सारा हमने पुण्य कमाया, कहां गया ? पुद्गल में चला गया जिनसे हमें अपने को भिन्न जानना है - भेदज्ञान करना है। पुण्य के उदय में हम जो अच्छा-अच्छा मानते हैं न ! बहुत रुचि है हमको। पुण्य का फल किसमें मिल रहा है सारा ? अरे ! अघाति में मिल रहा है, संयोगों में मिल रहा है; शरीर में मिल रहा है; कुछ और बातें बनेगी वहां पर; परंतु जीव को उसमें क्या मिल रहा है ? जीव को तो उलटा उन संयोगों को भोगने का जो भाव होगा न, वह तो पापभाव होगा। यहां से पुण्य कमाकर देव में चला जाता है और वहां इतना विषयासक्त बनता है कि विषयों को भोगने के परिणामों में एकेन्द्रिय का बंध करके पृथ्वीकायिकादि में चला जाता है। यह अनादि से ऐसा चल रहा है कभी पुण्य, कभी पाप; पुण्य कोई विशेष बात नहीं है। अरे ! निगोद का जीव भी शुभभाव करके मनुष्यपर्याय में आता है और उसी भव में मोक्ष जा सकता है। निगोद का जीव वहां से आता है, पंचेन्द्रिय में जन्म लेता है तो पाप से लेता होगा कि पुण्य से लेता होगा ? *श्रोता: पुण्य से।* तो वहां कौनसा पुण्य करता होगा ? भगवान की आरती उतारता होगा, क्या करता होगा ? *श्रोता: नहीं।* तो लोग पूछते हैं निगोद जीव पुण्य कैसे करता है ? शुभराग कैसा करता होगा ? वह अशुभराग कैसा करता होगा ऐसा किसीको प्रश्न नहीं होता।

देखो, यह शुभ और अशुभ भाव सहजरूप से होते हैं क्योंकि चारित्र गुण है न ? गुण है तो उसकी पर्याय निश्चित है। वहां कोई सम्यग्दर्शन तो है ही नहीं। तो क्या होता

होगा ? शुभ या अशुभ राग ही होते हैं और उसके कारण वहां बंध भी होते हैं और वहां से मरकर जीव अन्य पर्यायों में आते भी हैं। मनुष्य-तिर्यंचों में आते हैं, संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी जन्म लेते हैं। तो वहां भी पुण्य और पाप, पुण्य और पाप निरंतर ऑल्टरनेटिव्हलि अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में बदलता रहता है, हमारा भी। यहां भी हमें पुण्यरूप-पापरूप जो परिणाम होते हैं; शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ वे होते ही रहते हैं; हमारे करने से या नहीं करने से न रुकते हैं, न होते हैं। परंतु हमने उनको अपना रूप माना है। जो राग-द्वेष के परिणाम होते हैं वे मेरे हैं, मेरे करने से होते हैं, ऐसा हमने माना है। यह अभिप्राय में भूल है, मिथ्यात्व है, यह अत्यंत खतरनाक है। हमें तो कषाय अधिक होते हैं वे दिखायी देते हैं। मैं तो कहती हूं, होने दो न ! परंतु उनसे अपने आपको पहले भिन्न पहचानो। हम कोशिश क्या करते हैं ? कषायों को कम करें। अरे ! जो ऑलरेडि हो चुका है उसको क्या कम करें और जो अभी हुआ ही नहीं उसको क्या कम करें ? हमें तो उनसे मैं भिन्न हूं, ज्ञायक हूं, इसको पहचानकर उसकी दृढ़ता करनी है। यह इतना सरल मार्ग है फिर भी उसको चूक जाते हैं और कहीं न कहीं भटकते रहते हैं। ये सारा जो कर्मों का बंध और उदय चल रहा है न अनादि से; वे बातें चलती रहती हैं; कर्म का बंध भी और फिर उसका उदय भी और फिर जीव का निरंतर जन्म-मरण, जन्म-मरण चलता रहता है।

हम पुण्य-शुभभाव करते हैं न ? पुण्य परिणाम करते हैं तो क्या-क्या बंधता है ? घातिकर्मों में तो पाप ही बंधता है और अघातिकर्म में थोड़ा पुण्य बंधता है और जब पाप करेंगे तो क्या होगा ? घाति तो पापरूप बंधेंगे ही बंधेंगे; अघाति में भी पाप बंधेगा। इसलिये योगसार में क्या कहा है कि पाप को तो पाप सारा जगत जानता है, परंतु पुण्य भी पाप है यह कोई विरले ही जानते हैं। यह क्यों विरले जानते हैं ? क्योंकि उनको पता है कि सही क्या है। पाप का या पुण्य का बंध होने से और उसके उदय होने से हमारा जीव का कुछ लाभ नहीं उसमें; हमें कुछ उसका फायदा ही नहीं है। मिथ्यात्व छूटे बिना कितना भी पुण्य हो जाये तो भी उससे किंचित् मात्र भी कुछ भी फर्क नहीं पड़नेवाला। क्यों नहीं पड़नेवाला ? क्योंकि जैसा हमने देखा, हर समय एक समयप्रबद्ध का बंध होता है और एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु खिरकर चले जाते हैं। बिना

मोक्षमार्ग के भी हमारे-आपके, सबके एक समयप्रबद्ध यानी अनंत परमाणु बंधते हैं और अनंत परमाणु खिरकर निकल जाते हैं। तो कोई अज्ञानी तप करे..., हर एक ग्रंथ में गाथा है अष्टपाहुड़ में, छहढ़ाला में सब जगह है। क्या ? अज्ञानी करोड़ों भवों तक तप तपे तो उसकी जितनी निर्जरा होगी, उतनी निर्जरा ज्ञानी की एक क्षण में यानी एक छोटे अंतर्मुहूर्त में हो जाती है। अज्ञानी की हर समय एक समयप्रबद्ध की निर्जरा होती है यानी एक समयप्रबद्ध उदयरूप होकर खिर जाता है और ज्ञानी की हर समय में असंख्यातगुणा निर्जरा होती है, श्रेणी में तो असंख्यात समयप्रबद्ध खिरते हैं। वे कैसे खिरते हैं ? क्या-क्या होता है? उसकी बात हम देखेंगे। आगामी क्या-क्या आकर्षण है थोड़ा पहले बतायें न ! नहीं तो आप पहले ही दिन भाग जाओगे।

कर्म का उदय

ज्ञान की हीनता	संयोग अनुकूलता/प्रतिकूलता
दर्शन की हीनता	आयु
श्रद्धा, चारित्र की विपरीतता	शरीरादि की रचना
दानादि में बाधा	उच्च-नीच गोत्र

इन कर्मों के उदय में क्या-क्या बातें बनती हैं उसे हम देखेंगे और कर्म का एक खाता खोलेंगे। कर्म के उदय में होनेवाली बातों को हम कर्म के खाते में डालेंगे। फिर वह कौनसे कर्म के उदय में कौनसे कर्म बंधते हैं उसकी भी बात करेंगे हम। अभी हमने कर्मों के उदय की बात दृष्टांतों द्वारा समझी थी, उसको ही दुबारा समझ लेते हैं। करणानुयोग परिचय पुस्तक में पृष्ठ संख्या १५। यहां लिखा है देखो बोर्ड पर, कर्म के उदय में क्या-क्या होता है ? ज्ञानावरण के उदय में ज्ञान की हीनता हो रही है; दर्शनावरण के उदय में दर्शन की हीनता हो रही है; मोहनीय के उदय में श्रद्धा की और चारित्र की विपरीतता हो रही है; अंतराय के उदय में दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में बाधा आती है। वेदनीय के उदय में संयोगों की अनुकूलता या प्रतिकूलता होती है; आयु के उदय में उसकी जो कोई दीर्घता है वह चलती है; नामकर्म के उदय में शरीरादि की रचना होती है और गोत्रकर्म के उदय में उच्च या नीच गोत्र मिलता है।

अब हमें इसमें यह देखना है कि इसमें से कौनसे कर्म के उदय में नया बंध होता है। ये बातें हमने सारी मोक्षमार्गप्रकाशक में देखी हैं, पढ़ी हैं, सुनी हैं। यह ज्ञान की हीनता होती है, तो ज्ञान की हीनता से बंध होता है कि नहीं होता ? नहीं होता कि होता है ? *श्रोता: नहीं होता।* नहीं होता; क्यों नहीं होता ? देखो। *श्रोता: वह तो स्वभाव का अंश है।* हां, स्वभाव का अंश है। केवलज्ञान हमारा स्वभाव है, परंतु अभी इतनासा ज्ञान प्रकट है, इतनासा। तो जो प्रकट है उससे बंध होता है कि जो नहीं प्रकट होता है उससे बंध होता है ? *श्रोता: जो नहीं प्रकट।* हां, जो नहीं प्रकट उससे बंध हो रहा है कि जो प्रकट है उससे बंध हो रहा है ? *श्रोता: दोनों से नहीं।* दोनों से नहीं होता है, क्यों ? जो है ही नहीं उससे बंध क्या होगा और जो थोड़ासा अंश प्रकट है वह तो स्वभाव का अंश है। यदि स्वभाव से बंध होने लगा तो बंध से हम तीन काल में मुक्त नहीं हो सकते हैं। इसलिये जो अंश प्रकट है; हीनरूप अंश प्रकट है, उससे नया बंध नहीं हो रहा है। दर्शन के बारे में भी ऐसा समझना है; दर्शन का जो अंश हीनरूप से हमारा प्रकट है, उस प्रकट अंश से नया बंध नहीं होता है। नये बंध की बात है क्योंकि हमने सुबह देखा था एक समय में तीन कार्य होते हैं। कौनसे ? पुराने कर्मों का उदय, जीव के मोह-राग-द्वेष परिणाम और नया बंध। तो पुराने कौनसे कर्मों के उदय में नया बंध हो रहा है ? तो अभी हमने देखा, ज्ञानावरण के उदय में नया बंध नहीं हो रहा। दर्शनावरण के उदय में दर्शन की हीनता होती है। परंतु जो कोई प्रकट है वह तो स्वभाव का अंश है, उससे भी नया बंध नहीं हो रहा है। मोहनीय को बाद में देखेंगे। अंतराय के उदय में यह जो वीर्य आदि जो स्वभाव का अंश है वह थोड़ा प्रकट है परंतु उससे भी बंध नहीं होगा।

अब अघाति की बात करेंगे। अघातिकर्मों के उदय में यह संयोग अनुकूल होगा तो अधिक बंध होता है कि प्रतिकूल होता है तो ? हां, क्या कहते हैं शरदभाई ? *श्रोता: अधिक संयोग या कम संयोग से कुछ फर्क नहीं होता है।* उससे कुछ नहीं होता है। अधिक संयोग या कम संयोग, अनुकूल संयोग या प्रतिकूल संयोग, उससे कहते हैं कोई बंध नहीं होता। क्यों ? वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य से बंध होने लगा तो ये परद्रव्य तो हमेशा रहेंगे। लोकाकाश में रहना है जीवों को भी और पुद्गलों को भी। हां ? उनको कहां हटायें ? तो परद्रव्य से बंध होता ही नहीं। हम तो लगे हैं अनुकूल करने को।

पहले क्या करें ? शरीर को तो नामकर्म में देखेंगे, चलो। पहले संयोगों को अनुकूल बनाने में हम लगते हैं क्योंकि उससे भेदज्ञान करना है न ! जरा साफसूफ करेंगे तो उससे भेदज्ञान करना अच्छा रहता है। संयोग अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, उनसे कुछ नया बंध नहीं होता है। अब कहेंगे आयु; लंबी आयुवालों को ज्यादा बंध होता है कि कम आयुवालों को होता है ? *श्रोता: उससे भी कुछ नहीं होता।* उससे भी कुछ नहीं होता यह सबको पता है। नामकर्म के उदय में तो बंध अधिक होता होगा ? तो शरीर ठिगना होगा तो बंध होगा न ज्यादा कि ऊंचेवाले को होगा ? हमको तो सबको ऊंचा शरीर चाहिये, क्यों मौसीबाई ? हमें बहू कैसी चाहिये ? टॉल और फेअर चाहिये। कोई दुबली हो तो ? कोई डिफॉर्मिटी हो तो ? नहीं चले। क्यों ? क्योंकि हमने अपने को शरीररूप माना है तो दूसरों को भी शरीररूप से देखते हैं; ख्याल में आती है न बात ?

इस शरीर से हमें भेदज्ञान करना है। शरीर काला हो तो बंध ज्यादा होता होगा न भाई ? कि गोरे शरीर को बंध होता होगा ? शरीर को तो होता ही नहीं। जीव को गोरे शरीर के कारण बंध होता है कि काले शरीर के कारण होता है ? *श्रोता: शरीर के कारण बंध नहीं होता है।* शरीर के कारण बंध होता ही नहीं है। पहले हम क्या करेंगे ? काला शरीर है न थोड़ा ! पहले गोरा करेंगे, अभी बहुत सारी क्रीम मिलती हैं। *श्रोता: फेअर अँड लव्हलि।* फेअर अँड लव्हलि, अच्छा, तो पहले थोड़ा गोरा करेंगे, फिर मेकप करके आयेंगे और फिर बैठ जायेंगे ध्यान करने को कि शरीर से मैं भिन्न हूं ! तो इस शरीर से भी यानी नामकर्म के उदय में भी नया बंध नहीं हो रहा है यह बात बता रहे हैं। अब गोत्रकर्म के उदय में उच्चगोत्र हो या नीचगोत्र हो, उसके कारण कोई नया बंध नहीं हो रहा है। एक किसीको छोड़ा था हमने... *श्रोता: मोहनीय।* मोहनीय कर्म को छोड़ा था। तो मोहनीय कर्म के उदय में यह दर्शनमोहनीय के उदय में जो मिथ्यात्व हो रहा है, वह जीव स्वयं ही कर रहा है। मिथ्यात्व के उदय में और चारित्रमोहनीय यानी राग-द्वेष के सद्भाव में जीव को नया कर्म बंधता है। एक मोहनीय के उदय में आठों कर्म बंध रहे हैं। मोहनीय सहित अन्य सातों का यानी आठों का उदय तो निरंतर है; आठ कर्मों का उदय निरंतर चल रहा है; परंतु आठों कर्मों के उदय में नया बंध नहीं हो रहा है। परंतु मोहनीय कर्म के उदय में नये आठों ही कर्मों का नया बंध हो रहा है।

हमें मूल में मूल कौनसे कर्मों का उदय अभी मिटाना है ? आयु को मिटाना है कि संयोगों को मिटाना है कि शरीर को पहले दूर करना है। क्या करना है ? *श्रोता: मोहनीय को।* हां, तो मोहनीय का उदय हो रहा है। उसमें जीव को नया बंध हो रहा है। देखो यह बुद्धि में स्वीकार करना है, ज्ञान में यह सारा होगा। हम तो कहीं न कहीं कुछ क्रिया करने में पहले में पहले लग जाते हैं कि यह करने से मुझे धर्म प्रकट होगा। यह क्रिया तो शरीर की हुयी और भावों को बदलना चाहते हैं तो भाव तो जीव के परिणाम जो शुभ-अशुभभाव हैं, विकारीभाव हैं उनको तो कुंदकुंदाचार्य ने जड़ का कह दिया है, पर का क्योंकि उससे भेदज्ञान कराना है न ! वह भेदज्ञान कैसे करना हम देखेंगे अभी। यह नया बंध हो रहा है मोहनीय के उदय में; मोक्षमार्गप्रकाशक में कितना सुंदर बताया सारा। यह मेरी अपनी थोड़ी ही बात है ? इन ग्रंथों से मैं आपको समझा रही हूं।

यह मोहनीय के उदय में जो नया बंध हो रहा है इसका मूल कारण तो अभी हमें पता चला। तो अभी इसका थोड़ा भेदज्ञान कैसे करना ? कर्मों का उदय, तो आठों कर्मों का उदय चल रहा है निरंतर, तो उससे हम भेदज्ञान करना चाहते हैं। अभी हम दो खाते खोलेंगे; एक कर्म का खाता, एक अपना खाता। किसीने कोई चीज अपने पास रखी और कहा कि हम जरा यात्रा में जा रहे हैं, इसको संभालो। तो हम रखते हैं घर में, तो घर में रखते हैं तो क्या समझकर रखते हैं ? *श्रोता: यह दूसरे का है।* दूसरे का है और उसको अपना मानें तो ? *श्रोता: चोर कहलायेंगे।* चोर कहलायेंगे, अच्छा ! वह तो हम बहुत सयाने हैं लौकिक में। तो दूसरे की चीज अपने पास भले पड़ी रहे परंतु, उसको हम अपनी नहीं मानते, क्योंकि हम चोर नहीं बनना चाहते। क्यों ? वैसे ही यहां जो कोई कर्म की बाते हैं, कर्म के उदय में मिलनेवाले जो फल हैं तो ये कर्म के खाते में डालेंगे हम और जो अपना है वह अपने खाते में रखेंगे; कबूल है न सबको ? जो अपना है वह अपना मानना है और जो कर्म के उदय में हो रहा है वह कर्म का है।

अभी देखेंगे हम, यहां पहले में पहले ज्ञानावरण का उदय चल रहा है, उसमें क्या हो रहा है ? यहां लिखा है न ! ज्ञान की हीनता। अब ज्ञान की जो हीनता हो रही है वह हम कर्म के खाते में डालेंगे और अपने खाते में केवलज्ञान स्वभाव, जो स्वभाव है वह अपने खाते में रखेंगे और जो कर्म के उदय में जो कुछ बातें बन रही हैं; भले उसके

निमित्त से जीव स्वयं ही कर रहा है, फिर भी हम उसको अभी निमित्त से होनेवाले कार्य को निमित्त का कह देंगे। यह भी अपेक्षा आ रही है न समयसार में। ये जो बातें हो रही हैं, कौनसी ? हमारा स्वभाव तो केवलज्ञान है और अभी यह पर्याय में कितना ? इतना हीन अल्प ज्ञान प्रकट हो रहा है। हमने अपने को क्या माना ? हम बहुत बुद्धिमान हैं। देखो, औरों को हम पढ़ा रहे कि नहीं पढ़ा रहे हैं ? तो क्या माना हमने ? यह क्षयोपशमज्ञान जितना मैं हूं माना है। कर्म के उदय में यह जो ज्ञान की हीनता हो रही है, कुछ अपना सौभाग्य नहीं है कि हम क्षयोपशमज्ञानरूप परिणमित हो रहे हैं। है तो अपना केवलज्ञान स्वभाव; तो उसमें अपनत्व नहीं करके, हम किसमें अपनापन कर रहे हैं ? जो पर्याय में हीन अल्पज्ञान हो रहा है अभी, उतना मात्र मैं हूं ऐसा मानते हैं; तो यह हमें कर्म के खाते में डालना है। अपने खाते में तो केवलज्ञान स्वभाव रखेंगे और कर्म के खाते में ज्ञान की जो हीनता हो रही है वह हीनता कर्म के खाते में डालेंगे।

दूसरा है दर्शनावरण; उसमें भी जो दर्शन की हीनता हो रही है तब हम कहेंगे यह कर्म के उदय में हो रही है वह कर्म के खाते में डालेंगे। अपने खाते में क्या डालेंगे? *श्रोता: केवलदर्शन स्वभाव है।* केवलदर्शन स्वभाव है। मोहनीय के उदय में श्रद्धा की जो विपरीतता हो रही है मिथ्यात्व, वह तो कर्म के खाते में डालेंगे और अपने खाते में सम्यक्त्व रखेंगे, जो अपना स्वभाव है। चारित्रगुण की विपरीतता जो हो रही है राग-द्वेष, कषाय आदि, वे तो कर्म के खाते में चले जायेंगे और अपने खाते में कुछ रहेगा कि नहीं रहेगा ? वीतरागता जो अपना स्वभाव है। स्वभाव तो अराग स्वभाव है, कभी रागरूप हुआ ही नहीं है। जैसे सर्वज्ञ अपना स्वभाव है न ! सर्वज्ञस्वभावी मैं हूं कहते हैं और पर्याय में भी जो देखते हैं हम। सर्वज्ञ कौन हो सकता है ? जो पूर्ण वीतरागी होता है वही सर्वज्ञ होता है। तो स्वभाव भी जो सर्वज्ञ है, तो सर्वज्ञ के पहले पूर्ण वीतरागी हमें सोचना चाहिये कि नहीं? तो हमारा स्वभाव भी पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ स्वभाव है और अभी पर्याय में जो कोई राग-द्वेष हो रहे हैं वह कर्म के खाते में डालेंगे। यह तो हो गयी तीन घातिकर्मों की बात। दानादि में जो कोई यहां पुरुषार्थ की कमी आदि जो बातें हो रही हैं वे तो कर्म के खाते में डालेंगे और अपना तो अनंतवीर्य स्वभाव है, वह अपने खाते में चला जायेगा।

अघातिकर्मों में बात देखते हैं, संयोग सारे कहां चले जायेंगे ? अनुकूल हो या प्रतिकूल, अनुकूलता-प्रतिकूलता सारी हो गयी कर्म के खाते में। ये सारे संयोग-पैसा जो कुछ हैं न ! अपना जो लगता है, बहुत अच्छा लगता है वह; वह रखो आपके पास; कोई आपके संयोगों से आपको दूर नहीं करेगा परंतु उसको अपना मत मानो, कर्म का उदय मान लो। आयु- देखो हम कैसे निरोगी हैं, अच्छा है, मेहनत करते हैं, दवाई लेते हैं बराबर रेग्युलर। यह जो कोई आयु चल रही है, वह कर्म के खाते में डाल दो। अब यह नामकर्म बड़ा है, उसके उदय में तो बहुत सारी बातें बनती हैं शरीर की; गोरा है कि काला है और उसके बाल कैसे, आंखे कैसी, हाइट कितनी; क्या है यह सारा यश है कि अपयश है, सब कुछ बातें जब हम डीटेल में पढ़ेंगे तो ये सारे क्या हैं ? कर्म के उदय में होनेवाली बातें हैं। यह शरीर भी नहीं रहेगा अभी आपके पास हो ! शरदभाई। हां, सोचना। यह कर्म के खाते में चला गया; शरीर तो गया उसमें जो कोई रोगादि होते हैं वे सारे शरीर के साथ वे कर्म के खाते में चले जायेंगे और उच्चकुल-नीचकुल यह भी सारा कर्म के खाते में जायेगा।

तो हमारे खाते में कुछ रहा कि नहीं रहा, यशवंतभाई ? *श्रोता: केवलज्ञान स्वभाव।* कुछ नहीं ? क्या झिरो हो गये हम ? हां, अरे ! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, अनंतसुख और पूरा वीतरागी सर्वज्ञ स्वभाव ये हम हैं। परंतु कर्म के उदय में जो-जो कुछ बातें बन रही थी अल्पज्ञान है, अल्पदर्शन है, अल्पवीर्य है या कोई संयोग हैं, शरीर है इस सबको मैंने मैं मान लिया है, यह मेरी भूल हुयी। यह कर्म के उदय की बातें कर्म के उदय में डालो। मोह-राग-द्वेष के परिणाम भी कर्म के उदय में हो रहे हैं; वे तो कर्म के खाते में डालो। अपना तो अराग स्वभाव है, उसमें अपनत्व करना है। यह स्वभावरूप मैं हूं और ये कर्म के उदय में होनेवाली बातें उसरूप मैं नहीं हूं, यह कर्म की बात है। ना शरीर को हटाना है, ना राग-द्वेष को हटाना है, ना संयोगों को हटाना है; उसरूप मैं नहीं हूं, मैं अपने स्वभावरूप हूं यह स्वीकार करना है। यह सारा बुद्धि के लेव्हल पर होगा। फिर तो अच्छा है, हमारे संयोग तो कोई ले नहीं जायेगा न ! क्योंकि हम संयोगों में इतने रचे पचे हैं कि उनसे जुदाई की बातें सुननी भी हमें पसंद नहीं है, हमारी इतनी सारी मेहनत...। देखो, पढ़ाई में हमारे पच्चीस-तीस साल गये, फिर पैसा

कमाने में इतने साल गये और आप कहते हो संयोग आपरूप नहीं हैं। यह जो सारा मिल रहा है, वह पूर्व के पुण्य के उदय में मिल रहा है, अभी के वर्तमान के कष्टों से नहीं। तो अभी तक की इतनी पढ़ाई बेकार गयी न ?

कल बात आयी थी न अष्टपाहुड़ में; गुरुदेवश्री कहते हैं अष्टपाहुड़ के प्रवचन में- यह लौकिक पढ़ाई का भाव है न, वह पापभाव है। हां, क्यों पढ़ना चाहते हो ? पैसा कमाने। क्योंकि जब स्कूल में डालते हैं तब से हम सोचते हैं; कहां डालना है, कौनसी लाइन लेना है, किसमें ज्यादा लाभ है, कमायी किसमें ज्यादा है ? यह लौकिक पढ़ाई का भाव भी पापभाव है कहते हैं। हम तो उसमें ही अपना सारा बड़प्पन मानते हैं। तो इतना सारा पढ़ा, हमने इतने साल बिताये हैं; किसमें ? पढ़ने में। डेली कितने घंटे पढ़ते हैं मालूम है आपको ? हमने तो डॉक्टरी कर ली, पता नहीं कितने-कितने घंटे पढ़े, आठ-आठ, दस-दस, ग्यारह-ग्यारह घंटे, क्यों ? यहां भी हमें हां, यह सारा पढ़ना है शिबिर में छह-छह घंटे; वह बहुत ज्यादा लगता है। अन्यत्र हम स्वाध्याय कितने घंटे करते हैं ? पन्द्रह मिनट। वह वहां कुकर लगाया, ऑन किया और यहां स्वाध्याय में बैठे। वह तो सिटी बजाता है, तब तक हम स्वाध्याय करेंगे। वैसे आजकल हमारे घरों में जगह भी बहुत कम है। पुस्तकें रखने के लिये जगह नहीं भाई ! यानी डेली पेपर घर में नहीं आये, तो चाय गले से नीचे नहीं उतरती है, हां; परंतु कभी ऐसा है कि जिनवाणी पढ़े बिना, मेरा क्या होगा, मुझे सूझता नहीं, ऐसा कभी होता है ? क्यों ? हमें समय नहीं है परंतु वह फेवरिट कोई टीव्ही सीरियल होगी तो समय ही समय है। जिनवाणी के लिये हम कितना पैसा देते हैं ? हमारे महीने भर की जो क्या कहते हैं उसको रद्दी क्या कहते हां, पेपर जो कुछ बेचते हैं। *श्रोता: पस्ती।* पस्ती, पस्ती अच्छा। उसके जितने पैसे आते हैं, क्या उतने भी हम जिनवाणी पर खर्च कर रहे हैं ? *श्रोता: नहीं।* अरे ! जिनवाणी कहां रखें ? हमारे घरों में जगह नहीं है। घर की जिनवाणी भी बाहर निकाल दी जाती है क्योंकि मां-बाप बुड्ढे हो गये तो इसको कौन पढ़ेगा अभी ? किसीको पुस्तक देंगे न फ्री में, तो कहेंगे कहां रखेंगे हम ? आपकी किताब है, आपके पास रखो। हं ? इतना तो हमें शास्त्र के प्रति जिनवाणी के प्रति प्रेम है और आदर है ! और हमें सम्यग्दर्शन चाहिये, मिलेगा कि नहीं मिलेगा ? *श्रोता: जरूर मिलेगा।* जरूर मिलेगा, जब अभिप्राय

सुधारोगे और उसके प्रति इतना समर्पण भाव होगा तो जरूर मिलेगा। क्यों नहीं होगा ?

यहां जो हम देख रहे थे, यह जो हमने अभी जो नये खाते खोले हैं न ? हां, तो याद रखना। घर के हर एक के खाते तो अलग-अलग रखते हैं; बॅंकों के खाते, हां और यहां तो ! यह सारा कर्म का माल भी मेरा है; वह अपना है मानोगे तो पराया माल अपना मानोगे तो, तो चोर कहलायेंगे। हम तो जैनी हैं, हम बिलकुल पराया माल अपना नहीं मानते हैं। तो यहां हम कर्म के उदय में जो कोई बातें देख रहें हैं; ये कर्म के उदय में होनेवाली जो बातें हैं, उसरूप मैं नहीं हूं- यह पहले में पहले मानना है। देखो, समयसार में जो अपेक्षा आती है; एक बार कहते हैं कि जीव राग कर रहा है और कहीं कहते हैं कि राग जीव का है ही नहीं, पुद्गल का है, वह जड़ है; क्यों ? क्योंकि कर्म के उदय में होता है इसलिये उसको पुद्गल का है कहेंगे। यहां मूल ग्रंथ में बात आयी है, यह स्वभाव की बात आयी थी न ! उसमें तो यह, हां, देखो मिल गया- दो नंबर की गाथा में जहां प्रकृति स्वभाव को कहते हुये कहा था, वहां ही यह बात लिखी है। आपके पास पुस्तक है न ! शरदभाई देख लेना। पहली गाथा की टीका के पहले पॅरेग्राफ के अंत में, स्वभाव - **वहां रागादिरूप परिणमना आत्मा का स्वभाव है।** क्या कहा? रागादिरूप परिणमना आत्मा का स्वभाव है और **रागादिक को उपजाना कर्म का स्वभाव है।** क्योंकि उसके उदय में जीव के राग हो रहे हैं। यहां स्वभाव किस अपेक्षा से ? क्योंकि जिसरूप परिणमता है। **यः परिणमति सः कर्ता।** जो अपने पर्यायरूप से परिणमन कर रहा है वह उसका कर्ता है; तो यहां राग को आत्मा उसका कर्ता है कहेंगे; हां बिलकुल ! क्योंकि जीव की पर्याय में हो रहे हैं तो जीव उसका कर्ता है। फिर भी जीव उसको अपना ही मान रहा है, उतना ही मैं हूं मान रहा है तो उसको कहेंगे यह कर्म के उदय में होता है। यह कर्म का है, यह पुद्गल है, वह जड़ है यहां तक कह दिया है। तो लोग पूछते हैं न ! एक बार ऐसा कहते हैं, एक बार ऐसा कहते हैं।

प्रवचनसार में तो कह रहे हैं, जीव राग है, रागी भी नहीं; जीव राग है कहा, जीव क्रोध है और समयसार में कहते हैं तो वह क्रोध तो पुद्गल का है, वह जड़ है; जीव उसरूप है ही नहीं है। अच्छा हुआ कि कुंदकुंदाचार्य ने ही दोनों ग्रंथ लिखे हैं; नहीं तो हम तो आचार्यों में भी भेद कर डालते; हम इस पक्षवाले हैं और वे उस पक्षवाले हैं।

अभी यहां तो नहीं कह सकते कि हम प्रवचनसारवाले हैं और हम समयसारवाले हैं क्योंकि लिखनेवाले कुंदकुंदाचार्य और टीका लिखनेवाले अमृतचंद्राचार्य भी वे ही के वे ही हैं; जयसेनाचार्य भी वे ही के वे ही हैं। परंतु हमें भेदज्ञान करना बहुत अच्छा लगता है, आसान है न ! तो पक्ष डालते-डालते हमें बहुत अच्छा लगता है। परंतु यह तो अपेक्षा सहित बातें हैं और उसे उस अपेक्षा सहित ही समझना चाहिये। यदि हमारी समझ में नहीं आता तो यह हमारी भूल है। पहले में पहले इसे जीव स्वयं कर रहा है; अपने अपराध से कर रहा है; इसको स्वीकार करना ही चाहिये और जो अपनी पर्याय में भूल हो रही है उस पर्याय मात्र मैं नहीं हूं, मैं तो स्वभाव मात्र हूं ऐसा उसको स्वीकार करना चाहिये। ये कर्म की बातें हों या कोई द्रव्यानुयोग की बातें, तरीका बिलकुल यही है और यही मर्म है। यह बहुत आसान है परंतु हम उसको चूक जाते हैं और उसको टालकर अन्य बड़ी-बड़ी बातें करते रहते हैं।

यहां हमने देखा है कि कर्म के उदय में जो बातें हो रही हैं; वहां जीव स्वयं अपने अपराध से उस पर्यायरूप परिणमित होता है, तब सामने उस-उस कर्म का उदय पाया जाता है। ना जीव कर्म के उदय को करता है, ना कर्म के उदय जीव के परिणामों को जबरदस्ती से करते हैं। जैसे बाहर कुछ तापमान बढ़ रहा है तो यह जो तापमापी आती है, आपका जो बॅरॉमीटर है, उसमें जो मर्क्युरी है वह आपको बताता है कितना टेम्परेचर है। तो यह टेम्परेचर करता है कि बताता है ? *श्रोता: खाली बताता है।* खाली बताता है, वह ऊपर चढ़ा इसलिये बाहर का टेम्परेचर नहीं बढ़ा है। वह तो बतानेवाला है, करनेवाला नहीं है वैसे ही कर्म का उदय जीव के परिणामों को बतानेवाले हैं, करनेवाले नहीं हैं। जब जीव के परिणाम क्रोधरूप हैं, वहां क्रोध कर्म का उदय पाया जाता है। इसीतरह से अन्य में भी समझना। विशेष चर्चा हम अभी आगामी क्लास में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

४. उत्तरप्रकृतियां

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य द्वारा लिखित गोम्मटसार कर्मकाण्ड के आधार से पं. टोडरमलजी ने जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लिखी है कर्मकाण्ड, उसका यहां स्वाध्याय हो रहा है। हमने मूलप्रकृतियों की बात की थी; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय ये घातिकर्म हैं; वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये अघातिकर्म हैं। इन आठ को मूलप्रकृति कहते हैं। इन्हींके जो भेद हैं उनको उत्तरप्रकृति कहते हैं। जैसे ज्ञानावरण की पांच उत्तरप्रकृतियां हैं। हम पंचलब्धि पुस्तक में १५ पृष्ठ पर देखते हैं। कर्म की जो उत्तरप्रकृतियां हैं वे कौन-कौनसी हैं ? कितनी हैं और कौन-कौनसी हैं ?

ज्ञानावरण कर्म की पांच उत्तरप्रकृतियां हैं। हमें ज्ञान के पांच भेद मालूम हैं; मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान; उनके आगे हम आवरण शब्द लगाकर ज्ञानावरण के पांच भेद होते हैं, यह बात देखेंगे। **मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण** और **केवलज्ञानावरण** ये उसके पांच भेद हैं। दर्शनावरण के नौ भेद हैं- चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण और ? *श्रोता: निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृध्दि।* देखो-देखो दर्शन के तो चार ही भेद हैं; दर्शन गुण जो है दर्शन गुण की पर्यायें चार ही हैं, परंतु दर्शनावरण हैं नौ। ज्ञान की पर्याय पांच देखी और ज्ञानावरण पांच देखे। परंतु दर्शन गुण की पर्यायें तो हैं चार और उसके आवरण हैं नौ। हमने बता दिये चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण और उनके आगे कौनसे ? स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा और प्रचला। ये नींद के ही पांच प्रकार हैं। ये निद्रा नाम के दर्शनावरण हैं, वे किसका घात करते हैं ? दर्शन का घात करते हैं कि नहीं ? *श्रोता: करते हैं।* करते हैं ? दर्शन होने ही नहीं देते ? निद्रा में दर्शन नहीं है क्योंकि वह भी सो जाता है ? तो निद्रा में न ज्ञान होता है न दर्शन होता है, ऐसा है ? *श्रोता: दोनों होते हैं।* दोनों होते हैं, हां, क्योंकि हमें अच्छी नींद आयी जाना न ! हमें सपने आये यह तो हम जान रहे कि नहीं जान रहे ? बहुत गर्मी होती है, मच्छर काटते हैं उसको जान तो रहे हैं हम। किसका घात करते हैं ? अपने प्रतिपक्ष का घात करते हैं; तो निद्रा का प्रतिपक्ष कौन है ? *श्रोता: जागृत अवस्था।* निद्रा जागृत अवस्था

का नाश करती है। कोई भी जो कर्म है, जहां-जहां कहते हैं वह घात करता है तो अपने प्रतिपक्ष का घात करता है, अन्य किसीका घात नहीं कर सकता।

केवलज्ञानावरण की बात देखते हैं। केवलज्ञानावरण किसका घात करता है ? *श्रोता: केवलज्ञान का।* केवलज्ञानावरण केवलज्ञान को होने नहीं देता, परंतु वह मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्ययज्ञान को होने से नहीं टाल सकता। केवलज्ञानावरण में इतनी ताकात नहीं है कि वह मतिज्ञान को रोके। उसका तो उदय है, सर्वघातिप्रकृति है वह सर्वघाति की बात देखेंगे हम, परंतु उसका उदय चलते हुये भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान चार ज्ञान हो सकते हैं। यह केवलज्ञानावरण अपने प्रतिपक्ष को ही रोक सकता है, दूसरों को नहीं, यह बात यहां बता रहे हैं। घातिकर्म में सबमें लगाना, अपने-अपने प्रतिपक्ष का घात करता है। यहां निद्रा नाम के जो पांच अलग-अलग कर्म हैं, वे अपना प्रतिपक्ष यानी जागृत अवस्था का घात करेंगे; वे दर्शन का घात नहीं कर सकते हैं क्योंकि दर्शन का घात हो जाये तो जीव बिना दर्शन का हो जाये ! हां, यह ऐसा नहीं हो सकता है। ये जो दर्शनावरण की नौ प्रकृतियां हैं उनमें से तो अत्यंत गाढ़ी निद्रा कहेंगे वह स्त्यानगृद्धिवाली, फिर उससे तरल, उससे तरल इसतरह से ये पांच अलग-अलग भेद बताये हैं, ये हैं दर्शनावरण के।

मोहनीय कर्म के हमने मूल दो भेद देखे थे-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं; एक है मिथ्यात्व, एक है सम्यग्मिथ्यात्व, एक है सम्यक् प्रकृति। अनादि से ही इस जीव के पास दर्शनमोहनीय का एक मिथ्यात्व कर्म ही है यानी उसका उदय भी हो रहा है और उसका बंध भी हो रहा है। उसके पास दर्शनमोहनीय की अन्य दो प्रकृतियां है ही नहीं क्योंकि बंधनेवाली तो एकमात्र मिथ्यात्व प्रकृति ही होती है, तो ये दो प्रकृतियां बतायी हैं न और ? ये बाद में तैयार होती हैं। कैसे तैयार होती हैं ? जब कोई मिथ्यादृष्टि जीव जो अनादि मिथ्यादृष्टि है या सादि मिथ्यादृष्टि भी है, जिसकी सत्ता में ये दो प्रकृतियां नहीं थी; वह जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है, जिसको हम औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं, प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं; उस काल में मिथ्यात्व के कर्म परमाणुओं का अनुभाग घटकर, वे ही परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप और सम्यग्मिथ्यात्वरूप हो जाते हैं। तो इसतरह से दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां

तैयार होती हैं। जब पहले में पहले सम्यग्दर्शन हो जाता है तो ये तीन प्रकृतियां तैयार होती हैं। बाद में वह जीव मिथ्यात्व में भी चला जाता है तो भी इन तीन प्रकृतियों की सत्ता तो बनी रहती है, कुछ काल के लिये। तो उस जीव को हम कहेंगे वह उनकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है। तो इसतरह से हमने देखा कि ये जो दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं; अनादि से तो एक मिथ्यात्व प्रकृति ही थी; जब सम्यग्दर्शन हुआ तब उसकी और दो प्रकृतियां तैयार हुयी हैं। उनका क्या होता है वह आगे देखेंगे। अभी तो हम केवल उत्तरप्रकृतियां कौन-कौनसी हैं उनकी बात यहां देख रहे हैं।

चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियां हैं। पंचलब्धि पुस्तक में १६ पृष्ठ पर नीचे। देखो, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; जीव के परिणामों के भी ये ही नाम हैं और उन कषाय कर्मों के भी ये ही नाम हैं। अनंतानुबंधी क्रोध जीव का परिणाम है और अनंतानुबंधी क्रोधकर्म यह कर्म का नाम है। जो जीव का भाव है, सेम वैसा ही कर्म का नाम है। इसतरह से अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। क्रोध, मान, माया और लोभ को हम चौकड़ी कहेंगे। तो ये चार कषाय चौकड़ी होती हैं इसीको हम कषाय कर्म कहेंगे। ये हो गये सोलह - चार चौके सोलह हो गये। हमने तो पच्चीस संख्या देखी है। *श्रोता: नौ नोकषाय हैं।* तो नौ नोकषाय हैं, नोकषाय यानी ईषत् कषाय हैं। जैसे नोकर्म हमने देखे तो यह क्या है ? इसका नाम क्या है ? नौ नोकषाय, उनकी संख्या हैं नौ और उनको कहते हैं नोकषाय। कौनसे हैं वे ? हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, ये कर्मों के नाम हैं और ऐसे ही जीवों के परिणाम भी होते हैं। उनके-उनके उदय में वैसे-वैसे परिणाम भी जीव के पाये जाते हैं। अब अंतराय की उत्तरप्रकृतियों को देखते हैं। अंतराय की पांच प्रकृतियां हैं; हमने देखा है - दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय। ये उनके पांच नाम हैं।

अघातिकर्मों की बात देखते हैं। अघातिकर्मों में हमने पहला देखा था वेदनीय; वेदनीय के दो भेद हैं, सातावेदनीय और असातावेदनीय। फिर आयु चार प्रकार की हैं; मनुष्यायु है, देवायु है, नरकायु है, तिर्यंचायु है; ये आयु के चार प्रकार हैं। नामकर्म के

तिरानवे भेद हैं और गोत्रकर्म के दो भेद हैं। कौनसे दो हैं ? उच्चगोत्र और नीचगोत्र। अभी नामकर्म की जो तिरानवे उत्तरप्रकृतियां हैं उनको जरा देखते हैं। हम आपको थोड़े ही याद करने को बोल रहें हैं ? याद हो जाय तो अच्छा है, नहीं हो जाये तो और भी अच्छा है क्योंकि हम करनेवाले तो हैं नहीं ? क्या करनेवाले हो ? *श्रोता: नहीं करनेवाले।* नहीं करनेवाले। अच्छा ! गॅरंटी के साथ कहते हैं कि हम नहीं करनेवाले। तो देखो ये तो ९३ हैं फिर भी उनको ४२ में कम करेंगे तो तो थोड़ा आसान हो जायेगा; जैसे जिसको हम कहेंगे ग्रुपवाली प्रकृति, उसको कहेंगे पिंडप्रकृति। जैसे हम कहेंगे न गति नामकर्म, गति तो चार हैं हमें मालूम हैं; तो चारों को अलग-अलग नाम लिये बिना हम कहेंगे गति नामकर्म तो उसमें चारों ही गर्भित हो गयी। जब हम कहेंगे जाति नामकर्म, कौनसी जाति ? हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई हैं ? *श्रोता: नहीं।* एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति ये जाति हैं और ये नामकर्म हैं। उस-उस नामकर्म के उदय में उस जीव का वैसी-वैसी जाति में जन्म होता है। उस-उस गति नामकर्म के उदय में उस-उस गति में वहां उसका जन्म हो जाता है। कर्म कुछ जीव को नहीं ले जाता है; जीव ऐसा पराधीन है ही नहीं। जीव स्वयं अपनी योग्यता से वहां पर उत्पन्न होता है और यहां कर्म पर आरोप जरूर आता है।

कर्म पर आरोप क्यों आता है ? क्योंकि जीव ने ही स्वयं वैसे परिणाम करके कर्म बांधे हैं। हम कहेंगे क्या करेगा बेचारा ? उसका कर्म का ऐसा उदय आया है, परंतु तब नहीं कहते क्या करेगा बेचारा जब वह कर्म बांध रहा है। हमने कहा न ! हमारे एक-एक परिणाम, एक-एक समय के परिणाम से वह-वह विशिष्ट कर्म बंधेगा जरूर। भले ही वह परिणाम अपने ख्याल में भी नहीं आते हैं, ऐसे अबुद्धिपूर्वक के परिणाम होते रहते हैं, उनके कारण भी जरूर बंध होता ही है। जब हम कर रहे हैं तो पता नहीं चलता कि हमने कर्म बांधे हैं। हम टीव्ही सीरियल देखते हैं और वहां जो कुछ मारपीट चल रही है, जो कुछ हो रहा है और वह हीरो के हाथ में लकड़ी है, डंडी है या पिस्तौल है और वह मार खा रहा है तो हम क्या कहते हैं ? अरे ! क्यों देख रहा है ? जरा मारो तो सही। मन से, वचन से और काय से हम जो कुछ वहां उसकी अनुमोदना कर रहे हैं, जो कुछ ॲडव्हाइस दे रहे हैं, जो कुछ सोच रहे हैं उन परिणामों

के फलस्वरूप भी हमें कर्म का बंध हो रहा है, उस समय भी। जो ॲक्टिंग कर रहें हैं उनको तो पैसा मिल रहा है। आपको क्या मिल रहा है ? एक तो टाइम वेस्ट हो रहा है और दूसरी बात कर्म का बंध हो रहा है। उस ॲक्टर को ऐसा कर्म का बंध नहीं हो रहा है क्योंकि वह तो ॲक्टिंग कर रहा है, वह तो नहीं मान रहा है कि मैं इसरूप हूं। हमने तो अपने को उसरूप ढाल दिया है। क्यों ? जब हम कोई सीरियल देख रहे हैं, नाटक देख रहे हैं, सिनेमा देख रहे हैं तो हम उस पात्र से एकाकार हो जाते हैं और यहां रोते भी रहते हैं। ऐसे एकाकार हम सिद्ध भगवान की स्तुति करते हुये होते हैं कि नहीं होते हैं ? *श्रोता: नहीं होते हैं।* किसीने गाली दी है, कोई इन्सल्ट किया है तो कितने सालों तक याद रहता है और यह हमारे गुरुदेवश्री कहते हैं 'हे भगवान आत्मा' तो कितना याद आता है भगवान आत्मा ? तो आचार्य जो बारंबार हमें भगवान कहकर पुकार रहे हैं तो हम भगवानस्वरूप हैं, हमारा असली स्वभाव जो है, उसको अगर हम ख्याल में लेंगे, उस पर विचार करेंगे तो जरूर इस सारे कर्म बंधन से छूटकर सिद्धों के साथ, अनंतों के साथ जाकर विराजमान हो जायेंगे।

हम नामकर्म के भेद देख रहे हैं। कुछ तो हैं पिंडप्रकृति, हम ग्रुपवाली प्रकृति देख रहे हैं न; एक है गति नामकर्म; एक है जाति नामकर्म; एक है शरीर नामकर्म जो सुबह याद किया था। वे पांच प्रकार के हैं, औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियिकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म, तेजसशरीर नामकर्म और कार्माणशरीर नामकर्म, ये पांच प्रकार हो गये। हमने ये शरीर नामकर्म के नाम देखे हैं वैसे ही बंधन नामकर्म हैं और संघात नामकर्म हैं। बंधन का अर्थ होता है, यह जो जीव हर समय नामकर्म के उदय में शरीर के परमाणु ग्रहण करता है, वे एक पिंडरूप- एक स्कंधरूप होकर बंध जाते हैं; वह बंधन नामकर्म के उदय में होता है और संघात के उदय में क्या होता है ? छिद्र रहित एक स्कंधरूप से उसकी रचना हो जाती है। बीच-बीच में ऐसा नहीं कि यहां तक यह हाथ है बीच में कुछ गॅप है फिर यहां से हाथ शुरू हुआ, ऐसा तो कुछ नहीं हो रहा है। तो छिद्र रहित शरीर की रचना होती है उसको कहेंगे संघात नामकर्म। उनके भी वे ही नाम हैं। देखो, कितने पांच-पांच को एक-एक ग्रुप में बताये हैं, ये ९३ को याद नहीं करना हैं। गति, जाति, शरीर, बंधन, संघात फिर है संस्थान।

संस्थान आकार को कहते हैं। यह जो कोई लंबा-चौड़ा जो कोई आकार है, यह अकेले मनुष्यों का ही नहीं, फूलों का आकार होगा। यह फूलों का आकार वह एक-एक जीव का आकार नहीं है। वनस्पतिकायिक जीवों की भी अवगाहना इतनी छोटी होती है कि एक-एक फूल में तो असंख्यात जीवों के प्रत्येक शरीर हैं। यह निगोद की बात नहीं हो रही है। हमें जो एक वनस्पति दिख रही है, अनेक जीवों के शरीर जुड़-जुड़कर वह हमें एक वनस्पति दिख रही है। नहीं तो उसको अंगोपांग नामकर्म का उदय समझना पड़ेगा। एकेन्द्रियों के कोई अंगोपांग नहीं होता है और वृक्षों की शाखा अलग हैं, फूल अलग हैं, पत्ते अलग हैं, फल अलग हैं; उनको, उसका उपांग तो नहीं मान सकते हम। तो वे अनेक जीवों के शरीर इकट्ठे हुये हैं और वह एक वनस्पति हमें दिखायी दे रही है। यह तो पहले भी जीवसमास में, कायमार्गणा वगैरह में हमने देखा था। अग्नि की एक चिंगारी दिखायी देती है, उसमें असंख्यात अग्निकायिक जीव हैं; बादर अग्निकायिक जीव असंख्यात हैं तो हमें वे चिंगारीरूप से दिखायी देते हैं। जल की एक बिंदु है उसमें असंख्यात जलकायिक जीव हैं; जलचर जीव नहीं, जलकायिक जीव। जल में जो जीव पाये जाते हैं वे तो त्रस जीव हैं, उनकी बात अलग है। यहां हम जल ही जिसका शरीर है उसकी बात कर रहे हैं। तो इन जीवों की अवगाहना इतनी छोटी है कि हमें जो दिखायी देता है उसमें असंख्यात-असंख्यात जीव पाये जाते हैं। तो यहां जो संस्थान यानी आकार है, हम समझते हैं यह हमारा आकार ऐसा है। कितना है ? कोई ठिंगना है, कोई ऊंचा है, कोई कैसा है। तो यह आकार क्यों ऐसा मिला ? हां, *श्रोता: संस्थान नामकर्म।* हां, संस्थान नामकर्म के उदय में यह आकार प्राप्त होता है। तो यह जो संस्थान नामकर्म का उदय है, जीव जब शरीर धारण करता है तो उसके पहले समय में ही यह संस्थान नामकर्म का उदय शुरू हो जाता है।

अब यहां हमारा मनुष्य का आकार है। यह संस्थान नामकर्म का उदय मरण तक पाया जाता है। विग्रहगति में क्या होता है ? संस्थान नामकर्म का उदय वहां नहीं है। संस्थान नामकर्म का उदय कब शुरू हो जाता है ? जब जीव नये शरीर के परमाणुओं को ग्रहण करता है तब। तो नये शरीर के जो परमाणु ग्रहण करते हैं, तब यह संस्थान नामकर्म का उदय शुरू हो जाता है। कौनसे ? संस्थान जो आकारवाले

कर्म का उदय शुरू होता है तब वह नया आकार धारण करता है। तो विग्रहगति में क्या होता है ? *श्रोता: पूर्व गति का।* पूर्व शरीर का आकार चालू रहता है। पूर्व शरीर तो नहीं है; पूर्व शरीर का आकार चल रहा है, उस कर्म को क्या कहते हैं ? गत्यानुपूर्वी। यह बात आयेगी आगे। फिर से, जीव मर जाता है; विग्रहगति से गमन करता है; किसीको एक समय, किसीको दो समय, किसीको तीन समय लगते हैं और वहां जाकर वह नया शरीर धारण करता है; तो शरीर धारण करने के समय वह विशिष्ट संस्थान नामकर्म का उदय होता है। नामकर्म के उदय की बात बहुत विस्तार से हम जाननेवाले हैं। कौनसे नामकर्म का कब उदय होता है, वह सब हम देखेंगे। तो यह संस्थान नामकर्म का उदय तब चालू हो जायेगा; कौनसे कर्म का? संस्थान नामकर्म का; उसके पहले का आकार कौनसा है? पूर्व शरीर का जो छोड़कर आया है। अब हम मनुष्य हैं; कोई मनुष्य मरकर अभी कुत्ता होने जा रहा है; तो उसकी कुत्ते की पर्याय शुरू हो गयी। विग्रहगति में उसको कहेंगे न यह तिर्यंच जीव है क्योंकि तिर्यंचगति नामकर्म का उदय शुरू हो गया है। तिर्यंचायु चालू हो गयी है परंतु उस तिर्यंच का आकार अभी धारण नहीं किया है उसने। तो आकार कौनसा चल रहा है ? *श्रोता: मनुष्य का।* मनुष्य का आकार चल रहा है। क्यों ? वह जो तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का उदय चल रहा है। पूर्व का यानी मनुष्य का आकार और है कुत्ता ! हं ? तो देखा क्या आपने मनुष्य के आकार का कुत्ता ? यह आगमचक्षु लगाने से दिखायी देंगे, हां। कोई कुत्ता मरकर मनुष्य होगा तो क्या होगा ? कुत्ते का आकार चल रहा है और उसको मनुष्य कह रहे हैं तो कुत्ते के आकार का मनुष्य होगा वह। कहां ? विग्रहगति में क्योंकि वहां जाने के बाद संस्थान नामकर्म का उदय शुरू होगा। यह जो कोई शरीर का आकार है वह संस्थान नामकर्म के उदय से है और हम क्या समझते हैं ? देखो मैं ऐसा सुंदर हूं न, तो मेरा बच्चा भी मेरे जैसा है। मेरे जैसा सुंदर है, नहीं तो पिताजी के ऊपर जाता तो ! यानी उसका कर्ता 'मैं हूं' मान लिया; उसका आकार, उसका रंग जो कुछ है। देखो, अपनी मान्यता में कहां-कहां क्या-क्या बैठा है? हमें ही ढूंढ़ना है, कोई और हमें दिखानेवाला है नहीं।

इस संस्थान नामकर्म के भी छह भेद हैं अलग-अलग। पृष्ठ २४ पर इन संस्थानों

के नाम भी लिखे हैं। एक है **समचतुरस्रसंस्थान** यानी **समान चौकोर आकार**; हम कहेंगे न प्रपोर्शनेट बॉडि, **सुड़ौल आकार।** दूसरा है **न्यग्रोधपरिमंडल - वटवृक्ष समान ऊपर का भाग चौड़ा और नीचे का भाग पतला।** तो मेरा सवाल है वटवृक्ष को कौनसा संस्थान है ? हां। *श्रोता: एक भी नहीं।* एक भी नहीं कहते हैं, क्यों ? एकेन्द्रिय है न ! तो उसको कौनसा संस्थान होगा ? वह हुंडक संस्थान होगा। यह वटवृक्ष का तो दृष्टांत दिया है; कोई ऊपर बहुत मोटा है और नीचे पतला है तो उसको कहेंगे **न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान**। **स्वातिसंस्थान** यानी **ऊपर का भाग पतला और नीचे का चौड़ा**। **कुब्जक** यानी जो कुब्जा कहते हैं हम, **कुबड़ा**। **वामन** यानी **ठिंगना** और **हुंडकसंस्थान** यानी **अनेक अवक्तव्य आकार** जो हम कह नहीं सकते।

आगे बात है संहनन की। संहनन हमने बहुत बार सुना है। क्या सुना है ? हां, वज्रवृषभनाराचसंहनन सुना है कि मोक्ष जानेवालों को होता है। तो यह संहनन उनको मोक्ष में ले जाता है कि नहीं ले जाता है ? *श्रोता: नहीं ले जाता है।* नहीं ले जाता है। *श्रोता: नरक में भी ले जाता है।* नरक में भी ले जाता है, स्वर्ग में भी ले जाता है। संहनन से कहां जाना है यह नक्की नहीं होता है; कहां नहीं जाना है, यह तो नक्की हो सकता है। क्या कहना चाहते हैं ? जो मोक्ष जानेवाले जो चरमशरीरी, चरमशरीरी यानी उसी भव में मोक्ष जानेवाले जो जीव हैं उनको नियम से यह जो, कौनसा ? पहलेवाला वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होता है। यह संहनन क्या है ? तो हड्डियों की जो मजबूती है; वज्र समान जो हड्डियां और वज्र समान उसका वेष्टन यानी उसका कव्हरिंग जिसको हम पेरिऑस्टियम कहेंगे हमारी डॉक्टरी भाषा में और उसके वज्र के ही कीले होते हैं जॉइंट्स में - उसको कहेंगे **वज्रवृषभनाराचसंहनन**। तो मोक्ष जानेवाले जीवों को वही संहनन नियम से होता है क्योंकि उस संहनन के बिना जीव क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता ऐसा नियम है। अन्य भी बहुत सारे नियम हैं संहनन के जो हम आगे देखेंगे। सातवें नरक में जानेवाला भी वज्रवृषभनाराचसंहननवाला होना चाहिये। जानेवाला हो यानी मनुष्य और तिर्यंच यानी जो मत्स्य हैं वज्रवृषभनाराचसंहननवाले वे जीव ही मरकर सातवें नरक में जायेंगे। जिसको वज्रवृषभनाराचसंहनन नहीं है वे सातवें नरक में भी नहीं जायेंगे। ऐसा संहनन या तो मनुष्यों में पाया जायेगा या तो मत्स्यों में पाया जायेगा,

अन्य तिर्यंचों में भी नहीं पाया जाता। आपने तंदुलमत्स्य की स्टोरी सुनी होगी, एक है बड़ा राघवमत्स्य, वह तो सोया है ऐसा जबड़ा खोलकर; उसके श्वास के साथ अनेक मछलियां अंदर आती हैं और बाहर निकल जाती हैं और तंदुलमत्स्य क्या सोचता है ? अरे ! मैं होता तो सबको खा जाता, उसने खाया तो कुछ नहीं है फिर भी देख-देखकर भाव किये, जैसे हम करते रहते हैं, हां। तो यह ऐसे भाव के फलस्वरूप कहां पहुंचा ? *श्रोता: सातवें नरक में।* सातवें नरक में, उसका अर्थ उसको भी वज्रवृषभनाराचसंहनन होना चाहिये, हां, तभी तो जायेगा अन्यथा नहीं जा सकता है। तो छोटा आकार है इसलिये वह संहनन नहीं है ऐसा भी नहीं कह सकते हैं हम, हां। यह कुछ बातें जो हम प्रथमानुयोग की भी हैं या कोई ऐसे कथन जो हम शास्त्रों में देखते हैं तो उनके द्वारा यह ऐसे हम इन्फरन्स भी निकाल सकते हैं - उसका निर्णय भी कर सकते हैं।

श्रोता: पंचमकाल में सभी संहनन पाये जाते हैं ? अभी इस पंचमकाल में नीचे के तीन ही संहनन पाये जायेंगे उससे ऊपर के नहीं, वज्रनाराच भी नहीं है और नाराच भी नहीं है। इसलिये इस काल में क्षपकश्रेणी का तो सवाल ही नहीं, उपशमश्रेणी भी कोई नहीं चढ़ सकता; परंतु नीचे के तीन संहनन के साथ सातवें गुणस्थान तक जा सकता है। यह छठेवाला जो संहनन है, असंप्राप्तासृपाटिका उसके साथ भी सातवां गुणस्थान प्रकट हो सकता है। अरे ! चौथे काल में भी छह संहनन पाये जायेंगे। भोगभूमि में तो सबको, महिलाओं को भी वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होता है परंतु वे सब तो स्वर्गों में ही जाते हैं। सभी मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक में जाते हैं और सभी सम्यग्दृष्टि सौधर्म और ईशान में जाते हैं, उसके ऊपर तो जा नहीं सकते। इसलिये संहनन के कारण कुछ बड़ा कार्य होगा ऐसी बात नहीं है। फिर भी इसको निमित्तरूप से बताया जाता है कि कौनसे संहननवाला जीव मरकर कहां कौनसे स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकता है। कौनसे संहननवाला जीव मरकर कौनसे नरक तक उत्पन्न हो सकता है ? कौनसे संहननवाले की कैसी-कैसी अवस्था होती है ? देवों और नारकियों के तो संहनन ही नहीं होता वैक्रियिकशरीरवालों को और ना ही एकेन्द्रिय के यह संहनन नामकर्म का उदय पाया जाता है। कहां पाया जाता है ? मनुष्यों में और द्वीन्द्रियादि तिर्यंचों में और उस संहनन के साथ वे मरकर कहां जाते हैं ? इसके नियम शास्त्र में बताये हैं।

करणानुयोग के ये ऐसे नियम हैं कि बिलकुल उनको जानकर हम निर्णय तक पहुंच सकते हैं। ये वज्रवृषभनाराच आदि जो संहनन हैं उनके नाम और स्वरूप हम पंचलब्धि पुस्तक में २५ पृष्ठ देख लेते हैं। **वज्रवृषभनाराचसंहनन-जिस शरीर में वज्रमय हड्डियां,** वज्र ऐसा होता है कि वह तो वज्र से तो पर्वत भी टूट जाये। **वज्रमय वेष्टन से वेष्टित हैं और वज्रमय नाराच द्वारा कीलित हैं।** नाराच यानी उसकी जो कील, **उसे वज्रवृषभनाराचसंहनन कहते हैं। जो वज्रसमान अभेद्य है उसे वज्र कहते हैं, वृषभ अर्थात् उसका बंधन और नाराच यानी कील। जैसे लोहे की कील लकड़ी में ठोकते हैं।** वैसे उनके जॉइंट्स पाये जाते हैं। **वज्रनाराच-जिस शरीर में हड्डियां तो वज्रसमान हैं परंतु वज्र का वृषभ यानी बंधन नहीं पाया जाता**, **सामान्य वृषभ होता है।** फिर **नाराचसंहनन-जिस शरीर में हड्डियों की संधी**, संधी यानी जॉइंट्स इसको संधी कहते हैं न ! जॉइंट है वह **सामान्य नाराच द्वारा कीलित हैं परंतु वज्रसमान नाराच द्वारा नहीं हैं उसे नाराच** कहेंगे। **अर्धनाराच-जिस शरीर में हड्डियों की संधी नाराच द्वारा अर्धकीलित हैं,** आधी ही उसके कीलित हैं और आधी तो बिना कीलित हैं यानी फिक्स नहीं हैं वे। **कीलितसंहनन-जिस शरीर में वज्र की हड्डियां नहीं हैं और वे परस्पर कीलित हैं, उसे कीलितसंहनन कहते हैं।** और **असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन** यानी असंप्राप्त और असृपाटिका, उसका अर्थ क्या है ? **शरीर में हड्डियां परस्पर में प्राप्त नहीं होती हैं**। **सरीसृप की हड्डियों की भांति नसों द्वारा परस्पर में बंधी हुयी होती हैं।** यानी जो हमारे जॉइंट्स हैं यहां उंगली का हो या घुटने का हो या कोई भी हो, तो यह हड्डी एक दूसरे में फिक्स नहीं है। यह अलग-अलग है और उसके ऊपर जो हम टेंडन कहते हैं, मसल्स कहते हैं, स्नायु कहते हैं उनके द्वारा वे एक दूसरे के साथ ऐसी बंधी हुयी हैं, जुड़ी हुयी हैं और एक दूसरे के ऊपर ऐसे मूव्ह होती हैं। यह जो है न, उंगली की यह हड्डी अलग है, यह हड्डी अलग है और वे एक दूसरे के साथ केवल इसतरह से घिसती रहती है और ये दूर नहीं होती हैं क्योंकि वे तो बंधन से, कौनसे ? इन स्नायुओं से बंधी हुयी हैं। यह हमारा आपका जो कुछ हीन संहनन है वह इस प्रकार का है। उसमें कोई कील नहीं है, कील से वह फिक्स नहीं है। ये हमने छह अलग-अलग संहनन देखे हैं।

हम नामकर्म देख रहे हैं, आठवां ग्रुप है **अंगोपांग** - अंग और उपांग। **अंग यानी मुख्य अवयव और उपांग यानी जो उंगलियां** आदि जो कोई छोटे-छोटे अवयव हैं उनको हम कहेंगे उपांग। ये अंगोपांग नामकर्म भी तीन हैं क्योंकि त्रस जीवों के औदारिकशरीर के साथ **औदारिकअंगोपांग** का, वैक्रियिकशरीर के साथ **वैक्रियिकअंगोपांग** का और आहारकशरीर के साथ **आहारकअंगोपांग** का उदय होगा। परंतु तेजस और कार्माणशरीर के साथ उस नाम का कोई अंगोपांग नहीं है; कर्म के कोई अंग-उपांग नहीं हैं और ना ही तेजसशरीर के कुछ अंग-उपांग हैं तो उनमें ये अंगोपांग नहीं पाये जायेंगे। **स्पर्श** की आठ पर्यायें हैं उस नाम के उनके आठ अलग-अलग नामकर्म हैं। **रस** की पांच पर्यायें हैं वैसे-वैसे उनके नामकर्म हैं। शरीर में जो कोई स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है; वह उस-उस नामकर्म के उदय में पाया जाता है। स्पर्श नामकर्म के उदय में शरीर का स्पर्श कठोर-कोमल जो कुछ होगा या ऑइलि होगा या ड्राय होगा जो कुछ है वह सारा उस स्पर्श नामकर्म के उदय में हो जाता है। वैसे ही रस नामकर्म, गंध नामकर्म, वर्ण नामकर्म; अभी इन सारे को हम कर्म के खाते में डाल रहे हैं, हो ! सारे वर्णादि से लेकर सभी भाव, अभी किसी भाई ने बात की न ! वर्णादि और रागादि सब कर्म के उदय में हो रहे हैं तो वे अपने हैं ही नहीं।

गत्यानुपूर्वी की अभी-अभी हमने बात की थी। **विहायोगति** यानी जीव जो चलता है तो उसको शुभ विहायोगति या अशुभ विहायोगति का उदय रहता है; यानी जीव की जो चाल है, जिसको हम चाल कहते हैं। हाथी कैसा गमन करता है, बदक कैसा चलता है, इसको उसके विहायोगति नामकर्म का उदय कहेंगे। **अगुरुलघु, उपघात, परघात** और **उच्छ्वास**; अभी मैं केवल नाम पढ़ती हूं; **आतप, उद्योत,** फिर **त्रस, स्थावर, बादर और सूक्ष्म,** ये नाम बार-बार आयेंगे आगे; उसका अर्थ भी हमें देखना है। त्रस, स्थावर, बादर और सूक्ष्म, इस-इस नामकर्म के उदय में जीव की उस-उस पर्याय में उत्पत्ति होती है। त्रस नामकर्म के उदय में जीव त्रस होता है। त्रस यह क्या है ? त्रस का अर्थ क्या है ? *श्रोता: द्वीन्द्रियों से पंचेन्द्रिय।* द्वीन्द्रियों से पंचेन्द्रिय, जो हिले डुले वे ? *श्रोता: नहीं।* नहीं ! त्रस नामकर्म के उदय में जीव को त्रस कहते हैं और स्थावर नामकर्म के उदय में जीव को स्थावर कहते हैं। जो एक जगह पर रहे वह

स्थावर और जो चले वह त्रस ऐसा नहीं है क्योंकि हमारा पंखा भी अभी चल रहा है, हां। उसको भी त्रस कहना पड़े, क्यों ? त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये सारे नामकर्मों के नाम हैं और उन नामकर्म के उदय में उन-उन पर्यायों में जीवों का जन्म होता है। पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म रह गये न ! तो बादर और सूक्ष्म, **पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक और साधारण।**

प्रत्येक नामकर्म के उदय में प्रत्येक शरीर की प्राप्ति होती है; प्रत्येक शरीर यानी एक शरीर उसका स्वामी एक जीव। साधारण नामकर्म के उदय में क्या होता है ? एक शरीर साधारण यानी कॉमन-सामान्य और उसके स्वामी अनंत जीव, इसको हम निगोद कहते हैं, उसीको साधारण वनस्पति भी कहते हैं। एक शरीर है उसमें अनंत जीव रहते हैं। कैसे ? देखो, जैसे एक स्कूल है और स्कूल में हर साल हम मान लेते कि सौ की एक बॅच उसमें ॲडमिशन लेती है और फिर दसवीं पास करके निकल जाती है। जो एकसाथ ॲडमिशन लेते हैं वे एकसाथ निकल जाते हैं। फिर दूसरे साल और सौ बच्चों की दूसरी बॅच आती है। ऐसे ही यहां निगोद में क्या होता है ? एक निगोद शरीर है उसमें अनंत जीव तो रहते हैं जो पहले जन्म ले चुके हैं। अब दूसरे समय क्या होता है ? दूसरे अनंत का लॉट यहां जन्म लेने को आ जाता है एकसाथ। लोकाकाश के किसी कोने से मरकर सब एक साथ इस शरीर में उत्पन्न हुये। फिर क्या होता है ? तीसरे समय में और नयी बॅच आ गयी। जो एक साथ उत्पन्न होते हैं वे एक साथ मरकर निकल जाते हैं। इसमें तो अनंत जीव सदैव रहेंगे, परंतु जो आये हैं वे अपनी-अपनी आयु पूर्ण करके चले जायेंगे और यह धर्मशाला के जैसा यह शरीर बना रहेगा। एक निगोद शरीर में कितने जीव हैं ? *श्रोता: अनंत।* अनंत; अभी हम एक रूम में कितने रह रहे हैं ? *श्रोता: चार-पांच।* बहुत ! हां, चार-पांच हैं तो ऐसा लगता है हमें कि बहुत हो गये, जगह ही नहीं है। अरे ! हम तो अनंतकाल वहां निगोद में बिताकर आये हैं, इसलिये यहां ज्यादा जगह चाहते हैं क्यों ? यह साधारण नामकर्म के उदय में जीव को ऐसे पर्याय की प्राप्ति होती है कि वह उस निगोद अवस्था में जन्म लेता है।

स्थिर और अस्थिर अभी इसके कार्य हम बाद में देखेंगे अभी केवल नाम देख लें। **स्थिर नामकर्म और अस्थिर नामकर्म। शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग**

और दुर्भग। सुस्वर और दुस्वर, आदेय और अनादेय। यशस्कीर्ति और अयशस्कीर्ति, तीर्थंकर और निर्माण। यह यशस्कीर्ति यानी जीव का यश हो जाता है। तो हम बहुत अच्छा मान लेते हैं। अरे ! परंतु यह कर्म के उदय का कार्य है उसके खाते में डालो। हां ! यह यश से फूल मत जाना ! एकेन्द्रियों को भी यशस्कीर्ति नाम का उदय होता है; एकेन्द्रियों को; उसमें भी पाया जाता है तो हमारा हो जाये तो उसमें क्या नवाई है ? यह तो पुराने कर्मों का उदय चल रहा है। इसमें अभी हमें क्या लेना-देना ? यह भी कर्म के उदय का फल है उसको अपनेरूप मत मानना क्योंकि यह बाह्य यश से, अयश से कुछ लेना-देना नहीं है। मेरा एक प्रश्न है, जो हनुमान भगवान हो गये उनको यह मारुती और बंदर बना दिया, तो उनके कौनसे नामकर्म का उदय चल रहा है ? *श्रोता: अयशस्कीर्ति।* अयशस्कीर्ति है न ? *श्रोता: सिद्ध हो गये।* अरे ! उनके तो कर्मों का अभाव होकर वे मोक्ष चले गये हैं। उनके किसी नामकर्म का उदय नहीं हो रहा है। *श्रोता: हनुमान शब्द है।* शब्द की कहां बात चल रही है। हनुमान जो भगवान हो चुके हैं, उनकी बात चल रही है; उनके तो कोई नामकर्म बाकी नहीं है न ! यह जो कोई विपरीतता चल रही है, लोगों की भ्रमणा चल रही है, उनकी अपनी विपरीतता है, उनका अपना अज्ञान है। उसमें वह भगवान का कुछ कर्म का उदय-बिदय नहीं है।

जैसे हम क्या मानते हैं ? हमारे वाडवडील कुछ हो गये न ! वाडवडील तो मराठी में कहते हैं यानी पूर्वज। *श्रोता: पूर्वज।* पूर्वज, हां उन्होंने बहुत पुण्य कमाया और हम भोग रहे हैं। कितना अच्छा है न ! क्या ऐसा होता होगा ? *श्रोता: नहीं, नहीं।* हमारे बाप-दादों ने, हमारे दादा-परदादा ने बहुत पुण्य कमाया है और उसके कारण हम उसका फल भोग रहे हैं। हम कहते हैं न ऐसा, मानते भी हैं। एक दूसरे को ॲडव्हाइस भी देते हैं। क्यों ? हमारे पूर्वजों की पुण्याई है इसलिये हम खा रहे हैं। अरे ! वाह रे वाह तो उनकी पुण्याई है उसे वे साथ में लेकर गये कि आपके लिये कुछ छोड़कर गये ? जैसा पैसा छोड़कर गये तो थोड़ा पुण्य भी छोड़कर गये होंगे कि नहीं ? वह तो सब साथ में ले गये हैं। हमें जो कोई यहां पुण्य-पाप का फल मिल रहा है वह अपने पुण्य-पाप का है यह भी उपचार से कथन है; हम कोई पुण्य-पाप को नहीं भोग रहे हैं। फिर भी जो कहने में आता है अपना-अपना जो पूर्वभव में बंधा है और जो कोई उदय योग्य

है उसका यहां उदय चल रहा है। किसी अन्य के पुण्य से अपने पुण्य-पाप में कुछ परिवर्तन नहीं होता। समयसार में तो पढ़ते हैं-कोई किसीको पुण्य और पाप का कुछ फल दे नहीं सकता। यह जो चक्रवर्ती आदि हैं, इंद्रादि हैं, जो अन्य देव सेवा करते हैं चक्रवर्तियों की; तो वहां उनका पुण्य है तब तक सेवा करते हैं; वे उनके पुण्य के दास हैं, कोई चक्रवर्ती के दास हैं नहीं। पुण्य नहीं होगा तो नहीं रहेंगे वहां पर, हां। तो यह किसी अन्य का पुण्य किसी अन्य को काम नहीं आता। हमारी आयु हमारे पुत्र को तो दे सकते हैं कि नहीं दे सकते हैं ? क्योंकि यह तो सिनेमा में देखने की आदत हो गयी है न ! 'अरे ! मेरी आयु इस बच्चे को दे दो !' तो हम भी वैसा मान लेते हैं। कितनी अच्छी है माता ! अपनी आयु नष्ट करके उसने पुत्र को जीवनदान दिया। वाह रे वाह !

यह इकतालीसवां है- **तीर्थंकर नामकर्म** और फिर आगे **निर्माण नामकर्म** है। यह तीर्थंकर नामकर्म की तो हमने बहुत बात सुनी है। यह एक पुण्य प्रकृति है विशिष्ट परिणामों से बंधती है; परंतु है वह बंध; अच्छा है कि नहीं ? *श्रोता: नहीं।* हम तो तीर्थंकर बनना चाहते हैं, तीर्थंकर नामकर्म को बांधना चाहते हैं तो जिसको बंध अच्छा लगता है, भले वह तीर्थंकर प्रकृति भी क्यों न हो उसको मोक्ष अच्छा नहीं लगता है। हमने यहां जो कर्मों के नाम अभी देखें हैं न, इतने सारे कर्मों के नाम, नामकर्म के तो कितने ९३ भेद हैं कि उन्हें देखते-देखते तो हम थक जाते हैं, करते-करते कभी नहीं थके ! *श्रोता: देखते-देखते।* देखते-देखते, सुनते-सुनते बहुत थक जाते हैं।

अभी हमने जो मोहनीय के नाम देखे न, कैसे ? पहले अनंतानुबंधी का नाम लिया; फिर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और फिर प्रत्याख्यानावरण का देखा, फिर ? *श्रोता: संज्वलन।* संज्वलन का देखा। यह ऐसा क्रम क्यों पड़ा ? इसी क्रम से उनका क्षय होता है इसलिये यह क्रम पड़ा। बंध की अपेक्षा यह क्रम नहीं पड़ा है, पहले इनका क्षय होता है। अनंतानुबंधी पहले क्रोध यह क्रोध, मान, माया और लोभ एक साथ जाते हैं, फिर भी उनका नाम वहां ऐसा ले लिया। पहले अनंतानुबंधी, फिर अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और फिर संज्वलन; पहले क्रोध, फिर मान, फिर माया और फिर लोभ। यदि बंध की अपेक्षा बात करेंगे तो उसमें बटवारा होता है न ? बटवारे की अपेक्षा यानी अधिक से अधिक माल किसमें चला जाता है ? माल यानी

परमाणु, उस अपेक्षा अगर इनका क्रम लगाना है तो पहले में पहले अनंतानुबंधी के लोभ का नाम लेना पड़ेगा, फिर माया का, फिर क्रोध का और फिर मान का। *श्रोता: लोमा-क्रोमा।* हां, लोमा-क्रोमा; लोभ, माया, क्रोध, मान, पहले किसका नाम लिया ? अनंतानुबंधी के बाद संज्वलन में अधिक परमाणु चले जायेंगे; अनंतानुबंधी के बाद संज्वलन में ज्यादा बटवारा हो जाता है; फिर प्रत्याख्यानावरण में चला जायेगा और फिर अप्रत्याख्यानावरण में चला जायेगा। उसी ऑर्डर से, लोभ फिर माया, फिर क्रोध और फिर मान। ऐसा क्यों? क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव में क्यों नहीं लगता है।

नामकर्म की जो प्रकृतियां हैं उनमें चार अलग-अलग भेद पड़ते हैं। यहां नामकर्म की प्रकृतियों में नाम लिखे हैं; जीवविपाकी आदि बातें लिखी हैं न यहां पर। मूल गाथा ४९ और ५० में यह बात आयी है। ये जो प्रकृतियां हैं, इनको पुद्गलविपाकी प्रकृतियां कहेंगे। पुद्गल में उनका फल मिलता है उनको क्या कहेंगे? पुद्गलविपाकी। जिनका फल जीव में मिलता है उनको कहेंगे जीवविपाकी। जिसका फल किसी क्षेत्र में होता है उसको कहेंगे क्षेत्रविपाकी और आयुकर्म जो है वह है भवविपाकी। हम उलटे क्रम से देखते हैं; भवविपाकी तो आयुकर्म है, क्षेत्रविपाकी जिस आनुपूर्वी की हमने बात की थी उसको क्षेत्रविपाकी कहेंगे। जीवविपाकी कौनसी हैं ? तो ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, मोहनीय है, अंतराय है और वेदनीय को भी जीवविपाकी में ले लिया है। तो इसतरह से जीवविपाकी आदि उनमें भेद होते हैं। जीवविपाकी में तो वेदनीय की दो, गोत्र की दो क्योंकि उच्च-नीच तो जीव से ही संबंधित है। घातिकर्म की सभी की सभी ४७ प्रकृतियां और नामकर्म की ? *श्रोता: २७।* हां २७ हैं जो जीवविपाकी हैं। अब ये २७ कौनसी ? जैसे तीर्थंकर नामकर्म है; फिर वह बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त आदि जो प्रकृतियां होती हैं। उनके डीटेल में अभी नहीं जायेंगे क्योंकि उनके नाम लेने से क्या फायदा ? हम उनको कुछ याद तो रखनेवाले नहीं हैं; परंतु उनको जीवविपाकी कहते हैं क्योंकि जीव के साथ उनका संबंध बनता है। जीव के साथ उनका निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है इसलिये उनको जीवविपाकी कहेंगे। पुद्गलविपाकी जो हैं उनमें तो मात्र पुद्गल में इनका फल मिलता है; शरीर की रचना है, कौनसा संस्थान है, कौनसा संहनन है आदि जो कुछ बातें बनती हैं तो उनको कहेंगे पुद्गलविपाकी कर्म।

अब घातिकर्मों की बात, इनके उत्तरप्रकृतियों की संख्या अभी हमने देखी थी। ज्ञानावरण की हमने पांच देखी; दर्शनावरण की नौ देखी; मोहनीय में दर्शनमोहनीय की तीन और चारित्रमोहनीय की पच्चीस; अंतराय की पांच; ये हो गयी घातिकर्म की ४७ प्रकृतियां। अघातिकर्म में वेदनीय की दो देखी, आयु की चार देखी, नामकर्म की तिरानवे देखी और गोत्रकर्म की दो देखी, टोटल कितनी हुयी ? *श्रोता: १४८।* १४८ हुयी। ये १४८ में कहीं आपने सुना होगा १२२ का हिसाब बताते हैं। कहीं १४८ लिखते हैं, कहीं १२२ लिखते हैं और कहीं बंध की अपेक्षा १२० ही लिखते हैं, यह क्या मामला है ? ये नामकर्म की जो प्रकृतियां हैं; इन प्रकृतियों का आप चार्ट देखना चाहते हैं न ! देखो पंचलब्धि पुस्तक में पृष्ठ ३७, नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ। अभी हम घातिकर्म, अघातिकर्म की शुभ-अशुभ प्रकृतियों की भी थोड़ी चर्चा करेंगे।

अभी-अभी हमने क्या देखा ? आठ मूलप्रकृति देखी और उनके भेद कितने देखे ? १४८ सब मिलकर। तो कहीं-कहीं १२२ का भी हिसाब बताते हैं और वह किसतरह से है ? हमने जो अभी पांच शरीर नामकर्म देखे, पांच बंधन देखे और पांच संघात देखे, कितने हुये टोटल ? *श्रोता: पंद्रह।* पंद्रह; उनके बदले शरीर नामकर्म में ही बंधन और संघात को हम गर्भित कर देते हैं। तो पंद्रह के बदले हम पांच ही कहेंगे, तो कितने कम हुये ? *श्रोता: दस कम हो गये।* दस कम हो गये हैं। अब जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण नामकर्म हैं; स्पर्श के आठ भेद हैं, रस के पांच हैं, गंध के दो हैं और वर्ण के पांच; टोटल कितने हुये ? बीस हैं। उनके बदले हम केवल स्पर्श, रस, गंध, वर्ण कहेंगे। यानी बीस के बदले चार कहेंगे तो क्या हुआ ? *श्रोता: सोलह।* सोलह कम हुये और पहले दस कम हुये थे; छब्बीस कम हुये। १४८ में से छब्बीस चले गये, कितने रह गये ? *श्रोता: १२२।* १२२। तो यह जो १२२ कर्म प्रकृतियां हैं कहीं-कहीं उन्हींके हिसाब से सब बतायेंगे क्योंकि उनमें वे गर्भित हैं।

इनमें से बंध कितनों का होता हैं यानी इनमें बंध योग्य प्रकृतियां कितनी हैं ? तो कहते हैं १२० हैं; क्यों ? अभी हमने देखा था कि दर्शनमोहनीय की जो सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति हैं, वे तो बाद में मिथ्यात्व में से तैयार होती हैं, उनका कभी बंध नहीं होता। वे सत्ता में तो अवश्य हैं, उदयरूप भी होती हैं परंतु उनका बंध कभी नहीं

पाया जाता। बंध तो मिथ्यात्व का ही होता है। इसलिये बंधने योग्य प्रकृतियां कितनी हैं ? तो १२० हैं। सत्ता में कितनी रहती हैं ? तो १२२ रहती हैं और उदय में भी उनकी संख्या उतनी ही १२२ होगी। पृष्ठ संख्या ३८ पर यह चार्ट हम बताना चाहते हैं आपको। ऊपर का जो चार्ट है, उसमें कर्म के दो भेद बताये हैं। जो हमने देखा है न उसीको चार्ट में देख रहे हैं। घातिकर्म और अघातिकर्म मूल दो भेद हैं; घाति में ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, मोहनीय की २८, अंतराय की ५, टोटल कितनी लिखी है वहां पर ? ४७। अघाति में वेदनीय की २, आयु की ४, नाम की ९३ और ९३ के बदले ब्रॅकेट में लिखा है ६७, तो वहां कितनी कम कर दी हमने ? *श्रोता: छब्बीस।* हां, छब्बीस कम कर दी न; अभी हमने देखी थी कि बंधन और संघात को शरीर नामकर्म में गर्भित कर दिया और स्पर्श आदि बीस के बदले चार बता दिये। ये छब्बीस को कम करके उन्हींको ६७ लिखा; जिनको ९३ कहा था, उन्हींको ६७ कह रहे हैं और गोत्र की २। नामकर्म के हिसाब में जो कुछ हमने परिवर्तन कर दिया था तो उसकी टोटल लेंगे तो अघातिकर्म की १०१ होती हैं और घातिकर्म की ४७ मिलकर १४८ हुयी। अगर उनको हम ६७ में लेते हैं, तो उनकी टोटल होती हैं ७५ और ये हैं ४७ तो १२२ हो जायेगी।

हमने सुबह जो प्रशस्त, अप्रशस्त के भेद देखे थे, उसका चार्ट भी देख लेते हैं। हमने देखा था न ! ये जो अघातिकर्म हैं, उनमें दो भेद हैं। घातिकर्म में तो कुछ प्रशस्त हैं ही नहीं। अघातिकर्म में दो-दो भेद हैं प्रत्येक कर्म में; प्रशस्त यानी शुभ या पुण्यप्रकृति और अप्रशस्त यानी अशुभ या पापप्रकृति; ये कर्मों के भेद हैं। तो उनमें सातावेदनीय, शुभआयु; शुभआयु में मनुष्यायु, तिर्यंचायु, देवायु है, शुभनाम में ये ६३ प्रकृतियां हैं। ये कौनसी हैं ? उसे देखेंगे अभी हम और उच्चगोत्र है। अप्रशस्त में असातावेदनीय, अशुभआयु यानी नरकायु, अशुभनाम और नीचगोत्र है।

अब इनका जो शुभकर्म और अशुभकर्म का जो चार्ट है वह भी देख लेते हैं, ३९ पृष्ठ पर आगे। अभी हमने देखे थे न नामकर्म, गति नामकर्म ? तो उसमें देवगति और मनुष्यगति शुभ हैं, नरकगति और तिर्यंचगति अशुभ नामकर्म हैं। जाति में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति ये अशुभ हैं और पंचेन्द्रिय जाति यह शुभ है। शरीर नामकर्म में पांचों ही शरीर नामकर्म शुभ हैं; पांचो ही बंधन, पांचों ही संघात शुभ हैं;

सभी अंगोपांग भी शुभ नामकर्म हैं। स्पर्शादि जो हैं वे शुभ स्पर्शादि भी हैं और अशुभ स्पर्शादि दोनों जगह उनको ले लेंगे। संस्थान में पहलेवाला जो समचतुरस्रसंस्थान वह शुभ है बाकी पांच अशुभ हैं। संहनन में भी पहलेवाला जो वज्रवृषभनाराचसंहनन है, हं, वह तो शुभ है, शेष पांचों अशुभ हैं। आनुपूर्वी में जैसे हमने गति को लिया वैसे गत्यानुपूर्वी को- देवानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी, वे शुभ में लेना और बाकी दो अशुभ में। विहायोगति में तो उनके नाम ही हैं प्रशस्त और अप्रशस्त। यह अगुरुलघु प्रशस्त है, परघात प्रशस्त है, उपघात अप्रशस्त है। उच्छ्वास, आतप, उद्योत - देखो एकेन्द्रियों के भी ये पाये जाते हैं परंतु ये प्रशस्त प्रकृतियां हैं। त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक प्रशस्त हैं। इनके अगेन्स्ट यानी स्थावर है, अपर्याप्त है, सूक्ष्म है, साधारण है वे अप्रशस्त हैं। स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति ये प्रशस्त हैं, अस्थिर आदि इन्हींके जो ऑपोझिट हैं वे सारे अप्रशस्त हैं। तीर्थंकर प्रशस्त प्रकृति है और निर्माण भी प्रशस्त है। इसतरह प्रशस्त की संख्या हो गयी ६३ और अप्रशस्त की हुयी ५०। इनमें स्पर्श आदि हमने दोनों जगह लिये थे, इसलिये ज्यादा हो गये, रिपीट हो गये न दोनों तरफ !

अभी इसमें हमने जो निकाले हैं न, ये जो स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय यह जो प्रशस्त कर्मों की यहां लिस्ट देखी, उनको साता आदि कहेंगे। साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के जो बंध होते हैं, वे विशुद्ध परिणामों से होते हैं। असाता आदि के जो बंध होते हैं वे संक्लेश परिणामों से होते हैं, उनको संक्लेश कहेंगे। कषाय, दोनों को ही कषाय कहेंगे, जैसे हम कहतें है न मंद कषाय और तीव्र कषाय ? तीव्र कषायों को कहेंगे संक्लेश और मंद कषायों को कहेंगे विशुद्धि। विशुद्धि यानी पुण्य परिणाम; विशुद्धि यानी वीतरागता ऐसा यहां अर्थ नहीं है, हं, क्योंकि अमृतचंद्राचार्य ने भी कहा न 'मम परम विशुद्धिर्भवतु'। विशुद्धि बढ़ती है यानी कषायों की मंदता होती चली जाती है। वीतरागता तो बढ़ रही है, परंतु यहां विशुद्धि बढ़ना यानी कषायों की मंदता होती चली जाना ऐसा भी वहां अर्थ है।

हमने कर्मों के जो कुछ अलग-अलग भेद देखे हैं उसमें और भी जरा विस्तार से देख लेते हैं। घातिकर्मों में जो हमने भेद देखे हैं उनके सर्वघाति और देशघाति भी देखते हैं। यह विषय बाद में फिर दुबारा आनेवाला है जब अनुभाग का प्रकरण चलेगा।

अभी हम घाति-अघातिकर्म देख रहे हैं, उनमें जो हमने घातिकर्म देखे; कौन-कौनसे ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय; उनमें भी दो-दो भेद हैं। कैसे ? सर्वघाति प्रकृतियां और देशघाति प्रकृतियां। अभी केवल नाम सुनने हैं उनके, उनकी अधिक चर्चा बाद में करेंगे। जब हम वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक क्या होते हैं उनको देखेंगे तब उनकी दुबारा चर्चा करेंगे। अभी केवल उनके नाम सुनने हैं हमें। ये सर्वघाति क्या होते हैं ? जो अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात करे उसको हम कहेंगे सर्वघाति प्रकृति और जो अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात करने में समर्थ नहीं है उसको कहेंगे देशघाति प्रकृति। पंचलब्धि पुस्तक में ५४ पृष्ठ, देखो - जिसके उदय में उसका प्रतिपक्ष बिलकुल वहां पर्याय में प्रकट नहीं है। जैसे हमने देखा है केवलज्ञानावरण का उदय चल रहा है, तो केवलज्ञान हमारा है क्या अभी पर्याय में ? बिलकुल नहीं है तो हम कहेंगे वह कैसी है ? सर्वघाति प्रकृति है, प्रकृति की बात चल रही है। फिर मतिज्ञानावरण है, श्रुतज्ञानावरण है, अवधिज्ञानावरण है और मन:पर्ययज्ञानावरण है, वे कैसी हैं ? देशघाति प्रकृतियां हैं। यहां आगे चलकर एक शब्द स्पर्धक आयेगा उसकी बात अभी हम नहीं देख रहे हैं। हम यहां मात्र प्रकृतियों की बात कर रहे हैं। दर्शनावरण में केवलदर्शनावरण यह सर्वघाति है और जैसे हमने देखा था जागृत अवस्था का नाश करनेवाली जो पांचों ही निद्रा हैं वे भी सर्वघाति प्रकृतियां हैं और इनके बिना अन्य कौनसी हैं ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण, ये हैं देशघाति प्रकृति।

मोहनीय में मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, ये कैसी हैं ? सर्वघाति हैं। क्या है उनका प्रतिपक्ष ? सम्यक्त्व, वे सम्यक्त्व का पूरा घात करती हैं और सम्यक् प्रकृति कैसी प्रकृति है ? उसका उदय भी होता रहे और सम्यक्त्व भी चलता रहे तो उसको कहेंगे देशघाति प्रकृति। ऐसे ही अनंतानुबंधी है वह सर्वघाति है; अब वह किसका घात करती है ? तो वह भी सम्यक्त्व का पूरा घात करती है। देखो, अनंतानुबंधी कषाय है उसमें भी मंदता से तीव्रता तक जो बहुत सारे अलग-अलग परिणाम हैं, अत्यंत तीव्र जो अनंतानुबंधी है और अत्यंत मंद अनंतानुबंधी है। कौनसा ? शुक्ललेश्या का परिणाम। नौवें ग्रैवेयकवाला देव है, वहां तो कोई पाप नहीं कर रहा है, कितना भला है न ! शुक्ललेश्या चल रही है और मिथ्यादृष्टि है वहां का, ग्रैवेयक के देव की बात चल रही है,

नौवें ग्रैवेयक का देव। मिथ्यादृष्टि है, शुक्ललेश्या चल रही है, कोई पाप परिणाम उसके नहीं दिखायी दे रहे हैं, परंतु जब तक सम्यक्त्व नहीं है, तो कैसा है ? उसका अनंतानुबंधी का उदय चल रहा है।

जब अनंतानुबंधी का उदय कहते हैं तो अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चारों का ही उदय चलता है। भले ही उसका मंद उदय है, पर जब तक अनंतानुबंधी है, तब तक उसको वहां सम्यक्त्व नहीं है, उसके सम्यक्त्व का घात हो रहा है। जब अनंतानुबंधी नहीं रही, तब अप्रत्याख्यानावरण आदि तीनों हैं; तो तीनों के उदय में उसको, अप्रत्याख्यानावरण को भी यहां सर्वघाति कहा। किसका घात कर रहे हैं अभी ? *श्रोता: देशचारित्र का घात कर रहे हैं।* देशचारित्र का घात कर रहे हैं ? देशचारित्र नहीं होने दे रहे हैं। वह भी चला गया क्योंकि ये चारों कषाय चौकडी थी तो मिथ्यादृष्टि थे या दूसरे गुणस्थानवाले थे। चौथे गुणस्थानवाले को यह अप्रत्याख्यानावरण है परंतु वह देशचारित्र नहीं होने देता था अब यह भी चला गया है, अभी कैसा है ? प्रत्याख्यानावरण का उदय है उसको भी यहां सर्वघाति कहा। वह किसका घात कर रहा है ? *श्रोता: सकलसंयम।* सकलसंयम को नहीं होने दे रहा है; अणुव्रत तो होने दे रहा है परंतु सकलसंयम नहीं होने देता तो उसको भी सर्वघाति कहा। यह प्रत्याख्यानावरण भी चला गया तो जो संज्वलन है उसको क्या कहा यहां? *श्रोता: देशघाति।* देशघाति यानी संज्वलन का उदय भी होता रहे और संयम भी चलता रहे। इसलिये उसको देशघाति कहा और ये जो नौ नोकषाय हैं वे भी देशघाति हैं। यह देशघाति और सर्वघाति की चर्चा, स्पर्धकों के रूप में हम फिर दुबारा करेंगे। अभी वह स्पर्धकों का विषय नहीं लेंगे क्योंकि हमने वे स्पर्धक क्या होते हैं, उनकी कैसी अनुभाग की रचना होती है उसको नहीं देखा है। अंतराय में जो पांचों ही प्रकृतियां हैं वे देशघाति ही हैं। हां, सभी देशघाति, उनमें कोई सर्वघाति प्रकृति नहीं हैं। इसतरह से यहां तो यह देशघाति और सर्वघाति की चर्चा की हमने, बाकी चर्चा हम आगामी क्लास में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

५. निषेक रचना और स्पर्धक रचना

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने जो गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है, उसकी टीका पं. टोडरमलजी ने जो लिखी है सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका, उसके आधार से अपना यहां कर्म संबंधी स्वाध्याय चल रहा है। हमने देखा है कि जो कर्म का बंध होता है उसमें प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध इसतरह हमने चार प्रकार देखे हैं और उनकी थोड़ी चर्चा भी हमने की थी। कुछ प्रश्न आये हैं उन्हें देखते हैं।

प्रश्नः हमने जो शुभ और अशुभ प्रकृतियों के यहां नाम देखे हैं उसमें तो तिर्यंच आयु को आपने शुभ कहा और तिर्यंचगति और तिर्यंचगत्यानुपूर्वी को अशुभ कहा, ऐसा क्यों ? शुभभावों से ये तीन आयु अधिक बंधती हैं, उनकी स्थिति लंबी बंधती है। आयु में उलटा प्रपोर्शन होता है; शुभआयु में उलटा प्रपोर्शन होता है कि शुभभावों से यानी विशुद्ध परिणामों से, मंद कषायों से लंबी आयु बंधती है और अन्य कर्मों की अशुभभावों से स्थिति अधिक बंधती है और जो शुभभाव हैं, उनसे स्थिति कम बंधती है। उसमें यह एक्सेप्शन, अपवाद है तीन आयु का। ऐसी भी बात है कि तिर्यंच आयु में उनको वहां अच्छा लगता है, जो कहते हैं न, नारकी वहां नरक में रहना नहीं चाहता है। संज्ञी पंचेन्द्रियों की बात करेंगे; परंतु तिर्यंच हैं, मनुष्य हैं, देव हैं, उनको अपनी-अपनी आयु प्यारी लगती है और नारकी वहां से छूटना चाहता है। यह तो जैसे लौकिक में हम अपनी भाषा में कहते हैं न ! यह तो कुछ उसकी खास बात नहीं है।

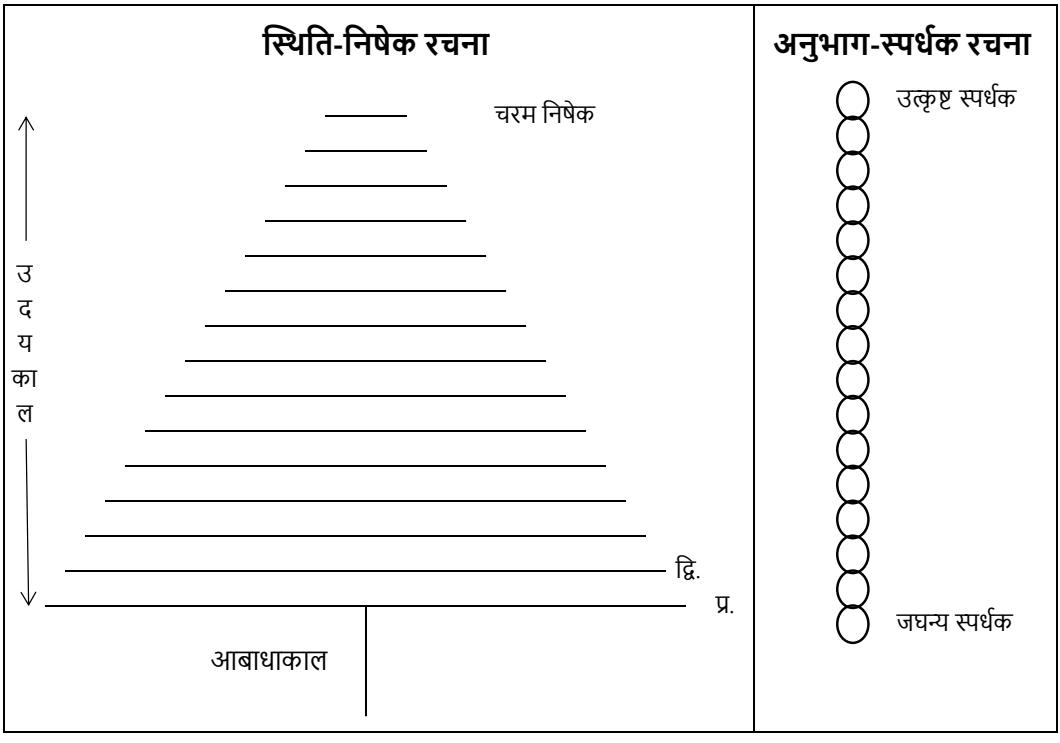
यहां स्थिति संबंधी कुछ प्रश्न हैं, इसकी चर्चा हम स्थितिबंध के समय करेंगे। एक प्रश्न ऐसा आया है कि *विग्रहगति का जीव तीन समय में नोकर्मवर्गणा यानी नया शरीर ग्रहण करता है तो उसे स्त्री-पुरुष संबंध की क्या आवश्यकता है, यानी मां-बाप की क्या आवश्यकता है ?* तीन समय में शरीर के परमाणु ग्रहण करता है तो उसको मां-बाप की क्या आवश्यकता है ? यह मां-बाप की आवश्यकता कितने जीवों को है ? जीवराशि तो अनंत है। जन्म भी तीन प्रकार के होते हैं। एक होता है सम्मूर्च्छन जन्म, एक होता है उपपाद जन्म और एक होता है... *श्रोताः गर्भज।* गर्भजवाला जन्म। फिर से, जन्म तीन प्रकार के हैं, एक है सम्मूर्च्छन, एक है उपपादजन्म और एक है गर्भजन्म,

गर्भज प्रकार का जन्म। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सारे जीव नियम से सम्मूर्च्छन ही होते हैं; 'ही' लगाना और देव और नारकी हैं वे उपपादजन्मवाले होते हैं। देवों में उपपाद शय्या होती है और नारकियों में जैसे मधुछत्ते होते हैं वैसे उनके नरक के बिल में ऊपर छत में यंत्र समान कोई रचना होती है, ऊंट के मुख के आकार की, तो वहां उनकी उत्पत्ति होती है; वहां भी कोई मां-बाप नहीं होते उनके। अब रही बात संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंच और मनुष्यों की; मनुष्यों में असंख्यात मनुष्य सम्मूर्च्छन हैं जो लब्धिअपर्याप्त हैं। संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंचों में जो गर्भज तिर्यंच हैं उनसे असंख्यातगुणे ये सम्मूर्च्छन तिर्यंच हैं, संज्ञी भी और असंज्ञी भी, पर्याप्त भी और लब्धिअपर्याप्त भी।

मां-बाप से जन्मनेवाले जिसको हम कहेंगे गर्भजन्मवाले जो हैं, गर्भज जो हैं, वे हैं तो थोड़े परंतु वहां भी ऐसा नहीं समझना कि वे स्त्री-पुरुष के कारण जन्म लेते हैं। वैसा सहज निमित्त बनता है। किसी भी वातावरण में क्यों उत्पन्न हुये ? वह जीव जो वहां परमाणुओं का ग्रहण करता है वह अपने शरीर नामकर्म के उदय में। जीव में ऐसी योग्यता होती है कि वह तो कर्मों का और नोकर्मों का ग्रहण करे और वह स्वयं शरीर के परमाणुओं को ग्रहण करके शरीर की रचना करता है। वहां कोई रेडिमेड शरीर नहीं होता कि जिसमें जाकर वह प्रवेश करता है। हमारा जीवकाण्ड में यह विषय हुआ है पर्याप्ति आदि का; कैसी-कैसी पर्याप्ति होती हैं, कैसे इस शरीर की रचना होती है - बहुत विस्तार से हमने इसको जाना भी है। परंतु यहां प्रश्न आया था इसीलिये यहां यह बात निकाली है। अपना जो मूल विषय चल रहा है वह बात आगे बढ़ायेंगे।

कर्म का बंध होता है तो हमने देखा है कितने ही जो परमाणु आते हैं तो वे आते हैं और बंधते हैं। तो उनका क्या होता है और वे कैसे-कैसे उदय में आते हैं ? अनंत परमाणु एक साथ बंधते हैं, परंतु उन अनंतों में अलग-अलग स्थिति पड़ती है। हम जो कहते हैं कोई ७० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट स्थितिबंध करता है तो जितने अनंत परमाणु लिये हैं उन सब परमाणुओं में इतना स्थितिबंध नहीं पड़ता है क्योंकि इसकी जो निषेक रचना होती है - वह क्या होती है ? उसको हम देखेंगे। आबाधाकाल यानी जितने काल तक उदय नहीं आता है उसको कहेंगे आबाधाकाल। आबाधाकाल को छोड़कर उसके ऊपर निषेक रचना होती है। एक-एक समय में परमाणुओं का एक-

एक लॉट, एक साथ उदय आने योग्य होता है तो उसको हम कहेंगे निषेक रचना होती है। एक समय में जो बंधे हुये परमाणु हैं उनका डिस्ट्रिब्यूशन, अभी हम अगर ७० कोड़ाकोड़ी सागर की बात करते हैं तो उसमें किस रूप से होते हैं हम जरा उसकी बात करेंगे। जो स्थिति बंधती है, जो मॅक्झिमम स्थिति बंधी है उसकी हम बात करते हैं कि इतनी स्थिति का बंध हुआ; परंतु उसमें एक-एक परमाणु में स्थिति अलग बंधती है; अनंत परमाणु लिये हैं। अब यहां अगर हम गौर करते हैं बोर्ड पर-



करणानुयोग में जहां-जहां ये ऐसे डायग्रॅम्स, चार्ट्स, फिगर्स जो कुछ बनाये हैं, वहां हमेशा वर्तमान का समय नीचे बताते हैं और भविष्यकालीन समय या निषेक हैं उन्हें ऊपर बताते हैं। यहां काल बताया जाता है तो यह नीचे का जो समय है, वह वर्तमान समय है। किसी जीव ने इस समय कर्मों का बंध किया तो जितने अनंत परमाणु उसने ग्रहण किये हैं तो उनकी निषेक रचना होती है। ये आड़ी लाइनें बतायी

हैं न यहां ? रेखायें खींची हैं, इसको कहेंगे निषेक रचना। तो आबाधाकाल को छोड़कर, उसके ऊपर पहले समय में कुछ परमाणु उदय में आयेंगे; दूसरे समय में, तीसरे समय में, चौथे समय में, लगातार इनका उदय चलेगा। कब तक ? जितनी उत्कृष्ट स्थिति उस समय बंधी है तब तक, इसको कहेंगे निषेक रचना। निषेक का अर्थ क्या है ? एक साथ उदय आने योग्य परमाणुओं का समूह; अपनी भाषा में परमाणुओं का एक लॉट, जो ॲट अ टाइम एक समय में उदय में आ सकता है। इसको हम कहेंगे निषेक रचना।

यहां तो हम कह रहे हैं कि जब कर्म बंधते हैं तो निषेक रचना होती है परंतु ऐसा मत समझना कि कर्म कोई ऐसे कतार में, वहां लाइन लगाकर खड़े रहते होंगे, पैर से लेकर सिर तक; पैरोंवाले जल्दी निकल जाते होंगे - ऐसी कोई बात नहीं है। कर्मों के ऐसे कोई ये गट्ठे इधर पड़े हैं हाथ में, ये पैर में पड़े हैं, ये मस्तक में पड़े हैं ऐसा कुछ नहीं है। जीव के संपूर्ण असंख्यात प्रदेशों में सभी कर्म परमाणु पूरे ईक्वलि डिस्ट्रिब्यूटेड हैं। एक साथ उदय में आनेवाले परमाणुओं में से कोई परमाणु, इस जगह मस्तक में होंगे, कोई नीचे पैरों में होंगे, कोई कहीं पर भी होंगे। वे कहीं पर भी हो जो-जो एक साथ में उदय में आयेंगे उनको हम कहेंगे वह एक निषेक है।

यदि यहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति बंधी है ऐसा अगर हम मान लेते हैं तो यहां पर उसका आबाधाकाल होता है ७००० वर्षों का। ७० कोड़ाकोड़ी सागर, उसके लिये आबाधाकाल है सत्तर सौ यानी ७००० वर्ष; यानी एक कोड़ाकोड़ी सागर के लिये सौ वर्ष। यह उस आबाधा का प्रपोर्शन है। किसमें ? सात कर्मों में। आयु की बात हम अलग से करेंगे क्योंकि आयु का सारा अलग ही तरीका होता है। यहां जो कर्म बंधे हैं तो ७००० वर्षों तक इसमें से कोई परमाणु उदय योग्य नहीं हैं। उसी समय जो यह निषेक रचना हुयी है तो आबाधाकाल के पश्चात् पहले समय में कुछ परमाणु उदय में आकर खिर जायेंगे, वे भी अनंत होते हैं। प्रत्येक निषेक में अनंत होते हैं। दूसरे समय में कोई खिरेंगे, तीसरे समय में, चौथे समय में, लगातार ७० कोड़ाकोड़ी सागर वर्षों के जितने समय हैं उतने प्रत्येक समय में, एक समय में बंधे हुये कर्म खिरते रहेंगे। एक समय की कमाई कितने दिन तक खायेंगे? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक।* उसमें से आबाधाकाल के ७००० वर्ष मायनस कर दो। अभी एक आवली के बाद उसका

उदीरणा के द्वारा उदय भी शुरू हो सकता है। अभी-अभी बंधा हुआ ! आवली कितनी छोटी होती है; एक सेकंड में तो हज़ारों कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं और एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यात इतने समय होते हैं। यह आवली क्या है, असंख्यात क्या है, सागर क्या है उसकी हमने चर्चा बहुत बार की है, शॉर्ट में देख लेते हैं।

दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है। जब हम कर्मों की स्थिति नाप रहे हैं तो यह कौनसा सागर है? अद्धासागर। इसका नाम है अद्धासागर। क्योंकि सागर भी तीन प्रकार के होते हैं। दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है। तीन प्रकार के पल्य हैं तो तीन प्रकार के सागर होंगे। एक छोटे में छोटा है वह व्यवहारपल्य। पल्य किसको कहना ? यह बात उपमा देकर समझायी जाती है, इसको कहेंगे उपमामान। असंख्यात का जो नाप है, वह कितना बड़ा है ? उसके लिये पल्य यानी गड्ढा-खड्डा करना। *श्रोता: खाडो।* हां, खाडो। कितना बड़ा करना है ? एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंडा। चौड़ा यानी गोल आकार का ऐसा करना, डायमीटर उसका एक योजन। कौनसा योजन ? महायोजन क्योंकि हमारा सादा योजन तो चार कोस का होता है और महायोजन है वह ५००गुणा बड़ा है यानी दो हज़ार कोस का एक योजन होगा, वह उसका डायमीटर होगा। इतना बड़ा गड्ढा है। अब उसको भर देना। किससे ? *श्रोता: रोमखण्डों से।* रोमखण्डों से। रोमखण्ड किसको कहना ? बाल का अग्रभाग। अग्रभाग छोटा होता है और नीचे मोटा होता है। अग्रभाग किसका ? हमारा बाल नहीं चलेगा। उत्तम भोगभूमि में जन्मे हुये... *श्रोता: न्यू बॉर्न।* हां, न्यू बॉर्न, सात दिन के अंदर जो मेंढे के बालक हैं उनके बालों का। क्यों ? क्योंकि हमने देखा न ? उत्तम भोगभूमिवालों से मध्यम भोगभूमिवालों के बाल आठगुणे मोटे होते हैं। उनसे जघन्य भोगभूमिवालों के और आठगुणे मोटे होते हैं और उनसे ऐसे करते-करते आओ यहां पर, हमारे आपके बाल कितने मोटे हो जायेंगे उनके सामने ? तो ये इतने कोमल बाल हैं ! उनका भी छोटे में छोटा टुकड़ा लेकर, उनसे यह सब गड्ढा भर देना। सौ साल के बाद एक टुकड़ा निकालकर बाहर फेंकना। यह सब अपनी बुद्धि में करना है। नहीं तो आप कहेंगे इतनी बड़ी जगह ही कहां मिलेगी ? अभी तो कितनी प्रॉब्लेम है जगह की !

हां, जब वह गड्ढा पूरा खाली हो जायेगा तब हम कहेंगे यह एक व्यवहारपल्य

है। अब असंख्यात करोड़ वर्षों के जितने समय हैं, उनसे इन रोमखण्डों की संख्या को गुणा करेंगे तो आ जायेगी उद्धारपल्यों के रोमखण्डों की संख्या। उतने ही उसमें समय हैं। उनको असंख्यात वर्षों के समयों से गुणा करेंगे तो आ जायेगा अद्धापल्य। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी, कोड़ाकोड़ी समझते हैं किसको कहते हैं ? करोड़ गुणा करोड़ को कहेंगे कोड़ाकोड़ी। दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का होता है एक सागर और ऐसे ७० कोड़ाकोड़ी सागर का किसीके मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध हो सकता है। वह कैसे होता है ? करते तो आये हैं हम अनादि से। हर समय भले ही उत्कृष्ट बंध नहीं किया है; कभी कम, कभी ज्यादा वह करते आये हैं। फिर भी इस मिथ्यात्व से हम छूटे नहीं हैं। यह एक समय की कमाई कितने काल तक खा रहा है ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर।* अधिक से अधिक ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक ! खाली वर्ष नहीं हैं। तो यह कितना लंबा काल है ? देखो, हम कर्म बांध रहे हैं, तो कितने ? जिसको कहेंगे करोड़ों भवों तक हमारे साथ चल रहे हैं। कभी का बंधा हुआ अभी उदय में आ रहा है, ऐसा भी होता है। हर एक कर्म की स्थिति, कौनसे कर्मों में अधिक से अधिक स्थिति कितनी पड़ती है, कम से कम कितनी पड़ती है यह तो हम देखेंगे; पंचेन्द्रियों को कितनी पड़ती है, एकेन्द्रियों को कितनी पड़ती है उसकी भी चर्चा करेंगे।

हम देख रहे हैं कि कर्मबंध के बाद क्या होता है ? कहते हैं कि आबाधाकाल छोड़कर, आबाधाकाल किसको कहना ? जिस काल में उदय योग्य निषेक रचना नहीं होती है; वहां कोई निषेक, वहां कोई परमाणु नहीं पाया जाता है उसको कहेंगे आबाधाकाल। आबाधाकाल के पश्चात् प्रत्येक समय में अनंत-अनंत परमाणुओं के समूह जो हैं, एक-एक उदय योग्य है; लेकिन अकेला इतने का ही उदय नहीं हो रहा है, यह तो एक समय में बंधा हुआ है; ऐसी प्रत्येक समय में जो बंधे हैं न ! उनकी सबकी अभी एक-एक क्रिस्मस ट्री यानी निषेक रचना बनाओ और हर एक का जिसका-जिसका उदय योग्य निषेक है वे सब एक साथ उदय में आते हैं। अभी किसीका ऐसा हो सकता है कि पहला निषेक उदय में आ रहा है। किसीका इतना काल बीत गया कि दूसरा निषेक उदय में आ रहा है। किसीका इतना काल बीत गया है कि तीसरा निषेक उदय में आ रहा है। किसीका इतना काल बीत गया है कि चौथा निषेक उदय में आ

रहा है। ऐसे हो सकता है। हर एक समय में पूर्व में बंधे हुये, अलग-अलग समयों में बंधे हुये, एक साथ उदय में आते हैं। एक समय में बंधे हुये, उनका डिस्ट्रिब्यूशन सागरों तक होता है और अलग समयों में बंधे हुये किसीका पहला निषेक, किसीका दूसरा, किसीका तीसरा, किसीके लास्टवाला मिलकर उदय में आते हैं। ये सब मिलकर भी उतने ही अनंत हो जायेंगे जितना एक समयप्रबद्ध होता है। अलग-अलग समयों में बंधे हुये एक साथ उदय में आते हैं और एक समय में बंधे हुये अलग-अलग कालों में उदय में आते हैं। अब हमें तो पता नहीं है कब-कैसे कर्म बंधे थे, कितने अनुभागवाले बंधे थे, कितने कर्म परमाणु बंधे थे, कैसे-कैसे बंधे थे और उनका उदय कैसे होनेवाला है यह हमारे ज्ञान का विषय है ही नहीं। हम तो केवल इसका अनुमान लगा सकते हैं; आगम के द्वारा उसको सोच सकते हैं - जान सकते हैं। यहां हम केवल इतनी बात देख रहे हैं कि क्या-क्या होता है, उसमें से जीव कैसे छूटता है ? वह चर्चा आगे आयेगी।

जब कर्म बंधता है तो उसमें स्थिति पड़ती है, सबसे ऊपर का जो उत्कृष्ट निषेक है; उसमें जितनी स्थिति पड़ी है उसको हम कहेंगे इतनी स्थिति बांधी। परंतु उस समय जो अनंत परमाणु हैं, उनके जितने निषेक हो गये हैं उनके एक-एक समय की अलग-अलग स्थिति पड़ी है। परिणाम एक, परमाणु बंधे अनंत और उनमें अनंत परमाणुओं में अपनी-अपनी, अलग-अलग स्थिति पड़ी है। यही तो प्रूव्ह करते हैं न कि निमित्त से कार्य नहीं होता। हम द्रव्यानुयोग पढ़ रहे कि करणानुयोग ? कुछ भी पढ़ो, सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही हैं; वे अनुयोग के अनुसार बदलते नहीं हैं। भाषाशैली भले बदले परंतु सिद्धान्त तो वे ही रहते हैं जो हम अभी तक द्रव्यानुयोग में पढ़ते आये हैं।

यहां हम देख रहे हैं कि जो एक समय में बंधते हैं उनकी निषेक रचना होती है; निषेक रचना होती है का अर्थ क्या है? अलग-अलग परमाणु कब उदय में आयेंगे उसको हम चित्र द्वारा बताते हैं। ऐसे कोई वहां परमाणु नीचे-ऊपर नहीं होते हैं। हमारे रुपये की कीमत कम होती है न ? डिव्हॅल्यूएशन होती है या शेअर्स के भावों में कम-ज्यादा होता है तो पेपर में छपकर आता है। ऐसा सेन्सेक्स नीचे आता है तो हमारी तिजोरी के पैसे भी ऊपर से नीचे लुढ़कते हैं ? क्या होता है ? ऐसे ही रहते हैं। अरे ! उनकी व्हॅल्यू कम हो गयी ! वे तो हैं वहीं पर हैं। ऐसे ही यहां जो कर्म परमाणु हैं, वे हैं

वहीं पर स्थित हैं। उनकी उदय में आने की कब योग्यता है उसको हम यहां चित्र द्वारा आलेखित करते हैं तो उसको कहेंगे उनकी निषेक रचना होती है। हमारे समझने के लिये आचार्यों ने हमें ऐसा चित्र बनाकर समझाया है कि बंध के समय से लेकर आबाधाकाल तक कोई निषेक रचना नहीं है। उसके बाद हर समय में एक-एक निषेक बनता है। उस समय एक समय में जो बंध हुआ है उन सारे परमाणुओं की जो टोटल है न, उसको कहेंगे एक समयप्रबद्ध; एक समय में बंधे हुये परमाणुओं की बात है। ऐसा बंध हर समय कर रहे हैं हम; हर समय, अपनी-अपनी आबाधा होगी, अपनी-अपनी निषेक रचना होगी। सभी कर्मों के अलग-अलग समयों में बंधे हुये जो-जो निषेक ॲट अ टाइम उदय में आते हैं, उनकी हमें उस एक समय में जो कुछ ग्रँड टोटल होती है उसका फल मिलता है। तो यह हो गयी निषेक रचना।

एक होती है अनुभाग रचना। हमने देखा है न, जिस समय कर्म बंधता है उसी समय उसमें उसकी स्थिति निश्चित होती है और उसी समय उसमें अनुभाग यानी फल देने की शक्ति है, वह भी निश्चित होती है। किसी भी चीज़ की, किसी भी; जो कोई ज्ञान की पर्याय हो या कर्म की हो या पुद्गलों की कुछ स्पर्शादि की पर्याय हो; उसकी हमें शक्ति नापना है। वह शक्ति किसमें नापते हैं ? उसका कोई एकक, कोई यूनिट तो होना चाहिये न ? जैसे, हम कपड़ा नापते हैं तो मीटर में नापेंगे या सेंटीमीटर में भी नाप सकते हैं और दूध नापना है तो लीटर में नापेंगे। कोई वजन करना है तो किलो में नापेंगे। ऐसे शक्ति किसमें नापते हैं ? इसमें इसका छोटे में छोटा शक्ति का अंश क्या है ? उसको कहेंगे अविभागप्रतिच्छेद; जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता ऐसे शक्ति का छोटे में छोटा जो अंश है उसको कहेंगे अविभागप्रतिच्छेद। स्मॉलेस्ट यूनिट ऑफ़ पॉवर, जो कोई शक्ति जिसकी है। तो यहां भी यह हम कर्मों की शक्ति देख रहे हैं। वह भी हम अविभागप्रतिच्छेदों में नापेंगे।

ज्ञान की जब बात करेंगे तो ज्ञान के भी अपने अविभागप्रतिच्छेद होंगे। हर एक के, संयम की बात जब आयेगी तो कहेंगे कि उसके अपने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यहां हम कर्मों की बात कर रहे हैं, तो कर्मों में भी अपने-अपने अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। जिन कर्मों की बहुत फल देने की जो हम कहेंगे न; तीव्र जो शक्ति है, अधिक

से अधिक शक्ति है; तो हम कहेंगे उनके अविभागप्रतिच्छेद ज्यादा हैं। मंदवाले हैं तो उनको कहेंगे उनके अविभागप्रतिच्छेद कम हैं। ये जो अविभागप्रतिच्छेद हैं, वे हैं शक्ति के अंश। प्रत्येक कर्म परमाणु में अपनी-अपनी फलदान शक्ति है और उसके लिये हमने सुबह निमित्त देखा था। स्थिति और अनुभाग क्यों बंधते हैं ? *श्रोता: कषाय से।* कषाय से स्थिति, अनुभाग बंधते हैं। तीव्र कषाय हो तो अशुभकर्मों में तीव्र अनुभाग पड़ेगा, शुभ में मंद पड़ेगा। क्योंकि अभी अनुभाग में तो उलटा-पुलटा है कि जो विशुद्ध परिणाम यानी शुभ परिणामों से शुभ में तीव्र अनुभाग पड़ेगा, अशुभ में मंद पड़ेगा।

अभी जहां जो योग्य प्रकृतियां बंधती हैं इसलिये शुभ-अशुभ दोनों प्रकार की बंधती रहती हैं, तो उसमें अनुभाग किसमें ज्यादा होगा ? तो जहां तीव्र परिणाम हैं यानी पापरूप परिणाम होंगे वहां ज्ञानावरणादि सभी जो अशुभ प्रकृतियां - ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, मोहनीय, अंतराय-सभी तो पाप प्रकृतियां हैं। तो जब अशुभभाव करते हैं तो इनमें तीव्र अनुभाग, अधिक अनुभाग, अधिक फल देने की शक्ति होगी; यानी ज्ञानावरण तीव्र होगा तो उसके उदय में ज्ञान का उघाड़ मंद हो जायेगा। ज्ञानावरण का तीव्र अनुभाग, पाप किया न ! कैसा पाप किया ? अरे ! कोई शास्त्र-स्वाध्याय कर रहा था या जिनवाणी की कुछ प्रभावना कर रहा था, उसमें विघ्न डाला; उसने सर्वज्ञ की वाणी का प्रचार रोका। तो उसको ऐसा तीव्र अनुभाग का बंध होगा। अभी तो अच्छा लग रहा है; कहां जाकर उत्पन्न होगा ? निगोद आदि में। जहां ज्ञानावरण का इतना तीव्र उदय चलेगा कि वहां कोई जीव है ऐसा मानने के लिये अन्य जीव तैयार नहीं हैं। कितने जीव मानते हैं कि बटाटा, आलू, प्याज़, लहसुन वगैरह में अनंत जीव रहते हैं ? अन्य जीव, वहां जीव हैं ऐसा मानने के लिये भी तैयार नहीं हैं। ऐसी बिलकुल ज्ञान की जघन्य अवस्था प्राप्त हो जायेगी।

ऐसे ही सबमें समझना कि जो-जो जीव का परिणाम है, उसको लगता है कोई समझ नहीं रहा इसको। मैं ऐसे परिणाम करूंगा, बाहर कुछ अलग बोलना या दिखाना और अंतरंग में कोई कपट भाव से कुछ अलग सोचना और उसको चाहना। तो उसके एक-एक परिणाम का फल उस जीव को कर्मबंधरूप से अवश्य मिलता ही मिलता है और जो बंध है उसका तो उदय आयेगा ही आयेगा, बिलकुल आयेगा। हमें तो ऐसा

लगता है कि हमने कुछ पाप किये ही नहीं हैं तो हमें ऐसे प्रतिकूल संयोग क्यों मिल रहे हैं ? हमें या दूसरों को भले नहीं समझता हो परंतु कर्मों को बराबर समझता है न ! कर्म तो जानते नहीं हैं परंतु यह तो ऑटोमॅटिक व्यवस्था है। जीव के जैसे भाव-परिणाम होते हैं उसके निमित्त से, उसके अनुरूप उस-उस जाति की जो कार्माणवर्गणा हैं वे कर्मरूप तो परिणमित होती ही रहती हैं।

अब यहां हम थोड़ी अनुभाग की चर्चा करेंगे। अनुभाग का बंध होता है और उसको हम अविभागप्रतिच्छेदों में नापते हैं। जैसे हमने, जिसकी-जिसकी समान स्थिति है ऐसे परमाणुओं के समूह को क्या कहा था ? *श्रोता: निषेक।* निषेक कहा था। अभी जिनमें-जिनमें अनुभाग समान है उनका हम अलग ग्रुप बनायेंगे। हो सकता है कि वे कर्म नीचे के निषेक में हो या ऊपर के; वह कहां स्थित है उससे हमें कोई लेना-देना नहीं। अपना क्रायटेरिया क्या है ? अपना बेसिस क्या है ? अपनी अपेक्षा कौनसी है ? उसमें कितना अनुभाग है। कोई परमाणु जल्दी उदय में आनेवाला हो, कोई बाद में आनेवाला हो, कोई टॉप में पड़ा है, कहीं भी हो; जिसमें-जिसमें समान अनुभाग है उनका हम अलग ग्रुप बनायेंगे और उस ग्रुप को हम क्या कहेंगे ? वर्गणा। अभी हम स्पर्धक समझनेवाले हैं। यह नीचे से लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक तक रचना है, यहां उदय की कोई अपेक्षा नहीं है। स्पर्धक यानी अनुभाग को बतानेवाले ये स्पर्धक होते हैं। स्थिति को बतानेवाले ये निषेक होते हैं। जब हम कहेंगे निषेक रचना तो वहां समझना वे कर्म की स्थिति बता रहे हैं। जब हम कहेंगे स्पर्धक रचना या अनुभाग रचना तो ये अनुभाग को बतानेवाले हैं; फल कितना देंगे, उसमें कितनी इन्टेन्सिटी है उसको बतानेवाले हैं।

उसमें जो नीचे हैं वे मंद अनुभागवाले - उसको जघन्य या पहला स्पर्धक कहेंगे और जो तीव्र अनुभागवाले हैं - उसको ऊपर ऐसे गोल-गोल बताया हमने। यह आड़ी लाइन बतायी है निषेक के लिये वह कब उदय में आयेंगे उसे बताती है और यहां जो गोल-गोल-गोल-गोल दिखाया है, वहां जो नीचे के हैं वे मंद अनुभागवाले स्पर्धक हैं यानी उसमें तो बहुत सारी वर्गणायें पायी जाती हैं और ये जो ऊपरवाले हैं, वे तीव्र अनुभागवाले हैं। वे कब उदय में आते हैं ? वे स्थिति के अनुसार उदय में आयेंगे। हो सकता है एक ही निषेक में कोई मंद अनुभागवाले स्पर्धक भी हैं और कोई तीव्र

अनुभागवाले स्पर्धक भी हैं। फिर उसमें से उदय किसका है ? उसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। यहां तो बंध के समय में क्या हो रहा है उसको समझेंगे न ! बाद में क्या होता है उसकी चर्चा तो बाद में करेंगे हम। अभी मूल, स्थूल बातें और उनकी टर्मिनॉलॉजि देखेंगे। उनकी भाषा यदि समझ में आवे तो उसकी चर्चा भी अधिक कर सकते हैं हम।

यहां स्पर्धक किसे कहना, उसकी चर्चा करेंगे हम। स्पर्धक किसको बताता है ? *श्रोता: अनुभाग को बताता है।* अनुभाग को बताता है। यह स्पर्धक में क्या होता है तो कहते हैं अनंत वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। क्या कहा? अनंत वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। वर्गणा किसको कहना ? वर्गों के समूह को वर्गणा कहना। परंतु वे वर्गों के; कौनसे वर्ग ? वर्ग यानी एक कर्म परमाणु को वर्ग कहा है; एक-एक कर्म परमाणु में फल देने की जो शक्ति है-अविभागप्रतिच्छेद हैं, उसके कारण एक-एक परमाणु को एक-एक वर्ग कहते हैं। अब जिन-जिन परमाणुओं में समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं उनको वर्गणा कहते हैं। सबसे जघन्य वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद होते तो अनंतों में हैं, हम समझने के लिये समझेंगे कि १०० अविभागप्रतिच्छेद हैं क्योंकि उसे समझना आसान होगा न ! तो जिनमें-जिनमें १००-१००-१००-१०० अविभागप्रतिच्छेद हैं ऐसे अलग-अलग परमाणु हैं, जिनमें-जिनमें १०० अविभागप्रतिच्छेद हैं उनका हम एक ग्रुप बनायेंगे; बनायेंगे यानी सोचेंगे। कहीं उसको इकट्ठा लाकर, अलगसा उसका एक स्कंध नहीं बनाना है। तो उसके बारे में अगर हम सोचेंगे तो उसको हम नाम देंगे वर्गणा। तो वर्गणा का अर्थ क्या है ? जिनमें-जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेदवाले कर्म परमाणु हैं क्योंकि हम यहां कर्मों की बात कर रहे हैं इसलिये उसको कहेंगे वर्गणा। वर्गणा क्या है यह बात समझ में आयी ?

अब एक वर्गणा है, उस वर्गणा में अनंत परमाणु हैं फिर भी एक-एक परमाणु में हमने मान लिया है १००-१००-१००-१००-१००-१०० अविभागप्रतिच्छेद हैं। अब हम उसके ऊपर का परमाणुओं का दूसरा ग्रुप लेते हैं जिसमें १०१-१०१-१०१-१०१-१०१-१०१ अविभागप्रतिच्छेद हैं, उसको हम कहेंगे दूसरी वर्गणा; जिसमें १०२-१०२-१०२-१०२-१०२ होंगे वह है तीसरी वर्गणा; १०३-१०३-१०३ वाली चौथी; १०४ वाली वह पांचवीं; इसतरह से हर एक में अपने-अपने समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। तो पहली

वर्गणा, दूसरी वर्गणा, तीसरी वर्गणा, चौथी वर्गणा ऐसी अनंत वर्गणा हो जाती हैं, तब उनके समूह को कहेंगे एक स्पर्धक। एक-एक अविभागप्रतिच्छेद के डिफरन्स से, एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी वर्गणाओं के समूह को; कितनी वर्गणायें ? अनंत वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कहते हैं। जैसे हमने पहले स्पर्धक के पहली वर्गणा में प्रत्येक परमाणु में १०० अविभागप्रतिच्छेद देखे थे। अब बढ़ते-बढ़ते १२० तक की वर्गणाओं के समूह को पहला स्पर्धक कहेंगे, बाद में जब वह २०० हो जायेगा तो २०० से लेकर दूसरा स्पर्धक शुरू होगा। हमने तो अभी १०० इमॅजिन किया है वैसे तो अनंत होते हैं और वह अनंत जहां से दोगुणा होंगे तो वहां से हम कहेंगे दूसरा स्पर्धक है। तीनगुणा हो जायेगा तो तीसरा स्पर्धक और हर एक स्पर्धक में अनंत वर्गणायें पायी जाती हैं। चौथा स्पर्धक, पांचवां स्पर्धक, छठा इत्यादि। अब इनकी बातें आगे करेंगे।

ऐसे स्पर्धक भी कितने होते हैं ? अनंत होते हैं। निषेक कितने होते हैं ? *श्रोता: वे भी अनंत।* नहीं, ये तो सागरों के हैं न ! सागर में समय असंख्यात ही होते हैं। सागर में समय अनंत नहीं होते, असंख्यात होते हैं क्योंकि पल्य में असंख्यात समय हैं और सागर में संख्यात पल्य होते हैं; जो यह सागर है उसमें भी असंख्यात ही समय होते हैं। तो निषेक कितने भी बनेंगे, तो बनेंगे असंख्यात और स्पर्धक एक समय में कितने बंधते हैं ? अनंत। यह जो अनुभाग की रचना होती है, उसमें प्रत्येक समय में ऐसे अनंत स्पर्धक बंधते हैं और वे सभी निषेकों में स्प्रेड हैं। जहां-तहां सभी निषेकों में कोई अधिक अनुभागवाले स्पर्धक हैं, कोई कम अनुभागवाले स्पर्धक पड़े हैं वहां पर। अब यह जो स्पर्धक रचना है उसमें इन स्पर्धकों को हम नाम लेकर समझायेंगे।

ये अनंत-अनंत स्पर्धक हैं, ये अनंत स्पर्धक यानी मंद अनुभाग से लेकर तीव्र अनुभाग तक ऐसे स्पर्धक पाये जाते हैं; कौनसे कर्मों में होंगे ? ज्ञानावरण में होंगे कि दर्शनावरण में होंगे कि अंतराय में होंगे ? *श्रोता: सबमें होंगे।* सबके अपने-अपने, अलग-अलग हैं। हर समय में जो बंध होता है, हर समय में जो कोई आठों कर्म बंधते हैं हम आयु को भी लेते हैं साथ में। आठ कर्मों का बंध हो रहा है तो आठ कर्मों में अपना-अपना समयप्रबद्ध अनंतों का होगा। आठ कर्मों में अपनी-अपनी स्थिति की रचना होगी। एक समय में जो मिथ्यात्व का ७० कोड़ाकोड़ी का बंध कर रहा है, उसी

समय अनंतानुबंधी आदि कषायों का भी बंध हो रहा है, हो सकता है ४० कोड़ाकोड़ी का हो रहा है। उसी समय ज्ञानावरणादि का हो रहा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय वगैरह का ३० कोड़ाकोड़ी सागर का हो सकता है। परिणाम एक और हर एक में स्थिति अलग-अलग ! हां, वह भी मॅक्झिमम स्थिति बता रहे हैं। उसके एक-एक परमाणु में अलग-अलग स्थिति बंध रही है। कैसा विचित्र है ! ख्याल में आता है न ?

ये जो स्पर्धक हैं, अनंतों में जो बंधते हैं; हैं तो अनंत, फिर भी उनको चार नाम लेकर यहां समझाया जाता है। तो ये चार नाम भी हम देखेंगे। हर एक कर्म के अपने-अपने जो स्पर्धक हैं, उनको समझाने के लिये चार ग्रुप्स बनाये हैं उनके। ज्ञानावरण में भी, दर्शनावरण में भी। फिर भी घातिकर्मों के जो ग्रुप हैं उनके अलग नाम दिये हैं। अघातिकर्मों में जो पुण्य प्रकृतियां हैं उनके नाम अलग दिये हैं और अघाति की जो पाप प्रकृतियां हैं उनके भी नाम अलग दिये हैं। तो ये कौनसे नाम हैं ? उनको हम देखेंगे - पंचलब्धि पुस्तक में ४८ पृष्ठ। ये जो नाम लिखे हैं उनको हम मंदता से तीव्रता की ओर देखेंगे। घातिकर्म हमने कैसे देखे थे ? प्रशस्त कि अप्रशस्त ? *श्रोता: अप्रशस्त।* अप्रशस्त ही हैं यानी वे सभी पापरूप हैं। अघाति में पुण्य और पाप के दो-दो भेद थे। अब हम देखेंगे घाति के नाम क्या हैं और अघाति के नाम क्या हैं ? देखो, अभी हम चार्ट में देखेंगे।

अनुभाग के स्थान

घातिकर्म	अघातिकर्म		
	प्रशस्त	अप्रशस्त	
शैल	अमृत	हलाहल	तीव्र
अस्थि	शर्करा	विष	↑
दारु	खाण्ड	कांजीर	
लता	गुड़	नीम	मंद

घातिकर्म जो अप्रशस्त हैं उनमें जो सबसे मंद अनुभागवाले हैं उनको कहेंगे

लताभागवाले स्पर्धक। यहां लता लिखा है। यहां लता से ऊपर की ओर तीव्र अनुभागवाले हैं। यहां उपमा देकर समझाया है, लता या बेल जैसे नरम होती है। दूसरा नाम है दारु। दारु का अर्थ क्या होता है ? काष्ठ- सूखी लकड़ी; यह पीनेवाली दारू उसकी बात नहीं है। यह दारु, रु-ह्रस्व है न ? तो लताभागवाले हैं, दूसरा जो ग्रुप है उसको कहेंगे दारुभागवाला। तीसरा जो है उसको कहेंगे अस्थिभागवाला-वह और कड़क है, कठिन है और जो सबसे कठिन हैं वे शैलभागवाले हैं। ये ऐसे चार प्रकार के स्पर्धक- ज्ञानावरण में उसके अपने हैं, दर्शनावरण में उसके अपने हैं, मोहनीय में उसके अपने हैं और अंतराय में भी उसके अपने-अपने हैं। ये कौन-कौनसे स्पर्धक हैं ? तो हम कहेंगे लता, दारु, अस्थि और शैल। अधिकाधिक कठिनता के अनुसार ये नाम हैं। लता यानी बेल नरम होती है, दारु का अर्थ है काष्ठ, अस्थि यानी हड्डी और शैल यानी पर्वत। लता, दारु, अस्थि और शैल, ये घातिकर्मों के स्पर्धकों के चार नाम हुये।

अब हम अघाति के देखते हैं। अघाति में पुण्यरूप भी हैं, पापरूप भी हैं। पुण्य को ही प्रशस्त कहा है और पाप को अप्रशस्त कहा है। जो पुण्य कर्म हैं उनके स्पर्धकों के नाम हैं- गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। एक कम मीठा है और बाकी के अधिक-अधिक मीठे हैं न ! तो उसकी अपेक्षा से इनके चार नाम हैं। नाम चार हैं परंतु हर एक में अनंत-अनंत स्पर्धक हैं। हर एक ग्रुप में अनंत स्पर्धक हैं। ये गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत- ये हैं अघाति के प्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक। अघातिकर्मों में जो पापकर्म हैं उनके जो स्पर्धक हैं उनको कैसे समझाया है ? यह नीचे मंद लिखा है और ऊपर तीव्र लिखा है। निंब, नीम भी कहते हैं इसको या निंब भी कहते हैं, कांजीर, विष और हलाहल। यह कड़वाहट अधिक-अधिक है। इस अपेक्षा से इनके चार नाम बताये हैं।

हम फिर दोहराते हैं। जो घातिकर्म और अघातिकर्म हैं उनमें से हम घातिकर्मों के स्पर्धक देखेंगे, हम मंद से तीव्र की ओर देखेंगे-पढ़ेंगे। पहला नाम क्या है ? *श्रोता: लता।* लता। दूसरा ? *श्रोता: दारु।* दारु। तीसरा ? *श्रोता: अस्थि।* और चौथा ? *श्रोता: शैल।* शैल है यानी पहला लता फिर दारु। *श्रोता: अस्थि।* अस्थि और ? *श्रोता: शैल।* और शैल। ये किसके नाम हुये ? घातिकर्मों के स्पर्धकों के नाम। मंद से तीव्र की ओर। अघातिकर्मों में पहले हम पुण्य प्रकृति देखते हैं। उनके नाम क्या हैं ? पहला है गुड़,

दूसरा ? *श्रोता: खाण्ड।* खाण्ड, तीसरा ? *श्रोता: शर्करा।* शर्करा, चौथा ? *श्रोता: अमृत।* गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत ऐसे यहां चार-चार जो स्पर्धकों के नाम देखे हमने, वे किसके हैं ? अघाति के पुण्य प्रकृतियों के। प्रशस्त जिसको कहते हैं। अब अघाति की पाप प्रकृतियां रह गयी। उनके नाम हमने देखे थे- नीम, कांजीर, विष और हलाहल। इनमें कड़वाहट ज्यादा-ज्यादा है, ये उनके चार नाम बताये। ऐसे नाम लेने की क्या जरूरत है ? अनंत स्पर्धक हैं इतना बताते। जीव कैसे परिणामों में कैसे-कैसे बंध करता है ? यह जब चर्चा आती है तो जहां अत्यंत शुभ परिणाम होते हैं तो यहां पुण्य प्रकृति के चारों ही प्रकार के स्पर्धकों का बंध होता है। उसको वहां केवल इतना लिखेंगे चतु:स्थानीय बंध होता है यानी परिणाम अत्यंत विशुद्ध हैं और ये चारों प्रकार के स्पर्धक बंध रहे हैं। कहीं तो वहां विशुद्धि कम है तो कहेंगे तीन स्थान का बंध हो रहा है। विशुद्धि और कम है यानी संक्लेश की ओर बढ़ रहा है तो कहेंगे दो स्थान का बंध हो रहा है। इसके साथ तो पाप का भी बंध होगा। अभी यह पुण्य का देखा न हमने ? ऐसे ही पाप कर्मों में चलेगा। तो पुण्य प्रकृतियों के साथ घातिकर्मों का यानी पाप प्रकृतियों का भी बंध होगा। पाप प्रकृतियों में घातिकर्म का भी और अघातिकर्मों की पाप प्रकृतियों का भी बंध होगा। उसमें क्या होगा ? बहुत संक्लेश परिणाम होंगे तो क्या होगा ? चारों प्रकार के स्पर्धकों का बंध होगा। संक्लेश थोड़ा कम होगा तो तीन स्थानवाला बंध होगा और कम होगा तो दो स्थानवाला बंध होगा। इसतरह से इनमें बंध पाये जाते हैं। आगे अनुभागबंध के प्रकरण में उसकी चर्चा फिर हम छेड़ेंगे। अभी केवल हम उनके नाम देख रहे हैं। हमने हर एक के चार-चार नाम यहां देख लिये।

ये जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं यहां पर, हम इनके स्पर्धकों के नाम अलग प्रकार से देखेंगे। कैसे देखेंगे ? देखो, अब यहां पर ये जो हैं घातिकर्म, घातिकर्मों में हमने प्रकृतियां देखी थी दो प्रकार की; प्रकृति में दो-दो भेद देखे थे। कौनसे ? सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। अब जो सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति हैं उनमें हम स्पर्धक देखेंगे; वे स्पर्धक सर्वघाति और देशघाति प्रकार के होते हैं। स्पर्धकों की बात है- मैं कभी प्रकृति कहूंगी, कभी स्पर्धक कहूंगी तो आपको यह बराबर ख्याल में लेना कि हम किसकी बात कर रहे हैं। हम ज्ञानावरण की बात उठाते हैं; ज्ञानावरण

कर्म में, ये चारों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। कौनसे ? *श्रोता: लता, दारु।* लता, दारु, *श्रोता: अस्थि।* अस्थि, *श्रोता: शैल।* और शैल। ये जो सभी स्पर्धक हैं, इन स्पर्धकों में दो प्रकार के भेद हैं। कैसे स्पर्धक हैं ? ये शैलवाले सभी स्पर्धक सर्वघाति हैं, पूरा घात करते हैं यदि उदय में आवे तो। अस्थिवाले सभी स्पर्धक भी अत्यंत तीव्र हैं, वे भी पूरा घात करते हैं। दारुवाले स्पर्धकों में दो भेद करना; ये जो अनंत स्पर्धक हैं न, उनका अनंतवां भाग लता के साथ लेना और अनंत बहुभाग ऊपर रखना, अस्थि और शैल के साथ। तो ये सारे जो स्पर्धक हैं शैल से लेकर दारु के अनंत बहुभाग तक उनको कहेंगे सर्वघाति स्पर्धक। क्या कहेंगे ? *श्रोता: सर्वघाति स्पर्धक।* और यह दारु का जो अनंतवां भाग है और लता के सभी जो हैं, उनको कहेंगे देशघाति स्पर्धक। अभी हम प्रकृति नहीं कह रहे हैं, अभी हम स्पर्धक कह रहे हैं। उसका कारण भी देखेंगे। क्या देखा अभी हमने ? स्पर्धकों के हम दो भेद कर रहे हैं; सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक। सर्वघाति स्पर्धक ऐसे स्पर्धक हैं जिनका उदय हो जाये तो अपने प्रतिस्पर्धी का - प्रतिपक्ष का पूरा घात कर दें और देशघाति स्पर्धक ऐसे स्पर्धक हैं, ऐसा अनुभाग है कि उस अनुभाग का उदय हो जाये तो अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात नहीं करता है; स्पर्धकों की बात चल रही है।

पंचलब्धि पुस्तक में ४९ नंबर का पेज निकालना। हमने घातिकर्मों में सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति देखी थी। ज्ञानावरण में कौनसी सर्वघाति और कौनसी देशघाति देखी थी याद है ? *श्रोता: केवलज्ञानावरण सर्वघाति।* केवलज्ञानावरण सर्वघाति है और मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण ? *श्रोता: देशघाति।* देशघाति है और मनःपर्ययज्ञानावरण ? *श्रोता: देशघाति।* देशघाति है। इसमें कैसे-कैसे स्पर्धक होते हैं थोड़ा देखेंगे। हम एक ज्ञानावरण पर ही घटित करेंगे। तो जो केवलज्ञानावरण है, वह सर्वघाति प्रकृति है। अभी प्रकृति कह रही हूं, तो उस प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं। क्या कहा ? जो कोई सर्वघाति प्रकृति है; बराबर सोचना, जब हम प्रकृति कहेंगे और कभी हम स्पर्धक कहेंगे। केवलज्ञानावरण कैसी प्रकृति है ? तो सर्वघाति प्रकृति है और उसके सभी स्पर्धक कैसे हैं ? सर्वघाति हैं यानी केवलज्ञानावरण का उदय हो जाये तो अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात करते हैं यानी पर्याय में केवलज्ञान प्रगट नहीं है। बात

ख्याल में आती है ? उसमें तो देशघाति स्पर्धक होते ही नहीं हैं। केवलज्ञानावरण प्रकृति सर्वघाति प्रकृति है; उसके सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं, उसमें देशघाति स्पर्धक होते ही नहीं हैं। तो केवलज्ञानावरण में इसमें से कौन-कौनसे स्पर्धक होंगे जो अभी हमने देखे हैं ? *श्रोता: शैलवाले।* हां, ऊपर से शैलवाले होंगे। *श्रोता: अस्थिवाले होंगे।* अस्थिवाले होंगे। *श्रोता: दारु के बहुभागवाले।* हां और दारु के बहुभागवाले होंगे।

अब हम मतिज्ञानावरण की बात करेंगे। मतिज्ञानावरण कैसी प्रकृति है ? *श्रोता: देशघाति है।* देशघाति प्रकृति है परंतु उसके स्पर्धक कैसे हैं ? सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। यही तो विशेषता है। जो-जो देशघाति प्रकृतियां हैं, उनमें स्पर्धक कैसे हैं ? सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। मतिज्ञानावरण में कौन-कौनसे स्पर्धक हैं ? शैल भी हैं, अस्थि भी हैं, दारु भी हैं और लता भी हैं। आप कहेंगे कि क्या बात करते हो ? हां ? शैल का उदय हो जाये तो हम मतिज्ञान से रहित हो जायेंगे। ऐसा कभी कोई जीव देखा है कि जो जड़ हो जाता है ? *श्रोता: नहीं।* नहीं ? तो कुछ तो होता होगा ? जब बंध होता है तो मतिज्ञानावरण आदि जो हमने देशघाति प्रकृतियां देखी हैं; हम एक की बात करेंगे ॲट अ टाइम; मतिज्ञानावरण की बात करेंगे। मतिज्ञानावरण का जब बंध हुआ था तो उसमें स्पर्धक कैसे-कैसे थे ? जो-जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनके स्पर्धक सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। तो जब बंध हुआ था और जब हमारी सत्ता में पड़ी हैं तो उनके स्पर्धक किसरूप से हैं ? चारोंरूप से हैं; लता भी हैं, दारु भी हैं, अस्थि भी हैं और शैल भी हैं। यदि सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो जाये तो जीव मतिज्ञान से रहित हो जायेगा, पूरा घात कर देगा। परंतु ऐसा कभी बनता नहीं है। तो क्या हो जाता है ?

बंध के समय तो सर्वघाति, देशघाति स्पर्धकरूप से बंधा था; सत्ता में पड़ा है तब भी सर्वघाति, देशघाति है ही; जब हमारे मतिज्ञानावरण का उदय हो जाता है, तो किसरूप से उदय होता है ? देशघातिरूप होकर उदय आता है। स्वयं जो सर्वघाति हैं, वे देशघातिरूप परिवर्तित होते हुये उदय में आते हैं। इसीलिये उसका नाम है क्षयोपशम। क्षयोपशम की परिभाषा हमने देखी है, पंचलब्धि के ५० पेज पर देखना। है तो देशघाति प्रकृति परंतु उसमें स्पर्धक हैं सर्वघाति भी और देशघाति भी। सर्वघाति का उदय हो जाये तो जीव जड़ हो जायेगा; ऐसा कभी नहीं होता है। मतिज्ञान कुछ न कुछ

आंशिकरूप में, वहां निगोद में उसका पर्यायज्ञान है, उतना तो प्रकट है ही। वह श्रुतज्ञान का भेद है, परंतु मतिज्ञान भी उस योग्य वहां होता ही है।

कहते हैं ऐसा क्यों होता है ? ये जो देशघाति प्रकृतियां हैं, उनका क्षयोपशम पाया जाता है। यानी क्या होता है ? उनके जो सर्वघाति स्पर्धक सत्ता में पड़े हैं; जब उदय में आते हैं हमने देखा न निषेक रचना होती है; जो उदयरूप निषेक है, उसमें जब आते हैं, उसका भी उदय का काल जब आता है तो देशघातिरूप टर्न होकर उदय में आते हैं। सर्वघाति स्पर्धकों का अनुभाग हीन होकर वे देशघातिरूप से उदय में आते हैं, सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आते। तो वह सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आना उसीको कहते हैं उदयाभावी क्षय; खिर तो जा रहे हैं। परमाणु का उदय तो होगा क्योंकि उसका काल पूरा हुआ है परंतु उदय में आते-आते वे देशघातिरूप होकर उदय में आते हैं। सर्वघाति स्पर्धक, देशघातिरूप होकर उदय में आयेंगे तो उसीको कहते हैं वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का, स्पर्धकों का कहा, प्रकृति का नहीं; **वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय।** दूसरी कंडिशन क्या बतायी ? वे सत्ता में तो पड़े हैं। **भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का**, यानी सर्वघाति का सत्ता में रहना, उदय में नहीं आना उसको कहते हैं **सदवस्थारूप उपशम।** उदय किसका चलेगा ? कहते हैं **देशघाति स्पर्धकों का उदय।** उसको कहेंगे **क्षयोपशम।** जब हम कहते हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान कैसे हैं ? तो ये क्षायोपशमिक ज्ञान हैं। तो उसमें क्या हो रहा है? जब वह ज्ञान है, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो सबके है, वहां मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण की क्या पोझिशन हो रही है ? उनके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं हो रहा है; सत्ता में तो हैं। हमेशा उदय किसरूप से होगा ? तो देशघातिरूप से होगा। तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान चलते रहेगा।

आप कहेंगे अवधिज्ञानावरण भी तो देशघाति प्रकृति है; उसमें भी सर्वघाति स्पर्धक हैं और देशघाति स्पर्धक हैं। आपको अवधिज्ञान है बहन ? होगा तो भी बताना नहीं, लाइन लग जायेगी। तो अवधिज्ञान नहीं है। उसका अर्थ क्या है ? अभी वर्तमान में अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो रहा है। जिनको अवधिज्ञान है, उनकी क्या बात हो रही है ? *श्रोता: क्षयोपशम।* उनके सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप

होकर उदय में आ रहे हैं यानी अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम हो रहा है। हमारे आपका क्या हो रहा है ? अवधिज्ञानावरण का उदय हो रहा है और जिनके अवधिज्ञान प्रकट है; देवों के है, नारकियों के है, मुनियों के, कितने ही जीवों के है; उनको क्या हो रहा है ? हां ? जिनके अवधिज्ञान है उनके अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम हो रहा है। क्षयोपशम का अर्थ है सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति स्पर्धकों का उदय; यह जो कर्म की तीन प्रकार की अवस्था है इसको कहेंगे क्षयोपशम। इसको कहेंगे हमारे कर्मों का क्षयोपशम हो रहा है; हमें ज्ञान हो रहा है, हमारा ज्ञान क्षायोपशमिक है और केवलज्ञानी कैसे हैं ? क्षायिकज्ञानी हैं। किसका क्षय हुआ उनके ? अकेले केवलज्ञानावरण का हुआ न ! इसीलिये केवलज्ञान हो गया ? उनके तो पांचों ज्ञानावरण का क्षय हो जायेगा तब केवलज्ञान होगा। केवलज्ञानावरण का उदय हमारे मतिज्ञान को नहीं रोकता परंतु मतिज्ञानावरण का उदय हुआ और केवलज्ञान हो जाये ऐसा नहीं बन सकता।

यहां हम देख रहे हैं कि क्षयोपशम क्या है ? हम फिर रिपीट करेंगे क्योंकि नया विषय है न ! देखो, जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं, जैसे केवलज्ञानावरण प्रकृति सर्वघाति है तो उसके सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। कौनसेवाले होंगे ? शैल होंगे, अस्थि होंगे और दारु का अनंत बहुभाग होगा। जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें स्पर्धक कैसे होंगे ? सर्वघाति भी होंगे और देशघाति भी होंगे। यदि उनके सर्वघाति का उदय हो जाये तो प्रतिपक्ष का पूरा नाश हो जाये, घात हो जाये और यदि उनके सर्वघाति का उदय रुककर, देशघाति का उदय हो जाये तो जो कोई प्रतिपक्ष है उसका भी कार्य होता रहेगा और देशघाति का भी उदय होता रहेगा। अभी मतिज्ञानावरण देशघाति प्रकृति है उसमें स्पर्धक कौन-कौनसे हैं ? लता, दारु, अस्थि और शैल सभी हैं। परंतु हमारा आपका मतिज्ञान चल रहा है इसका अर्थ क्या है ? जो सर्वघाति स्पर्धक हैं; कौनसे ? शैल, अस्थि और दारु बहुभागवाले; उनका अभी अपने स्वयं के रूप से - सर्वघातिरूप से उदय नहीं हो रहा। किसरूप से उदय हो रहा है ? देशघातिरूप होकर वे उदय में आ रहे हैं। इसलिये हम उसको कहेंगे इसका क्षयोपशम चल रहा है।

कर्मों का क्षयोपशम हो रहा है इसीलिये हमें मतिज्ञान हो रहा है कि नहीं हो

रहा है ? कर्मों के क्षयोपशम से नहीं हो रहा है; जब हम मतिज्ञानरूप से परिणमित हो रहे हैं तो वहां सामने उनकी अपनी योग्यता से क्षयोपशम अवस्था पायी जाती है; यह ज्ञान कराने के लिये उस ज्ञान को यहां क्षायोपशमिक ज्ञान कहने में आता है। परंतु वह कुछ कर्मों का कार्य नहीं है। ज्ञान की जो कोई अवस्था है वह हमारी अपनी है, अपने स्वभाव का वह अंश है। कर्मों की अवस्था, कर्मों में उनके अपने कारण होती है। यह इसको जो क्षायोपशमिकज्ञान हो या क्षायिकज्ञान हो, कर्म का क्षय हुआ इसीलिये तो केवलज्ञान हुआ कि नहीं हुआ ? क्योंकि हमने शास्त्र में पढ़ा है। घातिकर्मों का नाश हुआ तो केवलज्ञान हो गया। तो उन कर्मों ने केवलज्ञान को रोका था ? ऐसा नहीं है क्योंकि जहां केवलज्ञान पर्याय में प्रकट नहीं है, वहां इनका ऐसा उदय पाया जाता है।

ये तो हमने स्पर्धकों के नाम देखे हैं। हमने अवधिज्ञानावरण में जैसा समझा, मनःपर्ययज्ञानावरण में भी ऐसा ही समझना। मनःपर्ययज्ञान तो कितने ही भावलिंगी संतों को होता है; सबको नहीं होता। मालूम है नियमरूप से किसको होता है ? हां अंजू ? हां, जो तीर्थंकर हैं, जब मुनिदीक्षा अंगीकार करते हैं तीर्थंकर का जीव तो वहां विधिपूर्वक मुनिदीक्षा अंगीकार करते हैं; स्वयं ही दीक्षित होते हैं और फिर वे ध्यान में लीन होते हैं; सातवां गुणस्थान प्रगट होते ही उनको... *श्रोता: मनःपर्ययज्ञान।* मनःपर्ययज्ञान प्रकट होता है। गणधरों को भी ऐसा ही है। गणधर भी चार ज्ञान के धारी हैं, उनके भी मनःपर्ययज्ञान नियम से होता ही है। तो वह भी कैसी प्रकृति है ? देशघाति प्रकृति है। मनःपर्ययज्ञानावरण में भी सर्वघाति स्पर्धक हैं और देशघाति स्पर्धक हैं। हमारे आपके क्या पोझिशन चल रही है मनःपर्ययज्ञानावरण की ? मनःपर्ययज्ञानावरण हमारी सत्ता में है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* पांचों ज्ञानावरण हैं। हां, परंतु उसका कैसा उदय चल रहा है ? सर्वघाति का उदय चल रहा है तो मनःपर्ययज्ञान होने का कोई सवाल ही नहीं है। जिन मुनियों को मनःपर्ययज्ञान है, उनकी क्या बात हो रही है ? उनके मनःपर्ययज्ञानावरण का क्षयोपशम हो रहा है तो वहां उनका मनःपर्ययज्ञान भी प्रकट है और मनःपर्ययज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धकों का उदय भी चल रहा है। जहां यह जो अनुभाग बताना है, उदय बताना है या जो जीव के कषाय के परिणाम बताना है तो कर्मों की अपेक्षा से उनके अनुभाग की चर्चा करके बतायेंगे।

मिथ्यात्व जो दर्शनमोहनीय है उसमें थोड़ा अटपटा है, कुछ अलगसा है। क्या अलग है ? मिथ्यात्व प्रकृति कैसी है ? सर्वघाति प्रकृति है। उसमें कितने स्पर्धक हैं ? तो शैलवाले हैं, अस्थिवाले हैं और दारु के जो बहुभाग लिये हैं, उसमें नीचे का थोड़ा अंश छोड़कर ऊपर के हैं। दर्शनमोहनीय के हम ऐसे जो चार भाग करेंगे न ? शैल, अस्थि, दारु और लता। उसमें से शैलवाले भी हैं, अस्थिवाले भी हैं, दारु के मान लेते हैं इतने हैं तो नीचे का इतना अनंतवां भाग छोड़ देना दारुवाला और ऊपर के अनंत बहुभाग हैं, ये सारे मिथ्यात्व के स्पर्धक हैं। नीचे क्यों छोड़े ? क्योंकि ये जो हैं वे सम्यग्मिथ्यात्वरूप से हैं। इन्हीं मिथ्यात्व के स्पर्धकों में से अनुभाग घटकर ये सम्यग्मिथ्यात्वरूप से हो जाते हैं और इसके नीचे दारु का अनंतवां भाग और लता है ये क्या हैं ? सम्यक् प्रकृति के स्पर्धक हैं। यह सम्यक् प्रकृति देशघाति है और उसके सभी स्पर्धक देशघाति हैं क्योंकि यह नयी तैयार हुयी है न ? मिथ्यात्व का अनुभाग घटकर ये प्रकृतियां तैयार हुयी हैं। अन्य जो मतिज्ञानावरण देखा था उसमें तो सर्वघाति स्पर्धक भी थे, देशघाति भी थे। सम्यक् प्रकृति ऐसी प्रकृति है उसमें मात्र देशघाति स्पर्धक ही हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है तो क्या होता है ? उसकी चर्चा आगे करेंगे।

अंतराय में देखो- ये पांचों ही अंतराय हैं उनको देशघाति प्रकृति कहा। उनमें सर्वघाति प्रकृति नहीं पायी जाती। ज्ञानावरण में एक केवलज्ञानावरण है; दर्शनावरण में केवलदर्शनावरण और पांच निद्रा हैं; मोहनीय में सर्वघाति कौन-कौनसी हैं ? एक मिथ्यात्व है, सम्यग्मिथ्यात्व है दर्शनमोहनीय की; चारित्रमोहनीय में सोलह कषायों में से अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण चार-चार-चार, बारह हैं वे सर्वघाति प्रकृतियां हैं और चार संज्वलन और नौ नोकषाय वे देशघाति प्रकृतियां हैं। सम्यक् प्रकृति देशघाति प्रकृति है। हमने अनुभाग की बातें देखी। बंध के समय कैसी निषेक रचना होती है, कैसी स्पर्धक रचना होती है उसको जब देखेंगे, तब इसमें कैसे-कैसे, क्या-क्या परिवर्तन होते हैं इन्हीं की भाषा में हम समझा सकेंगे। अभी हम यहां रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

६. घातिकर्म - सर्वघाति, देशघाति

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है। उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जो भाषाटीका लिखी है उसके आधार से हम यहां कुछ स्वाध्याय कर रहे हैं। कर्मों संबंधी सामान्य जानकारी ले रहे हैं। अभी तक हमने देखा है कर्म का बंध हो रहा है; जीव अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाया जाता है। हर समय नया-नया बंध होता है। वे परमाणु सत्ता में पड़े रहते हैं और अपनी स्थिति पूरी होने पर उदय में आकर खिर जाते हैं। बंधने को बंध कहेंगे, सत्ता में पड़े रहते हैं उसको सत्ता या सत्त्व कहेंगे और जब खिर जाते हैं उसको उदय कहेंगे या निर्जरा भी कहेंगे परंतु यह मोक्षमार्गवाली निर्जरा नहीं है, यह सामान्य निर्जरा है। भले उसको निर्जरा कहेंगे परंतु यह उदयरूप निर्जरा है। स्थिति पूरी होने पर खिर जाने को भी निर्जरा कहते हैं, परंतु वह संवर निर्जरावाली निर्जरा नहीं।

हर जीव को हर समय में अनंत परमाणुओं का बंध हो रहा है और उसके पूर्व में बंधे हुये अनंत परमाणु खिर रहे हैं तो ऐसा बंधना और खिरना उसका हर समय चल रहा है। आयु भी गल रही है न हर समय ? तो हर समय मर भी रहा है। नहीं समझे ? हर समय उसका मरण हो रहा है। क्यों ? आयु तो हर समय खिर रही है तो यह हर कर्मों का जो बंध और उसका उदय चल रहा है तो इसमें से जो हम उसकी सामान्य जानकारी ले लेंगे और उसमें से छूटने का मार्ग भी हम देखेंगे। अभी हमने देखा कि जो प्रकृतियां बंधती हैं उसको कहेंगे प्रकृतिबंध; उसमें जितनी संख्या में परमाणु बंधते हैं उसको कहेंगे प्रदेशबंध; जितनी स्थिति बंधती है उसको कहेंगे स्थितिबंध और उसमें जो अनुभाग बंधता है उसको कहेंगे अनुभागबंध। स्थिति का जो बंध होता है उसको निषेक रचना के रूप में अभी-अभी हमने देखा है कि आबाधाकाल को छोड़कर प्रति समय में उदय आने योग्य परमाणुओं का जो समूह है उसको हम निषेक कहेंगे। एक समय में जो अनंत परमाणु बंधते हैं, उनकी अपनी निषेक रचना होती है - हर कर्म की अपनी-अपनी। मूलकर्म की तो होती ही है, उत्तरप्रकृतियां जो हैं न ? अभी नामकर्म की इतनी सारी प्रकृतियां हैं तो उनकी अपनी-अपनी निषेक रचना अलग-अलग होगी क्योंकि हर एक कर्म की अपनी-अपनी स्थिति भी अलग-अलग पड़ती है। यह तो हमने

निषेक की बात की। परंतु स्पर्धक की बात थोड़ी अटपटी लगी, है न ?

अनुभाग की स्पर्धक रचना होती है यानी क्या होता है ? निषेक रचना थोड़ी-थोड़ी कुछ समझ में आ सकती है क्योंकि एक-एक समय में, वह एक-एक लॉट उदय में आता है तो हम उसको कहेंगे यह निषेक है। इस निषेक में परमाणु हैं; कितने-कितने हैं ? तो अनंत-अनंत हैं। उस हर एक परमाणु में कुछ न कुछ अपना अनुभाग, फल देने की शक्ति है। तभी तो हम कहेंगे कि कर्म का उदय हो रहा है। उसका फल मिल रहा है जीव को। तो फल मिल रहा है यानी उसके अनुभाग का उदय हो रहा है। कर्म के परमाणु कितनी संख्या में खिरते हैं इससे हमें कोई सुख-दुःख नहीं होता। परंतु वह कर्म कितने अनुभागरूप से उदय में आ रहा है- इस पर जीव को उसका निमित्त बनता है। मिथ्यात्व में भी; मिथ्यात्व के कितने परमाणु खिर रहे हैं उससे कुछ उसका लेना देना नहीं। किस अनुभागरूप से उदय आ रहा है ? क्या तीव्र मिथ्यात्व का उदय आ रहा है कि मन्द मिथ्यात्व का उदय आ रहा है ? मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है। वह सम्यक्त्व का पूरा ही घात कर रही है। फिर भी हमने उसमें भी इतने अनंत स्पर्धक देखे हैं तो वह मिथ्यात्व किसरूप से उदय में आता है ? तो किसीके दारुरूप से आयेगा या अस्थिरूप से आयेगा या शैलरूप से आयेगा।

भावदीपिका में भी कहा है जो ऊपरवाले हैं न; अति तीव्र अनुभागवाले स्पर्धक इतने तीव्र मिथ्यात्व का जिसको उदय हो रहा है ऐसे तीव्र मिथ्यादृष्टि को तो उपदेश देने के भी योग्य नहीं कहा है। हम कोई दान देते हैं तो देनेवाला कैसा है; क्या दिया जाता है; किसको दिया जाता है; उसका भी पात्र-अपात्र का विचार करते हैं। यहां भी जो मोक्षमार्ग का उपदेश देना है वहां उस उपदेश के भी पात्र कौन हैं ? किसको देना है उपदेश ? तो कहते हैं अत्यंत तीव्र जो मिथ्यादृष्टि, अत्यंत तीव्र अनुभाग उदयवाले जो जीव हैं उनको उपदेश देना योग्य नहीं है। जिनको विषय-कषाय में बहुत रुचि होती है परंतु जिनवाणी की बात सुनते हैं तो कहते हैं, 'यह आत्मा-फात्मा हमें नहीं चाहिये। यह दिनभर आत्मा-आत्मा क्या करते रहते हैं ?' यदि अन्य बातें करें तो उनको बहुत रुचि हो जाती है उसमें। नहीं समझे ? हम तेल उबालते हैं घर में तो बच्चों को क्या कहते हैं, 'अरे जरा दूर रहो।' क्यों ? पानी का, जल का छींटा उड़ जाये तो यहां कोई आग लग

जायेगी। परंतु उसी उबलते हुये तेल में तो पकोड़े डालते हैं न भजिया ? क्या होता है? आग-बाग भी कुछ नहीं लगती है। वे अच्छे से तलकर ऊपर आते हैं और हम मज़े से खाते भी हैं। वैसे ही जो विषय-कषाय में रचे पचे, तीव्र स्पर्धकवाले मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनको क्या होता है ? विषय-कषाय की बातें करें उनके साथ तो बहुत दिल से, प्रेम से अपने से बातें करेंगे और जिनवाणीरूप शीतल जल उनके ऊपर छिड़कें तो थोड़ा छिटका भी आ जाये तो क्या होता है ? वहां तो आग लग जाती है। उन्हें तीव्र क्रोध आता है। वे तो उपदेश देनेवाले को विघ्न भी कर सकते हैं।

वह चिड़िया और बंदर की कहानी सबको मालूम है। नहीं मालूम ? मालूम है ? एक चिड़िया घोंसला बनाती है। उसके हाथ तो है नहीं, उसका हाथ कहो, उसीको पैर कहो, जो कुछ है दो ही हैं और वह तो इतने छोटे हैं उससे कुछ कर नहीं सकती। तो चोंच से तिनका-तिनका लाकर घोंसला बनाती है। जैसे बरसात के दिन हैं या कोई अन्य कारण से अपने बच्चों की सुविधा के लिये वह घोंसला बना देती है। उसी पेड पर एक बंदर रहता है वह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, उसके हाथ पैर हैं, अच्छी बुद्धि लगा सकता है। तो वह चिड़िया उसको बताती है कि तू भी अपना घर बना ले। बंदर को इधर से उधर कूदने से कहां फुरसत है ? वह ऐसे ही उसकी बात टाल देता है और चला जाता है इधर-उधर करने के लिये। फिर वह चिड़िया उसे दुबारा बताती है; उसको कहां रहा जाता है ? जैसे हम बार-बार अपने बच्चों को कहते हैं अरे सुन तो सही, आ तो सही यहां पर। तो वह बंदर क्या कहता है ? अरे जा-जा तू अपना रास्ता देख ले, मैं अपना मज़े में हूं। फिर और ऐसे ही दो बार, चार बार, दस बार हो जाता है तो बंदर को इतना गुस्सा आता है, कहता है तू मुझे स्यानपना सिखाती है चल यह देख तूने घोंसला बनाया न ? तो उसका घोंसला लेकर तोड़ देता है। हमारी कहीं ऐसी परिस्थिति न हो जाये ! क्यों ? क्योंकि जब हम यह बात सुनते हैं तो हमारी भावना ऐसी होती है कि अधिक से अधिक जीव इसको समझें। शुरू-शुरू में तो इतना उत्साह होता है जो दिखे उसको हम सुनाना प्रारंभ करते हैं। तो लोग आना-जाना बंद कर देते हैं अपने घरों में। अच्छा रहता है क्योंकि हमें अपने स्वाध्याय को समय भी अधिक मिलता है। परंतु ऐसा भी होता है न कि किसी-किसीको इतनी चिढ़ आ जाती है कि

उलटा तो हमारा ही नुकसान कर देते हैं।

पं. दीपचंदजी कासलीवाल ने लिखा है वहां पर कि जो उत्कृष्ट स्पर्धकवाले, तीव्र अनुभागवाले स्पर्धकों का जिनके उदय चल रहा है, ऐसे मिथ्यादृष्टियों को तो उपदेश देने लायक भी वे नहीं हैं। हां, हमें तो भाव आता है क्योंकि जिसको यह सही मार्ग मिला है, उसे लगता है सब लोग इस मार्ग को अपनायें। जैसे घर में कुछ थोड़ा व्यंजन बनाते हैं, कुछ अच्छा पदार्थ बनाते हैं तो बच्चों को हम बार-बार कहते हैं कि खाकर तो देखो। अरे बच्चों को क्या अड़ोसी-पड़ोसी हो हमारे कोई, सबको वह दे देते हैं और यह तो महान मोक्षमार्ग जैसी अद्‌भुत चीज ! हम इतने भाग्यवान ठहरे कि गुरुदेवश्री के काल में हम जन्में, उनका उपदेश सुना और कुछ पाया। तो यह माल हम जरूर सबको देना चाहते हैं परंतु अगर वह नहीं सुनना चाहते, तो हमारा माल हमारे पास सही। फिर भी जरूर ऐसे भाव आते हैं कि यह बात सब सुने और जो सुने वह अपना कल्याण करें। इसमें तो उनसे हम कुछ नहीं चाहते हैं बस एक मात्र मनुष्यभव जो दुर्लभ में दुर्लभ है और हम जैन बनकर भी जैन नहीं हैं। यानी क्या ? जन्म से जैन है, परंतु जैन तत्त्वज्ञान क्या होता है इसका पता नहीं है क्योंकि महावीर के नाम पर तो बहुत सारे उपदेश मिलते हैं और बहुत सारे पंथ चलते हैं। महावीर भी दो चार पांच हुये थे न ! नहीं हुये थे ? एक दिगम्बर का महावीर, एक श्वेताम्बर का महावीर, एक स्थानकवासी का और उसमें जो जहां जितने पंथ निकले हैं सबका एक-एक अलग महावीर ! ऐसा था ? नहीं, एक ही था ? तो उपदेश भी एक ही होगा कि अनेक होंगे ?

एक मूलधारा से जो उपदेश चला आ रहा है वही सत्य है और हम इतने भाग्यवान हैं कि इतने हज़ारों साल बाद भी वह मूल उपदेश आज हमें उपलब्ध है। हमारे पूर्वजों के हमारे ऊपर इतने उपकार हैं कि यह मूलधारा हमें मिली है और हम ? उस मूलधारा का हमें तो कुछ पता ही नहीं है ! तत्त्वज्ञान क्या होता है ? और क्या ? तो हम अपने बच्चों को क्या देना चाहते हैं ? पैसा ? क्या रखकर जायेंगे ? दो ढाई हज़ार वर्ष तक हमें मूल उपदेश मिल रहा है। पहले के ज़माने में तो कोई प्रिंटिंग की व्यवस्था थी नहीं। ये शास्त्र कैसे-कैसे लिखे उन्होंने ! वह तो तालपत्र पर लिखते थे और कोई ऐसे लिखते नहीं थे मोरपिच्छी से जैसे चित्रों में बताया है कितने ही मंदिरों में। ऐसे

कीली से उकेरा जाता था तालपत्रों पर और फिर उसमें दूसरा कलर पूरा जाता था तब ये सारे शास्त्र बने और वे प्रिझर्व्ह हुये। मुनियों ने और उस ज़माने के श्रावकों ने कितना क्या-क्या काम किया है और वह केवल लिखित ही नहीं रखा, आत्मसात किया है। ये ग्रंथ केवल छपवाने से भविष्यकाल में नहीं रहनेवाले हैं। ये हम पढ़ेंगे और यह ज्ञान हम स्वयं प्राप्त करके आगामी पीढ़ी को समझायेंगे तो ऐसे इसीतरह से रहेंगे। समयसार तो था कि नहीं था ? तो गुरुदेवश्री ने उसमें से माल निकालकर हमें परोस दिया और हम भी उसको समझकर आगे बढ़ायेंगे तभी वह रहेगा और बिलकुल रहेगा क्योंकि यह तो पंचमकाल के अंत तक यह मार्ग रहनेवाला ही है। ऐसे जरूर पात्र जीव भी जन्मेंगे, उसको ग्रहण भी करेंगे। यह जरूरी नहीं कि हमें जैन ही होना चाहिये उसके लिये। कितने ही अन्यमति आज इसका इतना लाभ ले रहे हैं जो मूल दिगम्बर नहीं ले रहे हैं।

हमारे यहां आनेवालों में भी, जो जन्मे थे स्थानकवासियों में, स्वामीजी के ज़माने में बहुतों ने तो परिवर्तन भी किया था, उनकी बात नहीं कर रही हूं मैं। आज के ज़माने में जो जन्म से उसी पंथ में थे और यह मार्ग प्राप्त कर यहां आये हैं। यही मार्ग सही है इसका जिन्होंने निर्णय किया है वे तो उनसे भाग्यवान हैं जो जैन दिगम्बर कुल में जन्म लेकर भी अपना माल अपना है कि नहीं है इसका जिन्हें पता नहीं है। क्या करें ! उनकी करुणा आती है, दया आती है। अब ऐसा भी है न जिसका जो भाग्य है उसको सहज निमित्त मिलता है। हमारे यहां तो कितने ही लोग आते हैं। मेरी पुस्तकें तो साधारण हैं मगर उन्हें पढ़कर भी आते हैं। बॉम्बे में कोई पॅथॉलॉजिस्ट हैं, मुमुक्षु है, उनकी मां भी मुमुक्षु है; पार्ला में रहते हैं डॉ. सुरीन शाह कोई हैं। उनके यहां बहुत सारे पॅथॉलॉजिस्ट डॉक्टर हैं। एक हैं डॉ. पटवर्धन- हिन्दू है, उनके पिताजी वैदिक धर्म के बहुत उच्चकोटि के विद्वान हैं और डॉ. पटवर्धन ने केवल जैनतत्त्व परिचय पुस्तक पढ़ी है और उसका अभ्यास करने लगे। फिर उन्होंने और भी ग्रंथ मंगवाये, पढ़े। अब वे रोज वहां पार्ला के मंदिर में जाते हैं और वहां रोज एक घंटा बिताते हैं। डॉक्टर हैं, प्रॅक्टिसिंग पॅथॉलॉजिस्ट हैं। सामायिक भी करते हैं मंदिर में जाकर। दूसरा और कोई है उसका नाम डिसूज़ा है, कोई ख्रिश्चन है। वे भी वहीं पर काम करते हैं। उनको भी दी एक पुस्तक अंग्रेज़ीवाली जैनतत्त्व परिचय। वे हमारे घर आये थे और कुछ पुस्तकें लेने

के लिये। उन्होंने कहा कि धिस इज थाउजंड टाइम्स बेटर दॅन बायबल। उन्होंने तो कहा कि 'भले येशू क्राइस्ट ने जो कुछ कहा होगा परंतु उस ज़माने में उसके आजू-बाजू के लोग तो अज्ञानी थे। उन्होंने क्या समझा होगा और क्या लिखा होगा और उसमें कितनी खोटी रचना होगी ?' यह उनका कहना था। तो कहते हैं कि इस जैनतत्त्व परिचय में जो बात बतायी है वह कितनी सच है। मैं कहती हूं उसमें केवल द्रव्य-गुण-पर्याय और सामान्य गुण इनकी सारी चर्चा है और थोड़ी बहुत अन्य बातें हैं, गहराई से अभ्यास तो अब कर रहे हैं वे। परंतु अन्यमति भी इसका जितना लाभ ले रहे हैं क्या हम स्वयं जैनी होकर इसका लाभ ले रहे हैं कि नहीं ? अभी कुछ गिने-चुने तो लाभ ले रहे हैं परंतु हम सर्व सामान्य बात कर रहे हैं कि जो लाभ ले रहे हैं वे अपने कल्याण के लिये ले रहे हैं, किसीको दिखाने के लिये नहीं। चारों अनुयोगों का अभ्यास करना हमारा कर्तव्य है, वह भी अपने स्वयं के कल्याण के लिये। हम भी द्रव्यानुयोग प्राप्त करने के बाद अभी यहां करणानुयोग पढ़ रहे हैं, कर्मकाण्ड का अभ्यास कर रहे हैं क्योंकि यह सब विस्तार से जानने की जो सहज रुचि होती है न ? कि जानो तो सही महावीर भगवान की वाणी में क्या-क्या आया है ? यह हमारी संपत्ति है। इसको हम जानेंगे तो यही काम में आनेवाली है; अन्य कोई लौकिक संपत्ति काम में आनेवाली नहीं है। वह होगी भी या नहीं भी होगी तो हमें कुछ फर्क नहीं पड़नेवाला।

हम यहां देख रहे थे कि कर्म परमाणु कितनी संख्या में उदय में आते हैं, उससे उसका कोई फल नहीं मिलता है। जिसरूप से अनुभाग का उदय होता है उसरूप में उसका फल मिलता है, वैसा निमित्त बनता है। उसको यहां स्पर्धकों के रूप में हमने अभी-अभी जाना था। हम फिर अभी जरा दोहराते हैं क्योंकि क्या है, यह विषय पहली बार सुनते हैं न ? तो थोड़ा अटपटा लगता है। स्पर्धक क्या है, प्रकृति क्या है, सर्वघाति क्या है, देशघाति क्या है कुछ समझ में नहीं आता। मैं एक प्रश्न पूछूंगी- सातावेदनीय सर्वघाति है या देशघाति है बहिन ? *श्रोता: सर्वघाति है।* सर्वघाति और असातावेदनीय ? हां बोलो ? *श्रोता: सर्वघाति है।* सर्वघाति है; हां, कौनसा ? साता कि असाता ? *श्रोता: दोनों।* दोनों। आप क्या कहते हैं निलेशभाई कहां गये ? *श्रोता: देशघाति है।* देशघाति है अच्छा, निलेशभाई ने कहा देशघाति है और हमारे दूसरे निलेशभाई क्या कहते हैं ?

श्रोता: ना देशघाति है ना सर्वघाति है। ये कहते हैं ना देशघाति है ना सर्वघाति है; क्यों ? हमने क्या पूछा आपको ? वेदनीय कर्म की बात पूछी। वह घातिकर्म है कि अघातिकर्म है ? *श्रोता: अघाति है।* तो देशघाति और सर्वघाति ये घातिकर्मों के भेद हैं। हम आपको कुछ भी पूछेंगे, आपका तो सजग रहना है। वेदनीयकर्म न घाति है, न देशघाति है, न सर्वघाति है; वह तो अघातिकर्म है, हां। उसमें जो अपने-अपने स्पर्धक हैं वह बात अलग है। उसमें साता के अलग होंगे गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृतवाले और असाता के होंगे नीम, कांजीर, विष और हलाहलवाले। हमने दो-दो भेद किये थे न हर एक में - प्रशस्त और अप्रशस्त। तो प्रशस्त के जो हैं वे गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत और जो अप्रशस्त यानी पाप प्रकृतियां हैं किसकी ? अघाति की उसके हैं नीम, कांजीर, विष और हलाहल। तथा जो घातिकर्म हैं उसमें हमने देखे थे लता, दारु, अस्थि और शैल। इसमें हमने स्पर्धकों में चार-चार जो भेद देखे हैं।

देखो, प्रकृति में भी सर्वघाति, देशघाति होती है और उनके स्पर्धकों में भी सर्वघाति, देशघाति होते हैं। क्या कहा ? कुछ प्रकृतियां सर्वघाति हैं और कुछ प्रकृतियां देशघाति हैं। जैसे केवलज्ञानावरण देखा था हमने। केवलदर्शनावरण जो है वह कैसा है ? *श्रोता: सर्वघाति है।* सर्वघाति है। तो सर्वघाति के जो स्पर्धक हैं वे कौनसे हैं ? ऊपर से देखेंगे, शैलवाले भी हैं, अस्थिवाले भी हैं और दारु का बहुभागवाले भी हैं। तो उसको क्या कहेंगे हम ? सर्वघाति प्रकृति है और उसके स्पर्धक भी सर्वघाति हैं यानी उसमें कोई देशघाति का सवाल ही नहीं है। उदय होता है तो पूरा-पूरा घात होता है। केवलज्ञानावरण का उदय चल रहा है तो प्रतिपक्ष का यानी केवलज्ञान का वहां कोई अंश प्रकट नहीं है। वह पर्याय में केवलज्ञान प्रकट नहीं है उसीको कहेंगे उसका पूरा-पूरा घात हो रहा है। यह भाषा है, यहां यह कथन पद्धति है।

अब जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनके स्पर्धक कैसे हैं ? तो सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। सर्वघाति स्पर्धक का उदय हो जाये; प्रकृति देशघाति होने पर भी यदि सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो जाये तो क्या होगा ? पूरा घात हो जायेगा। जैसे हम अभी अवधिज्ञानावरण की बात करेंगे। अवधिज्ञानावरण प्रकृति कैसी है ? तो देशघाति प्रकृति है। उसमें स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? कौनसे ? *श्रोता: लता, दारु...।* लता, दारु,

अस्थि और शैल। अवधिज्ञानावरण में ये चार प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। जिनको, जिन मुनिराजों को अवधिज्ञान है उनकी बात करेंगे। उनके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय रहेगा कि नहीं रहेगा ? *श्रोता: नहीं रहेगा।* नहीं रहेगा। तो क्या होगा जब उदय में आने योग्य हो जाते हैं ? काल पूरा हो जायेगा तो क्या होगा ? वे देशघातिरूप टर्न होकर, संक्रमित होकर, अनुभाग घटकर उदय में आयेंगे। किस रूप से उदय में आयेंगे ? देशघातिरूप से उदय में आयेंगे। उसका नाम हमने क्या देखा था ? क्षयोपशम। कर्मों का क्षयोपशम किसमें होता है ? केवलज्ञानावरण में होगा कि नहीं होगा क्षयोपशम ? *श्रोता: नहीं होगा।* केवलज्ञानावरण का क्षयोपशम नहीं होगा क्योंकि वह सर्वघाति है। उसमें मात्र सर्वघाति स्पर्धक ही हैं और उसका उदय तो होगा ही होगा। ख्याल में आती है बात? क्योंकि यह विषय नया है न इसीलिये हम दुबारा यहां ले रहे हैं।

हमने अभी-अभी देखे कि जो घातिकर्म हैं उसके चार प्रकार के स्पर्धक देखे, कौनसे देखे भाई ? लता, दारु, अस्थि और शैल। कौन-कौनसे हैं ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल।* हां, यह किसके हुये ? घातिकर्मों के। उसमें सर्वघाति स्पर्धक कौनसे हैं ? ऊपर से देखेंगे शैल, अस्थि और दारु का अनंत बहुभाग; यह क्या है ? सर्वघाति स्पर्धक हैं और जो अनंतवां भाग है दारु का और जो लतावाले जो स्पर्धक हैं उनको हम देशघाति स्पर्धक कहेंगे। जैसे केवलज्ञानावरण है, केवलदर्शनावरण है, मिथ्यात्व है, उनमें क्या है ? सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं। उसका उदय हो जाये, मिथ्यात्व का उदय है और यहां सम्यक्त्व भी बना रहे ऐसा कभी नहीं होगा। क्यों ? वह तो सम्यक्त्व का पूरा घात करनेवाली प्रकृति है। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो जाये और फिर भी जीव का सम्यक्त्व भी चलता रहे ऐसा भी नहीं होगा क्योंकि वह भी सम्यक्त्व का पूरा घात करती है। ख्याल में आता है ? यह कौनसी प्रकृति का कार्य क्या है ? हमने अनंतानुबंधी आदि की भी बात की थी। यह चारित्रमोहनीय की जो अनंतानुबंधी नाम की प्रकृति, कौनसी ? अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, यह प्रकृति कैसी है ? सर्वघाति प्रकृति है। किसका घात करती है ? सम्यक्त्व का घात करती है; सम्यक्त्व होने नहीं देती उसको हम कहेंगे सम्यक्त्व का घात करती है। ऐसा नहीं कि सम्यक्त्व होना चाहिये फिर यह घात करेगी ऐसी बात नहीं है। सम्यक्त्व का घात करती है यानी अनंतानुबंधी का उदय है वहां

सम्यक्त्व नहीं पाया जाता, उसको कहेंगे वह सर्वघाति प्रकृति है। अनंतानुबंधी में कोई क्षयोपशम नहीं होगा। इसतरह से हमने सभी कषायों की जाति की चर्चा की थी।

क्षयोपशम की परिभाषा दुबारा देखते हैं। पंचलब्धि पुस्तक में पेज नंबर ५०, दूसरे पॅरेग्राफ में चौथी लाइन। **क्षयोपशम की परिभाषा इस प्रकार है** मैं परिभाषा बोलूंगी आपको रिपीट करना है। परिभाषा याद होगी तो उसका मर्म भी समझ में आ जायेगा। देखो, **वर्तमानकालीन**, *श्रोता: वर्तमानकालीन...* **सर्वघाति स्पर्धकों का**, *श्रोता: सर्वघाति स्पर्धकों का...* **उदयाभावी क्षय**, *श्रोता: उदयाभावी क्षय...* **भविष्यकालीन**, *श्रोता: भविष्यकालीन...* **उन्हीं स्पर्धकों का**, *श्रोता: उन्हीं स्पर्धकों का...* **सदवस्थारूप उपशम**, *श्रोता: सदवस्थारूप उपशम...* **और** *श्रोता: और...* **वर्तमानकालीन**, *श्रोता: वर्तमानकालीन...* **देशघाति स्पर्धकों का उदय**, *श्रोता: देशघाति स्पर्धकों का उदय...* **कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को**, *श्रोता: कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को...* **क्षयोपशम कहते हैं**। *श्रोता: क्षयोपशम कहते हैं।* इसको कहेंगे कर्म का क्षयोपशम होना। देखो क्षयोपशम कौनसे कर्मों में होता है ? पहले यह नक्की करेंगे। क्या हमने कभी वेदनीय का क्षयोपशम सुना है ? *श्रोता: नहीं।* आयु का क्षयोपशम ? *श्रोता: नहीं।* नहीं सुना है। नामकर्म का क्षयोपशम ? *श्रोता: नहीं।* नहीं सुना है और गोत्र का ? नहीं।

क्षयोपशम सुना है तो किसमें-किसमें सुना है ? ज्ञानावरण का होता है, दर्शनावरण का हो रहा है; सम्यक्त्व में भी हमने देखा, क्षयोपशम सम्यक्त्व भी है, क्षयोपशम चारित्र भी है यानी मोहनीय में भी पाया जाता है और फिर अंतराय का भी क्षयोपशम पाया जाता है। कभी केवलज्ञानावरण का क्षयोपशम सुना है ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। केवलदर्शनावरण का क्षयोपशम ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। इसका अर्थ है कि सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं, उनमें क्षयोपशम नहीं पाया जाता। जिन प्रकृतियों में सर्वघाति और देशघाति दोनों स्पर्धक पाये जाते हैं उन्हीं प्रकृतियों का क्षयोपशम पाया जाता है। ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं ? तो उनका नाम है देशघाति प्रकृतियां। प्रकृति देशघाति होने पर भी अनुभाग बतानेवाले स्पर्धक हैं वे दोनों ही जाति के पाये जाते हैं, सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक। अभी हमने ज्ञानावरण पर भी घटित किया था।

यह संज्वलन प्रकृति कैसी है ? देशघाति है कि सर्वघाति ? आप देखकर बता सकते हैं। *श्रोता: देशघाति।* देशघाति है। तो संज्वलन प्रकृति में - संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ में कौन-कौनसे स्पर्धक होंगे ? कौन बताना चाहता है ? संज्वलन प्रकृति जो है न ? क्रोध-मान-माया-लोभ उनके जो स्पर्धक हैं, उनके नाम क्या होंगे ? *श्रोता: दारु का अनंतवां भाग और लता भाग।* हां, आप कहते हैं दारु का अनंतवां भाग और लता भाग। क्या यह बात सही है? हां बोलो, कोई बताना चाहता है ? अश्विनभाई को पर्मिशन नहीं है। हां, नीरेनभाई ? *श्रोता: यह देशघाति प्रकृति है इसमें सर्वघाति और देशघाति दोनों स्पर्धक हैं।* बहुत अच्छा ! यह देशघाति प्रकृति है। अभी क्या देखा हमने ? जो-जो देशघाति प्रकृति है उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी हैं और देशघाति स्पर्धक भी हैं। संज्वलन का सर्वघाति का उदय हो जाये तो क्या होगा ? संयम प्रगट नहीं रहेगा। संयम होने नहीं देता, संयम का घात करनेवाली है न ? क्या कहा ? संज्वलन का उदय हो, कैसा ? सर्वघाति का। हमें आपको संयम है क्या ? *श्रोता: नहीं।* तो हमारे संज्वलन का उदय चल रहा है। कौनसे ? *श्रोता: सर्वघाति स्पर्धकों का।* सर्वघाति स्पर्धकों का। मुनिराजों को संयम है तो उनके सर्वघाति स्पर्धकों का क्या होता है ? देशघातिरूप होकर उदय में आते हैं। वहां संज्वलन के जो सर्वघाति स्पर्धक हैं, उनके उदय का अभाव है परंतु सत्ता में हैं तो उसको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम चल रहा है और उनके संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है तो हम क्या कहेंगे? इनके संज्वलन का क्षयोपशम हो रहा है। चारित्रमोहनीय का वहां क्षयोपशम चल रहा है।

इसलिये हम कहेंगे मुनियों को वहां संयम भी चल रहा है। भले संज्वलन का उदय है क्योंकि संज्वलन का उदय तो छठेवाले को भी है, सातवेंवाले को भी है, आठवेंवाले को भी है, नौवेंवाले को भी है। हां, और दसवेंवाले को मात्र सूक्ष्मलोभ का उदय है। तो यथायोग्य वहां उनकी अवस्था जो बन रही है। हम छठे, सातवें की सामान्य बात करेंगे, श्रेणीवाली बात हम यहां नहीं उठायेंगे क्योंकि फिर उसमें बहुत डीटेल में जाना पड़ेगा। वहां क्या हो रहा है संज्वलन का ? उदय है। बार-बार हमने देखा है अट्ठाइस मूलगुण पालन करने का भाव है। यह क्या है ? तो कषायों का कार्य है ऐसा आता है कि नहीं वहां ? क्योंकि वह शुभभाव है। शुभभाव यानी वह कषाय है; मंद

कषाय है, तो मंद कषाय है तो उसमें कोई न कोई पुराने कर्मों का उदय आदि कुछ चलता होगा। किसका उदय चल रहा है ? संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय हो रहा है तो वहां हम क्षयोपशम चारित्र नाम देंगे उसको। ख्याल में आयी यह बात ?

ऐसे ही अंतराय में घटाना है। अंतराय देशघाति प्रकृति है। उसमें स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? कौन बताना चाहता है ? *श्रोता: सर्वघाति और देशघाति दोनों होंगे।* उसमें भी सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक होंगे। चारों के नाम क्या होंगे ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल।* लता, दारु, अस्थि और शैल। इन चारों में सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। मेरा प्रश्न है - यह अंतराय कर्म देशघाति प्रकृति है, उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय कौनसे जीव को चलता रहेगा ? प्रश्न फिर सुनना। अंतराय कर्म का सर्वघाति का उदय, सर्वघाति स्पर्धकों का उदय कौनसे जीवों के होगा ? या कौनसे गुणस्थानवालों को होगा ? मैंने पूछा अंतराय का सर्वघाति स्पर्धकों का उदय किसको होता है ? *श्रोता: निगोदिया को।* निगोदिया को ? यानी वह वीर्य से रहित हो जायेगा। अभव्य को भी नहीं कहेंगे हम, किसीको नहीं होता। जैसे हमने मतिज्ञानावरण का देखा था कि पर्याय में मतिज्ञान का थोड़े में थोड़ा, थोड़े में थोड़ा अंश तो प्रगट रहेगा ही रहेगा। मतिज्ञान से रहित कोई छद्मस्थ हो जाये ऐसी बात नहीं बन सकती। ऐसे ही वीर्य का भी स्वभाव का अंश प्रगट रहेगा ही रहेगा। सर्वघाति का उदय हो जाये और उसका वीर्य बिलकुल नष्ट हो जाये ऐसा कभी नहीं बन सकता। जब-जब क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय होती है तो उसमें अकेले ज्ञानावरण के क्षयोपशम का निमित्त नहीं है। हमेशा ज्ञानावरण के साथ वीर्यान्तराय को भी लिया है। जो हमारी आपकी ज्ञान की पर्याय हो रही है, ज्ञानावरण का क्षयोपशम है ही है, साथ-साथ में वीर्यान्तराय का भी क्षयोपशम है। वीर्य से रहित कोई जीव नहीं हो सकता। जैसे ज्ञान से रहित कोई जीव नहीं है वैसे वीर्य से रहित भी कोई जीव नहीं है। उसका कोई न कोई सूक्ष्म अंश वहां प्रकट रहेगा ही रहेगा। हम वीर्य यानी शरीर का बल उसको समझते हैं, वह बात नहीं है। जीव की यानी आत्मा की बात चल रही है। आत्मा के अपने गुण की बात चल रही है यहां पर।

हमने स्पर्धकों के चार-चार नाम देखे हैं। हमने घातिकर्मों में दो प्रकार की प्रकृतियां देखी- सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। सर्वघाति प्रकृतियों में सभी

स्पर्धक सर्वघाति देखे और देशघाति प्रकृतियों में दोनों देखे-सर्वघाति भी और देशघाति भी। ऐसी कोई देशघाति प्रकृतियां हैं कि जिसके सर्वघाति स्पर्धकों का बंध तो हो रहा है परंतु उदय तीन काल में नहीं होगा ? जैसे मतिज्ञानावरण है, श्रुतज्ञानावरण है या अभी हमने वीर्यान्तराय आदि जो देखे थे। इनका तो सर्वघाति का उदय नहीं है उनके स्वभाव का अंश तो हमेशा प्रगट रहेगा ही रहेगा। यह बात हमने अभी देखी इसमें।

अघातिकर्मों में हमने दो प्रकार की प्रकृतियां देखी, पुण्य प्रकृतियां और पाप प्रकृतियां। पुण्य प्रकृतियों के स्पर्धक कौन-कौनसे देखे हमने ? आप रिपीट करना- गुड़, *श्रोता: गुड़।* खाण्ड, *श्रोता: खाण्ड।* शर्करा और अमृत। *श्रोता: शर्करा और अमृत।* गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत ये स्पर्धक किसके हो गये ? अघाति की पुण्य प्रकृतियों के, जिसको प्रशस्त कहेंगे। अघाति की जो अप्रशस्त प्रकृतियां हैं, पाप प्रकृतियां हैं, उनमें भी चार नाम हैं। नीम, *श्रोता: नीम।* कांजीर, *श्रोता: कांजीर।* विष, *श्रोता: विष।* और हलाहल। *श्रोता: हलाहल।* जिसको चारों का बंध होगा उसको कहेंगे चार स्थानीय यानी चतुःस्थानीय बंध। वह किसके होता है, क्या होता है ? उसकी चर्चा हम नहीं करेंगे। किसीके तीन ही स्थान बंधेगे तो कहेंगे त्रिस्थानीय बंध। किसीके दो होंगे तो द्वि स्थानीय बंध। ऐसे दोनों में लगा लेना, पुण्य प्रकृति में भी और पाप प्रकृतियों में भी।

देखो, ज्ञानावरणादि कर्म बंधते हैं न ? हर समय पांचों ज्ञानावरण बंध रहे हैं। कबसे लेकर कब तक ? अनादि से बंधते आ रहे हैं। कब तक बंधेंगे ? दसवें गुणस्थान के अंत तक बंधेंगे। जहां तीव्र संक्लेश परिणाम होते हैं वहां वे तीव्र अनुभागवाले बंधेंगे, बंधेंगे तो सभी बंधेंगे, बंधते समय सर्वघाति भी बंधेंगे और देशघाति स्पर्धक भी बंधेंगे उसके। यहां ये बात हो रही है कि कर्म कबसे बंध रहा है और कब तक बंधता रहेगा ? हर एक कर्म की अपनी-अपनी लिमिट है। कहां से यानी कौनसे गुणस्थान से कहां तक बंधेगा उसकी बात हम क्रम से देखेंगे। सर्वघाति, देशघाति की जो कुछ कसरत है हमारी, इसमें किसीको, कुछ नहीं समझा हो तो पूछना। सर्वघाति स्पर्धक, देशघाति स्पर्धक, सर्वघाति प्रकृति, देशघाति प्रकृति इसके बारे में कोई शंका है तो जरूर अभी पूछ लेना। *श्रोता: सर्वघाति प्रकृति और सर्वघाति स्पर्धक इन दोनों में क्या अंतर है ?* आपने पूछा - सर्वघाति प्रकृति और सर्वघाति स्पर्धक में क्या अंतर है ? देशघाति प्रकृति और देशघाति स्पर्धक ये खाली जुबान की एक्सरसाइज कुछ चल रही है क्या ? कभी प्रकृति कहो, कभी स्पर्धक कहो। ऐसी कोई बात नहीं। प्रकृति कर्म को कहते हैं। कर्म

की प्रकृति- जो मूलकर्म हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय वगैरह उनको कहेंगे मूलप्रकृति और जो उसके भेद हैं उसको कहेंगे उत्तरप्रकृति। घातिकर्मों में ये सर्वघाति, देशघाति चल रहा है; घातिकर्मों में कोई प्रकृतियां सर्वघाति होती हैं। क्या करती हैं ? अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात करती हैं क्योंकि सर्वघाति प्रकृतियों के अनुभाग बतानेवाले जो लॉट हैं कर्मों के, परमाणुओं के उसको हम क्या कहते हैं ? स्पर्धक। उसमें हमने देखा न ? वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक की बात हमने की थी।

श्रोता: प्रकृति में स्पर्धक हैं ? हां, प्रकृति में स्पर्धक हैं। *श्रोता: सम्यक् प्रकृति में भी ?* देखो, हमने क्या देखा था ? जब कर्म बंधते हैं तो उसकी स्थिति बतानेवाली निषेक रचना होती है यानी वह कर्म कब उदय में आयेगा ? कितने आयेंगे ? उसमें वह स्थिति में बताया जाता है और उसका अनुभाग बतानेवाली जो रचना है उसको क्या कहेंगे ? स्पर्धक रचना। तो प्रकृति में ही स्पर्धक पाये जाते हैं और वे स्पर्धक मंद से तीव्र तक बहुत सारे पाये जाते हैं। एक ही समय में जो कोई अनंत परमाणु बंधे हैं; उनमें से कोई परमाणु मंद अनुभागवाले हैं, और कोई तीव्र हैं, कोई और तीव्र हैं, कोई और तीव्र हैं; जितना मॅक्झिमम बंधा है न ? उसका नाम लेकर हम कहेंगे इतना तीव्र अनुभाग बांधा इसने। एक समय में जो बंध हुआ है, अनंत परमाणु बंधे हैं उन अनंतों में अलग-अलग अनुभाग पड़ा है। फिर भी हम अनुभाग कितना बांधा कहेंगे तो टॉप मोस्ट जो मॅक्झिमम बांधा उसका नाम लेंगे।

श्रोता: वह स्पर्धक वेदन से संबंधित है कि नहीं ? जो स्पर्धक हैं वे अनुभव यानी वेदन से संबंधित हैं कि नहीं हैं ऐसा प्रश्न है। तो इसका अर्थ क्या है कि जब वे उदय में आते हैं तो जिस रूप में उदय में आते हैं उसका वहां वेदन चलता है। उसका वहां जीव को निमित्त बनता है। जीव को वहां उसका फल पाया जाता है। उसको नाम अलग-अलग देते हैं हम, उसीको कहेंगे विपाक, उसीको कहेंगे अनुभव, उसीको कहेंगे वेदन। यह कर्म का जो उदय है, उस समय जीव में जो कोई उसके परिणाम होते हैं तो हम कहेंगे जीव उसका वेदन कर रहा है। परवस्तु का वेदन करता ही नहीं है। परंतु अपने विभाव भावों का वहां वेदन चल रहा है। वह तो हम भेदज्ञान करने के लिये कहेंगे वह हमसे भिन्न है, हां वह बात यहां नहीं हो रही है। परंतु जीव को दुःख का अनुभव भी हो रहा है वहां पर। मिथ्यात्व परिणाम है तो उसका भी अनुभव चल रहा है; तीव्र मिथ्यात्व है तो तीव्र का; जिसरूप में अनुभाग का उदय है उसका उसको फल

मिलता है। फल मिलता है यानी चारित्रमोहनीय के तीव्र उदय का, तीव्र अनुभाग का उदय है तो जीव के तीव्र कषाय हो रहे हैं, जहां मंद है वहां मंदरूप हो रहा है। जिसके मिथ्यात्व का तीव्र उदय चल रहा है उसके तो शास्त्र सुनने के - आत्मा की बात सुनने के भाव भी नहीं होंगे। जिसके मिथ्यात्व का मंद उदय होता है, क्यों मंद होता है ? क्योंकि कभी अपने आप मंद हो जाता है, उसमें कोई अभी के परिणामों से मंद होगा वह बात नहीं। वह तो बाद में होगा - तत्त्वज्ञान के अभ्यास से जो मंदता आयेगी वह तो बाद की बात है। परंतु किसी जीव को सहज ऐसी रुचि अंदर से होती है न ? यह क्या बात चल रही है ? यह मैं क्यों दुःखी हूं ? इसमें से छुटकारा कुछ है कि नहीं है ? इसके लिये कुछ जैन होना आवश्यक नहीं है।

हमारे घर में बर्तन मांजनेवाली बाई यानी लड़की, अभी वह मेरी लड़की की उम्र की है, वह पूछती है क्या हर भव में यही आदमी यानी हजबंड मिलेगा हमको ? क्योंकि वह दारू पीता है न ! हां, भले उसने वह प्रेमविवाह किया है, परंतु अभी बहुत कोस रही है कि हमें तो नहीं चाहिये। मैंने कहा ऐसी कोई बात नहीं है, तू जैसे परिणाम करेगी वहां चली जायेगी, चारों गति के रास्ते खुले हैं। तो कहती है लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि मुझको जन्म-मरण ही नहीं हो ? इसमें से छूटे ? देखो ऐसी जिसको अंदर से कुछ जिज्ञासा उत्पन्न होती है और ऐसे जीव को मार्ग न मिले ऐसा कभी नहीं होता, कभी नहीं होता। उसकी यह योग्यता ही उसको मार्ग बना देती है। उसके ऐसे समझानेवाले निमित्त भी सामने से मिल जाते हैं, सहजरूप से मिलते हैं। कभी निमित्त के कारण अपना कार्य अटक गया है ऐसा कभी नहीं होता है। कार्य अपनी योग्यता से होता है और उसमें जो उचित निमित्त हो वह पाया ही जाता है। हम कर्म की इतनी बातें अभी देख रहे हैं तो लोग कहते हैं हमको डर लग रहा है। क्यों ? अरे ! इतने सारे कर्मों की बात आप सुना रही हैं, इतना बंध हो रहा है अभी क्या करें ? इसमें से कैसे छूटें हम ? चिंता की कोई बात नहीं है। जिस समय हम तत्त्व का विचार करने लगते हैं तो कर्म में कितनी सारी कमाल की उथल-पुथल हो जाती है।

पंचलब्धि के प्रकरण में हमने लिया था इसको। तत्त्वज्ञान के विचार से उदय में आनेवाले जो अप्रशस्त कर्म हैं- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मिथ्यात्व भी उनका उदय हो रहा है और जिस समय जीव तत्त्वज्ञान के विचार में जुट जाता है तो उनका अनुभाग स्वयं अपने आप मंद होकर उदय में आता है। जो बांधा था और सत्ता में पड़ा था वह

सहज ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि यहां जीव के तत्त्वविचार, तत्त्वजिज्ञासा जागृत होती है तो उसके ज्ञानावरण, दर्शनावरण सभी अप्रशस्त कर्म, सभी कहा है एक दो नहीं; उसीको तो यहां क्षयोपशमलब्धि कहा है। क्षयोपशमलब्धि कहा है, मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय होने को क्षयोपशमलब्धि नहीं कही है। हमने देखा न अप्रशस्त कर्म कौन-कौनसे हैं ? घातिकर्म तो सभी अप्रशस्त हैं और अघाति में भी असातावेदनीय जो है, अन्य जो हैं यानी संयोगों की भी उसके जो विपरीतता थी, तत्त्वज्ञान के अभ्यास से वह सहजरूप में उसके ऐसी कोई कंडिशन बन जाती है कि जो तत्त्वज्ञान का अभ्यास करता है उसके बिलकुल अनुकूलता हो जाती है। यानी जो संयोग विपरीत हैं वे सुधर जायेंगे ऐसा नहीं कहना। अरे संयोग विपरीत आये कोई, कष्ट की कोई बात हो जाये, तो जीव उसको वैराग्य का कारण बना देता है। ऐसा जरूरी नहीं कि उसको बाह्य में कुछ कष्ट दिखायी ही नहीं दे।

मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग होते हैं। अरे ! हमारे पर कोई संकट आये तो हम मुनिराजों का नाम लेते हैं, पंचपरमेष्ठी का स्मरण करतें हैं न ! जिनका स्मरण कर रहें है उन मुनिराजों पर उपसर्ग आता है कि नहीं आता ? अभी भगवान पर नहीं आयेगा, परंतु आचार्य, उपाध्याय, मुनियों के ऊपर उपसर्ग होते हुये देखे हैं हमने। प्रथमानुयोग में पढ़े भी हैं। हमें दिखायी देतें हैं - हमें लगता है कि वे कष्ट में हैं परंतु वे तो अपने तत्त्वविचार में लीन हैं। हम भी जब इन तत्त्वों का विचार करते हैं तब उस काल में ये जो अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग हैं वे मंद होकर उदय में आते हैं। ज्ञानावरण मंद हो जायेगा तो क्या होगा ? ज्ञान खिलेगा। हम क्या कहते हैं पहले हम अटपटी कंडिशन डाल देते हैं। क्या करें ? हमारे कुछ समझ में नहीं आता। अभी हमारी उम्र हो गयी, बुड्ढे हो गये हैं न ! या हम नहीं समझते तो बच्चों को भी नहीं समझाना चाहते हैं। अरे ! ये क्या समझेगें ? हम नहीं समझते तो ये क्या समझेंगे।

ऐसा ही हुआ था। हमारे यहां एक बहन आती थी स्वाध्याय में। उनके घर उनकी बहन के बच्चे आये थे छुट्टियों में। वे कहने लगे हम भी जायेंगे स्वाध्याय में परंतु वह बहन उन्हें मना करने लगी। वह बहन हमसे कहने लगी कि हम नहीं लायेंगे उन बच्चों को, हम ही नहीं समझते तो वे क्या समझेंगे ? हमने बोला ऐसा कभी मत कहना। हमारे यहां गुणस्थान सिखा रहे थे दिनेशजी और वहां वे तीन बच्चे आकर बैठते थे;

माउंटआबू से आये थे उनकी मासी के यहां और तीनों आकर गुणस्थान की कक्षा में बैठते थे। वे अंग्रेजी मिडीयमवाले थे; वे लिखते थे गुणस्थान जी यु एन... ऐसा ये सब गुणस्थान लिख लेते थे। तीनों ने इतना अच्छी तरह से गुणस्थान सीखा, हमने वहां घर में भी परीक्षा ली थी उसमें तो वे बच्चे अच्छी तरह से पास हुये ही हुये। उसके इमीजिएट बाद यहां देवलाली में शिबिर लगा था मई महीने का और यशपालजी की गुणस्थान की क्लास में ये तीनों बच्चे वहां बैठे थे और तीनों ने परीक्षा दी और तीनों का पहला नंबर आया था ! बड़ों से भी उन्होंने ज्यादा अच्छी तरह से ग्रहण किया था ! तो हम ही पहले मना करते हैं, हमें रुचि नहीं है तो हम ही बच्चों पर रोक लगाते हैं। अरे ! मत पढ़ना इसमें क्या है ? लेकिन स्कूल में कोई नयी क्लास है या नयी बॅच स्टार्ट होगी या दूसरी कॉम्प्यूटर की क्लास होगी तो उसमें पहले में पहले उनको भेजते हैं और फिर हम ख़ुशियां भी मनाते हैं। देखो, हमारे बच्चे कितने होशियार हैं। परंतु जब बच्चे तत्त्वज्ञान की क्लास में जाते हैं तो कहते हैं अरे इसकी क्या उम्र है अभी ? तत्त्वज्ञान पढ़ने जाते हैं ! हमारे यहां अश्विनभाई का लड़का आता है ! बहू भी आती है ! सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के डेली क्लास में बैठती है। अभी उम्र ही क्या है उनकी ? २६ कुछ होगी। उनको भी सब रिश्तेदार कहते हैं, 'अरे तू ! उम्र क्या है तेरी ? कहां जाता है ?' गत चार साल से आ रहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा उसने सुना; २५०-३०० लेक्चर्स हुये थे उस पर।

यह बात कोई उम्र की थोड़े ही होती है ? अरे इस उम्र में जो इतना अच्छा ग्रहण करेगा, ग्रास्प करेगा वह तो आगे कितनी तरक्की कर जायेगा ! क्योंकि यही जो बुद्धि की जो तल्लखता है, शार्पनेस है, जो इस उम्र में है क्या वैसी बुद्धि की तल्लखता अभी हमारी उम्र में हो जायेगी ? हमें तो ऐसा लगता है हमने कितना काल गंवाया है, हां, क्या-क्या पढ़ाई में इधर-उधर सब। इससे तो अच्छा है हमारे बच्चे तो जल्दी से जल्दी इसको सीख जायें। छोटी उम्र के बच्चे आते हैं सीखने तो हमें बहुत आनंद होता है। ऐसा नहीं समझना कि करणानुयोग मत पढ़ो पहले, ये पढ़ो पहले ऐसी कोई बात नहीं है। हमारे यहां उदाहरण है अश्विनभाई का ! हमारी ये प्रेरणाबहन उनकी मिसेस है ! अश्विनभाई प्रवचन सुनने कहीं नहीं जाते थे; प्रेरणाबहन को तो बहुत उत्साह, सब जगह सुनती थी और मिस्टर को भी ले जाती थी 'सुनो तो सही। बहुत अच्छी बात है।' अच्छे अभ्यासी हैं दोनों। अश्विनभाई कभी-कभी जाते थे उनके साथ। एक बार माटुंगा में मेरे करणानुयोग परिचय पर छह व्याख्यान हुये थे; पहली बार वहां वे आये थे। सुना,

तो उन्होंने ऐसा नक्की किया कि इनकी बात सुनने योग्य है, मैं यहां जाऊंगा ! हमारे यहां डेली स्वाध्याय चलता ही है तो वे आने लगे। तब हमारा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड का ढूंढ़ारी भाषा में ज्ञानमार्गणा का प्रकरण चल रहा था। जो कठिन में कठिन विषय है ! प्रेरणाबहन ने बोला, 'हम ही मुश्किल से समझते हैं। अभी क्या करें ? शुरू किया है तो जाते हैं। आप मत आना' उन्होंने कहा, 'मैं आऊंगा' और तब से कितने साल हुये भाई ? छह साल हो गये। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका हुयी, जीवकाण्ड हुआ, कर्मकाण्ड हुआ, लब्धिसार हुआ, क्षपणासार हुआ।

क्षपणासार में हमारे जयश्री पाटनीजी की साढ़े तीन साल की नाती भी उनके साथ आती थी। 'क्या पढ़ती हो नानी ? मुझे भी आपके स्कूल में आना है।' हम तो वहां निषेक रचना समझाते थे। वह घर में जाकर बोलती थी, 'नानी ऐसा-ऐसा सीखती हैं'। अश्विनभाई इतने कठिन विषय में आये और तबसे वे प्रतिदिन डेढ़ घंटे स्वाध्याय में आते ही रहे हैं। अभी धवला के सोलह भागों में बैठे हैं। जयधवला की भी आठवीं पुस्तक होने को आयी है। करणानुयोग के गहन से गहन विषय को भी वे आसानी से समझ लेते हैं। परंतु द्रव्य-गुण-पर्याय तक नहीं जानते थे; अभी दो साल पहले से द्रव्यानुयोग के दिनेशजी के प्रवचनों में भी आना शुरू किया। करणानुयोग से प्रारंभ कर अब द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त सीख रहे हैं। पहले शिखर होता है न बाद में नींव, ऐसी कोई बात नहीं है। किसी भी अनुयोग से हम शुरू कर सकते हैं। भेदज्ञान करना हमारा मूल लक्ष्य है; हम उसे कैसे हासिल करें ? वीतरागता कैसे हासिल करें ? हो सकता है किसीको करणानुयोग में रुचि हो, किसीको प्रथमानुयोग में, किसीको चरणानुयोग में, परंतु लक्ष्य एक ही है; हमें भेदज्ञान करके आत्मा का अनुभव करना है।

देखो मैं किसीकी कोई टिपण्णी नहीं करना चाहती। चार-पांच साल पहले यहां देवलाली में प्रशिक्षण शिबिर हुआ था। एक महिला आयी मेरे पास, मैं तभी शायद पंचलब्धि की क्लास ले रही थी। उस महिला ने मुझसे कहा 'आपने गुरुदेवश्री को कभी सुना ?' मैंने कहा हां सुना। हम तो बहुत भाग्यवान हैं और हमने उनसे बहुत कुछ पाया है और हमने बहुत अभ्यास भी किया है। गुरुदेवश्री का जितना साहित्य है हमने बारंबार कितनी बार पढ़ा है और पढ़ाया भी है। तो कहती है, 'आपने सुना है ऐसा मुझे

नहीं लगता।' मैंने कहा क्यों नहीं लगता ? 'गुरुदेवश्री ने कभी करणानुयोग पढ़ाया था ? आप अपने को बहुत सयानी समझती हो उनसे, जो आपने करणानुयोग पढ़ाना शुरू किया है ?' मैंने बोला आपको शायद पता नहीं होगा उन्होंने भी करणानुयोग यानी धवला, जयधवला की पढ़ाई की थी और धवला ग्रंथ पर जाहिर में प्रवचन भी किये थे। अच्छा गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे इसको तो आप मानती हो ? 'हां, मानती हूं क्यों नहीं मानूंगी ? जरूर मानते हैं।' तो उनकी दिव्यध्वनि में, किस अनुयोग का वहां व्याख्यान होगा ? *श्रोता: चारों अनुयोगों का।* चारों अनुयोगों का ! यानी दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का कथन करते हैं। जो किसी एक पर व्याख्यान करना, उसका अभ्यास करना ये कोई गलत बात नहीं है; परंतु यदि अन्य अनुयोग के प्रति हमें निषेध है अपने अभिप्राय में, वह तो हम सर्वज्ञ का अपमान कर रहे हैं। अपनी बुद्धि उसमें नहीं चलती तो जाने दो। वह विषय अपने हृदयङ्गम नहीं होता है, अपने को उसमें कंटाला आता है, उसमें कुछ समझ में नहीं आता है, वह बात अलग है। परंतु हम स्वयं निषेध करें और अन्य को भी उससे रोकें- 'अरे करणानुयोग पढ़ने से क्या होगा ? बंधन से छूटना है तो कर्मबंध क्यों जानना है ?' अरे बंधन से छूटना है न ? तो बंध को जाने बिना कैसे छूटेंगे और अपना उपयोग किसमें रमायेंगे ?

यह भगवान आत्मा की बात चौबीस घंटे तो नहीं सुनेंगे - हम आत्मा में स्थिर नहीं हो पा रहे हैं तो हम क्या करेंगे? उपयोग कहां चला जायेगा ? पंचेन्द्रियों के विषयों में। धर्मध्यान तो पता है न ! धर्मध्यान के चार प्रकारों में दो नाम तो कर्म के बारे में हैं। विपाकविचय धर्मध्यान और अपायविचय धर्मध्यान है। कर्म के बारे में मुनिराज भी बारंबार चिंतन करते हैं कि किस प्रकार का आस्रव है और किस प्रकार का बंध है, कैसे निर्जरा होती है। ये बारह जो अनुप्रेक्षा हैं, उनके भी चिंतवन में तो कर्म की मुख्यता आती है। इसको जानना या इसको पढ़ना इसका निषेध नहीं है। परंतु कर्म से हमारा सब कुछ होता है ऐसा अगर हम मानेंगे तो मिथ्यात्व हो जायेगा। हमें तो मिथ्यात्व से छूटना है। करणानुयोग पढ़ने से बहुत दृढ़ता आती है; द्रव्यानुयोग इसमें सरल में सरल समझ में आता है और हमारे कितने ही प्रश्नों के इसमें उत्तर मिल जाते हैं। अपना उपयोग इसमें सूक्ष्म रहता है। अरे ! जब हम करणानुयोग पढ़ते हैं तो एक

घंटा कहां बीत गया समझ में ही नहीं आता। हमें बार-बार देखना पड़ता है, हम कुछ ओव्हरटाइम तो नहीं ले रहे ? डेढ़-डेढ़ घंटे का हमारा रोज का स्वाध्याय चलता है सुबह, तो वहां फिर देखना पड़ता है अरे ओव्हरटाइम हो गया ! चलो अभी बंद करेंगे। करणानुयोग का या अन्य किसी अनुयोग का निषेध नहीं होना चाहिये। द्रव्यानुयोग तो सर्वोपरी है ही है, उसको तो हमने बहुत हृदयङ्गम किया ही है। अब उसके साथ अन्य सभी अनुयोगों को हम लेकर चलेंगे; तो उसमें अपना ही कल्याण है।

देखो कभी-कभी क्या होता है ये शब्द तो अटपटे हैं, उसमें तो अपनी बुद्धि चलती नहीं है और उसमें तो सिखानेवाले भी नहीं मिलते हैं। हमने जब पहली बार पढ़ी थी सारी पुस्तकें, हमें कुछ समझ में नहीं आता था। स्पर्धक क्या है ? उसका एक्झॅक्ट क्या स्वरूप है ? तीन-तीन बार पढ़ा-पढ़ाया तब तक समझ में नहीं आया। जब लिखा तभी बहुत सूक्ष्मता से उपयोग में ये बात आ गयी। पहली बार लब्धिसार-क्षपणासार पढ़ा; क्या पढ़ा ? मालूम नहीं, केवल अक्षर पढ़ते गये बस। एक ही बात थी कि मेरा बहुत हठ था और दिनेशजी का भी साथ था; कि नहीं हम वह पढ़ेंगे और वह बिलकुल पढ़ेंगे; सुनेंगे और पढ़ेंगे, सुनेंगे और पढ़ेंगे। जब बारंबार हमारा उपयोग उसमें लगा, तब उसकी बहुत विस्तार से, बहुत डीटेल में बात समझ में आयी हैं। फिर ऐसा लगता है कि ये बातें जो हैं अपनी समझ में आयी हैं, चलो सबको बता दें। पं. टोडरमलजी की जो भावना थी न कि ये बातें जन-जन तक पहुंचे। उन्होंने अपनी देशभाषा में इसकी टीका लिखी है और उस देशभाषा टीका से हमने पढ़ा है, वे हमारे गुरु हैं ! साक्षात् गुरु तो हम पं. टोडरमलजी को मानते हैं क्योंकि उनके द्वारा हमें ये सारा प्राप्त हुआ। कोई सिखानेवाला हमारे यहां मुंबई में था ही नहीं। हमारी कोई शंका है, हमारा कोई प्रश्न है तो किसको पूछे ? हम ही पढ़ते गये तो हमारे प्रश्नों के उत्तर भी मिलते गये। फिर जाकर सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार इन सभी ग्रंथों का मैंने हिन्दी अनुवाद किया। ऐसी भावना होती है कि ये बातें सभी लोग समझें।

थोड़ा बहुत इन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान हो जाये तो स्वयं ग्रंथ पढ़ें। ग्रंथ को ही पढ़ना चाहिये। मूल ग्रंथ पढ़ने के लिये थोड़ी सुविधा हो जाये इसीलिये यहां यह चर्चा चल रही थी। मुनिराजों को इतनी फुरसत थोड़े ही हैं कि एक-एक को लेकर सब समझातें रहे। वे तो उसकी और गहरी-गहरी बातें करेंगे। धवला का भी हमारे यहां अभ्यास हुआ, हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका चार-चार बार पढ़ा-पढ़ाया था, इसलिये धवला

की बातें समझ में आती थी। नहीं तो डायरेक्ट कोई पढ़ने जाता है तो समझ में भी नहीं आता। अनेक बार हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका को निकाल-निकालकर उसमें से पढ़कर फिर धवला का अर्थ लगाया है - समझाया है। पं. टोडरमलजी साहब की बुद्धि तो कमाल की लगती है ! क्या करें ! मोक्षमार्गप्रकाशक हमारे सबके हाथ में है। अब ये भी तो उन्हींका लिखा हुआ है। यदि उनको करणानुयोग की महानता नहीं होती, मात्र द्रव्यानुयोग की होती तो पहले मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं लिखा था। पहले तो करणानुयोग को लिखा था। क्यों ? उनके जो स्वाध्यायी थे उन्होंने उनको बताया, 'आप चले जायेंगे तो आपके साथ आपका ज्ञान भी चला जायेगा, इसलिये लिखना।' बहुत आग्रह किया तो उन्होंने इन सारे ग्रंथों की रचना की। कितने महान ग्रंथ हैं ! ये जब पढ़ते हैं तो पूरा मोक्षमार्ग सरल होकर ख्याल में आता है। कहां, कैसे बंध होते हैं; जीव को सम्यक्त्व होता है तो ये बंध से कैसे सहजरूप से छुटकारा हो जाता है; कितनी ही प्रकृतियां बंधने से रुक जाती हैं; कितनी ही बंधी हुयी प्रकृतियों का उदय रुक जाता है और जीव बिलकुल आनंद में रहता है - आनंद की लहर-लहर चलती है उसकी। कर्मों के ज्ञान द्वारा भी हमें अपने भिन्न स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। अरे उनका उदय ही नहीं तो, उन प्रकृतियों के उदय में पाये जानेवाला निमित्तरूप से वह दुःख भी उस जीव को नहीं होता है। यह पूरा मोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग का स्वरूप, मुनियों का स्वरूप, भगवान का स्वरूप भी अगर सच्चा जानना है तो करणानुयोग के अध्ययन से, उस आधार से हम अगर उसको जानेंगे तो उसका सही निर्णय करने में हमें बहुत मदद हो जाती है। क्योंकि कितने कर्म बंधे थे ? कैसे उन्होंने आत्मस्थिरता की ? कितने कर्म खिर गये और कितने कर्मों का उदय रुक गया, भले सत्ता में पड़े हैं। कोई अन्यरूप से उदय में आकर कैसे नष्ट हो जाते हैं ? बिलकुल इतना सुंदर वर्णन है।

लब्धिसार में अकेले नौवें गुणस्थान का वर्णन १५० पेज में है ! लब्धिसार क्षपणासार में उपशमश्रेणी का अलग और क्षपकश्रेणी अलग वर्णन है। क्षपणा अलग होती है, उपशमना अलग होती है और हर एक के प्रोसेसेस अलग-अलग, भिन्न-भिन्न हैं। उसमें भी उतने ही पेजेस बता दिये हैं। एक भाई आये थे हमारे यहां- विद्वान, द्रव्यानुयोग के प्रवचनकार; कुछ पचासी साल की उम्र होगी। सायन में ही रहते हैं। उन्हें ऐसी भावना हुयी कि चलो हम भी जायेंगे एक दिन। हमारा लब्धिसार-क्षपणासार का प्रकरण चल रहा था; आये और डेढ़ घंटे उन्होंने बहुत प्रेम से अच्छा सुना। जाते

समय इनसे बात की 'मैं कल से नहीं आऊंगा।' क्यों, क्या बात हो गयी? कुछ भूल हो गयी ? 'नहीं, बहन को कहना कि यह तो बहुत अच्छी बात है परंतु बहुत कठिन है। परंतु मुझ पर बहुत महान उपकार आज हुआ है।' क्यों ? 'केवलज्ञानी की महत्ता मुझे आज जितनी आयी, अभी तक नहीं आयी थी। इतना कठिन विषय है, इतना श्रुतज्ञानियों ने लिखा हुआ है, पं. टोडरमलजीसाहेब ने इसकी रचना की है, यह लिखकर समझाया है। परंतु यह इतना गहन विषय है, इसको पढ़कर मुझे आज केवलज्ञान की महत्ता आयी है कि केवलज्ञान का स्वरूप कैसे होगा ?' हां, उन्होंने तो कहा, 'मेरा मान गल गया है आज। मैं तो अपने को बहुत होशियार पंडित समझता था लेकिन आज मेरा मान गल गया। मुझ पर बहुत बड़ा उपकार हुआ है।' ऐसे भी उम्र बहुत थी उनकी, तो रोज आने-जाने जैसी स्थिति भी नहीं थी।

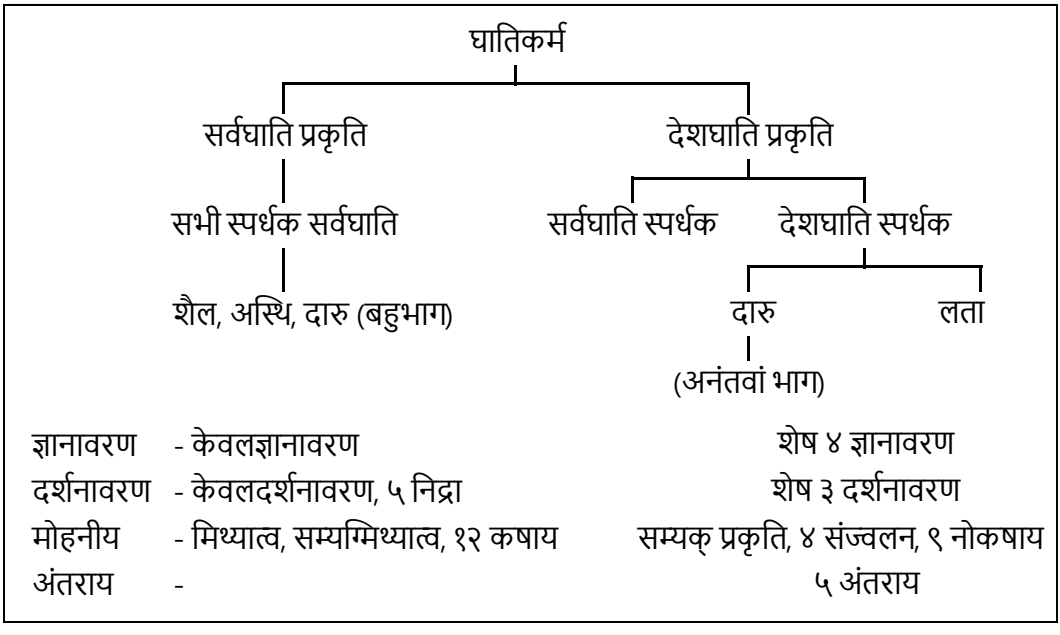
उम्र की क्या बात करें ? मेरी मां यहां सामने बैठी है। छह घंटे मैं बोल रही हूं वह सात घंटे बैठती हैं; स्वामीजी के प्रवचन में भी और जाकर तीन घंटे अलग से सामायिक करती हैं बैठकर ! और हम यहां कहते हैं हमको बैठने में तकलीफ हो रही है। सबको कुर्सियां बना दो तो हम आराम से बैठेंगे। छियासी वर्ष की उम्र है उनकी। कुर्सी के बिना नीचे बैठती है। क्यों ? जिसको रुचि है और जिसको देव-गुरु-शास्त्र के प्रति समर्पणभाव है, पढ़ते समय शरीर की वह जो कोई असुविधा है वह तो भूल जाता है। उसको तो ख्याल में भी नहीं आता; वह कुछ वहां उसका लक्ष भी नहीं जाता और हम बार-बार अपने को पहले में पहले शरीर मानकर ही बैठते हैं। बैठते समय पहले हम अपने को शरीररूप से स्वीकार करके बैठेंगे। हां, हो सकता है किसीके बहुत तकलीफ हो सकती है, उसका हम निषेध नहीं कर रहे हैं। परंतु हम आम बात कर रहे हैं कि जिसको रुचि होती है उसका तो शरीर के प्रति लक्ष भी नहीं जाता।

अभी हमने स्पर्धकों की बात देखी है। हर एक कर्म में अपने-अपने चार-चार प्रकार के स्पर्धक हैं; जो हैं तो अनंत, चार नाम देकर उनको समझाया है। प्रकृति और स्पर्धकों में भी अंतर देखा। प्रकृति में स्पर्धक होते हैं तो वे कैसे-कैसे होते हैं, उनकी क्या-क्या अवस्था होती है आदि बातें हमने देखी। आगे की चर्चा हम कल करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

७. कर्म पर निक्षेप

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। उसमें जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड आदि का वर्णन है। उसीके आधार से उसकी जो संस्कृत टीका है, उस पर से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नाम की ढूंढ़ारी भाषा में, उस ज़माने की जो हिंदी थी, उसमें उन्होंने टीका की है। विषय अत्यंत सरल करके उन्होंने समझाया है। उनकी भावना थी कि जन-जन इसको समझे और हर जीव, इस करणानुयोग का अभ्यास करके अपना कल्याण करे। इसी भावना से उन्होंने इतना महत् कार्य किया है। हम भी उनकी भावना को समझें क्योंकि उसको पढ़ने से हमारा अपना कल्याण होता है, हमारा अज्ञान दूर हो जाता है। क्योंकि कर्म संबंधी हमारा बहुत अज्ञान चल रहा है और हम अपनी कल्पना से चाहे जैसा मान लेते हैं और उसका उपाय भी करना चाहते हैं। परंतु हमें सही ज्ञान हो जायेगा तो हमारा अज्ञान भी दूर हो जायेगा और मोक्षमार्ग शुरू होने में हमें मदद हो जायेगी।



तो आप सब स्पर्धक को पचाकर आये हैं। विषय कठिन यानी गहन था। उस पर एक और भी यहां प्रश्न आया है उसको लेकर हम अपना विषय आगे बढ़ायेंगे।

क्षयोपशम की व्याख्या यानी परिभाषा हमने कल देखी। स्पर्धकों को पहले हमने देख लिया कि जो घातिकर्म हैं उन्हींमें दो टाइप की प्रकृतियां होती हैं; कोई तो सर्वघाति प्रकृति होती है यानी कर्म ही सर्वघाति हैं और कोई प्रकृति देशघाति होती है। सर्वघाति जो कर्म हैं यानी सर्वघाति जो प्रकृतियां हैं उनमें जो परमाणु हैं, उनके अनुभागवाले जो ग्रुप हमने बनाये वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक; उसकी भी डीटेल बात फिर दुबारा आयेगी। तो ये जो स्पर्धक हैं ये सर्वघाति प्रकार के हैं। हमने स्पर्धकों के चार-चार भेद देखे थे; लता, दारु, अस्थि और शैल ये घातिकर्मों के हमने चार-चार प्रकार देखे थे और उनमें ये जो शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग है उनको सर्वघाति स्पर्धक कहते हैं और जो दारु का अनंतवां भाग है मंदवाला और लताभागवाले ये सारे ही देशघाति स्पर्धक हैं। सर्वघाति जो प्रकृति है जैसे केवलज्ञानावरण सर्वघाति है, उसमें देशघाति स्पर्धक होते ही नहीं; उसमें मात्र-ओनलि सर्वघाति स्पर्धक ही पाये जाते हैं। यह बात ख्याल में आयी ? तो सर्वघाति प्रकृति का उदय कहो उनको या उनके सभी स्पर्धकों का उदय कहो वह तो पूरा ही घात होता है वहां पर। अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात रहता है।

अब बात रही देशघाति प्रकृतियों की, तो प्रकृति तो देशघाति है परंतु उसमें सभी यानी चारों प्रकार के स्पर्धक हैं - लता, दारु, अस्थि और शैल। यानी उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी पाये जाते हैं और देशघाति स्पर्धक भी पाये जाते हैं। ऐसा ही बंध होते समय होता है परंतु उदय होते समय उसकी कोई विशेषता है। जैसे हमारा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान; कोई सूक्ष्म जीव भी हो, उसके तो मति-श्रुतज्ञान है ही, प्रकट है ही। ऐसा कोई जीव नहीं कि जो ज्ञान रहित हो जाये, पूरा जड़ हो जाये। यानी उसका कुछ न कुछ ज्ञान का अंश, वीर्य का अंश तो प्रकट रहता ही है। बंधते समय तो सर्वघाति स्पर्धक भी बंधे थे, देशघाति स्पर्धक भी बंधे थे। तो सर्वघाति का उदय हो जाये तो क्या होगा? हो जाता तो क्या होता ? होता ही नहीं है। *श्रोता: जड़ हो जाता।* हां, सर्वघाति स्पर्धकों का उदय होता तो जड़ हो जाता। तो हमें उसकी चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। परंतु वे बंधे थे न ? वह कैसा-क्या हो गया उसका ? बंध है तो सत्ता में पड़े रहेंगे और सत्ता में है तो उदय आयेगा ही आयेगा क्योंकि जिनकी स्थिति पूरी होती है वे कर्म तो खिर जाते हैं। तो जब खिरने का समय आता है तो उसी एक समय में ही वे देशघातिरूप होकर, उदय के समय में देशघातिरूप से उदय में आते हैं। तो यह

देशघाति का उदय होने से उन सर्वघाति स्पर्धकों का अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात करने का जो स्वभाव था वह तो डायल्यूट हुआ न ! मंद हो गया, देशघातिरूप हो गया और उदय में आया। तो वहां इसको क्षयोपशम कहते हैं।

इसमें हमने तीन बातें देखी थी। वर्तमानकाल में सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं हो रहा है; परमाणु तो खिर रहे हैं, परमाणु तो निकल जा रहे हैं, खिर रहे हैं परंतु देशघातिरूप होकर निकल रहे हैं। अपने स्वयं के रूप से यानी सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आ रहे हैं तो अपने स्वरूप से उदय में नहीं आना फिर भी खिर जाना उसको क्या कहेंगे ? उदयाभावी क्षय। उदय का अभाव ही उसका क्षय है, इसको कहेंगे उदयाभावी क्षय। हमने क्षयोपशम की परिभाषा का दूसरा भाग कौनसा देखा था ? कि सत्ता में तो सर्वघाति पड़े हैं, वर्तमान का नीचे का निषेक तो देशघातिरूप से हो गया। दूसरा, तीसरा, चौथा आदि निषेक जो कोड़ाकोड़ी सागरों के हैं वे सत्ता में पड़े हैं; उन सारे निषेकों में देशघाति, सर्वघाति सब स्पर्धक पड़े हैं। तो ये जो सर्वघाति हैं वे वहां सर्वघातिरूप से पड़े रहेंगे। 'सत्ता में पड़े रहना, उदय में नहीं आना' इसीको कहते हैं सदवस्थारूप उपशम। देखो, उपशम शब्द बहुत बार आता है। उसका हमें सही भावभासन भी नहीं होता। उपशम होना यानी क्या ? तो दबे रहना, उदय में नहीं आना। जब हम औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र की बात करते हैं, जिनको दो औपशमिक भाव कहा है, दो देखे न हमने ? औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। वहां अभी कर्मों के नाम लिये बिना हम कहेंगे विशिष्ट कर्मों का उपशम रहता है, वे उदय में नहीं आते हैं। परंतु वह जो उपशम होता है, वहां कुछ अन्य उसका प्रोसेस बन जाता है। जो हम कुछ थोड़ा आगे बढ़कर उसकी बात करेंगे। जिसको कहेंगे पहले अंतर किया जाता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बारे में हमने पंचलब्धि पुस्तक में सीखा था। पहले अंतर होता है यानी गॅप तैयार होती है। दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व प्रकृति के जो हम कंटिन्युअस एक-एक-एक-एक-एक-एक निषेक देख रहे थे तो जब जीव तत्त्वविचार में लीन हो जाता है, तब क्या होता है ? कि वहां के कुछ निषेकों का अभाव हो जाता है। उनके परमाणु कुछ नीचे और कुछ ऊपर चले जाते हैं और बीच में गॅप तैयार होती है। उसके बाद क्या होता है ? गॅप के ऊपर जितने सारे निषेक पड़े हैं, वे उपशमित होते हैं, अपनी जगह नहीं छोड़ते हैं, वहीं

पर बने रहते हैं, उदय में नहीं आते। तो उसको हम कहते हैं प्रशस्त उपशम। उसको सदवस्थारूप नहीं कहते। यह जो सदवस्थारूप उपशम है इसीका दूसरा नाम है अप्रशस्त उपशम।

आठों ही कर्म बंधते हैं और बंधने के बाद सत्ता में पड़े रहते हैं और जब तक उदय में नहीं आते तब हम कहेंगे उनका अप्रशस्त उपशम चल रहा है। या सातावेदनीय का बंध हुआ है, अभी वह पड़ा है; असाता का उदय चल रहा है तो साता का उदय नहीं हो रहा है, सत्ता में है; तो उसको कहेंगे अप्रशस्त उपशम। यह तो सभी कर्मों में चलेगा, सत्ता में पड़े रहना, उदय में नहीं आना, यदि उदय का समय हो तो अन्य प्रकृतिरूप टर्न होकर उदय में आना इसको कहेंगे अप्रशस्त उपशम और प्रशस्त उपशम में कर्म अपनेरूप से ही रहे हैं; सत्ता में पड़े हैं परंतु उदय में नहीं आ रहे हैं। जब उपशम सम्यक्त्व होता है तब दर्शनमोहनीय का और जब उपशमश्रेणी चढ़ता है तब चारित्रमोहनीय का ऐसा ही उपशम पाया जाता है। अपना यहां उपशम का प्रकरण नहीं है फिर भी अभी जो आपने प्रश्न पूछा न ? सदवस्था, सद्-अवस्थारूप उपशम यानी उनकी जो अवस्था जैसी है वैसी बने रहे, किनकी ? भविष्यकाल में जो पड़े हैं उनकी। वर्तमान का निषेक जो है उसके सर्वघाति स्पर्धक तो देशघाति होकर उदय में आ रहे हैं परंतु भविष्यकाल के निषेकों में जो पड़े हैं वे अपनेरूप से - सर्वघातिरूप से पड़े हैं इतना ही सदवस्थारूप उपशम का यहां अर्थ लेना है।

यह स्पर्धकों की बात हमने बहुत विस्तार से देखी भी है और थोड़ी समझने की भी कोशिश की है, हं। आपके पास पंचलब्धि पुस्तक भी है, उसकी सीडी भी है तो आप अभी यह स्पर्धक और प्रकृति दुबारा सुनेंगे तो सरल लगेगा। यही विषय जो अभी हमने लिया है, पुस्तक में से पढ़ेंगे या दुबारा सुनेंगे तो ज़रूर वह अच्छी तरह से ख्याल में आयेगा, क्योंकि हमें कुछ याद नहीं है ऐसा लगता है इसलिये यह बात कठिन लगती है। पहले याद करने की या रिपीट करने की कोशिश करने की ज़रूरत नहीं है। करणानुयोग का कितना ही विषय ऐसा है कि समझने की मुख्यता रखना है। जो हम पढ़ रहे हैं क्या उसका सही अर्थ ख्याल में आ रहा है ? यह सोचना पहले में पहले बहुत महत्व की बात है। हमारे दिमाग में कितनी सारी बातें, अभी कितनी बातें बाहर की भी याद रखनी पड़ती हैं न ! तो इसको कौन याद रखेगा ? वह बात नहीं है। करणानुयोग

में जब हम पढ़ते हैं तो गणित हो या कोई अन्य विषय हो, उसका अर्थ ही ख्याल में नहीं आता है। तो फिर हम क्या करते हैं ? चलो इसको छोड़ दो न ? चलो आगे बढ़ेंगे।

जैसे बचपन में मैं प्रथमानुयोग की कहानियां बहुत पढ़ती थी। हमारे घर में शास्त्र का भंडार है बहुत बड़ा। तो क्या करती थी ? वह स्टोरी-स्टोरी पढ़ती थी। जब तत्त्वज्ञान की बात आती थी कि मुनिराज ऐसा उपदेश दे रहे हैं तो उसको टालकर आगे बढ़ती थी। हं, ऐसा ही क्या होता है, मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ने बैठें। दूसरा, तीसरा अधिकार आया या आगे भी जहां कहीं करणानुयोग की बातें आती हैं, तो सोचते हैं 'यह क्या है ? होगा कुछ तो, चलो न अभी हम आगे पढ़ेंगे।' उसका अगर हमें सही भाव नहीं पता चलता है तो पं. टोडरमलजी वहां क्या कहना चाहते हैं वह बात समझ में नहीं आयेगी। उनके एक-एक वाक्य का, एक-एक शब्द का महत्व है। उसमें इतना वजन है और उसमें इतना गहरा भाव है वह यदि ख्याल में आये तो क्या हो जाये ! यही तो ज्ञानियों का कमाल है। पं. टोडरमलजी ने तो पहले करणानुयोग का बहुत अभ्यास किया था, उस पर ग्रंथ लिखे थे और बाद में वह मोक्षमार्गप्रकाशक लिखा है। तो उसमें भी एक-एक छोटे-छोटे वाक्यों में भी बहुत गहन अर्थ भरा है। अभी जो हम यहां विषय चलायेंगे आगे, यह विषय लेने का पहले मेरा मन नहीं था फिर भी कर्मकाण्ड में इसके ऊपर ३५ गाथायें हैं। तो इस विषय को टालकर आगे बढ़ने का भी मन नहीं हो रहा है। तो मैंने सोचा जो स्पर्धक को पचा सकते हैं तो इस विषय को भी जरूर समझेंगे, हां-हां थोड़ा सुन तो लेंगे। ऐसा नहीं कि यह एक मात्र करणानुयोग का विषय है। कोई भी विषय ले लो- द्रव्यानुयोग का, तत्त्वार्थसूत्र में भी पहले अध्याय के पांचवें सूत्र में इसी विषय को लिया है, पहले में पहले जो तत्त्वार्थसूत्र में शुरू में बताया है 'निक्षेप और नय का स्वरूप' कि किसी भी चीज़ को, किसी भी विषय को जानना है तो उसमें पहले निक्षेप करते हैं। फिर उसको प्रमाण से और नय से जानते हैं। यह निक्षेप क्या है ? देखेंगे हम। पदार्थों को सही जानना है तो नय और निक्षेपों के द्वारा प्रमाण से वस्तु को जानना चाहिये। यही जानने का उपाय है और यही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का भी उपाय है। इसलिये यहां इस कर्मकाण्ड के आधार से हम इसकी बात देखते हैं।

यहां बताते हैं, यह निक्षेप बताने के लिये उन्होंने पहले में पहले श्रोता बताये तीन प्रकार के, हां। यहां टीका में ही - मूल टीका में लिखा है। तीन प्रकार के श्रोता होते

हैं, एक का नाम है **अव्युत्पन्न -** उसका अर्थ देखेंगे; बड़े नाम से घबराने की कोई बात नहीं है। एक है अव्युत्पन्न, दूसरे का नाम है **अवगताशेषविवक्षितपदार्थ** और तीसरे का नाम है **एकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थ।** हम अपनी भाषा में देखेंगे, अव्युत्पन्न का अर्थ क्या है ? कोई जो श्रोता है तो अपनी मूर्खता से, यहां लिखा है **मूर्खपने तै** यानी अपनी ही मूर्खता से, जो विवक्षित पदार्थ यानी जो कुछ व्याख्यान चल रहा होगा, कुछ विषय हम समझ रहे या कोई सुना रहा होगा तो उस पर विचार नहीं करता है कि यह ऐसा है। सुन तो लेता है, क्या करें ? अभी सुनना पड़े न ? कभी-कभी दूसरों को दिखाने के लिये या कोई हमारे शहर में कोई प्रवचनकार आते हैं तो 'अपन को जाना चाहिये, नहीं तो समाज क्या कहेगी ?' सोचकर सुनने जाते हैं। तो कहते हैं कि यह बात ऐसी ही है ऐसी उसको कोई प्रतीति नहीं है, बस सुन लेता है तो उसको क्या कहते हैं ? *श्रोता: अनध्यवसाय।* हां, हमारी भाषा में अनध्यवसाय। मिथ्याज्ञान के तीन प्रकार कौनसे हैं ? संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय, हैं न ? तो यह अनध्यवसायवाला जो श्रोता है; जैसे कोई चल रहा था, पैर में नीचे से वह घास-तृण लगी; परंतु कुछ तो लगा, परंतु क्या लगा ? वह उसको ख्याल में नहीं आया; उसका विचार नहीं आया; उसपर कुछ गौर नहीं किया उसने; जाना नहीं यह बात नहीं है, जाना परंतु वह निर्णय सहित नहीं जाना है, उसको कहेंगे वह अनध्यवसायवाला। 'निर्णय बिना का ज्ञान' अपनी भाषा में। दूसरा जो है कि उसने जाना तो सही परंतु उसमें अभी डांवाडोल है, संशय है। यह ऐसा ही है ऐसे वह निश्चितरूप से नहीं जान रहा है और तीसरा कैसा है ? अपनी कल्पना से अन्यथा अर्थ, अन्य अर्थ लगाता है यानी वह निश्चितरूप से जान रहा है; कैसा निश्चित ? उलटेरूप से निश्चित यानी विपर्यय। जैसे जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है। दोनों पृथक् हैं परंतु वह क्या ग्रहण कर रहा है ? शरीर ही जीव है, या शरीर के बिना कैसे रह सकता है यह जीव ? यानी यह तीसरेवाला अपनी सोच से, अपनी कल्पना से शास्त्रों का अर्थ लगाता है और वह विपरीत अर्थ करता है।

कोई ऐसे भी बुद्धिमान होंगे कि उनके सामने कोई पढ़ानेवाले नहीं हैं और जैसे गुरुदेवश्री थे कि समयसार पढ़कर उन्होंने अपनी स्वयं की बुद्धि से सही अर्थ लगाया। परंतु ऐसे भी होते हैं; कैसे ? पढ़ते तो हैं और अपनी कल्पना से उसका अर्थ लगाते हैं, गलत अर्थ-उलटा अर्थ। देखो, शास्त्र स्वाध्याय करने की पद्धति क्या है ? हम तो आगम

पढ़ते हैं। अपने को पता नहीं है फिर भी पढ़कर उसका विपरीत अर्थ भी लगा सकते हैं - लगा सकने की बात है। तो सही क्या है उसको जानते नहीं और जो उसका विपरीत अर्थ लगाते हैं और वैसा ही मानते भी हैं। स्कूल में हम गणित सॉल्व्ह करते थे। तो गृहपाठ दिया जाता था न स्कूल में। तो क्या करते थे ? गणित बराबर आया कि नहीं, पुस्तक के पीछे अंतिम पृष्ठ पर लिखे हुये उत्तर देखते थे, अपना उत्तर सही है कि नहीं देखने के लिये। निलेशभाई, आपका उत्तर सही नहीं आता था तो क्या करते थे आप ? *श्रोता: दुबारा करते थे।* दुबारा करते थे। बहुत अच्छी बात है और फिर भी नहीं आया तो क्या करते थे ? दो-तीन बार ट्राय करते थे, फिर अपने ही वर्ग के कोई अन्य जो सहाध्यायी हैं उनको पूछते थे मेरा तो उत्तर बराबर नहीं आया, तेरा कैसा है ? अगर वहां भी कोई हमें सोल्युशन नहीं मिले तो क्या करते थे ? टीचर को पूछते थे। कब तक यह करते थे ? जब तक अपना उत्तर सही उत्तर से नहीं मिलता था तब तक। हम कहते इतनी कोशिश करने की जरूरत क्या है ? जैसा हमारा उत्तर आया न वैसा, वहां पुस्तक में फेरफार कर दो न ! उससे हमारी भूल तो कभी नहीं सुधरेगी, भविष्य में वह पुस्तक पढ़नेवालों की भी दिशाभूल हो जायेगी। मूलशास्त्र में जो फेरफार हुये हैं; यहां तो लौकिक गणित की बात छोड़ दो; मूलशास्त्रों में जिसने अपनी बुद्धि से, अपने राग के कारण फेरफार किया है वह तो अनंत संसार का कारण है, निगोद का कारण है। हमें अपनी बुद्धि से नहीं सोचना है, तर्क जो लगाते हैं वे सही होने चाहिये। जैसे आगम में कहा है और जैसे ज्ञानियों ने उसका स्पष्टीकरण करके बताया है उस अनुसार हमें विचार करना चाहिये।

हम क्या करते हैं ? अपना जो अनादि से जैसा विचार या अभी इस जन्म से जैसे विचार चल रहे हैं, जैसी हमारी कल्पना थी उस कल्पना के अनुसार इसका अर्थ लगाना चाहते हैं। पहली बार हम अमेरिका में गये; वहां का स्वाध्याय कैसा होता था ? किसी गांव की बात है, सब जगह नहीं चलता है रजनीभाई। तो कैसा चलता था वहां का स्वाध्याय ? ऐसा ही इक्कठा होते थे हफ्ते में एक बार और फिर कुछ दो-चार वाक्य पढ़ते थे। फिर एक-एक जन कहेंगे, 'मेरी कल्पना के अनुसार यह अर्थ होना चाहिये'; दूसरा कहे, 'नहीं-नहीं-नहीं ऐसे होना चाहिये'; तीसरा कहेगा, 'ऐसे'। हो गया उनका स्वाध्याय ! हमने बोला अपने विचार से स्वाध्याय नहीं करना है। वह भगवान ने किस

अपेक्षा से कैसी बात कही है उसकी अपेक्षा हमें जानना है। चाहे जैसे तर्क को तर्क नहीं कहते; वह भी सच्चा होना चाहिये, कुतर्क नहीं चलेगा यहां। तर्क को भी प्रमाणज्ञान में लिया है न ? स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान - सारे विषय प्रमाणज्ञान में लिये हैं। परंतु यह तर्क कैसा चाहिये ? सही तर्क चाहिये, कुतर्क से नहीं चलेगा। कैसा होता है कुतर्क ? गधे को चार पैर हैं और आदमी को दो पैर हैं इसलिये आदमी आधा गधा है- यह ऐसा लॉजिक, वहां ऐसा माल-लॉजिक नहीं चलेगा, कुतर्क नहीं चलेगा। तो हमें ऐसी ही आदत डालनी चाहिये। इसीलिये पहले सुनने की मुख्यता है। पहले सुनो क्योंकि जिसका कुछ अभ्यास नहीं है उसको कहते हैं सत् समागम से - ज्ञानियों से बात सुन लो और फिर उस पर विचार करो क्योंकि अक्षर तो वे ही होते हैं और उसका गलत अर्थ लगा दिया जाता है।

जब मैं प्रॅक्टिस करती थी तब एक दिन कॉलेज गोइंग कुछ स्टुडंटस् मेरे पास आयी। उन्होंने मुझे पूछा, आप हेअर स्पेशालिस्ट हैं न ! हमें ट्रीटमेंट चाहिये। मैंने कहा किसने बताया ? आपने बाहर लिखा है बोर्ड। अच्छा, चलो दिखाओ मुझे क्या लिखा है ? वहां लिखा था बालरोगतज्ञ यानी चिल्ड्रन स्पेशालिस्ट। हां, तो बाल के दो अर्थ हो गये। ऐसे ही एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शास्त्र पढ़ने में तो हम बहुत होशियार हैं। लौकिक में उसी शब्द का कुछ अन्य अर्थ होता है और यहां भी हम वही अर्थ लगाते हैं। इसीलिये यह निश्चय-व्यवहार के बारे में अथवा अन्य-अन्य विषयों के बारे में समाज में जो कुछ विवाद चल रहे हैं वे विवाद इसी कारण हो रहे हैं कि उन शब्दों के अर्थ जो हमारी लौकिक भाषा में होते हैं, वे ही अर्थ लोग यहां शास्त्र में लगाते हैं। वे अर्थ तो शास्त्र में लागू होते नहीं, फिर अपनी कल्पना से कुछ अन्यथा मान लेते हैं और विवाद करने लगते हैं। इसलिये जिस-जिस विषय का हम अभ्यास करेंगे उसको निक्षेप, नय, प्रमाण से बराबर यथार्थ जानना चाहिये। तत्त्वार्थसूत्र में भी यह बात बतायी है। देखो, यहां वक्ता का तीसरा प्रकार भी बताया है न कि जो विपरीत अर्थ ग्रहण करे।

ज्ञान में जो यह अनध्यवसाय है, संशय है और विपरीतता है इसको दूर करने के लिये जो उपाय बताये हैं उन्हींको कहेंगे। वस्तु में हम पहले में पहले निक्षेप डालेंगे और फिर उसको, उन-उन अंशों को जो जानेंगे उसको नय कहेंगे। तो यह निक्षेप, नय क्या होता है पहले देखते हैं। सूत्र में भी आया है, तत्त्वार्थसूत्र का जो पहले अधिकार का

पांचवां सूत्र है। तो कहते हैं **नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः,** इसका अर्थ क्या है ? यह जो निक्षेप है पदार्थों को जानने के लिये, लौकिक व्यवहार के लिये, उसमें निक्षेप करना यानी डाले जाना। क्या डालना है ? हमने कोई नाम रखा तो कहेंगे नामनिक्षेप, किसी अन्य वस्तु में उस वस्तु की स्थापना की तो कहेंगे स्थापनानिक्षेप। जैसे अभी सुबह-सुबह मंदिरजी में जाते हैं, किस भगवान की पूजा की आपने ? *श्रोताः शांतिनाथ की।* हं ? शांतिनाथ की। आपने किसकी की ? *श्रोताः वीतराग भगवान की।* वीतराग, कुछ नाम तो होगा कि नहीं होगा ? *श्रोताः वीतराग भगवान का कुछ नाम नहीं है।* वह नहीं, किस मूर्ति के सामने, किस भगवान की पूजा की ? *श्रोताः महावीर भगवान की।* महावीर भगवान की पूजा। अच्छा, शांतिनाथ की, किसीने महावीर की; तो यह महावीर अरिहंत अवस्था का नाम है कि सिद्ध अवस्था का ? *श्रोताः अरिहंत अवस्था का।* अरिहंत अवस्था का। तो हमने उस मूर्ति में भगवान महावीर की स्थापना की है। भगवान महावीर यहां विराजमान नहीं हैं फिर भी हमारे लौकिक यानी रुटीन के लिये हम भगवान महावीरवत् उनकी पूजन वगैरह सब करेंगे। जैसे वे अभी वर्तमान में तीर्थंकर के रूप में विराजमान हैं क्योंकि हमने वहां उनकी स्थापना की है, उसको कहेंगे स्थापनानिक्षेप। जब तक पंचकल्याणक नहीं हुआ था तब तक हम उनको नमस्कार नहीं कर रहे थे, उनकी पूजन नहीं कर रहे थे। तो ऐसा क्या हो गया पांच-छह दिन में कि उनकी पूजन करने लगे ? पहले तो उसको तो मूर्ति कह रहे थे, फिर उनको हम कहने लगे ये भगवान महावीर हैं। हां, प्रतिष्ठा हुयी उनकी, हमने वहां स्थापना की उनकी। इसको कहेंगे स्थापनानिक्षेप।

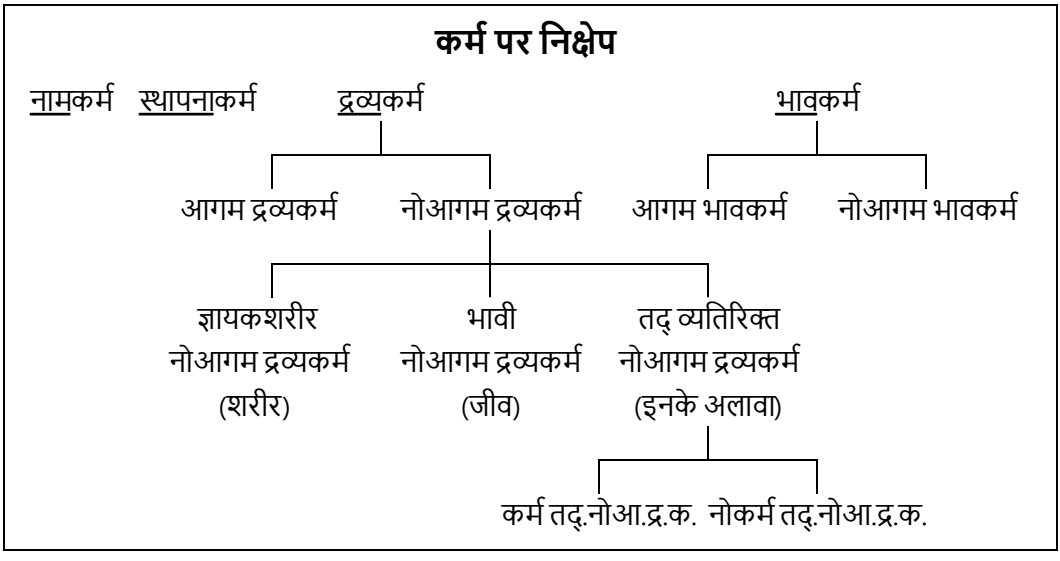
नामनिक्षेप यानी किसी वस्तु का कुछ भी नाम रखना, वस्तु क्या है ? अभी हमारे बच्चों का हम कुछ भी नाम रख देते हैं। क्या नाम रखेंगे ? *श्रोताः महावीर।* महावीर, अच्छा, महावीर नाम रखा। तो या कोई गुणवाचक नाम भी रख सकते हैं। हमने राजा नाम रखा या तेजस्वी नाम रखा तो यह ज़रूरी नहीं है कि वही गुण या वह जो कोई पोझिशन है उस जीव में हो। किसीने सर्वज्ञ नाम रखा तो क्या वह सर्वज्ञ हो गया ? परंतु नाम रखने में कोई दोष नहीं, उसको भी सही कहेंगे। वह सत्य बात है क्योंकि हम अपनी इच्छा से उस वस्तु का कुछ भी नाम रख सकते हैं। किसी व्यक्ति का, अपने बच्चे का नाम रख सकते हैं। उसको कहेंगे नामनिक्षेप, यह तो पहचानने का

एक चिन्ह है। स्थापनानिक्षेप, जैसे हम शतरंज में देखते हैं एक को हम हाथी कहते हैं, किसी को ऊंट कहते हैं, घोड़ा भी कहते हैं ? अच्छा। तो यह हमने उसका आकार नहीं होते हुये भी, उसमें उसकी स्थापना की उसको कहेंगे अतदाकारस्थापना। उसके आकार का नहीं है फिर भी हमने उसका नाम दिया है, उसमें स्थापना कर दी है। एक होती है तदाकारस्थापना जैसे भगवान का जैसा मूर्तिमंतरूप है, ऐसी मूर्ति में भगवान की स्थापना की। उसे क्या कहेंगे ? तदाकारस्थापना। एक होती है अतदाकारस्थापना। अब यह जो हां, लौंग है, चावल है, उसमें हम स्थापना करते हैं न !

दूसरा होता है द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप। यह द्रव्यनिक्षेप क्या होता है ? द्रव्य तो वही का वही है फिर भी उसके भूत या भविष्य की पर्याय से हम उसको पहचानते हैं। हमारे भावी तीर्थंकर कौन हैं पहले ?*श्रोता: श्रेणिक राजा।* श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा कब का नाम था ? जब महावीर के काल में वे यहां थे। अभी वर्तमान में कौन हैं ? पहले नरक के नारकी हैं और भविष्य काल में वे ? *श्रोता: महापद्म।* महापद्म यहां के प्रथम तीर्थंकर हो जायेंगे। तो अभी हम उनको किस नाम से पुकार रहे हैं ? *श्रोता: श्रेणिक राजा।* श्रेणिक राजा। यानी हम भूतकाल की पर्याय का नाम लेकर उनको अभी वर्तमान में पुकार रहे हैं कि यह श्रेणिक राजा हमारे भविष्य के तीर्थंकर हैं तो ऐसा कहना यह द्रव्यनिक्षेप है। जैसे अभी राजपुत्र है, अभी राजा नहीं हुआ है तो उसको राजा कहकर पुकारना। सेठ के घर में छोटा बच्चा है तो उसका नौकर उसको सेठ कहकर पुकारता है। हमने मेडिकल में जब ॲडमिशन ली थी, अभी तो कॉलेज शुरू भी नहीं हुआ था तो हमारे घर में सब हमको डॉक्टर-डॉक्टर कहने लगे। ऐसा होता है न ! तो ऐसी बात है इसको क्या कहेंगे ? द्रव्यनिक्षेप और एक भावनिक्षेप होता है जो जिस पर्यायरूप से है तभी उसको उसरूप कहना। जो राजा है उसको राजा कहना वह भावनिक्षेप हो जाता है।

ऐसे ही हमें जो कोई विषय सीखना है उसके बारे में ये चारों निक्षेप लगाते हैं। इन निक्षेपों की ज़रूरत क्या है ? तो यहां गोम्मटसार में उसको बताया है। ये जो अभी हमने तीन प्रकार के श्रोता देखे। कोई तो कुछ जानता ही नहीं उसके बारे में, निर्णय ही नहीं है। कोई जानता तो है परंतु संशय सहित जानता है और कोई जानता है तो विपरीत ही जानता है। अब ये जो तीनों ही प्रकार के दोष हैं उनको दूर करने के लिये,

देखो हम यहां से पढ़ेंगे। तो कहते हैं कि इसलिये अयथार्थ का निवारण के लिये, अयथार्थ यानी जो उसने खोटा कुछ ग्रहण किया है उसका निवारण करने के लिये; दूसरी बात यथार्थ प्ररूपणा करने के लिये - जो सही है उसको बताने के लिये; तीसरी बात संशय को दूर करने के लिये यानी संशय का नाश करने के लिये, जो सुननेवाले हैं उनके मन में कोई संशय है उसको दूर करने के लिये। तत्त्व को अवधारणे के लिये, यानी जो तत्त्व है, अवधारण करना यानी जानना, उसके लिये; ये जो हमने कर्म के भेद देखे- मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति, तो कर्म के ऊपर नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये निक्षेप लगायेंगे। कोई भी विषय हमें सीखना है, हमें सात तत्त्व जानना है, हर एक तत्त्व के ऊपर इन्हें लगायेंगे। हमें सामायिक का स्वरूप जानना है तो उसमें यह फिर नामसामायिक, स्थापनासामायिक, द्रव्यसामायिक, भावसामायिक लगाना चाहिये। कोई भी विषय हो उसके बारे में ये चार निक्षेप लगाने चाहिये। यह धवला, जयधवला में तो हर एक नया विषय जब शुरू होता है तो उस पर ये सारे ही लगाकर और घटित करके दिखाते हैं। मुझे तो ऐसा लगा यह विषय कैसे लूं मैं अभी ? थोड़ा कठिन हो जायेगा फिर भी हम जानेंगे तो सही, यह क्या कहना चाहते हैं ? *श्रोता: सुबह का टाइम है*/ सुबह का टाइम है तो फ्रेश हैं ! हां, थोड़ा तो हज़म हो जायेगा। यहां चार्ट देखना...



निक्षेपों का यहां जो स्वरूप बताया है, यहां जो निक्षेप लिखे हैं, उन्हें कर्म पर

हम लगा रहे हैं। यह कर्म पर जो निक्षेप लगा रहे हैं इसमें चार नाम लिखे हैं। ये जो निक्षेप हैं किसी भी विषय पर लग सकते हैं। तो हमने तो कर्म पर लगाया है। यहां जो नामकर्म लिखा है इसका अर्थ वह तिरानवे प्रकृतिवाला नामकर्म नहीं लेना। कर्म ऐसा नाम कहना वह नामकर्म यानी नामनिक्षेपवाला कर्म। कर्म के ऊपर जो हम नामनिक्षेप लगा रहे हैं उसका नाम यहां लिखा है, इसीलिये इसको मैंने अलग से अधोरेखित किया है; नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। यहां वह द्रव्यकर्म, भावकर्म की बात नहीं है। तो क्या है ? कर्म ऐसा नाम रखना इसको कहते हैं नामकर्म यानी नामनिक्षेपवाला कर्म। यह निक्षेप की बात चल रही है अभी। हम बच्चे का भी यह कर्म नाम रख सकते हैं; क्यों ? कर्ण रख सकते हैं तो कर्म क्यों नहीं ? तो यह नाम रखना। यह नामकर्म है या उसको प्रकृति कहेंगे उसको मल भी कहा है। पता है आपको ? कर्मों को मल कहते हैं। *श्रोता: कर्ममल।* कर्ममल। क्योंकि सिद्ध भगवान हैं वे तीन मल से रहित हैं। हां, कौनसे तीन मल हैं ? *श्रोता: द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म।* हां, वे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित हैं। द्रव्यकर्म यानी वहां द्रव्यकर्म का अर्थ है आठ कर्म। वहां भावकर्म का अर्थ है ?*श्रोता: राग, द्वेष और मोह।* राग, द्वेष और मोह और वहां नोकर्म का अर्थ है ? *श्रोता: शरीर, मन, वाणी।* शरीर, मन, वाणी।

आज हम उसके अन्य भी अर्थ आपको बतानेवाले हैं क्योंकि शास्त्र में कहीं शब्द तो वे ही होते हैं उनके अर्थ कुछ अलग-अलग होते हैं। शब्द तो हैं संख्यात और भाव तो हैं अनंत। तो अलग-अलग अर्थ के लिये, अलग-अलग मीनिंग के लिये, वे ही शब्द जब शास्त्र में आते हैं तो कहां किस अर्थ में वे प्रयुक्त होते हैं, यह जानने की जिम्मेदारी हमारी है। यहां इस हॉल की दीवार पर लिखा है न, ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, कहां ? ऊपर लिखा है, तहां समझवुं तेह। यानी जहां जो लिखा है जिस अर्थ में वहां उसी अर्थ में उसको ग्रहण करना यह हमारी जिम्मेदारी है। किसने कहा है यह ? *श्रोता: श्रीमद् राजचंद्रजी।* हां, श्रीमद् राजचंद्रजी ने।

तो यह हम जो नाम यहां देख रहे हैं नामकर्म यानी नाम निक्षेपवाला नाम। फिर स्थापनाकर्म का अर्थ है हमने मान लिया कि यह बॉलपेन हमारा कर्म है। हमने इसे चार-पांच रंगों में बताया, यह हमारा एक कर्म है कौनसा है ? यह ज्ञानावरण है, यह दर्शनावरण है, यह मोहनीय है- बता सकते हैं कि नहीं बता सकते ? हं ? जैसे हम खेल

में, बचपन में क्या करते थे ? कागज की कोई ड्रॉइंग बनाते थे - यह हमारा राजा है, यह रानी है, गुड़ियों को भी बनाते हैं कोई लकड़ी की है, कोई कपडे की बनाते हैं, कोई चित्र बनाते हैं। ये सारे क्या हैं ? स्थापनानिक्षेप हैं। कल हम आये वहां सब जगह वह शिवाजी के पुतले थे, स्टॅच्यु। ये कौन हैं ? शिवाजी महाराज हैं, शिवाजी का स्टॅच्यु नहीं कहेंगे; ये हमारे शिवाजी महाराज हैं। यह क्या हुआ ? *श्रोता: स्थापना।* यह स्थापना हुयी। उनको शिवाजी राजा कहकर पुकारना, यह स्थापना हो गयी। ये दो निक्षेप तो बहुत आसान हैं - नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप।

आगे के जो दो निक्षेप हैं हम पहले उनके नाम देख लेते हैं। यह है द्रव्यनिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप में हमने श्रेणिक राजा को याद किया था। ये श्रेणिक राजा हमारे इतने काम आते हैं, नहीं ? करणानुयोग में, ऑलवेज दो व्यक्तियों को हम बहुत याद करते हैं। भरत चक्रवर्ती और ? *श्रोता: श्रेणिक राजा।* श्रेणिक राजा। ये रोज के हमारे स्वाध्यायी हैं न ! यहां बहुत सारे आये हैं उनको पता है। जब क्षायिक सम्यक्त्व समझाना है और जब पहले नरकायु का बंध होकर फिर सम्यक्त्व होता है यह समझाना है, अन्य बहुत सारी बातें समझानी हैं तो श्रेणिक राजा हमारे बहुत काम आते हैं। जब भविष्य में तीर्थंकर होंगे, उपदेश देंगे तब लोगों का कल्याण होगा ही होगा। अभी भी हमें समझने-समझाने के लिये उनका उदाहरण बहुत उपयोगी है। यहां जो द्रव्यनिक्षेप की बात चल रही है उसके बहुत सारे भेद हैं उनको भी हम देखेंगे। यह द्रव्यकर्म है और आगे लिखा है वह भावकर्म है। यहां यह जड़ कर्म और यह राग-द्वेष-मोह ऐसा नहीं है। कर्म विषय के बारे में निक्षेपों की चर्चा चल रही है। यह जो द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप है उनको समझने के लिये, हम उनकी थोड़ी विस्तार से चर्चा करेंगे, देखो।

यहां द्रव्यकर्म के नीचे दो नाम लिखे हैं, क्या लिखे हैं ? आगमद्रव्यकर्म, इसका अर्थ लेना आगमद्रव्य निक्षेप। ये निक्षेपों के भेद चल रहे हैं। आगमद्रव्यकर्म अभी कर्म कह रहे हैं परंतु निक्षेपवाला कर्म समझना। आगमद्रव्यकर्म और दूसरा क्या लिखा है ? नोआगमद्रव्यकर्म। अभी इसको थोड़ा समझेंगे, हं, बिलकुल समझ में आवे ऐसी बात है और बहुत इंटरेस्टिंग भी है। आगम किसको कहते हैं ? सबको मालूम है जो शास्त्र हैं हमारे, उनको हम आगम कहते हैं। आगम कहो, परमागम कहो एक ही बात है। यहां आगम शब्द से पुकारा है। तो कर्म संबंधी जो आगम हैं, हमारे आगम में कर्म की बातें

अभी हम जो पढ़ रहे हैं न; कर्मकाण्ड वह क्या है ? कर्म संबंधी आगम है; तो जो कर्म संबंधी आगम का जाननेवाला जीव है परंतु अभी वर्तमान में उसमें उसका उपयोग नहीं है। वर्तमान में क्या कर रहा है ? अरे न्यूजपेपर पढ़ रहा है, परंतु वह कर्मकाण्ड का ज्ञाता है तो उस जीव को क्या कहेंगे ? आगमद्रव्यकर्म। क्या कहा ? *श्रोता: आगमद्रव्यकर्म।* उसका उपयोग क्यों नहीं है ? क्योंकि हम तो भूत-भविष्य की पर्याय की अपेक्षा बात कर रहे हैं। वर्तमान में नहीं, वह वर्तमान में जो कर्मकाण्ड का अभ्यास कर रहा है उसको हम आगमभावकर्म कहेंगे, उसे आगे चलकर बतायेंगे।

हम द्रव्यकर्म के यानी द्रव्यनिक्षेप के भेद देख रहे हैं। एक है आगमद्रव्यकर्म। किसको कहा आगमद्रव्यकर्म ? कर्म संबंधी आगम को जाननेवाले जीव को, जिसका अभी उसमें उपयोग नहीं है, उसका उपयोग अन्यत्र चल रहा है ऐसे जीव को यहां कर्म कहा। कौनसा ? *श्रोता: कर्म ?* हां, द्रव्यनिक्षेप से उस जीव को कर्म कहकर पुकारा। परंतु कौनसा कर्म ? आगमद्रव्यकर्म। तो यहां लिखेंगे आगमद्रव्यकर्म। जो जाननेवाला जीव है परंतु वर्तमान में उस कर्मकाण्ड में उसका उपयोग नहीं है; अन्यत्र कहीं है, अन्य कुछ कर रहा है या समयसार पढ़ रहा है, अभी उसके उपयोग में कर्मकाण्ड नहीं है, अन्य ग्रंथ चल रहे हैं; तो उसको हम क्या कहेंगे ? आगमद्रव्यकर्म। अब यह जो दूसरा है नोआगमद्रव्यकर्म। नोआगम यानी वह अभी जाननेवाला नहीं है, आगम को जाननेवाला नहीं है। तो आगम को जो जान नहीं रहा है ऐसा क्या हो सकता है ? एक तो जो जान रहा है उस जीव का शरीर है, वह तो कुछ नहीं जान रहा है। हम आप सब कर्मकाण्ड पढ़ रहे हैं तो हमारा सबका शरीर भी जान रहा है क्या ? नहीं, फिर भी, उस जाननेवाले जीव के शरीर को द्रव्यनिक्षेप की अपेक्षा हम कहेंगे ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकर्म। ज्ञायकशरीर यानी ज्ञायक का शरीर। जाननेवाले जीव का शरीर और उसके ऊपर हम कहेंगे नोआगमद्रव्यकर्म यह लंबा चौड़ा नाम लेंगे। क्या कहा ? फिर से। जो जाननेवाला जीव है उसको तो आगमद्रव्यकर्म कह दिया - निक्षेपवाला और जो नहीं जान रहा है आगम को ऐसा क्या हो सकता है ? तो शरीर भी नहीं जान रहा है। ऐसा भी जीव है कि अभी तक उसने जाना नहीं, भविष्य में जानेगा अगले भव में; अभी तो नहीं जान रहा फिर भी भविष्य में जो जरूर जाननेवाला है उसको तो भावी नोआगमद्रव्यकर्म कहेंगे। यह जीव है जो भविष्य में जानेगा ज़रूर, ऐसा जीव लिया है।

और तीसरा कौनसा है ? यह न जीव का शरीर है और न वह जीव है, इनके अलावा अन्य कुछ है।

द्रव्यनिक्षेप लगा रहे हैं न हम ? जो आगम को जाननेवाले और नहीं जाननेवाले में हम द्रव्यनिक्षेप लगा रहे हैं; तो उसमें क्या देखा हमने ? एक तो उस जीव का शरीर, एक तो वह जीव जो भविष्य में जाननेवाला है और तीसरा इन दोनों के अलावा, इन दोनों के अलावा और क्या हो सकता है जो शरीर भी नहीं है और जो भविष्य में जाननेवाला जीव भी नहीं है ? कर्म इटसेल्फ। कर्म कहां जान रहा है ? कर्म की बात हम जान रहे हैं, कर्म खुद कहां जान रहा है ? तो यहां तद् व्यतिरिक्तवाला जो है उसमें कर्म लेना। इसका पूरा नाम क्या है ? कर्म तद् व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म। यह कोई याद तो रहेगा नहीं फिर भी हमें यह समझना है कि किसतरह से उसके विभाजन किये हैं क्योंकि आगे जो हम विषय लेंगे वहां कर्म और नोकर्म की बात करेंगे। परंतु यह कर्म कौनसे वाला है ? वह द्रव्यनिक्षेपवाला कर्म है और यह नोकर्म यानी अभी यहां क्या लेना ? अभी यहां शरीर, मन, वाणीवाला नोकर्म नहीं लेना।

हमने देखा न एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कर्म के साथ तद् व्यतिरिक्त नोकर्म जो आया है इसका अर्थ होता है जैसे, हम लौकिक की बात करेंगे। हम क्या कहते हैं ? यह ज्ञानावरण कर्म में जो कोई क्षयोपशम में हीनाधिकता होती है तो ज्ञान में भी होती है, है न ? तो कोई डॉक्टर मिले हमसे, क्या बात करते हो ? अभी हम ॲनेस्थेशिया देते हैं या कोई ऐसा इंजेक्शन लगाते हैं। देखो, एक सेकंड में आपका ज्ञान हीन हो जाता है। होता है कि नहीं ऐसा, हं ? कोई बीमारी हो जाती है और सारा भूल जाते हैं। क्या कहते हैं उसको मालूम है ? *श्रोता : अल्झायमर।* अल्झायमर, हां आपको मालूम है, अच्छा है। यह अल्झायमर टालने के लिये एक बहुत आसान उपाय न्यूजपेपर में छपकर आया था। जैनियों ने नहीं लिखा था, अजैनियों ने ही लिखा था, किसी डॉक्टर ने। क्या है उपाय ? बता दूं ? हां, हम सब टाल सकते हैं। बच्चों को क्यों नहीं होता, हमें क्यों होता है ? अरे ! बच्चे रोज नया-नया सीखते हैं और रटते हैं, याद करते हैं। तो अल्झायमर टालना हो तो नयी-नयी चीजें याद करो कहते हैं। बोला, अच्छा है, करणानुयोग में बहुत सारा याद करने जैसा है। आप घूमने तो जाते हो न सब सुबह-सुबह ? हां, तो एक पर्चा हाथ में ले जाओ। कभी नामकर्म की प्रकृतियां याद

करो, कभी उनकी बंधव्युच्छित्ति याद करो, कभी उदयव्युच्छित्ति याद करो, ४७ शक्तियां याद करो, ४७ नय याद करो। कितना समय मिलता है और हमें ऐसा लगता है हमें कोई समय ही नहीं है, कहां से निकालें ? क्यों भाई ? क्योंकि बुद्धि को भी कुछ नये प्रमेय, कुछ नये विषय चाहिये। देखो, हम बड़े हो जाते हैं न ! तो क्या होता है ? रुटीन लाइफ शुरू हो जाती है। भले वह डॉक्टर हो, इंजीनियर हो या कोई भी बिझनेसमन हो, सबकी अपनी वही रुटीन क्योंकि उसमें इतना उसका दिमाग चलाने की जरूरत नहीं है। वह तो डेली रुटीन है, पैसा तो आता रहता है और इतना उसमें ज्यादा सोचने की बात नहीं होती है। तो क्या होता है ? जंग लग जाता है, जंग लग जाता है दिमाग को। तो कोई डिप्रेशन के शिकार हो जाते हैं। कोई और क्या- क्या बातें होती हैं ? मैं भी विषय निकला तो बता देती हूं।

यह जो जैनतत्त्व परिचय पुस्तक, बहुतों ने मराठी, हिंदी और गुजराती में पढ़ी होगी। तो इनके एक मित्र हैं, हिन्दू हैं और मैं ब्राह्मण हूं ऐसा पहले से ही बहुत अभिमान हैं उनको और ऐसे नास्तिक हैं कि वे अपने देवी-देवताओं की भी बहुत ऐसी, जिसको कहेंगे न टीका-टिप्पणी करें और उनकी दुकान के आजू-बाजू में तो सारे व्यापारी हैं। आजू-बाजू में सारा जैन समाज है तो उनकी भी टीका- टिप्पणी करें। यानी किसी भगवान को उसने नहीं छोड़ा था और किसी भक्त को भी नहीं छोड़ा था। यानी जो कोई साधू के पीछे चले जाते हैं, वहां जो कुछ-कुछ बातें चलती हैं तो हर एक के ऊपर कुछ न कुछ ऐसी उसकी टिप्पणी चलती थी। फिर भी थोड़ा उसको भी डिप्रेशन चालू हो गया। क्या करे ? बच्चे सारे अमेरिका में गये, वहीं सेटल हो गये। अभी कोई रहा नहीं यहां। धंधा है बड़ा, क्या करेंगे ? तो वह डिप्रेशन का शिकार हो गया। एक दिन हम ऐसे ही उनके साथ बात करते थे। हमें जैनतत्त्व परिचय पुस्तक का अंग्रेजी ट्रान्स्लेशन करना था और उसने बोला मैं मदद करूंगा प्रोव्हाइडेड एक कंडिशन है। क्या है ? मुझे यह जैन की पुस्तक आप दोनों सिखायेंगे तो मैं इसका ट्रान्स्लेशन करूंगा। पहले तो उसको लगता था कि यह क्या ये किसके पीछे लग रहे हैं। मैंने कहा जैनिझम सीखो तो आप अपना धर्म भूल जाओगे। मुझे ऐसा नहीं सीखना, क्यों ? मैं पहले वैदिकधर्म का पूरा अभ्यास करूंगा फिर आपके पास आऊंगा। जब हम दोनों ने उसको सिखाना प्रारंभ किया रोज़ चार घंटे। हम उसको सिखायें चार-चार लाइन, दस-

दस लाइन। श्रोता एक, सिखानेवाले हम दोनों और जब तक उसको सही समझ में नहीं आता था वह एक कदम आगे नहीं बढ़ता था। यह यहां ऐसा ही क्यों लिखा ? यह त्रिकाली क्यों लिखा ? यह ध्रुव क्यों लिखा ? यह नित्य क्यों लिखा ? अभेद क्यों लिखा ? एक-एक वाक्य के लिये ऐसा अड़कर बैठता था कि उसकी पूरी बात, दो-दो लाइन समझाने के लिये एक-एक घंटा लेते थे हम और फिर वह अंग्रेजी में लिखता था। यह केवल प्युअर ट्रान्स्लेशन नहीं है, एक्स्प्लनेटरी ट्रान्स्लेशन है। जब तक वह लिखता था, ठीक करता था तब मैं रसोई में कुछ कर लेती थी क्योंकि रोज सुबह ८:३० से १० तो हमारा सामूहिक स्वाध्याय चलता था और बाद में १० बजे वह आकर बैठे २ बजे तक, तो रसोई कब करें ?

पं. टोडरमलजी की तो कथा मालूम है, उनकी मां ने तो बिना नमक का भोजन खिलाया था। परंतु हमने क्या-क्या पचाया है पता नहीं है। अपनी रसोई भी जली कटी होती थी। तो उसका लिखने का काम चले फिर हम उसको सुधारें। कषाय लिखना है तो उसने दस लाइन लिख दी। कषाय क्या होता है ? कर्म क्या होता है ? राग क्या होता है ? द्वेष क्या होता है ? पुण्य क्या होता है ? पाप क्या होता है ? पाप के लिये क्या अंग्रेजी शब्द है भाई ? *श्रोता: सिन।* सिन और पुण्य के लिये ? *श्रोता: करते ही नहीं।* करते ही नहीं, अच्छा। यह गुड़ डीड कहेंगे, वह डीड तो शरीर की क्रिया है। यानी हम जो क्रिया और परिणाम इसका जो डिफरन्स करते हैं; शरीर की क्रिया- जड़ की क्रिया अलग है और परिणाम अलग हैं; वह अंग्रेजी में नहीं कह सकते एक शब्द में। तो उसके लिये उसने विस्तार से सब लिखा है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि जब उसने सारा तत्त्वज्ञान सीखा तो उसका जो डिप्रेशन था वह सब चला गया। हां, उसकी वाइफ तो बोलती है क्या किया आपने ? जैसे कॉलेज गोइंग स्टुडंट होते हैं वैसे ये बहुत उत्साही हो गये हैं। क्या-क्या हो रहा है ! उसके सारे रिश्तेदार भी कहने लगे कि यह इतना नास्तिक आदमी और इसने ऐसी उत्तम किताब लिखी है। आपने तो देखी हैं न ? अंग्रेजी ट्रान्स्लेशन। हां, यह विषय क्यों निकला यहां ? अल्झायमर से, अच्छा। तो यहां जो हम देख रहे थे द्रव्यकर्म के यानी द्रव्यनिक्षेप के भेद देखे हमने।

द्रव्यनिक्षेप के दो भेद होते हैं - आगमद्रव्यनिक्षेप और नोआगमद्रव्यनिक्षेप। आगमद्रव्यनिक्षेप उस जीव को कहते हैं कि जो उस आगम का अभ्यासी है परंतु वर्तमान में अन्य आगम में कहो या अन्य कहीं उसका उपयोग लगा है। नोआगमद्रव्यनिक्षेप किसको कहते हैं ? आगम को जो जाननेवाला नहीं है। तो आगम

को नहीं जाननेवाला कौन हो सकता है ? उस जीव का शरीर या वही जीव जो भविष्य में जाकर जानेगा; अभी तक नहीं जान रहा है और इनके अलावा अन्य कोई चीजें। वे क्या हो सकती हैं ? कर्म भी हो सकता है और नोकर्म भी हो सकता है। नोकर्म में कोई भी चीज हो सकती है जो उस कर्म के लिये कार्यकारी हो सकती है। मेरी भाषा में उसका एजंट होता है। यह कैसे एजंट होता है उसको देखेंगे। पहले हम यह चार्ट पूरा करेंगे न ! फिर ये कर्म के नोकर्म क्या होते हैं उनकी बात देखेंगे।

जैसे हमने देखा है ज्ञानावरण की हीनता हुयी तो सामने क्या हुआ ? किसी डॉक्टर ने इंजेक्शन लगाया, उससे बात निकली थी न अपनी ? हां, और क्या हो गया ? मोहनीय के लिये क्या निमित्त मिल गया ? उसकी मति भ्रमित हो गयी तो उसने नशा किया, मद्य पी लिया तो वह भ्रमित हो गया ऐसा भी देखते हैं हम। या अन्य-अन्य ऐसा कोई भी हम उसका उदाहरण के तौर पर बता सकते हैं। सातावेदनीय में ? सातावेदनीय कर्म का नोकर्म यानी उसका एजंट कौन है अभी बाहर ? या तो साता का या असाता का जो उदय- कभी साता का भी, कभी असाता का भी होता रहता है। यहां असाता का उदय हो रहा है, वह भूख लगी बहुत तो क्या खाना खाने से वह असाता का साता हो जाता है ? नहीं, वहां साता का उदय हो जाता है तो उसके बाह्य में कुछ एजंट मिल जाता है ऐसा। क्या हुआ वहां ? उसे खाना मिल गया। ऐसे हर एक में लगाना। रोग आया था, असाता का उदय है। तो क्या डॉक्टर की गोली से असाता का साता हो जाता है ? नहीं, यदि उसका साता का उदय होना है तो उसको डॉक्टर भी सही मिलेगा, गोली भी सही मिलेगी और असाता का उदय होना है तो डॉक्टर तो सही है परंतु क्या हुआ ? ॲलर्जी हो गयी उसको, दवा भी उसने सही दी, उसको ॲलर्जी आ गयी। तो ये जो बाह्य में कुछ कारण मिलते हैं जो हमारे कोई कर्म नहीं हैं उनको यहां नोकर्म कहा है। हर एक कर्म का नोकर्म होता है। तो उसकी तो चर्चा हम करेंगे अभी।

अभी तो हम इसको देख रहे हैं। ये भावकर्म जो हैं उनमें भी ऐसे ही भेद हैं; भावनिक्षेप जो है उसमें भी आगमभावनिक्षेप और नोआगमभावनिक्षेप ऐसे दो भेद हैं। आगमभावनिक्षेप किसे कहेंगे ? जैसे द्रव्य में हमने लगाया था न द्रव्यनिक्षेप में। आगमद्रव्यनिक्षेप किसको कहा ? जो आगम का ज्ञाता है, परंतु उपयोग अन्यत्र है। अब भाव में जो आगम लगा रहे हैं। आगमभाव में क्या लगाना ? आगम का ज्ञाता और उपयोग उसी में। अभी हम कर्मकाण्ड का अभ्यास कर रहे हैं, हमारा उपयोग इसीमें है तो हम आगमभावकर्म हो गये; हां, उस जीव को ही कहेंगे यहां पर और जो अन्य हैं

आगम का ज्ञाता भी नहीं है और जो अन्य चीजें हैं उनको नोआगमभावकर्म कहेंगे। अब इसके बहुत सारे और भी भेद हैं उसकी तो चर्चा नहीं करेंगे। जैसे ज्ञायकशरीर बताया हमने; भूतकाल का - लास्ट भव में जो कोई शरीर छोड़कर आया उसको भी कहेंगे, वर्तमान के शरीर को भी कहेंगे और यही जीव जो ज्ञाता जीव आगामी जो शरीर धारण करेगा उसको भी कहेंगे। अब जो छोड़कर आया, किसतरह से छोड़ा था उसकी भी चर्चा है इसमें। उसने आयु पूरी होने पर वह छोड़ा था जिसको हम **च्युत** कहेंगे। **च्यावित** यानी दूसरे किसीने उसको मारा है या रोग से मरा है या कोई अन्य व्यक्ति ने उसको गोली मार दी, जो कुछ है उसको च्यावित कहेंगे और **त्यक्त** यानी स्वयं संन्यासपूर्वक उसका त्याग किया है तो उसको कहेंगे त्यक्त। अभी उसके भी बहुत सारे भेद हैं न ! इंगिनीमरण, प्रायोपगमन, भक्तप्रत्याख्यान वगैरह तो ये ऐसे जो विस्तार से भेद बतायें हैं वो हम उसमें नहीं जायेंगे परंतु वे क्या हैं ? उनके चार्ट-वार्ट सब बनाये हैं इसमें और कोई भी नया विषय होता है न धवला में है, जयधवला में उस पर ये सारे ही निक्षेप हर एक विषय पर यह द्रव्यनिक्षेप, यह भावनिक्षेप वगैरह सब घटित करते हैं; नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव-निक्षेप, इसको कहेंगे निक्षेप।

निक्षेप पदार्थ में होते हैं और नय ज्ञान में होते हैं। जो ज्ञेयपदार्थ हैं उनमें हम लोकव्यवहार के लिये निक्षेप लगाते हैं। जैसे हमने इसका नाम रख दिया, यह क्लिप है। ऐसे ही वह जो कोई पदार्थ है जिसको हम जान रहे हैं। हमें तो तत्त्वों का अभ्यास करना है, उन तत्त्वों में ये सारे निक्षेप रखेंगे और फिर उनको जाननेवाला जो ज्ञान है, एक-एक अंश को जानेगा उसको हम नय कहेंगे और संपूर्ण जानेगा उसको हम प्रमाण कहेंगे। तो अभी तो हमारा न्याय का विषय तो है नहीं है फिर भी हम जो यहां कर्म-नोकर्म का विषय जानना चाहते हैं उसकी थोड़ी अभी शुरुआत करते हैं क्योंकि चौंतीस-पैंतीस गाथाओं द्वारा तो यही समझाया है। तो कौनसे कर्म का कौनसा नोकर्म है ? अपनी भाषा में क्या है ? कर्म का बाह्य में कौन एजंट है ? उसको हम यहां नोकर्म कह रहे हैं। क्योंकि कर्म तो दिखायी नहीं देते हैं परंतु कर्म का कार्य तो दिखायी देता है। तो उस कार्य में जो कोई बाह्य निमित्त अनुकूल दिखायी दे रहा है, वह तो हमें नहीं दिखायी देता है। हमें क्या लगता है ? देखो, उस डॉक्टर के पास गया तो अच्छा हुआ कि नहीं हुआ ? हम तो हमेशा निमित्तों का ही विचार करते हैं और निमित्तों की ही भाषा बोलते हैं। परंतु उसका असली कारण यहां कर्म है। कर्म के उदय से ये बातें बन रही हैं। परंतु हमें जो लौकिक में, बाह्य में जो कार्य दिखायी देते हैं जो कोई उसका कारण दिखायी देता है। किसी डॉक्टर की दवाई है या अन्न खाने से हमारी भूख मिट

गयी है या जो अन्य-अन्य वस्तुयें होती हैं। देखो, अभी पंखा, एसी शुरू किया तो कैसा अच्छा लग रहा है कि नहीं लग रहा है ? उसके पहले तो कितनी तकलीफ हो रही थी।

ये जो सारी बातें हैं, ये जो बाह्य में दिखायी देते हैं परंतु वे असली कारण नहीं है। हमने जो कर्म बांधे थे अपने परिणामवश, उन कर्मों के उदय अपने स्वयं से हो रहे हैं और जब कर्म का उदय है तब बाह्य अनेक वस्तुओं में अपना-अपना कार्य बन रहा है। तो किसी पर अनुकूल होने का आरोप आता है। निमित्त की परिभाषा क्या है ? हां, कार्य जिसमें हो रहा है परंतु अन्य जो पदार्थ है वह स्वयं तो उस कार्यरूप से परिणमित नहीं हो रहा है परंतु उस कार्य के होने में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता है। वह भी आरोप आता है, अनुकूल होता है ऐसा नहीं कहा। अनुकूल होने का आरोप आता है उसको हम निमित्त कहते हैं। तो कर्म के उदय में निमित्तरूप बाह्य अनेक पदार्थ हो सकते हैं। जैसे यहां उदाहरण के तौर पर एक-दो हम कहेंगे यहां गाथाओं में भी बताया है। तो उसको कहेंगे उस ज्ञानावरण का वह नोकर्म है, दर्शनावरण का वह नोकर्म है, मोहनीय का वह नोकर्म है इसतरह से बातें आयेंगी। तो हम देखेंगे उसको, बहुत इंटरेस्टिंग है विषय। हां देखो, ये जो हैं, इनको कहेंगे कर्म के नोकर्म, हां, ये कर्म के नोकर्म। मेरी भाषा में कर्म के जो एजंट हैं। तो यहां यह जो नोकर्मरूप वस्तु क्या है जो कर्म के समान दिखायी दे रही है बाह्य में। कर्म का कार्य तो है नहीं यह, परंतु कर्म के कार्य के लिये जो बाह्य कोई अनुकूल वस्तु जिसको हम निमित्त कह रहे हैं ऐसी जो वस्तु उसको कहेंगे यह नोकर्म। नोकर्म का पूरा नाम क्या है मालूम है ? नोकर्म तद् व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म; इसको हम शॉर्ट में कह रहे हैं नोकर्म। यह शरीर, मन, वाणीवाला नोकर्म नहीं है। इसमें कोई भी वस्तु पर आरोप आ सकता है - पंखे पर आ सकता है, घर पर आ सकता है।

कुछ भी वस्तु जो है यहां कर्म के उदय में, वहां कर्म का जो कार्य हो रहा है। कर्म के कार्य में बाह्य उसमें अनुकूल होती हुयी जो वस्तु दिखायी देती है; वह काम नहीं करती, कर्म का कार्य तो कर्म में हो रहा है। फिर भी उसके उदय में जो अनुकूल लगती हुयी बाह्य वस्तु है उसको हम कहेंगे उस कर्म का नोकर्म। *श्रोता: एजंटवाला नोकर्म है।* हां, वह एजंट है नोकर्म। तो हम देखेंगे कौन-कौनसे हो सकते हैं ? *श्रोता: १४८ के नोकर्म होते हैं ?* हां, हर एक के अपने-अपने। १४८ प्रकृतियां हैं न ! तो उनके अपने-अपने सारे एजंट हैं। तो थोड़ी पिछली बातें यहां देखेंगे हम। शास्त्र के अनुसार, मूलगाथाओं में ये सारे बतायें हैं। हां, अभी मूलप्रकृतियों में पहले बतायेंगे हम। तो

ज्ञानावरण का नोकर्म, एक-एक उदाहरण दिया है। हम तो हमारे लौकिक में जितने मालूम हैं वे सब लगा सकते हैं इसमें। ज्ञानावरण कर्म का नोकर्म बताया है देवता के मुख पर वस्त्र यानी क्या ? किसी वस्तु पर वस्त्र डाल दिया तो उस वस्तु का ज्ञान नहीं हो रहा है। तो क्या कहेंगे वहां ? वह तो ज्ञान का हीनतारूप कार्य हो रहा है। वह कार्य तो जीव की अपनी उपादान से हो रहा है। उसमें निमित्त कौन है ? ज्ञानावरण कर्म का उदयरूप जो कुछ कार्य चल रहा है, क्षयोपशम चल रहा है, वह है और उस कर्म का निमित्त कौन है बाह्य में ? वह तो वस्तु पर वस्त्र डाल दिया तो वस्तु दिखायी नहीं दे रही है। उसको हम कहेंगे यह ज्ञानावरण का नोकर्म है। समझे ? हमें तो कारण का सही अंदाजा लगाना है, निर्णय करना है; कुछ बदलना नहीं, कुछ करना नहीं है। प्रत्येक कार्य उपादान से होता है। जीव की पर्याय-जीव की योग्यता से, कर्म की अवस्था-कर्म की योग्यता से और बाह्य वस्तु की अवस्था-बाह्य वस्तु की अपनी योग्यता से होती है। इस विश्व में प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है फिर भी जो निमित्त दिखायी दे रहा है, भासित होता है, जिसको कहेंगे निमित्त-नैमित्तिक संबंध उसका ज्ञान कराया जाता है।

हम तो बाह्य निमित्त की ओर ही देखते हैं। गुस्सा क्यों आया ? बच्चों ने हमारी जो कही हुयी बात नहीं मानी। हमने बहुत समझाया शिबिर को चलो, नहीं आये तब हमें गुस्सा आ गया, है न ! ये हमारे पड़ोसी बहुत तकलीफ देते हैं इसलिये हमें गुस्सा आया। तो हमने किसको माना अपने गुस्से का कारण ? बाह्य चीजों को माना। क्या यह सही बात है ? अगर निमित्त को ही ढूंढ़ना है तो हम कहेंगे यह क्रोध नाम का जो कर्म है उसका उदय यहां चल रहा है और उससे गुस्सा आया। परंतु यह भी निमित्त का कथन है। निमित्त क्यों समझना ? क्योंकि सच्चा निमित्त कौन है इसका भी हमको ज्ञान नहीं है। निमित्त तो कुछ और है, कर्म का निमित्त है, हमने बाह्य अन्य किसीको निमित्त मान लिया। किसी व्यक्ति को हमने अपने गुस्से का कारण मान लिया, अपनी असुविधा का कारण हमने किसी व्यक्ति को नक्की कर दिया अपनी कल्पना में, तो उसके साथ हमारा फिर वह राग-द्वेष का प्रकरण चलता रहता है और नये-नये राग-द्वेष करके नये-नये बंध होते रहते हैं। परंतु जब पता चलेगा ये जो कर्म बांधे हैं न, किसने ? हमने ही बांधे, अपने परिणामों से; तो उसका उदय जब आ रहा है तो उसका निमित्त बन रहा है और हमें क्रोध आ रहा है, क्रोध आ रहा है वह अपनी अज्ञानता के कारण। अपनी मिथ्यामान्यता के कारण। तो हम उपाय कहां करते हैं ? *श्रोता: बाह्य में।* बाहर करते हैं एजंट के साथ, हां। कर्म में भी कुछ नहीं कर सकते हैं, न एजंट में कुछ कर सकते हैं। परंतु सारी हमारी कल्पनायें, विचार सब उसके ऊपर चलते हैं और ये जो

कोई बाह्य संयोग दिखायी दे रहे हैं उन्हींको हम चेंज करने में लगे रहते हैं और वे नहीं सुधरते क्योंकि पर वस्तु अपनी इच्छानुसार थोड़े ही परिणमित होती है ? हम और चिंता में डूब जाते हैं या गुस्सा और बढ़ता चला जाता है।

परंतु जब निमित्त का सच्चा ज्ञान हो जाता है, 'अरे ! यह तो कर्म के उदय का कार्य है।' तो कर्म के उदय का कार्य है तो क्या करना ? उसको कैसे दूर करना ? हमें यह निर्णय करना है कि यह कर्म के उदय का कार्य है, मेरा थोड़े ही है ? इसमें क्या है, ये तो मेरेसे भिन्न हैं न ! हमें दुःख कब होता ? ये मेरे अपने होते और उनमें कुछ बिगाड़ हो जाता तो मुझे दुःख का कारण है। हमने दो खाते खोले थे कि नहीं ? तो गुस्सा आता है तो हम क्या करते हैं ? वह सामनेवाला, वह जो हमारा कर्म का एजंट है उसको दूर करना चाहते हैं। फिर ज्ञान हुआ कि यह तो कर्म के कारण गुस्सा आ रहा है। अरे क्या करे, हमारा कर्म ऐसा है ! हम थोड़े ही गुस्सा करना चाहते हैं। हम बहुत शांत स्वभावी हैं परंतु यह हमारा कर्म है न उसका उदय आ रहा है इसलिये हमें गुस्सा आ रहा है। यानी हम तो महंत बनना चाहते हैं। तो कैसा निर्णय करना है ? कि यह हमारे ही अपने परिणामों से बांधा कर्म अभी उदय में आ रहा है। अभी जो वर्तमान में राग-द्वेष हो रहे हैं यह मेरा अपराध है परंतु यह मेरा कायमी स्वरूप नहीं है। मेरा जो त्रिकाली भगवानआत्मा है, हृदय की बात आती है न ! जब गुरुदेवश्री प्रवचन में भगवान आत्मा कहते हैं तो उपयोग अंदर ही जाना चाहिये भगवान आत्मा में। परंतु हम तो सुनकर अच्छा-अच्छा करते रहते हैं। तो यह जो मैं हूं कायमी और ये रागादि मेरे से भिन्न हैं ऐसा जानना है। कर्मों को भी क्यों जानना है और निमित्त को भी क्यों जानना है ? यही तरीका है। हम यह कर्म के नोकर्म और भी देखेंगे।

ये जो कर्मों के नोकर्म हैं तो हमें इन निमित्तों का ज्ञान करना है। निमित्तों का ज्ञान करते हैं। न उनको जुटाना है, न हटाना है, न कुछ करना है। सच्चा निमित्त का ज्ञान होता है और श्रद्धा कैसी होनी चाहिये ? निमित्त से कुछ नहीं होता है। निमित्त का ज्ञान भी होना चाहिये क्योंकि जो है उसका ज्ञान नहीं करेंगे तो ज्ञान खोटा हो जायेगा और यदि उससे हमारा कार्य हो रहा है ऐसा मानेंगे तो श्रद्धा खोटी हो जायेगी। ज्ञान भी सही हो जाना चाहिये। तो सही ज्ञान के साथ सही मान्यता हो सकती है। ज्ञान खोटा होता रहे और ज्ञान खोटा होने के कारण हम कुछ भी मानते रहे, तो वह सही मान्यता नहीं कहलायेगी। इसकी विशेष चर्चा हम आगामी अपने स्वाध्याय में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

८. कर्मों के नोकर्म

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। गोम्मटसार का ही दूसरा एक नाम है। इसीको पंचसंग्रह ग्रंथ कहते हैं। तो इसकी जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका है उसके आधार से हम कर्म संबंधी कुछ विशेष जानकारी ले रहे हैं। सुबह जो हमने कर्म विषय पर निक्षेप लगाये थे तो उनको दोहराते हुये हम आगे बढ़ेंगे। विषय नया है और उसके जो भेद-प्रभेदों में कहां चले गये पता नहीं चला। तो बहुतों ने बताया कि थोड़ा दुबारा लेते हैं तो बात हमारी समझ में आ जायेगी। किसी भी विषय को समझना है तो पहले उस विषय में हम निक्षेप लगाते हैं और फिर उन निक्षेपों की अपेक्षा वह ज्ञान भी अलग-अलग अंशों को जानता है।

संपूर्ण वस्तु को सभी अँगल्स के साथ जानना उसको कहेंगे प्रमाण और किसी एक अंश की अपेक्षा, पूरी वस्तु को उस अंशरूप से जानना उसको कहेंगे नय, पूरी वस्तु को उस अंशरूप जानना। उसके लिये कंडिशन आवश्यक है, प्रमाण से जानी हुयी वस्तु के किसी एक अंशरूप से वस्तु को देखना यानी उसने सभी अँगल्स को स्वीकार किया है, जाना है परंतु अभी किसी एक अपेक्षा लगाकर पूरी वस्तु उसरूप हम देख रहे हैं। ये तो नय के भेद हैं, उसके भेद-प्रभेदों में हमें अभी नहीं जाना है। हम यहां निक्षेपों की चर्चा कर रहे हैं। निक्षेप यानी जो हम जान रहे हैं वस्तु, उस वस्तु में हम कुछ भेद पाड़ेंगे, उसके कुछ अंश करेंगे और उसके द्वारा उस वस्तु को जानेंगे।

वस्तु का - उस विषय का कुछ नाम रख देना, तो उसको कहेंगे नामनिक्षेप। किसी अन्य वस्तु में उस वस्तु की स्थापना करना, जैसे किसी चित्र में, किसी लकड़ी में, किसी वस्तु में, 'यह वह है' ऐसी कल्पना करके उस वस्तु को स्थापित करना स्थापनानिक्षेप है। जैसे पहले हम ऐसी कहानियां सुनते थे। सात भाई थे और उनकी शादी करने के लिये सात कन्याओं को लाया गया। छोटा भाई तो युद्ध करने के लिये गया था। तो क्या किया ? उसके बदले में वहां तलवार रखी और उसकी शादी कर दी ! यह ऐसा भी सुनते हैं न ? कहीं पूजा-विधान में कुछ कारणवश पत्नी को नहीं आना है तो उसके स्थान पर एक सुपारी रख देते हैं। तो यह स्थापनानिक्षेप हुआ।

आजकल चलता है न इ-मॅरेज, चलता है कि नहीं चलता है ? वर है अमेरिका

में, वधू है यहां पर और कॉम्प्यूटर द्वारा ऑनलाइन उनकी शादी-ब्याह भी हो जाता है ! क्यों ? यहां तो जो हम देख रहे हैं वह तो हुआ स्थापनानिक्षेप। अब यह द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप में बहुत गड़बड़ी चल रही है। द्रव्यनिक्षेप में ऐसा समझना कि उसी द्रव्य की बात कर रहे हैं या उसी विषय की बात कर रहे हैं। परंतु उसको हम या तो भूतपर्याय की अपेक्षा या भविष्य की पर्याय की अपेक्षा जानते हैं। उसको उपचार से वर्तमान में कहते हैं - वर्तमान में उसका उपचार करते हैं। तो उसको हम द्रव्यनिक्षेप कहते हैं, यह तो साधारण परिभाषा है और भावनिक्षेप में क्या है ? वस्तु उसरूप से वर्तमान में है उसको उसीरूप से समझना वहां पर, यह समझना तो ज्ञान की पर्याय में होगा परंतु उस वस्तु में वह निक्षेप डालना। उसको कहेंगे हम भावनिक्षेप।

भावनिक्षेप वस्तु की वर्तमान पर्याय में होता है जैसे पूजा करते हुये राजा को पुजारी कहना, यह कहना और जानना तो नय में होता है। उस नय का नाम कोई कहेंगे ? यहां बहुत सारे अभ्यासी बैठे हैं। *श्रोता: नैगमनय।* हां, नैगमनय तो नहीं कहते, एक-एक जन सबका नाम ले लो न ! तो मैं बताऊंगी यह सही है।*श्रोता: समभिरूढ़।* समभिरूढ़नय भी नहीं है। *श्रोता: एवंभूतनय।* एवंभूतनय; एवंभूतनय उस समय उस पर्यायरूप से वह कार्य कर रहा है। मैंने बोला न ? सात जन सात नाम ले लो न ! तो हो जायेगा अपना कार्य। यहां उसकी बात हम गौण रखेंगे। हम नयों के, उसके विषय में नहीं उलझेंगे, हम निक्षेपों की बात कर रहे हैं। हमें द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप समझना है। वह भी किसी विषय पर लगाकर देखना है। सामान्य से द्रव्यनिक्षेप क्या होता है पूछेंगे, तो हम जो कोई आगामी आनेवाली पर्याय को भी हम वर्तमान में उपचार करते हैं। जैसे हम किसीके घर गये, लॉक था घर को, तो पडौसी से पूछा कहां गये हैं ? वे शिखरजी गये हैं। वे कहां गये थे ? अभी तो स्टेशन पर भी नहीं पहुंचे हैं। कहां गये ? शिखरजी गये। या अभी हम कुकर की तैयारी कर रहे हैं, अभी हम चावल चढ़ानेवाले हैं, उसकी तैयारी में हैं। किसीने पूछा क्या कर रही हो ? *श्रोता: भात बना रही हूं।* भात बना रहे हैं, सबको पता है। रोटी के लिये कोई आटा निकाल रही है। उसे पूछा 'क्या बना रही हो ?' मैं रोटी बना रही हूं। यह क्या हुआ ? यह द्रव्यनिक्षेप है क्योंकि अभी कार्य शुरू हुआ है या अभी अधूरा है या अभी शुरू करनेवाले हैं, फिर भी हम वह कार्य कर रहे हैं ऐसा जो कहते हैं वह द्रव्यनिक्षेप से हम कहते हैं। वह होता है ऐसी

बात नहीं है। उस निक्षेप से हम उसको ऐसा समझ सकते हैं और भावनिक्षेप से जब उसरूप पर्याय वर्त रही है, उस समय उसको वैसा समझना, वैसा उस द्रव्य में निक्षेप करना वह होता है भावनिक्षेप। अभी यहां हम उसके थोड़े भेद देख रहे हैं।

सामान्य से निक्षेप क्या होते हैं ? नामनिक्षेप है, स्थापनानिक्षेप है, द्रव्यनिक्षेप है और भावनिक्षेप है। ये ज्ञेय पदार्थों में होते हैं। ये जो निक्षेप हैं वे ज्ञेय में किये जाते हैं और नय हैं वे ज्ञानपर्याय में होते हैं। निक्षेपों को जाननेवाला वह नय होता है। हैं न ? नय तो ज्ञान में होते हैं और निक्षेप तो वस्तु में होते हैं जिसको हम जान रहे हैं। यह उसमें मूलभूत फर्क है। तो यह जो हम जान रहे हैं, वस्तु हो या कोई विषय हो उसको जानने की अपेक्षा यह नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप समझना तो आसान है। हमें तो यहां द्रव्य और भाव में कुछ घोटाले हो रहे हैं। वह द्रव्यनिक्षेप जो है उसमें भी बहुत भेद-प्रभेद हैं। तो उसकी दुबारा चर्चा करतें हैं।

हमने यहां कर्म विषय पर लिया। अभी कोई अन्य विषय पर ले सकते हैं हम। जैसे सामायिक संबंधी हमको जानकारी चाहिये तो हम उस पर द्रव्यनिक्षेप लगायेंगे। यानी द्रव्यसामायिक किसको कहना ? तो उसमें हम पहले में पहले दो भेद करेंगे, आगम और नोआगम। कौनसे दो भेद हैं ? *श्रोता: आगम और नोआगम।* आगम और नोआगम। उसको हम कहेंगे आगमसामायिक। कौनसा हुआ ? आगम द्रव्यसामायिक यानी सामायिक पर हमने द्रव्यनिक्षेप लगाया है और उसका आगमवाला भेद है और दूसरा कौनसा है ? *श्रोता: नोआगम द्रव्यसामायिक।* नोआगम द्रव्यसामायिक। यह आगम और नोआगम क्या होता है ? सामायिक संबंधी जो आगम हैं; ये सारे चौदह प्रकीर्णक हैं न, उनमें वह सामायिक नाम का एक प्रकीर्णक है। प्रकीर्णक किसे कहते हैं ? अभी हुयी न ज्ञानमार्गणा ? बोलो अश्विनभाई। प्रकीर्णक किसको कहा था ? यह अंगबाह्य श्रुत को; श्रुतज्ञान में एक तो बारह अंग हैं और अंगों के अलावा जो कुछ रचना है वह क्या है ? अंगबाह्य रचना है जो चौदह प्रकीर्णकों में विभाजित है। उसमें एक सामायिक नाम का प्रकीर्णक है यानी वह आगम है, सामायिक संबंधी आगम है। अपनी भाषा में सामायिक संबंधी जो कोई हमारे ग्रंथ हैं, उनको जो जीव जान रहा है उस जाननेवाले जीव को हम आगमसामायिक कहेंगे। परंतु आगम द्रव्यसामायिक की बात है इसलिये जाननेवाला तो है परंतु अभी वर्तमान में उसका उपयोग उसमें नहीं है।

वह सामायिक संबंधी शास्त्र जाननेवाला है, सामायिक करनेवाले की बात नहीं है हो यहां पर। आगम के सामायिक संबंधी शास्त्र को जाननेवाले जीव को आगमसामायिक कहा। सामायिक नाम का जो ग्रंथ है अपना, आगम है, उसको जो जीव जान रहा है उस जीव को यहां आगमसामायिक कहा। तो अभी जो वर्तमान में जान रहा है उसको भावआगमसामायिक कहेंगे। परंतु जो जाननेवाला तो है परंतु वर्तमान में अन्यत्र उपयोग है उसको हम द्रव्यआगमसामायिक कहेंगे। तो यहां उस जीव को हम सामायिक कह रहे हैं, किस अपेक्षा ? आगमद्रव्यसामायिक। ये अपेक्षायें समझनी हैं न हमें ? यह निक्षेप जो है न, उसके थोड़े भेद देखेंगे हम। दूसरा क्या है ? नोआगम, जो आगम को नहीं जाननेवाला है। तो आगम को नहीं जाननेवाला ऐसा क्या है ? तो उस जाननेवाले जीव का शरीर जिसको हम ज्ञायकशरीर कहेंगे। ज्ञायकशरीर यानी ज्ञायक का शरीर। वे सिद्ध भगवान ज्ञानशरीरी हैं उनकी बात नहीं चल रही है। ज्ञायकशरीर को यानी उसके शरीर को नोआगमद्रव्यसामायिक कहा। कौनसे शरीर को ? जो जीव जाननेवाला है उस जाननेवाले जीव के शरीर को। क्या कहा ? नोआगमद्रव्यसामायिक क्योंकि नोकर्म और द्रव्यकर्म कहेंगे तो थोड़ा कन्फ्यूजन होता है इसलिये हम सामायिक पर घटित कर रहे हैं। तो यह हुआ आगमद्रव्यसामायिक और नोआगमद्रव्यसामायिक।

नोआगमद्रव्यसामायिक में हमने एक भेद देखा ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्यसामायिक। दूसरा भेद कौनसा वहां पर लिखा हुआ ? भावी। भावी यानी यहां पर जीव की बात है। ज्ञायकशरीर में शरीर को सामायिक कहा था। कौनसे शरीर को ? जाननेवाले जीव के शरीर को। अब यहां कह रहे हैं भावी यानी उस जीव को कहेंगे। कौनसे जीव को ? जो अभी तो नहीं जान रहा है इसलिये उसको नोआगम कहा। नोआगम यानी आगम को नहीं जाननेवाला। परंतु वह जीव भविष्य में जाननेवाला है तो यह भविष्य में जो जाननेवाला जीव है उस जीव को अभी वर्तमान में हम भावी नोआगमद्रव्यसामायिक कहेंगे। ये निक्षेप लगाने हैं हमें। एक की बात हो गयी कि शरीर को कहा। एक है भावी यानी उस जीव को कहा जो भविष्य में जाननेवाला है, अभी नहीं जान रहा है और तीसरी बात है तद् व्यतिरिक्त यानी इनके अलावा अन्य, फिर जो कोई इनके अलावा क्या-क्या हो सकता है ? अन्य जो वस्तुयें हो सकती हैं, जो

कुछ हैं उनको हम उसमें सामायिक में ले लेंगे। यानी उसके- तद् व्यतिरिक्त नाम के अलग-अलग भेद करेंगे। तद् व्यतिरिक्त यानी इन दोनों के अलावा। शरीर और वह जीव, इनके अलावा अन्य पदार्थों में जो कोई वहां निक्षेप डालेंगे हम सामायिक संबंधी, उनको हम कहेंगे तद् व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसामायिक। *श्रोता: उसका एक्झॅम्पल ?* उसका एक्झॅम्पल सामायिक में जो सामायिक संबंधी जो कोई द्रव्य, क्षेत्र अगर बात होती है यानी सामायिक की जो क्रियायें हैं, उस संबंधी हम लगा सकते हैं। यदि भाव में लेना है, भाव में भी आगम और नोआगम हैं। भाव में जो आगम कहा वहां सामायिक संबंधी शास्त्र को जाननेवाला जीव और वर्तमान में उसी आगम में उसका उपयोग है वह आगमभावसामायिक है और नोआगमभावसामायिक यानी अभी नहीं जाननेवालों को लेना है। परंतु भाव यानी वर्तमान में हैं, यानी जो अभी वर्तमान में सामायिक कर रहा है उस पर्यायरूप से परिणत जीव। हां, वह भाववाला लेना। यहां तो सामायिक के शास्त्र को जाननेवाला जीव नहीं लेना, जो सामायिक कर रहा है जो उसमें उपयुक्त है, वर्तमान में उसको भाव से हम कहेंगे नोआगमभावसामायिक। अभी क्या है यह थोड़ा अटपटा है, है न, यह आगम, नोआगम, तद् व्यतिरिक्त ये क्या बातें होती हैं ?

अभी हमारा जो कर्म संबंधी विषय है। वर्तमान में जो हम कर्म और नोकर्म लगा रहे हैं, तो यहां हम जो ज्ञानावरण आदि जो कर्म कह रहे हैं वह किसको कहेंगे ? एक तो तद् व्यतिरिक्त में आयेगा और एक जो भाव में है नोआगमभावकर्म। नोआगमभावकर्म यानी वर्तमान में जो पुद्गल परमाणु हैं वे तो कुछ जान नहीं रहे हैं परंतु उस वर्तमान में वे ज्ञानावरणरूप परिणमित हो रहे हैं उस कर्म को हम क्या कहेंगे ? नोआगमभावकर्म। ये हैं इन ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि के नाम को नोकर्म भी ले सकते हैं नीचे। ऊपर भावकर्म में लेना है उसको। यह बात ख्याल में आयी न ? क्या हुआ ? चार्ट में कुछ अलग है ? एक तो कर्मकाण्ड में इसका विस्तार से चार्ट भी बनाया हुआ है और जब अभी अनुवाद आयेगा उसमें भी बनाया हुआ है। अभी हम थोड़ा आगे बढते हैं। ये जो हमने आगम, नोआगम वगैरह की बातें की थी तो उसमें हमें जो मालूम हैं न, भावकर्म तो हमें मालूम हैं; नोआगमभावकर्म यानी ज्ञानावरण आदि कर्म, वे भी उस भावरूप से हैं यानी जिन आठ कर्मों की हम चर्चा कर रहे हैं। मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति, ये क्या हैं ? भाव से कर्म हैं। भाव से कर्म क्यों ? वर्तमान

में वे पुद्गल परमाणु उस भावरूप से परिणमित हैं। कौनसे भावरूप से ? कर्मरूप परिणमित हैं। कर्म का अपना भाव, इसलिये उसको यहां नोआगमभावकर्म कहेंगे। यह नोआगमभावकर्म से क्या समझना ? कर्म जिसकी हम बात कर रहे हैं। मिथ्यात्व कर्म है, ज्ञानावरण कर्म है, जो कुछ कर्म हैं उनको यहां नोआगमभावकर्म कहेंगे। तद् व्यतिरिक्त में हमने क्या लगाया था ? कर्म और नोकर्म लगाया था न ? नोकर्म यानी अन्य पदार्थ। जो अन्य पदार्थ जो उस कर्म के उदयादि में हमें निमित्तरूप से बाहर में दिखायी देते हैं उनको हम कहेंगे उसका नोकर्म। हां, हमारी भाषा में उसका एजंट क्योंकि इतना लंबा नाम हर बार कौन ले !

अभी हम यह विषय देखेंगे कि जो अलग-अलग कर्म हैं, बहुत सारी वस्तुयें उनकी नोकर्म हो सकती हैं। नोकर्म यानी वह शरीर, मन, वाणीवाला नोकर्म नहीं; यह पूरा लंबा-चौड़ा द्रव्यनिक्षेप लगाना। तद् व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म, यह नीचे लिखा न ! हां। अभी हम कौनसे कर्मों के कौन-कौनसे नोआगमद्रव्यकर्म होते हैं उनको हम शॉर्ट में नोकर्म कहेंगे। कौनसे कर्मों के कौनसे नोकर्म हैं इसकी थोड़ी हम चर्चा करेंगे। देखेंगे यहां शास्त्र में उनके कौन-कौनसे उदाहरण लिये हैं। वहां तो एकाध उदाहरण लिया है परंतु हमारे लौकिक में जो कोई बातें बनती हैं उनको हम उदाहरण के तौर पर समझकर उनका हमें ज्ञान हो सकता है। बहुत सारी बातें हो सकती हैं। ज्ञान की हीनता जो हो रही है उसके लिये बाह्य अनेक कारण हो सकते हैं। यहां हमें कोई एक उदाहरण बता देंगे। यहां तो उन्होंने मूलकर्मों में भी घटित किया है और उत्तरकर्मों में भी यानी उत्तरप्रकृतियों में भी घटित किया है। जैसे मतिज्ञान किसको कहते हैं ? तो इन्द्रिय और मन के द्वारा हम जो ज्ञान करते हैं उसको हम मतिज्ञान कहते हैं। तो चक्षुइन्द्रिय संबंधी ज्ञान यानी जो हम अभी देख रहे हैं और आंखों के सामने मानो कोई वस्त्र रखा, कोई पेपर रखा तो क्या होगा ? उसके उस पार की चीज़ दिखायी नहीं दे रही है तो यह क्या हुआ ? मतिज्ञानावरण का नोकर्म हो गया। सभी इन्द्रियों में लगाना, अकेले चक्षुइन्द्रिय में नहीं। कर्णेन्द्रिय के संबंध में भी लगा सकते हैं। स्पर्शनइन्द्रिय के विषय के बारे में भी, क्योंकि यहां तो हमें ज्ञान हो रहा है। अभी हमने स्वेटर पहने या कुछ अन्य चीजें, तो क्या होगा ? बाहर से कोई स्पर्श करता है तो इतना ज्ञान नहीं होगा जैसे स्किन के साथ डायरेक्ट कॉन्टॅक्ट होने पर होगा। तो क्या हुआ ? उस संबंधी वह

नोकर्म कहलायेगा मतिज्ञानावरण का, मतिज्ञान का भी नहीं; कर्मों का नोकर्म कहेंगे।

श्रुतज्ञान के बारे में भी ऐसा ही लेना। श्रुतज्ञान को रोकनेवाली जो कोई अन्य चीजें होगी उसको हम श्रुतज्ञानावरण कर्म का नोकर्म कहेंगे। अवधिज्ञानावरण और मन:पर्ययज्ञानावरण का नोकर्म किसको कहेंगे ? जैसे मुनियों को अवधिज्ञान तो है, है न ? और मन:पर्ययज्ञान किसीको है तो उसका नोकर्म यानी उसका घात कैसे हो सकता है ? अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान जो है अभी वह हीन हो गया या उसका घात हो गया; तो उसके लिये जीव के संक्लेश परिणाम हैं या संक्लेश उत्पन्न करानेवाली जो अन्य वस्तुयें हैं उनको उसका नोकर्म कह दिया। क्योंकि ये कर्मों में जो कोई हीनता हो रही है या अधिकता हो रही है उनका आवरण अधिक हो रहा है वह तो हमें दिखायी नहीं देता; हमें तो बाह्य वस्तु दिखायी देती है जिसको हम उस कर्म का नोकर्म कहेंगे। केवलज्ञानावरण का नोकर्म कहते हैं, है ही नहीं है, क्यों ? केवलज्ञान तो क्षायिकज्ञान है और केवलज्ञान में कुछ अभी हीनता होने का सवाल ही नहीं है इसलिये कहते हैं उसका कोई नोकर्म है नहीं। जैसे अवधिज्ञान तो हो गया है और संक्लेश परिणामों के कारण वह अवधिज्ञान छूट भी सकता है। ऐसे एक बार केवलज्ञान हो गया तो कौनसे परिणामों के कारण छूट जायेगा ? वहां तो कोई है ही नहीं न, संक्लेश-विशुद्धि का कोई सवाल ही नहीं है वहां पर। रागरहित हैं न ! पूर्ण वीतराग हैं इसलिये कहते हैं उसका नोकर्म है ही नहीं।

फिर दर्शनावरण में लिया है। दर्शनावरण में जो निद्रा है, निद्रा का नोकर्म क्या लिया है ? नींद क्यों आती है ? तो कहते हैं कि भैंस का दही यानी जो भैंस का दूध होता है न, उसका जो दही है उसके कारण नींद आती है ऐसा इसमें मूल शास्त्र में लिखा है। लहसुन, खली वगैरह जो कोई पदार्थ हैं जिनके कारण अधिक नींद आती है या हम कहेंगे न गरिष्ठ भोजन किया। क्या होगा ? नींद आने लगी तो उसको कहेंगे वह निद्राकर्म का नोकर्म है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, जैसे हमने इन्द्रियों की बात की वैसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन को भी रोकनेवाली जो कोई अन्य वस्तु है; जो ज्ञान को रोकती है वैसे वह दर्शन में भी निमित्तभूत होती है तो उसको भी उसका नोकर्म कहेंगे। यानी अवधिदर्शनावरण वगैरह की बात भी अवधिज्ञानावरणवत् ही जानना है।

अब कहते हैं सातावेदनीय का यानी जो हमें इष्ट लगे उसका नोकर्म क्या है ?

तो हमें तो बहुत सारे नोकर्म मालूम हैं। यहां कहते हैं कि सुहावने अन्न-पानादिक। सुहावने यानी अपने को जो अच्छे लगे ऐसा जो कोई अन्न है, अन्य कोई वस्तु, पीने की जो कोई चीजें हैं, पहनने की हो और कुछ हैं, वे क्या हैं ? जिनको हम पहनकर या जिनको पाकर हम खुश-खुश होते हैं तो उसको कहते हैं वह सातावेदनीय का नोकर्म है और असातावेदनीय का ? अपने को नहीं सुहावनेवाले ऐसे जो कोई पदार्थ हैं, अनिष्ट लगते हैं तो उन्हें उसका नोकर्म बता दिया। यह आगे की बात मुझे बहुत पसंद आयी।

दर्शनमोहनीय में लगा रहे हैं। सम्यक् प्रकृति का नोकर्म क्या है ? सम्यक् प्रकृति क्या है ? दर्शनमोहनीय की प्रकृति है और वह कैसी है ? देशघाति है। उसका उदय भी चले, सम्यक्त्व भी बना रहे; फिर भी उसके उदय में क्या होता है? चल, मल, अगाढ़ दोष लगता है। यह चल, मल, अगाढ़ दोष किस संबंधी है ? तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र संबंधी जो कोई हमारी मान्यता है; यह मंदिर हमने बनवाया है, यह हमारा है। परंतु ऐसा नहीं कि वह कोई कुदेव आदि की सेवा करने लगेगा। वह मिथ्यात्ववाली बात है नहीं, वह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को ही मानता है। यह हमारी संस्था ने छापा है तो उसके प्रति जो कोई उसका थोड़ा लगाव वगैरह हो जाता है; यह मंदिर हमने स्थापन किया; यह मूर्ति हमारी है, ऐसी जो कोई बात होती है। अरिहंत की ही पूजा करेगा, अन्य की जाकर नहीं करेगा। तब उसको कहेंगे वह चल, मल, अगाढ़ दोष में निमित्त है। तो ये जो आयतन हैं जिन, जिनमंदिर, जिनागम और जिनागम के धारक, तप और तप के धारक यानी मुनिराज; ये तो सम्यक् प्रकृति के नोकर्मद्रव्यकर्म हैं। हां, मिथ्यात्व के नहीं हो, सम्यक् प्रकृति के। उसका सम्यक्त्व नहीं टूट रहा है, फिर भी उन आयतनों के प्रति उसको कुछ खास लगाव है। इनमें विकल्प करके वह चल, मल, अगाढ़ दोष से युक्त होता है। स्वयं विकल्प कर रहा है उसमें।

अब जो अनायतन की बात है। मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्म कौन हैं ? यानी जिनके सेवन से मिथ्यात्व बना रहे, बाह्य में ऐसी कौनसी वस्तुयें हैं कि जिनके कारण वह मिथ्यात्व दृढ़ होता रहता है ? तो इसे यहां कहा है अनायतन; आयतन यानी स्थान, अनायतन यानी वह अस्थान है। कौन-कौनसे हैं ? देखो, सुनना बराबर- कुदेव, कुदेव का मंदिर। कुदेव का मंदिर क्यों कहा ? क्या करें, हमारे घर से मंदिर बहुत दूर है और वह जो दूसरा मंदिर है न ? हमारे घर के बिलकुल सामने है। अरे ! उसका भी नाम

जैन ही रखा है उन्होंने। तो वहां जाना कि नहीं जाना ? तो यहां क्या कहा देखिये। हम तो शास्त्र के आधार से चलेंगे। कुदेव, कुदेव का मंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्र के धारक यानी पढ़नेवाले, पढ़ानेवाले वे सब उसमें आ गये। कुतप- खोटा तप करनेवाले और कुतप के धारक यानी जो जैन नाम धराते हैं, वस्त्र आदि धारण करते हैं, अपने को मुनि आदि मनवाते हैं तथा उनके सेवक भी उसमें आ गये, हो ! हां, जिनकी देव-गुरु-शास्त्र संबंधी सच्ची श्रद्धा नहीं है ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमें आदर भाव होना यह मिथ्यात्व है; ये भी अनायतन में आ जायेगा सारा। ये मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्म हैं। किस-किसको देखा ? सुनना जरा बराबर। अरे वे मुनि तो हैं न? अपने से तो श्रेष्ठ हैं न ? जैन नाम का डंका तो पीटा है न पूरे जगत में। हमको तो ऐसे भी मिले, क्या कहें ? जैनियों का नाम आजकल बहुत सारा पूरा दुनिया में हो गया। क्यों ? ये जैनी न बहुत यहां-वहां जाकर बैठें हैं अमेरिका में, कॅनडा में, ऑस्ट्रेलिया में और वे सारे जैन फ़ूड मांगते हैं। जैन फ़ूड मांगते हैं, जैन फ़ूड ! तो क्या हुआ सब जगह ? जैन पावभाजी आ गयी और क्या-क्या है ? देखो जैनियों का कितना नाम हो गया ! जैनधर्म फैला है कि नहीं फैला है ? फैला है ? तो यह खाने-पीने के लिये जैनियों का नाम नहीं ! यह तो उनकी डिव्हॅल्यूएशन हो गयी है। तो क्या कहते हैं ? ये जो अन्यमति हैं; मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ना, अन्यमति किस-किसको कहा है और उनकी क्या-क्या मान्यतायें हैं; हां, तो जो सारे अन्यमति हैं, भले महावीर का नाम लेकर भी जो अन्यमत स्थापित हो गये हैं तो ऐसे जो कुदेव हैं, उनके जो कुगुरु हैं, इनको मुनिवत् तो छोड़ो, सामान्य से उनका आदर करना, उनके प्रति कुछ आदरबुद्धि होना भी मिथ्यात्व है।

हमें पता ही नहीं न वह मिथ्यात्व कहां-कहां छिपा है ? क्यों ? यहां तो लिखा है कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और उनके सेवक यानी उनके भक्त इनके प्रति अगर हमें कोई अहोभाव हो तो वह भी मिथ्यात्व है। हमें तो कौनसे शास्त्र पढ़ेंगे तो सम्यक्त्व होगा ऐसा लगता है। परंतु जब तक मान्यता में, अभिप्राय में उनके प्रति कुछ अहोभाव बाकी है, वह तो गृहीत मिथ्यात्व है। बिलकुल गृहीत मिथ्यात्व है क्योंकि पहले में पहले जब हम यहां मोक्षमार्ग में प्रवेश करना चाहते हैं, कोई भी शास्त्र पढ़ना चाहते हैं, तो पहली में पहली कंडिशन क्या है ? सबसे पहले देव, गुरु और शास्त्र इनका सही निर्णय होना चाहिये। हमें थर्मामीटर लेकर बाहर किसीको जांचना नहीं है, यह सच्चा है कि खोटा

है। यह हमारी मान्यता में पहले लेना कि देव संबंधी अपनी मान्यता क्या है, गुरु संबंधी अपनी मान्यता क्या है, शास्त्र संबंधी अपनी मान्यता क्या है, सच्चा किसे कहना और क्या हम सच्चे के ही अनुयायी हैं ?

हमने कहा हां, हम जन्म से ही सच्चे को ही भजते आये हैं। तो सच्चे को भजते आये हैं तो उन संबंधी मिथ्यात्व कर रहे कि नहीं कर रहे ? क्यों ? हम मन्नत मांगते हैं। एक-एक तीर्थंकर को एक-एक काम सौंप दिया है। कोई बच्चा देनेवाले जो स्वयं बाल-ब्रह्मचारी हैं और वे अपने गांव के नहीं चलेंगे। वहां महावीरजी में जाना पड़ेगा ! हां और उनको भी पहले रिश्वत दिखायेगा। यदि बच्चा हो जाये तो सोने का छत्र चढ़ाऊंगा, पहले नहीं ! यहां आना है तो दो महीने पहले पैसे देकर रिझर्वेशन करना पड़ता है। *श्रोता: रूम का भी फ़ोन करके यहां बताना पड़ता है।* रूम का भी फ़ोन करके बताना पड़ता है और वहां भगवान को ? हमारा काम हो जाये तो हम यहां क्या लगायेंगे ? संगमरमर लगायेंगे या कुछ छत्र चढ़ायेंगे या कुछ ये घी के दिये जलायेंगे या और जो कुछ करेंगे। यह हमने वीतरागी भगवान को सरागी बना दिया। वे कुछ सरागी नहीं हुये, इसकी मान्यता में वे सरागी हुये। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में तो कितना-कितना लिखा है। ख्याल में आया ? हमने तो भगवान के लेव्हल पर कुदेवों को भी चढ़ा दिया, उस लेव्हल पर बिठा दिया हमने क्योंकि हमने क्या किया ? सर्वधर्म समभाव। समभाव कहां है ? सबके प्रति तो रागभाव हो गया; इसको भी माथा टेको उसको भी माथा टेको। यह विनय मिथ्यात्व है। केवलज्ञानी भगवान हैं उनके लेव्हल पर हमने अन्य को बिठा दिया। किसीको उनका रक्षणकर्ता मान लिया। अरे वे भी उनके भक्त हैं। अन्य यक्ष वगैरह जो हैं वे भगवान के भक्त हैं, हमारे जैसे हैं वे। हम भी भगवान के भक्त हैं, वे भी भगवान भक्त हैं। हां, उनको बुलाओ, वहां बिठाओ न, उनका क्यों हम आदर कर रहे हैं ? उनका आदर करना वीतरागी भगवान का अनादर है। उनका अवर्णवाद कहते हैं इसे और यह अत्यंत गृहीतमिथ्यात्व है।

भगवान को तो हम अष्टद्रव्य चढ़ा सकते हैं। किसी पांचवें गुणस्थानवाले को नहीं चढ़ा सकते हैं हम। गुरुओं को - मुनियों को चढ़ा सकते हैं। *श्रोता: चौथे गुणस्थानवाले को चढ़ा सकते हैं ?* चौथे गुणस्थानवाले को सवाल ही नहीं, जब पांचवें गुणस्थानवाले को नहीं चढ़ा सकते तो चौथे गुणस्थानवाले की क्या बात है ? अरे अर्घ्य

नहीं चढ़ायें केवल हम चोखा चढ़ायेंगे - नहीं चलेगा। यह ऐसी चरणानुयोग की आज्ञा नहीं है। भगवान के सामने उनकी जय भी नहीं बोल सकते। यह भगवान की अविनय होती है। इतना विवेक तो श्रावक को बिलकुल होना ही चाहिये। हम श्रावक कहलाते हैं तो बिलकुल श्रावक के जो कर्तव्य हैं- देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय और उनका उचित योग्य विनय। किसी अन्य का विनय करने के लिये हम भगवान के सामने उनका विनय करते हैं, उनकी जय बोलते हैं तो भगवान का अविनय हो जाता है। *श्रोता: जय जिनेन्द्र बोलते हैं।* एक दूसरे को हाथ भी नहीं जोड़ते हैं। मंदिर में हम भगवान की पूजा करने आये हैं। वहां तो एक दूसरे के साथ कोई अन्य बातें करनी ही नहीं हैं। देखो, ये जो अनायतन यहां बता रहे हैं क्योंकि हमें मालूम ही नहीं हैं न ये क्या हैं ? मालूम नहीं यह उसमें से कोई रास्ता नहीं है, हां, एस्क्यूज नहीं है। हमें मालूम नहीं था कि यह विष की बॉटल है, पॉइझन; हमने पी लिया। क्या होगा ? जो जानबूझ कर पीता है और जो अनजाने में पीता है, असर तो दोनों को होगा न कि इसने नहीं जाना था इसको माफ़ करें ? ऐसी बातें नहीं होती हैं। यह जानना हमारा कर्तव्य है।

हम कोई भी बात सीखते हैं तो उस संबंधी क्या कानून हैं, कौनसे कायदे हैं उनको भी हम ख्याल में रखते हैं। तो ऐसे ही यह भी - हमें तो मोक्षमार्ग प्रकट करना है, अगर हमको यह मिथ्यात्व नष्ट करना है तो उस संबंधी जो कोई चीजें हैं नोकर्मवाली, जो अनायतन बताये हैं तो ये सम्यक्त्व के घातक हैं यानी इनके कारण सम्यक्त्व प्रकट ही नहीं होता है। कहां गया अविनाश ? आया कि नहीं ? यहां बहुत सुनता है और वापस जाकर वहां किसीके पीछे चलता है, यह महासती और वह सती करके। मेरा भाई है, फूफी का लड़का इसलिये मैं नाम लेकर बोल रही हूं। देखो, ये आयतन और अनायतन दोनों का मिश्रपना सो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्मद्रव्यकर्म हैं। नोकर्म, अपनी भाषा में उसके एजंट हैं। कौनसे ? जो मिश्र गुणस्थान है न तीसरा गुणस्थान। यहां अभी अपना गुणस्थान का प्रकरण नहीं हो रहा है, फिर भी, जिनको पता है उनके लिये बता रही हूं कि यह बात ख्याल में ले लो कि जो तीसरा गुणस्थान है, उसमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है, उसका नोकर्म कौन है ? एजंट कौन है ? तो इनका मिश्रपना। सम्यक्त्व हो गया है फिर भी छूट गया है और श्रद्धा में वह मिश्रवाला दोष आ गया है। अनंतानुबंधी कषाय के नोकर्म हैं मिथ्यात्व के

आयतन, कुदेव आदिक। जो अभी हमने मिथ्यात्व के लिये आयतन देखे, वही अनायतन जिसको हम कहते हैं तो वे अनंतानुबंधी के भी नोकर्म हैं। क्योंकि अनंतानुबंधी का कार्य क्या हो रहा है ? सम्यक्त्व नहीं होने देते और जब तक इन आयतनों का; आयतन यानी स्थान है परंतु हम उसको सम्यक्त्व की अपेक्षा अनायतन कह रहे हैं; तो जब तक उसको अनायतनों का अंदर कुछ भी अहोभाव है तब तक उसको सम्यक्त्व प्रकट नहीं हो सकता।

बारह कषायों का नोकर्मद्रव्यकर्म अनुक्रम से देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र के घातक, ये क्या हैं ? बारह कषाय कौन-कौनसे हैं ? अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ; संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ यानी अपनी भाषा में यह जो कोई देशचारित्र का घात होता है, सकलचारित्र का घात होता है, यथाख्यातचारित्र का घात होता है। देशचारित्र का घात होता है यानी अप्रत्याख्यानावरण का उदय है, देशचारित्र नहीं होने देता। बाह्य में उसके निमित्त क्या हैं ? यहां तो लिखा है **काव्यग्रंथ, नाटकग्रंथ, कोकादिग्रंथ।** उस ज़माने में टीव्ही नहीं था इसलिये इनके नाम ले लिये। वहां तो टीव्ही में बहुत सारी रचनायें - विकथायें चलती हैं। अन्यमति की भी चलती हैं और सारा मिथ्याश्रद्धान भी चलता रहता है। क्या-क्या चलता रहता है ? ये सारे चारित्र के घातक हैं और इनको नोकर्म कह दिया है। अभी नौ नोकषाय रह गयी न ? हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और तीन वेद। तो तीन वेदों के लिये जो अन्य स्त्री या पुरुष वगैरह का जो देह है उसको वेदकर्म का नोकर्म कहा है। हास्य कर्म का नोकर्म जो कोई बाह्य में जो हास्यात्मक कोई चीज दिखायी देती है न ? कोई विदूषक है या कोई अन्य-अन्य, जैसे हास्य के प्रयोग भी चलते हैं न आजकल बहुरूपिया, हंसने के पात्र। आजकल तो यह क्या ? *श्रोता: लाफिंग क्लब।* लाफिंग क्लब हां, आपको मालूम है न ! अब कुछ दिन बाद रोने के भी क्लब निकलेंगे। वे इस शरीर को व्यायाम देते हैं और फिर हम तंदुरुस्त रहते हैं ऐसा लगता हैं हमको। कषाय करने से शरीर तंदुरस्त रहता है ऐसा लगता है कि नहीं लगता ? **रति का** यानी रति जो कर्म है **भले पुत्रादिक** यानी हमें उनके प्रति प्यार आता है, हमारे पुत्र-पुत्री अच्छे हैं, तो वह रतिकर्म का नोकर्म कहा। **इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग अरति का नोकर्म है।** अनिष्टसंयोग होते हैं तो हमें

अरति हो जाती है या **पुत्रादिक का मरना वह शोककर्म का नोकर्म है।** कोई हमारे वियोग हो जाता है किसीका, तो बहुत शोक होता है और **जो निंदित वस्तु है** जिसको हम कहते हैं गलिच्छ, घृणा उत्पन्न होवे **वह जुगुप्सा का नोकर्म है।**

अभी नामकर्म की भी बहुत सारी बातें बतायी हैं। यह नरकादि गति में क्या नोकर्म हैं वहां का ? आयुकर्म का नोकर्म क्या है ? तो अन्न का ग्रहण करना। उससे शरीर टिका रहता है। इसतरह उसको नोकर्म कह दिया यहां पर। अभी एक-एक नामकर्म की बात हम नहीं करेंगे डीटेल में। फिर भी यहां तो हमें थोड़ासा ऐसा अंदाजा आ गया कि यह नोकर्म किसको कहना ? कर्म तो हम, ये जो ज्ञानावरण आदि आठ कर्म हैं उनको कर्म कह रहे हैं। उनके नोकर्म यानी जो कोई अन्य बाह्य वस्तु, जो अपने किसी कर्म के कारण वहां नहीं है, वह अपने स्वयं के कारण वहां है। फिर भी इन कर्मों का जो हीनाधिक फल मिल रहा है उसमें जो बाह्य वस्तु है वह निमित्तरूप से पायी जाती है। हमें जो फल मिल रहा है वह अपने कर्मों के उदयानुसार मिलता है। तो जो उदयरूप कार्य होना है, तो जो-जो कार्य होता है वहां उसका निमित्त भी अवश्य होता ही है। वे कोई ढूंढ़ने से नहीं मिलते। हम तो बाह्य में से किसी वस्तु को ढूंढ़ निकालने की कोशिश करते हैं कि किसकी दवाई लें ? क्या करें ! हम इतने व्यग्र - चिंतित हो जाते हैं कि यह जो बीमारी हुयी है तो इसको दूर कैसे करें ? है न ! परंतु जिसके दूर होनी है, जिसका साता का उदय होना है, उसको उचित निमित्त भी अवश्य मिल जाते हैं। उसको हम नोकर्म कह देंगे। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि दवा मत खाओ या ऐसा कुछ नहीं करो- यह बात नहीं बता रहे हैं। यह तो हमें इसका कौनसा नोकर्म हो सकता है, इसकी यहां पर चर्चा चल रही है। यह हमने अभी कर्म के नोकर्म की बात देख ली है। अब इसमें एक प्रश्न आया है। वैसे प्रश्न दो, तीन हैं परंतु जहां जिसका विषय आयेगा उसको हम ले लेंगे। तो प्रश्न ऐसा है...

प्रश्नः मिथ्यात्व सहित अनशन आदि जो बाह्य क्रियायें होती हैं उस समय अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषायों का कोई योगदान होता है ? मिथ्यात्व सहित की बात चल रही है, तो मिथ्यात्व सहित यानी गुणस्थान पहला है। तो पहला गुणस्थान है तो कौनसे कषायों का उदय है ? *श्रोताः चारों कषाय चौकड़ी का।* चारों कषाय चौकड़ी का-अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन।

जहां अनंतानुबंधी का कार्य चल रहा है, वहां उसको हम अनंतानुबंधी का कहेंगे, जहां उसकी विद्यमानता है। जब अनंतानुबंधी का उदय चल रहा है तब अन्य सभी का उदय चल रहा है। उसका क्या योगदान हो रहा है ? तो वह अभी अनंतानुबंधी जैसा बिहेव कर रहा है। सर्वघाति तो है ही वह। संज्वलन तो देशघाति है फिर भी मिथ्यात्व गुणस्थान में उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। अभी मुझे समझाने में भी आसान होगा। देखो, हम बच्चों को देखते हैं पांच, छह बच्चे खेलते रहते हैं या अपनी क्लास चल रही है बच्चों की, तो उसमें एक बच्चा बहुत उधम मचाता है। तो उसको देख-देखकर वे बाकी बच्चे भी उतना ही उधम मचाते हैं। उस एक बच्चे को अलग से बिठा दो या क्लास से बाहर निकाल दो तो क्या होता है ? *श्रोता: बाकी भी जरा शांत हो जाते हैं।* बाकी भी जरा शांत हो जाते हैं। ऐसा ही जब तक अनंतानुबंधी का उदय चल रहा है तो अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन भी अनंतानुबंधी जैसे बिहेव कर रहे हैं। यानी यहां मिथ्यात्व सहित जो व्रतादि हो रहे हैं, कोई भी ले लो; आपने अनशन का नाम डाला है तो वह किसका कार्य है कि अनंतानुबंधी है न ? वह मंदरूप से चल रही है। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण का वहां कुछ कार्य नहीं है, उसका उदय तो यथायोग्य चल ही रहा है। अनंतानुबंधी है तो व्रतों का यहां मिथ्यात्व कम करने में कुछ योगदान होगा कि नहीं होगा ? व्रत करने से मिथ्यात्व गलेगा कि नहीं गलेगा ? *श्रोता: नहीं।* तो नहीं, उसका कुछ लाभ नहीं क्योंकि अनंतानुबंधी का उदय है, मिथ्यात्व का भी उदय हो रहा है।

व्रतों से कुछ फायदा होगा कि नहीं होगा ? हमने देखा था, मंद परिणाम हैं, मंद कषाय हैं तो अघातिकर्मों में कुछ पुण्य प्रकृतियां बंधेंगी। कितने काल तक ? जब तक परिणामों में विशुद्धि है और वह तो अंतर्मुहूर्त से ज्यादा हो नहीं सकती। तो कभी विशुद्धि कभी संक्लेश चलते रहेंगे। हां, उसको कभी पाप कभी पुण्य भी बंधेंगे उससे कुछ लेना-देना नहीं। तो क्या व्रत नहीं करने चाहिये ? ऐसी बात नहीं है। वे नहीं करेंगे तो और पाप में थोड़े ही जाना है ! यहां कभी भी, कहीं भी व्रतों का निषेध नहीं किया है। व्रत करने से मैं सम्यग्दर्शन जल्दी पा जाऊंगा या व्रत करते-करते वीतरागता हो जायेगी या व्रत करने से यानी शुभभाव से; व्रत यानी यहां तो क्रिया की बात चल रही है, शरीर की क्रिया से तो कुछ नहीं होनेवाला है। क्या कहा है ? शरीर की क्रिया से ना

पुण्य बंधेगा ना पाप बंधेगा। किससे बंधेगा ? परिणाम से बंधेगा। उपवास क्यों किया ? सब कर रहे इसलिये किया। हम आठ उपवास करेंगे, दस उपवास करेंगे; लोग हमें माला पहनायेंगे, इसलिये किया। तो वहां तो पुण्य भी नहीं बंधा, पेट तो खाली रह ही गया ! अष्टपाहुड़ में लिखा है जो अज्ञानी तप करते हैं वे तो तप का क्लेश भोगते हैं। क्यों क्लेश भोगते हैं ? क्योंकि वे कष्ट सहन कर रहे हैं, भूख सहन कर रहे हैं। भूख सहन करने का नाम उपवास नहीं है। सहन करना यानी दुःखरूप प्रतीति हो रही है और मुनिराज जब अंतरंग में स्थिर हैं तो अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव कर रहे हैं और उस समय उनके खाने के विकल्प नहीं उठते हैं। उनके जो उपवास होता है उनमें वे कष्ट सहन नहीं कर रहे। वे तो आनंद का उपभोग ले रहे हैं। यह ज्ञानी और अज्ञानी के व्रतों में भी फर्क है। कहीं ऐसा नहीं समझना कि व्रत होते ही नहीं हैं, करते नहीं हैं क्योंकि जब गुणस्थान की चर्चा चलेगी, अभी यहां शिबिर लगेगा अगले महीने में। तो कोई ऐसा है न, मिथ्यात्व है उसने मुनिव्रत अंगीकार किये हैं और उसका सही निर्णय हो गया है तो पहले गुणस्थान से सातवां गुणस्थान डायरेक्ट होगा, हो सकता है। तो निषेध कहीं नहीं है। यहां हमेशा निषेध जो है वह विपरीत मान्यता का किया जाता है।

हमारी मान्यता में अगर उस संबंधी कुछ खोट है कि इसको करने से मैं थोड़ा आगे बढ़ूंगा ऐसी अगर मान्यता होगी तो वह मान्यता खोटी है। व्रत छोड़ दो ऐसा कहीं नहीं कहा। जब हम कहते हैं दवा की गोली खाने से बुखार मिट गया। क्या यह सही है ? तो हम कहेंगे हमारे आचार्य कहते हैं यह बात सही नहीं है। क्यों नहीं सही ? दोनों में क्या है ? *श्रोता: दोनों में अन्योन्याभाव है।* दोनों में अन्योन्याभाव है। दो स्कंध अलग-अलग हैं न ! तो दवा की गोली और यह शरीर का परिणमन जो हो रहा है इनमें अन्योन्याभाव है। उसके कारण यहां कुछ परिवर्तन नहीं होता है ऐसा जब कहते हैं, तो आज से हम दवाई खाना छोड़ देंगे यानी दवाई खाने की बात छोड़ देंगे। तो कहते हैं मान्यता तो वही रही। हमने तो वह केवल क्रिया शुरू की; क्या किया ? दवाई से ठीक नहीं होता न, हम खायेंगे नहीं। नहीं, 'दवाई खाते हुये वह दवाई से नहीं हो रहा है' यह सही बात है। जो दवा खा रहा है उसका जो बुखार मिट गया वह दवा से नहीं मिटा है यह बात कहना चाहते हैं। क्योंकि यहां तो लिखा है ग्रंथों में, कि बाई रोटी नहीं बना सकती। अरे नहीं बना सकती तो हमने पूरी जिंदगी रोटी बनाने में बितायी उसका क्या

होगा ? आज से हम नहीं बनायेंगे, देखो कल आपका पेट कैसे भरता है ? तो उसने मान्यता छोड़ी कि रोटी बनानी छोड़ी ? रोटी कभी बनायी ही नहीं थी उसने। फिर वह माना था कि हम इतना कार्य कर-कर के थक गये हैं।

गुरुदेवश्री क्या कहते थे ? 'कौन करे ?' मंदिर बनाया, इतना बढ़िया हो गया, इतना कार्य अच्छा हुआ। तो कहते थे 'कौन करे ?' कौन करे का अर्थ क्या है ? अरे वह पुद्गल की, जड़ की क्रिया है, उसे कोई जीव नहीं कर सकता। तो आपकी प्रेरणा से तो यह हुआ कि नहीं हुआ ? शुभभाव से तो हुआ कि नहीं हुआ ? पहले में पहले हमें यह शुभभाव से जड़ का कार्य नहीं हो सकता यह निर्णय करना है। फिर भी हम किसी न किसी रूप में उसके कर्ता बनना चाहते हैं। अरे हमने शुभभाव तो किया कि नहीं ? हमने इनको सजेस्ट किया तो हुआ कि नहीं ? हमने दान दिया इसलिये तो हुआ कि नहीं यह कार्य ! देखो हमने रात दिन मेहनत की, वहां निगरानी रखी इसलिये कार्य हुआ कि नहीं हुआ ? यानी हम उसके निमित्त तो हैं न ? यानी निमित्त के रूप में भी कर्ताबुद्धि कायम रखना चाहते हैं। यह हमारी अभिप्रायों में जो मूलभूत भूल है उस भूल को हमें ही देखना है। हमारे दोष कहां छिपे हैं वे हमें ही पता है और हम अगर जो सही ज्ञान है वह अंगीकार करते हैं तो दोष दूर हो जाते हैं। उसके लिये चार उपवास करने से वह अभिप्राय दूर होनेवाला नहीं है। हां, तो सही तत्त्वनिर्णय करने से ही अभिप्राय सही हो सकता है। तो यह प्रश्न हो गया। दूसरा ऐसा प्रश्न है कि...

प्रश्न: नरक में संक्लेश परिणाम अधिक होने पर पाप प्रकृतियों के चतुःस्थानिक बंध होने पर भी मनुष्यभव कैसे पाता है ? मनुष्यभव पाने के लिये मनुष्यायु का बंध होता है तभी मनुष्य में जन्म लेता है। छठे नरक के नारकी तक के जीव मरकर मनुष्य में जन्म ले सकते हैं, कोई तिर्यंच में भी जाते हैं। परंतु सातवां नरक का नारकी तो नियम से तिर्यंचों में ही जन्म लेता है, तिर्यंचायु का ही बंध होता है। ऐसे भी कोई जीव हैं सातवें नरक में, वहां उत्पन्न होने पर उन्होंने अंतर्मुहूर्त में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। पूरे ३३ सागर में एक अंतर्मुहूर्त कम इतने काल तक वे सम्यग्दृष्टि रहे। जब मरण का समय आया तो एक अंतर्मुहूर्त पहले मिथ्यात्व में गये। फिर वहां तिर्यंचायु का बंध किया और फिर मरकर तिर्यंच हो गये। वहां सातवें नरक में तो कुछ कम ३३ सागर तक सम्यग्दृष्टि थे परंतु सातवें नरक से मरकर जहां जानेवाला है, उस तिर्यंच को उस भव में

सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। यह जो आयु का बंध होता है वह हमेशा मध्यम परिणामों में होता है। ये जो छह लेश्या हैं और उनके जो कुछ आयु के बंधयोग्य स्थान हैं, यह तो बहुत विस्तार का प्रकरण है। उसमें जो आयु बंधती है तो आयु के बंध के योग्य परिणाम ये त्रिभाग में होते हैं। आपने सुने होंगे त्रिभाग क्या होता है ? जैसे मनुष्य और तिर्यंचों की, हम आयु इक्यासी साल की मान लेते हैं। जो हम पूर्व भव में बांधकर वर्तमान में भोग रहे हैं इसको कहेंगे भुज्यमान आयु। जीव वर्तमान में आयु भोगता है उसको कहेंगे भुज्यमान आयु और जिस आगामी एक आयु का बंध हम इस भव में करते हैं उसको कहेंगे बध्यमान आयु। दो, चार, पांच भवों की आयु हम नहीं बांध सकते यहां पर। कितनी ? आगामी एक ही आयु का बंध होता है। जैसे हम सात पीढ़ियों के लिये कमाकर रखना चाहते हैं वैसे सात भवों का बंध अभी नहीं कर सकते। सात पीढ़ी के लिये क्यों नहीं ? हमारे लिये कितना आवश्यक है ? ये सारा कमा रहे किसके लिये कमा रहे हैं ? वह रहेगा कि नहीं उसकी गॅरंटी नहीं है। यह इसी भव में भी समाप्त हो सकता है।

परंतु यहां क्या कह रहे हैं कि ये जो आयु बंध के योग्य परिणाम होते हैं जिनको कहेंगे मध्यम परिणामों में आयु का बंध होता है। इसको अपकर्षकाल कहते हैं। ऐसा है, कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंच हैं उनके भुज्यमान आयु के त्रिभाग में आगामी आयु का बंध होता है। ८१ वर्ष की आयु मान लेते हैं तो उसके $\frac{२}{३}$ यानी दो तिहाई बीत गयी और $\frac{१}{३}$ बाकी रही यानी २७ साल बाकी रह गये उसके पहले अंतर्मुहूर्त में एक अंतर्मुहूर्त तक आगामी आयु का बंध होता है। एक अंतर्मुहूर्त में - भले ३३ सागर की नरकायु भी बंधी हो उसके, तो उसके ३३ सागर के एक-एक समय के निषेक में आयु के परमाणुओं का एक-एक लॉट पड़ेगा। यानी उसका डिस्ट्रिब्यूशन ३३ सागर तक हो जायेगा। उतने सारे परमाणु कितने समय में बांधे उसने ? एक अंतर्मुहूर्त में। तो आयु का बंध अंतर्मुहूर्त मात्र ही होता है। किसीके एक बार ही आयु बंधती है। फिर उसके बाद दूसरा मौका कब आता है ? अब जो २७ साल बचे उसका दो तिहाई बीत जायेगा, तो ९ साल बाकी रहेंगे। फिर हो सकता है कि वही जीव दुबारा भी आयु बांध सकता है या पहली बार नहीं बांधी हो तो दूसरी बार बांधता है। ऐसे जो त्रिभाग-

त्रिभाग-त्रिभाग करते जाओ, आठ बार आयु का बंध हो सकता हैं। यानी ९ साल का $\frac{१}{३}$, फिर ३ साल रहे; तो उसका $\frac{१}{३}$ यानी १ साल रहा; उसका $\frac{१}{३}$ इसतरह से। आठों ही बार अगर नहीं बंधी तो अंतिम, जो मरण से पहले जिसको असंक्षेपाद्धा कहते हैं, मिनिमम पॉसिबल उस काल के पहले तो आयु का बंध होगा ही होगा।

आयु का बंध हुये बिना कोई मरेगा नहीं। चरमशरीरी ही आयु का बंध नहीं करते, जो उसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं वे आयु का बंध नहीं करते। उनको छोड़कर शेष सभी जीव आयु का बंध करके बाद में ही मरेंगे। कोई ऐसे बारह-तेरह दिन तक इधर-उधर कोई आत्मा भटकती नहीं है। उस संबंध में बहुत कुछ भ्रमभरी मान्यतायें चलती हैं न ! वह मर गया, अभी दिया जलाकर रखो। क्या-क्या करो ? क्या करो ? यह आनेवाला है। पूजा भी रखते हैं। क्यों ? उसकी आत्मा को शांति देने के लिये। वह शांति लेने के लिये आयेगा वापस ? देव में गया वह क्यों इधर आयेगा फिर वापस ? और जो नरक में गया वह क्यों आयेगा ? वह तो आ नहीं सकता। उसको तो झगड़ेबाजी से फुरसत नहीं मिलेगी। यह जो अन्य गति में गया है वह वापस नहीं आनेवाला और ना ही हमारे कुछ करने से उसको शांति मिलनेवाली है। हम जो पूजा वगैरह रखते हैं वह अपने मन की शांति के लिये है क्योंकि हम आकुलित हुये हैं वह आकुलता हमारी कम हो जाये। हम वीतरागता की याद करें क्योंकि वीतराग भगवान की हम पूजा कर रहे हैं। भले सिद्धों की करें या कर्मदहन करें। अपना भी कर्म नहीं दहनेवाला, न उनका दहनेवाला है जो निकल गये। कर्म का दहन करके जो सिद्ध भगवान हुये हैं उनकी वह पूजा है और उन्होंने कौन-कौनसे कर्मों का दहन किया है यानी नष्ट किया ? ये सारी १४८ प्रकृतियों के नाम हैं, १४८ अर्घ्य हैं उसमें, मालूम है ? कभी की है कर्मदहन की पूजा ? सिद्धचक्र विधान में तो हर बार करते हैं पांचवीं पूजा है मेरे ख्याल से, है न ? आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ, एक सौ अट्ठाइस और फिर आगे उसके वे अर्घ्य देते हैं उसमें सारे।

यहां जो प्रश्न पूछा था कि नरकों में इतना पाप करते हुये फिर मनुष्यायु कैसे बंधती है ? तो वहां भी उनके योग्य मध्यम परिणाम होते हैं। भले ही सातवें नरक का नारकी हो। आयु तो बांधता है न ? वह तो तिर्यंचायु बांधता है। परंतु छठे नरक का

नारकी भी; सम्यग्दृष्टि भी या अन्य मिथ्यादृष्टि भी; मनुष्यायु तो बांध ही सकता है। उसके योग्य जब वहां परिणाम होते हैं तब उसका बंध हो जाता है, एक बात। यहां कर्मभूमि में तो त्रिभाग-त्रिभाग में होता है। नरक में, देव में और भोगभूमि में क्या होता है ? जब अंतिम छह महीने बाकी हैं तो उनको पहला अवसर है आयु के बंध का। वहां नहीं बंधी तो फिर वह छह महीने के त्रिभाग-त्रिभाग करते जाओ। अंतिम दो महीने यानी उसके भी साठ दिन हैं तो उसका त्रिभाग बीस दिन, इसतरह से वहां उनके आयु का बंध होता है। यह आयुबंध की बात है। अब आयुबंध की बात निकली ही है तो पहले हमने देखा था उदयकाल, आबाधाकाल वगैरह। उसमें हमने आयु को छोड़कर बात की थी। जैसे मिथ्यात्व का ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होगा, तो ७००० वर्ष की आबाधा देखी थी। यह प्रपोर्शन है। कौनसा ? १ कोड़ाकोड़ी सागर के स्थितिबंध के लिये १०० वर्ष की आबाधा। आयुकर्म में कितनी होगी ? उसका प्रपोर्शन क्या होगा ?

३३ सागर की कोई आयु बांधता है और कोई सूक्ष्म लब्धिअपर्याप्त की एक छोटे अंतर्मुहूर्त की आयु बांधता है तो उसमें आबाधा का प्रमाण कितना है ? यह प्रश्न है। देखो, आबाधा किसको कहते हैं ? जब से बंध हुआ है तब से लेकर जब तक उसका उदय नहीं होता है तब तक के काल को उसकी आबाधा कहते हैं। अभी हमने जो ८१ वर्ष की आयुवाला देखा उसने २७ साल बाकी थे तभी आयु का बंध किया। हम दो अलग-अलग जीव लेंगे। कौनसा जीव लिया ? उसने नरकायु बांधी। तो उसने नरकायु बांध ली, भले वह कितने सागरों की भी बांधी हो। तो उसकी आबाधा कितनी है ? *श्रोता: २७ साल।* २७ साल, क्यों ? अभी तो आयु का बंध किया है। अभी २७ साल उसकी आबाधा है क्योंकि उसके बाद उसके आगामी आयु का उदय शुरू होगा। तो इस २७ साल तक उसके जो बंधी हुयी आयु है, उसने नरकायु बांधी, तो उसका उदय नहीं होगा। उसको कहेंगे आयु बंधने के बाद, मरण तक का जो काल है उसको, जो आयु बंधी है - बध्यमान आयु का आबाधाकाल कहेंगे। ऐसा भी कोई जीव होता है कि मरण के एक अंतर्मुहूर्त पहले उसने आयु बांधी है। वही नरक की आयु बांधी। तो उसकी आबाधा कितनी होगी ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त।* अंतर्मुहूर्त। तो कितनी आयु बांधी है उससे आबाधा का कोई प्रश्न नहीं, उसका कोई प्रपोर्शन नहीं, उसका वैसा कोई प्रपोर्शन नहीं पाया जाता, विभाग नहीं पाया जाता। एक बात और भी है, जिस किसी

जीव की आयु बंध जाती है उसकी आयु की आबाधा अभी निश्चित हो गयी। क्या कहा ? जिसने आयु का बंध किया है उस समय से लेकर मरण के समय तक उस आगामी आयु का आबाधाकाल है। तो अभी उसका मरण का समय फिक्स हो गया है। अब ऐसे जीव का कदलीघात से मरण नहीं होता।

श्रोता: कदलीघात क्या होता है ? हां बताऊंगी, कदलीघात क्या होता है। क्या कहा ? जिसने आयु का बंध किया है ऐसे जीव को अभी उसकी आबाधा नक्की हो गयी है तो ऐसे जीवों का कदलीघात से मरण नहीं होता। यह कदलीघात से मरण होने का अर्थ क्या है ? तो देखो, हम देखते हैं। कोई जवान लड़का है, कोई भयंकर बीमारी हो गयी है या कोई अभी युवान है उसको हार्ट अॅटॅक आ गया या कोई विषभक्षण कर लिया, किसीने बंदूक से उसको मार दिया या उसको कोई भयंकर ऐसे अॅक्सिडेंट में वह हिमरेज हो गया और हम देखते है कि वह मर गया। आयु कितनी बांधकर आया था ? अरे पूरी सौ साल की बांधकर आया था और अभी पच्चीस साल में मर गया। तो क्या हुआ उसका ? उसके आयु के जो निषेक थे न सौ साल तक के, एक-एक समय में जो आयु के निषेक थे; जब उसके मरण का जो कोई कारण बन गया है तो सारे का कदलीघात होकर उन निषेकों के परमाणु अंतर्मुहूर्त मात्र निषेकों में आकर मिल जाते हैं। पहले में पहले वे निषेक सारे नीचे आ गये। अभी आयु बांधी नहीं है उसने। अब जो सौ साल तक भोगनेवाला था, वहां तो आयु का बंध नहीं हुआ है। पच्चीस साल यानी अभी $\frac{१}{४}$ ही उसने बितायी है, $\frac{२}{३}$ गयी नहीं है तो वहां तो उसको नयी आयु का बंध अभी नहीं हुआ है। परंतु ऐसा कोई जो कारण बनता है अॅक्सिडेंट हो या जो कोई कारण बनता है, उस समय वे ऊपर के सारे निषेक घटकर नीचे आ जाते हैं। अब उसकी कितनी शेष रही आयु ? अंतर्मुहूर्त। अब वह आयु का बंध करेगा और आयु का बंध करके अंतर्मुहूर्त में मरेगा। क्यों मरता है ? क्योंकि उसने पूर्वभव में ऐसे ही परिणामों से आयु बांधी थी कि जो इसी पद्धति से नष्ट होनेवाली थी। क्योंकि लोग पूछते हैं न ऐसा होता है तो फिर क्रमबद्धपर्याय कैसे सिद्ध होगी ? इसी पद्धति से कदलीघात होना यह भी निश्चित था। केवलज्ञानी ने जाना था कि नहीं जाना था ?

कोई करोड़ पूर्व की भी आयु बांधकर आया है तो पर्याप्ति पूर्ण होने पर एक अंतर्मुहूर्त में मर सकता है। कितनी आयु लेकर आया ? करोड़ पूर्व की और कितने

काल में मर सकता है ? पर्याप्ति पूरी होने के लिये जो अंतर्मुहूर्त लगा उसके बाद उसने अंतर्मुहूर्त में आयु का घात किया। यानी वे सारे निषेक नीचे आ गये उसके। कदलीघात हुआ और फिर एक अंतर्मुहूर्त में आगामी आयु का बंध भी किया और मर भी गया। ऐसा भी होता है। *श्रोता: उसको अकालमृत्यु कहेंगे ?* उसको अकालमृत्यु इसलिये कहते हैं कि जो अन्य समवाय हैं पांच समवाय में से, हम देखते हैं न, स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि वगैरह तो वहां काल बिना जो अन्य समवाय हैं। वे अन्य समवाय क्या हैं ? जो काल नहीं है वह अकाल है, उसके कारण मृत्यु हुयी है ऐसा हम कहेंगे। परंतु वह भी स्वकाल मरण ही है। अपने ठीक समय पर ही वह मरण हुआ है। भगवान के ज्ञान में, भगवान ने जितने उसके भव देखें हैं तो वह भव इसी पद्धति से नष्ट होनेवाला है वह भी उन्होंने देखा है। हां, हमें शोक होना स्वाभाविक है, हमें उसके प्रति इष्टभाव है। हमारे कोई रिलेटिव्ह हैं परंतु जब यह ज्ञान हो जाता है तो उस शोक में कुछ लिमिट हो जाती है न, कुछ मर्यादा हो जाती है क्योंकि हमारे कोई इष्ट हैं, कोई मित्र है जो कोई हैं और ऐसे कदलीघात से मरण होता है तो हमें बहुत दुःख होता है। आपने ऐसे भी देखे हैं न ? जिसकी आयु बंध गयी है कितने बीमार हैं सालों से पॅरॅलिसिस हुआ है और कोई कोमा में है और डेथबेड पर पड़े हैं और मरण नहीं हो रहा है। वहां तो विदेशों में तो वे इच्छामरण के लिये कोर्ट में भी अपील करते हैं। इनको हां, मर्सिडेथ- दयामरण कहते हैं। उन पर दया करना चाहते हैं। अरे परंतु जिसने आयु बंध किया है वह उसकी आबाधा पूर्ण हुये बिना मरेगा नहीं।

एक सच्ची घटना हुयी है विदेश में, कि एक पेशंट हॉस्पिटल में बहुत सालों से था। पेशंट बहुत वृद्ध भी था वह भी मरना चाहता था। तो वहां के सब डॉक्टरों ने मीटिंग कर दी। उन्होंने निश्चित किया कि उसको हम कोई इंजेक्शन देकर अभी उसको बाय-बाय करेंगे। तो दे दिया उसको इंजेक्शन। तो दूसरे दिन वह हट्टा-कट्टा अच्छा बनकर चलकर आ गया और उसने डॉक्टर से बोला कि बहुत मेहरबानी की आपने ऐसी कोई दवा दी कि... तो ये जो हैं, कर्मों के आधीन बातें होती रहती हैं और हम बाह्य में उनके कारण ढूंढ़ते हैं। अच्छा अभी हम यहीं रुकते हैं। दोपहर में हम अपने विषय के बारे में चर्चा करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

९. बंध के प्रकार

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है और उसके आधार से आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है और उसके आधार से हम यहां स्वाध्याय कर रहे हैं। पं. टोडरमलजी को आचार्यकल्प कहते हैं। आचार्यवत् उन्होंने कार्य किया है, करणानुयोग के महान ग्रंथों का अर्थ सरल करके लोगों को समझाया है। यहां पहला अधिकार प्रकृति समुत्कीर्तन जिसका नाम है, यह हमने पूरा किया है। समुत्कीर्तन का अर्थ होता है प्रकृतियों के ये कोई बंध वगैरह हैं, वे कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं उन प्रकृतियों के नाम बता दिये। जिन-जिन प्रकृतियों का अस्तित्व है, १४८ प्रकृतियों के हमने नाम देखे। फिर कर्म के दो भेद देखे-घातिकर्म और अघातिकर्म; घातिकर्म चार देखे, अघातिकर्म चार देखे। हर एक की उत्तरप्रकृतियां हैं, ये ८ तो मूलप्रकृतियां कहलाती हैं और उनके जो भेद हैं सबडिव्हिजन्स, उनको हमने उत्तरप्रकृतियां तरीके से जाना। उन सबके अलग-अलग नाम भी हमने देखे। अब एक-दो प्रश्न हैं उनको देखकर फिर हम आगे का जो दूसरा अधिकार है, जिसका नाम है बंध, उदय और सत्त्व अधिकार उसको देखेंगे। बड़ा अधिकार है और विस्तार से उसकी चर्चा भी होगी।

प्रश्न है कि *क्या चक्रवर्ती की पटरानी नियम से सातवें नरक ही जाती है ?* सातवें नरक में जानेवाले मनुष्य या तिर्यंच के वज्रवृषभनाराचसंहनन ही पाया जाता है। चक्रवर्ती की पटरानी तो कर्मभूमि की है और कर्मभूमि की स्त्रियों को नीचे के तीन संहनन ही होते हैं और वे सातवें नरक में नहीं जा सकती। मैंने कर्मभूमि की इसलिये कहा, भोगभूमि की स्त्रियों को वज्रवृषभनाराचसंहनन ही पाया जाता है। भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि मरकर भवनत्रिक में ही जाते हैं और सम्यग्दृष्टि मरकर सौधर्म, ईशान में ही जाते हैं, यह नियम है। संहनन के कारण ना नरक में जाते हैं, ना स्वर्ग में जाते हैं और ना मोक्ष में जाते हैं। परंतु कहां कौनसे संहनन पाये जाते हैं, कौनसे जीव मरकर कहां जा सकते हैं इसका बहुत विस्तार से वर्णन; पूरा उसका सायन्स कहो जिनेन्द्रकथित है। अभी हमारा वह विषय नहीं चल रहा है फिर भी यहां प्रश्न आया इसलिये बता दिया।

एक प्रश्न है कि *संज्वलन केवल देशघातिरूप है यानी संज्वलनकर्म जो है क्रोध-मान-माया-लोभ यह देशघाति प्रकृति है, तो क्या उसका बंध होते समय शैल,*

अस्थिरूप भी होगा क्या ? बिलकुल ! वह देशघाति प्रकृति है तो उसके स्पर्धक सभी होंगे, शैल भी होंगे, अस्थि भी होंगे, दारु भी होंगे और लता भी होंगे। क्यों ? हम आपके सबके संज्वलन के कौनसे स्पर्धकों का उदय चल रहा है अभी ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति क्योंकि संयम प्रकट नहीं है बिलकुल। जब देशघाति प्रकृतियों का बंध होता है तो उसमें तो चारों ही स्पर्धक पाये जाते हैं, उनका बंध होता है। मुनियों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं होगा, देशघाति का उदय चलेगा, तब उसको हम कहेंगे यह क्षायोपशमिक चारित्र है।

प्रश्न है, *पुढे उदयास येणाऱ्या सर्वघाति स्पर्धकांचा सदवस्थारूप उपशम कृपया पुन्हा एकदा समजवून सांगाल का ?* भविष्य में उदय आने योग्य यानी जो बंधे हैं, वे सत्ता में पड़े हैं। प्रश्न हिंदी में ऐसा है कि *सदवस्थारूप उपशम जो सुबह समझाया था उसे और एक बार सुनना चाहते हैं।* तो कहते हैं कि हम वन्स मोअर नहीं कर रहे हैं, सदवस्थारूप उपशम का अर्थ क्या होता है ? कि सत्ता में अपनेरूप से पड़े रहना यानी सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आना, इसको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम। वे जैसे हैं वैसे बने रहते हैं। परंतु कब ? भविष्य में उदय में आनेवाले। भविष्य में उदय में आनेवाले जब वे उनका भविष्यकाल छोड़कर वर्तमान में वर्तमानरूप हो जायेंगे, तब उनका देशघातिरूप से परिवर्तन हो जायेगा, तब वे वर्तमानकालीन कहलायेंगे। वर्तमानकाल में सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं होना, परंतु भविष्यकाल में जो हैं उनका वैसे के वैसे अपनी जगह पर पड़े रहना, इसको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम। उदीरणा आदि के द्वारा उसका जल्दी उदय हो जाये तो ? तो ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये क्षयोपशम की परिभाषा है उसमें यह बताया है कि भविष्यकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम है। कुछ प्रश्न हैं व्युच्छित्ति संबंधी और स्थिति संबंधी। अभी हमने उसको सिखाया ही नहीं है, जब विषय चलेगा तब उसकी चर्चा भी होगी।

यह जो प्रकृति समुत्कीर्तन नाम का जो कर्मकाण्ड का प्रथम अधिकार है, प्रकृतियों के बारे में हमने विस्तार से चर्चा की है। कौनसी प्रकृतियां ? मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति उन पर निक्षेप आदि जो लगाये हैं उसका कथन हो गया है। अब यहां दूसरा बंध, उदय और सत्त्व अधिकार प्रारंभ होता है, इसमें बंध का कथन, उदय का कथन और सत्त्व यानी सत्ता का कथन होगा। हमने अभी तो चार प्रकार के बंध देखे हैं,

उनकी और कोई विशेषतायें यहां हम देखने जा रहे हैं। इस अधिकार के शुरुआत में पं. टोडरमलजी यहां मंगलाचरण करते हैं।

बंध उदय सत्ता सहित, अहित-कर्म करि नाश।
भए ज्ञान परकाशमय, नमौं तासु हुइ दास॥

अहित कर्मों का नाश करके बंध, उदय, सत्ता सहित ऐसे जो कर्म हैं, कैसे हैं वे ? अहित करनेवाले। अहित करनेवाले, वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ रहे हैं, हम ही उनके उदय में जुड़ जाते हैं। जो ज्ञान प्रकाशमय हो गये हैं, यानी जो जिनेन्द्र भगवान हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं। अब यहां नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भी इस अधिकार के शुरुआत में गाथा कहते हैं, यह ८७ नंबर की गाथा है। हमारे नीरेनभाई कहते हैं, स्वाध्याय में आप गाथाओं का नाम, संख्या बता देंगे तो हमें फिर दुबारा सुनने में थोड़ा अच्छा रहेगा इसलिये हम नाम, उसकी संख्या भी बता रहे हैं।

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ॥८७॥

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती बता रहे हैं कि मैं ग्रंथकर्ता नेमिचन्द्र, भगवान महावीर को नमस्कार करके, भगवान महावीर कैसे हैं ? असहाय पराक्रम है जिनका; क्या भगवान महावीर असहाय हैं ? हम असहाय, अनाथ किसको कहते हैं ? बेचारा, असहाय ऐसा कहते हैं न ? ऐसा नहीं है। असहाय यानी जिसको किसी दूसरे के सहाय की जरूरत नहीं है। क्योंकि हमें ज्ञान करना है, हम सारे क्षायोपशमिक ज्ञानवाले कैसे हैं ? वहां इन्द्रियों का भी निमित्त पड़ता है, प्रकाश का भी निमित्त होता है, अन्य-अन्य निमित्त होते हैं। यहां कहते हैं कि जिनका असहाय पराक्रम है, पूर्ण सामर्थ्यरूप पराक्रम जिनका प्रकट हो गया है, ऐसे जो महावीर भगवान हैं, उनको नमस्कार करके मैं स्तव कहूंगा। क्या कहा उन्होंने ? स्तव का कथन करूंगा। यह स्तव क्या होते हैं ? दूसरी गाथा में बता देते हैं कि सभी अंगों संबंधी; अंग समझते हैं क्या हैं ? दिव्यध्वनि को सुनकर यह जो जिनवाणी की रचना हुयी है, गणधरों ने द्वादशांग यानी बारह अंगों की रचना की है। बारह अंग और चौदह प्रकीर्णक - अंगबाह्यश्रुत, इनकी जो रचना की है, तो सभी अंगों संबंधी अर्थ को विस्तार से या संक्षेप से जिसमें वर्णन किया जाता है,

ऐसे शास्त्र को स्तव कहते हैं। फिर से, स्तव किसको कहना ? उस शास्त्र को स्तव कहते हैं जिसमें सभी अंगों संबंधी जो कोई उसका अर्थ है या तो विस्तार से समझाया जाये या शॉर्ट में-संक्षेप में समझाया जाये उस शास्त्र को स्तव कहते हैं। यहां नेमिचन्द्र आचार्य कह रहे हैं कि मैं स्तव का कथन करूंगा यानी बंध, उदय संबंधी जो कुछ यहां हमें बता रहे हैं उन सभी अंगों संबंधी उसमें वह संक्षेप से वर्णन आनेवाला है।

एक होता है स्तुति और एक होता है स्तव; शास्त्र का दूसरा प्रकार है स्तुति। स्तुति किसको कहना ? एक अंग संबंधी जो अर्थ है। हां, बारह ही अंगों का जो अर्थ है उसको तो हमने स्तव कहा। किसी एक अंग संबंधी जो अर्थ है उसको संक्षेप से या विस्तार से कहनेवाला ऐसा जो शास्त्र है उस शास्त्र को स्तुति कहते हैं। हम भगवान की स्तुति करते हैं वह बात यहां नहीं है। यहां शास्त्र को ही स्तव कहा और स्तुति कहा। अब कहते हैं, एक अंग का कोई अधिकार है; पूरा अंग भी नहीं, एक अंग के अधिकार संबंधी उसके अर्थ का विस्तार से या संक्षेप से जहां कथन होता है, उसको कहते हैं वस्तु। एक हुआ स्तव, सभी अंगों का उसमें अर्थ प्रकाशित किया जाता है। एक है स्तुति, जिसमें एक अंग संबंधी प्रतिपादन होता है। एक है वस्तु जिसमें एक अंग के अधिकार संबंधी कथन आता है और एक है धर्मकथा जिसमें प्रथमानुयोग आदि शास्त्र का जो कुछ कथन आता है यानी अलग-अलग अनुयोगों का, एक अनुयोग का जिसमें कथन आता है उसको यहां धर्मकथा कहा है।

यहां जो है बंध, उदय और सत्ता - कर्म का जो बंध होता है उसको बंध कहते हैं; जब कर्मों की स्थिति पूरी होती है तब उदय में आकर वे खिर जाते हैं उसको उदय कहते हैं और तब तक सत्ता में पड़े रहते हैं उसको सत्त्व कहते हैं। तो इस कर्म का जिस कथन में सकल अंगों संबंधी अर्थ है, वह विस्तार या संक्षेप के लिये यहां कहनेवाले हैं, तो इसके लिये इसका नाम उन्होंने स्तव कहा। प्रत्येक शास्त्र में या प्रत्येक अधिकार में आचार्यों की यह परंपरा रही है कि वे क्या कहने जा रहे हैं उसका वे वर्णन करते हैं यानी आचार्य प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि मैं अब इसका वर्णन करूंगा। अब यहां हम देखते हैं कि यहां जो बंध वगैरह की बात आयी है तो यहां बंध का कथन करने जा रहे हैं। आप कहेंगे हमने तो सुना न चार प्रकार के बंध, अभी और क्या कथन करेंगे ? यह तो हमने सामान्य जानकारी ली कि प्रकृतिबंध होता है, प्रदेशबंध होता है,

स्थितिबंध होता है और अनुभागबंध होता है। परंतु अभी विस्तार से वर्णन चलेगा, बंध के चार भेदों की कुछ विशेषतायें गाथा नंबर ८९ में बताने जा रहे हैं।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगं त्ति पुधं ॥८९॥

क्या कहते हैं ? बंध चार प्रकार का है। कौन-कौनसे चार प्रकार हैं ? हमने देखे हैं न, सबने। *श्रोता: प्रकृतिबंध।* प्रकृतिबंध। *श्रोता: प्रदेशबंध।* प्रदेशबंध। *श्रोता: स्थितिबंध।* स्थितिबंध। *श्रोता:अनुभागबंध।* और अनुभागबंध। हां, तो कहते हैं, मूल और उत्तरप्रकृतियों का जो जीव के साथ बंध होता है, संबंध होता है, उसको कहेंगे प्रकृतिबंध यानी मूलप्रकृति बंधी। ज्ञानावरण का बंध हुआ, दर्शनावरण का हुआ, मोहनीय का हुआ, इसको क्या कहेंगे हम ? मूलप्रकृति का बंध हुआ और उसमें जो उत्तरप्रकृतियां हैं; ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियों का बंध हुआ तो हम कहेंगे उत्तरप्रकृतियों का बंध हुआ और उन प्रकृतियों में जो फल देने की शक्ति है, उसको कहेंगे अनुभागबंध और उनमें परमाणुओं का जो प्रमाण है, उसको कहेंगे प्रदेशबंध।

बंध

प्रदेशबंध	उत्कृष्ट	१, ४		
स्थितिबंध	अनुत्कृष्ट	चारों	सादि	१
अनुभागबंध	अजघन्य	चारों	अनादि	२
	जघन्य	१, ४	ध्रुव	३
प्रकृतिबंध	- नहीं होते -		अध्रुव	४

आयु- १, ४ वेदनीय- २, ३, ४ शेष- चारों

हमने चार प्रकार के बंध देखे हैं वे पृथक् अर्थात् एक-एक बंध चार प्रकार का है। बंध कितने प्रकार के ? चार प्रकार के। अब उनके फिर और चार-चार प्रकार बता रहे हैं; उनको कहते हैं उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य। कौनसे नाम कहे ? उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और फिर जघन्य का नाम लेना। मैंने जघन्य को पहले कहा। बोर्ड पर चार नाम लिखे हैं। कौन-कौनसे लिखे हैं ? *श्रोता: उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट,*

अजघन्य, जघन्य। उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य। यह उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट क्या होते हैं ? उत्कृष्ट यानी सबसे अधिक उसको कहेंगे उत्कृष्ट और सबसे जो हीन है, कम है उसको कहेंगे जघन्य। जो उत्कृष्ट नहीं है उसको कहेंगे अनुत्कृष्ट और जो जघन्य नहीं है उसको कहेंगे अजघन्य। हर एक पर हम अलग-अलग लगायेंगे।

हम मान लेते हैं एक संख्या है १०० जो है उत्कृष्ट संख्या और एक है ५ जो है जघन्य संख्या। तो हम उत्कृष्ट किसको कहेंगे ? १०० को उत्कृष्ट कहेंगे और अनुत्कृष्ट कौनसा होगा ? ५ से लेकर ९९ तक सारे अनुत्कृष्ट कहलायेंगे। एक साथ चार भेद नहीं करना है; जब उत्कृष्ट कहेंगे तो उत्कृष्ट के अलावा अन्य जो कुछ हैं वे सारे अनुत्कृष्ट कहलायेंगे। अगर हम ५ से लेकर १०० तक की संख्यायें देख रहे हैं, तो उत्कृष्ट है १००, उसके नीचे की बाकी सभी संख्यायें क्या कहलायेंगी ? अनुत्कृष्ट कहलायेंगी। दो ही विभाजन करना है। अब हम जघन्य की तरफ से देखेंगे। जघन्य संख्या है ५, तो ६ से लेकर १०० तक सभी क्या कहलायेंगी ? अजघन्य। अजघन्य में उत्कृष्ट भी हो सकता है, अनुत्कृष्ट भी हो सकता है। वैसे ही अनुत्कृष्ट में जघन्य भी हो सकता है, अजघन्य भी हो सकता है। परंतु उत्कृष्ट और जघन्य एक-एक संख्या है दोनों ओर की। जब उत्कृष्ट की बात करेंगे तो उसके साथ अनुत्कृष्ट है कि नहीं इसकी बात करेंगे; जो उत्कृष्ट नहीं है वे सभी की सभी अनुत्कृष्ट हैं। आपको दो में ही विभाजित करना है, ॲट अ टाइम चार नहीं लेना है। यह उत्कृष्ट है, ये अनुत्कृष्ट हैं और बीच में अजघन्य किसको कहना ? ऐसा कुछ नहीं है। एक बार उत्कृष्ट को लेना, बाकी सारे अनुत्कृष्ट। एक बार जघन्य को लेना, बाकी सारे अजघन्य। इसतरह इसमें हमको देखना है।

हमने देखे प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध, यहां कहते हैं उनके चार भेद होते हैं - उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य। तो किसमें-किसमें ये चारों भेद हो सकते हैं ? हम देखेंगे अभी यहां पर। जो सबसे कम है उसको जघन्य कहेंगे। अब उसमें और भी भेद करेंगे परंतु उसके पहले हम देखते हैं; जब प्रकृतिबंध होता है, तो प्रकृतिबंध में प्रकृतियों के नाम कहे जाते हैं। ज्ञानावरण का बंध हुआ, दर्शनावरण का बंध हुआ या अगर उत्तरप्रकृति कहनेवाले हैं तो ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियों का बंध हुआ ऐसा कहेंगे न। दर्शनावरण की नौ प्रकृतियों का बंध हुआ। उसमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट नहीं कह सकते। इसलिये वहां लिखा है चार्ट में कि यह जो

प्रकृतिबंध है इसमें ये भेद नहीं होते। इसलिये हमने इसका लास्ट नंबर रखा। प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध को लिखा है, नहीं तो हमेशा हम प्रकृतिबंध को पहले लिखते हैं। प्रकृतिबंध में हम कौनसी प्रकृति बंधी इतना तो कह सकते हैं, उसमें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट या जघन्य, अजघन्य कुछ है ही नहीं है। इसलिये प्रकृतिबंध में उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य या जघन्य ऐसे चार भेद नहीं पाये जाते हैं।

प्रदेशबंध - प्रदेशबंध किसको कहते हैं ? परमाणुओं की जो संख्या है, उसका जो प्रमाण है, नंबर ऑफ परमाणु; टोटल नंबर ऑफ परमाणु जो एक समय में बंधते हैं। उसमें तो हम कह सकते हैं कभी उत्कृष्ट बंध हुआ, उत्कृष्ट बंध हुआ का अर्थ होता है; मॅक्झिमम नंबर ऑफ परमाणुओं का बंध हुआ। सर्वोत्कृष्ट जो बंध सकते हैं उतना बंध हुआ तो उसको कहेंगे हम उत्कृष्ट प्रदेशबंध और यदि उत्कृष्ट नहीं होता तो क्या कहेंगे? अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध। यहां प्रदेशबंध की बात चल रही है। यहां ऐसा नहीं कहना कि ७० कोड़ाकोड़ी सागरवाला वह उत्कृष्ट प्रदेशबंध है। जरूरी नहीं है, क्यों ? परमाणु की जो संख्या है वह किस पर निर्भर है ? हमने पहले देखा था। *श्रोता: योग पर।* हां, योग पर। जहां योग ज्यादा है वहां परमाणुओं की संख्या ज्यादा ग्रहण की जाती है और जहां योग कम है वहां परमाणुओं की संख्या कम ग्रहण की जाती है। हर एक जीव की यानी एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों की, अपनी-अपनी योग की जो कोई रेंज है वह अलग-अलग है। एकेन्द्रियों में कम है, द्वीन्द्रियों को उससे अधिक है, ऐसे पंचेन्द्रियों तक अधिक अधिक है। अकेले संज्ञी पंचेन्द्रियों की भी बात करेंगे तो भी उनके जघन्य योग से उत्कृष्ट योग तक बहुत सारे व्हेरिएशन्स यानी स्थान पाये जाते हैं। जघन्य योग से लेकर उत्कृष्ट योग तक बहुत सारे स्थान, असंख्यात स्थान पाये जाते हैं यानी योग असंख्यातगुणा हो जाता है। कभी जघन्य योग होगा, कभी उससे अधिकवाला होगा, कभी उससे और अधिक, कभी टॉपमोस्ट होगा। जब कभी जघन्य योग होगा तो उसका समयप्रबद्ध भी जघन्य होगा और जब योग मॅक्झिमम होगा तो समयप्रबद्ध में जो परमाणु हैं वे भी मॅक्झिमम होंगे। यह जो प्रदेशबंध है वह जघन्य भी हो सकता है, उत्कृष्ट भी हो सकता है यानी उसमें चारों भेद हो सकते हैं। उत्कृष्ट- जब उत्कृष्ट योग है तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध होगा। समयप्रबद्ध में परमाणु तो अनंत होते हैं परंतु उस अनंत के भी अनंत प्रकार होते हैं; कभी छोटावाला अनंत होगा तो कभी

बहुत बड़ावाला अनंत होगा।

जब प्रदेशबंध की बात करते हैं तो उसमें सर्वाधिक परमाणुओं का बंध होगा, तो उसको हम कहेंगे उत्कृष्ट प्रदेशबंध। उत्कृष्ट नहीं होगा उसको कहेंगे अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध। अब उन्हीं परमाणुओं की बात हम जघन्य की ओर से देखेंगे। जब जघन्य नहीं होता है तब कहेंगे अजघन्य है और जब मिनिमम पॉसिबल है यानी जब योग भी अत्यंत जघन्य है, तब कहेंगे उसका जघन्य प्रदेशबंध होता है। एक और भी बात है, यह जो प्रदेशों का यानी परमाणुओं का बटवारा होता है, वह बाद में अपना विषय चलेगा; प्रदेशों का बटवारा कैसा होता है, कौनसे कर्म में कितने परमाणु चले जाते हैं क्योंकि एक समय में तो कभी सात या कभी आठ प्रकृतियों का बंध होता है। हर एक प्रकृति के खाते में कितने-कितने परमाणु जमा होते हैं, परमाणु कितने चले जाते हैं, उनका बटवारा कैसे होता है उसकी बात आगे आयेगी। यहां ऐसा समझना, जहां मॅक्झिमम नंबर ऑफ प्रकृतियां बंधेगी, अधिक से अधिक प्रकृतियां बंधेगी, वहां हर प्रकृति में कम द्रव्य जायेगा, उसके खाते में कम माल जायेगा, उसके हिस्से में कम परमाणु आयेंगे।

हमने देखा है जब मिथ्यात्व गुणस्थान में, अभी आयु की बात हम छोड़ देंगे अलग से या आयु को भी पकड़ कर बात करेंगे तो आठ कर्मों का बंध होता है। छह कर्मों का बंध कहां होता है ? *श्रोता: दसवें में।* दसवें में। आयु का बंध कहां तक होता है ? अभी तीसरे में नहीं होता है वह बात छोड़ देना। *श्रोता: सातवें तक होता है।* सातवें तक होता है और आठवें गुणस्थान में ? आयु का बंध नहीं होता है, अन्य सभी कर्मों का बंध हो रहा है। वहां हर एक मूलप्रकृति में जानेवाला जो माल है, वह अधिक होगा। जब उसके साथ आयु बंधती है तो आठ में डिव्हिजन होगी और आयु नहीं बंध रही है तो सात में होगी। नौवें गुणस्थान तक तो सात का बंध होता है। दसवें गुणस्थान में जहां सूक्ष्मलोभ का उदय है वहां मोहनीय का बंध नहीं होता; मूलप्रकृति जो मोहनीय है उसका बंध नहीं होता है तो कितने में सारा विभाजन होगा ? छह में होगा। अब और आगे बढ़ेंगे। ग्यारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां बंधती हैं ? अभी अपना यह विषय नहीं चला, चलेगा; तो वहां एक मात्र सातावेदनीय बंधती है, एक मात्र सातावेदनीय का बंध होता है। तो जो पूरा का पूरा समयप्रबद्ध किसके खाते में जायेगा ? *श्रोता: सातावेदनीय में।* एक सातावेदनीय में चला जायेगा और वह है तो एक समयवाला तो

जितना आयेगा उतना उसी समय वह खिर जायेगा। तो इसतरह से यह प्रदेशबंध में जहां सर्वोत्कृष्ट प्रदेशों का बंध है; प्रदेश यानी परमाणु; जहां परमाणुओं की संख्या अधिक से अधिक है वहां कहेंगे उत्कृष्ट प्रदेशबंध। जहां उत्कृष्ट नहीं है उसको कहेंगे अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध और यह किस पर निर्भर है ? तो योग पर निर्भर है।

योग क्या है ? आत्मप्रदेशों का चंचलपना और उसमें निमित्तरूप क्या देखा था हमने ? कौनसे कर्म का उदय हमने निमित्तरूप से देखा था, याद है ? *श्रोता: शरीर नामकर्म का उदय।* शरीर नामकर्म का उदय। जब हम कर्म की बात कर रहे हैं, तो कार्माणशरीर नामकर्म के उदय में आत्मप्रदेशों का वहां कंपन पाया जाता है उसको योग कहते हैं। उसमें कर्म को आकर्षण करने की जो शक्ति है उस शक्ति को भावयोग कहेंगे और वहां जो ॲक्चुअल कंपन है, हां, उसको स्पंदन कहो उसको कहेंगे द्रव्ययोग। द्रव्ययोग और भावयोग दोनों आत्मा में घटित करना है। हम द्रव्यास्रव-भावास्रव, द्रव्यबंध और भावबंध में क्या करते हैं ? एक जीव पर घटित करते हैं और एक पुद्गल पर घटित करते हैं। यहां ऐसा नहीं है। शरीर नामक नामकर्म के उदय में, यहां हम कार्माणशरीर नामकर्म के उदय में; आत्मप्रदेशों की जो कोई शक्ति है, योग है, उसके कारण कार्माणवर्गणाओं का जो ग्रहण होता है; कर्म परमाणुओं का ग्रहण होता है का अर्थ क्या है ? कार्माणवर्गणा है वह कर्मरूप से परिणमित होती है; उसको ही हम कहते हैं कर्म का ग्रहण होना। कहीं बाहर से खींची चली नहीं आती कार्माणवर्गणा। यहां, अपने ही आत्मप्रदेशों में परमाणु तो अनंतानंत हैं, उनमें से कार्माणवर्गणा टाइपवाले जो कोई परमाणु हैं, वे स्वयं कर्मरूप परिणमित होते हैं और वहां उसको हम क्या कहते हैं ? इतने प्रदेशों का बंध हुआ, इतने परमाणुओं का ग्रहण हुआ, क्योंकि सभी के सभी परमाणु तो कर्मरूप नहीं होते। जीव के कारण अगर वे होते; जीव ने मोह-राग-द्वेष किया, इसलिये कर्म का बंध हुआ; इसलिये कार्माणवर्गणा कर्मरूप हुयी ऐसा अगर कहेंगे तो जितनी हैं उतनी सारी ही टर्न होनी चाहिये थी, परंतु उसमें से बंधयोग्य परमाणु ही कर्मरूप होते हैं। जिसमें वह योग्यता पड़ी है; योग्यता जिन परमाणुओं में है वे ही कर्मरूप होते हैं, सभी के सभी तो नहीं होते। देखो, करणानुयोग में भी एक-एक, जिसको कहेंगे न ? पग-पग पर, निमित्त-उपादान सिद्धान्त सिद्ध हो जाता है कि निमित्त से परद्रव्य में कुछ नहीं होता। यदि निमित्त से

होना होता तो सारी कार्माणवर्गणा कर्मरूप होनी चाहिये थी। परंतु वे ही होती हैं जो होने योग्य होती हैं, उस समय उसरूप परिणमने की योग्यता जिनमें पड़ी है। बाद में उसमें से भी और-और चली आयेगी।

यहां पर हमने प्रदेशबंध चार प्रकार का देखा। कौनसे चार प्रकार देखें ? हां, बोलो निलेशभाई ? *श्रोता: उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य।* उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य ऐसे हमने चार भेद देखे। आगे का भेद कौनसा है ? *श्रोता: स्थितिबंध।* स्थितिबंध। अब स्थितिबंध में तो यह लगाना आसान है। जहां उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है उसको कहेंगे उत्कृष्ट स्थिति का बंध हुआ - उत्कृष्ट स्थितिबंध और जो उत्कृष्ट नहीं है उन सबको क्या कहेंगे ? अनुत्कृष्ट। जहां जघन्य स्थिति का बंध होता है उसको कहेंगे जघन्य स्थितिबंध और जो जघन्य नहीं है उनको कहेंगे अजघन्य। मिथ्यात्व के बारे में हम देखेंगे। कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, हमने बहुत बार सुना है न, इसलिये पूछ रहे हैं कि मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना होता है ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर।* हां, सबको याद है ७० कोड़ाकोड़ी सागर। ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है, इतने काल का बंध सर्वोत्कृष्ट बंध होता है और उस समय ७० कोड़ाकोड़ी सागर के नीचेवाला जो कोई बंध है उसको क्या कहेंगे ? अनुत्कृष्ट बंध।

अब संज्ञी पंचेन्द्रिय को मिथ्यात्व का जघन्य में जघन्य बंध कितना होगा ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त।* अंतर्मुहूर्त ? अच्छा। *श्रोता: अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।* अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। संज्ञी पंचेन्द्रियों की बात चल रही है, संज्ञी पंचेन्द्रियों को मिथ्यात्व का जघन्य में जघन्य बंध; स्थितिबंध की बात चल रही है यहां। स्थिति कम से कम बंधेगी तो कितनी बंधती है ? तो कहते हैं अंतःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण का बंध होता है। उसको क्या कहेंगे ? संज्ञी पंचेन्द्रियों के लिये वह जघन्य कहलायेगा। परंतु सबके लिये वह जघन्य नहीं होगा। तो सभी जीवों की अगर बात करेंगे, तो जघन्य कितना होगा बंध ? हां, बोलो, पीछे बैठे हैं न, करणानुयोगवाले कोई। एकेन्द्रियों में कितना होता है ? *श्रोता: सागर में भी कुछ कम।* हां, एक सागर में भी कुछ कम, पल्य का असंख्यातवां भाग कम लिखना - वह तो जघन्य स्थितिबंध होगा। उस जघन्य के अलावा बाकी जो कोई है, जघन्य के सामने जो ७० कोड़ाकोड़ीवाला है उसको भी क्या कहेंगे ? अजघन्य। ख्याल में आती है बात ? जो जघन्य नहीं है उसको कहेंगे अजघन्य, जो उत्कृष्ट नहीं है उसको

कहेंगे अनुत्कृष्ट; अन्-उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट। तो कभी उत्कृष्ट बंध होगा, कभी अनुत्कृष्ट और जघन्य की अपेक्षा कहेंगे तो कभी अजघन्य होगा तो कभी जघन्य। अभी यह हमने स्थितिबंध की बात देखी। *श्रोता: अंतःकोड़ाकोड़ी सागर जघन्य होगा तो अजघन्य क्या कहेंगे ?* आपका प्रश्न है अंतःकोड़ाकोड़ी सागर अगर हम जघन्य कहेंगे तो अजघन्य क्या होगा ? वहां से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक की सभी स्थितियां हैं उनको हम अजघन्य कहेंगे। जो जघन्य नहीं वह सब कुछ अजघन्य में आ जायेगा।

हमने प्रदेशबंध देखा, स्थितिबंध देखा। अभी अनुभागबंध देखना है। सर्वोत्कृष्ट अनुभाग का बंध होगा तो उसको हम उत्कृष्ट अनुभागबंध कहेंगे और जो उत्कृष्ट नहीं होगा तो क्या कहेंगे ? *श्रोता: अनुत्कृष्ट कहेंगे।* अनुत्कृष्ट कहेंगे। जब जघन्य में जघन्य अनुभाग का बंध होता है तो उसको हम जघन्य कहेंगे और जो जघन्य नहीं है उसको क्या कहेंगे ? अजघन्य। ख्याल में आती है बात ? अनुभाग का जो है न, थोड़ा अटपटा है। कैसे ? नीचे के गुणस्थानों में जघन्य अनुभाग बंधेगा कि ऊपर के गुणस्थानों में ? *श्रोता: ऊपर के।* ऊपर के ? क्या कहते हैं ? क्यों ऐसा ? मैंने क्या पूछा ? नीचे के गुणस्थानों में अनुभाग कम बंधेगा कि ऊपर के गुणस्थानों में कम बंधेगा ? *श्रोता: ऊपर के गुणस्थानों में कम बंधेगा।* क्यों ? *श्रोता: प्रकृतियां ऐसी बंधती हैं।* मैं कहती हूं ज्यादा बंधेगा तो ? *श्रोता: कैसे ?* हां, आपको पहले ऐसा पूछना चाहिये कि आप कौनसी प्रकृति की बात कर रहे हैं ? आप शुभ प्रकृतियों की बात कर रहे हो, प्रशस्त प्रकृतियों की या अप्रशस्त प्रकृतियों की ? नीचे के गुणस्थानों में अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबंध ज्यादा होगा, ऊपर के गुणस्थानों में उनका अनुभागबंध कम होता चला जायेगा। जैसे मोहनीय का बंध कहां तक हमने देखा ? नौवें गुणस्थान तक। तो उसके अंत में वहां जो बंध होगा उसका अनुभाग कितना मंद होगा ! ज्ञानावरण कब तक बंधती हैं ? दसवें गुणस्थान तक बंधती हैं तो वहां जो ज्ञानावरण का अनुभाग का बंध होगा वह जघन्य होगा क्योंकि वहां जीव के विशुद्ध परिणाम अधिक हैं। इसकी बात तो अभी आयेगी। हमने अभी अनुभाग के प्रकरण को यहां नहीं देखा है। हम केवल उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट क्या हैं ? इनको ही समझ रहे हैं।

अभी ना हमें यहां गुणस्थानों का पता है और ना ही अनुभाग कहां क्या बंधता है इसका पता है। परंतु जैसे शुभ प्रकृतियों में भी चार प्रकार के अनुभाग देखे थे। नाम

याद है किसीको ? हां, बोलो बहन। *श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत।* गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। यानी यह जो अमृतवाला है वह अधिक अनुभागवाला है और वह जो गुड़वाला है वह कम अनुभागवाला है। वैसे ही अशुभ प्रकृतियों में क्या देखा था हमने ? *श्रोता: नीम, कांजीर, विष, हलाहल।* नीम, कांजीर, विष और हलाहल और ज्ञानावरणादि में लता, दारु, अस्थि और शैल। तो यहां जो अशुभ प्रकृतियां हैं, जब अशुभ प्रकृतियां कहेंगे तो घातिवाली ४७ और अघातिवाली ये अशुभवाली जो हैं, उनकी बात करेंगे। अशुभ प्रकृतियों का बंध अशुभभाव के कारण, अधिक अनुभाग बंधता है। जब जीव के परिणाम शुभ हैं तो इनमें अनुभाग बंध होता है वह कम बंधता है। पुण्य प्रकृतियां नीचे के गुणस्थानों में कम अनुभागवाली होगी, ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में उनका अनुभाग अधिक होगा। उसका फल भी अधिक मिलेगा कि नहीं ? हम देखते हैं, ऊपर के गुणस्थानों में सातावेदनीयादि का जो बंध हो रहा है, सातावेदनीय का उत्कृष्ट अनुभाग कहां बंधेगा ? जहां तक वह लास्ट में बंधती है। कहां तक बंधती है ? *श्रोता: तेरहवें गुणस्थान तक।* तेरहवें में तो उसका अनुभाग बंध होता नहीं है, क्यों ? वहां कषाय है ही नहीं है। कषाय सहित कहां तक बंधती है ? अनुभाग की बात चल रही है। देखिये-देखिये, सातावेदनीय का बंध कहां तक होता है ? तेरहवें तक होता है। ग्यारहवेंवाले को होगा, बारहवेंवाले को भी, तेरहवेंवाले को भी। परंतु वहां कषाय तो है नहीं। हमने पहले देखा है योग और कषाय मिलकर चार प्रकार का बंध होता है क्योंकि कषाय स्थिति और अनुभाग में निमित्त है। जहां कषाय नहीं है, वहां ना उसमें अनुभाग होगा, ना स्थिति होगी। तो अनुभाग सहित बंध कहां होगा ? *श्रोता: दसवें के अंत तक।* दसवें के अंत तक। दसवें गुणस्थान के अंत तक क्योंकि ग्यारहवें में एक मात्र सातावेदनीय का बंध होगा परंतु वह बिना स्थिति, अनुभाग का होगा।

देखो, ये बातें फिर आनेवाली हैं क्योंकि अभी तक हमने कहां कौनसी प्रकृतियों का बंध मिटता है यह नहीं देखा है। देखनेवाले हैं, परंतु कुछ तो विषय इसके साथ आयेगा जरूर, बाद में उसका जो कुछ ओडिटिंग वगैरह चलेगा अपने में। कैसा होता है ओडिटिंग ? जैसे गुरुदेवश्री के जमाने में क्या करते थे हम ? पहले में पहले जब गुरुदेवश्री को सुनते थे, तो इतना ही समझते थे कि समझाणुं कांई ? फिर अहाहाहा करके बहुत प्रसन्नता से वह जो उनकी मुद्रा होती थी उतना तो समझते थे। बाद में जब

द्रव्य, गुण, पर्याय को समझने लगे तो उनको भी समझने लगे। उनके जो शिष्य थे बाबूभाई मेहता वगैरह तो वे हमको खोल-खोलकर सभी बातें समझाते थे। तब हमें गुरुदेवश्री क्या कहते हैं वह समझ में आता था। ख्याल में आया न ? तब हम क्या करते थे ? सबको सुनते रहते थे। कभी गुरुदेवश्री को समझते, सुनते थे, कभी उनके शिष्यों के द्वारा, अनेक पंडितों के द्वारा समझते थे, सुनते थे। कभी बहुत हाय लेव्हल की बातें सुनते थे। कभी नेमाकाका हमें तो द्रव्य, गुण, पर्याय की; सभी लघुसिद्धान्त प्रवेशिका की बातें सुनाया करते थे। सबको हम सुनते थे, ग्रहण करते थे और बाद में यहां तो यह ओडिटिंग चलता है फिर, अपने आप चलता है। अभी तो हम यही कोशिश करते हैं कि सरल बातें शुरू करके लोगों को समझायें और फिर स्टेप बाय स्टेप आगे बढ़ें। परंतु वहां तो जहां से मिले वहां तो ग्रहण करने की चाह थी, है न ! तो ये कुछ बातें पहले हम भले ही सुन ले परंतु बाद में उसका अर्थ, उसकी सब बातें आनेवाली हैं।

हम देख रहे थे उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट की बात, सातावेदनीय का उत्कृष्ट अनुभाग कहां बंधता है ? तो दसवें गुणस्थान के अंत में उत्कृष्ट-सर्वोत्कृष्ट अनुभाग बंधता है। उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य; कौन-कौनसे बंधों में ये चारों ही भेद पाये जाते हैं ? *श्रोताः प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध।* प्रदेशबंध में भी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, अजघन्य-जघन्य होगा; स्थितिबंध में भी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, अजघन्य-जघन्य होगा; अनुभागबंध में भी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य होगा। परंतु प्रकृतिबंध में ऐसे चार भेद नहीं पाये जाते हैं। वहां तो मात्र कौनसी प्रकृति बंधती है इतना ही कथन होता है। यहां तक बात समझ में आयी ? ये उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य क्या है, किसे कहते हैं यह हमने देखा। वह कहां होती हैं वह अपना यहां का विषय नहीं है। हमने उसकी बात उठायी है फिर भी वह यहां का विषय नहीं है। वह होता है इतना ही अब हम जाने। ये हमने उसमें जो चार-चार भेद देखे हैं, उस हर एक में और चार-चार भेद होते हैं। ९० नंबर की गाथा में उत्कृष्ट आदि के भी और भेद करेंगे। उत्कृष्ट में भी कौनसे भेद होते हैं, अनुत्कृष्ट में भी कौनसे होते हैं उसकी बात करेंगे।

सादिअणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं॥९०॥

उनमें चार प्रकार के बंध हैं - सादिबंध, अनादिबंध, ध्रुवबंध और अध्रुवबंध। यह

सादि-अनादि क्या है ? हम फिर से देखेंगे, पहले एक बार हमने देखा था। सादि का अर्थ है स + आदि = सादि; जिसकी शुरुआत है उसको कहेंगे यह सादिबंध है। पहले नहीं था अब हो गया तो उसको हम कहेंगे सादि। जो अनादि से ही होता आया है उसको कहेंगे अनादि। ध्रुव किसको कहेंगे ? जिसका बंध लगातार-निरंतर चलता ही रहे उसको कहेंगे ध्रुव और अध्रुव यानी कभी न कभी वह बंध मिट जाये तो उसको कहेंगे अध्रुव। हम अभी मूलप्रकृतियों में उदाहरण देकर देखते हैं। जैसे सादिबंध किसको कहेंगे ? ज्ञानावरण का बंध कबसे चल रहा है ? तो कहेंगे अनादि से चल रहा है। वह कब तक बंधता है ? दसवें गुणस्थान तक बंधता है। अनादि से दसवां गुणस्थान प्राप्त नहीं हुआ है तब तक उस जीव को क्या होगा ? वह ज्ञानावरण का बंध अनादि से चला आ रहा है। दर्शनावरण का बंध अनादि से हो रहा है। मोहनीय का बंध ? अनादि से हो रहा है। फिर अंतराय का बंध ? अनादि से हो रहा है। वेदनीय का बंध ? *श्रोता: अनादि।* अनादि। हमने उसकी उत्तरप्रकृति नहीं पूछी। हमने ऐसा नहीं पूछा कि सातावेदनीय का बंध कब से है ? क्योंकि कभी साता, कभी असाता, कभी साता, कभी असाता का बंध होगा। हम अभी मूलप्रकृतियों की बात देख रहे हैं, तो वेदनीय भी अनादि से बंध रहा है। आयु ? *श्रोता: कभी-कभी बंधती है।* कभी-कभी बंधती है। आयु का बंध कैसा है ? कभी बंधता है और अंतर्मुहूर्त में वह बंध रुक जाता है उसको कहेंगे वह सादि है, अनादि नहीं कहेंगे। बंध की बात चल रही है।

आयुकर्म अपनी सत्ता में तो अनादि से ही रहा है न ! अभी जो हम भोग रहे हैं और फिर हम जो बांधेंगे उसकी बात नहीं। जो नया बंध हो रहा है, उसकी शुरुआत है न ! हमने देखा था आयु का बंध त्रिभाग में होता है। जन्म के समय से लेकर उसका बंध नहीं था, सात ही कर्म बंध रहे थे। जब आयु का बंध हो रहा है तब उसको कहेंगे यह आयु के बंध की शुरुआत हुयी; पहले बंध नहीं था अब उसकी शुरुआत हुयी, तो उसको हम कहेंगे सादिबंध। आयु में वह सादि कहलायेगा। तो यह आयु का बंध सादिबंध कहलाता है। कौनसी रह गयी अभी ? वेदनीय देखा, आयु, नामकर्म - वह भी अनादि का बंध रहा है। उत्तरप्रकृतियों की बात नहीं है। वे ही की वे ही प्रकृतियों की बात नहीं हो रही है। हम तो मूलप्रकृतियों की सिम्पल बात कर रहे हैं और गोत्रकर्म ? वह भी अनादि से बंध रहा है। भले कभी उच्च हो या कभी नीच हो, परंतु गोत्रकर्म का

बंध तो हो रहा है। इसतरह से हमने इसमें देखा कि आयु का ही बंध सादि हो सकता है। यह तो हमने सादिबंध की बात की और अनादिबंध की, यह दो भेद तो हो गये।

फिर दूसरे दो कौनसे हैं ? ध्रुव और अध्रुव। जो अनादि से ज्ञानावरण का बंध करते आया है, जिसने एक बार भी दसवां गुणस्थान नहीं प्राप्त किया है। आप कहेंगे, क्या कहते हो ? दसवां गुणस्थान प्राप्त करेगा तो अरिहंत होकर मोक्ष चला जायेगा न ! उसकी बात नहीं है। जब उपशमश्रेणी चढ़ता है, तो उपशमश्रेणी में दसवें गुणस्थान तक तो बंध हुआ था। जब ग्यारहवें में गया तब बंध रुका और फिर उतरकर दसवें में आया है तो दुबारा बंध शुरू हुआ। तो उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: उपशमश्रेणी किसको कहते हैं ?* देखो, मुनिराज के जो हमेशा के गुणस्थान हैं वह छठा-सातवां गुणस्थान है। जब उनकी अंतरंग स्थिरता बढ़ती है तो क्या होता है ? उनको आठवां, नौवां, दसवां, ग्यारहवां गुणस्थान प्राप्त होता है, जिसको उपशमश्रेणी कहते हैं। उपशमश्रेणी क्यों ? क्योंकि यहां चारित्रमोहनीय जो है उसको उपशमित किया है, उसका उदय मिटता चला जाता है और जीव पूर्ण वीतरागी होता है। कहां ? ग्यारहवें गुणस्थान में। कैसी वीतरागता ? अरिहंत जैसी पूर्ण वीतरागता। परंतु वह अंतर्मुहूर्त के लिये टिकती है फिर वापस उसका काल समाप्त होने पर दसवां गुणस्थान प्राप्त होता है। फिर दुबारा ज्ञानावरण का बंध शुरू हो जाता है, अब उस बंध को क्या कहेंगे ? एक तो सादि कहेंगे; जो अनादि से बंधता था उसको तो हमने ध्रुव कहा, अब इसको क्या कहेंगे ? अध्रुव कहेंगे। बीच में मिट गया न एक बार तो उसको कहेंगे अध्रुव। हम ग्रंथ में से पढ़ेंगे तो आपको और क्लिअर हो जायेगा। जब उपशमश्रेणी में बंध रुक जाता है और फिर वापस नीचे के गुणस्थानों में आने पर शुरू हो जाता है, उसको कहेंगे सादि और उसको कहेंगे अध्रुव।

अन्यथा जब तक बंधव्युच्छित्ति नहीं हुयी है, वह बंधव्युच्छित्ति क्या है ? बंध का रुक जाना। विशिष्ट कर्म प्रकृतियां विशिष्ट गुणस्थान तक ही बंधती हैं, ऊपर के गुणस्थानों में उनका बंध रुक जाता है। यदि वह जीव वापस नीचे के गुणस्थानों में आता है, तो फिर दुबारा उनका बंध शुरू होता है। दुबारा शुरू होता है तो उसको कहेंगे सादि। जैसे मिथ्यात्व का बंध कब से चला आ रहा है ? अनादि से। किसी जीव को सम्यग्दर्शन हुआ, तो उसको मिथ्यात्व का बंध होगा कि नहीं होगा ? नया बंध नहीं

हो रहा है। नया बंध नहीं हो रहा है, जब तक सम्यग्दृष्टि है तो मिथ्यात्व का बंध नहीं हो रहा है। अब ऐसा जीव सम्यक्त्व से पलटकर फिर दुबारा मिथ्यात्व में गया तो क्या होगा ? मिथ्यात्व का बंध शुरू हो जायेगा, तो उसको कहेंगे वह सादिबंध है। उसके बंध को क्या कहेंगे ? सादि। परंतु एक बार उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया तो अभी तो वह नियम से मोक्ष जानेवाला ही है, तो वह बंध अध्रुव कहलायेगा। अब कोई अभव्य जीव है; अभव्य किसे कहते हैं मालूम है ? जिसमें मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता ही नहीं है। इसको तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा तो उसका मिथ्यात्व का बंध अनादि से चला आ रहा है। कब तक चलेगा ? अनंतकाल तक। ज्ञानावरण का बंध अनंतकाल तक, सातों ही कर्मों का बंध अनंतकाल तक चलेगा तो उसको हम कहेंगे उसका ध्रुवबंध है। ध्रुवबंध है क्योंकि वह हमेशा बंधता ही रहेगा, उसका बंध कभी भी रुकनेवाला नहीं है।

हमने चार प्रकार देखे न ! एक तो है अनादि का, अनादि से बंधता आया है उसको कहेंगे अनादि का बंध है। एक बार बीच में रुककर फिर दुबारा बंध शुरू होगा, तो उसको हम कहेंगे सादिबंध है। जो ध्रुवरूप से बंधता ही रहेगा जैसे अभव्यों में है तो उसको कहेंगे वह ध्रुवबंध है। भव्य जीवों में वह बंध रुक कर नष्ट हो जायेगा तो उसको कहेंगे अध्रुवबंध है। अब हम एक-एक उत्कृष्ट आदि के भेद के ऊपर इनको लगायेंगे। हम गाथा के अनुसार यहां पढ़ेंगे पहले। ९० नंबर की गाथा अभी हमने पढ़ी थी, जरा उसकी टीका पढ़ते हैं। उत्कृष्ट आदि जो भेद हमने देखे थे- उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य उसमें एक-एक पर ये चार-चार भेद लगेंगे। पहले सादि-अनादि क्या है ? उसको देखकर फिर इन भेदों की चर्चा करेंगे। देखो, **चार प्रकार हैं, सादिबंध, अनादिबंध, ध्रुवबंध और अध्रुवबंध। वहां विवक्षित बंध का बीच में अभाव होकर दुबारा जो बंध होता है वह सादिबंध है।** अभी हमने देखा न, ज्ञानावरण का बंध लगातार चला आ रहा था अनादि से, बीच में यानी दसवें गुणस्थान तक तो बंधता था। उपशमश्रेणी है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थान में नहीं बंधेगा। हमें वापस बंध कराना है इसलिये उपशमश्रेणी की बात की। क्यों ? क्षपकश्रेणीवाला दसवें के बाद बारहवें गुणस्थान में चला जाता है, उसमें से तेरहवां प्राप्त करके, चौदहवां पार करके मोक्ष चला जायेगा। उसके दुबारा बंध होने की कोई बात है ही नहीं। इसलिये, दुबारा बंध कराना है इसलिये ऐसा जीव लिया कि जो उपशमश्रेणी चढ़कर उतरता है।

देखो हम गये थे कहां ? देऊलगांवराजा, महाराष्ट्र में गांव है एक छोटा। कोई आये हैं क्या वहां से ? हैं ? कौन हैं ? बहुत अच्छा हां- हां। हां, तो वहां हम गये थे दसलक्षण में। *श्रोता: आये थे।* हां आये थे, आपको याद है न ! इतना तो याद है। वहां एक प्रश्न आया, किसी महिला ने पूछा कि बेचारे मुनिराज ! उपशमश्रेणी क्यों चढ़ते हैं ? हम मिथ्यादृष्टि हमको मालूम है कि उपशमश्रेणी चढ़नेवाले नियम से गिरते हैं, नीचे आते हैं, तो वे बेचारे उपशमश्रेणी चढ़ते ही क्यों हैं ? सरल प्रश्न था बेचारी का क्योंकि जो मिथ्यादृष्टि हैं और मुनिराजों को बेचारा कह रही हैं। क्योंकि क्या है, तत्त्व की जानकारी नहीं है और अभ्यास भी नहीं है। यह उपशमश्रेणी हो या क्षपकश्रेणी हो, कोई सोच-समझकर नहीं चढ़ सकते हैं। सहज में अंतरंग में स्थिरता होती है, इतनी विशुद्धता बढ़ती है तो कोई उपशमश्रेणी चढ़कर उतरते हैं और कोई क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं। उपशमश्रेणी चढ़े या क्षपकश्रेणी चढ़े, उपशमश्रेणी चढ़कर उतरने में भी कर्मों की तो असंख्यात-असंख्यात-असंख्यातगुणा निर्जरा हो जाती है। उपशमश्रेणी चढ़ना भी कोई अजब-गजब का कार्य है। पूर्ण वीतराग अवस्था प्राप्त होती है परंतु ऐसे कुछ नियम होते हैं कि क्षपकश्रेणी नहीं मांडते। जिस किसीने देवायु का बंध किया है, जिसने आयु का बंध किया है वह तो उस भव में कैसे मोक्ष जायेगा ? संहनन का भी नियम है। वज्रवृषभनाराचसंहनन नहीं है तो वह क्षपकश्रेणी नहीं मांड सकता। ऊपर के तीन संहनन हैं तो उपशमश्रेणी मांडकर उतर सकता है। बहुत सारे नियम हैं, हमें उसकी कुछ जानकारी नहीं है तो क्या लगता है, ये बेचारे उपशमश्रेणी क्यों मांडते हैं ? वह भी एक अपूर्व पुरुषार्थ है। अरे मुनि-जीवन ही कुछ अपूर्व बात है। छठा-सातवां गुणस्थान यह भी कुछ कम की बात नहीं है। उनका परिणमन कितना अपूर्व है, उनकी जो कुछ अंतर्बाह्य स्थिति है, अलौकिक स्थिति है। उनको तो चलते-फिरते सिद्ध कहा है।

यहां जो हम देखते हैं कि विवक्षित कर्म का बंध हो रहा था, बीच में वह बंध रुक गया और फिर दुबारा शुरू हुआ तो उसको क्या कहेंगे हम ? *श्रोता: सादिबंध।* सादिबंध, यहां हम प्रकृति की अपेक्षा देख रहे हैं। प्रदेशों की अपेक्षा भी बात करेंगे। उत्कृष्ट बंध हो रहा था, प्रदेशों का उत्कृष्ट बंध हो रहा था। कोई भी बंध हो, प्रदेशों का हो या स्थिति का हो या अनुभाग का हो, उतना का उतना बंध यानी उसके कारणभूत परिणाम वैसे के वैसे लगातार बहुत काल तक नहीं रह सकते। उसकी भी कोई

यथायोग्य लिमिट - मर्यादा होती है। तो वे जो कुछ स्थितिबंध के योग्य परिणाम हैं या प्रदेशबंध के योग्य परिणाम हैं उनसे अधिक काल तक उसका लगातार उत्कृष्ट बंध नहीं होगा। तो क्या होगा बाद में ? अनुत्कृष्ट होने लगेगा। दुबारा कुछ काल के बाद उत्कृष्ट बंध होगा तो क्या कहेंगे उस उत्कृष्ट को ? अब उसको हम सादि कहेंगे। पहले हमने प्रकृति पर लगाया न, कोई प्रकृति बंध रही थी जैसे ज्ञानावरण की प्रकृति बंध रही थी। अनादि से बंधती आयी थी और फिर दसवें गुणस्थान में बंध था, ग्यारहवें में बंध रुक गया; वापस नीचे लौटकर दसवें में बंध शुरू हुआ तो उस प्रकृतिबंध को हम सादि कहेंगे। अब यहां हमें प्रदेशबंध पर भी लगाना है, स्थितिबंध पर भी लगाना है अनुभागबंध पर भी लगाना है। एक-एक पर लगाकर हम देखेंगे।

हम फिर यहां देखते हैं इसकी परिभाषा कि जो **विवक्षित बंध**, विवक्षित बंध क्यों कहा ? विवक्षित यानी जिसकी; प्रकृति की बात कर रहे हैं, प्रदेश की कर रहे हैं, स्थिति की या अनुभाग की; उसमें भी उत्कृष्ट की कर रहे हैं या अनुत्कृष्ट की कर रहे हैं, जघन्य की कर रहे हैं या अजघन्य की कर रहे हैं तो उसको विवक्षित कहा, स्पेसिफिक-पर्टिक्युलर। जिसकी हम बात कर रहे हैं, उसका बंध हो रहा था। अब उसका अभाव होकर फिर दुबारा वैसा ही शुरू हुआ तो उसको क्या कहेंगे हम ? सादिबंध और जो बंध अनादि से चला आ रहा है उसको कहेंगे अनादिबंध। जो बंध निरंतर होता ही रहेगा उसको कहेंगे ध्रुवबंध और अंतर सहित, अंतर यानी बीच में गॅप पड़ गयी न, ग्यारहवें गुणस्थान में बंध नहीं हो रहा था अब फिर हो गया तो उसको कहेंगे हम अध्रुवबंध। *श्रोता: अनादिबंध और ध्रुवबंध में क्या अंतर है ?* अनादि को ध्रुव कह सकते हैं हम, परंतु अनादि में कब से हो रहा है ? उसकी अपेक्षा है और ध्रुव में तो होता ही रहेगा उसकी अपेक्षा है। ख्याल में आया न ? अनादि किसको कहा ? अनादि से जो बंध हो रहा है; ज्ञानावरण का कैसा हो रहा है ? अनादि से बंधता आया है आज तक और ध्रुव किसको कहेंगे ? जो अभव्यजीव है, वह हमेशा बांधनेवाला ही है, उसको कहेंगे ध्रुवबंध। जो भव्यजीव है वह तो क्षपकश्रेणी चढ़कर पार हो जायेगा या उपशमश्रेणी भी एक बार चढ़कर उतरेगा तो उसको कहेंगे अध्रुव। सम्यग्दृष्टि हुआ है तो वह तो नियम से मोक्ष जानेवाला है, बंध का अभाव करनेवाला है तो उसका बंध हमेशा के लिये रहनेवाला नहीं है तो उसको कहेंगे अध्रुवबंध।

श्रोता: सादि और अध्रुव में क्या अंतर है ? सादि का अर्थ है उसको शुरुआत है। एक बार हो रहा था, अभी बीच में नहीं हो रहा, रुक गया। अब फिर दुबारा हो रहा है तो उसको हम सादि कहेंगे क्योंकि उसको बिगिनिंग है, स्टार्टिंग है। जो सादि है वह अध्रुव भी रहेगा, हां, परंतु सादि है वही अध्रुव नहीं कहेंगे। अध्रुव क्यों ? क्योंकि वह तो निरंतर नहीं है इसलिये उसका नाम है अध्रुव। परंतु जो सादि है; पहले नहीं था, हो रहा है, बीच में गॅप हो गयी थी यानी वह नियम से अभी नष्ट होनेवाला ही है, इसलिये उसीको हम अध्रुव कहेंगे। देखो, यहां हम देखेंगे उसका अधिक वर्णन-एक्स्प्लनेशन देखेंगे। देखो, तीर्थंकर प्रकृति के बंध की बात करते हैं हम, जो हमें मालूम है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध कौनसे गुणस्थान से कौनसे गुणस्थान तक होता है ? *श्रोता: चौथे से लेकर आठवें तक होता है।* चौथे से लेकर आठवें तक होता है। तो क्या तीर्थंकर प्रकृति का बंध अनादि से है ? *श्रोता: नहीं।* तो कैसा है ? उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: सादि है।* सादि है, कहां तक है ? आठवें गुणस्थान तक है। बाद में क्या होगा ? श्रेणी चढ़ेगा तो बंध रुक जायेगा, बंध मिट जायेगा तो उसको क्या कहेंगे ? ध्रुव कहेंगे कि अध्रुव कहेंगे ? मिट जायेगा तो अध्रुव कहेंगे। वैसे वह निरंतरबंधी प्रकृति है, कब तक बंधेगी ? जब तक उसकी बंधव्युच्छित्ति नहीं होती तब तक।

व्युच्छित्ति का अर्थ क्या है ? कुछ प्रकृतियां विशिष्ट गुणस्थान तक ही बंधती हैं। उस गुणस्थान तक उनका बंध है, ऊपर के गुणस्थानों में बंध नहीं है तो उसको कहेंगे उस गुणस्थान में उनके बंध की व्युच्छित्ति हुयी। जैसे, मिथ्यात्वकर्म कब बंधता है ? कौनसे गुणस्थान में बंधता है ? एकमात्र पहले ही गुणस्थान में बंधता है। दूसरे, तीसरे आदि किसी ऊपर के गुणस्थानों में उसका बंध नहीं होता। तो हम क्या कहेंगे ? मिथ्यात्व के बंध की व्युच्छित्ति यानी मिथ्यात्व का बंध होना कहां रुक गया ? तो कहेंगे पहले में ही रुक गया। दूसरे गुणस्थानवाले को बंध नहीं, तीसरे को नहीं, चौथे को नहीं, ऊपर कहीं भी नहीं है। तो हम क्या कहेंगे ? मिथ्यात्व के बंध की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में हुयी। जो पहला गुणस्थान छोड़कर ऊपर के गुणस्थानों में चला जाता है, उसका मिथ्यात्व का बंध रुक गया है। वापस मिथ्यात्व गुणस्थान में आयेगा तो उसका बंध दुबारा शुरू हो जायेगा। तब उसको क्या कहेंगे ? यह मिथ्यात्व का बंध सादि है। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं हुआ था उसको क्या कह रहे थे हम ? *श्रोता: अनादि है।*

अनादि है। अब जो अभव्यजीव है वह कभी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करेगा तो उसको मिथ्यात्व का बंध अनादि तो है ही है, उसके साथ वह ध्रुव है। मिथ्यात्व का बंध सादि हो या अनादि हो, एक बार सम्यक्त्व प्राप्त किया है तो उसका बंध अभी मिटकर नष्ट ही होनेवाला है तो उसको कहेंगे अध्रुव। यह व्युच्छित्ति की बात देखी।

अब हम तीर्थंकर प्रकृति की बात जो कर रहे थे उसकी बात फिर दुबारा उठाते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का बंध पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में तो होता ही नहीं है, चौथे से उसका बंध हो सकता है, शुरू हो सकता है और आठवें गुणस्थान तक बंध होता है। उसका बंध शुरू हुआ चौथे से, पहले से नहीं था उसको कहेंगे सादि। सादिबंध है, अनादि का बंध तो है नहीं। अब उसको ध्रुव कहेंगे के अध्रुव कहेंगे ? जब तक बंध रहा है उसको निरंतर कहेंगे पर ध्रुव नहीं कहेंगे। वह निरंतरबंधी की बात बाद में आयेगी। कम से कम अंतर्मुहूर्त तक जो लगातार बंधता है उसको निरंतरबंधी कहते हैं। तीर्थंकर प्रकृति एक बार बंधना शुरू हो जाये तो लगातार बंधती रहती है। अब जो नरक में जाते न ! मिथ्यादृष्टि होकर जो दूसरे-तीसरे नरक में जानेवाले भी जीव हैं, उनका तीर्थंकर प्रकृति का बंध एक अंतर्मुहूर्त के लिये रुकता है क्योंकि वह जीव मिथ्यात्व में चला जाता है और मिथ्यात्व में तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता नहीं है और फिर वहां जाकर सम्यग्दृष्टि होकर फिर दुबारा बंध शुरू होता है। इनके अलावा अन्य जो कोई जीव हैं, स्वर्गों में जानेवाले या पहले नरक में सम्यक्त्व के साथ जानेवाले उनके तीर्थंकर प्रकृति का बंध एक समय के लिये भी रुकता नहीं है, लगातार चलता रहेगा। कब तक ? आठवें गुणस्थान तक। बाद में क्षपकश्रेणी चढ़कर मोक्ष भी चले जायेंगे। तो यह जब से बंधना शुरू हुआ तब से आठवें गुणस्थान तक लगातार बांधेंगे, मनुष्य में है तब भी, स्वर्ग में गये वहां भी सागरों तक और फिर वापस आयेंगे मां के पेट में भी और फिर जब मुनि होकर आठवें गुणस्थान तक पहुचेंगे तब तक उसका बंध हर समय चल रहा है तब उसको हम कहेंगे यह निरंतर बंध रहा है। तब तक निरंतर बंधता है फिर भी बाद में उसका बंध रुकनेवाला है तो उसको अध्रुव कहेंगे। इसकी और चर्चा हम आगामी लेक्चर में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१०. तीर्थंकर प्रकृति – विशेषतायें; बंधव्युच्छित्ति

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है और उसके आधार से आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जो भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से हम कर्म के कुछ सिद्धान्त देख रहे हैं। अभी-अभी तीर्थंकर प्रकृति संबंधी कुछ बातें चली और अधूरी रही थी क्योंकि हम उसके बारे में थोड़ी विस्तार से जानकारी लेंगे, फिर उसमें अनादि-सादि जो कुछ घटित करना है वह करेंगे। पहले में पहले तीर्थंकर प्रकृति का बंध किसके होता है यह प्रश्न हम देखेंगे फिर उसकी थोड़ी विशेषता वह भी देखेंगे क्या होती है।

मिथ्यादृष्टि के तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता। वह षोडशकारण भावना भाये तो ? अरे ! पहले में पहले दर्शनविशुद्धि भावना है न ! सम्यग्दर्शन के बिना इस तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता ही नहीं है। वह किसके हो सकता है ? चौथे, पांचवें, छठे, सातवें से शुरुआत हो सकती है। शुरुआत किसके होती है ? बंध की बिगिनिंग, शुरुआत किसके होती है? चौथे, पांचवें, छठे या सातवें गुणस्थानवर्ती को शुरुआत होती है। हम देखेंगे गाथा में लिखा है किसको बंध होता है, देखो ९३ नंबर की गाथा में लिखा है, तीर्थंकर प्रकृति के बंध का जो विशेष नियम यहां बता रहे हैं।

पढमुवसमये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥९३॥

किसके तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू होगा इसका नियम है। तो कहते हैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व में हो सकता है और दूसरे जो हैं, कौन-कौनसे हैं ? द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में हो सकता है और कहां हो सकता है ? तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में हो सकता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के भी हो सकता है। गुणस्थानों की अपेक्षा देखेंगे तो चौथे में हो सकता है, पांचवें में हो सकता है, छठे में भी हो सकता है, सातवें में भी हो सकता है। ऐसा नहीं समझना कि छठे में होगा, सातवें में शुद्धोपयोग में कैसा होगा यह बात नहीं है। चारों ही गुणस्थानों में तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ, प्रारंभ यानी पहले में पहले शुरुआत हो सकती है। उनके लिये क्या आवश्यक कंडिशन है ? तो प्रत्यक्ष केवली या श्रुतकेवली के चरणों के निकट जिसको

हम कहेंगे पादमूल में, तीर्थंकर प्रकृति के बंध की शुरुआत होती है। किसके होती है ? कर्मभूमि के मनुष्य को होती है क्योंकि तीर्थंकर के पादमूल में, समवशरण में, कितने गतियों के जीव आते हैं ? बोलो भाई, कोई कहेंगे यहां पर ? *श्रोता: चारों गतियों के।* चारों गतियों के, क्या यह सही है ? *श्रोता: नारकी समवशरण में नहीं आते।* नारकी नहीं आते समवशरण में। देव आते हैं, असंख्यात देव आते हैं, मनुष्य आते हैं और तिर्यंच आते हैं; नारकी तो नहीं आ सकते हैं।

यदि तीर्थंकर के कारण, तीर्थंकर के सामने तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता हो, तो देवों को भी होना चाहिये था, वह तो नहीं होता है। तिर्यंचों को होना चाहिये था, उनके तो तीन काल में कभी होता ही नहीं। मनुष्यों के ही प्रारंभ होता है और वह भी सम्यग्दृष्टियों के; चौथे, पांचवें, छठे, सातवेंवालों के उसकी बिगिनिंग यानी प्रारंभ होता है। भले वे औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो, प्रथमोपशम या द्वितीयोपशमवाले या क्षायोपशमिक यानी वेदक हो या क्षायिक हो- उनके तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ हो सकता है। किसी आचार्य का अभिप्राय ऐसा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल छोटा है इसलिये वहां नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। किसीके माथे पर एक प्रश्नचिन्ह दिखा कि द्वितीयोपशम में कैसा होता होगा ? क्योंकि द्वितीयोपशम कब होता है ? जो मुनिराज हैं, छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती और जो उपशमश्रेणी के सन्मुख हैं; जो हैं तो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि, अभी उपशमश्रेणी चढ़ते समय उनको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। ये द्वितीयोपशम क्या ? प्रथमोपशम क्या ? उसकी और चर्चा गुणस्थान के शिबिर में दिनेशजी लेंगे, हम नहीं लेंगे अभी।

तो यह जो द्वितीयोपशम होता है परंतु उसको तो द्वितीयोपशम होते ही वह श्रेणी चढ़ेगा। हां, श्रेणी चढ़ेगा परंतु उसका द्वितीयोपशम चलता रहेगा, ग्यारहवें गुणस्थान तक जायेगा फिर वापस दसवां, नौवां, आठवां, सातवां क्रम से आता है। हम किसीको उपशमश्रेणी पर चढ़ाते हैं न डायरेक्ट ग्यारहवें गुणस्थान में से उसको मिथ्यात्व गुणस्थान में भेज देते हैं, हम भेज देते हैं। कोई भी जो उपशमश्रेणी उतरनेवाला क्रम से ग्यारहवें में से दसवें में ही आयेगा, दसवें में से नौवें में, नौवें में से आठवें में, आठवें में से सातवें में, फिर छठे में, फिर उसके अनेक रास्ते हैं। हो सकता है दुबारा उपशमश्रेणी चढ़कर फिर उतरे और हो सकता है छठे-सातवें में ही रहे। हो

सकता है छठे से पांचवें में आये, कोई छठे से चौथें में आ जाये और कोई छठे से नीचे आकर या डायरेक्ट भी पहले गुणस्थान में चले जाये। इतने ये बहुत रास्ते हैं। वह कोई भी ग्यारहवें में से डायरेक्ट मिथ्यात्व में जाता ही नहीं है। फिर भी कोई कालांतर से जा सकता है इसलिये शास्त्र में वह शॉर्ट में लिख देते हैं। तो यहां बात है द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के साथ ऊपर चढ़कर नीचे आया हुआ जीव, छठे में आया है। तो छठे-सातवें में भी द्वितीयोपशम चल रहा है उसका, कुछ काल तक। उस काल में भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकता है या वहां से और नीचे उतरकर पांचवें या चौथे तक आ सकता है। उसके भी वहां बंध हो सकता है। प्रथमोपशम के काल में भी बंध होता है। कोई आचार्य कहते हैं कि वह छोटा काल है इसलिये नहीं होता। ऐसे दो मत हैं बस इतना ही शास्त्र में उल्लेख किया जाता है। कौन सही है और कौन गलत है यह निर्णय करने का अधिकार हमारा नहीं है। प्रत्यक्ष श्रुतकेवली, केवली होंगे तो वहां उसका समाधान हो सकता है। नहीं तो जो मूलधारायें चली आ रही हैं आचार्यों की उसका तो बस उल्लेख किया जाता है, उसमें सही-गलत का निर्णय हमारा नहीं हो सकता।

परंतु यहां तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाले जो जीव हैं वे तो मनुष्य ही करते हैं, वह भी कर्मभूमि के मनुष्य ही करते हैं, भोगभूमिवाले मनुष्य नहीं करते। *श्रोता: मनुष्यणी ?* मनुष्यणी करती है कि नहीं करती है ? मनुष्यणी के दो अर्थ होते हैं; जब मनुष्यणी कहते हैं तो द्रव्य से यानी जिनको हम स्त्रियां कहते हैं, शरीर की अपेक्षा जो स्त्रियां हैं तो उनको भी हम मनुष्यणी कहेंगे और जो पुरुष हैं और भाव से स्त्रीवेदवाले हैं उनको मनुष्यणी कहने की प्रथा है। यानी जो आगम का उल्लेख है और वे तो उसी भव में मोक्ष भी जा सकते हैं। यानी भाव से स्त्रीवेद हैं और द्रव्य से पुरुष हैं ऐसे जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध तो कर सकते हैं, करते भी हैं परंतु उनके उस भव में उस तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं हो सकता। क्या कहा ? तीर्थंकर प्रकृति का बंध भावस्त्रीवालों को हो सकता है जो द्रव्य से पुरुष हैं, परंतु उनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता यानी वे उसी भव में तीर्थंकर नहीं होंगे। आप कहेंगे उसी भव में कौन तीर्थंकर होता है ? दो भव पलटकर तीर्थंकर होता है। यह तो यहां की बात हुयी।

देखो, विदेहक्षेत्र में ऐसे भी जीव हैं जिनका गर्भकल्याणक नहीं हुआ था। क्यों नहीं हुआ था ? क्योंकि वे पूर्वभव से तीर्थंकर प्रकृति बांधकर नहीं आये थे। गर्भ में नहीं

था तो जन्म के समय कोई सवाल ही नहीं। उनका जन्मकल्याणक भी नहीं हो सकता क्योंकि गर्भ में कोई तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ नहीं कर सकता। चौथा गुणस्थान भले ही लेकर आये हो या बाद में प्राप्त किया हो, तो हो सकता है जो चौथे-पांचवें गुणस्थानवर्ती हो तभी तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू कर सकते हैं। ऐसे जीव मुनिदीक्षा लेंगे तो दीक्षाकल्याणक अवश्य होगा। फिर केवलज्ञानकल्याणक होगा और फिर मोक्षकल्याणक भी होगा। तो वे तीन कल्याणकवाले तीर्थंकर कहलायेंगे। यहां हमारे भरतभूमि में तो सारे ही तीर्थंकर पांच कल्याणकवाले हैं। तीन कल्याणकवाले और दो कल्याणकवाले विदेहक्षेत्र में हो सकते हैं। दो कल्याणकवाले कैसे होते हैं कि जिन्होनें पहले मुनिदीक्षा अंगीकार की है, जो ऑलरेडि मुनि हो गये हैं; छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती हैं और बाद में तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू किया और यदि उसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं तो उनका केवलज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक दो कल्याणक होंगे। वहां दो कल्याणकवाले जीव, तीन कल्याणकवाले जीव और पांच कल्याणकवाले जीव होते हैं। पूर्वभव से जो आये हैं न ? तीर्थंकर प्रकृति का बंध किसीने यहां प्रारंभ किया, फिर स्वर्ग में चले गये वहां भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते रहते हैं और वहां से मां के पेट में आये। आप सबको पता है, आने के छह माह पहले से रत्नवर्षा होती है, जो कोई बातें होती हैं, गर्भकल्याणक की सब विधि रीतसर होती है। गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, फिर दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक उनके पांचों ही कल्याणक मनाते हैं। इन्द्र आकर वह पूजा वगैरह करते हैं।

अभी किसीने पूछा न मनुष्यणी को इसका बंध होता है ? तो नपुंसकवेदवाले भी, जो द्रव्य से पुरुष हैं, वे भाव से नपुंसकवेदवाले भी हो सकते हैं। यह भाववेदों की अपनी चर्चा यहां बहुत विस्तार से चली थी जब हमने जीवकाण्ड लिया था। ऐसे जीवों को बंध तो हो सकता है परंतु उसी भव में उनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होगा। तो आगामी भव में क्या गॅरंटी उनको स्त्रीवेद नहीं होगा ? तो कहते हैं जो सम्यग्दृष्टि हैं वे मरकर अन्य भव में चले जायेंगे तो वहां वे नियम से पुरुष होकर जन्मेंगे और फिर वहां से आयेंगे तो पुरुष ही होंगे। तीर्थंकर का जीव गर्भ में आया है, स्त्री होगा कि पुरुष होगा ? *श्रोता: पुरुष।* यह मल्लिनाथ तीर्थंकर के बारे में जो कोई विपरीतता चल रही है न अन्यमतियों में, वह अत्यंत गलत है। हां, सीमंधर आदि बीस तीर्थंकर क्या दो-तीन

कल्याणकवाले हो सकते हैं ? नाम लेकर नहीं, ये तो पांच कल्याणकवाले हैं। परंतु वहीं पर विदेहक्षेत्र में दो या तीन कल्याणकवाले तीर्थंकर हो सकते हैं। तो यहां पर हम जो बात देख रहे थे, दो-तीन कल्याणकवालों की बात देखी, पांच कल्याणकवालों की भी बात देखी है, तो तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ करने की बात देखी हमने।

अभी हमने देखा न चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक के जीव, तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू करते हैं। एक बार शुरू हुआ तो कब तक बंधता रहेगा ? *श्रोता: आठवें गुणस्थान तक।* वह तो निरंतर बंधता ही रहता है, आठवें गुणस्थान तक बंधता रहेगा। ऐसे जीव यहां से मरकर देव में चले गये, तो देव में भी वे निरंतर हर समय, अंतर पड़े बिना तीर्थंकर प्रकृति का बंध सागरों तक लगातार करते रहते हैं। ऐसा भी हो सकता है न, कोई यहां से सर्वार्थसिद्धि में जन्मेंगे तो वहां तैंतीस सागर के हर समय वे तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं। वहां से मां के गर्भ में आयेंगे, वहां भी कर रहे हैं; फिर वह बालक तीर्थंकर हैं, गृहस्थ अवस्था में वहां भी कर रहे हैं। मुनिदीक्षा अंगीकार की, वहां भी कर रहे हैं और जब श्रेणी चढ़ते समय आठवें गुणस्थान में आते हैं तब तक तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। ऊपर के गुणस्थानों में चले जायेंगे, वहां नहीं होगा। हां, हो सकता कोई करोड़ पूर्व की आयु लेकर आये हैं तो जब तक श्रेणी नहीं चढ़े हैं तब तक आठवें गुणस्थान तक तीर्थंकर प्रकृति का बंध हर समय निरंतर चलता रहता है। तो अभी हमने कुछ बात देखी है न ? नरक जाने के सन्मुख किसीके एक अंतर्मुहूर्त के लिये बंध नहीं है तो यह कौनसा जीव होता है कि जो तीर्थंकर प्रकृति बांधकर भी नरक जा सकता है उसकी थोड़ी चर्चा करेंगे। *श्रोता: जिसकी पहले आयु बंधी हो।*

देखो ऐसा है, सम्यग्दृष्टि ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं परंतु सम्यग्दृष्टि होने के पहले जिसने नरकायु बांधी हो। क्या किया पहले ? पहले नरकायु का बंध किया। अभी यहां श्रेणिक महाराज हमारी मदद के लिये आते हैं, क्यों ? उन्होंने यशोधर मुनिराज के गले में सर्प डाला था। उनके अभिप्राय में ऐसा था कि कोई जैनधर्म ही नहीं रहे और कोई जैनमुनि ही नहीं रहे। ऐसे खोटे अभिप्राय सहित और इतने तीव्र कषाय के कारण उन्होंने मुनिराज पर उपसर्ग किया तो उनके तो सातवें नरक की आयु का बंध हुआ। नरकायु बंध गयी। एक बार आयु का बंध होने पर यह नरकायु चेंज होकर देवायु, मनुष्यायु नहीं हो सकती। आयु में कोई संक्रमण नहीं होता है। स्थिति भले

घटती है - कम हो जाती है परंतु उसके नरकायु चेंज होकर वह मनुष्यायु में, देवायु में कन्व्हर्ट हो जाये, परिवर्तित हो जाये, संक्रमित हो जाये ऐसा नहीं बन सकता। उन्होंने नरकायु का बंध किया था, सातवें नरक का तैंतीस सागर का बंध किया, बाद में सम्यग्दृष्टि हो गये वह कथा सबको मालूम है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और महावीर भगवान के समवशरण में उनको तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ हुआ, उनको क्षायिक सम्यक्त्व हुआ यानी वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी हुये। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के लिये भी यह नियम है- केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। तो वहां उन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति की, तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी शुरू हुआ। अब क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, देखो, एक नियम है। जिसने पहले नरकायु का बंध किया हो और बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हो और वह यदि सम्यक्त्व के साथ नरक में जानेवाला हो, सम्यक्त्व छूटे बिना तो उसके क्षायिक सम्यक्त्व ही प्राप्त करना आवश्यक है। अन्यथा कोई भी यहां से वेदक सम्यक्त्व के साथ नरक में जा नहीं सकता।

ऐसे ही मनुष्य में से मनुष्य होनेवाला, किसीने मनुष्यायु का बंध किया, बाद में सम्यग्दृष्टि हुआ तो कहां चला जायेगा सम्यग्दृष्टि मनुष्य ? तो भोगभूमि में जन्म लेगा। उसमें भी एक कंडिशन है। यदि वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि है या जिसने क्षायिक शुरू कर दिया है, कृतकृत्यवेदक जिसको कहते हैं जो वहां जाकर अंतर्मुहूर्त में क्षायिक होने ही वाला है ऐसा ही मनुष्य सम्यक्त्व के साथ वहां भोगभूमि में जायेगा। जिसने पहले तिर्यंचायु का बंध किया, बाद में जो सम्यग्दृष्टि हुआ, तो क्या सम्यक्त्व के साथ तिर्यंच में जायेगा ? उसके लिये भी कंडिशन है कि यदि वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि होगा तो ही सम्यक्त्व छूटे बिना भोगभूमिवाला तिर्यंच होगा। अन्यथा, उसका सम्यक्त्व छूट ही जायेगा। यहां से कोई मनुष्य अभी इस काल में क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होगा, क्योंकि यहां कोई केवली, श्रुतकेवली, तीर्थंकर हैं नहीं तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होगा तो यहां का कोई मनुष्य सपने देखता होगा मरकर विदेहक्षेत्र में जाने के; सम्यग्दृष्टि तो नहीं देखेगा क्योंकि वह कहीं जाने-आने के सपने नहीं देखता। उसको कोई आगे के भव की वांछा नहीं होती। जिसको एक भव की भी वांछा है उसके अभिप्राय में अनंत भवों की वांछा छुपी हुयी है। मिथ्यादृष्टि इमॅजिन करता है, कल्पना करता है। क्या ? मरकर हमें कहां जाना है ? विदेहक्षेत्र में जाना है, सीमंधर भगवान के पास, हमें दूसरे भगवान

नहीं चलेंगे। हमने तो सीमंधर भगवान के पास बुकिंग किया है। तो वह जीव यहां से विदेहक्षेत्र में जन्म लेना चाहता है, यानी वह मिथ्यादृष्टि रहना चाहता है, क्यों ? अरे अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा तो यदि आयु बांधेगा तो स्वर्ग की आयु बांधेगा। यदि कोई मनुष्य सम्यक्त्व हो जाने के बाद आयु बांधता है तो नियम से देव की ही बांधेगा। हां, सम्यक्त्व होने के पहले यदि कोई मनुष्यायु, तिर्यंचायु, नरकायु बांधी है किसीने, अभी इस काल की बात कर रहे हैं और बाद में सम्यग्दृष्टि हो जाये तो उसका सम्यक्त्व छूट जायेगा और वह वहां उस भव में चला जायेगा। हां, विदेहक्षेत्र में जा सकता है; मिथ्यादृष्टि होकर जायेगा, सम्यक्त्व के साथ नहीं जायेगा।

हम तीर्थंकर की बात कर रहे थे, फिर दुबारा उस पर आते हैं। श्रेणिक राजा ने तो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था। क्षायिक सम्यक्त्व तो उसे कहते हैं न, जिसके दर्शनमोहनीय की तीन, अनंतानुबंधी की चार प्रकृतियों का क्षय हो चुका है, वे नष्ट हो चुकी हैं। दुबारा उनका बंध नहीं होगा और ना ही उनका उदय होगा। अब वह जीव सम्यग्दृष्टि ही है, पहले नरक में जा रहा है, तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू कर दिया है तो वहां भी लगातार तीर्थंकर प्रकृति का बंध होगा। ऐसे भी कोई जीव हैं कि जिन्होंने पहले नरकायु का बंध किया है बाद में सम्यग्दृष्टि हुये हैं और बाद में तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी शुरू हुआ परंतु क्षायिक नहीं हुये। तो जो क्षायिक नहीं हुये है उनका नियम से नरक गमन के पहले एक अंतर्मुहूर्त सम्यग्दर्शन छूट जायेगा, वे मिथ्यात्व में चले जायेंगे और मिथ्यात्व में जब तक हैं अंतर्मुहूर्त तक, तब तक उनके तीर्थंकर प्रकृति का बंध रुक जायेगा। ऐसे जीव वहां तीसरे नरक तक भी जा सकते हैं, जितनी आयु बांधी है, दूसरे या तीसरे नरक में। तो वहां जाते ही एक अंतर्मुहूर्त में उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति इमीजिएट हो जाती है और वहां उनका दुबारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध लगातार चालू रहता है। वहां नरकायु पूरी होने तक उनका बंध चलता रहता है और वहां से माता के गर्भ में आये तो भी उनका वह बंध चलता रहेगा। अभी आगे उनका सम्यक्त्व छूटेगा नहीं। *श्रोता: नहीं छूटेगा ?* नहीं छूटेगा, एक बार ही उसीका छूटता है जो नरक में जाने के सन्मुख है और वेदक सम्यग्दृष्टि है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के छूटने का सवाल नहीं है तो उनके तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी लगातार चलता है। उसमें कोई बीच में रुकावट नहीं आती।

श्रेणिक राजा की बात - उन्होंने यहां क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे थे, तो अभी वहां भी निरंतर बंध हो रहा है। वहां से आयेंगे मां के पेट में तब भी उनका बंध चलता रहेगा। कहां तक ? कब तक ? आठवें गुणस्थान तक। जब श्रेणी चढ़ेंगे तब बंध रुक जायेगा और जब तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान की प्राप्ति होगी तब उनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय होगा। ये कुछ ऐसे नियम हैं। स्वर्ग में जानेवाले जो हैं जो तीर्थंकर प्रकृति बांधते हैं उनके उस बंध में कुछ रुकावट नहीं आती। नियम से ऐसे जीव मिथ्यात्व में भी नहीं जाते। ख्याल में आती है बात ? वे फिर तीसरे भव में यहां आकर, उसी भव में तीर्थंकर हो जाते हैं। जिसने मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंध किया हो, उसको तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं हो सकता। जिस मनुष्य ने मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंध किया हो, उसको तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं हो सकता। नरकायु का बंध किया हो तो हो सकता है परंतु भोगभूमिवाला कोई जीव तीर्थंकर प्रकृति बांधता हो यह बात तीन काल में नहीं हो सकती। यह बात ख्याल में आयी न ?

अभी इसको लगते हुये एक प्रश्न आया था कि लगातार अड़तालीस मनुष्यभव किस प्रकार होते हैं ? इस प्रकार होते हैं, ये लगातार की बात चल रही है। मनुष्य, मरकर फिर मनुष्य, फिर मरकर मनुष्य, फिर मरकर मनुष्य कैसे हो सकता है ? जो मिथ्यादृष्टि है क्योंकि सम्यग्दृष्टि तो देवायु का बंध करेगा। जो मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि एक बार तो हो सकता है कि भोगभूमि में जन्म ले परंतु उसके लिये क्षायिक होने की आवश्यकता है। लगातार अड़तालीस भव मिथ्यादृष्टि के ही होंगे, यह एक बात गॅरंटी के साथ कह सकते हैं। दूसरी बात, ये लगातार भव की बात आती है तो उसमें लगातार पुरुष, पुरुष, पुरुष, पुरुष होता रहे तो आठ भवों तक रह सकता है। लगातार स्त्री, स्त्री, स्त्री के भवों में रहे तो आठ भव और लगातार नपुंसक, नपुंसक, नपुंसक रहे तो आठ भव। ये हो गये पर्याप्तों के भव। पर्याप्तों के आठ-आठ और आठ। कितने हुये ? *श्रोता: चौबीस।* चौबीस भव पर्याप्तों के हो गये; बीच में एक भव अपर्याप्त का, एक हो या अनेक हो अंतर्मुहूर्त में तो आठ हो जाते हैं। *श्रोता: अपर्याप्त यानी ?* अपर्याप्त यानी लब्धिअपर्याप्त। फिर दुबारा आठ-आठ और आठ ऐसे लगातार पहले चौबीस, बीच में एक अंतर्मुहूर्त तक अपर्याप्त यानी लब्धिअपर्याप्त और फिर चौबीस पर्याप्त के भव।

इसमें हम मॅक्झिमम बड़ी आयु लेंगे तो कितनी बड़ी ले सकते हैं ? तो कहते हैं एक पूर्व कोटी वर्ष की क्योंकि लगातार जो भव लेने हैं तो कर्मभूमि के लेने पड़ेंगे और अंतिम एक भव भोगभूमि का रखना, क्यों रखना ? वह बड़े में बड़ा है इसलिये। सम्यक्त्व का कोई सवाल नहीं यहां पर। तो अंतिम भव जो अड़तालीसवां है वह हम भोगभूमि का रखेंगे तीन पल्यवाला, उत्तम भोगभूमि का। तो यहां सैंतालीस पूर्व कोटी और वह अंतिम तीन पल्य यह लगातार मनुष्य में रहने का उत्कृष्ट काल है। इसको कहेंगे कायस्थिति, मनुष्यपर्याय में रहने का उत्कृष्ट काल और भवस्थिति किसको कहते हैं ? एक भव का उत्कृष्ट काल।

दो शब्द आते हैं, एक है भवस्थिति और एक है कायस्थिति। भवस्थिति यानी एक भव, एक मनुष्यभव बड़े से बड़ा कौनसा होगा ? वह तीन पल्यवाला और लगातार मनुष्य, मनुष्य, मनुष्य, मनुष्य होता रहेगा तो अड़तालीस भव होते हैं और लास्टवाला जो हम तीन पल्य का लेते है तो सैंतालीस पूर्व कोटी प्लस तीन पल्य। ये लगातार मनुष्यों में रहने का उत्कृष्ट काल है। सबको प्राप्त होता है ऐसी बात नहीं है। हो सकता है कि त्रस की उत्कृष्ट स्थिति में एक भी मनुष्यभव न मिले और एकेन्द्रिय में चला जाये। एकेन्द्रिय में चला जाये तो वहां पर उत्कृष्ट काल कितना रहता है मालूम है आपको ? कोई जीव एकेन्द्रिय में जन्म लेगा तो वहां कितने काल तक रह सकता है ? *श्रोता: कौनसे कायवाले में ?* एक किसी काय में रहने की बात नहीं है। एकेन्द्रिय में रहने का उत्कृष्ट काल ? असंख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण। अभी एक पुद्गलपरावर्तन अनंतकाल है तो असंख्यात पुद्गलपरावर्तन कितना लंबा बड़ा काल है ! हमें पता नहीं है न कि यह मनुष्यभव कितना दुर्लभ है। अब इतना मिला है तो भोगेगा कौन, हम नहीं भोगेंगे तो ? क्यों ? लोग ऐसा भी कहते हैं, ईश्वर ने इसकी निर्मिति क्यों की ? हम इसका भोग नहीं लेंगे तो फोकट चला जायेगा। वह वस्तु फोकट चली जायेगी, परंतु यहां अपना भव फोकट चला जा रहा है और हो सकता है कि निगोद में और अन्य एकेन्द्रियों में चले जायेंगे तो वहां कितने काल तक रहना पड़ेगा इसका कोई हिसाब नहीं है।

यहां जो कह रहे हैं कि तीर्थंकर प्रकृति के बंध की बात अपनी चल रही थी। अनादि से उसका बंध नहीं हो रहा था इसलिये उसको हम क्या कहेंगे ? सादिबंध। कब तक चलेगा ? तो आठवां गुणस्थान प्राप्त होने तक। वहां तक वह तो निरंतर बंध

रहा है; निरंतर कहा मैंने, ध्रुव नहीं कहा; निरंतर यानी लगातार बंध हो रहा है। एक समय के लिये भी वह बंध रुकता नहीं है तो उसको निरंतर बंध कहा। परंतु आठवें गुणस्थान के बाद वह बंध नियम से रुककर वे तीर्थंकर होंगे। वह बंध तो रुक जायेगा। फिर उसका उदय आयेगा, वह प्रकृति भी नष्ट हो जायेगी और जीव मोक्ष चला जायेगा। तो फिर उसको हम क्या कहेंगे ? अध्रुव कहेंगे। अध्रुव की बात चल रही थी न ? सादि है और अध्रुव है। यह बात कुछ ख्याल में आती है ? दोपहर का समय है न, तो भारी हो जाता है। ये सादि क्या, ध्रुव क्या, अध्रुव क्या ? यह वेद के संबंध में प्रश्न है परंतु अपना वेदमार्गणा का अभी यहां विषय नहीं है, यदि समय हो तो कभी उसको ले लेंगे।

यहां तो हम गुणस्थानों में कहां कौनसी प्रकृतियों का बंध होता है उसके क्या नियम हैं उसकी बात देख रहे थे। अभी जो हमने तीर्थंकर प्रकृति की बात की, उसका अनादि से बंध नहीं हो रहा था। अनादि से बंधनेवाली प्रकृतियां हमने देखी। ज्ञानावरण बंध रहा है, दर्शनावरण बंध रहा हैं, मोहनीय बंध रहा है, जो कुछ बंध रहे हैं। परंतु तीर्थंकर प्रकृति तो अनादि से नहीं बंधती थी। ऐसे ही कोई अन्य भी प्रकृति होती हैं जैसे आहारकद्विक नामकर्म है न ? उसको कहेंगे आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग। ये कब बंधते हैं ? तो सातवें और आठवें गुणस्थान में उनका बंध होता है, भले ही उदय छठे में होता है। उदय होता है यानी क्या ? जो मुनिराज हैं, आहारकशरीर बनाते हैं, कौन बनाते हैं ? यह तो सहज बनता है परंतु वह जिनके आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग नाम के कर्म बंधे हैं ऐसे जीव छठे गुणस्थान में हैं और उनके कोई ऐसे भाव हो, तत्त्वों के कोई प्रश्न हैं मन में या वंदना करने का भाव है तो आहारकशरीर उत्पन्न होता है। मालूम है आहारकशरीर क्या होता है ? उनके मस्तक से एक हाथ प्रमाण सफेद, सप्तधातु रहित पुतला निकलता है और उनके आत्मप्रदेश इस शरीर में भी हैं और उस शरीर में भी हैं। ऐसे दो टुकड़े अलग नहीं हो जाते, दोनो में आत्मप्रदेशों की लंबी ऐसे कंटिन्युअस लाइन होगी। वहां जाते ही उनके प्रश्न का भी निराकरण होता है या जो कोई वहां वंदना का भाव है वह करके अंतर्मुहूर्त के अंदर वापस आते हैं। क्योंकि छठे गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त है उससे भी छोटा काल इसका है। तो सातवें में जाने के पहले वह आहारकशरीर की निवृत्ति हो जायेगी, मूलशरीर में आ जायेंगे। वह शरीर जो है अंतर्मुहूर्त तक ही होता है।

मेरा प्रश्न है कुंदकुद आचार्य जो विदेह में गये थे, वे कौनसे शरीर के साथ गये थे ? *श्रोता: औदारिकशरीर के साथ गये थे।* औदारिकशरीर के साथ गये थे क्योंकि आहारकशरीर का काल तो अंतर्मुहूर्त है और वहां तो वे आठ दिन रहे थे। हां, अब ये जो हैं आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग उनका जो बंध होता है तो वह बंध कहां होता है ? अभी हमने देखा न ! सातवें में और आठवें में होता है और उसका उदय छठे में होता है। यानी अनादि से उनका बंध नहीं था और अभी बंध हो रहा है तो उसको क्या कहेंगे ? सादि कहेंगे और फिर वह कैसा है ? अध्रुव है, आठवें के ऊपर के गुणस्थानों में नहीं होगा और फिर बाद में तो बंध का अभाव होकर मोक्ष चले जायेंगे।

अब दूसरे कौनसे ऐसे हैं ? आयु का बंध कब होता है ? तो अभी हमने देखा था त्रिभाग में होता है। गुणस्थानों की अपेक्षा अगर बात करते हैं तो आयु का बंध कौन-कौनसे गुणस्थान में हो सकता है यह बात देखेंगे थोड़ी। पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है कि नहीं होता है ? अरे ! होता है न ? अनादि से करते आये हैं, अनंत भव हमने पार किये हैं। हां, दूसरे गुणस्थान में ? *श्रोता: नहीं होता।* नहीं होता ? होता है। तीसरे गुणस्थान में नहीं होता। ना आयु का बंध होता है, ना मरण होता है, ना मारणांतिक समुद्घात होता है। चौथे गुणस्थान में आयु का बंध ? *श्रोता: होता है।* होता है। पांचवें में ? होता है। छठे में ? होता है और सातवें में भी होता है। परंतु आठवें गुणस्थान में या ऊपर आयु का बंध नहीं होता। जब आयु का बंध होना शुरू होता है तो आयु अंतर्मुहूर्त तक लगातार बंधती रहती है। आयु के बंध की विशेषता क्या है ? जब वह बंधना शुरू होती है, आयु का बंध होना शुरू होता है तो एक अंतर्मुहूर्त तक बंधती है। हमने देखा न, त्रिभाग में बंधती है। जैसे कोई ८१ साल की आयु लेकर आया है, २७ साल अभी बाकी है और उसका जो पहला अंतर्मुहूर्त है तब उसका एक अंतर्मुहूर्त काल तक लगातार बंध होगा, बाद में वह रुक जायेगा। उसको कैसा बंध कहेंगे ? सादि। अनादि तो है नहीं क्योंकि उस भव में जन्म से तो नहीं था, अभी बंध शुरू हो गया और उसके बाद, अंतर्मुहूर्त के बाद फिर रुक गया तो उसको अध्रुव कहेंगे। कैसा कहेंगे उसको ? अध्रुव। तो देखो यहां बोर्ड पर लिखा है न ! देखो आयु की बात लिखी है न कि नहीं ? हां, मूलप्रकृतियों में हम देख रहे थे।

देखो यहां जो नाम लिखे - सादि के लिये १ लिखा है, अनादि के लिये २ लिखा,

ध्रुव के लिये ३ लिखा और अध्रुव के लिये ४ लिखा। आयु का बंध कैसा है ? १, ४ का अर्थ क्या है ? १ यानी सादि है और ४ यानी अध्रुव है। क्यों ? क्योंकि अनादि से नहीं हो रहा था, कभी-कभी होता है और जब होता है तो अंतर्मुहूर्त के लिये होता है। ऐसा भी नहीं कि एक-दो समय के लिये हुआ और रुक गया, अंतर्मुहूर्त तक तो नियम से होता ही है परंतु उससे अधिक नहीं होगा। तो आयु का जो बंध है वह सादि भी है और अध्रुव भी है। अब वेदनीय की बात करते हैं। वेदनीय यानी यहां साता-असाता का भेद किये बिना की बात चल रही है क्योंकि साता-असाता कहेंगे तो कभी साता है कभी असाता है उसको सादि कहना पड़ेगा। अब यहां वेदनीय की बात कर रहे हैं। वेदनीय कर्म कब से बंध रहा है ? अनादि से बंध हो रहा है तो उसको सादिवाला भेद यहां नहीं कहा, डायरेक्ट अनादि कह दिया। फिर वह ध्रुव है कि अध्रुव है ? ध्रुव किसके लिये कहेंगे ? *श्रोता: अभव्य के लिये कहेंगे।* अभव्य के लिये ध्रुव कहेंगे। उसको सादि में क्यों नहीं लिया ? वेदनीय के लिये सादि क्यों नहीं कहा ? ज्ञानावरण में तो हम सादि कहते हैं। उपशमश्रेणी में दसवें गुणस्थान तक तो ज्ञानावरण का बंध था, ग्यारहवें गुणस्थान में बंध नहीं था; फिर दसवें में आये तो ज्ञानावरण का बंध शुरू हुआ तो उसको क्या कहेंगे ? सादि भी कहेंगे। अनादि तो था ही था, ज्ञानावरण की बात चल रही है। ज्ञानावरण का बंध अनादि से चला आ रहा है। अब कोई उपशमश्रेणी चढ़ता है तो क्या होगा ? दसवें के बाद ग्यारहवें में बंध रुक गया, फिर वापस दसवें में आये तो बंध शुरू हुआ, वहां उसको सादि कहेंगे। ज्ञानावरण के लिये हम सादि भी कहेंगे, अनादि भी कहेंगे, अभव्यों में ध्रुव भी कहेंगे और भव्यों में अध्रुव भी कहेंगे।

परंतु वेदनीय में सादि का नाम क्यों नहीं लिया ? ऐसा प्रश्न है। *श्रोता: वेदनीय का बंध तेरहवें गुणस्थान तक रुकता ही नहीं है।* हां, क्या है, दसवें गुणस्थान तक तो ज्ञानावरण का बंध होता है, ग्यारहवें में उसका बंध नहीं होता है परंतु जो उपशमश्रेणी चढ़कर भी जो नीचे उतरता है, तो ग्यारहवें में उसका वेदनीय का बंध हो ही रहा है। वेदनीय का बंध उपशमश्रेणी में भी रुका नहीं था। इसलिये उसका अनादि से बंध चला आ रहा है, भले ही उपशमश्रेणी चढ़कर भी उतरे, फिर भी उसका बंध बीच में रुका ही नहीं न कभी ! तो चलता ही रहेगा, कब तक ? जब क्षपकश्रेणी चढ़ेगा, कौनसे गुणस्थान में जायेगा तो उसका बंध रुकेगा ? *श्रोता: बारहवें में जायेगा तो रुक जायेगा।* बारहवें में

जायेगा तो रुक जायेगा ? अरे ! तेरहवेंवाले को भी है। चौदहवें में जायेगा तो रुक जायेगा। रुक जायेगा तो उसको हम अध्रुव कहेंगे और जिसका रुकेगा नहीं उसको क्या कहेंगे ? ध्रुव कहेंगे। ख्याल में आती है न बात ? वेदनीय में सादिवाला नहीं लिया, अनादि लिया, ध्रुव भी लिया और अध्रुव भी लिया। ये यहां पर अलग-अलग जीवों की अपेक्षा बात कर रहे हैं न ! अब कौनसी शेष है वहां और ? शेष में कौन-कौन लेना ? ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, मोहनीय है, अंतराय है, आयु और वेदनीय हो गये, नाम और गोत्र हैं। उनमें सादि भी है, सादि कैसे घटित करेंगे ? जो ग्यारहवें गुणस्थान में गया है और फिर वापस लौटकर दसवें में आया है उसके लिये सादि है और अनादि से तो करता ही आया है। फिर ध्रुव किसके लिये ? जो अभव्य जीव है वह तो हमेशा बंध करता ही रहेगा। उसके लिये वह ध्रुवबंध है और अध्रुव किसके लिये ? जिसका वह बंध रुक जायेगा और जो मोक्ष चला जायेगा। भव्यों के लिये उसको कहेंगे अध्रुव है। ख्याल में आती है बात ? ये मूलप्रकृतियों की अपेक्षा हमने बात उठायी। यहां उत्तरप्रकृतियों की चर्चा नहीं करेंगे हम। अभी तो ये ध्रुव क्या है ? अध्रुव क्या है ? इसको समझने में थोड़ी कठिनाई होती है, पहली बार सुन रहे हैं न हम ! ये जो हमने चार भेद किये - सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव। अब यहां थोड़ा देखते हैं हम आगे। अभी हमने तीर्थंकर प्रकृति का नियम देखा, आहारक की भी बात देखी। अब आगे जो विषय चलेगा न, उसके पहले यहां कुछ प्रश्न हैं, उनको लेकर फिर हम आगे चलते हैं।

प्रश्न ऐसा है कि *दो अपकर्षकालों में मिलाकर, किसीके तीन या आठों अपकर्षकालों में मिलाकर आयु का बंध होता है ?* देखो, आयु का बंध होने में ऐसी बात होती है। अपकर्षकाल किसको कहते हैं ? जब आयु के बंध योग्य परिणाम होते हैं तब उसको कहेंगे अपकर्षकाल। आयु के बंध के योग्य परिणाम हमेशा नहीं होते। अन्य सभी कर्मों का बंध तो हर समय चल रहा है। सातों कर्मों का बंध हर समय नित्य हो रहा है परंतु आयु का बंध कभी-कभी होता है। क्यों ? क्योंकि आयु का बंध अन्य प्रकार की लेश्याओं में, मध्यम प्रकार की लेश्याओं में, मध्यम परिणामों में होता है और ऐसे परिणाम कभी-कभी होते हैं जिसको हम कहेंगे अपकर्षकालों में होते हैं और उस काल में, उस समय जैसे जीव के परिणाम हैं उसके अनुसार चारों आयु में से कोई आयु बंधेगी। मिथ्यादृष्टि है तो उसको बहुत चॉइस है- नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु और

मनुष्यायु। दूसरे गुणस्थानवालों को कितना चॉइस है ? नरकायु का चॉइस चला गया अभी उसको, उसके देवायु बंध सकती है, मनुष्यायु बंध सकती है, तिर्यंचायु बंध सकती है। तीसरे गुणस्थान में कोई आयु बंधती नहीं है। चौथे से सातवें गुणस्थानवाला मनुष्य है तो वह देवायु का ही बंध करेगा। चौथे, पांचवें गुणस्थानवाला तिर्यंच है, तो वह देवायु का ही बंध करेगा। चौथे गुणस्थानवाले देव या नारकी हैं तो ये मनुष्यायु का ही बंध करेंगे। कौनसे गतिवाला बंध करता है उस पर भी यह निर्भर है।

यहां पूछ रहे हैं कि ये सभी अपकर्षकालों में आयु का बंध होता है क्या ? अपकर्षकाल तो एक बार, दो बार, तीन बार अधिक से अधिक आठ बार आता है। किसीको एक बार में आयु का बंध होता है, किसीको पहली बार भी हुआ और दूसरी बार भी हुआ; किसीको पहली बार, दूसरी बार, तीसरी बार भी हुआ; अधिक से अधिक आठों ही बार मिलकर उसने आयु के परमाणु ग्रहण किये। इसको कहेंगे आठ अपकर्षकालों में उसने बंध किया। आगे पूछते हैं, *क्या बांधी हुयी आयु वही रहती है अथवा परिवर्तित हो जाती है ?* आयु में संक्रमण नहीं होता। नरकायु का बंध किया हो तो नरकायु ही रहती है, उसमें संक्रमण नहीं होता। मनुष्यायु का बंध किया हो तो मनुष्यायु ही रहती है। हां, उसकी स्थिति में परिवर्तन हो सकता है। जैसे श्रेणिक राजा की ३३ सागर की आयु बंधी और बाद में चौरासी हजार वर्ष की हो गयी। उससे कम क्यों नहीं हुयी ? अरे ! वहां के सम्यग्दृष्टि के उतनी मिनिमम हो सकती है, ये दस हजार वर्ष की नहीं हो सकती उनकी। तो यहां हमने ये सारी बातें देखी थी। यही प्रश्न है न ! इसके संबंध में कुछ और प्रश्न हो तो देखेंगे। *प्रश्नः प्रथम त्रिभाग में बंध हो जाने पर दूसरे त्रिभाग में, तीसरे त्रिभाग में कुछ बदल हो सकता है क्या ?* स्थिति कुछ कम-अधिक हो सकती है परंतु आयु में कुछ परिवर्तन नहीं होता। *प्रश्नः उपशम सम्यक्त्ववाला जीव निरंतर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कैसे करता है ?* क्यों नहीं करता है ? उपशम सम्यग्दृष्टि जीव के तीर्थंकर प्रकृति का बंध होने में क्या बाधा है ? और निरंतर होने में क्या बाधा है ? जब तक उपशम सम्यक्त्व का काल है अंतर्मुहूर्त; पूरे अंतर्मुहूर्त तक तीर्थंकर प्रकृति का बंध करेगा, फिर वेदक यानी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा, वहां भी लगातार करेगा। हो सकता है क्षायिक भी हो जाये। वहां भी करता रहेगा, उसमें कोई बाधा नहीं है उसके होने में, कोई विरोध नहीं है। अब यह बात तो हो गयी। अब हम

आगे बढ़ेंगे। यह प्रकृतिबंध के बारे में जो बात है न ? उसमें अभी हम देखते हैं ये कौनसे होते हैं, कहां नहीं होते और फिर हम थोड़े आगे बढ़ते हैं।

अभी एक बात आयी थी, व्युच्छित्ति हमने नाम सुना। व्युच्छित्ति का अर्थ होता है रुक जाना। बंध होता था, वह बंध रुक जाने को क्या कहेंगे ? बंध की व्युच्छित्ति हुयी। देखो, मिथ्यादृष्टि जीव है और जब पुण्य बंध कर रहा है, उतने समय तक पाप का बंध नहीं हो रहा, उसको व्युच्छित्ति नहीं कहते। दुबारा सुनना, कोई जीव पुण्य प्रकृति बांध रहा है, जैसे सातावेदनीय का बंध कर रहा है और फिर थोड़ी देर के बाद वह पाप प्रकृति बांध रहा है, असातावेदनीय आदि का बंध कर रहा है; जब तक वह पुण्य प्रकृति बांध रहा है, तब पाप प्रकृतियों की व्युच्छित्ति हुयी ऐसा कहेंगे कि नहीं कहेंगे ? तो नहीं कह सकते। परंतु जो प्रकृतियां उस गुणस्थान में ही बंधती हैं, ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती उनको कहेंगे उस गुणस्थान में उनके बंध की व्युच्छित्ति हुयी। अब इसके लिये भी दो कथन आते हैं। आप कहां से आये ? बेंगलोर से आये। किसीने आपको पूछा कि यहां देवलाली में आप सब साधर्मी एक दूसरे से मिले थे, तो कहां बिछुड़ गये ? *श्रोता: देवलाली में बिछुड़ गये।* देवलाली में बिछुड़ गये, अच्छा ! अरे, देवलाली में तो साथ थे न, बिछुड़ कहां गये ? फिर भी हम क्या कहते हैं ? देवलाली में बिछुड़ गये। इसको कहेंगे द्रव्यार्थिकनय का कथन। अब कहां बिछुड़ गये ? तो यहां तो हम साथ में थे। जब यहां से दूर हो गये तब बिछुड़ गये कहेंगे। कोई देवलाली के इस ओर चला गया, कोई उस ओर चला गया तो हम कहेंगे उसके बाद हम बिछुड़ गये। ऐसे ही, जिस गुणस्थान में बंध हो रहा था और ऊपर के गुणस्थान में बंध नहीं हो रहा है; जैसे नरकगति का बंध कहां होता है ? पहले गुणस्थान में ही होता है, दूसरे में या ऊपर कहीं नहीं होता है तो नरकगति के बंध की व्युच्छित्ति कहां हुयी ? तो कहेंगे पहले गुणस्थान में हुयी। पहले गुणस्थान में तो बंध रही थी न ! व्युच्छित्ति कहां हुयी ? तो कहते हैं यह जिस नय से हम बोल रहे हैं उसको हम कहेंगे यहां पहले गुणस्थान में बंध की व्युच्छित्ति हुयी। अगर दूसरी अपेक्षा से यानी पर्यायार्थिकनय से कहना है तो क्या कहेंगे ? अरे ! पहले गुणस्थान में बंध रही थी, दूसरे-तीसरे आदि ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती, वहां उसकी व्युच्छित्ति हुयी। परंतु वह कथन हम यहां फॉलो नहीं करेंगे। इसको कहते हैं उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद, नये नाम आये।

द्रव्यार्थिकनय के लिये कहते हैं उत्पादानुच्छेद और पर्यायार्थिकनय के लिये अनुत्पादानुच्छेद। उसका अर्थ क्या है ? उत्पादानुच्छेद यानी जो द्रव्यार्थिकनय है वह कह रहा है कि जहां अस्तित्व है वहीं पर विनाश है। जहां हम मिले थे वहीं पर बिछुड़े कह दिया न ! वैसे, जहां उसका अस्तित्व है, बंध है, वहीं पर वह बंध का विनाश हुआ कहना यह उत्पादानुच्छेद का कथन है। अब जहां पर उसका सत्त्व ही नहीं है, वहां उसका अभाव हुआ कहना यह दूसरे नय का कथन है परंतु उस नय को हम यहां नहीं लेंगे। हम जब-जब बंध के व्युच्छित्ति की बात करेंगे; कौनसे गुणस्थान में, कौनसी प्रकृतियों का बंध रुक गया है, उसको कहेंगे बंध की व्युच्छित्ति। उसकी जब बात करेंगे तब पर्यायार्थिकनय को नहीं लेंगे। हम तो उत्पादानुच्छेद से कहेंगे, जहां पर बंधती है वहीं पर उसकी व्युच्छित्ति कहेंगे। ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती है तो इसको वहां उसका बंध की व्युच्छित्ति कहेंगे। यानी, उस गुणस्थान के अंतिम समय तक उसका बंध है, उसके ऊपर के गुणस्थानों में उसका बंध नहीं है इसको कहेंगे बंध की व्युच्छित्ति। यह शब्द समझ में आता है ? व्युच्छित्ति यानी बंध का अभाव होना। परंतु अभाव तो ऊपर के गुणस्थानों में था, इस गुणस्थान में तो बंध है; फिर भी ऊपर नहीं है, मात्र इसी गुणस्थान तक है तो हम उसको कहेंगे इसी गुणस्थान में उसकी बंध की व्युच्छित्ति हुयी। आपने थोड़े नाम तो सुने हुये हैं, सम्यग्दर्शन होता है तो ४१ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। सुना तो होगा कि नहीं होगा? हां, तो हम देखेंगे उसका क्या अर्थ होता है। तो यहां जो बंधव्युच्छित्ति की बात लिखी है उसके लिये यह ९४ नंबर की गाथा देखते हैं हम। यहां तो उसकी केवल संख्या बतायी है, कौनसे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है ? ये ऊपर बंधयोग्य की बात है वह तो बाद में करेंगे हम। हां, बंध की व्युच्छित्ति पहले ले लेंगे। ९४ नंबर की गाथा है।

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को॥९४॥

बंधव्युच्छित्ति

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
व्युच्छित्ति	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१

यहां तो मात्र संख्यायें बतायी हैं कि पहले गुणस्थान में सोलह। यहां लिखा हैं न बोर्ड पर, क्या नहीं है ? हैं ? देखेंगे जरा नीचे टेबल में लिखे हैं। ये ऊपर जो लिखी है बंधव्युच्छित्ति जो लिखी है तो यहां पर गुणस्थानों की संख्या बतायी है और नीचे उस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां बंध होने से रुकती हैं वह लिखा है। वहां तो बंध है, ऊपर के गुणस्थानों में उसका बंध नहीं है उसको कहेंगे वहां उसकी बंध की व्युच्छित्ति हुयी। तो पहले गुणस्थान में कितने की व्युच्छित्ति हुयी ? *श्रोता: १६ की।* १६ की। दूसरें में ? *श्रोता: २५ की।* २५ की। तीसरे में ? *श्रोता: झिरो।* झिरो यानी वहां बंधव्युच्छित्ति नहीं है यानी जितनी दूसरे में बंधने से रुक गयी थी उतना ही बंध वहां आगे चल रहा है और कोई ॲडिशनल नयी बंधव्युच्छित्ति वहां नहीं हुयी, तो इसलिये वहां कहा शून्य। तीसरे गुणस्थान में शून्य देखा, चौथे गुणस्थान में ? *श्रोता: १० प्रकृतियों की।* १० प्रकृतियों की, ये कौनसी हैं वह हम बाद में देखेंगे। १० प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है। गाथा में तो मात्र संख्या ही लिखी है उन्होंने। फिर पांचवें में ? ४ की होती है। छठे में ? *श्रोता: ६ की।* ६ की होती हैं। सातवें में ? *श्रोता: १।* १ की है। आठवें में क्या लिखा है ? *श्रोता: ३६।* ३६ एक साथ लिखा है परंतु कैसा है ? दो, तीस और चार। वहां आठवें गुणस्थान के सात भाग किये हैं; पहले भाग में दो प्रकृतियों का बंध रुक जाता है, फिर छठे भाग में तीस प्रकृतियों का बंध रुक जाता है और सातवें भाग में चार प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। तो वहां आठवें गुणस्थान में टोटल ३६ प्रकृतियां बंध होने से रुक जाती हैं, उनके बंध की व्युच्छित्ति होती है। नौवें गुणस्थान में कितने की होती है ? *श्रोता: ५।* तो ५ की होती है। दसवें गुणस्थान में ? *श्रोता: १६।* १६ की है। दसवें गुणस्थान में सत्रह प्रकृतियां बंध रही थी उसमें से १६ के बंध का विच्छेद हो गया। अभी एक ही रह गयी, कौनसी ? सातावेदनीय। वह ग्यारहवें में भी बंधेगी तो ग्यारहवें में बंधव्युच्छित्ति नहीं है। बारहवें में भी बंधेगी, बारहवें में भी बंधव्युच्छित्ति नहीं है। तेरहवें में भी बंधेगी, तेरहवें में वहां बंधेगी, परंतु ऊपर नहीं बंधेगी तो उसकी बंधव्युच्छित्ति कहां पर कहेंगे हम ? तेरहवें में कहेंगे। तो तेरहवें में १। फिर रिपीट करेंगे हम।

पहले में ? *श्रोता: १६।* १६। दूसरे में ? *श्रोता: २५।* २५। तीसरे में ? *श्रोता: शून्य।* शून्य। चौथे में ? *श्रोता: १०।* १०। पांचवें में ? *श्रोता: ४।* ४। छठे में ? *श्रोता: ६।* ६। सातवें में ? *श्रोता: १।* १।आठवें में ? *श्रोता: ३६।* ३६, टोटल हम देखेंगे और नौवें में ? *श्रोता: ५।*

५। दसवें में ?*श्रोता: १६/१६*। फिर कहां पर ? ग्यारह, बारह कुछ नहीं है, तेरहवें में १, जो बंध रही थी उसका बंध चौदहवें में नहीं है उसको कहेंगे तेरहवें में उसके बंध की व्युच्छित्ति हो गयी। देखिये, जब मोक्षमार्ग शुरू हो जाता है तो इतनी-इतनी प्रकृतियों का बंध रुकता चला जाता है और सर्वप्रथम कौनसी प्रकृतियों का बंध रुक जाता है ? जो सबसे तीव्र अशुभ परिणामवाली हैं, तीव्र अशुभकर्म हैं, वे सबसे पहले रुक जाती हैं। सबका राजा है न मोहनीय, हां, वह मिथ्यात्व तो पहले भाग जाता है, उसका बंध रुक जाता है और उसके साथ-साथ अत्यंत अशुभ ऐसी जो प्रकृतियां हैं उनका भी बंध रुक जाता है। अभी सत्ता में पड़ी हैं वे, बंध रुकने का अर्थ ऐसा नहीं है कि उनका टोटल अभाव हुआ है। जो पूर्व में बंधी थी अज्ञान अवस्था में, वे तो अभी सत्ता में पड़ी है, उनका क्या होता है ? उसका तो अलग विषय है न ! अभी तो हम बंध की बात करेंगे पहले। जहां सम्यग्दर्शन होते ही इतनी प्रकृतियों का बंध रुक गया तो यह तो फेवरेबल है कि नहीं जीव के लिये ? अशुभ प्रकृतियों का बंध रुकते चला जाता है। वे कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं वह तो हम आगे चलकर देखेंगे। अभी यहां पर हमने दो नयों से उसका जो कथन आता है उसको देखा है। अब उनके जो नाम हैं उसको देखेंगे हम। ये जो सोलह प्रकृतियां कही हैं, ये सोलह प्रकृतियां कौनसी हैं उसको हम आगे गाथा में देखते हैं, ९५ गाथा में देखते हैं। तो यहां पहले गुणस्थान में कौन-कौनसी चली जाती हैं उसकी यहां बात है। सोलह प्रकृतियां कौनसी हैं ? तो कहते हैं,

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं।
सुहुमतियं वियलिंदी णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे॥९५॥

यानी मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन; फिर एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय; फिर नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन १६ प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में होती है। इसका अर्थ क्या है ? ये प्रकृतियां मात्र मिथ्यादृष्टि के ही बंधती हैं, सम्यग्दृष्टि के तो नहीं ही बंधती; परंतु कोई सम्यक्त्व से गिरकर तीसरे गुणस्थान में आवे या सम्यक्त्व से गिरकर दूसरे गुणस्थान में चला जाये, वहां भी इन प्रकृतियों का बंध नहीं होगा। ख्याल में आयी न यह बात ? कौन-कौनसी प्रकृतियों का ? ये सारी जो एकेन्द्रियादि जाति देखी; एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये ऊपर के गुणस्थानों

में नहीं बंधती हैं। स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त ये सारी नहीं बंधती हैं। नरक संबंधी नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इनका बंध भी ऊपर के गुणस्थानों में नहीं होता। मिथ्यात्व इनके बंध का कारण है उसका भी यहां बंध रुक जाता है। अभी सत्ता में क्या होता है, किस-किसका उदय रुकता है, वह उदय की व्युच्छित्ति में देखेंगे। यहां तो हम बंध की व्युच्छित्ति देख रहे हैं। उदय की व्युच्छित्ति में ऐसा भी देखेंगे कि एकेन्द्रिय प्रकृति का उदय ही नहीं है। उदय ही नहीं यानी जब तक सम्यक्त्व है तब तक वह एकेन्द्रिय में जन्म भी नहीं लेगा। तो जिसका बंध भी नहीं, उदय भी नहीं, उस प्रकृति का क्या होगा ? अरे, जो कुछ होना है वह अन्यरूप से होकर क्षय हो जायेगा। हां, वह भी कैसे होता हैं उसको भी देखेंगे हम।

सत्ता में पड़ी हुयी प्रकृतियों में भी बहुत कुछ परिवर्तन होता रहता है। यहां जीव क्या कर रहा है ? तत्त्वविचार कर रहा है, तत्त्वविचार में लग रहा है, निर्णय हो रहा है उसका, तत्त्वविचार में लीन होते-होते सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय आनंद तो प्राप्त होता ही होता है, यहां आनंद का उपभोग कर रहा है और वहां तो कितनी ही प्रकृतियों का बंध अपने आप रुकता है। उसको कर्मों में कुछ करना नहीं पड़ता है, हम कुछ कर भी नहीं सकते; उसमें कुछ कर ही नहीं सकते हैं यह तो ज्ञान का ज्ञेय है। करणानुयोग का विषय पढ़कर क्या फायदा है ? पुरुषार्थ थोड़े ही उसके अनुसार होता है ? अरे ! पुरुषार्थ तो यह है कि हम उसमें कुछ नहीं कर सकते हैं यह निर्णय होना, दृढ़ता से निर्णय होना जरूरी है। यह तत्त्वनिर्णय ही है जो कार्यकारी है और उसके लिये ज्ञान सर्वांगीण हो जाता है तो तत्त्वनिर्णय और भेदज्ञान बहुत आसान हो जाता है। पुरुषार्थ क्या करना है ? कोई वजन थोड़े ही उठाना पड़ता है ! पुरुषार्थ क्या होता है ? लोगों का यही घिसा-पिटा प्रश्न होता है, जब कहीं न कहीं से क्रमबद्ध की बात हो या सर्वज्ञ की बात हो या प्रत्येक द्रव्य की अनादिअनंत पर्यायें सुनिश्चित हैं ऐसा कहे तो पूछता है कि फिर हमारा पुरुषार्थ क्या रहा ? पुरुषार्थ किसको मानते हैं ? हम चाहते हैं कि चाय पिये और चाय नहीं पीते, भगवान ने तो दूध पीने का देखा है तो हमारा पुरुषार्थ क्या रहा ? हम तो यहां लेफ्ट टर्न लेना चाहते हैं और भगवान ने देखा है राइट टर्न, हम लेफ्ट में नहीं जा सकते तो हमारा पुरुषार्थ क्या रहा ? पुरुषार्थ किसको समझ रहे हैं ? सर्वज्ञ ने, भगवान ने देखा है उसके विरुद्ध करने को पुरुषार्थ मान रहे हैं।

ख्याल में आती है बात ? क्यों ? क्या है ? हम पराधीन हो गये, कुछ नहीं कर सकते। कौन हम ? किसको हम माना ? इस शरीर सहित को मैं माना और इस शरीर की क्रिया मैं चाहे जैसी कर सकता हूं इसको हम पुरुषार्थ मान रहे हैं।

अरे ! आत्मा की प्रत्येक पर्याय आत्मा स्वयं कर रहा है। शरीर की यानी पुद्गल की पर्याय है वह पुद्गल में हो रही है। वह स्वतंत्र अपने-अपने से हो रही है, यथासमय योग्य हो रही है। आत्मा स्वयं ही तो कर रहा है न अपनी वह पर्याय ? अन्य थोड़े ही कर रहा है ? द्रव्य का पुरुषार्थ द्रव्य में होता है। वह अपने पुरुषार्थ से हर समय की पर्याय कर रहा है। हर समय की जो पर्याय हो रही है वह अपने पुरुषार्थ से ही हो रही है, परंतु हम इस बात का स्वीकार नहीं करते हैं और हम एक-दूसरे की सुनकर या लौकिक में जो कोई हमारी बोल-चाल की भाषा है उसके अनुसार पुरुषार्थ का अर्थ लगाना चाहते हैं। क्या है पुरुषार्थ ? अरे ! धर्म का पुरुषार्थ है, इतना पुण्य कमाया, इतना दान दिया, इतना पर्वत चढ़कर आया। क्या पुरुषार्थ किया ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इतना पैसा कमाया, कितना पुरुषार्थी जीव है ! इतना गरीब था न, कितने अरब, कितने करोड़ कमाये उसने ! यह पुरुषार्थ हुआ उसका। यह थोड़े ही पुरुषार्थ है उसका ! यह तो पूर्व पुण्य से मिलनेवाला हो तो मिलेगा। यह करोड़पति अगर पुरुषार्थी है तो फिर उस पर संकट आकर धन तो सारा चला जाता है न ! हमने देखे हैं न ? गरीब होते हुये भी देखे। कच्छ में हुआ, कितने का ही हो गया, हमारी आंखों के सामने होती हैं बातें। तो क्यों हुआ ? पुरुषार्थी था तो धन क्यों चला गया ? तो ये धन कमाना कोई पुरुषार्थ नहीं है।

वर्तमान में पाप कर रहा है और पूर्व के पुण्य का उदय हो रहा है। हमें तो बंध-उदय का भी पता नहीं है। जो अभी पैसे की आवक दिख रही है, अभी वर्तमान में कुछ अनुकूल संयोग मिल रहे हैं वे पूर्व के पुण्य के कारण और हमें सारा पुण्य पैसे में ही दिखता है। अभी हमें स्वाध्याय का लाभ हो रहा है यह पुण्य दिखायी नहीं दे रहा है। उलटा लगता है कि हमारा कितना नुकसान हो रहा है, हम पांच दिन आ गये, एक दिन पहले आ गये, एक दिन बाद में चले जायेंगे, सात दिन का हमारा इतने करोड़ का नुकसान हो गया ! क्या हमने इसको पुण्य माना है ? यह तो पुण्य की कमायी हो रही है। पुण्य की बात छोड़ो, हमारा जो अज्ञान था उसका नाश होकर हमें सही ज्ञान प्राप्त

हो रहा है तो क्या हमें लगता है कि हमारा पुण्य का उदय चल रहा है ? अरे ! हमारा तो इतना नुकसान हो रहा है, ऐसा करके हम रोते हैं। यानी जहां हमें सही तत्त्व मिल रहा है वहां पर भी जाने के लिये यह जीव राजी नहीं है। कहां जाना चाहते हैं ? सीमंधर भगवान के समवशरण में। कैसे जायेगा ? स्वर्ग में जन्म लेगा और देवों को तो क्या, वे कहां भी जा सकते हैं, तो वे वहां से चले जायेंगे ? ये गप्पे लगा रहे हैं। यहां की थोड़ी अनुकूलता छोड़कर स्वाध्याय में नहीं आना चाहता है और स्वर्गों की इतनी विषयों की वहां समृद्धता है तो वह नंदनवन घूमने जायेगा कि भगवान के समवशरण में जायेगा ? यह जीव तो बहाना करता है न ? अभी नहीं जाना चाहता है और फिर हमें समझा रहा है, नहीं-नहीं अभी तो हम पुण्य करेंगे, वहां जायेंगे, फिर भगवान के समवशरण में जायेंगे, फिर हम दिव्यध्वनी सुनेंगे। तो उस निमित्त से हमारा कार्य होगा मान रहा है। हां, वह निमित्त भी वही चाहता है जो इसके मन में जो कुछ है। अरे ! जिसका जो कार्य होना है उसके लिये निमित्त के लिये रुकना नहीं पड़ता है। उसके लिये सामने निमित्त हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। सबको मालूम है न ? सिंह की पर्याय में महावीर को सम्यग्दर्शन हुआ था। अरे ! चारण ऋद्धिधारी मुनिराज तो आकाश में से आये थे और कैसे उनकी मुद्रा देखकर उसके अंतर्मुख परिणाम हुये और अंतर्मुख परिणामों में उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। तो निमित्त के लिये रुकना नहीं पड़ता है।

जिसकी योग्यता पक गयी है उसका वह कार्य उचित समय में होना ही है और उसको उचित निमित्त भी मिलना ही है। देखो, गुरुदेवश्री की जयंती पर कहते हैं, ये नहीं आते तो हमारा क्या होता ? हमने कहा, कैसे नहीं आते ? हमारी योग्यता थी तो जरूर हम उस काल में जन्में और हमें वह उपदेश भी प्राप्त हुआ। है न ! हमारी ऐसी पात्रता है तो हमें ऐसे गुरुदेवश्री जैसे निमित्त भी जरूर मिल गये हैं। अभी तो हम यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

११. बंधव्युच्छित्ति

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है जो हमारे ऊपर अत्यंत उपकार है कि इसको पढ़कर हम सरलता से इस गहन विषय को समझ सकते हैं। बहुतसी जगह उन्होंने भावार्थ भी लिखे हैं। गणित को भी सरल करके बताया है। यहां अपना जो विषय चल रहा है कि जीव को तो अनादि से बंध होता आया है। अनादि से ही जीव और कर्म बंधी हुयी अवस्था में ही हैं और हर समय नये-नये कर्मों का बंध होता रहता है। जो पूर्व में बंधे हैं और जिनका अभी रहने का काल पूरा हुआ है, जिसको हम कहते हैं जिनकी स्थिति पूरी हुयी है, वे कर्म, कर्मरूप से अकर्मरूप हो जाते हैं, उन परमाणुओं की अन्य स्कंधरूप या अन्य परमाणुरूप अवस्था जो कुछ यथायोग्य हो जाती है।

जो बंध होता है उसको हमने चार प्रकार से समझा था। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। मूलप्रकृतियां और उत्तरप्रकृतियां जो बंधती हैं, उसको यहां प्रकृतिबंध कहा। जितनी संख्या में, जितने प्रमाण में परमाणुओं का बंध होता है उसको कहेंगे प्रदेशबंध। जब यह बंधता है तब यह निश्चित होता है कि यह कर्म कितने काल तक जीव के साथ रहेगा और कब उदय में आकर चला जायेगा, तो इसको क्या कहेंगे हम ? *श्रोता: स्थितिबंध।* स्थितिबंध और अनुभागबंध किसको कहना है ? तो जब कर्म बंधता है, उस समय जीव के जैसे कषाय के परिणाम हैं - मंद या तीव्र - वैसे उन कर्मों में भी मंद या तीव्र अनुभाग पड़ता है, जो फलस्वरूप जब उदय में आता है तब उसका फल मिलता है। यह हो सकता है कि बंधने के बाद उस अनुभाग में कितना ही परिवर्तन हो जाये परंतु अभी तो हम बंध के समय की बात देख रहे हैं। बंधते समय वह किस रूप से बंधता है ? इसकी यहां चर्चा चल रही है। फिर बाद में बंधने के बाद उसमें क्या-क्या परिवर्तन होते हैं ? कहीं उत्कर्षण होता है, अपकर्षण होता है, संक्रमण होता है उसकी बात तो अभी हम नहीं ले रहे हैं। हम तो यहां पर केवल बंध की चर्चा कर रहे हैं। बंध के कारण भी हमने देखे हैं। कौनसे हैं बंध के कारण ? हमारे परिचय के हैं न ! अरे रोज तो हम कर रहे हैं ! मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

जिसको अभी मिथ्यात्व है उसको सब कुछ है। क्या कहा ? जिसके मिथ्यात्व है

उसके मिथ्यात्व भी है, अविरति भी है, प्रमाद भी है, कषाय भी है और योग भी है और हम इनको टालना चाहते हैं क्योंकि हमने ॲडव्हाइस सुना है, हमको ॲडव्हाइस देनेवाले बहुत मिलते हैं कि कषाय को, कषाय को नहीं कर्म को कम करो। कर्म को रोको, कर्म को कम करो। तो क्या करना उसके लिये ? योगा करो। तो हमने किसको पहले करना या छोड़ना चाहा ? यह इसको रोककर हम कुछ परिवर्तन लाना चाहते हैं। या कषाय को कम करो तो इसको हमने कम करने को चाहा परंतु मिथ्यात्व को साबुत रखा। क्या किया हमने ? मिथ्यात्व को वैसा ही रखा, जब तक मिथ्यात्व नहीं जायेगा तब तक आगेवालों का जाने का कोई चान्स नहीं है। भले ही बाह्य में उसको लग रहा है कि हां कितना शांत है, कितना भोला है या कितना भद्र परिणामी है; उससे कुछ नहीं होगा। वह भद्र परिणामवाला भी होगा तो जब तक मिथ्यात्व है वहां अनंतानुबंधीवाला वह भद्र परिणाम कुछ काम का नहीं है क्योंकि अनंतानुबंधी कषायों के भी मंद से तीव्र तक बहुत सारे असंख्यात लोकप्रमाण उसके भेद हैं। बाह्य में किसीके कषाय मंद दिखे इसलिये वह सम्यग्दृष्टि हुआ ऐसा नहीं है।

हमें तो ऐसे भी जीव - जैनी मिले जो कहते हैं कि 'हम जैन हैं न ? हम जैन हैं तो हमारे में अनंतानुबंधी कषाय है ही नहीं। हमें तो आर्त-रौद्रध्यान होता ही नहीं है।' कुछ तत्त्व का अभ्यास नहीं है और वे अपनी कल्पना से कुछ भी सोचते हैं; केवल सोचते नहीं हैं, दूसरों को उपदेश भी देते रहते हैं। मिथ्यात्व का तो नाश करना चाहते हैं। हमने सुना है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र चाहिये तो वे उसको प्राप्त करने की कोशिश भी कर रहे हैं तो उसका मार्ग बतानेवाले ऐसे कोई ॲडव्हाइज़र भी मिल जाते हैं और हमारे यहां फिर आकर पूछते हैं। एक जन आये थे हमारे यहां, क्या कह रहे थे? कि 'मैं चार साल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय कर रहा हूं।' किसके गाइडन्स में ? 'तो हमें एक ऐसे शख्स मिले कि जिन्होंने मुझे कहा, मैंने कितने ही मुनियों को सम्यग्दर्शन दिला दिया है।' तो हमने बोला अरे वाह ! अच्छी कोशिश कर रहे हैं आप। तो आप क्या करते हैं ? 'मैं सुबह चार बजे उठता हूं और फिर ॐ नमः सिद्धेभ्यः की जाप देता हूं। अड़तालीस मिनट ऐसे बिलकुल स्थिर आसन लगाकर बैठता हूं, अंतर्मुहूर्त बताया है न शास्त्र में। मुझे अभी तक तो कुछ प्राप्ति नहीं हुयी।' मैंने कहा अच्छा है ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः कहते हो और सिद्धों का ध्यान करते हो, सिद्ध परमेष्ठी का

स्वरूप तो आपको पता होगा ही ? उन्होंने कहा 'उसकी क्या जरूरत है ?' वे भद्र परिणामी थे, भोले थे और चाहते भी थे कि मैं कुछ मोक्षमार्ग में अग्रसर हो जाऊं। परंतु ऐसे खोटा उपदेश देनेवाले भी समाज में बहुत सारे मिल जाते हैं। क्या करें ?

गुरुदेवश्री कितनी बार कहते थे बीबी, बाल-बच्चों को खुश रखते-रखते चौबीस घंटों में से मांड- मांड एक घंटा निकालता है, फिर बाद में एक चौबीसवां घंटा मिल जाता है तो क्या ? हां, कुगुरु उसको लूट लेते हैं ! यह खोटा उपदेश देनेवाले बहुत हैं। यह ऐसा है न ? जो उपदेश लोगों को अच्छा लगे, समाज को अच्छा लगे, ऐसे उपदेश देनेवाले भी बहुत से मिल जाते हैं क्योंकि समाज को खुश रखना है न ! बहुत सारा समाज इकट्ठा हो जाये और समाज को रुचे-ऐसे हम बोलें, तो वह अच्छा ! क्यों ? क्योंकि हमारा समाज एकत्रित रहेगा। परंतु समाज को अच्छा लगे ऐसा बोलना है कि जो सच्चा है वह बोलना है ? वक्ता की जिम्मेदारी क्या है ? महावीर भगवान का उपदेश आज हम तक आ गया है जो हमारे मुनियों के हम पर परम उपकार हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, नेमिचन्द्राचार्य आदि अनेक आचार्य हैं कि जिन्होंने यह मूल उपदेश की धारा कायम रखी है, सरल करके हमें समझाया है। उस उपदेश की धारा के अनुसार उपदेश चाहिये या हमें बहुत सारे शिष्य इकट्ठे होते हैं, इसलिये लोगों को अच्छा लगे वह उपदेश देना है ? आजकल शिष्य मिलने में कुछ मुश्किली नहीं है। कोई भी पंथ निकालो तो उसके पीछे लगनेवाले बहुत मिल जाते हैं। क्योंकि वह अच्छा भी लगता है न और फिर लोग भी वहां चले जायेंगे सुनने को जहां भीड़ जाती है। सोचते हैं कि देखूं तो सही-क्या बताते हैं ? इतनी भीड़ जा रही है तो हम भी जायेंगे।

हमारे घर में आज उपदेशक आ रहे हैं, कहां पर ? घर-घर जाकर ? *श्रोता: टीव्ही में।* हां, टीव्ही में। अच्छा ! कहते भी हैं लोग, हमें जो उसमें से अच्छा-अच्छा लगे न, वह हम लेते हैं। यह अच्छा क्या है और सच्चा क्या है इसमें जीव अभी डिफरन्शिएट नहीं कर रहा है। उसको अभी पता ही नहीं है कि सत्य उपदेश क्या है और जो अन्यमति की मान्यता, जिनका अपने आचार्यों ने डंके की चोट पर निषेध किया है, वही उपदेश उनके मुख से सुनते हैं तो अच्छा लगता है क्योंकि हमारी अनादि की जो भ्रमणा है उसीकी पुष्टि मिलती है और जो हमारा मिथ्यात्व है वह पुष्ट होते रहता है। फिर हम उसीको अच्छा और सच्चा मानकर उसका उपदेश सुनने में एक-एक घंटा,

दो-चार घंटे जितने बिताने हैं, वह बिताते हैं। क्या करें ! जिसकी होनहार ऐसी है उसके परिणाम भी ऐसे ही होते हैं। 'तादृशी जायते बुद्धि, यादृशी भवितव्यता।' ऐसे लगता है इनका भवितव्य ऐसा ही है, ऐसी उनकी बुद्धि हो रही है। हां, उनको समझाने का राग जरूर आता है, परंतु पं. टोडरमलजी की भाषा में, **उनको देख-देखकर कषायी मत होना।** समझाने का विकल्प आ जाता है ! समझाने का भाव आता है, यह हमारी कमजोरी है। आता है क्योंकि हम गृहस्थ हैं तो हमारे बाल-बच्चों को, आजू-बाजूवाले को, जो कोई हमारे पहचानवाले हैं उनको देखकर हमें जरूर ऐसा लगता है कि क्यों नहीं ये यह मार्ग अपनाते ? हमारे अपने ही क्यों नहीं अपनाते ? कोई अमेरिकावाले तो बुला लेते हैं, इंडियावाले क्यों नहीं सुनते ? ऐसा भी लगता है कि नहीं लगता ? यह जो सच्चा उपदेश हमें मिल रहा है उसका हमें जरूर अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि सम्यग्दर्शन जैसी अपूर्व पर्याय जो हम प्रकट करना चाहते हैं।

देखो ! मोक्षमार्ग कोई सीधी-सादी बात नहीं है, अपूर्व ऐसी चीज है। एक बाजू तो हम कहेंगे इतना सरल दूसरा कुछ नहीं है और दूसरी बाजू कहेंगे कि यह अपूर्व ऐसी चीज है। तो यह मुश्किल है कि बहुत सरल है ? है तो सरल। है तो सरल परंतु उसको प्राप्त करने की बुद्धि महा मुश्किल से कभी होती है। हमें दुर्लभता से अभी हो गयी है। वह कुछ कठिन बात नहीं है। फिर भी हम कहीं ना कहीं अटके रहते हैं और यह मार्ग हमारा चूक जाता है। यह विषय निकालने की, इसकी चर्चा करने की क्या जरूरत थी ? क्योंकि हमें समाज में ऐसे व्यक्ति मिलते रहते हैं, उपदेशक भी मिलते रहते हैं कि हमें खोटे मार्ग पर चढ़ा देते हैं। हमें अच्छा लगे ऐसा बोलेंगे तो हम भी चढ़ जाते हैं ऊपर। कोई खोटा उपदेश देनेवाला है और लोग उसकी वाह-वाह करें तो उसको भी अच्छा लगता है न ! इतने सारे अपने फॉलोअर्स मिल रहे हैं, इतने शिष्य बन रहे हैं तो चलता रहता है वह उपदेश।

चलो ! अभी हम आगे बढेंगे, यहां जो हमने देखा है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है ? हमने बंध को तो देखा, बंध की व्युच्छित्ति क्या होती है वह हम देखेंगे। बंध तो होता है, परंतु ये जो चौदह गुणस्थान हैं, मोक्षमार्ग में जीव अग्रसर होता है, परंतु अनादि से तो पहले गुणस्थान में पाया जाता है। जब वह जिनेंद्र भगवान के उपदेश के अनुसार... अभी यह पंचलब्धि का तो प्रकरण है

नहीं है, उसमें जो पांच लब्धि का प्रकरण समझाया है तो यह पांचों लब्धिपूर्वक उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। उसमें महत्व की बात क्या है ? देशना के बिना उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का उपदेश और उस उपदेश को वह परीक्षापूर्वक उसका निर्णय करे कि ये ही सच्चे देव हैं, ये ही सच्चे गुरु हैं, ये ही सच्चे शास्त्र हैं और फ़िर उनका अवलंबन लेता है। उनके उपदेश के अनुसार स्वयं तत्त्वनिर्णय करता है, तो उस तत्त्वनिर्णय के काल में उसको सम्यग्दर्शन हो जाता है। सहजरूप से होता है, कुछ खींचातानी नहीं है। हम जो देख रहे थे न पहले योगा करना चाहता है, नहीं तो फिर कषायों को घटाना चाहता है। परंतु यह क्रमभंग ऐसा नहीं होता, वस्तुस्वरूप में ऐसा क्रमभंग नहीं चलता है। पहले जायेगा तो मिथ्यात्व ही जायेगा, फिर अविरति, फिर प्रमाद, फिर कषाय, फिर योग इसी क्रम से।

हमें दुबई में एक भाई मिले थे, हम प्रवचन के लिये गये थे न ? तो पूछ रहे थे - यह ऐसे अटपटे नाम वगैरह क्यों रखते हो ? कोई सरल नाम रखो। *श्रोता: लंबे-लंबे नाम।* लंबे-लंबे नाम क्यों रखते हो ? मैंने पूछा आपका फोन नंबर क्या है ? तो इतना लंबा-चौड़ा फोन नंबर बता दिया उन्होंने। मैंने कहा इतने लंबे नंबर क्यों रखते हो ? आपका मोबाइल नंबर क्या है ? कितने डिजिट का होता है ? मुझे मालूम नहीं मैं तो मोबाइल रखती नहीं हूं भाई ! कितने होते हैं डिजिट्स उसमें ? *श्रोता: दस होते हैं।* दस होते हैं, अच्छा ! आज एक नॉलेज में बढ़ोतरी हो गयी, कि मोबाइल नंबर दस डिजिटवाला होता है। क्यों इतना लंबा रखते हो ? छोटा रखो न ! दो-तीन डिजिटवाला, याद रहे। आप क्या कहते हैं ? इतने लंबे-लंबे भी हम याद रखते हैं। अच्छा ! और यहां बंध व्युच्छित्ति कहेंगे, हम पूछेंगे भी कल सोलह कौनसे होते हैं ? वह याद नहीं रहते हैं। इतने लंबे नंबर क्यों हैं ? अच्छा ! लंबे हैं तो कोई ठीक है। तो उसमें कोई नाइन होगा, थ्री होगा, एट होगा, वन होगा, झिरो होगा कुछ। हम पहले झिरो घुमायेंगे, फिर एक घुमायेंगे, फिर दो घुमायेंगे, चलेगा कि नहीं चलेगा ? आपको कोई विशिष्ट नंबर लगाना है, फोन करना है किसीको, तो उसी ऑर्डर में लगाना पड़ेगा जिस ऑर्डर में वह नंबर है। उसके बिना वह फोन नंबर भी नहीं लगेगा और यहां तो हम अपनी कल्पना से कुछ करना चाहते हैं परंतु जिस ऑर्डर में वह जाना है, उसी ऑर्डर में जायेगा।

हम क्या करना चाहते हैं ? पहले कषाय को कहीं तो घटाना चाहते हैं। मैं

कौनसा परिणाम करूं ? ऐसा पूछते हैं। आयुबंध की बात आती है न ! सब जगह एक ही प्रश्न आता है हम कैसे परिणाम रखें ? हमने पूछा कौनसी आयु बांधना चाहते हो पहले यह बताओ। यानी आयु का बंध करना चाहते हैं यह चाह पड़ी है बंध के पीछे। ऐसा नहीं है कि हम आयु का बंध करना ही नहीं चाहते। जब बात आती है कि राग को कम करो; ठीक है राग को कम करना आपके हाथ की बात होगी। यदि यह पॉसिबल है, यह अगर शक्य है, तो करो ही मत न ! क्या कहा ? राग कम कर सकते हो तो राग बिना भी रह सकते हो ! तो करो ही मत बिलकुल। परंतु ऐसा नहीं, हम कम करना चाहते हैं; करना तो चाहते हैं, परंतु कम करना चाहते हैं। हां और वह कम करने से हम मोक्षमार्ग में बढ़ेंगे ऐसा लगता है। यह तरीका ही नहीं है। मिथ्यात्व जाने का यह तरीका नहीं क्योंकि मंद कषाय करके हम वीतरागता प्राप्त करना चाहते हैं। यह हमारी अभिप्राय में भूल पड़ी है। जब तक यह अभिप्राय नहीं सुधरेगा तब तक वह मिथ्यात्ववाला दोष दूर नहीं होगा। ख्याल में आती है न बात ? है तो सरल, फिर भी कहीं न कहीं चूक जाते हैं, यह उसकी बात चल रही थी अपनी।

मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध की व्युच्छित्ति हमने देखी थी तो पहले-पहले मिथ्यात्व जो प्रकृति बंधती है, मिथ्यात्व गुणस्थान में ही बंधती है, आगे कहीं भी नहीं बंधती। उसके हमने प्रकृतियों के नाम देखे थे तो कौन-कौनसे हैं ? मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन; एकेन्द्रिय संबंधी- एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु। देखो, थोड़ी याद करने की कोशिश करेंगे और सारे गुणस्थानों की बंध व्युच्छित्ति याद हो जायेगी। कितना मजा आ जायेगा ! कहां बंध व्युच्छित्ति होती है, कहां उदय व्युच्छित्ति होती है फटाफट ! रोज घूमने जाते हैं, रोटी बनाते हैं, जो कुछ करते हैं तभी यह याद करना। याद हो जाने के बाद आप देखो उसका कितना मजा आता है। हमने पहले गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति देखी। ये जो प्रकृतियां हैं, पहले गुणस्थान में ही बंधती है, आगे के गुणस्थानों में नहीं बंधती, इसतरह इन १६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हमने देखी है। अब यहां ९६ गाथा में दूसरे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति बताते हैं।

विदियगुणे अणथीणति दुभगतिसंठाणसंहिदचउक्कं।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ॥९६॥

अभी जो दूसरा सासादन गुणस्थान है, उस सासादन गुणस्थान में बंधती हैं, परंतु आगे के गुणस्थानों में नहीं बंधती ऐसी कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? पहले में पहले अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ चार; फिर उसके बाद तीन निद्रा, कौन-कौनसी ? स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला; उसके बाद यहां तो पुस्तक में कुछ अन्य लिखा है, परंतु ये संस्थान हैं न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक और वामन बीचवाले चार संस्थान; उसके बाद बीचवाले चार संहनन, पहला वज्रवृषभनाराच छोड़ दो, बीचवाले कौन-कौनसे हैं ? *श्रोता: वज्रनाराच।* वज्रनाराच। *श्रोता: नाराच।* नाराच। *श्रोता: अर्धनाराच।* अर्धनाराच और कीलित। यह असंप्राप्तासृपाटिकावाला तो पहले गुणस्थान में ही चला गया। बीचवाले यहां चले जायेंगे, आगे के कहां चले जायेंगे ? वह आगे के गुणस्थानों में देखेंगे। उसके बाद तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत ये चार प्रकृतियां; उसके बाद दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र है, स्त्रीवेद है और अप्रशस्त विहायोगति। ये जो प्रकृतियां हैं दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं, ऊपर नहीं। आप कहेंगे, आप जो कुछ नाम ले रहे हो, तो हमारे लिये सभी फॉरिन लँग्वेज हैं, हम कुछ नहीं जानते। तो आप कोई भी नाम ले लो न ! हम तो हां कहेंगे। क्यों ? तो ये जो प्रकृतियां हैं, २५ प्रकृतियां दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं, ऊपर के गुणस्थानों में इनका बंध नहीं पाया जाता है। तो इसको क्या कहेंगे हम ? इनके बंध की व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में होती है।

तीसरे गुणस्थान में तो कोई बंधव्युच्छित्ति है नहीं, झिरो देखा हमने। जो जीव पहले गुणस्थान से अभी सम्यक्त्व प्राप्त करके चौथे गुणस्थान में जाता है उसके, ना यह पहले गुणस्थानवाली १६ का बंध होता है और ना ही दूसरे गुणस्थानवाली २५ का बंध होता है। जब चौथे गुणस्थान में पहुंच जाता है तो इन ४१ प्रकृतियों का बंध उसके नहीं होगा। ये खतरनाक में खतरनाक प्रकृतियां सबसे पहले बंधने से रुक जायेगी। बंध का रुकना उसको क्या कहेंगे हम ? संवर शुरू हो गया उसका। पहले बंधती थी, अब उनका बंध यानी आस्रव रुक गया है, बंध नहीं हो रहा है। तो उसको हम क्या कहेंगे ? इतनी प्रकृतियों का संवर हो गया। तब तक उसको संवर नाम नहीं था। जब हम पुण्य बांध रहे थे, तब पाप प्रकृति नहीं बंध रही थी, फिर भी उसको संवर नहीं कहा था। जब पाप प्रकृति बंध रही थी तब पुण्य नहीं बंधे तो उसको संवर नहीं कहा था। परंतु जब

मिथ्यात्व चला गया है, अब वहां चौथे गुणस्थान में उनका बंध होता ही नहीं है ऐसी जब पोझिशन आती है, तब हम यहां कहेंगे उसको ४१ प्रकृतियों संबंधी बंध रुक गया है, उतना उसको संवर प्रकट हो गया है। ये सारी जो अशुभ प्रकृतियां हैं, जिसके कारण वह अनादि संसार चला आ रहा था, ऐसी-ऐसी प्रकृतियां यहां बंधने से रुक गयी हैं। आप पूछेंगे पहले बंध हुआ था उसका क्या होगा ? सत्ता में पड़ी रहेंगी। अभी नया बंध रुक गया है उसका, पुराना जो बंधा हुआ है, वह तो रहेगा।

देखो, मोक्ष कैसे होता है ? यह लब्धिसार ग्रंथ में आता है। जीव की लब्धि क्या है ? उपलब्धि क्या है ? तो सच्चा सुख मिलना, मोक्ष-अनंतसुख मिलना ही उसकी उपलब्धि है। यानी मोक्ष की प्राप्ति उसकी उपलब्धि है। मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी ? तो कहते हैं संवर और निर्जरा से होगी। संवर कैसे होगा ? बंध की हानि से संवर होगा। यानी आस्रव जो हो रहा था, वह रुकना उसको संवर कहेंगे और जो ऑलरेडि बंधा है, सत्ता में पड़ा है उसकी हानि हो जाना यानी अधिक मात्रा में खिर जाना उसको कहेंगे वह निर्जरा हो रही है। हर समय क्या हो रहा था ? जितना बंध रहा है, उतना ही खिर रहा है; एक समयप्रबद्ध बंध रहा है और एक समयप्रबद्ध खिर रहा है। किसीने पूछा न ? तो मिथ्यात्व अवस्था में उसने व्रत किये तो क्या होगा ? एक ही समयप्रबद्ध खिरेगा, हां, अधिक निर्जरा नहीं होगी उसकी। तो कहा है न तत्त्वार्थसूत्र में। क्या कहा है ? तप से निर्जरा होती है न ! **तपसा निर्जरा च।** तो इतना तप किया, उपवास किया, निर्जरा तो होगी कि नहीं होगी ? बोलो ! मिथ्यादृष्टि ने इतना तप किया तो उसकी कितनी गुणी निर्जरा होगी ? उसकी एक समयप्रबद्धवाली निर्जरा होगी, अधिक नहीं होगी। क्यों नहीं होगी ? यह निर्जरा होने का जो प्रोसेस है जिसको असंख्यातगुणी निर्जरा कहेंगे या गुणश्रेणी निर्जरा कहेंगे, वह तो अपना अभी हुआ नहीं, हम उसको बाद में देखेंगे।

जो अपकर्षण होता है और अधिक मात्रा में परमाणु खिर जाते हैं ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टि के होती ही नहीं। भले वह महाव्रत को भी अंगीकार क्यों ना करे, फिर भी उसकी एक समयप्रबद्धवाली ही निर्जरा होगी और उसका बंध तो चल रहा है। भले ही पुण्य प्रकृति का बंध हो फिर भी उसका बंध हो रहा है और निर्जरा भी एक समयप्रबद्ध की होगी यानी वह मोक्षमार्गवाली नहीं, सामान्य निर्जरा जिसको हम उदयरूप कहते हैं। तो ऐसी निर्जरा उसकी चलती है तो उसमें उस जीव को कुछ लाभ होगा कि नहीं

होगा ? किसकी प्राप्ति होगी ? संसार की। क्यों ? पुण्य बांधा है तो पुण्य से वैभव मिलेगा, वैभव में मद हो जायेगा और विषय मिलेंगे सुलभता से। उसको भोगने के परिणाम होंगे उसमें तो और पाप बंधेगा, एकेन्द्रियादि में चला जायेगा। यह सायकल तो चलता आ रहा है। जीव को सहज ऐसी बुद्धि होती है कि मैं मोक्ष प्राप्त करूं, सच्चा सुख प्राप्त करूं और देखादेखी अन्य जीवों का देखकर वह भी व्रतादि करना चाहता है। परंतु क्या उसमें मेरा सुख है कि नहीं इस पर विचार नहीं करता। मैं यह क्यों कर रहा हूं ? इसका भी उसको विवेक नहीं है। किसी भगवान की पूजा भक्ति करता है, तो मैं क्यों कर रहा हूं- यह मेरे से श्रेष्ठ हैं कि नहीं इसका विचार नहीं करता। अरे, भगवान तो हमारे से श्रेष्ठ हैं न ! उसकी बात नहीं कर रहे। जो अन्यमति हैं, जिसको कहे न कुदेवादि की जो श्रद्धा करते हैं तो वहां क्या सोचते हैं ? हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, किसकी पूजा कर रहे हैं ? कोई नाग की कर रहा है, कोई वृक्ष की कर रहा है, कोई नदी की कर रहा है, कोई अभी अचेतन लक्ष्मी की कर रहा है। दिवाली के दिन लक्ष्मी की पूजा करते हो कि नहीं ? करते हो कि छोड़ दिया ? छोड़े कैसे ? हमारे पूर्वजों ने जो शुरू किया है तो वे मूरख थोड़े ही थे ? हम कैसे छोड़ें ? हमारे पूर्वज तो बहुत गरीबी में रहते थे उस गरीबी को हमने छोड़ दिया। पूर्वज पगड़ी पहनते थे, यहां तक ऐसे वह पल्लू लेते थे, हमने वह भी सब छोड़ दिया, क्यों ? उसमें से तो हमने बहुत तरक्की कर ली। तो यह मिथ्याभाव ? अरे ! ये तो उनका चला आ रहा है, वह तो हमने चालू रखा, वह क्यों छोड़ें ? क्योंकि किसी रूढ़ि को हम चलाते रहते हैं न !

हम गये थे, हम बहुत जगह जाते भी हैं न ! देखते हैं वहां, पूछते हैं, अरे तुम जैनी हो तो यह अन्यमति के देवताओं को क्यों पूजते हो ? गणेश चतुर्थी के बाद वह गौरी लाते हैं क्या-क्या लाते हैं ? औरंगाबादवाले आये कि नहीं आये ? *श्रोता: तीस लोग आये हैं।* तीस लोग आये हैं। हम आयेंगे इस गणेशोत्सव में देखने को, कितनी गौरी मातायें आती हैं घरों में। अरे क्या करें ? किसीका कोप हो जायेगा तो ? हमारे बाल-बच्चों को कोई बीमारी हो जाये तो ? ये डर के मारे करते रहते हैं। माफ करना किसीका दिल नहीं दुखाना है और करते हो तो बिलकुल छोड़ देना। वीतराग मार्ग में आये हो तो कुदेवादि की पूजा करना और वह अभिप्राय रखना महापाप है। कोई भला होनेवाला नहीं है और ऐसे डर के मारे किसीको अच्छा लगे इसीलिये इनके पीछे लगना

वह बात अभी छोड़ दो। मनुष्यभव बहुत दुर्लभ है ! क्या करें ? हमारे यहां कोई महंत पुरुष आये हैं, उनके पीछे जाना चाहिये कि नहीं चाहिये ?

प्रश्न: पुण्यना परिणाम थाय तो संवर केम नहीं ? पुण्यना परिणाम थाय तो संवर केम नहीं ? उसके पहले क्या लिखा है ? हां, आपका प्रश्न ऐसा है पाप छोड़कर पुण्य हो सकता है तो पुण्य से संवर हो रहा है कि पुण्य छोड़कर संवर हो रहा है ? क्या है, नहीं समझे ? यह ऐसा पूछ रहे हैं पापथी पुण्यना परिणाम थाय तो संवर केम नहीं थाय ? पाप कर रहे थे, अब कोई पुण्य कर रहा है तो पुण्य कर रहा है तब तक पाप रुका है। कायम के लिये रुका है ? गुणस्थान बदला है उसका ? जब गुणस्थान बदलकर ऊपर के गुणस्थानों में जायेगा तब उतनी प्रकृतियों का संवर कहेंगे हम। पहला ही गुणस्थान है कभी पाप कर रहा है, कभी पुण्य कर रहा है। पुण्य करने से उसका गुणस्थान नहीं बदलता। कोई पुण्य करे, व्रत करे तो पहले गुणस्थान से चौथे में या पांचवें, छठे, सातवें में नहीं जा सकता है। कैसे जाता है ? मिथ्यात्व का अभाव करके और फिर जिस मात्रा में जितने कषाय चौकड़ी का अनुदय है, वैसे उसका गुणस्थान पलटता है। तब उसको हम कहेंगे उसका संवर हुआ, उतना आस्रव रुक गया। अभी मिथ्यात्व का तो आस्रव हो रहा है। जब मिथ्यात्व का आस्रव है तो अविरति, प्रमाद, कषाय, योग सभी का आस्रव हो रहा है उसको। पांचों संबंधी आस्रव चल रहा है और उसने पुण्य किया यह केवल कषाय है, वह तीव्र थे वह मंद हो गये। तो आस्रव हो ही रहा है, मिथ्यात्व का आस्रव रुके बिना उसको संवर नहीं कहेंगे।

श्रोता: जब मिथ्यात्व का बंध रुक जायेगा तब संवर कहलायेगा। पहले मिथ्यात्व का नाश होगा ? हां, जब मिथ्यात्व चला जायेगा तब उसको अविरति है, अभी चौथे गुणस्थान का नाम है अविरत सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टि हो गया है मिथ्यात्व का बंध भी रुक गया है। उसका आस्रव रुक गया है, मिथ्यात्व संबंधी इतनी १६ प्रकृतियों का और अनंतानुबंधी संबंधी २५ यानी ४१ प्रकृतियों का बंध रुक गया है। इतना तो उसको संवर हो गया है लेकिन जब तक मिथ्यात्व का बंध नहीं रुकेगा, तब तक उसको हम संवर नहीं कहेंगे। तब तक उसको हम मोक्षमार्ग नहीं कहेंगे, तब तक तो वह जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा में भी नहीं आया है। बस सुन रहा है, कुछ क्रियायें कर रहा है। यह है तो बहुत सरल मार्ग परंतु हमने जो कुछ पहले से मान्यतायें रखी हैं उनको छोड़ना

नहीं चाहते हैं और देखा-देखी वही करके हमारा कुछ कल्याण होगा ऐसा मानते हैं। दूसरों को भी उपदेश देते रहते हैं। तो यह भव तो ऐसा ही चला जानेवाला है। समाज को अच्छा लगे इसीलिये हम वही करते रहे तो उससे अपना कुछ अच्छा होगा ? समाज के बिना कब हम रहनेवाले हैं ? कहां गयी प्रज्ञाताई ? कहां गयी हां ? हमें समाज में रहना है तो हमें ऐसा करना पड़ता है। एक बार उनसे चर्चा हुयी थी, अच्छी स्वाध्यायी हैं। उनसे कहा था कि समाज बिना कब जन्म लेंगे आप ? जब समाज नहीं होगी और हम अकेले यहां पैदा होंगे ऐसा होगा न ! तब जाकर हमारा कल्याण होगा ? तो समाज को अच्छा लगे, समाज को दिखाने के लिये सब बातें करते रहते हैं हम। क्या करें ? इसमें अपना कितना नुकसान होता है, इसका कोई अंदाजा ही नहीं है हमें। यहां जो संवर की बात हो रही है कि मिथ्यात्व छूटे बिना... यह पहले में पहले तो गृहीत मिथ्यात्व अभी नहीं छूट रहा है और हम तो यहां अगृहीत की बात कर रहे हैं। ख्याल में आती है न ? यह जो अन्य देवी देवताओं को मानना है, उनके पीछे लगना है कि जो साक्षात गुरु नहीं हैं, उनके पीछे गुरु मानकर सब आचार-विचार कर रहे हैं यह क्या है ? श्रावक का प्रथम कर्तव्य है, गुरु का निर्णय करना, देव का निर्णय करना, उसमें लोग चूक जाते हैं। क्या करें ?

सासादन गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति हमने २५ की देखी। जो जीव पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान में जाता है, अभी कोई व्रत नहीं है उसका नाम ही अविरत सम्यग्दृष्टि है। विरति नहीं हुयी है अभी, हां कौनसी विरति होती है ? जिसको संयम कहते हैं। इन्द्रियसंयम या प्राणीसंयम दोनों ही उसके नहीं हैं। इन्द्रियसंयम भी छह प्रकार का होता है- पांच इन्द्रिय और एक मनसंबंधी। प्राणीसंयम में छह काय जीव जो हैं, पांच स्थावर और एक त्रस इन संबंधी हिंसा से विरत नहीं हुआ है। हिंसा करना नहीं चाहता है परंतु अभी उससे वह होती है, उसका दुःख भले ही है उसको, परंतु अभी वह उससे हटा नहीं है। फिर भी वह सम्यग्दृष्टि है और उसके इतने ४१ प्रकृतियों का बंध नहीं हो रहा है। कोई अन्य जीव जिसके अभी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ है और वह बराबर देख-शोधकर सब चीजें कर रहा है, कोई हिंसा नहीं कर रहा है उसको कितने प्रकृतियों का बंध रुक गया है ? *श्रोता: एक भी नहीं।* एक भी नहीं, सभी प्रकृतियों का बंध हो रहा है। क्यों ? उसने तो रोक लगायी न व्रतों से ? व्रतों से रोक नहीं लगती है।

जब मिथ्यात्व चला जायेगा, कषाय चौकड़ियों का अनुदय होता चला जायेगा; पहले अनंतानुबंधी जायेगी, फिर अप्रत्याख्यानावरण जायेगा; जायेगा नहीं उदय मिट जायेगा, सत्ता में भले ही पड़े रहेंगे। तब जाकर उसके वह संवर-निर्जरा भी होगी और तब जाकर वह रोक लगेगी उस पर।

हम क्या करते हैं ? हां, किसीको कोई चोट आयी या कोई अंदर कीली घुस गयी हो, कोई मिट्टी गयी हो, जख्म हो गया है तो हम क्या करते हैं ? हां, उसको हमें ठीक करना है तो हमने तो टीव्ही पर कुछ न कुछ ॲडव्हर्टाइजमेंट देखी है। तो कोई भयंकर चोट आयी थी, रास्ते पर गिरा था और अंदर बहुत गंदगी चली गयी थी तो हमने वह कुछ लाया और उसके ऊपर बहुत अच्छी ड्रेसिंग कर दी। कितने दिन में ठीक होगा ? कोई होंगे न डॉक्टर यहां पर ? हां। आप कहेंगे डॉक्टर की क्या जरूरत है वह तो उसमें सेप्टिक होनेवाला है। हां, हम भी डॉक्टर हैं, अच्छा ! हम ही बता देंगे आपको। क्यों ? अंदर तो गंदगी है और ऊपर तो हमने अच्छी ड्रेसिंग कर दी न ! तो उससे तो चोट ठीक हो जायेगी कि नहीं ? नहीं ! जब तक अंदर फॉरिन बॉडी है, जो कोई कांच है, जो कोई कचरा है वह निकाले बिना ऊपर अगर हम पट्टी लगाते हैं तो वह जंतुओं को पनपने में और आसानी हो जाती है। अनुकूल वातावरण मिल जाता है। हमने क्या किया ? मिथ्यात्व अंदर साबुत रखा और ऊपर क्या किया ? व्रतों की मरहम-पट्टी कर दी। ठीक है, करने में हर्जा नहीं है, परंतु हमने माना... यह मान्यता पर चोट है, करने पर नहीं। क्या माना ? कि अभी व्रत कर रहे हैं न, तो अभी जल्दी हमें मोक्ष मिल जायेगा। यह व्रत कर रहे हैं न ? तो हमारी निर्जरा हो रही है। अगर यह मिथ्यात्व साबुत रखकर ऊपर व्रतों की मरहम पट्टी की और मान रहे हैं कि इससे निर्जरा हो रही है और एक दिन मोक्ष हो जायेगा तो यह मिथ्यात्व अंदर पनप रहा है क्योंकि हमने सही रास्ता बंद कर दिया न !

हमने गलत मान लिया है कि इसीसे हमारा कल्याण होगा यह मान्यता ही हमारा मुख्य दोष है। यह मान्यता जब तक गलत है तब तक मोक्षमार्ग शुरू नहीं होता। भले व्रत करो अच्छी बात है। जैसे हम स्वाध्याय करते हैं, व्रतादि भी करने ही चाहिये। परंतु मान्यता पहले में पहले यथार्थ होनी चाहिये; मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि मान्यता सही रखो और जब तक वीतरागता प्राप्त नहीं होती, तब तक प्रशस्त

रागरूप प्रवर्तन करो। करो कहा है, परंतु श्रद्धान तो ऐसा रखो कि यह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। व्रतादि करने से कोई वह आगे बढ़नेवाला नहीं है, उसका कल्याण होनेवाला नहीं है। यह मान्यता पर सारी चोट है तो जब यह मान्यता सुधर जाती है, आत्मा का अनुभव होता है, सम्यग्दर्शन होता है, तभी इन ४१ प्रकृतियों का बंध भी रुक जाता है। सहज रुकता है, हमें उसमें कुछ नहीं करना है- न देखना है, न कुछ करना है। हम तो शास्त्र के अभ्यासी हैं, हमको मालूम है ४१ प्रकृतियों का बंध रुक गया है। यह तिर्यंच तो कुछ नहीं जान रहे हैं, उनका बंध रुकेगा कि नहीं रुकेगा ? हां, उनके तो ४१ क्या ? उनका ४७ का बंध रुकेगा, अभी हमने उनके नाम नहीं देखे हैं न ! क्यों ? यह जो मनुष्य और तिर्यंच हैं न, तो यहां से देव में जानेवाले हैं तो देवगति बांधेंगे; वे मनुष्यगति नहीं बांधेंगे, मनुष्यायु नहीं बांधेंगे, वज्रवृषभनाराचसंहनन नहीं बांधेंगे। तो चौथे गुणस्थान में और छह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति देवों में और नारकियों में होती है लेकिन मनुष्य और तिर्यंचों की तो दूसरे ही गुणस्थान में इन छह की बंधव्युच्छित्ति होती है। यानी मनुष्य और तिर्यंच जो सम्यग्दृष्टि होते हैं, पहले गुणस्थान में जो बंध होता था, अब चौथे में गये हैं तो उनके तो ४७ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होगी। इतनी सारी ? इतनी सारी बंध योग्य १२० प्रकृतियों में से ४७ प्रकृतियां अभी नहीं बंधेगी उनके। वह बंधने से हमारा कुछ नहीं जाता है फिर भी यहां जो सहजरूप से मोक्षमार्ग शुरू होता है तो वहां प्रकृतियों में भी ऐसा सहजरूप परिवर्तन होता है। उतनी प्रकृतियां बंधेगी ही नहीं और जो ऑलरेडि बंधी हैं उनमें से कितनी ही अधिक प्रमाण में खिर जायेगी और कितनों का उदय भी रुक जायेगा। जब उदय की व्युच्छित्ति आयेगी तब उसकी चर्चा करेंगे।

अब हम थोड़े आगे बढ़ते हैं कि जो तीसरा गुणस्थान है, ऑलरेडि २५ और १६ मिलकर ४१ का बंध रुक गया है। वहां उसमें कोई और एक्स्ट्रॉ नहीं ॲड होती, तो उतना ही उसका ४१ का बंध वहां भी नहीं हो रहा है। तो आगे चलेंगे। चौथे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है ? *श्रोता: १०।* १० ! ये १० प्रकृतियां कौनसी हैं ? देखो, पहले में पहले कषायों के बारे में विचार करना। मिथ्यात्व में तो अनंतानुबंधी चौकड़ी थी। चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण का वहां पर उदय भी है और बंध भी है। अब इन चार को तो गिनना वहां व्युच्छित्ति में, तो चौथे गुणस्थान की यह चार तो निश्चित हुयी न ! कौनसी चार ? अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ।

उसके साथ और कौन-कौनसी होती हैं ? यह जो देव हैं न, देव सम्यग्दृष्टि हैं वे मनुष्यगति बांधेंगे, औदारिकशरीर का बंध करेंगे, औदारिकअंगोपांग का बंध करेंगे, मनुष्यायु का बंध करेंगे, वज्रवृषभनाराचसंहनन बांधेंगे। परंतु जो तिर्यंच और मनुष्य सम्यग्दृष्टि हैं, वे तो देवगति वगैरह बांधेंगे, वैक्रियिकशरीर का बंध करेंगे, वे इसका बंध क्यों करेंगे ? तो जब हम चौथे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति देखते हैं तो वहां चार गतियों की अपेक्षा बात कर रहे हैं। यह चारों गतियों की अपेक्षा हम बंधव्युच्छित्ति देख रहे हैं तो वहां हम देखते हैं कि जो असंयतगुणस्थान के अंत समय में यानी उसमें तो इनका बंध है, जब जीव आगे के गुणस्थानों में चला जायेगा तो इनका बंध नहीं होगा। किनका नहीं होगा ? अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन १० प्रकृतियों के बंध की चौथे गुणस्थान में व्युच्छित्ति होती है।

अभी तक हमने कितने गुणस्थानों की बंधव्युच्छित्ति देखी ? *श्रोता: चार।* हां चार। पहले गुणस्थान में ? *श्रोता: १६।* १६। दूसरे गुणस्थान में ? *श्रोता: २५।* २५। तीसरे गुणस्थान में ? *श्रोता: झिरो।* झिरो, शून्य और चौथे गुणस्थान में ? *श्रोता: १०।* १०। भले इनके नाम आपको अभी याद नहीं रहेंगे, बात सही है फिर भी सुने तो सही न ! क्या-क्या ? जब हम आगे मोक्षमार्ग में बढ़ते चले जायेंगे तब कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकनेवाला है हमारे ख्याल में तो आवे और जो ऑलरेडि मोक्षमार्ग में हैं, उनके कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुक गया है वह बात भी ख्याल में आ जायेगी। अभी हम आगे पांचवें गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति देखते हैं। पांचवें गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है ? पहले हम कषायों को देखेंगे। देखो, पहले गुणस्थान में चारों कषाय चौकड़ी थी। पहला गुणस्थान बीत गया तो यह अनंतानुबंधी चार, पहले-दूसरे में था अभी ऊपर नहीं है। फिर चौथे से पांचवें में गया तो ? यह अप्रत्याख्यानावरण नहीं रहा। पांचवें में प्रत्याख्यानावरण है और संज्वलन है। पांचवें से ऊपर चला जायेगा तो प्रत्याख्यानावरण भी नहीं रहेगा। तो पांचवें गुणस्थान की बंध की व्युच्छित्ति कितनी लिखी है, यहां पर ? *श्रोता: ४।* ४, वह कौनसे ४ होंगे ? *श्रोता: प्रत्याख्यानावरण।* प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, बात सही है ? हां, अब आगे छठे गुणस्थान की हम बात करेंगे। देखो यह जो ९८ नंबर की गाथा है।

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च।
अपमत्ते देवाऊ णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति॥९८॥

यानी छठे प्रमत्त गुणस्थान के अंत समय तक जो बंध सकती हैं और जहां व्युच्छित्ति होती है, वे कौनसी हैं ? तो उसमें अ, अ, अ वाली पांच हैं और एक है शोक। कौनसी है ? अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। ये हैं कैसी प्रकृति ? सारी पाप प्रकृतियां हैं। देखो अभी आजकल कुछ नयी फॅशन निकली है, कोई ऐसे पंडित मिले फोन पर मिले, हमको प्रत्यक्ष नहीं मिले। कहीं गये थे हम बीना में वहां उन पंडित के कोई शिष्य थे, उन्होंने मोबाइल पर हमारा संभाषण कराया। क्यों ? वे आपसे बोलना चाहते हैं। अच्छी बात है बोलो, क्या बोलना चाहते हैं ? पं. टोडरमल की बुरायी करना चाहते हैं। क्या निकाला उन्होंने ? अरे, पंडितजी ने इतनी सारी झूठी बातें लिखी हैं। क्या लिखा उन्होंने ? वहां लिखते हैं कि यह छठे गुणस्थानवर्ती जो मुनिराज हैं, आचार्य हैं, उपाध्याय हैं, सर्व साधुओं के स्वरूप में कि इनको अशुभोपयोग होता ही नहीं है, ऐसा लिखते हैं और यहां देखो क्या है ? छठे गुणस्थान में किस-किस का बंध हो रहा है अभी ? अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। देखो, यहां पाप के बिना पाप प्रकृति थोड़ी ही बंधेगी ? पं. टोडरमलजी झूठे हैं। एक दो नहीं, बड़ी-बड़ी कुछ किताबें निकाली हैं उन्होंने। उनको इतना भी पता नहीं है कि संक्लेश और विशुद्धि के कारण विशिष्ट प्रकृतियां बंधती हैं। अशुभोपयोग नहीं भी हो तो भी ये प्रकृतियां बंध सकती हैं।

शुभोपयोग-अशुभोपयोग तो स्थूल परिभाषा है, यह तो प्रवृत्तिरूप जो कोई शुभ-अशुभ है उसकी बात है। यहां तो संक्लेश परिणामों से इनके बंध हो सकते हैं। तो इसको क्या कह दिया यहां पर ? क्योंकि संक्लेश-विशुद्धि कहते ही किसे हैं ? तो जिन परिणामों से असातावेदनीय आदि जो हमने अशुभ की लिस्ट देखी थी वे प्रकृतियां बंधती हैं, उनको कहेंगे संक्लेश परिणाम। असातावेदनीय है, जो कोई अशुभआयु है या नामकर्म की कुछ अशुभ प्रकृतियां हैं जैसे यहां अस्थिर लिया, अशुभ लिया; इन प्रकृतियों का बंध होने के कारण क्या हैं ? संक्लेश परिणाम। जिन परिणामों से शुभ प्रकृतियां बंधती हैं साता है, स्थिर है, शुभ है, सुभग है उनको कहेंगे विशुद्ध परिणाम। तो ऐसे संक्लेश और विशुद्ध परिणाम तो उस गुणस्थान में भी हो सकते हैं। उस

गुणस्थान के योग्य संक्लेश परिणामों से इनका बंध हो सकता है। इसको यह नहीं कहना है कि यह छठे गुणस्थान में पाप प्रवृत्ति कर रहे हैं, अशुभोपयोग है। लोग भी भ्रमित होते हैं क्योंकि गोम्मटसार दिखा रहे हैं, देखो यहां यह गाथा लिखी है न ! यहां इन प्रकृतियों का बंध होता है न ! तो मुनिराज भी पाप करते हैं तभी उनको यह बंधती हैं। अभी क्या कहें ऐसे पंडितों को, विद्वानों को क्या कहें ? लोग भी उनके पीछे लगते हैं - उनकी बातों में आ जाते हैं। मैंने कहा न ! शिष्य तो बहुत जल्दी मिल जाते हैं।

श्रोता: छठे-सातवें गुणस्थान में संक्लेश और विशुद्ध परिणाम यानी क्या ? हां, देखो संक्लेश और विशुद्धि यह अपेक्षित बात है। जो छठे से सातवें में जानेवाले हैं उन छठे गुणस्थानवाले को भी हम विशुद्ध परिणामवाले कहेंगे और जो सातवें गुणस्थान में हैं और अभी छठे की ओर मुख है उनका, उनको कहेंगे वे संक्लेश परिणामवाले हैं। यह तो रिलेटिव्ह टर्मिनॉलॉजि है, यह तो जिसको कहेंगे न, हम उसको कम्पॅरेटिव्हली कह सकते हैं। ऊपर के गुणस्थान में हैं, नीचे के गुणस्थान के सन्मुख हैं; हैं तो सातवेंवाले, फिर भी कहेंगे संक्लेश हो रहा हैं। जो छठे में हैं और ऊपर चढ़ रहे हैं सातवें की ओर तो उनको कहेंगे विशुद्ध है। यह समझ में आती है न बात ? *श्रोता: अबुद्धिपूर्वक राग।* हां, तो अबुद्धिपूर्वक राग है। यह अभी हमारे आपके जो बुद्धिपूर्वक स्वाध्याय चल रहा है, शुभ परिणाम चल रहे हैं, अबुद्धिपूर्वक में तो शुभाशुभ कुछ भी चलता होगा। तो जो कोई परिणाम हैं उनमें बुद्धिपूर्वक किसे कहना और अबुद्धिपूर्वक किसको कहना ? बुद्धिपूर्वक यानी सोच समझकर करे वह बुद्धिपूर्वक ऐसा नहीं है। हां, जो अपने राग में परिणाम होता है और अपने स्वयं के ज्ञान में आता है वह बुद्धिपूर्वक राग है। ख्याल में तो आता है न, क्रोध हो रहा है कि लोभ हो रहा है कि माया के परिणाम हो रहे हैं ? परंतु ऐसे भी परिणाम चलते रहते हैं कि जो हो रहे हैं परंतु अपने ही ज्ञान में नहीं आ रहे हैं उसको कहते हैं अबुद्धिपूर्वक। जो हम कहते हैं न, मुनिराज शुद्धोपयोग में हैं तो वहां भी अबुद्धिपूर्वक राग है। उस राग की अगर हम सत्ता नहीं मानेंगे तो पूर्ण वीतरागी मानना पड़ेगा।

हम जब शुरू में पढ़ते थे तो ऐसा ही मानते थे, शुद्धोपयोग में गया तो बंध ही नहीं है। अरे, वाह रे वाह ! शुद्धोपयोग में हो या शुभोपयोग में हो या अशुभोपयोग में हो, चौथे गुणस्थानवाला है उतना तो बंध करेगा। भले उसमें कोई पाप और पुण्य की

प्रकृतियों में फेरफार हो सकता है, परंतु बंध तो करेगा। उनकी जब तक बंधव्युच्छित्ति नहीं हुयी है, तब तक उतना प्रकृतियों का बंध उस गुणस्थान के योग्य वहां चलेगा ही। *श्रोता: तो पहले आप ऐसा मानते थे बाद में कैसा माना यह ?* क्या करें ! *श्रोता: नहीं किस कारण ? कौनसा शास्त्र पढ़ा था ?* द्रव्यानुयोग के साथ-साथ करणानुयोग के सभी शास्त्र पढ़े हैं। यह तो क्या है मोक्षमार्गप्रकाशककार की गलतियां बताकर अपने को महंत बनाना चाहते थे, इसलिये यह बात हो रही है। अभी क्या कहें ?

यहां जो बात हो रही है आगे कि छठे प्रमत्त गुणस्थान में हमने अभी पांच 'अ' देखे और एक 'शोक' देखा। अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। इनका बंध छठे तक है, ऊपर नहीं है तो इसको कहेंगे, इनके बंध की वहां पर व्युच्छित्ति हुयी। अब सातवें गुणस्थान की बात देखते हैं तो सातवें गुणस्थान में एक ही है, कौनसी ? *श्रोता: देवायु।* हां, देवायु वहां तक बंध सकती है, उसके आगे के गुणस्थानों में आयु ही नहीं बंधती। पहले गुणस्थान में तो चारों आयु बंधती थी। दूसरे गुणस्थान में नरकायु नहीं बंधती है तो तीन आयु में से कोई ऑप्शन है उसको। तीसरे गुणस्थान में आयु बंधती ही नहीं है। चौथे गुणस्थान में आयु बंधेगी तो या देवायु या मनुष्यायु बंधेगी। जो सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य हैं वे देवायु बांधेंगे। जो सम्यग्दृष्टि देव और नारकी हैं वे मनुष्यायु बांधेंगे। पांचवें गुणस्थानवाले देवायु ही का बंध करेंगे। छठे गुणस्थानवाले आयु बांधेंगे तो देवायु ही बांधेंगे और देवायु का जो बंध छठे में शुरू होगा तो सातवें गुणस्थान में भी होता रहेगा। उसके आगे के गुणस्थानों में आयु का बंध नहीं होता। आयु बंध का ऐसा नियम है, अत्यंत विशुद्ध परिणामों में आयु का बंध नहीं होता और अत्यंत संक्लेश परिणामों में भी आयु का बंध नहीं होता। संक्लेश परिणामों में मरण तो हो सकता है। आयु का बंध तो मध्यम परिणामों में ही होता है। अब यह जो लेश्या का प्रकरण है, वह बहुत विस्तार से पहले हमने यहां लिया था। आयु का बंध कौनसे परिणामों में कैसे-कैसे होता है ? अभी तो यह विषय नहीं है। कहां तक किसका बंध होता है ? यह अपना विषय चल रहा है।

यहां देखते हैं कि श्रेणी चढ़ने के लिये अध:करण वगैरह जिसने शुरू नहीं किये हैं, उसको कहते हैं स्वस्थान अप्रमत्त। सातवें गुणस्थान का नाम क्या है ? अप्रमत्तविरत कहो या अप्रमत्तसंयत कहो। तो उसमें दो प्रकार से बताया है, एक है स्वस्थानअप्रमत्त

और एक सातिशयअप्रमत्त। सातिशय कौन कहलाता है ? जो अभी श्रेणी चढ़नेवाला जीव है, उसकी विशुद्धि बढ़ रही है, उसको सातिशय कहेंगे। यह जो स्वस्थानवाला है, स्वस्थान अप्रमत्त उसमें तो देवायु का बंध हो सकता है, सातिशयवाले को नहीं होता। *श्रोता: स्वस्थान किसे कहते हैं ?* स्वस्थान यानी जो रेग्युलर छठे-सातवें करनेवाले मुनिराज के सातवें गुणस्थान को स्वस्थान कहेंगे और जो अभी सातवें में से आठवें में जानेवाले हैं; हैं तो सातवें में, परंतु अभी श्रेणी के सन्मुख हुये हैं तो उनके गुणस्थान को कहेंगे सातिशय अप्रमत्त। वहां देवायु का भी बंध नहीं होगा, अन्य आयु का तो बंध होता ही नहीं है। परंतु जो स्वस्थानवाले हैं, वहां देवायु का बंध होता है, ऊपर नहीं।

अब आठवें गुणस्थान में लंबी लिस्ट है बंध के व्युच्छित्ति की। हां, सात भाग हैं उसके यानी बहुत सारा बंध यहीं निपट जाता है। हां ! बहुत सारा, तो क्या होता है ? उसके सात भाग करेंगे। पहले भाग में जो बंध की व्युच्छित्ति है, वह है आठवें गुणस्थान का पहला भाग, निद्रा और प्रचला का बंध यहां तक था, अब उसका बंध नहीं होगा। यह निद्रा और प्रचला कौनसे कर्म की प्रकृतियां हैं ? *श्रोता: दर्शनावरण की।* दर्शनावरण की। दर्शनावरण की स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला, कहां पर व्युच्छित्ति हुयी थी ? *श्रोता: दूसरे गुणस्थान में।* दूसरे गुणस्थान में। अब ये बाकी जो शेष दो निद्रायें हैं, उनका बंध यहां पर रुक जायेगा। निद्रा और प्रचला की आठवें गुणस्थान के पहले भाग में बंध की व्युच्छित्ति हुयी। अब आगे जो छठे भाग में कौन-कौनसी प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है ? तो कहते हैं तीर्थंकर। हमने पहले देखा था न, तीर्थंकर प्रकृति का बंध चौथे से लेकर सातवें तक तो शुरू होता है। परंतु कहां तक बंधता है ? *श्रोता: आठवें तक।* आठवें तक। तो यहां तीर्थंकर प्रकृति के बंध की व्युच्छित्ति हो जायेगी। दूसरा कौनसा है ? निर्माण नामकर्म, यह शरीर जो ग्रहण होता है और यह अवयवों की जो निर्मिति होती है विशिष्ट स्थान में, विशिष्ट प्रमाण में- ऐसा जो निर्माण नामकर्म है, उसका बंध यहां रुक जाता है। शुभ विहायोगति; विहायोगति के दो भेद हमने देखे थे शुभ और अशुभ। अप्रशस्त विहायोगति दूसरे गुणस्थान में ही चली गयी थी; प्रशस्त विहायोगति का बंध यहां पर रुक जाता है। पंचेन्द्रिय जाति का बंध भी यहां तक है; एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति के बंध की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में देखी थी।

देखो शुरू-शुरू में अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध रुकता जाता है, अब ये सारी जो हैं वे प्रशस्त प्रकृतियां हैं कितनी ही परंतु उनका भी बंध रुकना है कि चालू रखना ? आप कहेंगे फिर क्या फायदा प्रशस्त का बंध रुक जायेगा तो ? *श्रोता: निर्बंध होना है।* हां, तो अब निर्बंध होना है तो उसका भी संवर होगा जरूर। तो ये पुण्य प्रकृतियां यहां तक बंधेंगी। ऐसे ये पुण्य का निषेध करनेवाले हैं सारे जीव। पुण्य अच्छा नहीं मान रहे हैं; इस अवस्था तक पहुंचे हैं, पुण्य को कोई अच्छा नहीं मान रहा है। फिर भी अब तक तो पुण्य का बंध हो रहा था। अब इतनी विशुद्धि होती है कि अभी पुण्य का बंध भी रुकता चला जाता है क्योंकि मोक्ष का जो प्रोसेस है आगे चलकर यही तो है न ! इतना सारा बंध रुकता चला जायेगा और जो ऑलरेडि वहां बंधे पड़े हैं, उनमें कैसी-कैसी हानि होगी, किस-किसका उदय होगा उसका तो विषय हम बाद में लेंगे। अभी तो बंध की बात चल रही है।

यहां जो हम देख रहे हैं कि तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति और पंचेन्द्रिय जाति। फिर तेजसशरीर और कार्माणशरीर ये नामकर्म हैं, उनका बंध यहां तक है, बंध की बात चल रही है, उदय की नहीं। तेजसशरीर, कार्माणशरीर नामकर्म का बंध यहां तक है इसके आगे नहीं है। फिर आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग ये जो दो कर्म हैं, यहां तक बंध सकते हैं। सबको बंधते हैं ऐसी बात नहीं है, जिस किसीको बंधते हैं तो यहीं तक बंधते हैं, आगे नहीं बंधेंगे। फिर समचतुरस्रसंस्थान; संस्थानों में हुंडकसंस्थान कहां चला गया था ? *श्रोता: पहले में।* पहले में। बीचवाले चार ? *श्रोता: दूसरे में।* दूसरे में। अब यह पहलेवाला संस्थान आठवें गुणस्थान में। देवगति और देवगत्यानुपूर्वी, आठवें गुणस्थान में। देखो ! यहां तो सारे सम्यग्दृष्टि हैं। सम्यग्दृष्टि जो मनुष्य हैं वे तो देवगति और देवगत्यानुपूर्वी का ही बंध करेंगे। चौथेवाले, पांचवेंवाले, छठेवाले, सातवेंवाले, आठवेंवाले तक बंध करते हैं; बाद में इसका भी बंध रुक जायेगा। जो देवगति बांधता है वह कौनसे शरीर का बंध करता होगा ? तो वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग। हां फिर जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श बंधती हैं, उसका भी यहां बंध रुक जायेगा। अगुरुलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास ये चार; त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक- ये उपघात बिना सारी जो प्रशस्त प्रकृतियां हैं; स्थिर है, शुभ है, सुभग है, सुस्वर है, आदेय है ये सभी यहीं पर रुक जाती हैं। ऐसे इन तीस

प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति आठवें गुणस्थान के छठे भाग में हो जाती है।

फिर सातवें भाग में चार की बंधव्युच्छित्ति है। कौनसे चार हैं ? *श्रोता: हास्य।* हास्य, रति और ? *श्रोता: भय।* भय, जुगुप्सा। इनके बंध की व्युच्छित्ति वहां होती है। तो टोटल ३६ प्रकृतियों का बंध यहां रुक जाता है। टोटल कितनी रुक गयी हैं ? अभी सत्रह ही बंधेगी दसवें गुणस्थान में। अभी नौवां बाकी है, नहीं ? हां, वहां पांच चली जायेगी, वहां की पांच देखते हैं अभी। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कौनसे पांच का बंध है जो अभी रुकनेवाला है ? हां, तो हमने देखा वहां एक वेद का बंध हो रहा है, किस वेद का ? *श्रोता: पुरुषवेद का।* पुरुषवेद का। क्यों ? नपुंसकवेद तो पहले गुणस्थान में चला गया, स्त्रीवेद दूसरे गुणस्थान तक था, उसके आगे वह नहीं बंधता है और ऐसे जीवों को तो अभी पुरुषवेद का ही बंध हो रहा है। वह भी कहां रुकेगा ? नौवें गुणस्थान में। जब तक वेद का, वेद कर्म का उदय है तब तक उसका बंध भी है, उसका उदय भी रुक जायेगा और बंध भी यहां पर रुक जायेगा और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ। संज्वलन लोभ, नौवें गुणस्थान में बंध है उसका। हां, सभी बंध रहे हैं न ? शुरू में तो सभी बंध रहे हैं। जब वेद का अभाव हो जायेगा, तो एक-एक करके बंध रुक जायेगा; पहले चार का बंध होगा; फिर क्रोध का बंध रुक जायेगा तीन का बंध होगा; फिर मान का बंध रुक जायेगा, माया और लोभ का बंध होगा; फिर माया का बंध भी रुक जायेगा, नौवें गुणस्थान के अंत में अकेले लोभ का बंध होगा; फिर दसवें गुणस्थान में उसका भी बंध रुक जायेगा।

दसवें गुणस्थान में इनका बंध नहीं है, तो दसवें गुणस्थान में किस-किसका बंध है ? तो ज्ञानावरण का है, दर्शनावरण का है, अंतराय का है, नाम का है, गोत्र का है। वेदनीय तो बंधती ही है, सातावेदनीय। तो इनमें से दसवें गुणस्थान में किसकी बंधव्युच्छित्ति हो जायेगी ? ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण में पांच निद्रा चली गयी थी तो अभी उसकी चार, अंतराय पांच, कितने हुये ? हां, *श्रोता: चौदह हो गये।* चौदह हो गये। हां अभी नामकर्म में से यशस्कीर्ति, पंद्रह हो गये न और उच्चगोत्र। कितने हुये ? सोलह हो गये, इनके बंध की व्युच्छित्ति होती है। सत्रहवीं सातावेदनीय बंध रही थी, वह ग्यारहवें में भी बंधेगी, उसकी बंधव्युच्छित्ति नहीं हो रही है। सोलह का बंध यहां रुक जायेगा तो ग्यारहवें गुणस्थान में एकमात्र सातावेदनीय का बंध होगा। बारहवें में भी,

हां ? *श्रोता: बंध होगा।* बंध होगा मैं कह रही हूं, व्युच्छित्ति नहीं कह रही हूं। हां, ग्यारहवें में एक का बंध हो रहा है। बारहवेंवाले को भी सातावेदनीय बंध रही है। अरे ! अरिहंतों को, कौनसे ? सयोगी को भी एक सातावेदनीय का बंध हो रहा है - उस समय आता है, चला जाता है - वहवाला। चौदहवें गुणस्थानवाले जो अयोगकेवली हैं, वहां कोई बंध नहीं है तो परिपूर्ण संवर अयोगकेवली के हो गया। सभी कर्मों का बंध पूर्ण रीति से रुक गया है।

इसतरह से यह जो बंध की व्युच्छित्ति है, मोक्षमार्ग में कहां कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं और कहां किसके बंध की व्युच्छित्ति होती है इसकी हमने थोड़ी चर्चा यहां की। यह तो शॉर्ट में है, यह तो नाम अपरिचित हैं न ! फिर भी हम बार-बार देखें, रोज एक बार देख लेना किस-किसके बंध की व्युच्छित्ति कहां होती है। एक-दूसरे को पूछते रहना, तू पहले गुणस्थान की बता, मैं दूसरे गुणस्थान की बताऊंगी। याद हो जायेगा दो-चार दिन में। क्या है उसमें ? कुछ कठिन बात तो है नहीं है। अब यहां तो हम रुकते हैं क्योंकि आगे फिर नया विषय ले लेंगे। कोई प्रश्न है ? *श्रोता: सातवें गुणस्थान के आगे की यानी आठवें की जो ३६ प्रकृतियां हैं, दो, तीस और चार।* दो, तीस और चार। *श्रोता: वह कौन कौनसी हैं ?* हां बतायी न सब ! निद्रा, प्रचला पहले भाग में गयी, बीच में वह तीस बतायी आपको और फिर अंत में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा चार बतायी। *श्रोता: वह अलग क्यों गयी ?* क्योंकि अलग-अलग जगह पर उनका बंध रुकता है। आठवें गुणस्थान का जो अंतर्मुहूर्त काल है, उसके शुरू में दो प्रकृतियों का बंध हो रहा था, वह रुक गया। फिर आगे चलकर इन तीस का बंध रुक गया। फिर लास्ट में उन अन्य चार प्रकृतियों का रुक गया। कोई कर्ता नहीं न ! जो है उसको भगवान जानकर बताते हैं। ऐसी कोई बात नहीं कि इसको यहां क्यों रोका ? उसको वहां क्यों रोका ? ऐसी कोई बात है ही नहीं। हां, कोई बात नहीं। *श्रोता: बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक क्या होता है ?* हां बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक के बारे में हम आगे की क्लास में चर्चा करेंगे, फिर से आप याद कराना मुझे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१२. शंका-समाधान; बंधव्युच्छित्ति

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसके आधार से जो यह सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका हमारे सामने है, उसमें हम प्रकृतियों के बंध के संबंध में कुछ विशेष बातें जान रहे थे। अभी-अभी हमने गुणस्थानों में बंध की व्युच्छित्ति देखी। उसमें इसी प्रकरण के संबंध में कुछ प्रश्न भी आये हैं।

यहां यह पूछा गया है, देखो दूसरा गुणस्थान तो गिरने का है। हमको सबको मालूम है कि वह कब प्राप्त होता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में, उपशम सम्यक्त्व का जो काल चल रहा है उसमें तो दर्शनमोहनीय का - मिथ्यात्व का तो उदय हो नहीं सकता है, परंतु वहां अनंतानुबंधी का उदय तो हो सकता है। ऐसा क्यों ? ऐसी पार्शालिटि ? उपशम सम्यक्त्व है न ! उपशम तो सभी सातों कर्मों का हुआ था, दर्शनमोहनीय का भी हुआ था और अनंतानुबंधी का भी हुआ था। मिथ्यात्व का उदय उस काल में नहीं आ सकता परंतु अनंतानुबंधी का आ सकता है। उसका उत्तर पता है किसीको ? *श्रोता: पारिणामिक भाव।* नहीं। दर्शनमोहनीय का जो उपशम हुआ है वह अंतर करके उपशम हुआ है जिसका नाम है प्रशस्त उपशम और अनंतानुबंधी का जो उपशम हुआ है वह अप्रशस्त उपशम है। यानी सत्ता में है, उदय में नहीं आ रहा। उदय में आते-आते क्या हो रहा है उसका ? अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप से होकर उदय में आ रहा है। एक समय ऊपर पड़ा है सत्ता में; मिथ्यात्व में जो गॅप पड़ी थी और वह अंतर करके ऊपर के जो सारे निषेक उपशमित हुये थे, ऐसा उपशम अनंतानुबंधी में नहीं है, अलग टाइप का है। कौनसा अलग टाइप है ? उसकी वर्तमान से जो निषेक रचना हुयी थी तो वर्तमान में उदय में आते-आते वह अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप से संक्रमित होकर उदय में आ रहा है। अपनेरूप से उदय में नहीं आ रहा। इसलिये ऐसा हो सकता है कि जीव के परिणाम बिगड़ जाये, अनंतानुबंधीवाले कषाय शुरू हो जायें और उसी समय अनंतानुबंधी का उदय भी हो जाये। यह बात वहां हो सकती है परंतु मिथ्यात्व का उदय तब तक नहीं हो सकता जब तक उपशम काल चल रहा है।

यह प्रश्न ऐसा है कि दूसरा गुणस्थान गिरने का है यानी जीव जो औपशमिक सम्यग्दृष्टि है, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि वह वहां से गिरकर दूसरे गुणस्थान में आता है

और दूसरे गुणस्थानवाला नियम से पहले गुणस्थान में चला जाता है। यानी दूसरे गुणस्थान से ऊपर जाने की तो कोई संभावना है ही नहीं है। तो प्रश्न है कि दूसरे गुणस्थान में २५ प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति कैसे ? बहुत अच्छा प्रश्न है। क्यों ? यह प्रश्न ऐसे उठना भी चाहिये। हां, तो कहते हैं यह जो दूसरे गुणस्थान में इसका बंध है। वह दूसरे गुणस्थान से कहां जाता है इससे कोई मतलब नहीं है। दूसरे गुणस्थान में बंध है, तीसरे में, चौथे में, पांचवें में, छठे में, ऊपर कहीं भी बंध नहीं है उसको कहेंगे दूसरे गुणस्थान की बंध की व्युच्छित्ति। दूसरे गुणस्थान के अंत में जब कह दिया है तो अंत होने के बाद वह पहले में जाता है, ऐसी अपेक्षा वहां नहीं लगानी है। दूसरे में उनका बंध है, तीसरे, चौथे आदि में नहीं है, उसीको कहना उनके बंध की व्युच्छित्ति दूसरे में हो जाती है क्योंकि जो ऊपर चढ़नेवाला जीव है, जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, वह पहले से डायरेक्ट चौथे में जाता है, दूसरा-तीसरा चढ़कर नहीं जाता। पहले से चौथे में जाता है उसके डायरेक्ट १६ प्लस २५, ४१ प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति हो जाती है।

ऐसा कोई औपशमिक सम्यग्दृष्टि वापस दूसरे में आता है तो उसके २५ की बंध की व्युच्छित्ति हुयी थी न ? वह बंध शुरू हो जाता है। चौथे में ४१ का बंध नहीं हो रहा था, गिरकर दूसरे में आया तो २५ का बंध शुरू हुआ। अभी सासादन में एक समय रहेगा या आवली काल तक या अधिक से अधिक छह आवली तक रहेगा, उसके बाद पहले में नियम से जायेगा। तो वहां वह १६ का भी बंध शुरू हो जायेगा। यानी जितने काल तक, एक अंतर्मुहूर्त तक सम्यक्त्व में रहा तो उतने काल तक ४१ प्रकृतियों का बंध रुक गया था। अभी वहां से यहां पहले गुणस्थान में आया, दूसरे से होकर भले आया हो तो वह जो बंध रुक गया था, वह वापस चालू हो गया क्योंकि जब तक ऊपर के गुणस्थान में है तब तक ही वह बंध रुका था। यदि नीचे वापस आता है तो फिर उसका दुबारा बंध शुरू हो जाता है, इसको कहते हैं बंध की व्युच्छित्ति। दूसरा प्रश्न है *जैसे बंध की गुणस्थान प्रमाण व्यवस्था है, वैसे उदय संबंधी व्यवस्था है क्या ?* जरूर है और उसकी उदय की व्युच्छित्ति भी हम देखेंगे कभी, हां उसका उदय आयेगा तभी।

एक प्रश्न है *गति और गत्यानुपूर्वी में क्या अंतर है ?* ये दो अलग-अलग भिन्न नामकर्म हैं। यह जो गति नामकर्म के उदय से यह हम कहते हैं न, जो गति नामकर्म है उसका बंध भी हो रहा है। जिस गति का बंध हो रहा है उसीके साथ उसी गत्यानुपूर्वी

का भी बंध होता है। बंध की बात है उदय की बात नहीं। गति नामकर्म का उदय तो विग्रहगति से शुरू हो जाता है और मरण समय तक रहता है और गत्यानुपूर्वी का उदय मात्र विग्रहगति में होता है, कौनसी ? मोड़वाली विग्रहगति; क्या बिना मोड़वाली भी होती है ? होती हैं न ऋजुगति, सीधा हम कहेंगे। सीधा क्यों ? आप ऊपर ही क्यों सीधा बताते हैं ? सीधा ऊपर ही क्यों बताया ? ऐसा आड़ा पूर्व में भी सीधा होता है, ऐसा पश्चिम में भी सीधा होता है, ऐसा दक्षिण या उत्तर में भी सीधा होता है, ऐसा नीचे की ओर भी सीधा होता है। ऊपर क्यों बता रहे हो ? *श्रोता : ऊर्ध्वगमन।* सुनों, सुनों, सुनों ! यह सबसे आवाज आ रही है मुझे, अच्छा है ! ऐसा मौका ही चाहिये था। मोक्ष जाने की बात नहीं है, मोक्ष जाने में कोई गत्यानुपूर्वी का उदय नहीं रहता है क्योंकि सब कर्मों का अभाव करके वह मोक्ष जाता है। तो यह बहुतों की ऐसी कल्पना है कहो या उन्होंने सुन रखा है। क्या ? कि जीव मर जाता है तो पहले ऊर्ध्वगमन से ऊपर जाता है फिर अपना जहां जन्म लेना है वहां चला जाता है परंतु ऐसा बिलकुल नहीं है।

ऊर्ध्वगमन स्वभाव तभी प्रकट होता है जब सिद्ध अवस्था प्रकट होती है। आठों कर्मों का संपूर्ण अभाव होने पर ही ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रकट होता है और विग्रहगति में छहों दिशाओं में गमन होता है। पूर्व या पश्चिम या दक्षिण या उत्तर या ऊपर या नीचे। बहुत से लोगों द्वारा ऐसे कहने में आया है और हम हमेशा सुधारते भी रहते हैं, जहां-जहां हमको मौका मिलता है। वे कहते हैं कि पहले ऊपर जाता है और फिर बाद में नीचे चला जाता है। तो ऊपर जाता है तो कहां तक जाता है ? सिद्धशिला को टच करके आता है क्या ? और सिद्धशिला का जीव कहां ऊपर जायेगा ? वातवलय में ? और वातवलय का जीव कहां ऊपर जायेगा ? जा नहीं सकता। तो ऐसा कुछ है नहीं, यह तो भ्रमणा चल रही है कहीं-कहीं। हो सकता है किसीके उपदेश के अनुसार या कुछ मान्यताओं के अनुसार वे ऐसा कहते हैं। परंतु मरण के बाद जहां जन्म लेना है उसी डायरेक्शन में जायेगा। ऋजुगति यानी एक समयवाला बिना मोड़वाला जाता है। मान लेते कि यहां मरण हुआ और ठीक यहां ऊपर उसका जन्म लेना है तो सीधा ऐसा ऊपर चला जायेगा। अब मरण यहां हुआ और ऊपर तक गया और उसका जन्म नीचे नरक में होना है, तो क्या करेगा ? फिर ऐसा मोड़ लेगा, फिर और एक ऐसा मोड़ लेगा तो उसके तो दो मोड़ लगेंगे। तीन मोड़ किसके लगते हैं ? एकेन्द्रियों के ही लगते हैं, हां

जो लोकाकाश में नीचे के पार्ट में त्रसनाड़ी के बाहर है कोई और ऊपर भी त्रसनाड़ी के बाहर कहीं जन्म लेना है। बीच में तो एक राजू प्रमाण है लोकाकाश, तो उसको पहले बीच में आना पड़ेगा, फिर ऊपर चला जायेगा, फिर आड़ा चला जायेगा। फिर अपने पीछे जहां यथायोग्य स्थान में जन्म लेगा तो उसीको तीन मोड़ लग सकते हैं, सबको लगते हैं ऐसी बात नहीं। पंचेन्द्रियों में जन्म लेनेवाले और पंचेन्द्रियों में से मरकर त्रसनाड़ी के बाहर जानेवालों को तीन मोड़ कभी भी नहीं होते। बस अधिक से अधिक दो ही मोड़ में वह जन्म लेते हैं या हो सकता है एक मोड़ में या बिना मोड़ में। तो यह ऊर्ध्वगमन संबंधी अगर भ्रमणा हो तो वह निकाल देना।

दूसरी भी भ्रमणा बता दूं अभी विषय निकला है, यह विषय भी आया था न ! वेद के संबंध में, मैंने उसको टाल भी दिया था। यह भाववेद की जो बात होती है वेद में तो एक होता है शरीर का वेद यानी शरीर का जो चिन्ह है, स्त्री है या पुरुष है या नपुंसक है उसको कहेंगे द्रव्यस्त्री या द्रव्यपुरुष या द्रव्यनपुंसक और भाव से जो होता है, भाव से स्त्री, भाव से पुरुष या भाव से नपुंसक। भाववेद का, वेद का कार्य क्या है ? तो जिसको कहेंगे सेक्शुअल ॲट्रॅक्शन जो है, मैथुन का जो परिणाम है उसको वेद कहते हैं। तो स्त्री को पुरुष के प्रति आकर्षण है तो उसको कहेंगे स्त्रीवेदी। पुरुष को स्त्री के प्रति आकर्षण है तो कहेंगे वह पुरुषवेदी है और जो दोनों के प्रति आकर्षण होगा तो कहेंगे वह, नपुंसकवेदी है। अब कोई द्रव्य से तो पुरुष है और भाव से उसको पुरुष के प्रति आकर्षण है तो उसको क्या कहेंगे ? वह मनुष्यणी है यानी स्त्रीवेदवाला है, उसको भावस्त्री कहते हैं, भाव से स्त्रीवेदवाला कहेंगे। जिसको गे या कुछ-कुछ नाम है न ! हेटेरोसेक्शुअल कहेंगे उसको। उसे तो पुरुष होते हुये भी पुरुष के प्रति आकर्षण है तो उसको भाव से स्त्री कहेंगे। यह बात क्यों उठायी ? ऐसी स्त्री भी होगी कोई कि द्रव्य से तो स्त्री है और उसको स्त्री के प्रति आकर्षण है तो उसको क्या कहेंगे ? भाव से पुरुष, परंतु इसके अलावा यह वेदों का अन्य कोई कार्य नहीं है।

यह कहने का प्रयोजन क्यों पड़ा ? कहीं हमने ऐसा भी सुना, सभाओं में भी लोग प्रश्न पूछते हैं कि उनको ऐसा किसीने बताया है कि जो स्त्री, वह रानी लक्ष्मीबाई का उदाहरण देते हैं, सुना है आपने ? अच्छा आपने भी सुना है ? तो अभी वह भ्रमणा निकाल दो। वह कहते हैं कि रानी लक्ष्मीबाई स्त्री थी और जब घोड़े पर बैठकर वह

युद्ध करने निकली तो पुरुषवेदी हो गयी। ऐसा बिलकुल नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता, यह वेदों का कार्य ही नहीं है। कोई स्त्री पुरुष जैसा कोई ऑफिसर बन जाये या कुछ प्राइम मिनिस्टर बन जाये तो क्या पुरुषवेद हो जायेगा उसका ? यह पुरुषों का कार्य है ऐसा थोड़ी है ? यह वेदों का कार्य है ही नहीं। यह कुछ ऐसी भ्रमणा किसी प्रयोजनवश कहीं फैलती है और बहुत जल्दी फैलती है। सही बातें जल्दी नहीं फैलती, मिथ्या बातें जल्दी फैलती हैं। *श्रोता: डायजेस्ट नहीं होती।* हां डायजेस्ट भी नहीं होती।

प्रश्न: भोगभूमि में भी गुणस्थान व्यवस्था है या नहीं ? यह व्यवस्था करनेवाला कोई है ही नहीं। पूरे जो संसारी जीव हैं वे सारे किसी न किसी गुणस्थान में तो हैं ही हैं। जैसे नरकों में पहले से चौथे गुणस्थान तक ही होते हैं - पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा। देवों में भी पहले चार ही गुणस्थान होते हैं। वैसे भोगभूमि में भी पहले से चार ही गुणस्थान होते हैं। चौथे गुणस्थान के ऊपर का वहां पुरुषार्थ नहीं हो सकता। *प्रश्न: हर एक गुणस्थान में जो बंध की व्युच्छित्ति होती है, वह एक साथ सभी की होती है या एक-एक करके होती है ?* अगर क्रम से होती है तो मिथ्यात्व की सर्वप्रथम व्युच्छित्ति होगी यह निश्चित है या नहीं ? बिलकुल नहीं। क्यों ? जब एक समय में ही एक गुणस्थान से दूसरे गुणस्थान में गया है। जो पहले गुणस्थान से चौथे में चढ़ गया है और ऑलरेडि उसके ४१ प्रकृतियों का बंध रुक गया है यह हम कह सकते हैं। अगर और डीटेल में जानना है, तो पंचलब्धि पुस्तक पढ़ना। प्रायोग्यलब्धि में कितनी ही प्रकृतियों का बंध रुक जाता है जिसको बंधापसरण कहा, बंधव्युच्छित्ति नहीं कही। तब तक मिथ्यात्व का बंध तो अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक होता है, करणलब्धि के अंतिम समय तक। फिर भी अन्य कितनी ही प्रकृतियां ४६ प्रकृतियां, बंध से रुक जाती हैं। उनमें ना मिथ्यात्व का नाम है, ना अनंतानुबंधी का है। अन्य प्रकृतियां वहां प्रायोग्यलब्धि से ही कुछ काल तक बंध होने से रुकती हैं। मिथ्यात्व का तो बंध अंतिम समय तक होता है और ये जो बंध से रुकती हैं उनमें से कितनी ही प्रकृतियों का बंध सम्यक्त्व होने पर कुछ काल में शुरू भी होता है और कितनी ही प्रकृतियों का बंध तो वैसे ही मिटा रहता है। तो ऐसा हम नहीं कहते कि मिथ्यात्व का बंध पहले रुक गया, बाद में सबका रुक गया, ऐसा बिलकुल नहीं कह सकते।

प्रश्न: मिथ्यात्व का अभाव करना, कृपया स्पष्ट कीजिये, इसके लक्षण क्या है ?

यह तो पूरा द्रव्यानुयोग का विषय है और हम बार-बार उसकी बात करते हैं। जब-जब बात आती है तब-तब तो कहते ही हैं। पहले में पहले गृहीत मिथ्यात्व का जो पोषण हो रहा है, उसका तो बिलकुल सही नॉलेज होना चाहिये, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय पहले में पहले करना जरूरी है। सात तत्त्वों का स्वरूप निश्चित करके उसमें भेदज्ञान कैसे किया जाता है यही बात प्रत्येक प्रवचन में आती है। तो द्रव्यानुयोग के आधार से इसका अभ्यास करके, जरूर वह स्पष्ट होना ही चाहिये। *प्रश्नः ग्यारहवें गुणस्थान में किसीका मरण हो जाता है तो गुणस्थान उतरने का कैसा क्रम होगा ?* वह डायरेक्ट चौथे में आ जाता है। ग्यारहवें में मरण हो या दसवें में या नौवें में, आठवें, सातवें, छठे, पांचवें कहीं भी मरण हो तो जीव डायरेक्ट चौथे गुणस्थान में आता है। अदरवाईज ग्यारहवें से दसवें में, दसवें से नौवें में, नौवें से आठवें में इसी क्रम से आयेगा। *श्रोताः आयु समाप्त होती है ?* हां, आयु समाप्त होती है तो चौथे में आ जाता है। *प्रश्नः बंध के अभाव को व्युच्छित्ति कहा है और बंध के रुकने को संवर, दोनों में क्या अंतर है ?* संवर तो हम कहते हैं न किसका-किसका आस्रव हो रहा था ? तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग का और उसका उतना संवर हम कहेंगे। आस्रव के अभाव को संवर कहेंगे परंतु वहां कौनसी प्रकृतियां बंधन से रुकती हैं उसको व्युच्छित्ति कहेंगे।

अभी एक भोला प्रश्न है कि *शनिवारी हनुमानाला जातो ! यानी हर शनिचर को हम हनुमानजी के वहां दर्शन करने जाते हैं।* हमने पूछा कहां के हैं हनुमान ? अपने कि अन्यमतियों के ? तो *हिंदुओं के।* तो हिंदुओं के हनुमान और हमारे हनुमान उसमें कुछ फर्क है क्या ? *हमारे भी हनुमान मोक्ष गये हैं पर हमारे हनुमान का मंदिर नहीं है।* हमने बोला, है। '*कहां है ?*' सिद्धवरकूट में है न ! मांगीतुंगी में भी है। हां, कौन हनुमानजी ? तुंगी से। तो कहते हैं '*वह बहुत दूर है, क्या करें ?*' देखिये-देखिये यह हंसने की बात नहीं है। अच्छा प्रश्न किया क्योंकि हम कुछ अपने में सुधार लाना चाहते हैं और अपना दोष अगर ख्याल में आता है तो यह बहुत अच्छी बात है। यह जो अन्यमतियों ने हनुमान की कल्पना की है वह कोई देव नहीं है। अन्य अन्यमतियों के जितने देव-देवता हैं ऐसे कोई देव-देवता एग्झिस्टन्स में ही नहीं हैं। यह उनकी कल्पना है, कल्पना कर दी है। तिर्यंचगति से कोई मोक्ष जाता है ? *श्रोताः नहीं जाता।* नहीं जाता तो हनुमान को क्या बनाया मनुष्य से ? बंदर बनाया। उनकी मनुष्यगति निकालकर

तिर्यंचगति बना दी। वे तो विद्याधर थे, कामदेव थे, सुंदर थे, उसी भव में मोक्ष गये थे। इन सभी आठों कर्मों का अभाव करके मोक्ष चले गये थे। यह उनको बंदर मानना या पूंछ लगाना, उनको वानर कहना यह जो कुछ है ये सारी मिथ्या भ्रमणायें हैं। अभी वह रागी-द्वेषियों ने जो रचना की है और किस प्रयोजन से की ? क्या ? उसमें हम नहीं उलझेंगे फिर भी वह अत्यंत भ्रमणा है। यहां कहीं किसी पत्थर को सिंदूर डालेंगे और उसको हनुमान कह देंगे या उसको कुछ पूंछ लगायेंगे, कुछ भी करेंगे और उसके कुछ गीत गायेंगे। वह कुछ बहुत बलशाली है कहेंगे। उस पर कुछ सीरियल्स निकालेंगे, उसमें कुछ माल है नहीं।

वे वीतरागी मुनिदीक्षा लेकर, वीतरागी संत होकर मोक्ष चले गये हैं, ऐसे हनुमान हैं और हम तो जो वीतरागी सर्वज्ञ हैं उनकी पूजा करेंगे। परंतु उनकी पूजा करने के लिये कोई अन्यमतियों ने जो उनकी कल्पना कर दी है। अरे ! वह भी हनुमान है न ! तो कल कहेंगे हमारे भी महावीर हैं और वह हमारे बाजूवाले जो कोई हैं, हमारे भाईबंध उनके भी महावीर हैं, उन्होंने भी चक्षु लगाये हैं, कपड़े पहनाये हैं तो क्या हुआ ? जायेंगे वहां मंदिर में ? क्योंकि वह हमारे बाजू में, बगल में मंदिर है और आपका मंदिर तो बहुत दूर है। हमने पूछा कितने दूर जाते हो ऑफिस के लिये ? एक घंटा जाता है ? अरे कोई पूना से बंबई भी आता है रोज ! हां, परंतु मंदिर कितना दूर है ? 'एक माइल दूर है' और ऑफिस कितना दूर है ? 'पचास माइल दूर है।' वहां रोज जाते हैं और आठ-आठ घंटे बिताते हैं और मंदिर हमारे पास नहीं है इसलिये रोते हैं। तो इसमें हमें किसकी महत्ता आ रही है ? धन की आ रही है कि भगवान की आ रही है ?

हम करना तो चाहते हैं पुण्य; पुण्य, मोक्ष भी नहीं चाहते हैं, पुण्य करना चाहते हैं। पुण्य नहीं करना चाहते हैं ? धंधा क्यों कर रहे हैं ? पैसा कमाने के लिये यानी पुण्य का फल चाहते हैं ! क्या चाह रहे हैं ? *श्रोता: पुण्य का फल।* पुण्य का फल और कर क्या रहे हैं ? *श्रोता: पाप।* पाप। पाप करके पुण्य का फल चाहते हैं। हमें अपने पुण्य पर भी भरोसा नहीं है। हम पाप नहीं करेंगे तो पैसा कैसे आयेगा, मान लेते हैं। नहीं समझे ? यह तो बहुत हो गया। देखो यह जो हम देवों की बात बार-बार निकालते हैं यह किसीकी टीका-टिप्पणी नहीं करना है। जिसमें अपना अनंत नुकसान हो रहा है ऐसी बातें अगर करते हैं तो बिलकुल तत्काल छोड़ देनी चाहिये। तत्काल छोड़ने की

बात सुनना चाहते हैं। क्या है ? लास्ट लेक्चर है न ! दिन भर थके हैं, लोग कहते हैं आप बहुत हल्के-फुल्के ले लेते हो, क्या बात है ? ऐसी बात नहीं है। हम.. *श्रोता: बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक समझा दीजिये।* हां बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक बतायेंगे।

हम इसलिये यह ऐसे विषय निकालते हैं कि कोई उसमें से प्रेरणा ले। उसमें से कोई समझ ले तो बहुत अच्छी है बात। जब अमेरिका गये थे, तो डलास में एक भाई आये थे। है तो जैनी ही, परंतु बहुत प्रेम से नहीं सुनते थे। कोई जो प्रवचन आदि चलता था, उसमें कुछ न कुछ विरोध करते रहते थे। हम गये तो मेरा एक प्रवचन और इनका एक प्रवचन सुना, एक ही दिन आये थे। तो उसमें बात चल रही थी मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगवाली और जो हम जो दरबार वगैरह लगाते हैं न भगवानों का, नहीं समझे ? किसीके घर में जाते हैं और हम गये भी थे, कहां गये थे ? वर्धा में, वर्धा में गये थे। किसीने भोजन के लिये बुलाया था तो घर जाते ही पहले वहां एक पर्दा खोल दिया और सारे भगवानों का दर्शन करा दिया। हिंदुस्तान का कोई भी भगवान नहीं छोड़ा था। महावीर को छोड़ दिया था क्योंकि मंदिर सामने ही था। बाकी यहां हमारे बगलवाले जो हैं न ! देवलाली के कॉम्पिटिशनवाले शिरडी से लेकर और सारे ही भगवान वहां विराजमान थे। शंकरजी थे, हनुमान थे और गणपति थे, अन्य भी अनेक देव-देवियां सब कोई ऐसे कतार से बैठे थे। उनके फोटो थे जो फ्रेम में लगाकर रखे थे। दिनेशजी से उस बहन ने पूछा कि कैसे लगा हमारा यह घरमंदिर ? उन्होंने बोला पहले खाना खिलाओ तो बता दूं। खाना खाने के बाद वह भूली नहीं। फिर पूछा, 'कैसा लगा ?' दिनेशजी ने पूछा इतना सारा दरबार क्यों भरा है यहां पर, इसकी क्या जरूरत थी ? आपने सोचा होगा कि इसमें से कोई तो अपने काम आये ! एक को नहीं तो दूसरे किसीको तो दया आयेगी, कोई तो मदद करेगा। क्यों रखा है ? अच्छा किया महावीर को यहां नहीं रखा। उसको छोड़ दिया उतना तो अच्छा कर दिया। तो यह दरबार नाम सुनकर इतना गुस्सा आया कि उसने दूसरे दिन से प्रवचन में आना बंद कर दिया।

अभी इसके अगेन्स्ट में वह बात कर रही हूं अमेरिका की। वे भाईसाहब और उनकी मिसेस आती थी। वह मिसेस तो श्वेतांबरी संप्रदाय की और यह दिगंबरी। आये और सुना उन्होंने, एक ही लेक्चर सुना और एक ही लेक्चर सुनकर, जो कुछ उन्होंने निर्णय कर दिया, घर गये। रात में अपने मिसेस के साथ चर्चा की उन्होंने और दोनों ने

मिलकर जो कुछ किया और दूसरे दिन हमको उनके घर बुलाया और उन्होंने चांदी का कोई, जहां भगवान की प्रतिमा वगैरह रखते हैं न ! हां, हां उस शेपवाला, मंदिर की शेपवाला मखर उसको बताया। उन्होंने बोला कल तक यहां देवी-देवताओं का दरबार भरा हुआ था और हमने एक रात में यह दरबार खाली कराया है। अब यहां तो मूर्ति है नहीं हमारे पास, हम क्या करें ? तो मैंने बोला यहां शास्त्र विराजमान कीजिये क्योंकि फोटो की तो पूजा, वंदना, अभिषेक वगैरह तो कुछ होता ही नहीं है। वह भी मिथ्यात्व का दोष लगता है तो आप जरूर यहां शास्त्रजी विराजमान कीजिये। उसके सामने बैठकर आप पूजा भी बोल सकते हैं, भावपूजा कर सकते हैं, द्रव्यपूजा भी कर सकते हैं शास्त्र है न ! देव-गुरु-शास्त्र तो वंदनीय, पूजनीय, अष्टद्रव्य से पूजनीय होते हैं। तो बिलकुल एक दिन में इतने पलट गये हैं और अभी इतना स्वाध्याय करते हैं वहां पर। फोन भी करते हैं तो घंटे-घंटे चर्चा चलती है। ऐसा भी नहीं है कि कोई बात सुनते हैं और सुनकर छोड़ देते हैं और वही बात करते रहते हैं जो पहले से चली आ रही है। ऐसे भी कोई पात्र जीव हैं, एक बार में सुन लेते हैं तो अपना दोष पता चलता है तो उसको छोड़कर सही रास्ते पर आ जाते हैं। *श्रोता: अमेरिकावाले।* हां, अमेरिकावाले।

ऐसा नहीं कि यहां के ही लोग बहुत कुछ स्वाध्यायादि करते हैं। वहां के कुछ जीव तो इतने जिज्ञासु हैं वे तो कमाल के हैं। लोगों को लगता है - आप क्यों जाते हैं बार-बार वहां ? हमारे ये स्वाध्यायी हैं सब, क्यों शरदभाई ? हां, यह अमेरिका से शरदभाई आये हैं न यहां पर ? करणानुयोग के बहुत रुचिवाले हैं। केमोथेरपी चल रही है और फिर भी इतनी प्रतिकूलता होते हुये भी यहां घंटों तक बैठकर सुनते हैं, यहां खास स्वाध्याय के लिये आये हैं। बहुत बड़े ऑफिसर हैं। कौनसी कंपनी है ? *श्रोता: शेवरॉन !* शेवरॉन ! हमारे यहां सारी गॅस कंपनीज़ हैं न ! वहां कन्सल्टंट तरीके से आते हैं और वहां सिखाते हैं, बहुत बड़ी पोस्ट पर हैं। इतना क्या किया है उन्होंने ? हमारे घर रोज जयधवला का स्वाध्याय चलता है सुबह ८.३० से १०.०० तक ! उन्होंने एक फोन भी लाकर रखा है, इंटरनेट भी चालू कर दिया है, हम नहीं चाहते तो भी। और कुछ क्या है ? आपका मेजिक जॅक बिठा दिया है और वहां कॅलिफोर्निया से सुनते हैं हमारी सुबह की बात डेढ़ घंटे और जब कभी टाइम होगा तो शाम को भी दो घंटे सुनते हैं। ऐसे रुचिवाले जीव वहां भी हैं। एक अकेले अपने लिये उन्होंने पूरी इतनी व्यवस्था कर

दी है। जिसको चाहिये, जिसको जिज्ञासा है उसको मार्ग न मिले ऐसा नहीं हो सकता है, यह बात बताना चाहते हैं हम। किसी व्यक्ति विशेष की महत्ता नहीं है, पर हम जो सुनते हैं, क्या हम उसका निर्णय करते हैं ?

देखो, देशनालब्धि किसको कहते हैं ? श्रवण यानी सुनना, ग्रहण यानी उसको समझना, धारण यानी उसको याद रखना। फिर उस पर निर्धारण यानी ऐसा ही है ऐसा निर्णय करना और उसरूप परिणमन होना - उसको कहेंगे परिणमन होना, इस सबको कहेंगे देशनालब्धि। वहां गये सुन लिया और फिर यहां से छोड़ दिया, उसको देशनालब्धि नहीं कहते, ख्याल में आया न ? यह तो अमूल्य चीज हमें मिल रही है। स्वाध्याय की कोई अलौकिक महिमा है क्योंकि यही जो है कि हमें चौबीस घंटे उपलब्ध है अपने घरों में। जब चाहे हम उसको खोलकर देख सकते हैं, पढ़ सकते हैं। मैं तो यह कहूंगी कि पूर्व के जमाने से आज का जमाना इतना अच्छा है। पं. दीपचंदजी कासलीवाल ने लिखा है अपनी पुस्तक में। क्या लिखा है ? कि मेरे सामने यह सुनने के लिये कोई तैयार नहीं है। यह भावदीपिका वगैरह लिखी है न उन्होंने ! हां लिख ही रखा हैं उन्होंने पुस्तक में। मैं यह लिखकर छोड़ रहा हूं तो कोई जो भव्य जीव होगा, किसीका कल्याण होना होगा जिसके होने होंगे निमित्तरूप से उसके हो जायेंगे। हम तो इतने भाग्यवान हैं कि विद्वानों का यहां हमें सत्समागम प्राप्त है और कोई बात हम समझाना चाहते हैं तो जिज्ञासु की तरह इतने लोग सुनने के लिये तैयार भी हैं।

यह सब गुरुदेवश्री की महिमा है ! उन्होंने लाखों लोगों का दिगंबर में परिवर्तन कर दिया। मूल श्वेतांबर में जन्मे थे यानी स्थानकवासी में जन्मे थे और जो हम दिगंबर थे, हमारे घरों में हमारे शास्त्र थे उसका अर्थ हमारे समझ में नहीं आया था, वह उन्होंने हमको समझाया। तो हमें उनकी महिमा क्यों नहीं आयेगी ? जरूर आयेगी जिनके द्वारा हमें मार्ग मिला है। यह सारा जो आज दिखायी दे रहा है, सुननेवालों की भी कितनी फौज की फौज तैयार हो गयी। छोटे-छोटे गांवों में इतने स्वाध्यायी लोग हैं, आप इमॅजिन नहीं कर सकते। क्यों, हमें कैसे पता चला ? ये पुस्तकें छोटी-मोटी जो कुछ मैंने लिखी हैं तो लोग मिलते रहते हैं, खत लिखते हैं कि वे इन पुस्तकों के आधार से या कोई सीडी के आधार से, जहां-वहां छोटे-छोटे गांवों में भी इतना स्वाध्याय चल रहा है। हमें तो जब ये शिबिर लगते हैं, बहुत लोग इकट्ठे हो जाते हैं तभी ख्याल आता

है कि हां, यहां कुछ स्वाध्याय हो रहा है। ऐसी बात नहीं है, निलेशभाई। छोटे-छोटे गांवों में भी और यहां की ही बात नहीं, विदेशों में हमने देखा है। अरे ! यहां तो जीवों को फुरसत ही नहीं है। आज क्या ? किसीकी शादी है, कल क्या ? कोई मर गया, इधर जा, उधर जा, उधर जा, हो गया सब। वहां रहनेवाले लोग भले ही काम के समय उनको आठ घंटे फोन करने को भी फुरसत नहीं मिलती है बीच में, फिर भी अपना काम करने के बाद घर आते हैं तो उनको बहुत फुरसत होती है और जो स्वाध्याय करना चाहते हैं, बहुत स्वाध्याय करते हैं और अकेले हमारे जैसे बूढ़े करते हैं, ऐसा नहीं है। कुछ ऐसे भी यंगस्टर्स हैं अभी वहां, जो यहां से गये थे, मां-बाप ने तो उनकी आशा ही छोड़ दी। क्यों ? वे यहां ही मंदिर नहीं आते थे, वहां अभी अमेरिका में जाकर क्या करनेवाले हैं ? यह रजनीभाई आये हैं वॉशिंग्टन से, यह जयाबेन भी है न यहां पर, यह नीरेनभाई इन्होंने तो वहां ऐसी अरेंजमेंट की थी कि साठ-साठ, सत्तर-सत्तर लोगों की एक जगह दिनभर रहने की, खाने की, सब व्यवस्था की थी। अपने घरों में रहते और वहां आते थे, भोजन वगैरह दोनों टाइम नाश्ता, चाय और दिन में आठ-आठ घंटे हम वहां प्रवचन करते थे और ऐसे एक-दो नहीं, चार साल लगातार हम वहां जा रहे हैं। वहां तो कितने-कितने विषय हमने बेसिक से लेकर गहराई तक पढ़ाये हैं, कुछ गहन विषय भी सिखायें हैं।

वहां की जो यंग जनरेशन है, अभी उनके भी छोटे-छोटे बच्चे हैं- इस उम्र के कपल्स तो वे बच्चे कहां रखेंगे ? पहली बार गये थे तब हमें फोन आया कि 'क्या करें ? हमारे बच्चे छोटे हैं, कोई वहां बेबीसीटर नहीं मिलेगा। या तो मैं आऊंगा या मेरी मिसेस आयेगी।' वाशिमवाले कहां गये ? आपके शिल्पा और अतुल बाकलीवाल उनका फोन आया था। अतुलजी का फोन आया था तो हमने कहा, ऐसे करना दोनों आओ। 'नहीं, मगर बच्चे तकलीफ देंगे।' तकलीफ तो बोलनेवालों को होगी, आपको क्या तकलीफ होगी ? हम कुछ माइंड नहीं करनेवाले। आने दो उनको, खेलने दो, खेलेंगे, फिर मां-बाप बैठे हैं तो बाहर जाकर अपने आप खेलने लगेंगे। वहां तो इतनी सुंदर व्यवस्था की, बड़ा प्रवचन हॉल तो है ही है, अन्य भी बड़ी अेरिया है। वहां एक-दो नहीं, ऐसे तो कितने ही - १५-२० कपल्स हैं। सब अपने-अपने बच्चे लेकर आते थे, बच्चों का ही १२-१५ का ग्रुप हो गया था। उनको तो किचन अेरिया में वहां बिठा देते थे, वहां एक

स्पीकर लगाया था। बहुत छोटे बच्चेवाले सात- आठ महीने के बालक लेकर भी एक पॅरेण्ट अंदर हॉल में बैठे और एक बच्चे के साथ वहां बैठे और स्पीकर पर सुने। फिर थोड़ी देर के बाद वह पॅरेण्ट अंदर आये और दूसरा बाहर जाकर सुनें और वहां जो कोई हेल्प उन्होंने मंगायी थी किचन में, तो वह तो वहां १०-१२ बच्चों को कोई पेंटिंग वगैरह में बीझी रखती थी। ऐसी व्यवस्था से वह ग्रुप इतना अभी अच्छा तैयार हुआ है। वे हर संडे को या १५ दिन में मिलते हैं। घंटों तक हमारी व्हीसीडी है, डीव्हीडी है, सीडी हैं सब सुनते हैं, देखते हैं। एक घंटेभर देखेंगे पांच-पांच घंटे चर्चा चलती है उनकी और फिर रात को फोन आते हैं, डेढ़-डेढ़ घंटे हमसे प्रश्नों के उत्तर पूछते हैं।

ऐसी रुचिवाले वहां भी जीव हैं, जिज्ञासु जीव हैं। ऐसे भी लोग वहां है। यह जो मैं बता रही थी न ! यहां का कोई लड़का वहां चला गया। अभी माताजी-पिताजी को तो ऐसा लगा यह तो अभी चला गया, यह तो अपने हाथ से चला गया क्योंकि यहां मंदिर में भी नहीं आता था, वहां क्या करेगा ? तो वहां ऐसा ही माहौल हो गया कि वह भी आने लगा, अन्य कपल्स के साथ। तो उसको भी इतनी रुचि हो गयी कि यहां उसके मातापिता को आश्चर्य लगा, 'अरे ! वहां जाकर और गुरुदेवश्री का तत्त्व उसको वहां मिल रहा है !' बहुत आनंदित हो गये। यानी यह निमित्तों के लिये कहीं पर रुकावट है ही नहीं। सहजरूप से कहीं भी जिस जीव का जहां जैसा परिवर्तन होना है वहां हो ही जाता है, बिलकुल हो जाता है। पर हमें जो माल मिला है, हमें जो उपदेश मिल रहा है, हमें जो स्वाध्याय हमारे हाथों में ग्रंथ तैयार हैं, गुरुदेवश्री की सीडी है। कितने ही पंडित आज ऐसे तैयार हुये हैं, यह तो इसको समझाकर लोगों को आत्मसात करानेवाले भी हैं। हम उसका लाभ नहीं लेते और हमारी रुचि कहीं न कहीं अन्यत्र पड़ी है, यह हमारा दुर्भाग्य है। यह मनुष्य जीवन में इसके अलावा करने लायक कुछ नहीं है।

कितने बंध करते आये हैं हम अनादि से। ऐसी कोई प्रकृति नहीं छोड़ी पुण्य की और पाप की जो हमने नहीं बांधी, एक तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक को छोड़ दो। ये सारी प्रकृतियां बांधकर आये हैं, छोड़कर आये हैं, सब कुछ भोगकर आये हैं। इसमें कुछ दम नहीं रखा है। हमें महत्ता तो पैसे की आती है। कहीं भी जाते हैं तो क्या होता है ? ये करोड़ों-अब्जों की बातें चलती हैं, लाख की चर्चा कोई नहीं करता। इसने यह घर इतने में खरीदा, उसने करोड़ों का यह लिया, इसने यह जायदाद ली, उसने

ऐसा बेच दिया इसीकी चर्चा ! हम कहीं जाते-आते ही नहीं हैं, क्यों ? हम तो असंख्यातों की चर्चा करते हैं न ! अनंतों की करते हैं। हमें करोड़ों, अब्जों में मजा नहीं आता !

देखो, गुणस्थान की बात पूछी थी न ? *श्रोता: बुद्धिपूर्वक।* हां-हां ! बुद्धिपूर्वक। हां, आपका प्रश्न था न ? बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक ? देखो बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक ये जो शब्द हैं वे दोनों ही प्रकार से शास्त्र में आते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में पं. टोडरमलजी साहब ने भी उसको दो पद्धति से वहां बताया है। एक बुद्धिपूर्वक यानी हम सोच समझकर जो कुछ करते हैं, उसको भी बुद्धिपूर्वक कहीं-कहीं कहने में आता है। जैसे सोच समझकर हमने बहुत बड़ी अरेंजमेंट की और यहां चले आये स्वाध्याय करने के लिये, शिबिर अटेंड करने के लिये। हम इसको बुद्धिपूर्वक कह सकते हैं। परंतु जहां बुद्धिपूर्वक राग और अबुद्धिपूर्वक राग की मुख्यतः चर्चा आती है - जैसे छठे गुणस्थानवर्ती जीव हैं तो वे तो शुभोपयोगवाले हैं। सातवें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त दशा को क्या कहेंगे हम ? शुद्धोपयोग में हैं, उस समय उनके राग है कि नहीं है ? और बंध है कि नहीं है ? बंध है, बंध का कारण क्या है ? राग है, इसीलिये तो बंध हो रहा है, नहीं तो उनको वीतराग मानना पड़ेगा। परंतु वहां तो शुद्धोपयोग में लीन हैं न ! हैं, परंतु उनका लक्ष राग का नहीं है तो राग उनके ज्ञान में वहां नहीं आ रहा है। उनका ज्ञानोपयोग किसमें लगा है ? शुद्धात्मा में कहो या जो कोई अन्य जो कुछ उनका ध्यान का विषय उसमें उनका उपयोग लगा है। वह जो राग है वह उनके अपने ज्ञान में नहीं आ रहा है; हो नहीं रहा वह बात नहीं है। क्षयोपशम ज्ञान है, उपयोग अन्यत्र लगा है तो यह राग उनके अपने ज्ञानोपयोग में नहीं आ रहा है उसको कहेंगे अबुद्धिपूर्वक राग।

यह अकेले शुद्धोपयोग में होता है, ऐसी बात नहीं है। हमारा बुद्धिपूर्वक अभी शुभोपयोग चल रहा है परंतु जिसके बुद्धिपूर्वक राग है, उसको भी अबुद्धिपूर्वक राग है ही है। गुरुदेवश्री के प्रवचन में आयी है यह बात। किसीने लिखा था यह अबुद्धिपूर्वक केवल शुद्धोपयोग में होता है। तो उन्होंने कहा जिसको बुद्धिपूर्वक है, उसको भी अबुद्धिपूर्वक है ही है। यानी हमारे आपके जो कोई बुद्धिपूर्वक राग चल रहा है तो यहां अबुद्धिपूर्वक राग भी है, सूक्ष्म है जो हमारे पकड़ में भी नहीं आ रहे हैं। वे राग परिणाम केवली के ज्ञान में तो हैं और यहां जो बंध हो रहा है उसमें अबुद्धिपूर्वक का भी हो रहा है। *श्रोता: अबुद्धिपूर्वक का कोई उदाहरण ?* हां, लोग पूछते हैं अबुद्धिपूर्वक

का उदाहरण दो। उदाहरण देंगे तो वह बुद्धिपूर्वक हो जायेगा। *श्रोता: अबुद्धिपूर्वक जो राग होता है, शुद्धोपयोग में तो मन का अवलंबन नहीं रहता ? उस समय में भी मन का अवलंबन नहीं रहता ?* यह बहुतों की भूल ऐसी हो रही है। आपका ऐसा प्रश्न है - मन का अवलंबन नहीं है तो बुद्धिपूर्वक या अबुद्धिपूर्वक का राग कैसे होगा ? क्या राग मन से हो रहा है ? मन का कार्य क्या है ? इन्द्रियों का कार्य क्या है ? इन्द्रियों का निमित्त जानने में है न ? देखने के कारण आपको राग होता है कि सुनने के कारण होता है ? मन का कार्य तो जानने में निमित्त है। इन्द्रियां और मन के द्वारा हम जानते हैं उसको मतिज्ञान कहते हैं। यह मन तो जानने में निमित्त है, मन से राग-द्वेष नहीं होते हैं। मन से अगर राग-द्वेष होने लगे तो एकेन्द्रियों के नहीं होने चाहिये थे। उनके तो होते हैं।

लोग पूछते भी हैं, एकेन्द्रियों को कैसे राग-द्वेष होते होंगे ? उनके तो मन नहीं है। यानी क्या माना हमने ? मन के कारण राग-द्वेष हुये। राग-द्वेष कौनसे गुण की पर्याय है पहले इसको निश्चित करेंगे हम। *श्रोता: चारित्र गुण की विभाव पर्याय है।* हां, चारित्र गुण की विभाव पर्याय है और मन क्या है ? जड़ है, द्रव्यमन तो जड़ है और भावमन तो क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय है। ख्याल में आता है न ? यह मन तो जानने में निमित्त है। परंतु जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, वह मन के द्वारा कल्पना करके राग-द्वेष खड़े करता है। परंतु राग-द्वेष किसकी पर्याय है ? चारित्र गुण की है, चारित्र गुण की यह विभाव पर्याय है। चारित्र गुण की पर्याय हर समय होगी कि चारित्र गुण थोड़ा आराम करेगा शुद्धोपयोग में ? उसकी तो दोनों धारायें चलती हैं। जब वीतरागता उत्पन्न होती है तो वीतरागता और सरागता एक साथ चलती है। जैसे हम नहीं कहते, क्या ? एक ग्लास है और उसमें पानी भरा था फिर हमने थोड़ा पानी निकाल दिया। तो थोड़ा भरा है, थोड़ा खाली है। तो खाली है कि भरा है जरा बोल दो न ! दोनों है- खाली भी है और भरा भी है। तो चारित्र गुण में यह वीतरागता भी है। चार कषाय चौकड़ी पहले थी, तब क्या था ? मिथ्याचारित्र था। पहले गुणस्थानवाला मिथ्यादृष्टि जीव है, उसको कितनी कषाय चौकड़ी है ? चार। अभी नोकषाय की बात हम नहीं उठायेंगे, मुख्य की बात करेंगे। तो चार कषाय चौकड़ी विद्यमान हैं, उसके कौनसा चारित्र है ? *श्रोता: मिथ्याचारित्र।* यह एकेन्द्रियों को चारित्र होता है कि नहीं होता ? बोलो बेटा। एकेन्द्रियों के चारित्र है कि नहीं है ? पीछे कोई कहेंगे ? है-है, क्यों है ? *श्रोता:*

मिथ्याचारित्र है। हां, मिथ्याचारित्र है।

अरे, चारित्र जीव का गुण है; जैसे ज्ञान है वह जीव का गुण है, जीव ज्ञानरहित कभी नहीं होगा। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख जो कोई अनंत गुण हैं वे तो हमेशा ही होंगे। चारित्र गुण तो सदैव है ही है। जो गुण है वह पर्यायरहित होगा कि गुण की एक-एक पर्याय हर समय चलेगी ही चलेगी ? चारित्र गुण में भी हर समय पर्याय चल रही है। जब तक वीतरागता नहीं है, तब तक क्या हो रहा है ? मिथ्याचारित्र चल रहा है। राग-द्वेष जो हैं, चारों कषायवाले जो राग-द्वेष हो रहे हैं, मिथ्याचारित्र हो रहा है। जब सम्यग्दर्शन होता है तो अनंतानुबंधी नहीं रहेगी। तो कौनसा चारित्र हो जायेगा ? *श्रोता: स्वरूपाचरणचारित्र।* स्वरूपाचरणचारित्र। यहां अनंतानुबंधी गया, स्वरूपाचरणचारित्र हुआ। पहले क्या था ? मिथ्याचारित्र था जब चार कषाय थे। अब अनंतानुबंधी गया तो स्वरूपाचरणचारित्र होगा। फिर अप्रत्याख्यानावरण गया तो देशचारित्र होगा। दो कषाय चौकड़ी हैं और यहां इतनी वीतरागता है और जितनी यहां वीतरागता इतना यह स्वभावचारित्र है; जितनी कषाय है, इतना विभावचारित्र है। अभी वह प्रत्याख्यानावरण भी गया तो यहां सकलचारित्र है और यह संज्वलन भी जायेगा तो यथाख्यातचारित्र हो जायेगा। यानी चारित्र गुण में सरागता और वीतरागता, कषाय और वीतरागता - इनकी दोनों की धारा एक साथ चलती है।

श्रोता: यह राग ज्ञान में नहीं आता तो भेदज्ञान कैसे होता है ? हां, यह राग ज्ञान में नहीं आता तो भेदज्ञान कैसे होता है? भेदज्ञान कब कर रहा है ? किस काल में कर रहा है ? वह शुद्धोपयोग में चला गया है यह भेदज्ञान का फल है। वहां भी उसके ज्ञान में तो है, यह मैं किसरूप हूं इसका ज्ञान तो वर्त रहा है और यहां जब आप कोई चीज देख रहे हो, कौनसे कलर की है ? कोई भी कहो न आप लाल, पीला, ऑरेंज। तो यह सफेद है कि नहीं है ? नहीं है। काला ? नहीं है, पीला ? *श्रोता: नहीं है।* अच्छा तो और कोई कलर का हरे रंग का ? नहीं है। कब जाना ? इसको जानते हुये जाना कि कब जाना ? *श्रोता: जानते हुये जाना।* तो यह हरा नहीं कैसे जाना ? अरे जब हम ज्ञानमात्र को जान रहे हैं तो उसमें ज्ञानमात्र अनुभव चल रहा है। उसमें हमें राग दिखायी नहीं दे रहा है। जब आप इसको जान रहे हैं तो आपको यह पीला दिखायी नहीं दे रहा है, हरा दिखायी नहीं दे रहा है, सफेद दिखायी नहीं दे रहा है। जो है वह दिखायी दे रहा है।

जब ज्ञान, ज्ञान को जानता है तो ज्ञानमय अनुभव हो रहा है। उसमें राग का सद्भाव दिख ही नहीं रहा है तो भेदज्ञान का फल ही मिल रहा है न वहां पर ? ज्ञान में राग है ही नहीं। तो जब हम भेदज्ञान नहीं कर रहे हैं, यानी क्या कर रहे हैं ? यह जो राग की पर्याय हो रही है उसमें हम ज्ञान को एकमेक करके जान रहे हैं। हमने मान लिया कि हमारा ज्ञान इससे मिश्रित हो गया है। मिश्रित हुआ ऐसा भी नहीं, हम उसरूप ही हुये ऐसा मान रहा है। देखो, हम कितने शुभराग कर रहे हैं ! यानी उस शुभराग को हमने अपने में जोड़ दिया। ज्ञान को अलग रखकर नहीं जान रहे हैं उसको। अपने में शुभराग होते हैं या अशुभराग होते हैं, हमारी ज्ञान की पर्याय उसीको जान रही है। परंतु हमने यह राग है और यह मैं भिन्न हूं ऐसा नहीं जाना। अरे ! मैंने इतने राग किये न, देखो ! यह मैं सारा धंधा व्यापार छोड़कर पांच दिन यहां आ गया, देखो मैंने कैसा शुभराग किया और उसमें मैंने अच्छा कुछ किया ऐसा भी फील होता है। अच्छा लगता है न ! बहुत पाप कर रहा था, अभी मैं देखो कैसा पुण्य कर रहा हूं यानी अभी राग में उसकी एकत्वबुद्धि पड़ी है। इस राग से तो भेदज्ञान करना है ! यहां कौनसा विषय चल रहा था अपना ? बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक हो गया। ख्याल में आयी न बात ?

यहां हमने बंध की व्युच्छित्ति की ये बातें देखी हैं। देखो यहां तो हमने केवल गुणस्थानों में बंधव्युच्छित्ति देखी है। इसको शास्त्र में कहते हैं ओघ से, ओघ से यानी सामान्य से। दो शब्द आते हैं ओघ और आदेश। आप कर्मकाण्ड पढ़ेंगे तो वहां शब्द दिखेंगे ओघ से ऐसा है और आदेश से ऐसा है। यानी क्या ? ओघ यानी इन जनरल यानी गुणस्थानों में हमने बंध की व्युच्छित्ति देखी। पहले गुणस्थान की, दूसरे गुणस्थान की, तीसरे गुणस्थान की। आदेश यानी क्या ? मार्गणाओं में जब बात करेंगे, मार्गणा क्या होती है ? हां जीव जहां पाये जाते हैं। यहां जब जीवकाण्ड पढ़ा था तो हमने जीवों का विभाजन चौदह में देखा था। गति है, इन्द्रिय है, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार इनमें हम जीवों को विभाजित करेंगे। गति की अपेक्षा चार गतिवाले जीव हैं; तो देवगतिवालों को कौन-कौनसे बंध हो सकते हैं ? कौनसे नहीं हो सकते ? यह सब गतियों में लगाना। नारकियों के कौनसे बंध होंगे ? कौनसे नहीं होंगे ? तिर्यंचों के कौनसे होंगे ? कौनसे नहीं होंगे ? मनुष्यों में कौनसे हो सकते हैं ? कौनसे नहीं ? तो उसमें फिर वह बंधव्युच्छित्ति भी लगाते रहना।

जो प्रकृतियां बंधती हैं उसमें से फिर बंधव्युच्छित्ति कहेंगे, जो बंधती ही नहीं उसकी क्या व्युच्छित्ति लगायेंगे ? जैसे थोड़ा नमूना बता देते हैं, हम पूरी मार्गणा नहीं लेंगे क्योंकि हम बोलते रहेंगे तो आप सोते रहेंगे और यहां तो कोई अन्य कार्य भी नहीं, पुराने जमाने में क्या होता था ? वह पुराणिक यानी प्रवचनकार होता था न ! वह पुराण यानी शास्त्र पढ़ता था और वह महिलायें हैं वे घर से कपास लेकर आती थी और वह क्या करती थी ? *श्रोता: बाती बनाती थी।* बाती बनाती थी और अपना-अपना कार्य हो गया तो बाती लेकर घर चली जाती थी और अपना पुराणिक पुराण पढ़ता रहता था। ऐसी तो कोई व्यवस्था है नहीं यहां पर, क्यों ? क्योंकि यह सब हमें लाइट, पंखे, भोजन आदि रेडिमेड मिला है न ! अभी कोई बाती-बिति बनाने की कोई जरूरत नहीं पड़ती।

जैसे हमने पहले गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति देखी थी उसी क्रम से देखेंगे। मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, फिर एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप अभी यहां तक मैं रुकी हूं। इसके आगे सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु। ये आगे की यह सारी जो लिस्ट है, वह देवगतिवालों को बंधती ही नहीं। कहां तक रुके हम ? जो भवनत्रिक हैं और सौधर्म-ईशानवाले हैं वे मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय संबंधी एकेन्द्रिय, स्थावर, और आतप इन प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं। परंतु कौनसे ? वे पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय में चले जायेंगे मरकर, देव पृथ्विकायिक में जायेंगे या जल या वनस्पति होंगे। परंतु कोई देव मरकर निगोद में नहीं जायेगा। हम डायरेक्ट क्या करते हैं ? ग्रैवेयक में भेजते हैं और वहां से निगोद में भेज देते हैं। अरे ! तिर्यंचगति का बंध तो सहस्रार तक के जीवों को ही होता है, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत। उसके आगे के देवों को तो तिर्यंचगति का बंध ही नहीं होता वे मनुष्य में ही जन्मते हैं, मिथ्यादृष्टि हैं तो भी। यह बंध के ऐसे बहुत सारे नियम हैं, उस-उस मार्गणा में हम देखेंगे।

एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप का बंध तो देव भी करते हैं, परंतु सौधर्म, ईशान स्वर्ग तक के देव करेंगे। ऊपर के स्वर्ग के देव एकेन्द्रिय का बंध भी नहीं कर सकते, करते ही नहीं वहां पर यानी वे मरकर एकेन्द्रिय में भी नहीं जा सकते। शतार, सहस्रार तक के देव तो मरकर संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही जायेंगे, तिर्यंच में भी जा सकते हैं, मनुष्य में भी

जायेंगे। आगे के देव मनुष्यगति को ही बांधेंगे, मनुष्यायु को ही बांधेंगे क्योंकि वहां तो सारे देव शुक्ललेश्यावाले हैं, तो वे तिर्यंचों में भी नहीं जायेंगे। ऐसे हर एक गति के अलग-अलग नियम हैं और जब वे नियम पढ़ते हैं तो हमारी बहुत सारी जो कोई भ्रमणायें चलती हैं, वे सारी मिट जाती हैं। देव मरकर एकेन्द्रिय में जा सकता है, नारकी मरकर नहीं जायेगा, नारकी मरकर तो संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही जन्म लेगा क्योंकि उसके एकेन्द्रिय संबंधी प्रकृतियां बंधती ही नहीं हैं। कोई नारकी देवगति भी नहीं बांधेगा और कोई देव नरकगति नहीं बांधेगा। यह मनुष्य और तिर्यंच ही ऐसे हैं कि चारों गतियों का बंध कर सकते हैं, मिथ्यात्व हो तो। परंतु देव नियम से तिर्यंच या मनुष्य होंगे, नारकी भी मनुष्य या तिर्यंच होंगे। नारकी मरकर नरक में नहीं जाता और नारकी मरकर देव में नहीं जाता। देव मरकर देव में नहीं जाता और देव मरकर नरक में नहीं जाता। यानी कोई पहले स्वर्ग का देव बहुत पुण्य परिणाम किया है उसने, अभी जाकर दूसरे स्वर्ग में जन्म लेगा ऐसा नहीं होता। उसको तो देवगति, देवायु बंधेगी ही नहीं। वह तो नियम से मनुष्य, तिर्यंच होकर जन्मेगा। यह सभी मार्गणाओं में लगाना चाहिये, यह तो हमने गतिमार्गणा में थोड़ा देखा।

अब एकेन्द्रियों की बात करेंगे। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव देवगति भी नहीं बांध सकते, नरकगति भी नहीं बांधते, ना वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग का बंध करेंगे क्योंकि वे मरकर देव में नहीं जा सकते। एकेन्द्रिय आदि मरकर मनुष्य, तिर्यंचों में, संज्ञी पंचेन्द्रियों में जन्म ले सकते हैं। निगोद आदि भी मनुष्य हो सकते हैं, मनुष्य होकर उसी भव में मोक्ष भी जा सकते हैं। फिर भी वह मरकर नारकी या देव नहीं हो सकते। इसतरह से कौनसे गतिवालों को, कौनसे जातिवालों को, कौनसी मार्गणावालों को, कौन-कौनसे बंध होते हैं ? ये सारी बातें सुनिश्चित हैं। यह तो जब हम-आप डीटेल में अभ्यास करेंगे न तब पता चलेगा। हमने तो यहां व्युच्छित्ति क्या होती है उसे समझाया। किसतरह से उसको समझना वह भी देखा। अब एक-एक मार्गणा में लगाना है तो, हमें पहले में पहले मार्गणाओं का स्वरूप मालूम होना चाहिये और प्रकृतियों के नाम आने चाहिये और फिर वह व्युच्छित्ति कहां कैसी है, यह जब पढ़ेंगे तो उसका अर्थ हमें सरलता से भासित हो जायेगा। याद होता है तो अच्छी बात है, नहीं होता है तो पढ़कर उसका अर्थ समझना चाहिये।

यह हर एक मार्गणा में, एक-एक मार्गणा में उन्होंने बंध कितना होता है, बंधव्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियों की होती है और उसमें कितनी प्रकृतियां अबंध होती है - इनकी सबकी लिस्ट बनायी है, उसके टेबल भी बनाये हैं और जो इसमें टेबल नहीं बने हैं, अभी हिंदी जो मैं बना रही हूं, उसमें एक-एक के सभी के टेबल बनाकर, उसके कोष्टक बनाकर उसका अनुवाद कर रही हूं। तो वह पुस्तक जब छपकर आयेगी तो आप लोगों को उसका विशेष अभ्यास हो सकता है। यानी हर एक में लगाया। देवों में भी, भवनत्रिक में अलग लगाया, सौधर्म ईशान की बात अलग बतायी है, ऊपर के देवों की अलग बतायी है और ग्रैवेयक आदि ऊपर के देवों की अलग बतायी है। हर एक में विभाजन कर-करके समझाया है। जैसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध कौन-कौनसे देव करते हैं ? भवनत्रिकवाले कर नहीं सकते क्योंकि वहां कोई सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न नहीं होता। देवियां करेंगी कि नहीं करेंगी ? *श्रोता: नहीं करेंगी।* तो नहीं करेंगी। ये सारी जन्म से मिथ्यादृष्टि हैं और वहां कोई नया बंध तो करते नहीं हैं। तो सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के देव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकते हैं। कोई देव आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का बंध कर करेंगे कि नहीं कर करेंगे ? *श्रोता: नहीं करेंगे।* हां, नहीं करेंगे। क्यों ? वे प्रकृतियां तो सातवें-आठवें गुणस्थानवर्ती जीवों को ही बंधती हैं। हां मनुष्यों को ही, मुनियों को ही वे बंधती हैं इसतरह से हमें देखना है।

अब नारकी जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकते हैं कि नहीं कर सकते ? *श्रोता: कर सकते हैं।* कर सकते हैं, कहां तक के नारकी ? *श्रोता: पहले नरक तक के नारकी।* पहले ही ? अरे ! तीसरे तक के ! हां, देखो पहले नरक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि मरकर वहां सम्यक्त्व के साथ जन्म ले सकते हैं। परंतु जो तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले वेदक सम्यक्त्व के साथ हैं वे मरण के पूर्व मिथ्यात्व में जाते हैं, वहां नरक में जाकर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। कहां तक ? तीसरे नरक तक। यानी तीसरे नरक तक के नारकी तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले वहां से मरकर यहां डायरेक्ट तीर्थंकररूप से जन्म लेंगे। यानी बालक होकर वह विधिवत् सारे पांचों ही कल्याणक होंगे उनके। लेकिन तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाले कोई चौथे, पांचवें आदि नीचे के नरकों में जाते ही नहीं हैं। वे उसका बंध भी नहीं करते। इसतरह से हमें तो यह अलग-अलग नरकों में क्या-क्या होता है इसको जानना है। जैसे सातवें नरकवाले मनुष्यायु कभी

बांधेंगे ही नहीं और मनुष्यगति का बंध करते हैं कि नहीं करते ? जब तक सम्यग्दृष्टि हैं, तब तक करेंगे। गति अलग बात है और आयु अलग बात है। जब तक सम्यक्त्व चल रहा है तब मनुष्यगति का ही बंध करते हैं। परंतु सातवें नरक के नारकियों को आयु कब बंधती है ? जब वे मिथ्यात्व में जाते हैं तभी उनके आयु का बंध होता है, मिथ्यात्व में ही मरकर वे पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, हिंस्र श्वापदों में जन्म लेते हैं ऐसा नियम है। ये जो कहते हैं न, सारे करणानुयोग के अकाट्य नियम हैं। कहां कौनसी प्रकृतियां बंध सकती हैं ? कितनी बंध सकती हैं ? जो बंधने योग्य हैं उसीमें से फिर व्युच्छित्ति कहेंगे।

यह जो हमने डायरेक्ट बताया न पहले गुणस्थान में इतनी व्युच्छित्ति होती है। अब जो देव सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और आगे की प्रकृतियां बांधते ही नहीं हैं। उनके लिये उनकी व्युच्छित्ति होती है, ऐसा भी नहीं कहेंगे क्योंकि जितनी बंध रही हैं उनमें से व्युच्छित्ति कहेंगे। इसतरह से यह मार्गणाओं में व्युच्छित्ति पायी जाती है। वह विषय हम यहां नहीं लेनेवाले हैं क्योंकि हर एक मार्गणा के डीटेल में अभी नहीं जा सकते, क्योंकि आपके हाथों में एक तो पुस्तकें नहीं है और फिर यह कर्मों के नाम से भी आप अभी ज्यादा परिचित नहीं हैं, एक-दो बार सुने होंगे। नाम तो सारे उसमें लिखे हैं, इसीलिये हमने ये पंचलब्धि पुस्तकें मंगवायी हैं यहां पर। इसमें सारी वह नाम की लिस्ट है। फिर भी जब आगे विषय चलेगा तब हम उसकी अधिक चर्चा करेंगे।

हमने देखा है, जब तक व्युच्छित्ति नहीं होती है तब तक वह कर्म बंधता रहता है। मूलप्रकृतियों की बात कर रहे हैं। ज्ञानावरण का बंध कब तक है ? तो दसवें गुणस्थान तक है। क्यों ? दसवें गुणस्थान में ज्ञानावरण कर्म के बंध की व्युच्छित्ति होती है। तो तब तक उस कर्म को क्या कहेंगे ? अनादि से तो बंध रहा है। परंतु निरंतर यानी हर समय बंध रहा है तो हम उसको कहेंगे ध्रुवबंधी है। ध्रुवबंधी किसको कहना ? जो निरंतर बंधती आ रही है। कहां तक बंधती है ? अपने बंध की व्युच्छित्ति तक, उसको कहेंगे वह ध्रुवबंधी। मिथ्यात्व के बंध की व्युच्छित्ति कहां होती है ? हम आगे की बात नहीं पूछेंगे - पहले गुणस्थान में। कब से बंधती आ रही है ? *श्रोता: अनादि से।* अनादि से। अनादि से मिथ्यात्व का बंध होते आया है। पहला गुणस्थान जब तक चल रहा है तब तक उसका बंध है। वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है तो उसका बंध रुक जाता है। तो उस मिथ्यात्व प्रकृति को हम ध्रुवबंधी कहेंगे। क्यों ? जब तक बंध की व्युच्छित्ति नहीं

होती तब तक बंधती आयी है। यानी अनादि से मिथ्यादृष्टि है तो अनादि से मिथ्यात्व का बंध होते आया है। जब वह सम्यग्दृष्टि होता है तो उसके बंध की व्युच्छित्ति हो गयी। तो मिथ्यात्व प्रकृति कैसी है ? ध्रुवबंधी है क्योंकि जब तक व्युच्छित्ति नहीं हुयी तब तक बंधती ही आयी है। ऐसे अनंतानुबंधी आदि सब मिलकर जो सोलह कषायकर्म, कब से बंध रहे हैं ? अनादि से हर समय बंध रहे हैं। तो अनंतानुबंधी की व्युच्छित्ति कब हुयी ? तो दूसरे में हुयी और अप्रत्याख्यानावरण की कब हुयी ? तो चौथे में हुयी।

अपनी-अपनी व्युच्छित्ति तक निरंतर बंधती हैं, उनको कहेंगे ये ध्रुवबंधी प्रकृतियां हैं। तो यहां जब हम अभी बंधनेवाली प्रकृतियों में कोई ध्रुवबंधी कहेंगे और कोई अध्रुवबंधी कहेंगे। ध्रुवबंधी का अर्थ क्या देखा हमने ? अनादि से ही हर समय जो बंधती आयी है। कब तक बंधेगी ? अपनी-अपनी बंधव्युच्छित्ति तक। हमने अभी जो बंधव्युच्छित्ति थोड़ी देखी है किसीको याद है, किसीको नहीं भी याद है। तो हम देखेंगे- ऐसी ध्रुवबंधी प्रकृतियां कौनसी हैं और कितनी हैं ? कितनी लिखी हैं वहां पर ? हां ? *श्रोता: फोर्टी सेव्हन।* फोर्टी सेव्हन ! कौनसी हो सकती हैं ? *श्रोता: घातिया।* नहीं, अकेले घाति की ४७ नहीं समझना वहां पर। कौन-कौनसी है ? क्योंकि उनमें नामकर्म की भी कुछ हैं। हां, कौन-कौनसी हैं ? हम देखेंगे। ये ध्रुवबंधी प्रकृतियां कौनसी हैं ? तो ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नौ। नौ क्यों कहा ? अनादि से नौ की नौ हर समय बंध रही हैं। जीव जागृत हो या सोता हो, पांच निद्रा का बंध निरंतर हो रहा है और ये जो चार अन्य दर्शनावरण हैं उनका भी, यानी नौ का बंध हो रहा है। कब से ? अनादि से हर समय हो रहा है। उदय तो जब जागृत अवस्था में है तो निद्रा का उदय नहीं है और जब सोता है तो पांच निद्रा में से किसी एक का उदय है।

बंध की बात चल रही है यहां। तो बंध हर समय होता आया है। दूसरे गुणस्थान में उनमें से तीन का बंध रुक जाता है। तो तब तक बंध चला ही आ रहा है, क्या कहेंगे उनको ? ध्रुवबंधी। तो ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नौ और अंतराय की पांच। कितनी हुयी ? *श्रोता: उन्नीस।* उन्नीस हुयी न ! ये उन्नीस हुयी। मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय, जुगुप्सा। मोहनीय की कौन-कौनसी ली ? मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय और जुगुप्सा ये हर समय बंधती हैं, ये भी उन्नीस हुयी। मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सत्रह और भय जुगुप्सा, *श्रोता: भय और जुगुप्सा ?* हां भय और जुगुप्सा ! सभी नौ नोकषायें

नहीं। ये एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय, जुगुप्सा-उन्नीस। उन्नीस और उन्नीस ? *श्रोता: अड़तीस।* अड़तीस और कौनसी हैं ? तेजसशरीर नामकर्म और कार्माणशरीर नामकर्म। उसको हम तेजस, कार्माण कहेंगे, यह दो चालीस हो गयी। अब कौनसी रही ? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार, हां, चवालीस हो गयी। फिर अगुरुलघु, उपघात और निर्माण है मेरे ख्याल से। देखते हैं यहां पर, बराबर है; तेजस, कार्माण देखा, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण। फिर से, ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नौ, अंतराय की पांच, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा, तेजस और कार्माण, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण ये ध्रुवबंधी प्रकृतियां कहलाती हैं। अनादि से इनका बंध हर समय चल रहा है।

जब हम कहते हैं न, मोहनीय की २८ प्रकृतियां हैं उनमें से तो दर्शनमोहनीय का एक मिथ्यात्व का ही बंध है और चारित्रमोहनीय जो हैं, हैं तो २५, कौनसी २५ हैं ? सोलह कषाय और नौ नोकषाय, परंतु नौ की नौ का बंध ॲट अ टाइम कभी नहीं होता। भय-जुगुप्सा दोनों का बंध ॲट अ टाइम होता है। अब बाकी कितनी रही ? सात रही। कौनसी सात रही ? तीन वेद हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद हैं इनमें किसी एक वेद का बंध होगा। इसको कहेंगे प्रतिपक्षी प्रकृतियां। तीन में से एक का होगा और दो युगल हैं हास्य-रति या अरति-शोक या तो हास्य-रति का बंध होगा या अरति-शोक का होगा। तो जो ध्रुवबंधी हमने देखी, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और इसके साथ एक युगल हास्य-रति का होगा उसको हम प्रतिपक्षी में लेंगे, ध्रुवबंधी में नहीं लेंगे। उसकी बात हम प्रतिपक्षी में करेंगे। ध्रुवबंधी में कौनसी-कौनसी देखी ? ४७ देखी। कोई कहेंगे ? ज्ञानावरण की ? *श्रोता: पांच।* पांच। दर्शनावरण की ? *श्रोता: नौ।* नौ। अंतराय की ? *श्रोता: पांच।* पांच, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, *श्रोता: मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा।* फिर तेजस और कार्माण, *श्रोता: तेजस और कार्माण।* स्पर्श, रस, गंध, वर्ण। *श्रोता: स्पर्श, रस, गंध, वर्ण।* अगुरुलघु, उपघात और निर्माण, *श्रोता: अगुरुलघु, उपघात और निर्माण।* ये ध्रुवबंधी ४७ प्रकृतियां हैं। वे अनादि से सभी को बंधती आयी हैं और जब तक उनकी व्युच्छित्ति नहीं होती तब तक हर समय बंधती रहती हैं। बाकी अध्रुवबंधी की जो यहां पर चर्चा है, वह हम कल करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१३. ध्रुवबंधी, प्रतिपक्ष, अप्रतिपक्ष प्रकृतियां

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसमें जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि की रचना उन्होंने की है। उसको भी और सरल करके उसके ऊपर जो टीकायें हुयी थी, स्वयं चामुण्डराय ने कर्णाटक भाषा में टीका लिखी थी, केशवजी वर्णी ने संस्कृत टीका लिखी थी और उसके आधार से पं. टोडरमलजी साहब ने देशभाषा में यानी ढूंढ़ारी भाषा में उसकी टीका लिखी है। उसके आधार से हमारा यहां स्वाध्याय चल रहा है।

पं. टोडरमलजी अत्यंत बुद्धिशाली जीव थे। सम्यग्दृष्टि तो थे ही थे, करणानुयोग का उनका गजब का अभ्यास था। कैसी बुद्धि होगी कि जो कन्नड लिपि में लिखा हुआ संस्कृत ग्रंथ, केवल ग्रंथ ही नहीं उसके सारे सूक्ष्म गणित भी उन्होंने स्वयं तो आत्मसात किये ही किये और वहां के सभी लोगों को सिखाये, जन-जन तक पहुंचाये, स्वयं देशभाषा में लिखकर महान कार्य किया। हम जब जयपुर जाते हैं तब वहां बड़े मंदिरजी में दर्शन करने जाते हैं, जहां वे स्वयं प्रवचन करते थे। वहां कोई माइक की व्यवस्था नहीं थी और उस जमाने के मंदिर छोटे और श्रोताओं की संख्या बहुत अधिक थी। वहां ऐसा कहते हैं कि पंडितजी जहां बैठते थे और जो प्रश्नोत्तर होते थे, कोई यहां बैठे हैं तो वहां के श्रावक फिर दोहराते थे, फिर वे नीचेवाले श्रावकों को बताते थे। यानी यह जो चर्चा चलेगी, वहां से कोई दोहरायेगा तो उसके पार जो बैठे हैं वे सुनेंगे, वे वहां जो सुनेंगे वे दोहरायेंगे फिर आगे चलेगी बात। हमें तो सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। उस ज़माने में तो हस्तलिखित था। हमें तो आजकल झेरॉक्स और प्रिन्टिंग द्वारा सब हाथ में है फिर भी जिसको कहते हैं न कि जिज्ञासा-उत्साह उतना नहीं दिखायी देता जितना उन्हें था और उन्होंने इतने सारे कठिन में कठिन ग्रंथ आत्मसात किये। हमें तो सारे ग्रंथ हमारे घरों में उपलब्ध हैं। लोगों को अभी घर में रखने के लिये जगह नहीं है ऐसी बात हो गयी। दिल की तो बात छोड़ो, घरों में भी जगह नहीं है।

देखो, यह पं. टोडरमलजी की बात आती है और उन पर कोई ऐसे आक्षेप करते हैं तो बहुत दुःख होता है। जिनको उनके बारे में कुछ पता नहीं है, वे ही उनके संदर्भ में अनाप-शनाप कुछ भी लिखते हैं और औरों को बताते हैं। कल जब बात निकली थी तो बहुतों ने प्रश्न पूछा ये क्या बता रहे हैं ? क्या हो रहा है ? उन्होंने क्या

लिखा था और किस पर ऑब्जेक्शन है ? मुनियों का स्वरूप लिखते हुये, पहले ही अधिकार में, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं के सामान्य स्वरूप में पं. टोडरमलजी ने लिखा है, कि यह तो **शुद्धोपयोगरूप ही मुनिधर्म** होता है-यह बात समझायी है और उसके बाद यह भी बात की थी उन्होंने कि **कदाचित् मंदराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है।** मुनिराज शुभोपयोग को भला नहीं जानते हैं परंतु वह शुभोपयोग, शुद्धोपयोग का बाह्य साधन है, इसलिये उसमें अनुराग करते हैं और जो राग भाव है न, कौनसा ? शुभोपयोगवाला भी जो राग भाव है, उसे हेय जानकर यानी वह छोड़ने लायक है; कैसा छोड़ने लायक है ? उसको छोड़कर शुद्धोपयोग में यानी आत्मा में स्थिर होने योग्य है - ऐसा वे समझते हैं, ऐसा वे जानते हैं और दूर करना चाहते हैं। यानी पुण्य को भी छोड़कर अपने आत्मा में स्थिर होना चाहते हैं, शुद्धोपयोग में लीन होना चाहते हैं। तथा तीव्र कषाय के उदय का अभाव होने से कषाय तीव्र यानी तीव्रतम होंगे, तीव्रतर होंगे और तीव्र होंगे उनको कहेंगे अशुभ परिणाम और मंद परिणामों में मंद होंगे, मंदतर यानी अधिक मंद होंगे और मंदतम यानी सबसे अधिक मंद होंगे उनको कहेंगे शुभ परिणाम - ऐसे इसके तीन और तीन छह भेद किये जाते हैं, जिसको हम छह लेश्या से भी पहचानते हैं।

यहां कह रहे हैं कि **उनके तीव्र कषाय जो हैं-उसका अभाव है;** यानी अत्यंत तीव्र कषाय उनके नहीं होते हैं। **हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणति का तो अस्तित्व ही नहीं रहा** - इस बात पर ऑब्जेक्शन लिया गया था। क्या लिखा है ? कि मुनियों को हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणति का तो अस्तित्व ही नहीं रहा है। इसके ऊपर क्या ऑब्जेक्शन लिया है किसी पंडित ने ? पंडित यानी जो कोई अपने को पंडित कहलाते होंगे, कि ऐसा है तो छठे गुणस्थान में अस्थिर, कौन-कौनसी प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है ? *श्रोता: अस्थिर।* अस्थिर, *श्रोता: अशुभ।* अशुभ, *श्रोता: असातावेदनीय।* असातावेदनीय, *श्रोता: अयशस्कीर्ति।* अयशस्कीर्ति, *श्रोता: अरति।* अरति और शोक। इनका बंध कैसे होता है ? तो वहां कोई अशुभोपयोग होना ही चाहिये, एक बात। इसके ऊपर मैं आपसे पूछूंगी, 'ज्ञानावरण पाप प्रकृति है कि पुण्य प्रकृति ?' *श्रोता: पाप प्रकृति।* कब तक बंधती है ? *श्रोता: दसवें गुणस्थान तक।* वहां भी अशुभोपयोग होता होगा ? उपघात प्रकृति कौनसी है ? *श्रोता: अशुभ प्रकृति है।* अशुभ

प्रकृति है। कहां तक बंधती है ? आठवें तक बंधती है। तो वे भी पाप करते हैं ? यह शुभोपयोग-शुद्धोपयोग, देखो प्रत्येक अनुयोग की भाषा अलग है। स्वयं पंडितजी ने बताया आगे, आठवें अधिकार में कहते हैं कि प्रत्येक अनुयोग की व्याख्यान करने की पद्धति ही अलग-अलग है। चरणानुयोग में कहेंगे ऐसा करो, पुण्यरूप प्रवर्तन करो भी कहेंगे। ऐसा भी कहेंगे यह अशुद्धोपयोग छोड़कर शुद्धोपयोग में चले जाओ। जाने की बात ही नहीं है, परंतु यह उपदेश की भाषा होती है।

द्रव्यानुयोग के व्याख्यान में कहते हैं, **द्रव्यानुयोग में भी चरणानुयोगवत् ग्रहण-त्याग कराने का प्रयोजन है।** वहां भी कहेंगे यह अशुभ को छोड़ो, शुभ को भी छोड़ो और शुद्ध में चले जाओ। यह द्रव्यानुयोग की बात है। इसलिये यहां द्रव्यानुयोग में जो शुभोपयोग, शुद्धोपयोग या अशुभोपयोग जो कुछ कहा है, वह छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा ही कहा है, 'ही' लगाया है। वहां कथन है। क्या कहते हैं ? यह जो द्रव्यानुयोग में जहां-जहां शुभोपयोग या शुद्धोपयोग की बात आती है, किस अपेक्षा से बात करते हैं ? छद्मस्थ यानी हम आप सारे जो केवलज्ञानी नहीं हैं, जो सर्वज्ञ नहीं हैं, वे सारे कौन हैं ? छद्मस्थ हैं। तो छद्मस्थ के बुद्धिगोचर; छद्मस्थ के बुद्धिगोचर नहीं हैं का अर्थ क्या है ? छद्मस्थ उन परिणामों को जान नहीं सकता परंतु केवलज्ञानी ज़रूर जानते हैं। हम द्रव्यानुयोग में कहेंगे कि इसके अशुभोपयोग होता ही नहीं, वह छद्मस्थ के बुद्धिगोचर भावों की अपेक्षा बात कर रहे हैं। तो छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा ही वहां कथन करते हैं। चरणानुयोग भी कहता है और द्रव्यानुयोग भी कहता है, उन दोनों में क्या डिफरन्स है ? चरणानुयोग में तो बाह्य क्रिया की मुख्यता से वर्णन करते हैं कि ऐसा मत करो, यह पाप का त्याग करो, यह ऐसा करो; और द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से वर्णन करते हैं। चरणानुयोग में आचरण की मुख्यता है, बाह्य आचरण की और द्रव्यानुयोग में आत्मा के परिणामों की बात है। चरणानुयोग में तो कहेंगे ही हिंसा का त्याग करो और द्रव्यानुयोग में कहेंगे अपने परिणामों में रागादि भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है; यह एक द्रव्यानुयोग का कथन है परंतु करणानुयोगवत् सूक्ष्म वर्णन नहीं है। करणानुयोग इसको शुद्धोपयोग नहीं कहेगा। हम किस अनुयोग में कौनसी बात कर रहे हैं और कहां कौनसी बात लगाना है यह जानना जरूरी है। एक अनुयोग की बात दूसरी जगह नहीं चलेगी।

डॉक्टर आपको पीने की दवा देते हैं और कोई ॲप्लिकेशनवाली भी देंगें। तो कौनसी लगानी है और कौनसी पीनी है ? इसका विवेक हमें रखना चाहिये।

यह द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग और करणानुयोग का जो जहां कथन है - उसको उसी अनुयोग के अनुप्रेक्ष में ग्रहण करना चाहिये। देखते हैं यहां, उपयोग के शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसे तीन भेद कहे। यह बात अत्यंत महत्व की है। नहीं तो कहेंगे यह करणानुयोग में प्रकृति में यह बात कहां निकाली ? ऐसा कोई टाइट कम्पार्टमेंट नहीं है, एअर टाइट कि यह द्रव्यानुयोग है तो उसके ऊपर ही बताना चाहिये आपको। करणानुयोग है तो उसकी ही बात करो। हमें तो चारों अनुयोगों का आपस में यहां कैसा सुमेल है और कहां किस अपेक्षा से बात आती है और कोई उसके ऊपर उंगली उठाता है तो वह स्वयं कैसे गलत है, इसका निर्णय हमें होना चाहिये। किसीका सुन लिया और हम वैसे ही मानने लगे वह बात नहीं चलेगी। तो कहते हैं **उपयोग के शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसे तीन भेद कहे हैं। वहां धर्मानुरागरूप परिणाम वह शुभोपयोग**, धर्मानुराग यानी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति जो अहो भाव है, अनुराग है, उसको हम कहेंगे धर्मानुराग। **पापानुराग-पाप के प्रति प्रेम और द्वेष इसको अशुभोपयोग कहा और राग-द्वेष रहित परिणाम वह शुद्धोपयोग है-ऐसा कहा है।**

यहां छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा यह कथन है। जब हम कहेंगे राग-द्वेष रहित परिणाम तो कौनसे राग-द्वेष ? जो अपने ख्याल में नहीं आ रहे। छद्मस्थ जिसको जान सकता है, ऐसे राग-द्वेष की अपेक्षा यहां कहा कि राग-द्वेष रहित होकर शुद्धोपयोग में रह जाओ। यह द्रव्यानुयोग अत्यंत स्थूल कथन करता है। जो अपने ख्याल में आये ऐसे भावों की अपेक्षा यह बात चल रही है। राग-द्वेष रहित होकर शुद्धोपयोग अगर होता होगा तो शुद्धोपयोग में बंध का अभाव होना चाहिये था; यदि पूरा ही राग रहित हो जाता। परंतु केवलज्ञानी जानते हैं वहां कौनसे राग विद्यमान हैं और राग के कारण उस गुणस्थान में उतना बंध भी हो रहा है। क्या श्रेणी के गुणस्थानों में बंध नहीं हो रहा ? *श्रोता: हो रहा है।* फिर भी द्रव्यानुयोग उसको शुद्धोपयोग कह रहा है। ऐसा भी नहीं कि उसने उपयोग में आत्मा को ही लिया है क्योंकि पृथक्त्ववितर्क वीचार और एकत्ववितर्कअवीचार ध्यान में क्या बात होती है ? वहां तो छहों द्रव्य ज्ञान का विषय हो सकते हैं। यह जो उपयोग की बात कर रहे हैं वह अपने बुद्धिगोचर

परिणामों की अपेक्षा हमें जो राग-द्वेष हो रहे हैं, उससे रहित की बात है यहां।

करणानुयोग में कषाय शक्ति की अपेक्षा गुणस्थानादि में, यानी उसके कषाय की कितनी शक्ति है ? तीव्र है कि मंद है कि मंदतम है जो कुछ है और गुणस्थानादि में - अन्य-अन्य गुणस्थानों में संक्लेश-विशुद्ध परिणामों की अपेक्षा कथन होता है। कितना संक्लेश है ? कितनी विशुद्धि है ? अभी ये थोड़ी बातें शायद आपके समझ में नहीं आयेगी। आगे जब हम कषायों के उदयस्थान देखेंगे, संक्लेश-विशुद्धि क्या होती है समझेंगे तो इस बात की और स्पष्टता आपके ख्याल में आ जायेगी। पहले हम यहां क्या लिखना चाहते हैं या क्या बताना चाहते हैं ? उसको देखते हैं। वह विवक्षा यहां नहीं है। कहां ? द्रव्यानुयोग में और यहां जो आचार्य, उपाध्याय, मुनियों का स्वरूप कहा है, वहां वह बारहवें गुणस्थानवाला शुद्धोपयोग नहीं कहा है। आगे भी लिखते हैं, **करणानुयोग में तो रागादि रहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र होने पर होता है।** द्रव्यानुयोग तो शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान में भी कहेगा, जिस काल में सम्यग्दर्शन हो रहा है और करणानुयोग को पूछेंगे कहां होता है ? जहां पूर्ण वीतरागता है वहां पूर्ण शुद्धोपयोग है। ग्यारहवें में अंतर्मुहूर्त है और बारहवें में भी अंतर्मुहूर्त है। वह भी मोह के नाश से स्वयमेव होता है। यह राग-द्वेष रहित जो बुद्धिगोचर अवस्था है यानी जिसको हम जान बूझकर ऐसा भी कह सकते हैं उसकी बात वहां चौथे गुणस्थान में है। हम जो अन्य बाह्य चीज़ों में उलझे हैं, उनको छोड़कर स्वरूप के बारे में चिंतवन करते-करते स्वरूपगुप्त हो जाना उसकी बात है वहां। करणानुयोग में, जीव को ऐसी विशुद्धि में स्वयमेव सब यथायोग्य उपशम या क्षय हो जाता है। भले हम कहेंगे जीव ने किया, उसने उपशम किया, उसने क्षय किया परंतु क्या कहा ? मोह के नाश से शुद्धोपयोग स्वयमेव हो जाता है। निचली अवस्थावाला शुद्धोपयोग का साधन कैसे करे ?

करणानुयोग की अपेक्षा जो नीचे के गुणस्थानवाले भले चौथे, पांचवें, छठे, सातवें हैं, परंतु उनके जो सूक्ष्म राग विद्यमान है करणानुयोग उसको शुद्धोपयोग नहीं कहेगा। तथा **द्रव्यानुयोग में तो शुद्धोपयोग करने का ही मुख्य उपदेश है।** अभी झगड़ा हो गया न ! हम भी आपस में जो वाद-विवाद करते हैं तो एक करणानुयोग की अपेक्षा बात कर रहा है, दूसरा है जो द्रव्यानुयोग की अपेक्षा बात कर रहा है। अरे अपेक्षा समझो न ! किस अपेक्षा से हम बात कर रहे हैं ? किस नय से हम बात कर रहे

हैं ? तो विवाद का कोई प्रश्न ही नहीं है। स्वयं पं. टोडरमलजी उसको बता रहे हैं कि हर एक अनुयोग की कथन पद्धति अलग है और उसी कथन से हमें उस अनुयोग को जानना चाहिये। कहते हैं कि **द्रव्यानुयोग में तो शुद्धोपयोग करने का ही मुख्य उपदेश है इसलिये वहां छद्मस्थ जिस काल में बुद्धिगोचर भक्ति आदि** भक्ति हम कर रहे हैं वह परिणाम हमारे भी ख्याल में आ रहे हैं तो यह भक्ति आदि का भी परिणाम यह पुण्य परिणाम। आदि में क्या लगाना ? भक्ति है, दान है, दया है, जो कोई उपवास आदि परिणाम हैं, व्रतों के परिणाम हैं, जो कुछ हैं जो हमारे ख्याल में आतें हैं बुद्धिगोचर हैं; बुद्धिगोचर यानी बुद्धि में - अपने ज्ञान में, ख्याल में आते हैं। **बुद्धिगोचर भक्ति आदि और हिंसा आदि कार्यरूप परिणामों को छोड़कर।** कार्य भी लिया, परिणाम भी लिया यानी पुण्य के परिणाम और उसमें जो कार्य - आचरण चल रहा है, वह छोड़कर और पाप का भी परिणाम और आचरण छोड़कर **आत्मानुभवनादि कार्यों में प्रवर्ते उस काल उसे शुद्धोपयोग कहते हैं** कौन ? द्रव्यानुयोग।

हम जो भक्ति आदि कर रहे थे भगवान के सामने बैठकर, उनका लक्ष छोड़कर, भक्ति का भी लक्ष छोड़कर और कोई हिंसादि पापों का भी लक्ष छोड़कर, हम अपने शुद्धोपयोग में यानी आत्मा के अनुभव में लग जाये उसको द्रव्यानुयोग शुद्धोपयोग कहता है। द्रव्यानुयोग चौथेवाले को जो शुद्धोपयोग कहता है वहां तो केवल अनंतानुबंधी कषाय का अभाव हो गया, अभाव यानी हम भी अभाव कहते हैं, करणानुयोग अभाव नहीं कहेगा। करणानुयोग कहेगा उसका सदवस्थारूप उपशम हुआ है। एक समय के लिये अन्यरूप से उदय हो रहा है, उदय का अभाव है। एक समय ऊपर उसके निषेक पड़े हैं, किसी भी समय में उदय में आ सकते हैं और जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में जा सकता है। हमने जो भाषा सीखी है, हमें तो वही सच लगती है फिर हम झगड़ा करें अरे अभाव बताया न चौथेवाले को ! हां, उदय का अभाव है। उस समय उसके परिणाम उसरूप नहीं हो रहे हैं। परंतु सत्ता में वह प्रकृति भी पड़ी है और जीव को भी वैसे भाव फिर से दुबारा हो सकते हैं। क्यों ? संस्कार की बात करते हैं न ! अरे ! संस्कार कब से हैं हमारे - मिथ्यात्व के ? *श्रोता: अनादि से हैं।* अनादि से हैं। वह अच्छा लगेगा ? हम तो क्या कहते हैं ? अभी संस्कार तो डालो फिर अगले भव में काम आयेगा। वह संस्कार की भी बात आती है। शास्त्रों में ही आती है

परंतु हम उसी पर डिपेंड रहते हैं। अभी आत्मानुभूतिरूप कार्य नहीं करना चाहते। केवल संस्कार ही डालना चाहते हैं। ख्याल में आया ?

यहां हम यह बात देख रहे हैं, यद्यपि यहां, यहां यानी शुद्धोपयोग में; कौनसे शुद्धोपयोग में ? द्रव्यानुयोगवाले शुद्धोपयोग में, केवलज्ञानगोचर सूक्ष्म रागादिक हैं, तो उससे बंध भी होगा तथापि उसकी विवक्षा यहां नहीं है। जब कहते हैं मुनियों को अशुभोपयोग होता ही नहीं तब छद्मस्थ के बुद्धिगोचर अशुभोपयोग की बात है-एक बात यह हो गयी। अपने बुद्धिगोचर रागादिक छोड़ता है, इस अपेक्षा उसे शुद्धोपयोगी कहा है और भी उसकी बहुत बाते हैं फिर भी हम यह भी देखते हैं और वहां अस्थिर आदि की बात की थी न। देखो, आपके पास पंचलब्धि पुस्तक है, उसमें पृष्ठ ७३ तीसरा पॅरेग्राफ **जीव के कषायों को दो भेदों में विभाजित करते हैं** - जीव के परिणामों की बात है। जीव के जो कषाय परिणाम हैं उसके मुख्य दो भेद हैं **संक्लेश परिणाम और विशुद्ध परिणाम।** कषायों के कितने व्हेरिएशन्स हैं जिसको हम स्थान कहते हैं ? असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। उनमें संक्लेश के स्थान बहुत ज़्यादा हैं यानी **बहुभाग प्रमाण तो संक्लेश के स्थान हैं और एकभाग प्रमाण तो विशुद्धि के स्थान हैं।** यानी विशुद्धिवाले परिणामों की संख्या, अलग-अलग टाइप की विशुद्धि उनकी संख्या कम है और अलग-अलग टाइप के संक्लेश हैं उनकी संख्या असंख्यातगुणा है।

अभी क्या भेद है उसमें ? तो साता, स्थिर - आपने ये नाम सुने हैं न ? सातावेदनीय आदि, यह हम अघाति के पुण्य प्रकृतियों के नाम देख रहे हैं। **साता, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय आदि।** आदि में उच्चगोत्र भी लेना, यशस्कीर्ति भी लेना। **शुभ प्रकृतियों के बंध के कारणभूत कषायस्थानों को विशुद्धिस्थान कहते हैं।** विशुद्धि किसे कहना ? जिस काल में यह ऐसी विशुद्धि हो रही है उस काल में कौन-कौनसे कर्म बंध रहे हैं ? सातावेदनीय शुभ है न वह और फ़िर नामकर्म के कुछ ले लिये- शुभ है, सुभग है, सुस्वर है, आदेय है, यशस्कीर्ति है और गोत्र में से उच्चगोत्र है। तो जिन कषायस्थानों से इन प्रकृतियों का बंध होता है, उन कषायों को विशुद्धि के स्थान कहते हैं। अपनी भाषा में मंद कषाय कहते हैं। मंद कषाय और तीव्र कषाय हम जानते हैं ? जिसको हम शुभ परिणाम कहते हैं उसीको यहां विशुद्धि कही है और उस काल में क्या हो रहा है ? साता वगैरह का बंध हो रहा है और उसके विरुद्ध ? असाता,

अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय- उसमें भी नीचगोत्र भी लगा लेना तो इनका जब बंध हो रहा है; वे जो बंध के परिणाम हैं, उनको क्या कहेंगे हम ? संक्लेश कहेंगे तो यह है संक्लेश और विशुद्धि की परिभाषा। **अत्यंत तीव्र कषाय के अभाव में जो मंद कषाय होती है उसे विशुद्धि कहते हैं।**

सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों के हमने स्पर्धक देखे थे यानी अघाति के पुण्य प्रकृतियों के स्पर्धक के नाम हमने कौनसे देखे थे ? कौन बताना चाहता है ? हां, बोलो भाई। *श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत।* हां, गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। जहां अत्यंत विशुद्ध परिणाम होते हैं शुभ परिणाम तो वहां चारों प्रकार का बंध होता है; उसको कहते हैं चतुःस्थानीय बंध। जहां विशुद्धि बहुत ज़्यादा है, वहां चारों का ही बंध होता है। कौनसे ? गुड़वाले, खाण्डवाले, शर्करावाले, अमृतवाले सभी स्पर्धक बंधते हैं यानी वहां विशुद्धि बहुत ज़्यादा है। यहां लिखते हैं देखो, सातावेदनीय के चतु:स्थानगत बंध की अपेक्षा, चतु:स्थानगत का अर्थ समझ में आता है ? जहां यह चारों ही प्रकार के स्पर्धकों का बंध होता है, वहां अत्यंत विशुद्धि है। उसकी अपेक्षा जो जीव त्रिस्थानगत बंध करता है, कौनसे तीन ? गुड़, खाण्ड और शर्करा। अमृतवाले स्पर्धक उसको बंध नहीं रहें, क्यों ? क्योंकि उसके विशुद्धि उतनी ज़्यादा नहीं है। तो जो चार स्थान का बंध कर रहा है उसकी अपेक्षा जो तीन स्थान का बंध कर रहा है उसकी विशुद्धि कम है। जाहिर है न ! उसके परिणाम संक्लिष्टतर कहेंगे; है तो विशुद्ध; उसको क्या कहेंगे ? संक्लेश की ओर है न वह ! संक्लिष्टतर कहेंगे। उसकी अपेक्षा द्विस्थानगत करनेवाले क्या होंगे ? यहां लिखा नहीं है परंतु उसकी अपेक्षा द्विस्थानगतवाले और संक्लेशवाले हैं उनकी विशुद्धि और कम है। विशुद्धि कम है तो हम कहेंगे उसके संक्लेश ज़्यादा है। असाता आदि का बंध करते हैं उसमें भी चार स्थानवाले जो हैं, असाता का तीव्र बंध करनेवाले, तो वह अधिक संक्लेशवाले - मॅक्झिमम संक्लेशवाले हैं। उसका तीन स्थान का करनेवाले कम संक्लेशवाले और उसका भी दो स्थान का बंध करनेवाले और कम संक्लेशवाले। परंतु ऐसा नियम नहीं है।

देखो आगे लिखी है। **वर्धमान यानी बढ़ते हुये कषाय को संक्लेश और घटते हुये कषाय को विशुद्धि कहना ठीक नहीं है। कषायों की वृद्धि केवल असाता के बंध का कारण नहीं है क्योंकि कषायों की वृद्धि के काल में साता का**

भी बंध पाया जाता है। कितना स्पष्ट लिखा है, ये करणानुयोग के वचन हैं। **उसीतरह कषायों के हानि के काल में भी असाता का बंध पाया जाता है।** यहां तो इतनी बातें हैं। यह तो मैंने थोड़ा ही आपको पढ़कर बताया है इसमें और भी बहुत विस्तार है। इसका अर्थ क्या है ? कि यह जो कोई साता या असाता बंधती है तो उसको डायरेक्ट अशुभोपयोगी डिक्लेअर करना ठीक नहीं है। यह उसके अज्ञान का द्योतक है। स्वयं अपना अज्ञान प्रकट करते हैं और पं. टोडरमलजी जैसे महापुरुष के ऊपर उंगली उठाकर पुस्तक भी निकालते हैं कि इतनी इसमें भूलें हैं - इसलिये दुःख होता है।

अभी हम अपना विषय बढ़ायेंगे आगे। अभी बंध के बारे में हमने बहुत सारी बाते देखी हैं; आयु बंध के बारे में भी बहुत सारे प्रश्न आये थे। इतना ही देखना है कि तीसरे गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होता। ऐसे ही निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था, यह निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था क्या होती है ? उसको देखेंगे क्योंकि यह शब्द आगे भी आयेगा। देखो, जीव जब मरकर अन्य गति में चला जाता है तो जब शरीर के परमाणु ग्रहण करना शुरू करता है, उसी समय से उसकी पर्याप्ति शुरू हो जाती हैं। जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, उसके छह पर्याप्ति होती हैं। पर्याप्ति यानी शक्ति की पूर्णता। ऐसे कौन-कौनसी शक्तियों की पूर्णता होती है ? उनके नाम हैं - *श्रोता: आहारपर्याप्ति।* आहारपर्याप्ति, दूसरी शरीरपर्याप्ति, तीसरी इन्द्रियपर्याप्ति, चौथी ? *श्रोता: श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति।* श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, फिर भाषापर्याप्ति और मन:पर्याप्ति। जब तक दूसरी शरीर पर्याप्ति पूरी नहीं होती तब तक उनको निर्वृत्तिअपर्याप्त कहेंगे वे पर्याप्त होनेवाले जीव हैं न ? ऐसा क्यों है कि कोई पर्याप्त होते हैं और कोई अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं ? यह पार्शालिटि क्यों ? तो जो पर्याप्त नामकर्म बांधकर आया है वह पर्याप्त है। उसकी पर्याप्ति नियम से पूर्ण होगी ही। वह अपर्याप्त अवस्था में नहीं मरेगा और जिसने अपर्याप्त नामकर्म बांधा है अपने खोटे परिणामों से, क्योंकि परिणाम करते समय तो कुछ पता नहीं है न और उसमें मज़ा भी आ रहा है। तो अपर्याप्त नामकर्म बांधा है और यहां जन्म लिया तो उस जीव को कहते हैं लब्धिअपर्याप्त। उनकी तो एक भी पर्याप्ति पूरी नहीं होगी, उसके पहले मरण हो जायेगा। इतना छोटा अंतर्मुहूर्त उसकी आयु होती है। उसका भव का काल इतना छोटा होता है जिसको हम कहते हैं एक श्वास में अठ-दस बार।

एक श्वास का जो काल है-कौनसा एक श्वास ? यह जो ठक-ठक हो रहा है न पल्स, तो दो पल्स के बीच में जितना अंतर है उसको एक श्वास कहा। अभी उसका अठारहवां भाग करो और उतनी एक आयु, उनको कहेंगे लब्धिअपर्याप्त जीव और हमने अभी कौनसा शब्द देखा ? निर्वृत्तिअपर्याप्त यानी जो पर्याप्त नामकर्मवाले हैं, जिनकी पर्याप्ति नियम से पूर्ण होनेवाली हैं ही, फिर भी जो अभी शरीरपर्याप्ति पूरी होने तक नहीं पहुंचा है, एक समय पूर्व तक उन जीवों को निर्वृत्तिअपर्याप्त जीव कहेंगे। *श्रोता: दूसरी पर्याप्ति तक ?* दूसरी पर्याप्ति तक, दूसरी पर्याप्ति पूर्ण होने पर उनको पर्याप्तक कह देते हैं ॲज गुड़ ॲज हो गया। यह कहने की क्या ज़रूरत है ? क्योंकि यह जो अलग-अलग पर्याप्तियों के काल में कहां कौनसे कर्मों का उदय शुरू होता है या कौनसी क्या बातें हैं उसके लिये निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था अलग से बतायी है। जब हम आगे बढ़ेंगे तो आपको उसका ख्याल आयेगा। अभी इतनी बात लेनी है कि निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था में किसीके भी आयु का बंध नहीं होता। है तो पर्याप्त जीव, आगामी आयु कभी बंधेगी ? वह तो हमने देखा त्रिभाग में बंधती है; अभी पर्याप्ति का काल तो बहुत छोटा है परंतु ऐसा भी हमने सुना है न कि कदलीघात से भी मरण हो सकता है; तो क्या इस निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा में उनका कदलीघात से मरण हो सकता है ? तो नहीं हो सकता। छहों पर्याप्ति पूरी होने पर हो सकता है कि लंबी आयु बांधकर आया है और अंतर्मुहूर्त के अंदर कदलीघात से उसके सारे निषेक नीचे आ जाते हैं छोटे अंतर्मुहूर्त में और फिर उसका आयु का बंध भी होता है और मरण भी होता है। परंतु निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा में आयु का बंध नहीं होता।

मेरा आपसे ऐसा प्रश्न है कि लब्धिअपर्याप्त जीवों को आयु का बंध होता होगा कि नहीं होगा ? क्योंकि निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा से भी छोटा काल है उनका, होता है कि नहीं होता है ? *श्रोता: होता है।* अरे, होता है न ? क्योंकि उसको और भी भव करने हैं न। कोई जीव तो लब्धिअपर्याप्त-लब्धिअपर्याप्त-लब्धिअपर्याप्त बार-बार-बार; एक अंतर्मुहूर्त में तो कितने भव होते हैं ? याद है कि भूल गये ? *श्रोता: ६६३३६।* ६६३३६ भव। कौनसे ? लब्धिअपर्याप्त के। कोई जीव लब्धिअपर्याप्त अवस्था में चला गया तो लब्धिअपर्याप्त दशा कौन-कौनसे जीवों में पायी जाती है ? एकेन्द्रिय के सूक्ष्म, बादर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय इन सातों ही पर्यायों

में पर्याप्त जीव भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं, उनको लब्धिअपर्याप्त कहते हैं। एक श्वास में अठ-दस बार कौनसे जीव जन्म-मरण करते हैं ? *श्रोता: निगोद।* हां, निगोद, आया न उत्तर ! अरे, यह तो सभी में होता है ! यही तो बता रहे हैं। यह जो लब्धिअपर्याप्त अवस्था है, एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करनेवाले यानी इतनी छोटी आयु है यह लब्धिअपर्याप्त एकेन्द्रिय में भी हो सकते हैं, द्वीन्द्रिय में भी, त्रीन्द्रिय में भी, चतुरिन्द्रिय में भी और पंचेन्द्रियों में भी। पंचेन्द्रियों में देव-नारकी में तो नहीं होते, ना भोगभूमि में होते हैं परंतु मनुष्य भी लब्धिअपर्याप्त होते हैं और तिर्यंच भी लब्धिअपर्याप्त होते हैं पंचेन्द्रिय, संज्ञी भी और असंज्ञी भी। ये जो लब्धिअपर्याप्त हैं, इतनी छोटी आयुवाले हैं। वे भी आयु का बंध करते होंगे कि नहीं करते होंगे ? आयु का बंध एक समय मात्र के लिये कभी नहीं होता, अंतर्मुहूर्त तक होता है और वह भी त्रिभाग में होता है। अभी लब्धिअपर्याप्त की जितनी छोटी आयु है अब उसका त्रिभाग जब बाकी रहे, उस त्रिभाग में भी फिर अंतर्मुहूर्त तक उनके आगामी आयु का बंध करते हैं और हो सकता है कि पूर्व कोटि की आयु बांध करके यहां आ जावे।

यह ज़रूरी नहीं कि हम लंबी आयुवाले ही लंबी आयु बांधते हैं। लब्धिअपर्याप्त जीव भी संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य में उत्पन्न हो सकता है तो करोड़ पूर्व की आयु भी बांधकर आ सकता है। क्यों ? यह इतनी परिणामों की विचित्रता है। यहां कोई जो बड़े-बड़े दिखायी दे रहे हैं, कोई सेठ हैं, राजा, महाराजा हैं, अपने परिणामों से वे अपर्याप्त में भी चले जा सकते हैं और ऐसे जीव कहां-कहां पड़े हैं ! पता नहीं हमें, तो वहां से इस पर्याय में भी आ सकते हैं। हो सकता है हम भी वहां से आये हो क्योंकि अनादि से हमारा अस्तित्व है तो इन सभी चौदह जीवसमासों में अनंतों बार जन्म-मरण करके हम आये हैं और यदि वहां नहीं जाना चाहते हैं, तो यह बात अपने हाथ की है। किसी कर्म के हाथ में यह बात नहीं है और हम कर्म से कोई पराधीन नहीं हो रहे हैं। हम स्वयं ही अपने अपराध से राग-द्वेष-मोह करते रहते हैं, कर्म स्वयं बंधते हैं। हम अपने स्वरूप का अनुभव करते हैं या अनुभव करने के लिये तत्त्वविचार भी करते हैं तो ये कर्म स्वयं दूर होते हैं। किसी कर्म ने आज तक जीव को कुछ दुःख दिया ही नहीं है। फिर भी हम तो स्वयं महंत हैं, हम तो अच्छे हैं ! क्या करें ? कर्म के कारण हम घूम रहे हैं ! अपना दोष स्वीकार नहीं करना चाहते और यह जड़ कर्म को तो कुछ अक्ल

ही नहीं है तो उसके ऊपर सारा दोष मढ़ देते हैं। क्योंकि हमें तो महंत रहना है, है न !

यहां जो बात हो रही थी-कहां से कहां चले गये ? आयु के बंध की बात चल रही थी। तो लब्धिअपर्याप्त जीव भी, उसके त्रिभाग में आयु का बंध करता है और वह भी जो यथायोग्य उसके परिणाम होते हैं उस काल में, वैसी उसकी आयु बंधती है। परंतु निर्वृत्तिअपर्याप्त जीव, उस अपर्याप्त दशा में आयु का बंध नहीं करता। पर्याप्त होने के बाद यथायोग्य जब आयु बंधनी है उसकी, तब उसका बंध हो जायेगा। *श्रोता: यह निर्वृत्ति कैसा लिखते हैं ?* यह निर्वृत्ति कैसा लिखते हैं, पता है ? निर्वृत्ति। 'व' जो है उसके नीचे भी ऐसा अर्धगोल लगाते हैं; अकेला नीचे लगायेंगे तो हम क्या कहेंगे निवृत्ति यानी रिटायरमेंट, वह नहीं; निर्वृत्ति - ऊपर भी लगाना और नीचे भी लगाना। निर्वृत्तिअपर्याप्त और यह है लब्धिअपर्याप्त। लब्धिअपर्याप्त यानी जिसको हम अपर्याप्त जीव कहते हैं जो देवों में, नारकियों में और भोगभूमि में नहीं पाये जाते क्योंकि देवों में और नारकियों में उनकी कम से कम आयु वहां तो दस हज़ार वर्ष की है ही। भोगभूमि में कम से कम आयु कितनी है किसीको पता है ? *श्रोता: तीन पल्य।* तीन पल्य तो उत्कृष्ट आयु है। *श्रोता: एक पल्य।* एक पल्य तो जघन्य भोगभूमि की उत्कृष्ट आयु है। *श्रोता: एक कोटि पूर्व प्लस एक समय।* हां, एक कोटि पूर्व प्लस एक समय। क्योंकि कर्मभूमि की उत्कृष्ट आयु करोड़ पूर्व की है और भोगभूमि की जघन्य आयु करोड़ पूर्व प्लस एक समय है। जघन्य भोगभूमि की जघन्य आयु।

श्रोता: आयु नहीं बांधते हैं तो फिर दूसरे भव में कैसे जाता है ? निर्वृत्तिअपर्याप्त जीव नियम से पर्याप्त जीव हैं वे यथायोग्य काल में आयु बांधते हैं, अपर्याप्त अवस्था में नहीं बांधते क्योंकि वे नियम से पर्याप्त होनेवाले ही हैं। पर्याप्त होने के बाद वे मरण के पहले आयु का बंध तो करेंगे न ? उनको निर्वृत्तिअपर्याप्त कब तक कहते हैं ? जब तक शरीरपर्याप्ति पूरी नहीं होती, उसके बाद उनको पर्याप्त कहेंगे। तो पर्याप्त जो सौ साल की आयु बांधकर आया है, उसके त्रिभाग में उसकी आयु बंधेगी। निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा में उसका बंध नहीं है। वह पर्याप्त होने के बाद अपनी-अपनी जितनी आयु है, उस प्रमाण में उसका त्रिभाग में बंध होगा या कदलीघात से घात होने पर बंध होगा परंतु वह कदलीघात भी निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा में नहीं होगा। हां, यह बात कहना चाहते हैं। यानी जो पर्याप्त नामकर्म लेकर आया है वह नियम से पर्याप्ति को पूर्ण करेगा ही

करेगा। *श्रोता: कहां-कहां आयु बंध नहीं होते उसकी बात की।* हां, कौन-कौन जीव कहां आयु बंध नहीं करता उसकी बात चल रही थी न यहां पर ! वैसे आगे चलकर कहां मरण नहीं होता, ये बातें आयेगी।

कल हमने ध्रुवबंधी प्रकृतियां देखी थी। जब हम मूलप्रकृतियों की बात करते हैं तो अनादि से कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधती आयी हैं लगातार-लगातार ? केवल आठ मूलप्रकृतियों की बात मैं पूछ रही हूं। *श्रोता: सात कर्म।* सात कर्म, आयु कभी-कभी बंधती है और बंधती है तब अंतर्मुहूर्त के लिये बंधती है; तो उसको हम नहीं कहेंगे वह अनादि से लगातार बंधती आयी है। परंतु ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म अनादि से ही बंधते आये हैं। इसलिये उस बंध को क्या कहेंगे ? अनादि। कब तक बंधते हैं ? जब तक उनके बंध की व्युच्छित्ति नहीं होगी तब तक बंधते हैं। मूलप्रकृतियों की अपेक्षा देख रहे हैं। मोहनीय कर्म का बंध कब तक है ? *श्रोता: दसवें तक।* दसवें तक तो उदय है, नौवें गुणस्थान तक मोहनीय का बंध है। हम उत्तरप्रकृति नहीं पूछ रहे हैं, मोहनीय मूलप्रकृति का बंध कहां तक है ? तो नौवें गुणस्थान तक है। उसके बाद जो उपशमश्रेणी चढ़नेवाले हैं, उनका मोहनीय का बंध रुक जायेगा। मोहनीय का बंध अनादि का था, उपशमश्रेणी में वह रुक गया जब वे दसवें में, ग्यारहवें में गये और वापस वहां मरकर चौथे में जायेंगे या नीचे उतरकर नौवें में आयेंगे तो मोहनीय का बंध फिर शुरू होगा। तो उसको क्या कहेंगे हम ? सादि।

ज्ञानावरण में भी सादि होगा क्योंकि उसका भी बंध ग्यारहवें में रुककर फिर शुरू होगा; दर्शनावरण में भी सादि होगा; अंतराय में भी सादि होगा; मोहनीय में भी सादि होगा। किसमें सादि नहीं होगा ? *श्रोता: वेदनीय में।* वेदनीय में नहीं होगा। क्यों ? उपशमश्रेणी चढ़े तो भी ग्यारहवें गुणस्थान तक उसका बंध है ही है। आगे भी तेरहवें तक है परंतु हमें उपशमश्रेणी में तो ग्यारहवां गुणस्थान है तो वहां भी उसका बंध है ही है। उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा उसमें कुछ फर्क तो पड़ा नहीं, वेदनीय का बंध नीचे भी है, ऊपर भी है। तो उसको हम कहेंगे वह कैसा है ? अनादि है, परंतु उसमें सादिवाला भेद नहीं होगा। जो अभव्य जीव हैं उनके तो यह बंध चलता ही रहेगा, तो उसको कहेंगे वह ध्रुव है और जो भव्य जीव हैं वे इनका अभाव करके मोक्ष चले जायेंगे, तो उसको कहेंगे अध्रुव। यह मूलप्रकृतियों की अपेक्षा हमने बात की, अब यहां उनके

भेदों की यानी उत्तरप्रकृतियों की बात चलेगी। हमने कल ध्रुवबंधी प्रकृतियां देखी थी; यह तो उत्तरप्रकृतियों की अपेक्षा इनको ध्रुवबंधी कह रहे हैं। ध्रुवबंधी किसको कह रहे हैं अभी ? अनादि से बंधती आ रही है, जब तक बंधव्युच्छित्ति नहीं होती तब तक उसका बंध होगा। यह बंधव्युच्छित्ति हमने कल देखी थी। बंधव्युच्छित्ति का अर्थ क्या है ? जिसका बंध जिस गुणस्थान में हो रहा है और उसके ऊपर के गुणस्थानों में नहीं पाया जाता, तब हम कहेंगे उसकी बंधव्युच्छित्ति वहीं पर हो गयी। कोई जीव पहले से दूसरे गुणस्थान में नहीं जाता, फिर भी जो प्रकृतियां दूसरे और ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती हैं, उनको कहेंगे वह पहले गुणस्थान में ही बंध से व्युच्छित्ति हो गयी। छठे गुणस्थान में जो बंधती थी और सातवें में नहीं बंधती हैं तो उनको क्या कहेंगे ? यह छठे गुणस्थान में उनके बंध की व्युच्छित्ति हो गयी।

इसतरह हमने पहले गुणस्थान में कितनी देखी थी ? १६। कौनसी देखी थी ? *श्रोता: मिथ्यात्व।* मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन। *श्रोता: एकेन्द्रिय।* एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय। *श्रोता: नरकगति।* नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु। ये १६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति पहले में होती है। आज पहले को ही याद करेंगे, हं, २५ को हम बाद में याद करेंगे। कुछ बहुत डिफिकल्ट नहीं है यह बात, हां। यह हमारे रोज के स्वाध्यायी यहां आते हैं सारे, इनको हमने पहले से कंडिशन डाली है आपको कुछ बोलना नहीं है। अश्विनभाई है, प्रेरणाबेन है, लक्ष्मी है, वहां वह सुशीलाबेन बैठी हैं और बहुत सारे आये हैं न ! मयंकभाई आते हैं, ये डेली स्वाध्याय के लोग हैं इनको सबको पता है। हमने इनको कहा है आपको उत्तर नहीं देना है। हम घर में भी उनको बताते हैं, जब नये लोग पढ़ने आते हैं तो आपको मौन रखना चाहिये। *श्रोता: तोडते हैं मौन।* तोडते हैं मौन ! लेकिन मौन क्यों ? क्योंकि जब उत्तर सही दे देते हैं तो फिर नये लोग चलो अभी उत्तर आ गया न ? अभी विचार नहीं करेंगे। तो नये लोगों को हम प्रोत्साहित करना चाहते हैं कि हम अटपटे कोई भी प्रश्न पूछेंगे। उसका सही उत्तर इन्हें पता है फिर भी इनको मौन रखना है। क्यों मौन रखना है मंजुबेन ? हं, ये प्रतिभाताई, कितने लोग आये हैं हमारे क्लास के ? क्योंकि जो नये लोग आते हैं वे स्वयं अपने विचार से उसका उत्तर ढूंढे और फिर उसको प्रस्तुत करें। इसलिये हमारे यहां प्रॉम्प्टिंग के लिये

मनाई है और उत्तर जिसको मालूम है - उसको उत्तर देने के लिये भी मनाई होती है। अब यहां हम देखते हैं हमने पहले गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति देखी है।

अब यहां हम उत्तरप्रकृतियों में से ये ध्रुवबंधी प्रकृतियां देख रहे थे तो उन ध्रुवबंधी में कौन-कौनसी प्रकृतियों को हमने देखा था जरा फिर से दोहराते हैं हम। *श्रोता: ज्ञानावरण की पांच।* हां देखिये, ज्ञानावरण की पांच। *श्रोता: दर्शनावरण की नौ।* दर्शनावरण की नौ। *श्रोता: अंतराय की पांच।* अंतराय की पांच। हो गये ? फिर मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजस और कार्माण; फिर स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण। हमने देखा न, अपनी-अपनी बंधव्युच्छित्ति तक उनको बंध होगा तब उनकी बंधव्युच्छित्ति कहां-कहां है ? हम देखेंगे। ज्ञानावरण के पांचों की बंधव्युच्छित्ति दसवें गुणस्थान में, दर्शनावरण नौ हैं उनमें से स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला की बंधव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में है; निद्रा और प्रचला की आठवें के पहले भाग में है और बाकी चार की दसवें गुणस्थान में है, उनका बंध तो दसवें तक चल रहा है। जहां जिसकी बंधव्युच्छित्ति है वहां तक वे प्रकृतियां निरंतर बंधेगी। अभी बंध रही हैं कि नहीं बंध रही हैं ? हम कहेंगे जो मिथ्यादृष्टि है उनके बंध रही है, जो सम्यग्दृष्टि होंगे उनके नहीं बंध रही है स्त्यानगृद्धि आदि तीन। परंतु उनके निद्रा-प्रचला भी बंध रही है कि नहीं बंध रही ? *श्रोता: बंध रही है।* अभी आठवेंवाले तो कोई यहां बैठेंगे नहीं। क्यों ? उनकी तो बात हम नहीं करेंगे। अंतराय की जब बंधती हैं तो पांचों ही बंधती हैं। कबसे बंध रही हैं ? अनादि से। कब तक बंधेगी ? बंधव्युच्छित्ति तक यानी दसवें तक बंधेगी। उसके बाद हमने मिथ्यात्व को देखा था।

मिथ्यात्व की बंधव्युच्छित्ति कब होती है ? पीछे कोई कहेंगे ? *श्रोता: पहले गुणस्थान में।* हां, पहले गुणस्थान में ! हां, अनादि से बंध हो रहा है। जीव पहला गुणस्थान छोडकर ऊपर के गुणस्थान में जाता है यानी सम्यक्त्व प्राप्त करता है तब उसके वह बंध छूट जाता है, रुक जाता है उसको कहेंगे बंध की व्युच्छित्ति हुयी। सोलह कषाय तो अलग-अलग जगह जाते हैं न, तो अनंतानुबंधी की बंधव्युच्छित्ति हमने कहां देखी थी ? *श्रोता: चौथे गुणस्थान में।* अनंतानुबंधी की बंधव्युच्छित्ति चल रही है, हमने अप्रत्याख्यानावरण की व्युच्छित्ति नहीं पूछी आपको। *अन्य श्रोता: पहले गुणस्थान में। अन्य श्रोता: दूसरे गुणस्थान में।* दूसरे गुणस्थान में। यह अनंतानुबंधी का

बंध दूसरे गुणस्थान में है और उसका उदय भी दूसरे गुणस्थान तक है। जहां उदय है, वहां कषायों के बारे में ऐसा है-जहां उदय है वहां उसका बंध है। तो अनंतानुबंधी चार के बंध की व्युच्छित्ति दूसरे में होती है। अप्रत्याख्यानावरण चार के बंध की व्युच्छित्ति यानी जहां बंध है फिर ऊपर नहीं है तो चौथे गुणस्थान में। फिर प्रत्याख्यानावरण की ? *श्रोता: पांचवें में।* पांचवें में। और संज्वलन की ? *श्रोता: नौवें में।* हां, नौवें में, एक-एक क्रोध, मान, माया, लोभ क्रम से उसके बंध की व्युच्छित्ति होगी, नौवें में ही होगी, हम तो अभी नौवें में इतना ही कहेंगे। ये मिथ्यात्व, सोलह कषाय।

भय और जुगुप्सा कब से बंध रही हैं तो अनादि से बंध रही हैं। बंधव्युच्छित्ति कहां होगी ? तब तक वह बंधती रहेगी। *श्रोता: आठवें गुणस्थान में।* आठवें गुणस्थान में। आठवें गुणस्थान तक वह बंध होता रहेगा तो इसलिये उसको कहेंगे कि ध्रुवबंधी प्रकृति है। यह क्यों सोचना ? कि जब हम उदय के साथ और सत्ता के साथ उसकी बातें देखेंगे न तो आपको उसका और ख्याल आयेगा कि किसतरह से यह मोक्षमार्ग आगे बढ़ता है। कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं ? कौनसा उदय रुकता है ? किसतरह से क्या बातें होती हैं ? हमने अभी मोहनीय की मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय-जुगुप्सा, देखे। अभी तेजस और कार्माण के बंध की बात है। अनादि से यह शरीर नामकर्म बंध रहा है। तेजस, कार्माण का अर्थ है तेजसशरीर नामकर्म और कार्माणशरीर नामकर्म; इनके बंध की बात हो रही है, उदय की नहीं क्योंकि उदय तो हम देखेंगे तेरहवें गुणस्थान तक होता है। यानी उसका कार्य तो चलेगा परंतु जो नया बंध हो रहा था वह आठवें गुणस्थान तक है, आगे रुक जायेगा। तो उसके बंध की व्युच्छित्ति आठवें में होती है। उसके बाद किसको देखा ? *श्रोता: स्पर्श, रस, गंध, वर्ण।* हां, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के भी बंध की व्युच्छित्ति आठवें में होती है। जो नहीं याद आये न वह आठवें में बता देना, हां। *श्रोता: तेजस और कार्माण एक साथ में ही बंधती है ?* हां, तेजस और कार्माण एक साथ में बंधती रहती हैं और वे ध्रुवबंधी हैं, निरंतर बंधती रहती हैं। *श्रोता: कब तक ?* अभी बताया न आठवें गुणस्थान तक; आठवें के छठे भाग तक। आठवें के छठे भाग में हमने तीस प्रकृतियां देखी थी।

निरंतर बंधने की बात कर रहे हैं अभी हम, तेजस, कार्माण देखा, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण देखा, अब कौनसे रह गये ? *श्रोता: अगुरुलघु, उपघात और निर्माण।*

अगुरुलघु, उपघात और निर्माण; तो अगुरुलघु, उपघात और निर्माण ये सभी प्रकृतियां आठवें गुणस्थान तक बंधती हैं आगे उनकी व्युच्छित्ति होती है। इसतरह से इनको क्या कहेंगे हम ? ध्रुवबंधी प्रकृतियां। जब तक इनकी बंध की व्युच्छित्ति नहीं हुयी है; अनादि से तो ये निरंतर बंध ही रही हैं, इन ॲडिशन, इसके अलावा अन्य भी बंध रही हैं परंतु इतनी तो बंधेगी ही इसमें कोई ऑप्शन नहीं है कि ये नहीं बंधेगी या कुछ और बंधेगी ऐसा कोई ऑप्शन इसमें नहीं है। इनके साथ अन्य और प्रकृतियां ऐसी हैं, बंधेगी भी या नहीं भी बंधेगी; यानी ये तो बंधेगी ही बंधेगी हर एक को और इसके साथ और कौन-कौनसी बंधेगी ? तो उसमें हो सकता है कि कुछ प्रकृतियां कुछ काल के लिये बंधेगी और नहीं बंधेगी तो नहीं भी बंधेगी और कुछ ऐसी हैं, बंधती तो हैं परंतु या तो साता बंधेगी या तो असाता बंधेगी। क्योंकि वेदनीय का बंध तो अनादि से है तो उसमें साता बंधेगी तब असाता नहीं बंधेगी; जब असाता का बंध हो रहा है तब साता नहीं बंधेगी। जिस समय में गोत्रकर्म का - उच्चगोत्र का बंध है उस समय नीचगोत्र का बंध नहीं है और जिस समय नीचगोत्र का बंध है उस समय उच्चगोत्र का नहीं है। परंतु गोत्रकर्म ॲज सच वह तो बंधता ही रहेगा। ख्याल में आती है न बात ?

श्रोता: इसको ध्रुवबंधी में नहीं लेंगे ? इसको ध्रुवबंधी में नहीं लेते। उसकी अभी हम अलग विवक्षा करेंगे। क्योंकि वह अपनी व्युच्छित्ति तक निरंतर नहीं बंध रही है। क्या उच्चगोत्र अनादि से बंध रहा है ? नहीं, कभी-कभी बंधता है। कभी-कभी नीचगोत्र भी बंधता है, कभी-कभी उच्चगोत्र भी बंधता है इसलिये उसको ध्रुवबंधी में नहीं लिया। अगर गोत्रकर्म की मूलप्रकृति की बात करेंगे तो हम कहेंगे यह ध्रुवबंधी है। गोत्रकर्म की अपेक्षा उसका ध्रुवबंध है, निरंतर बंध है, परंतु उत्तरप्रकृति की अपेक्षा यह उच्चगोत्र है या नीचगोत्र उसको हम ध्रुवबंधी में नहीं लेंगे। *श्रोता: ऐसे साता में भी लेना ?* साता-असाता; हम प्रकृतियों की बात करेंगे कौन-कौनसी प्रकृतियां आती हैं ? हमने ध्रुवबंधी ४७ देखी और अध्रुवबंधी कितनी लिखी हैं ? *श्रोता: ७३।* ७३ तो पूरी टोटल बंधयोग्य कितनी हो गयी हैं ? *श्रोता: १२०।* १२०। कौनसी दो छोड़ी १२२ में से ? *श्रोता: सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व।* सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व जो बंधने से तैयार नहीं होती। जब सबसे पहले सम्यग्दर्शन होता है तो मिथ्यात्व प्रकृति में से मिथ्यात्व का संक्रमण होकर, उसका अनुभाग घटकर ये अन्य दो प्रकृतियां तैयार होती हैं।

यहां तो हम बंधनेवाली प्रकृतियों की लिस्ट देख रहे हैं इसलिये यहां १२० का हिसाब चलेगा। १४८ में से हमने शरीर, बंधन और संघात को पंद्रह के बदले पांच में गर्भित किया था वे दस कम हो गयी। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के अगर हम विस्तार से कहेंगे तो बीस होती हैं उसके बदले मात्र स्पर्श, रस, गंध, वर्ण कह दिया तो चार हुयी यानी वहां सोलह कम हुयी। तो १४८ में से छब्बीस कम करते हैं तो १२२ होती हैं और १२२ में से जो बंधयोग्य नहीं है ऐसी दो कम कर दी तो यहां १२० का हिसाब चलेगा। नहीं तो आप कहेंगे १४८ प्रकृतियों में से बाक़ी कहां खो गयी हमारी ? किसकी चिंता है ? हमारी प्रकृतियां कहीं खो न जाये। नहीं, सब कुछ है अपने पास।

यह तो हमने ध्रुवबंधी की बात की। अब जो ध्रुवबंधी नहीं हैं उनको कहेंगे अध्रुवबंधी। अध्रुवबंधी में फिर दो प्रकार होंगे। फिर भी अध्रुवबंधी का अर्थ क्या है ? वे अनादि से निरंतर बंधती नहीं आ रही हैं, कभी बंध रही हैं और कभी नहीं भी बंध रही हैं। हम यहां उत्तरप्रकृतियों की बात कर रहे हैं इसलिये। मूलप्रकृतियों की अपेक्षा तो हमने कहा था कि सात प्रकृतियों का निरंतर बंध था, अनादि से ध्रुवबंध था। परंतु अभी हम उत्तरप्रकृतियों की बात यहां कर रहे हैं तो उत्तरप्रकृतियों में ध्रुवबंधी और अध्रुवबंधी की बात देखते हैं। अध्रुवबंधी में से जो ग्यारह हैं उसको क्या कहा है यहां ? *श्रोता: अप्रतिपक्ष।* अप्रतिपक्ष और जो अन्य जो हैं उनको कहेंगे ? *श्रोता: सप्रतिपक्ष।* सप्रतिपक्ष। अब इसका अर्थ भी देखते हैं। अप्रतिपक्ष का अर्थ क्या होता है ? जैसे तीर्थंकर प्रकृति है, तो तीर्थंकर प्रकृति किसीके बंधेगी तो बंधेगी नहीं बंधेगी तो नहीं बंधेगी; अनादि से तो बंधती नहीं आ रही है। अभी हम यहां पर जो अनादि से नहीं बंध रही है और यहां अभी बंधेगी इसकी बात करते है। हां, हमने ४७ ध्रुवबंधी की बात की।

ये जो हैं न अध्रुवबंधी ७३ उनमें सादिबंध है न, तो इनको हम क्या कहेंगे ? ये सादि हैं और अध्रुव हैं। जो अनादि से बंधती आ रही थी अपनी बंधव्युच्छित्ति तक उसको क्या कहा ? अनादि है और ध्रुव है और ये सादि है और अध्रुव है, कौनसी ? यह ऊपर लिखा है न ? अध्रुवबंधी जो हैं। अध्रुव है, निरंतर नहीं बंधती थी इसलिये वह क्या हो जायेगी ? सादि। सादि यानी कभी बंधती है कभी नहीं बंधती है। जिस काल में बंधती है तब उसको हम सादिबंध कहेंगे। जैसे आयु का बंध क्या अनादि से हो रहा था ? *श्रोता: नहीं।* नहीं, जब कभी बंधती है तो उसको कहेंगे इसका बंध अभी शुरू

हुआ, नया, तो उसको हम सादि कहेंगे और अंतर्मुहूर्त में समाप्त हो जायेगा तो अध्रुव कहेंगे उसको, सादि और अध्रुव, हां। तो ये जो ७३ प्रकृतियां हैं वे अध्रुव हैं और उसमें सादिबंध भी होता है और अध्रुव भी बंध भी होता है। यानी कभी उसका बंध होगा भी और कभी नहीं भी होगा।

अब इसमें उन्होंने दो भेद कर दिये हैं। ये जो ११ प्रकृतियां हैं वे अप्रतिपक्षवाली हैं। देखो, सप्रतिपक्ष और अप्रतिपक्ष किसको कहना ? जैसे, जो गति नामकर्म है वह तो निरंतर बंध ही रहा है। परंतु मनुष्यगति निरंतर नहीं बंध रही, देवगति निरंतर नहीं बंध रही है। तो मिथ्यादृष्टि है तो सुबह पूजन स्वाध्याय करता है तो देवगति बांध रहा था, फिर व्यापार में चला जाता है बहुत लोभ परिणाम करता है तो नरकगति बांधता है। कभी मायाचारी करता है तिर्यंचगति बांधता है तो ऐसे ही... *श्रोता: झगडा करता है।* झगडा करता है ? इसतरह ये चारों गतियों का बंध हो रहा है उसके। गति की बात चल रही है आयु की नहीं। आयु और गति में बहुत कन्फ्यूजन चलता है, लोगों के प्रश्न भी बहुत आते हैं इसलिये मैं पहले से ही उसका उत्तर देती हूं। यह नरकगति तो बंधती है मिथ्यात्व अवस्था में; मिथ्यात्व अवस्था में ऐसा अपशब्द क्यों लगा रहे हैं ? हमने देखा है नरकगति के बंध की व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में होती है। जो पहले गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानों में है उसको नरकगति का बंध नहीं होगा। यानी पहले गुणस्थानवालों को हर समय चार गतियों में से कोई न कोई एक गति बंधेगी ही बंधेगी। ऐसा एक समय भी नहीं जायेगा कि गति का बंध नहीं हो रहा। हां, आठवें गुणस्थान में जब देवगति का भी बंध रुक जायेगा, उसके ऊपर गति का बंध नहीं होगा। अन्य नामकर्म बंधेंगे, गति नामकर्म नहीं बंधेगा। तो इसलिये हम देख रहे हैं कि चार गति में से कोई न कोई एक गति का बंध होगा तो उसको हम कहेंगे यह प्रतिपक्षवाली प्रकृतियां हैं। उस ग्रुप में से कोई न कोई एक बंध ही रही है। चार गति में से किसी एक गति का बंध हो रहा तो हम कहेंगे ये प्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं।

जाति पांच हैं, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक की; उनमें से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पंचेन्द्रिय कोई न कोई जाति हर समय बंधेगी ही बंधेगी तो हम उसको कहेंगे ये भी प्रतिपक्ष प्रकृति हैं। मिथ्यादृष्टि जीवों को तो बहुत ऑप्शन्स हैं - एकेन्द्रिय का भी बंध कर सकता है; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय का भी और पंचेन्द्रिय

का भी। परंतु जब सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो हमने देखा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति के बंध की व्युच्छित्ति पहले ही गुणस्थान में होती है। देखो, कितना फायदा ही फायदा है ! जरा देखो न, सम्यक्त्व बहुत अच्छा है ! आप कहेंगे फिर हमें संसार के मजे लूटने नहीं आयेंगे। वह भी ऑप्शन है ! एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लो, फिर मिथ्यात्व में आ जाओ, अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक और भटको, संसार के मजा लूटो और फिर चले जाओ मोक्ष ! *श्रोता: जाना ही पड़ेगा !* जाना ही पड़ेगा, वह जाना ही पड़ेगा और जिसको ऐसा लगता है हम चले जायेंगे फिर संसार की सारी अच्छी-अच्छी बातें कौन भोगेगा ? तो वह भी ऑप्शन खुला है - यहीं पर भटकते रहो, सम्यक्त्व प्राप्त मत करो। सोचना पहले बराबर! सम्यक्त्व प्राप्त करोगे तो मोक्ष जाना ही पड़ेगा, हां, इसलिये पहले सोच लेना बराबर। तो यह जो पहले गुणस्थानवाला, पांचों जाति; इस जाति नामकर्म को हम क्या कहेंगे ? प्रतिपक्षवाली। गति है, जाति है, शरीर है। शरीर में भी क्या होता है ? या तो औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग का बंध करता है या वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग का बंध कर रहा है या ? या नहीं, वह आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का बंध वैक्रियिक के साथ हो भी सकता है परंतु वह अप्रतिपक्षी हैं। इसका वह बंध करता है यानी वे भी ऑप्शनल हो जायेगी। शरीर नामकर्म बंधता तो है परंतु उसमें भी ऑप्शन्स हो सकते हैं। तो इसलिये भी क्या कहेंगे उसको हम ? *श्रोता: प्रतिपक्ष।* प्रतिपक्ष; प्रतिपक्ष में औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग और वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग यह जोड़ी लेना, परंतु जो आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग हैं उनको अप्रतिपक्ष कहा है। औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, और वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग इनको प्रतिपक्ष में रखा।

श्रोता: सप्रतिपक्ष लेना न ? सप्रतिपक्ष का ही अर्थ होता है प्रतिपक्षवाली प्रकृति। 'स' लगाओ या नहीं लगाओ एक ही बात है। यहां लगाया है न ? सप्रतिपक्ष यानी प्रतिपक्षवाली प्रकृति; प्रतिपक्ष सहित वह सप्रतिपक्ष; प्रतिपक्ष से रहित वह अप्रतिपक्ष। जैसे हम प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित कहते हैं न ? उसको प्रतिष्ठित भी कहो या सप्रतिष्ठित भी कहो, एक ही अर्थ है कि नहीं ? मालूम है न क्या होता है प्रतिष्ठित ? जिसके पास बहुत पैसा है वह प्रतिष्ठित है ? देखो, जिस प्रत्येक शरीर के आधार से, प्रत्येक शरीर यानी एक शरीर और एक जीव, उस शरीर के आधार से जहां निगोदराशि रहती है, निगोद

शरीर रहते हैं उनको सप्रतिष्ठित या प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरवाले जीव कहते हैं। ऐसे कौनसे हैं आपको मालूम है ? *श्रोता: आलू-प्याज।* आलू-प्याज ही याद आता है कि यह शरीर भी याद आता है ? ये भी सारे प्रतिष्ठित हैं। औदारिकशरीर जो तिर्यंच और मनुष्यों के जो औदारिकशरीर हैं ये सारे कैसे हैं ? सप्रतिष्ठित हैं। केवल पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, जलकायिक और वायुकायिक के शरीर के आधार से निगोद नहीं रहते हैं। हां, वनस्पतियों के आधार से रहते हैं। वहां उनमें दो प्रकार हैं सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। *श्रोता: तो हम भी प्रतिष्ठित हैं ?* हां, बिलकुल, यह सारे कैसे हैं हम ? प्रतिष्ठित, सप्रतिष्ठित ! क्यों ? *श्रोता: पैसेवाले !* यह मनुष्यशरीर कैसा है ? अरे ! निगोद से भरा है। हर समय अनंत जीव उत्पन्न हो रहे हैं और अनंत इसमें से चले जा रहे हैं। हां तो, देखो यह सारी टर्मिनॉलॉजि यहां के बहुत सारे लोग जानते हैं, क्योंकि यह विषय जीवकाण्ड में बहुत बार हुआ है यहां पर। इसलिये ये सारे फटाफट उत्तर भी दे रहे हैं। अपना यह विषय यहां चला है। जीवसमास आदि की बात यहां हुयी है।

यहां जो हम देख रहे हैं प्रतिपक्ष यानी सप्रतिपक्षवाली और अप्रतिपक्षवाली किसे कहना ? वे कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? उसकी लिस्ट तो बाद में देखेंगे। किसको कहना यह पहले समझ में आना चाहिये। कि जो बंधती हैं तो बंधती है उसको कहेंगे अप्रतिपक्षवाली है। जैसे आयु कभी-कभी बंधती है; ऐसा जरूरी नहीं कि चार में से आयु बंधती रहती है। जब बंधती है तो कोई एक आयु बंधती है। वह परिणाम ऐसे हैं कि उस परिणाम के काल में मनुष्यायु बंध रही है अंतर्मुहूर्त तक; उसमें ऑप्शनल नहीं है। तो यह ११ प्रकृतियां कौनसी हैं जो अप्रतिपक्षवाली हैं ? हम बतायेंगे अभी आपको। यानी उनका जिस काल में बंध होता है उस काल में अपना-अपना बंध होता है। ऐसा नहीं कि कभी यह बंधेगी, कभी वह बंधेगी ऐसी बात नहीं है। तो उनके नाम हैं हां, यह जो तीर्थंकर प्रकृति है, अनादि से तो नहीं बंध रही थी और उसकी कोई प्रतिपक्षवाली प्रकृति नहीं है। *श्रोता: गाथा ?* १२५ नंबर की गाथा भी पढ़ेंगे। देखो, यहां उत्तरप्रकृतियों में यह जो अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्ष कहते हैं उसको अप्पडिवक्खा और सप्पडिवक्खा कहा है। यह गाथा हम बाद में पढ़ेंगे अगले लेक्चर में, अभी तो अपना समय हो गया।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१४. बंध - सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है। जिसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है उसके आधार से यहां अपना स्वाध्याय चल रहा है। बंध, उदय और सत्त्व का प्रकरण चल रहा है, उसमें अभी अपनी प्रकृतिबंध की बात चल रही थी। उत्तरप्रकृतियों में ये सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव की बात चल रही थी। सादि किसको कहते हैं कि जो अनादि से नहीं बंध रही थी और जिसका नया बंध शुरू हो जायेगा उसको कहेंगे सादि। जो अनादि से ही बंधती आ रही है उसको कहेंगे अनादिबंध। ये दो हो गयी और ध्रुव, अध्रुव किसको कहना ? जो अनादि से ही बंध रही है, जब तक बंधव्युच्छित्ति नहीं होती तब तक जो बंधेगी उसको कहेंगे ध्रुवबंध। जो अनादि से तो नहीं बंधती आ रही, कभी उसका बंध शुरू हुआ है और फिर भी उसका बंध मिट जाता है बाद में फिर भी शुरू हो सकता है उसको कहेंगे अध्रुव। देखो, इसके बारे में हम गाथा पढ़कर उसका अर्थ देखेंगे। १२३ नंबर की जो गाथा है कर्मकाण्ड की, उसमें उनके लक्षण बताते हैं।

सादी अबंधेबंधे सेढिअणारुढगे अणादी हु।
अभव्वसिद्धम्हि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो॥ १२३॥

सादि किसको कहना ? **अबंधेबंधे** जो पहले नहीं बंध रही थी और बाद में जो बंधना शुरू हो जायेगी तो उसको कहेंगे सादिबंध। **सेढिअणारुढगे अणादी हु। सेढि** का यहां अर्थ है श्रेणी लिखा है परंतु वह उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी की बात नहीं है 'ऊपर का गुणस्थान' इतना ही इसका अर्थ लेना। तो जहां जिसकी व्युच्छित्ति होती है हमने क्या देखा है ? ये अस्थिर, अशुभ वगैरह की व्युच्छित्ति कहां होती है ? *श्रोता: छठे गुणस्थान में।* छठे गुणस्थान में, तो ऊपर के गुणस्थानों में जायेगा तो उसको हम कहेंगे श्रेणी। जैसे अन्य जो कषाय हैं जो चौथे गुणस्थान में बंधती हैं ऊपर नहीं बंधती हैं। अप्रत्याख्यानावरण के लिये **सेढिअणारुढगे अणादी हु** का अर्थ क्या है ? वह ऊपर के पांचवें आदि गुणस्थानों में नहीं गया है तब तक उसका बंध निरंतर चल रहा है। अनादि से ये बंधता आया है। कौनसा ? अप्रत्याख्यानावरण की बात हम कर रहे हैं। सम्यक्त्व भी प्राप्त किया तो भी बंध रहा है परंतु जो सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद पांचवें में या

ऊपर के गुणस्थानों में चला जायेगा तो उसके अप्रत्याख्यानावरण का बंध रुक जायेगा। जिसने अपने बंधव्युच्छित्तिवाले गुणस्थान के ऊपर के गुणस्थान प्राप्त नहीं किये हैं, तब तक उसको क्या कहेंगे ? वह अनादि का बंध है। ऊपर के गुणस्थानों में जाकर फिर लौटकर नीचे आयेगा तो उसको हम सादि कहेंगे। क्योंकि जब पांचवें, छठे, सातवें, आदि ऊपर के गुणस्थानों में अप्रत्याख्यानावरण का बंध नहीं हो रहा था। किसीने मुनि अवस्था प्राप्त की है और फिर नीचे के गुणस्थानों में आ जाये तो उस बंध को क्या कहेंगे हम ? सादिबंध कहेंगे। इसलिये यहां 'श्रेणी में' कहा है वह उपशमश्रेणी की बात नहीं है, ऊपर के गुणस्थानों में ऐसा इसका अर्थ समझना।

अभव्वसिद्धम्हि ध्रुवो जो अभव्यसिद्धिक हैं; ये अभव्यसिद्धिक और भव्यसिद्धिक क्या होते हैं ? सिद्ध पर्याय प्रकट करने की योग्यता ही जिनमें नहीं है, उसकी पूर्व अवस्था में सम्यग्दर्शन भी जिनके नहीं हो सकता, उसको कहेंगे अभव्यसिद्ध। कौनसे कर्म के कारण ये जीव अभव्य होते हैं ? आपको पता है ? किसी भी कर्म के कारण ये अभव्य या भव्य नहीं कहलाते या नहीं होते। उस जीव की ऐसी ही योग्यता है कि वह कभी भी तीन काल में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करेगा। देखो, पंचलब्धि में हमने देखा था उसके तो क्षयोपशमलब्धि भी हो सकती है, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि भी प्राप्त होगी, प्रायोग्यलब्धि तक जायेगा। ये सारी इतनी ४६ प्रकृतियों का बंध अंतर्मुहूर्त के लिये रुक जायेगा। जिसको बंधापसरण कहते हैं परंतु वह करणलब्धि में प्रवेश नहीं करेगा क्योंकि उसकी वैसी योग्यता है ही नहीं। पांच समवाय लगते हैं न उसमें ? वह स्वभाववाला, स्वभाव में स्वभावगत उसकी - उस द्रव्य की वैसी योग्यता ही नहीं है। उसके अनादि से लेकर अनंतकाल तक की पर्यायों का जो क्रम है उसमें कहीं भी उसको करणलब्धि और सम्यग्दर्शन के परिणाम हो ही नहीं सकते। तो ऊपर की सिद्ध अवस्था प्राप्त करने का सवाल ही कहां है ? उनको कहेंगे अभव्यसिद्ध।

जिन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं उनकी योग्यता तो है परंतु ऐसे भी भव्य हैं कि जो वर्तमान काल में कोई पुरुषार्थ नहीं कर रहे। कितने ही ऐसे भी भव्य हैं कि दूर अनंतकाल तक भी उनको सम्यक्त्व नहीं होगा और ऐसे भी भव्य हैं कि जो तीन काल में कभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मोक्ष अवस्था नहीं प्राप्त करेंगे। योग्यता पड़ी है परंतु वे ऐसे ही हैं। उनको अभव्यसम भव्य कहेंगे, अभव्य जैसे भव्य। तो उनके लिये क्या

कहा ? उन प्रकृतियों का बंध होता ही चला जायेगा क्योंकि ऊपर के गुणस्थानों में चढ़ने का कोई सवाल ही नहीं है, अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही चलता रहेगा। इसलिये हम उनको कहेंगे यह ध्रुवबंध है। भव्य जीवों में क्या होता है ? वे सम्यक्त्व भी प्राप्त करेंगे, ऊपर के गुणस्थानों में जायेंगे। तो इन प्रकृतियों का बंध कहीं न कहीं अपनी व्युच्छित्ति पर रुक जायेगा। उसको हम कहेंगे वह अध्रुवबंध है। इसतरह बंध के सादि, अनादि ऐसे दो भेद होते हैं और ध्रुव, अध्रुव भेद होते हैं। ऐसी दो-दो की जोड़ी करना। सादि के साथ अनादि लगाना और ध्रुव के साथ अध्रुव लगा लेना। अब यह तो उन्होंने सामान्य कथन किया है।

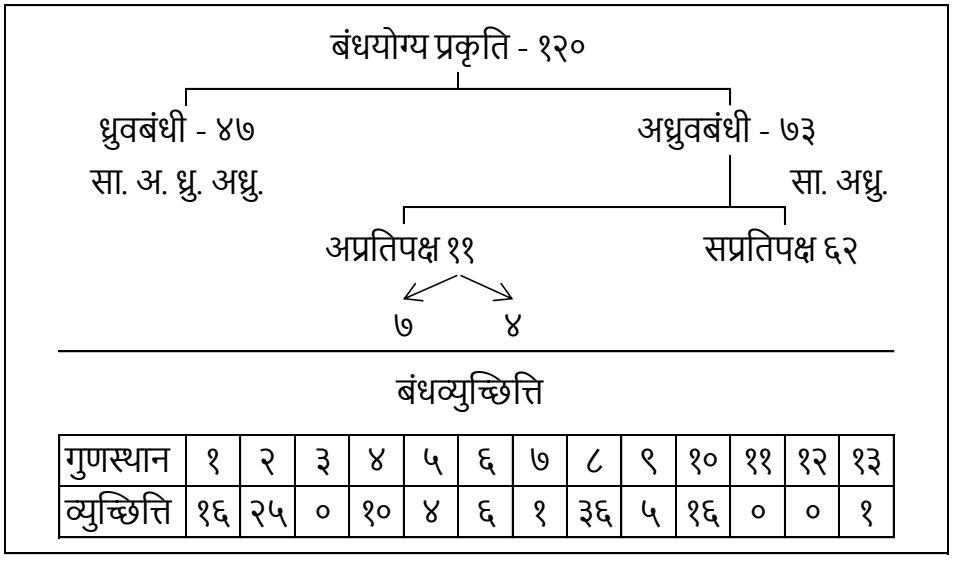
यह जो प्रश्न था *तीर्थंकर प्रकृति में सादि और अध्रुव कैसे होता है ?* यही होता है कि अनादि से तो नहीं बंध रही थी क्योंकि मिथ्यादृष्टि के तो बंधती नहीं है, सम्यग्दृष्टि के बंधती है। जब से बंध शुरू होगा उसको सादि कहेंगे और क्या, उसका अनंतकाल तक बंध होता रहेगा क्या ? क्या होगा ? बंध रुकेगा और ऊपर के गुणस्थानों में नौवें में चले जायेंगे तो बंध रुक जायेगा। हां, तो उसको हम अध्रुव भी कहेंगे।

श्रोता: कार्माणशरीर प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति यानी कार्माणशरीर नामकर्म का बंध आठवें गुणस्थान तक होता है। आठवें गुणस्थान में कहा है, तो नौ और दस गुणस्थान में जो अभी कर्म का बंध हो रहा है वह कैसे ? प्रश्न में ही उनका कन्फ्यूजन ख्याल में आता है। ठीक है क्योंकि यहां तो बंध की बात चल रही है। जो नया बंध होता है उसमें निमित्त कौन है ? पुराने कर्मों का उदय। उदय कहां रुका है ? ये नौवें, दसवें गुणस्थानों में जो कर्मों का बंध हो रहा है वहां कषाय भी है, योग भी है। तेजसशरीर और कार्माणशरीर नामकर्म का उदय तो चल रहा है, वह तो तेरहवें गुणस्थान के अंत तक चलेगा। तेजसशरीर नामकर्म का उदय और कार्माणशरीर नामकर्म का उदय तेरहवें के अंत तक रहेगा। उसके कारण वहां योग का सद्भाव भी है और जहां योग है वहां प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध भी हैं। कषाय कहां तक है ? दसवें तक है। वहां स्थिति और अनुभाग भी बंधेंगे। स्थिति का बंध और अनुभाग का बंध दसवें तक है; अकेला प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध वह ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें में भी होता है। इसलिये इनका बंध रुक गया है परंतु जो पूर्व में बंधा हुआ, सत्ता में पड़ा है उसका उदय तो तेरहवें तक चलेगा। इसलिये आगामी काल में नये कर्मों का बंध होने में कोई विरोध है नहीं।

दूसरा *प्रश्नः भोगभूमि की तीन पल्य की आयु सम्यग्दृष्टि ही बांधता है क्या ?* नहीं, मिथ्यादृष्टि ही बांधता है। क्योंकि हमने देखा था अड़तालीस भव मनुष्य के जो हमने गिने थे, लगातार अड़तालीस भव; ये मिथ्यादृष्टि के ही गिने थे तो उसमें सैंतालीस पूर्वकोटि और अड़तालीसवां भव तीन पल्यवाला लिया था। हमने यह भी देखा था कि मनुष्य मरकर यहां तीन पल्यवाली उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हो सकता है और वहां जानेवाले तिर्यंच भी वहां उत्पन्न हो सकते हैं कि नहीं हो सकते हैं ? इसी प्रश्न के लिये मैं दूसरा प्रश्न पूछ रही हूं। क्या तिर्यंचों को तीन पल्य की भोगभूमि की आयु बंधती है कि नहीं बंधती ? *श्रोताः बंधती है।* यानी तिर्यंच मरकर वहां तीन पल्यवाला तिर्यंच भी हो सकता है और तीन पल्यवाला मनुष्य भी हो सकता है। तो तिर्यंच मरकर तीन पल्य में उत्पन्न होनेवाला तो मिथ्यादृष्टि ही होता है। भोगभूमि की आयु बांधने के बाद सम्यक्त्व प्राप्त करके मनुष्य यदि वहां सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न हो तो उसके लिये क्षायिक की कंडिशन है। कोई यहां का मनुष्य तीन पल्यवाली भोगभूमि में जन्में, सम्यक्त्व के साथ हो, तो सम्यक्त्व के साथ जन्मनेवाले को क्षायिक सम्यग्दर्शन होना आवश्यक है उसके बिना वह सम्यक्त्व के साथ नहीं जन्म सकता। इसका अर्थ क्या है ? मिथ्यात्व के साथ जन्म ले सकता है। यानी मिथ्यादृष्टि के ही यह तीन पल्य की भोगभूमि की आयु बंधेगी और सम्यग्दृष्टि की बात चल रही है तो सम्यग्दर्शन होने के बाद तो भोगभूमि की आयु बांधेगा ही नहीं नियम से। क्यों ? सम्यक्त्व होने के बाद देवायु का ही बंध करेगा। सम्यक्त्व होने के बाद की बात है। ये जो तीन पल्य की भोगभूमि की आयु बांधी थी वह मिथ्यादृष्टि ने ही बांधी थी। भले बाद में सम्यक्त्व प्राप्त करके वहां जा सकता है। बंध किसने किया था ? मिथ्यादृष्टि मनुष्य या संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच ने ही किया था। सम्यग्दृष्टि मनुष्य या सम्यग्दृष्टि तिर्यंच देवायु ही का बंध करता है, उनके मनुष्यायु, तिर्यंचायु बंधती ही नहीं। यदि वह बंधेगी तो नीचे के यानी पहले या दूसरे गुणस्थानों में बंधेगी। ये जो भोगभूमि का बंध कर रहा है कोई मनुष्य उसका अर्थ क्या है ? वह मिथ्यादृष्टि है, हां, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मनुष्य, मनुष्यायु का बंध नहीं करता, ना ही मनुष्यगति का बंध करता है।

प्रश्नः क्या हमें संज्वलन कषाय के सर्वघाति स्पर्धक के साथ देशघाति स्पर्धक का उदय भी है, क्योंकि देशघाति प्रकृति में दोनों स्पर्धक पाये जाते हैं ? बिलकुल है,

परंतु वहां फल किसका मिलेगा ? सर्वघाति प्लस देशघाति का उदय हो रहा है तो सर्वघाति का फल हो रहा है, देशघाति निकल जा रहे हैं। सर्वघाति वहां प्रेझेंट है - मौजूद है तो उसीका उदयरूप फल मिलेगा। उसीकी ही बात चलेगी। जीव को वेदन उसीका होगा यानी वहां तो सकल संयम का पूरा घात ही पाया जायेगा। *प्रश्न: ध्रुवबंधी प्रकृति क्या अभव्य में ही घटित होगी ?* अभव्यों में ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध अनादि और ध्रुव होगा, भव्यों में हम उनको अध्रुव कहेंगे और अन्य जो प्रकृतियां हैं कौनसी ? जो प्रतिपक्षवाली हैं उनको भी हम अध्रुव कहेंगे। नहीं समझे ? देखो, यह तो भव्य-अभव्य की अपेक्षा हम ध्रुव-अध्रुव कहते हैं। वैसे जो प्रतिपक्षवाली प्रकृति हैं जैसे सातावेदनीय और असातावेदनीय, तो कभी साता का बंध होता है तो लगातार कहां तक, कितने काल तक ? तो कहेंगे अंतर्मुहूर्त तक, फिर वह पलटकर असाता का बंध होने लगेगा। कभी साता का, कभी असाता का जब तक बंधता है तब तक बंधेगा, जब बंध रुक गया तो हम उसको ध्रुव कैसे कह सकते हैं ? तो ये अध्रुव, ध्रुव, तो उसमें किसमें ध्रुव की बात की हमने ? हां, देखो बोर्ड पर लिखा है यहां, ये जो ध्रुवबंधी ४७ देखी थी हमने, इनको सादि इसलिये कहा था कि बंधव्युच्छित्ति होने पर, ऊपर के गुणस्थानों में जाकर लौटा है इसलिये उनको सादि कहा था।



गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
व्युच्छित्ति	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१

अनादि इसलिये कहा कि जब तक वह बंधव्युच्छित्ति नहीं होती तो अनादि से

इनका बंध पाया जाता है इसलिये इनको अनादि कहा। यहां पर ध्रुव इसलिये कहा कि बंधव्युच्छित्ति नहीं होती है तब तक वे लगातार बंधती आयी हैं इसलिये उनको ध्रुव कहा और जब बंधव्युच्छित्ति हो जाती है तो ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंध रही है इसलिये उनको अध्रुव कहा। तो इसके बारे में जो ध्रुव कहा ध्रुव कौनसे जीवों में होगा ? अभव्यों में क्योंकि वे ऊपर के गुणस्थानों में नहीं जायेंगे और अध्रुव होगा सम्यग्दृष्टियों में जो उस गुणस्थान के ऊपर चले गये उनके लिये। तो यह जो नियम है ध्रुव और अध्रुव का अभव्य और भव्यों में, यह तो इन ४७ ध्रुवबंधी प्रकृतियों में घटित होगा।

अन्य जो ७३ प्रकृतियां हैं उनमें भी जो ध्रुव-अध्रुव हम घटित करेंगे तो वहां तो सभी प्रकृतियां अध्रुव ही हैं। क्यों ? क्योंकि वे तो कभी बंधती हैं, कभी नहीं बंधती हैं और जो कुछ बंधनेवाली हैं उनमें भी कोई सप्रतिपक्षवाली हैं। ये सप्रतिपक्ष-अप्रतिपक्ष क्या है उसको देखेंगे। यहां तो वे सादि हैं और अध्रुव हैं। देखो, यहां ये ७३ प्रकृतियों के बारे में क्या लिखा है ? अध्रुवबंधी हैं यानी ध्रुवबंधी हैं ही नहीं हैं, मूल में ही वे अध्रुवबंधी हैं इसलिये उनको अध्रुव कहेंगे। इसलिये अभव्य होने की कोई जरूरत नहीं है। भव्यों के लिये भी ये अध्रुवबंधी कहलायेगी, अभव्यों के लिये भी ये अध्रुवबंधी कहलायेगी।

सातावेदनीय का बंध कुछ समय तक चलेगा, मान लेते हैं एक समय के लिये बंधा, दूसरे समय में असातावेदनीय बंधा या जो अंतर्मुहूर्त तक बंधा, जो कुछ बंधा तो उसके बाद असाता बंध रही है यानी इसको क्या कहेंगे अध्रुवबंधी और कैसी है वह ? सादि है वहां लिखा है सा और अध्रु यानी सादि है और अध्रुवबंधी है। कौनसी ? ये जो ७३ प्रकृतियां हैं। ये ७३ प्रकृतियों का विभाजन देखेंगे अभी हम। ७३ प्रकृतियों में हमने और दो भेद किये हैं, कैसे ? ग्यारह जो हैं वे अप्रतिपक्षवाली हैं, उसके कोई प्रतिपक्षवाली प्रकृति नहीं है। ऐसा नहीं कि ग्रुप में से कोई एक बंध रही है; बंधेगी तो बंधेगी, नहीं बंधेगी तो नहीं बंधेगी। जीव के परिणाम के अनुसार उसका बंध हो भी सकता है नहीं भी हो सकता। ये बासठ प्रकृतियां जो अन्य सप्रतिपक्षवाली निकाली हैं वैसी ये प्रकृतियां नहीं हैं। जब हम प्रकृतियों के नाम देखेंगे तो यह बात आपको अच्छी तरह से ख्याल में आ सकेगी। तो ये ग्यारह प्रकृतियां कौनसी हैं उसकी भी बात हम आगे देखते हैं। उसके पहले हमने ये जो ४७ प्रकृतियों के नाम देखे थे फिर से उसकी गाथा भी पढ़ेंगे और गाथा का अर्थ भी देखेंगे। देखो १२४ नंबर की गाथा।

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ।
सत्तेत्तालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा॥ १२४॥

अभी हमने ४७ प्रकृतियां कौनसी देखी हैं ? ध्रुवबंधी प्रकृतियों की बात है, तो ये कौन-कौनसी हैं ? **घादिति** यानी तीन घातिकर्म, कौनसे ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय उन्नीस हो गयी न। **मिच्छकसाया** यानी मिथ्यात्व और कषाय, एक मिथ्यात्व और सोलह कषाय। **भयतेजगुरु** और उसके आगे लिखा है **दुग** यानी भय की दो, कौनसी दो ? भय और जुगुप्सा, तेज की दो यानी तेजस और कार्माण और **गुरुदुग** यानी अगुरुलघु और उपघात ये दो। देखो, ये आचार्यों ने एक छोटी गाथा में कितनी सारी ४७ प्रकृतियों को समा दिया। **णिमिण** यानी निर्माण और **वण्णचओ** यानी वर्णचतुष्क यानी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श। *श्रोता: **णिमिण** यानी ?* **णिमिण** यानी निर्माण। तो **णिमिण** का अर्थ होता है निर्माण और वर्णचतुष्क यानी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श। आप कहेंगे उलटा क्यों कह रहे हैं ? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण क्यों नहीं कहते ? यहां भी जब हमने नामकर्म की लिस्ट देखी थी तो पहले वर्ण, फिर गंध, फिर रस, फिर स्पर्श ऐसा क्यों ? जब प्रदेशों का बटवारा आयेगा न ? तब इसका उत्तर मिलेगा, हां, क्योंकि प्रदेशों का बटवारा इस क्रम से होता है नामकर्म में उलटे क्रम से होता है। अभी विषय निकला तो थोड़ा बताते हैं फिर यथासमय उसकी बात चलेगी।

ज्ञानावरण में बटवारा कैसे होता है ? इसका देशघाति द्रव्य तो चारों में और सर्वघाति द्रव्य पांचों प्रकृतियों में जायेगा। सबसे अधिक से अधिक माल मतिज्ञानावरण को जाता है, फिर श्रुतज्ञानावरण को, फिर अवधिज्ञानावरण को, फिर मन:पर्ययज्ञानावरण को। ये तो देशघाति प्रकृतियां हैं; सर्वघाति द्रव्य में तो अनंतवां भाग चला जाता है जो पांचों ज्ञानावरण में इसी क्रम से दिया जायेगा। इसलिये हम पहले मतिज्ञानावरण, फिर श्रुतज्ञानावरण को देखते हैं यानी उसका जिस ऑर्डर में हम नाम लेते हैं उसी ऑर्डर में उसका बटवारा होता है। दर्शनावरण में भी जिस ऑर्डर से नाम लेते हैं उस ऑर्डर से बटवारा होता है। परंतु नामकर्म में उलटा बटवारा होता है। हां, अभी एकेन्द्रिय संबंधी तेईस प्रकृतियां बंध रही हैं तो शुरू से लेकर अंत तक जितनी प्रकृतियां बंधेंगी; कहां कितनी बंधती हैं अभी वह अपना विषय नहीं है, जब वह विषय आयेगा तब बतायेंगे। वहां अंत की प्रकृति से लेकर शुरू की प्रकृति तक, उलटे क्रम

से; पहले अधिक फिर थोड़ा कम, फिर थोड़ा कम, फिर थोड़ा कम ऐसे प्रदेशों का यानी परमाणुओं का बटवारा होता है। तो उलटे क्रम से इन चार में पहला नंबर आता है स्पर्श का, फिर रस का, फिर गंध का, फिर वर्ण का। इसलिये हम जब नाम लेते हैं तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इसतरह से नाम लेते हैं। यहां करणानुयोग में तो ऐसी विशेषता है कि जिस क्रम से वहां बताया है उस क्रम में कुछ न कुछ वहां विशेषता होती है। उसी क्रम से क्यों कहे ? कुछ कारणवश कहते हैं। ऐसा नहीं कि जो मन में आये उसका क्रम लगा दिया। हम आगे चलकर देखेंगे प्रदेशों का बटवारा कैसे होता है।

उन्होंने ये ४७ नाम लिये हैं यहां पर **सत्तेत्तालधुवाणं**, ये जो ४७ प्रकृतियां हैं उनको कहेंगे ध्रुव प्रकृति। क्यों ? अनादि से बंध रही हैं। जब तक बंधव्युच्छित्ति नहीं होती, तब तक बंधती रहती हैं। इसलिये उनका नाम है ध्रुव। **चदुधा**, चदुधा यानी चार प्रकार का। कौनसे चार प्रकार का ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चार प्रकार का बंध पाया जाता है। **सेसाणयं तु दुधा** और शेष जो प्रकृतियां हैं, कितनी निकाली हमने ? ७३ प्रकृतियां अलग निकाली हैं। उनका **दुधा** यानी दो प्रकार का बंध होता है। कौनसे दो प्रकार ? सादि और अध्रुव, यहां तक हमने देखा। अब ये कौन-कौनसी हैं ? ये जो सादि और अध्रुव ७३ प्रकृतियां बतायी हैं, उसमें फिर हमने दो ग्रुप किये; ग्यारह हैं उनको कहा अप्रतिपक्ष और जो बाकी बासठ हैं उनको कहा सप्रतिपक्ष। अब गाथा में उसको पढ़ेंगे, कौनसी है ? १२५ नंबर की गाथा है।

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्वआऊणि।
अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी॥ १२५॥

यानी जो शेष यानी जो ७३ बाकी हैं न ! शेष यानी अभी जो रिमेनिंग जो बची हुयी ७३ प्रकृतियां हैं, उनमें से **तित्थाहारं** यानी तीर्थंकर प्रकृति **आहारं** यानी आहारकद्विक; आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग तीन हो गयी न। फिर **परघादचउक्क** परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत ये चार **परघादचउक्क** और **सव्वआऊणि** यानी चारों ही आयु। कितने हुये ? ग्यारह हुये न ! तीर्थंकर, आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, तीन हो गये और फिर परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत और चार आयु - इनको कहेंगे अप्रतिपक्ष। बंधेगी तो बंधेगी और नहीं तो नहीं बंधेगी। उसकी भी विशेषता देखेंगे। अन्य कितनी रहती हैं अभी ? बासठ। उनको

क्या कहेंगे ? सप्रतिपक्ष, हां। देखो, टीका में पढ़ते हैं। ये जो ४७ प्रकृति छोड़कर जो अवशेष ७३ प्रकृतियां रहती हैं उनमें से **तीर्थंकर, आहारकद्विक, परघातादि चार** और **आयु चार - ये ग्यारह प्रकृति अप्रतिपक्ष हैं - इनके कोई प्रतिपक्ष नहीं है।** प्रतिपक्ष यानी अपोझिट इसके बिना दूसरी कुछ बंध सकती है ऐसा इसमें है ही नहीं। तो कहते हैं **इन प्रकृतियों का जिस काल में बंध होता है, उस काल में अपना-अपना बंध होता है।** ऐसा नहीं कि साता का होगा या असाता का होगा तो उसको प्रतिपक्ष कहेंगे। यहां तीर्थंकर प्रकृति बंध रही है, तब बंध रही है; ऐसा नहीं कि उसके बदले में दूसरी कुछ बंध सकती है। ऐसा नहीं हो सकता। **जिस काल में बंध नहीं होता - उस काल में नहीं** होगा। आहारकद्विक का बंध हो रहा है तो हो रहा है, नहीं हो रहा है तो नहीं हो रहा है। उसके बदले में औदारिक बंध रहा है ऐसा नहीं है। वह तो जिस विशुद्धि के साथ जिन परिणामों में बंध योग्य है उन परिणामों में उनका बंध होता है। **जैसे तीर्थंकर का बंध जिस काल में होना है उस काल में तीर्थंकर का बंध होता है, नहीं होता है तब नहीं होता**। हमने देखा था न ? चौथे गुणस्थान से लेकर आठवें तक बंधती है, ऊपर नहीं बंधेगी। तो जिस काल में नहीं बंधती तो उस काल में नहीं बंधेगी। पहले गुणस्थान में, दूसरे में, तीसरे में नहीं बंधती थी; वहां नहीं बंध रही है और चौथे से लेकर सबको बंधे ऐसा थोड़े ही है ? जिस किसी जीव के उसके योग्य परिणाम होते हैं उसके बंधेगी अन्यथा नहीं बंधेगी।

तो तीर्थंकर प्रकृति बंधना चाहिये कि नहीं चाहिये ? *श्रोता: ये चाहने से नहीं बंधती है।* ये चाहने से नहीं बंधती कहते हैं और सम्यग्दृष्टि जीव बांधना नहीं चाहता। जो चाहता है उसको बंधती नहीं है और क्यों बांधना चाहते हैं ? मेरा प्रश्न है कितने जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं अभी इस विश्व में ? कहां ? कौन-कौनसे कर रहे हैं ? तो कोई मनुष्य कर रहे हैं, कोई देव कर रहे हैं और कोई नारकी भी कर रहे हैं। तिर्यंच भोगभूमि में कोई कर रहे हैं क्या ? तिर्यंच जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते ही नहीं। जिसने तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बंध किया है उस मनुष्य को भी तीर्थंकर प्रकृति नहीं बंध सकती। जिसने नरकायु का बंध किया है वह बांध सकता है; हमारे श्रेणिक राजा आये न मदद के लिये। जिसने पहले देवायु का बंध किया है उसको तो बंध सकती है मजे से। परंतु यहां बात क्या चल रही है ? बंधेगी तो बंधेगी, नहीं तो नहीं

बंधेगी। तो ऐसे कितने जीव हैं देवों में, देवगति में, नारकियों में ? कितने जीव अभी तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं? क्योंकि यहां मनुष्यों में कितने हैं बंध करनेवाले ? संख्यात होंगे न ? गिने चुने होंगे, मनुष्य संख्यात ही हैं और वे भी तीर्थंकर के पादमूल में जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का बंध शुरू किया है वे तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं या जो पहले भव से बांध कर आये हैं और जिनके गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक वगैरह हो रहा है तो उनके भी बंध रही है। उनको भी हम बांधनेवालों में लेंगे।

श्रोता: क्या महावीर भगवान ने सिंह की पर्याय में बांधी थी तीर्थंकर प्रकृति ? आपका प्रश्न ऐसा है कि क्या सिंह की पर्याय में महावीर भगवान ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था कि नहीं किया था ? *श्रोता: नहीं किया था।* एक बात, तिर्यंचों को बंधती ही नहीं। दूसरी बात, ये जो सिंह की पर्याय थी वह दस भव पूर्व की थी; तीर्थंकर प्रकृति दस भवों तक नहीं बंधती। या तो जीव जिस भव में बांध रहा है उसी भव में तीर्थंकर होगा जो हमने दो कल्याणक या तीन कल्याणकवाले देखे थे; या तीन भव, जिस भव में बांधना शुरू किया उसके बाद देव का भव करके फिर तीर्थंकर के रूप में वे जन्म लेकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। या जिसने नरकायु का बंध किया है वे नरक में जाकर वहां से वापस आकर फिर मनुष्य होकर उसी भव में तीर्थंकर हो जायेंगे। इनके अलावा तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले के अधिक भव नहीं हो सकते। यहां तीर्थंकर प्रकृति के बंध संबंधी जो बात चल रही थी, मेरा प्रश्न है कि जो कोई तीर्थंकर प्रकृति बांधना चाहता है उसको यह भी सोचना है कि अपना नंबर कहां लगेगा।

कितने जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं ? कितने जीव देवों में हैं और कितने नरकों में हैं जो वर्तमान में तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं ? कोई बतायेगा ? *श्रोता: श्री कृष्ण।* कृष्ण, हम नाम कहां पूछ रहे हैं ? ऐसे कितने जीव हो सकते हैं ऐसा हमने पूछा, संख्या पूछ रहे हैं हम। हां ? *श्रोता: १७० अधिक से अधिक।* १७०, अधिक से अधिक तीर्थंकर कितने होते हैं ये नहीं पूछा हमने। बोलो, अश्विनभाई ? अश्विनभाई कहते हैं असंख्यात जीव हैं। क्या कहते हैं ? अभी जिन्होंने यहां बांधना शुरुआत की है ऐसे मनुष्य तो संख्यात हैं परंतु मनुष्य मरकर देवों में चले जाते हैं। कहां से कहां तक ? सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक। सर्वार्थसिद्धि में भले संख्यात जीव हैं परंतु प्रत्येक स्वर्ग में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं और उनमें से असंख्यात जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध

कर रहे हैं। यहां से मरकर गये वहां पर और वहां तो सागरों की आयु होती है। सागर कितने बड़े होते हैं ? वैसे ही नरकों में भी असंख्यात जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर रहे हैं। उनका नंबर कब लगेगा ? तभी लगेगा सागरों के बाद। तीसरे नरक तक के तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं। अरे सम्यग्दृष्टि भी सर्वत्र असंख्यात हैं, क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी सर्वत्र असंख्यात हैं। मनुष्य ही संख्यात हैं। छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं नियम से। जैसे छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव क्षपकश्रेणी चढते हैं और मोक्ष जाते हैं यह नियम है न, वैसे दर्शनमोहनीय का क्षय करनेवाले जीव भी हर छह महीने आठ समय में छह सौ आठ होते ही हैं। अब उसमें से कितने मोक्ष चले जायेंगे, कितने ही देव में जायेंगे, कितने ही भोगभूमि में, क्षायिकवाले तो जा सकते हैं भोगभूमि में। वहां के तिर्यंच होंगे, वहां के मनुष्य होंगे, कोई पहले नरक में चले जायेंगे। पहले नरक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी असंख्यात हैं। ऊपर के देवों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं। तीन पल्यवाले भोगभूमि में असंख्यात तिर्यंच क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। असंख्यात ! दो, चार नहीं। मनुष्य तो संख्यात हैं। ये हमें पता ही नहीं है न ! यह तो क्षायिक की बात है, वेदक सम्यग्दृष्टि कितने होंगे और औपशमिक कितने होंगे ? तो यह जो बात है तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाले मरकर कोई देव में जाता है, कोई नरक में जाता है और वहां भी उनका निरंतर तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो रहा है ऐसे जीव भी असंख्यात हैं।

हमारे चाहने से तीर्थंकर प्रकृति नहीं बंधती है, वह सहजरूप से बंधती है क्योंकि ये जो राग परिणाम हैं वे सोच-सोचकर नहीं होते। हां, जो कोई विशिष्ट बंध करना चाहता है वह पूछता है कि हम कैसे परिणाम रखे तो हमें अच्छा बंध होगा ? यानी वे परिणामों के कर्ता बनना चाहते हैं, यह अभिप्राय की भूल है। कोई भी परिणाम हमारे सोचने से नहीं होते हैं। सहजरूप से यथायोग्य उसके भूमिकानुसार परिणाम होते हैं। तो क्या करना अभी ? हमारे पास बहुत प्रश्न आते हैं न ! बहुत क्रोध आता है, बहुत राग आता है क्या करे, क्या करे ? तो क्रोध आता है किसने जाना बहन ? *श्रोता: ज्ञान ने जाना।* हां, तो हमने जाना न ज्ञान से ! तो हम ज्ञानस्वरूप हैं, क्रोधस्वरूप नहीं हैं, इस आनेवाले क्रोध को हम जान रहे हैं; उसको भिन्न तरीके से जानो तो फिर नहीं आयेगा, नेक्स्ट टाइम। कम होगा न ! हम उसको अपना समझकर रख रहे हैं और

उसको हम कम करना चाहते हैं, यह हमारी भूल है। तो यह हमारे अभिप्रायों की भूल है। यह भूल हम कायम रखते हैं और क्रिया सुधारना चाहते हैं। कौनसी क्रिया ? शरीर की क्रिया और उससे धर्म होगा मानते हैं।

शरीर की क्रिया से धर्म होगा मानते हैं या भावों से भावों को सुधारना चाहते हैं। अशुभ टालकर शुभभाव करो- कहेंगे, चरणानुयोग कहेगा हो, परंतु यदि ऐसा अभिप्राय है तो यह हमारा मिथ्यात्व है। करने का निषेध नहीं है यहां पर। हम बच्चों को कहेंगे कि ऐसा बिहेव नहीं करना, ऐसा बिहेव नहीं करना, इसतरह से आचरण रखो, यह बात खोटी है, यह ऐसे नहीं करनी चाहिये, यह उपदेश की भाषा ऐसी ही होती है। हर एक अनुयोग की भी भाषा अलग-अलग होती है। परंतु द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों को समझकर उस भाषा का सही अर्थ हमें पहचानना चाहिये। नहीं तो भूल तो हमारी होगी; या तो हम क्रिया सुधारना चाहते हैं या बोलना सुधारना चाहते हैं। कैसे बोलना ? तो कहते हैं हम कैसे बोलेंगे अभी, मान्यता तो वही रखनी है। ज्ञानी जैसे कैसे बोलेंगे ? इसको कैसे कहना, तो हमारी भूल नहीं होगी ? अरे ! अभिप्राय की भूल तो मुख्य भूल है। हम कथन सुधारना चाहते हैं और फिर अभिप्राय वैसा का वैसा रखना चाहते हैं।

श्रोता: परिणाम, परिणाम सुधारो..... ये क्या है ? अभी कहा न हमने कि चरणानुयोग की उपदेश की भाषा ऐसी होती है कि अपने परिणाम की संभाल करो। वहां ऐसा भी कहते हैं कि जिन्होंने उपशमश्रेणी चढ़ी है ऐसे जीव भी नीचे आते, आते, आते छठे के बाद कहीं मिथ्यात्व में भी जा सकते हैं, अपने परिणाम संभालो। यह चरणानुयोग का उपदेश है। परिणाम अपने सुधरने से नहीं सुधरेंगे। ये तो बुद्धिगोचर हम पापरूप क्रियायें कर रहे हैं तो उसको छोड़ो और प्रयत्नपूर्वक स्वाध्याय में मन लगाओ। यह उपदेश किसे दिया जाता है ? जो कोई अभी पंचपरमेष्ठी का नाम तक नहीं जान रहा है या ना ही मंदिर में दर्शन करने आता है - उसको क्या उपदेश देंगे ? अरे ! कहां फंसे हो ? भले ही युवान हो तो भी उपदेश क्या करेंगे उसको ? अरे ! उम्र का क्या भरोसा ? कल तक जिन्दा रहोगे किसीने देखा है ? मालूम है आपको कितनी आयु शेष बची है ? कुछ भी हो सकता है। जरा पंचपरमेष्ठी का नाम लो, मंदिर में आया करो, देवदर्शन करो, नहीं तो कहां चले जाओगे ? वहां उसको पाप छोड़कर पुण्य का उपदेश देंगे। कोई बुड्ढा है अभी मरण के पंथ पर है तो उसको क्या कहेंगे ? अरे क्यों

चिंता करते हो ? तुम तो अनादिअनंत हो न ! तो वह युवान अनादिअनंत नहीं था क्या ? जो सामनेवाला जीव है वह किस स्थिति में है उसको देखकर ये चरणानुयोग या जो द्रव्यानुयोग की अपेक्षा जो कोई सिद्धान्त हैं उसके उपदेश दिये जाते हैं।

उपदेश की भाषा कुछ और होती है। परंतु द्रव्यानुयोग के जो सिद्धान्त हैं उसमें निर्णय यहां बुद्धि में होता है, वह बोलने की बात नहीं होती है। यह तो निश्चित करना है कि जो कोई एक-एक समय की पर्याय है - स्वभाव हो या विभाव हो वह सुनिश्चित है। उसीको तो हम द्रव्य कहते हैं। द्रव्य किसे कहते हैं ? *श्रोता: गुणों के पिंड को।* अकेले गुणों के पिंड को कहते हैं क्या ? **गुणपर्ययवत् द्रव्यम्**। प्रत्येक द्रव्य की अनादि से लेकर अनंतकाल तक की पर्यायें सुनिश्चित हैं और उन सभी पर्यायों के पिंड को हमने द्रव्य कहा। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है 'द्रव्य तो शुद्धाशुद्ध पर्यायों का पिंड है' और तुम शुद्ध-शुद्ध कहते हो। ख्याल में आता है न ? तो किस अपेक्षा से शुद्ध कहते हैं ? अपेक्षा अगर हम ख्याल में नहीं लेते हैं तो हम मान लेते हैं चलो हम शुद्ध हैं-शुद्ध हैं। अरे कहां शुद्ध हो ? पर्याय में अशुद्धता का स्वीकार है कि नहीं है ? इसलिये बराबर जिस अपेक्षा से कथन है उस अपेक्षा से ग्रहण करेंगे तो हमारी कोई भूल नहीं होगी।

मोक्षमार्गप्रकाशक बारंबार पढ़ने योग्य है। उसके एक-एक लाइन में, एक-एक शब्द में इतना वजन है और हमारी भूल कहां हो सकती है वह पकड़ में आती है। उन्होंने कितना-कितना वर्णन किया है - व्यवहाराभासी की कैसी मान्यता होती है, उभयाभासी की कैसी हो रही है, निश्चयाभासी की कैसी हो रही है, सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि अभी कैसे हैं, यानी कहां कौनसे जीव अटके हैं उनकी भूलें देख-देखकर हम समझ सकते हैं हम कहां अटके हैं। क्या हमारी ऐसी मान्यता है कि नहीं है ? क्या हम उपदेश सुनने के लिये सुनते हैं ? क्या उनको सुनकर छोड़ देते हैं ? सुनकर दूसरों को सुनाने के लिये ? नहीं-नहीं आपने कितना अच्छा बोला। फिर यहां से कहां चले जायेंगे ? अन्यत्र जहां धूमधाम चलती है। चलो, क्या करें ? समाज में ऐसी-ऐसी बातें होती हैं ! बहुत दुःख होता है। भले उस दुःख का हमें अनुभव नहीं है फिर भी दूसरों का दुःख और उपसर्ग देखकर करुणा आती है। ये तीर्थंकरों पर - मुनियों पर थोड़े ही उपसर्ग आते थे ? आजकल श्रावकों पर भी उपसर्ग आते हैं और वह उपसर्ग साधारण लोग नहीं कर रहे, बड़ा नाम धारण करनेवाले कर रहे हैं। क्यों ? वाशिमवाले आये हैं

यहां, कारंजावाले आये हैं, धूमधाम चल रही है वहां पर। समुद्र की लहरें आती हैं और सबको बहाकर ले जाती हैं। समझ में आता है न ! समुद्र यानी सागर, बड़ी-बड़ी लहरें आती हैं और सबको बहाकर कर ले जाती हैं। अब यहां से भी कोई बहकर वहां चले जायेंगे। हां, समुद्र में डूबने के लिये। चलो, ये सब साधर्मी भाइयों के प्रति उपसर्ग देखकर दुःख होता है। जो समझे वह समझे, नहीं समझे तो अच्छा है !

हमने ४७ ध्रुवबंधी प्रकृति देखी हैं और अध्रुवबंधी में से ग्यारह अप्रतिपक्षवाली देखी हैं। है न ! देखो, ये ग्यारह में भी हम दो भेद करेंगे। ग्यारह कौन-कौनसी हैं ? तीर्थंकर है, आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, फिर आयु चार, फिर परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। तो इसमें से ये जो तीर्थंकर, आहारकद्विक और चार आयु इनका निरंतर बंधने का काल कम से कम, कम से कम की बात चल रही है, यानी तीर्थंकर प्रकृति बंधने के बाद तीन भवों तक तो बंधती है। आठवें गुणस्थान तक वह बात सही है परंतु किसीके कम से कम काल तक बंधेगी तो कितनी बंधेगी ? तो अंतर्मुहूर्त तक तो बंधेगी ही बंधेगी। आयु भी अंतर्मुहूर्त तक बंधती है वह तो मालूम है। आहारकद्विक का बंध भी कहां होता है ? सातवें और आठवें गुणस्थान में होता है। जब सातवेंवाला छठे में आयेगा तो अंतर्मुहूर्त में बंध होना रुक जायेगा। फिर हो सकता है कि सातवें में फिर बंध हो। फिर भी बंध कितने काल तक होगा ? अंतर्मुहूर्त तक होगा। इन सात प्रकृतियों का अंतर्मुहूर्त तक तो बंध होगा ही होगा मिनिमम पॉसिबल और जो चार रह गयी न, कौनसी ? परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और बाकी भी बासठ उसके साथ लेना; इनका एक समय मात्र के लिये भी बंध हो सकता है। यानी आतप, उद्योत, परघात, उच्छ्वास का बंध होगा तो एक समय के लिये होगा। इन चार का बंध होगा तो होगा, नहीं तो नहीं भी होगा और बासठ में कैसे लगाना ? वे तो प्रतिपक्षवाली हैं उनमें हम वेदनीय की या गोत्र की बात उठाते हैं।

गोत्र - उच्चगोत्र का बंध हो सकता है कि एक समय के लिये हुआ हो और फिर दूसरे समय में नीचगोत्र का बंध हुआ। हो सकता है लगातार अंतर्मुहूर्त भी हुआ, अधिक की बात नहीं कर रहे हम, कम से कम की बात कर रहे हैं। कम से कम एक समय के बाद उसका बंध चेंज भी हो सकता है, कभी साता बंधी, कभी असाता बंधी। समय-समय में उसका व्हेरिएशन हो सकता है। तीर्थंकर प्रकृति के बंध को निरंतरबंधी

कहा है। ध्रुवबंधी और निरंतरबंधी में बात अलग है। आयु को निरंतरबंधी कहा क्योंकि कम से कम अंतर्मुहूर्त तक तो लगातार बंधती है। तीर्थंकर प्रकृति भी वहां तो उसको अध्रुव में लिया है फिर भी उसको क्या कहा है ? निरंतरबंधी कहा। क्यों ? अंतर्मुहूर्त तक तो लगातार बंधेगी ही बंधेगी और अधिक से अधिक तीन भव तक भी बंधेगी। इसलिये निरंतरबंधी और ध्रुवबंधी में कुछ अंतर है। यह तीर्थंकर प्रकृति है तो अध्रुवबंधी फिर भी कैसी है ? निरंतरबंधी। आहारक प्रकृति है तो अध्रुवबंधी क्योंकि बंधेगी तो बंधेगी नहीं तो नहीं बंधेगी, यदि बंधेगी तो अंतर्मुहूर्त तक तो बंधेगी ही बंधेगी इसलिये उसको भी निरंतरबंधी कहेंगे। ये शब्द जो हैं न उसका थोड़ा अर्थ हमें ख्याल में लेना है। हमें प्रकृतियां याद नहीं रहें तो कोई बात नहीं है परंतु निरंतर कब कहना, ध्रुव कब कहना, अध्रुव कब कहना ये बातें हमें समझना आवश्यक हैं। आयु का बंध भी ध्रुव तो नहीं कह सकते वह तो अध्रुव है। अध्रुव होने पर भी लगातार अंतर्मुहूर्त तक तो बंध होता ही होता है जब एक बार शुरू होता है तो उसको कहेंगे निरंतरबंधी। निरंतरबंधी का अर्थ ऐसा नहीं है कि पूरी आयु तक आयुकर्म का ही बंध होता हो ऐसा उसका अर्थ नहीं है। तो उस शब्द का शब्दार्थ कुछ अलग है परंतु वे क्या कहना चाहते हैं ? किसको निरंतरबंधी कहा ? किसको ध्रुवबंधी कहा ? किसको अध्रुवबंधी कहा ? किसको प्रतिपक्षवाला कहा ? यह हम जानेंगे।

अभी तक हमने क्या देखा ? ४७ तो ध्रुवबंधी हैं, अनादि से बंधती आयी हैं। कब तक बंधेगी ? अपनी बंधव्युच्छित्ति तक बंधेगी। ४७ को छोड़कर जो ७३ प्रकृतियां हैं उनमें से जो ग्यारह प्रकृतियां हैं उनको अलग निकाला क्योंकि वे अप्रतिपक्षवाली हैं। ऐसा नहीं कि उसके बदले में कुछ दूसरी बंध सकती है। तो क्या है ? बंधेगी तो बंधेगी, नहीं बंधेगी तो नहीं बंधेगी। ऐसी ग्यारह कौन-कौनसी हैं ? तो तीर्थंकर, आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, चार आयु - नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, मनुष्यायु ये चार आयु और परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। उनमें से भी आयु तक की जो पहली सात गिनी थी, वे कैसी हैं ? निरंतरबंधी, बंधेगी तो अंतर्मुहूर्त तक नियम से बंधेगी ही बंधेगी। परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत कैसी हैं ? एक समय के लिये भी बंध सकती हैं और रुक सकती हैं यह जरूरी नहीं कि वह लगातार अंतर्मुहूर्त तक बंधती रहे। बंधी रहने में कोई बाधा नहीं है परंतु ऐसा नियम नहीं है, एक समय के लिये भी उसका बंध

हो सकता है। तो हमने इन ग्यारह का भी वहां पर विभाजन देखा।

अब जो बासठ प्रकृतियां रही हैं उनकी थोड़ी बात देखते हैं। प्रतिपक्ष यानी सप्रतिपक्ष क्यों कहते हैं ? इन बासठ में कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? एक तो हम देखते हैं साता-असाता, जो आसान है उसको पहले लेते हैं। वेदनीय में साता या असाता, वेदनीय का बंध तो निरंतर चल रहा है, कब से ? अनादि से। उसमें कभी साता बंधती है, कभी असाता। उत्तरप्रकृतियों की अपेक्षा बात करेंगे तो साता का भी हम अनादि से लगातार बंध नहीं कह सकते, असाता का भी नहीं कह सकते क्योंकि कभी साता बंधती है, कभी असाता बंधती है। कभी साता, कभी असाता, एक-एक समय में भी चेंज हो सकता है या यथायोग्य अंतर्मुहूर्त में भी हो सकता है। इसको कहेंगे सप्रतिपक्षवाला। गोत्र में - गोत्रकर्म तो बंध रहा है परंतु कभी उच्चगोत्र बंधेगा, कभी नीचगोत्र बंधेगा। कभी उच्च और कभी नीच ऐसा जो प्रतिपक्षपना है वह कब तक चलेगा ? गोत्रकर्म में कभी नीचगोत्र बंधता है कभी उच्चगोत्र बंधता है ये बात कब तक चलेगी ? *श्रोता: दसवें।* दसवें में, क्या ये बात सही है ? *श्रोता: पहले में।* पहले में क्यों ? अभी ऐसा सोचना है कि नीचगोत्र के बंध की व्युच्छित्ति कहां होती है ? *श्रोता: दूसरे गुणस्थान में।* दूसरे गुणस्थान में। यानी पहले और दूसरे गुणस्थान में ऑप्शन है सप्रतिपक्ष यानी ऑप्शनल प्रकृतियां। कैसे ? या तो नीचगोत्र बंधेगा या उच्चगोत्र। अभी तीसरे गुणस्थान और ऊपर के सभी गुणस्थानों में क्या बंधेगा ? उच्चगोत्र। कहां तक बंधता है ? तो हम कहेंगे दसवें तक बंधता है यानी उसके ऊपर प्रतिपक्षपना नहीं है। परंतु हम जनरल बात कर रहे हैं न ? पहले और दूसरे गुणस्थान में कभी उच्चगोत्र बंधता है, कभी नीचगोत्र बंधता है; तीसरे और ऊपर के सभी गुणस्थानों में एक मात्र उच्चगोत्र का ही बंध होगा। यहां उदय की बात नहीं चल रही है। नहीं तो पूछेंगे, ऊपर चौथेवाले को भी नीचगोत्र का उदय तो पाया जाता है। पाया जाता है कि नहीं ? नारकी सभी क्या हैं नीचगोत्रवाले हैं न ? हां, तिर्यंच भी हैं। मनुष्यों में तो दोनों प्रकार पाये जाते हैं। उदय की बात हम नहीं कर रहे, हम मात्र बंध की बात कर रहे हैं यहां पर।

इन बासठ में से हमने कौन-कौनसी देखी ? सातावेदनीय, असातावेदनीय, उच्चगोत्र, नीचगोत्र। हम नामकर्म को बाद में रखते हैं क्योंकि उसकी प्रकृतियां ज्यादा हैं न ? मोहनीय की ध्रुवबंधी को छोड़कर ये सात रहती हैं क्योंकि ध्रुवबंधी में किसको

लिया था ? एक मिथ्यात्व को लिया था, सोलह कषायों को लिया था और भय, जुगुप्सा को लिया था। अब कौनसी बची ? सात नोकषाय बचे; तीन वेद- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद और दो युगल यानी दो जोड़ी। कौनसी ? हास्य-रति और शोक-अरति। एक काल में किसी एक वेद का बंध होगा। मिथ्यादृष्टि को तीनों ऑप्शन्स हैं यानी जैसे परिणाम होंगे मिथ्यादृष्टि के तो उसे स्त्रीवेद बंधेगा, पुरुषवेद बंधेगा या नपुंसकवेद बंधेगा। नपुंसकवेद की बंध व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में होती है। दूसरे गुणस्थानवाले को क्या बंध सकता है ? स्त्रीवेद या पुरुषवेद। स्त्रीवेद की बंधव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में होती है। तीसरे और ऊपर के सभी गुणस्थानों में बंध किसका है ? *श्रोता: पुरुषवेद का।* पुरुषवेद का ही बंध होगा। बंध की बात है उदय की नहीं क्योंकि तीनों ही वेदों का उदय नौवें गुणस्थान तक पाया जाता है। सुना है कि नहीं कभी ? क्या कहा ? द्रव्य से तो पुरुष होने चाहिये क्योंकि नौवां गुणस्थान तो मुनियों के होता है। द्रव्य की अपेक्षा यानी शरीर तो उनका पुरुष का है परंतु भाव में तीनों ही वेद हो सकते हैं उनके- पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद। श्रेणी चढ़कर नौवें गुणस्थान तक उसका उदय हो सकता है परंतु बंध तीसरे से लेकर ऊपर नौवें तक पुरुषवेद का ही बंध होगा। अभी उदय की बात हम बाद में लेंगे, नहीं तो बहुत कन्फ्यूजन होगा। एक-एक बात पहले जरा हम पचायेंगे न ! फिर आगे बढ़ेंगे।

श्रोता: कितने गुणस्थान तक बंधेगा पुरुषवेद ? पुरुषवेद हमने देखा था न, कब तक बंधता है ? जब तक वेदों का उदय है, नौवें तक। देखो, वेदमार्गणा में हमने देखा था कि सवेदी यानी वेदवाले और अपगतवेदी यानी जिनका वेद निकल गया यानी उदय मिट गया है। जब तक वेदों का उदय है भले स्त्रीवेद हो, पुरुषवेद हो या नपुंसकवेद हो, तब तक नौवें गुणस्थान में पुरुषवेद का बंध है। वेद का उदय मिट गया तो वेद का बंध भी मिट गया। नौवें गुणस्थान के पहले भाग तक वेद का बंध है यानी वहां पुरुषवेद का भी बंध है और संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का भी बंध है। अब हमने तीन प्रकृतियां देखी न - उच्च या नीचगोत्र, साता या असाता और मोहनीय की सात देखी। तीन वेदों में से एक का बंध हो रहा है। हास्य-रति बंधती है या शोक-अरति। हास्य के साथ अरति का बंध नहीं होता है। वह युगल नक्की है या तो हास्य-रति का बंध होगा या शोक-अरति का बंध होगा। उसमें ऑप्शन ऐसा उलटा-सुलटा नहीं चलेगा। अभी

आप बतायेंगे ये दो युगलों में ऑप्शन कहां तक है ? *श्रोता: छठे गुणस्थान तक।* हां, छठे गुणस्थान तक। क्यों ? क्योंकि हास्य-रति का जो बंध हो रहा है वह तो ऊपर आठवें तक चलता है परंतु शोक-अरति का बंध कहां तक है ? *श्रोता: छठे तक।* हमने छठे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति क्या देखी थी ? अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। उसके बाद अरति और शोक का बंध रुक गया; छठे तक हो सकता है, तो छठे तक ऑप्शन है। अरति-शोक का बंध होगा या हास्य-रति का बंध होगा। ऊपर क्या होगा ? सातवें और आठवें में हास्य-रति का ही होगा। क्योंकि अरति-शोक के बंध की व्युच्छित्ति हो गयी है और हास्य-रति आठवें तक ही बंधती है, ऊपर नहीं बंधती है। इसतरह से हम उसका विचार करेंगे।

अभी कितनी देखी हमने ? सात तो मोहनीय की, वेदनीय की दो, गोत्र की दो, सात और चार ग्यारह, ग्यारह हो गयी न ये ! अब बाकी बची वे सब नामकर्म की। कितनी हैं ? बासठ में से ग्यारह गयी। देखो, पहले हमने क्या किया ? सभी बंधयोग्य कितनी हैं ? १२०। १२० में से ४७ को ध्रुवबंधी करके अलग निकाला तो बची ७३। ७३ में से फिर दो पक्ष किये। ग्यारह हैं वे ? *श्रोता: अप्रतिपक्षवाली हैं।* अप्रतिपक्षवाली हैं तो बची बासठ वे प्रतिपक्ष यानी सप्रतिपक्षवाली हैं। उसमें हमने वेदनीय की दो देखी, गोत्र की दो देखी, मोहनीय की सात देखी। समझने के लिये, ये ग्यारह हुयी। अभी नामकर्म की बची। ये नामकर्म की कितनी हैं ? *श्रोता: ५१।* हां, ५१ बची। अभी वे कौनसी हैं देखेंगे। सप्रतिपक्ष यानी गतिनामकर्म तो निरंतर अभी बंध रहा है क्योंकि हमने देखा न, नामकर्म का तो बंध हो रहा है। परंतु उसमें या तो देवगति बंधेगी, मनुष्यगति बंधेगी, नरकगति बंधेगी, तिर्यंचगति कोई भी बंध सकती है तो उसको सप्रतिपक्ष कहा। हम पढ़ेंगे - **ये जो बासठ प्रकृतियां है वे सप्रतिपक्ष हैं। इनके प्रतिपक्षी पाइये हैं।** प्रतिपक्षी यानी प्रतिपक्षवाली प्रकृतियां पायी जाती हैं। इसलिये उस प्रतिपक्ष में से जो दो पार्टी बतायी न ? उसमें से किसी एक का तो बंध होगा ही होगा या तो साता का होगा या तो असाता का होगा। उच्चगोत्र का होगा या नीचगोत्र का होगा। इसतरह से इसको प्रतिपक्ष कहते हैं। दोनों का ॲट अ टाइम बंध नहीं होगा।

जैसे नामकर्म में भी हमने देखे, किसीके त्रस का बंध होगा तो किसीके स्थावर का होगा। यानी दो कौन-कौनसी प्रतिपक्षी हैं ? सूक्ष्म का होगा या बादर का होगा।

पर्याप्त नामकर्म बंधेगा या अपर्याप्त बंधेगा। यशस्कीर्ति बंधेगा या अयशस्कीर्ति बंधेगा। दोनों का ॲट अ टाइम बंध नहीं है। स्थिर का होगा तो अस्थिर का नहीं हो रहा उसी समय। हर एक में लगाना, ये जो जोड़ी-जोड़ीवाली सभी प्रकृतियां उसमें तो सबमें लगेगा ही लगेगा। यहां कहते हैं ये जो नामकर्म हैं रिमेनिंग सप्रतिपक्षवाले, सभी उसमें ले लेना है। उसमें सप्रतिपक्षवाली वे कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं ? हम पढ़ेंगे - देखो, गति चार तो चारों गति में से किसी एक का बंध होगा। जाति पांच, एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय तक की किसी एक जातिनामकर्म का बंध होगा। औदारिक, वैक्रियिक यानी औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग का ॲट अ टाइम बंध होगा या वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग का बंध होगा और फिर संस्थान, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान बंधेगा। संहनन में से कोई एक संहनन बंधेगा। बंधेगा तो की बात है। ऐसा क्यों कहा बंधेगा तो ? क्यों ? जो देवगति या नरकगति का बंध कर रहा है तो उसके साथ कौनसे शरीर का बंध करेगा ? *श्रोता: वैक्रियिकशरीर।* वैक्रियिकशरीर का बंध करेगा। वैक्रियिकशरीर में कोई संहनन नहीं होता। कोई हड्डी-वड्डी कुछ नहीं होती उसमें, सप्तधातु रहित होता है तो उसके साथ संहनन का बंध नहीं होगा। हां संस्थान होगा उसके लिये, क्योंकि वैक्रियिकशरीर को भी आकार है तो संस्थान होगा, परंतु संहनन नहीं होगा। एकेन्द्रियजाति के साथ भी संहनन नहीं बंधेगा।

ये कौनसे कर्म के साथ कौनसे कर्मों का बंध होता है यह नामकर्मों में विशेषता है। वे गुणस्थानों के अनुसार नहीं बंधते हैं, उनका पॅकेज होता है। आजकल हॉस्पिटल में होता है और टूर में कहां-कहां घूमने जाते हैं उसका भी पॅकेज होता है न ! क्या-क्या आपको सहुलियत मिलेगी, क्या है ? तो यहां भी देवगति बांधनेवाला कौन-कौनसी प्रकृतियां बांधेगा ? एकेन्द्रिय संबंधी बंध करनेवाला कौन-कौनसी प्रकृतियों को बांधता है उसका पॅकेज होता है। वह पॅकेज भी हम सीखेंगे जिनको कहते हैं नामकर्म के बंधस्थान। उसकी बात अलग-अलग बंधस्थानों में आयेगी, ॲट अ टाइम कितने नामकर्म बंधते हैं क्योंकि अपोझिटवाले तो बंधेंगे नहीं। भले हमने ९३ देखी हैं लेकिन चार गति तो ॲट अ टाइम नहीं बंधेगी, त्रस बांधनेवाला स्थावर को तो नहीं बांधेगा। जो आतप प्रकृति है वह एकेन्द्रियजाति के साथ ही बंधती है, द्विन्द्रियादि जाति के साथ नहीं बंधेगी। ऐसी जो-जो प्रकृतियां एक साथ बंध सकती हैं उसकी बात हम आगे पढ़नेवाले

हैं। बहुत सारा अच्छा इंटरेस्टिंग विषय आनेवाला है आगे। हां, कोई भाग नहीं जाये न इसलिये बता रहे हैं। अभी हमने देखे संहनन में से एक; जैसे हमने गति चार देखी वैसे चार गत्यानुपूर्वी भी होती हैं; नरकगति बांधनेवाला नरकगत्यानुपूर्वी का बंध करता है, देवगति बांधनेवाला देवगत्यानुपूर्वी का बंध करता है।

वे भी सप्रतिपक्षवाली होगी। विहायोगति में या प्रशस्त बंधेगी या अप्रशस्त; जैसे दूसरे गुणस्थान तक अप्रशस्त बंध सकती है, बाद में तो प्रशस्त ही बंधेगी। त्रस या स्थावर, बादर या सूक्ष्म, पर्याप्त या अपर्याप्त, प्रत्येक या साधारण, फिर स्थिर-अस्थिर, सुभग-दुर्भग, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, इसतरह से इसमें भी ये सारी प्रतिपक्षवाली प्रकृतियां हैं। यानी इनका एक का बंध होता है उसी समय दूसरी का बंध नहीं हो रहा। जैसे परिणाम चेंज होते हैं, हो सकता है एक समय में भी पलटकर अन्य का बंध हो जाये। लगातार एक जैसा परिणाम अंतर्मुहूर्त तक रहे तो अंतर्मुहूर्त तक वह प्रकृति बंधे तो फिर अन्य प्रकृति का बंध हो सकता है। इसतरह से हमने प्रकृतिबंध के प्रकरण में ये बातें यहां देखी हैं कि ध्रुवबंधी हैं वे ४७ हैं, अध्रुवबंधी हैं वे ७३ हैं। अध्रुवबंधी में ग्यारह को हमने क्या कहा है ? *श्रोता: अप्रतिपक्षी।* अप्रतिपक्षी, बंधेगी तो बंधेगी नहीं बंधेगी तो नहीं बंधेगी, उसके कोई प्रतिपक्ष नहीं है। और जो बासठ प्रकृतियां हैं वे सप्रतिपक्षवाली प्रकृतियां हैं। उनका बंध तो है परंतु या तो एक पक्षवाली बंधेगी या दूसरे पक्षवाली बंधेंगी। जैसे हमने त्रस या स्थावर, सूक्ष्म या बादर, पर्याप्त या अपर्याप्त ये जो जोड़ी-जोड़ीवाली हमने देखी हैं उनमें से एक-एक का बंध ॲट अ टाइम हो सकता है। इसतरह से इस प्रकृतिबंध को तो हमने देखा है।

प्रकृतिबंध में योग निमित्त है। योग के कारण प्रकृति और प्रदेश का बंध होता है। योग में जैसे हीनाधिक वृद्धि होती है और योग में शुभाशुभ योग भी बताया है। यहां मोक्षमार्गप्रकाशक में योग को भी शुभाशुभ कहा है और वहां कैसे उसके वैसी-वैसी प्रकृतियों का बंध होता है यह बताया है। क्योंकि हमने देखा न, कौनसे गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं ? जहां विशुद्धि ज्यादा है वहां विशिष्ट अशुभ प्रकृतियां नहीं बंधती हैं। उस गुणस्थान के योग के कारण वे प्रकृतियां बंधती हैं। स्थिति और अनुभाग का बंध होता है उसकी चर्चा हम आगामी सेशन में लेंगे। अभी हम यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१५. व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतियां

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की है। उसके आधार से पंडित टोडरमलजी ने जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से हमारा बंधोदयसत्त्वाधिकार शुरू हुआ है, उसमें अपनी प्रकृतिबंध की बात चल रही थी। उसमें हमने जो बंधयोग्य प्रकृतियां देखी हैं, उनमें नाना जीवों की अपेक्षा कितनी प्रकृतियां बंधयोग्य हैं, कब से बंधती हैं उसमें प्रतिपक्षवाली, अप्रतिपक्षवाली, ध्रुवबंधी वगैरह कौनसी हैं, उसकी चर्चा की।

श्रोता: नाना जीव का अर्थ क्या होता है ? नाना जीव का अर्थ होता है अनेक जीव। जब हम कहेंगे पहले गुणस्थान में कितने कर्म बंधते हैं ? तो यहां लिखा है न, ११७ प्रकृतियां बंधती हैं। ११७ प्रकृतियां एक जीव को एक साथ नहीं बंध सकती। क्या कहा ? एक जीव के एक साथ इतनी प्रकृतियां तो नहीं बंधती हैं, परंतु अलग-अलग जीवों में कौन-कौनसी बंध सकती हैं, इनकी कुल संख्या यानी जो टोटल है उसको यहां बताया जाता है। एक प्रश्न आया है कि *आयुकर्म को अप्रतिपक्ष में क्यों लिया, सप्रतिपक्ष में क्यों नहीं ?* सप्रतिपक्ष का अर्थ हमने क्या देखा था ? कि जो बंध रही है उसमें से यानी आयु का बंध तो हो ही रहा है। यदि उस अंतर्मुहूर्त में कभी देवायु बंधती, कभी मनुष्यायु और कभी नरकायु आदि, तो हम उसको सप्रतिपक्ष कह सकते हैं। परंतु यहां अप्रतिपक्ष इसलिये लिया है जो आयु बंधती है वही बंधेगी। उसमें कोई ऑप्शन नहीं होगा। इसलिये वहां उसको अप्रतिपक्ष में ही लिया है, सप्रतिपक्ष में नहीं लिया।

अब दूसरा प्रश्न सुबह जो बात की थी उसके बारे में है कि *हमने टोटल बंधयोग्य प्रकृतियां १२० देखी। उसमें ध्रुवबंधी कितनी देखी थी ? श्रोता: ४७।* हां-हां, ४७ और जो अध्रुवबंधी हैं वे ७३ देखी थी। अध्रुवबंधी में हमने दो देखे थे, ग्यारह प्रकृतियों को क्या कहा था ? *श्रोता: अप्रतिपक्ष।* अप्रतिपक्ष और जो बासठ रही वे ? *श्रोता: सप्रतिपक्ष।* सप्रतिपक्ष। उनके जो नाम हैं उसमें आपको कुछ कन्फ्यूजन था, है न ? वे प्रकृतियां कौनसी हैं ? आपको लगा कुछ अपनी रह तो नहीं गयी ? हम फिर देखेंगे-कौन-कौनसी हैं। हमें ऐसा देखना है कि नामकर्म में से कौनसी प्रकृतियों को हमने ध्रुवबंधी में डाला, कौनसी प्रकृतियों को अप्रतिपक्ष में डाला और बाकी ५१ बची तो वे यहां नामकर्म की सप्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं क्योंकि सभी सप्रतिपक्ष कौन-कौनसी होती हैं ? तो

वेदनीय की दो, गोत्र की दो और मोहनीय की सात - तीन वेद और दो युगल। इनके अलावा जो बची हैं वे सारी नामकर्म की हैं, वे ५१ हैं। हमने ध्रुवबंधी में नामकर्म की कौनसी देखी थी ? उन्हें ९३ में से हमको मायनस करनी हैं। ध्रुवबंधी में हमने नामकर्म की कौन-कौनसी देखी थी ? तेजस, कार्माण फिर स्पर्श, रस, गंध, वर्ण; *श्रोता: अगुरुलघु।* अगुरुलघु। *श्रोता: उपघात।* उपघात। *श्रोता: निर्माण।* और निर्माण। इतनी तो ध्रुवबंधी में गयी थी। उसके बाद अप्रतिपक्ष में कौन-कौनसी गयी थी ? *श्रोता: तीर्थंकर।* तीर्थंकर, आहारकशरीर। *श्रोता: आहारकअंगोपांग।* आहारकअंगोपांग। हां और फिर ? परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। कितने हुये ? *श्रोता: चार आयु।* चार आयु तो नामकर्म की नहीं हैं। हम तो नामकर्म की देख रहे हैं न ? सात हो गयी। पहले टोटल कितनी देखी थी ? *श्रोता: ११ देखी थी।* ११ देखी थी।

हम नामकर्म का हिसाब लगा रहे हैं। नामकर्म की सप्रतिपक्षवाली ५१ कौनसी हैं उसकी बात हम देख रहे हैं। ध्रुवबंधी में हमने क्या-क्या देखा ? फिर दुबारा। तेजस देखा, कार्माण देखा, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और फिर अगुरुलघु, उपघात और निर्माण; ९ देखी थी। कुछ ख्याल में आ रही है बात ? *श्रोता: हां।* यहां हम नामकर्म का हिसाब लगा रहे हैं, दुबारा। देखो, हमने जो टेबल बनाया था, टोटल प्रकृतियां १२० थी; उसमें ध्रुवबंधी ४७ देखी थी; अध्रुवबंधी हैं वे ७३ देखी थी। अध्रुवबंधी में से ११ वे अप्रतिपक्ष हैं और जो बाक़ी जो ६२ हैं वे सप्रतिपक्ष हैं। ६२ का हिसाब यहां चल रहा है; ६२ में दो तो वेदनीय की हैं, सात मोहनीय की हैं और दो गोत्र की हैं। बाकी जो ५१ हैं वे नामकर्म की हैं। नामकर्म की ५१ यहां सप्रतिपक्ष हैं तो बाकी कहां गयी ? हमने ध्रुवबंधी में भी कुछ देखी थी। ध्रुवबंधी में नामकर्म की ९ देखी थी, ध्रुवबंधी की टोटल ४७ हैं परंतु उसमें ज्ञानावरण भी देखा, दर्शनावरण भी देखा, उसमें अंतराय है, मिथ्यात्व है, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा सब देखी थी। नामकर्म की कितनी देखी थी ? नामकर्म की ९ देखी थी। कौनसी ९ देखी थी ? *श्रोता: तेजस, कार्माण।* तेजस, कार्माण। *श्रोता: स्पर्श, रस, गंध, वर्ण।* स्पर्श, रस, गंध, वर्ण। *श्रोता: अगुरुलघु, उपघात।* अगुरुलघु, उपघात। *श्रोता: निर्माण।* और निर्माण। फिर अप्रतिपक्ष में भी नामकर्म की देखी थी, वे कौनसी देखी थी ? *श्रोता: तीर्थंकर।* तीर्थंकर, आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, फिर परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योत। ९ और ७ मिलकर १६ यहां हो गयी। १६ चाहिये थी न ?

हम १२० का हिसाब लगा रहे हैं। वह नामकर्म के ९३वाला नहीं लगा रहे हैं। ९३वाला हिसाब नहीं चल रहा है अपना क्योंकि पहले ही हमने २६ कम कर दी थी। तो अभी कितनी बची ? ६७ उनमें से नौ ध्रुवबंधी और सात अप्रतिपक्ष टोटल सोलह कम करनी, तो कितनी रही ? ५१। जो प्रतिपक्षवाली हैं वे ५१ कौन-कौनसी हैं ? हमने देखा न, वे नामकर्म कौन- कौनसे हैं ? तो गति है, जाति है, शरीर है, बंधन है, संघात है; अभी बंधन, संघात को हम छोड़ देंगे। गति, जाति, शरीर, के बाद ? *श्रोता: गत्यानुपूर्वी।* नहीं, गत्यानुपूर्वी बाद में आती है। जो हमने पहले वर्ण वगैरह लिया उसको छोड़ देना है, जो नहीं लिया उसको लेना है। शरीर के बाद अंगोपांग है, संस्थान है, संहनन है, गत्यानुपूर्वी है, विहायोगति है, इन सबकी टोटल हम देखेंगे और जो बीस हैं उनको भी देखेंगे। कौनसी बीस ? *श्रोता: त्रस।* त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक और साधारण ये चार जोड़ियां हुयी। अन्य छह कौनसी हैं ? स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय और यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति ये कुछ दस जोड़ी यानी बीस प्रकृतियां हुयी।

फिरसे दुबारा, ये ५१ प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं ? गति में चार गति लेना, हमें टोटल ५१ घटित करना है न ! जाति में ? *श्रोता: पांच जाति।* पांच जाति, हां, उसके बाद शरीर में दो ही लेना, औदारिक और वैक्रियिक। क्यों ? आहारक को तो हमने अप्रतिपक्षवाले में लिया था, इसलिये यहां दो ही शरीर बचे। तेजस, कार्माण हमने ध्रुवबंधी में लिया था और आहारक को हमने अप्रतिपक्ष में लिया था इसलिये दो ही शरीर बचे औदारिक और वैक्रियिक। *श्रोता: अंगोपांग।* हां, अंगोपांग में भी औदारिकअंगोपांग और वैक्रियिकअंगोपांग यानी शरीर भी दो और अंगोपांग भी दो। उसके बाद संस्थान छह, छह संस्थान में से कोई एक बंधेगा तो छह संस्थान और छह संहनन। फिर गत्यानुपूर्वी चार और विहायोगति दो - प्रशस्त और अप्रशस्त। ये तो सारी ग्रुपवाली पिंड प्रकृतियां हुयी। अब छोटी-छोटी दो-दो, जोड़ीवाली कौनसी हैं ? ये त्रस आदि चार यानी त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और उसकी विरुद्धवाली यानी चार जोड़ी हुयी। फिर स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशस्कीर्ति और उसकी अपनी-अपनी जोड़ीवाली। ये दस जोड़ी यानी बीस प्रकृतियां हुयी। अभी टोटल करो कितनी हुयी ? *श्रोता: ५१ हो गयी।* ५१ हो गयी न ! हां, जरा चिंता करना, अपनी-अपनी प्रकृति

बराबर संभालकर रखना। कहीं खो नहीं जाये हमारी, छूट नहीं जाये।

वैसे तो यह अपना विषय यहां समाप्त होता था और हम स्थितिबंध को शुरू करनेवाले थे। परंतु हमने बीच में बहुत सब छोड़ दिया है जो मार्गणाओं में और अन्य-अन्य जो बातें हुयी थी। फिर भी उसका प्रश्न पूछा गया था किसीके द्वारा तो उसकी एक झलक हम ले लेंगे। प्रश्न था कि *यहां व्युच्छित्ति तो आपने समझायी लेकिन ये बंध-अबंध की भी गाथाओं में बात की है। उसकी तो आपने कुछ बातें उठायी ही नहीं हैं।* तो हम प्रत्येक मार्गणा में तो नहीं लगायेंगे। परंतु जिसको कहेंगे न, ओघ से यानी सभी गुणस्थानों में व्युच्छित्ति की प्रकृतियां तो हमने देखी। कितनी देखी पहले गुणस्थान में ? *श्रोता: १६।* दूसरे में ? *श्रोता: २५।* तीसरे में ? *श्रोता: झिरो।* चौथे में ? *श्रोता: १०। हां,* पांचवें में ? *श्रोता: ४।* छठे में ? *श्रोता: ६।* सातवें में ? *श्रोता: १।* आठवें में ? *श्रोता: ३६।* नौवें में ? *श्रोता: ५।* दसवें में ? *श्रोता: १६।* ग्यारहवें में ? *श्रोता: झिरो।* बारहवें में ? *श्रोता: झिरो।* तेरहवें में ? *श्रोता: १।* और चौदहवें में तो सवाल ही नहीं है।

ये हमने व्युच्छित्ति की प्रकृतियां देखी। परंतु वहां कितनी बंधती हैं और कितनी अबंध हैं ? आप कहेंगे जो व्युच्छित्ति है वे तो अबंध हो जायेगी न ? ऐसी बात नहीं है। जो पहले गुणस्थान में व्युच्छित्ति हो चुकी है वे तो दूसरे गुणस्थान में अबंध कहलायेगी ही कहलायेगी। परंतु ऐसी भी अन्य कोई प्रकृतियां हैं कि जो पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में नहीं बंधती हैं। तीर्थंकर प्रकृति पहले गुणस्थान में नहीं बंधती। आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग नहीं बंधती। क्यों नहीं बंधती हैं ? *श्रोता: क्योंकि वे तो मुनिराजों को ही बंधती हैं।* क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति चौथे गुणस्थान से बंधती है और आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग तो सातवें, आठवें गुणस्थान में बंधती हैं। वे पहले गुणस्थान में बंधयोग्य ही नहीं हैं। इसलिये पहले गुणस्थान में बंधयोग्य तीन नहीं हैं उनको १२० में से मायनस करके- बाद करके- ११७ का बंध है ऐसा हम कहेंगे। ये सारी लिस्ट यहां हम बतायेंगे। इसको कहते हैं नाना जीवों की अपेक्षा। नाना जीवों का अर्थ क्या देखा हमने ? अनेक जीवों की यानी सभी जीवों की अपेक्षा बात कर रहे हैं। एक जीव को ये ११७ प्रकृतियां ॲट अ टाइम यानी एक साथ नहीं बंधेगी। जो ध्रुवबंधी हैं वे तो ॲट अ टाइम बंधती हैं। ज्ञानावरण की पांच की पांच एक जीव को एक साथ बंधती हैं, दर्शनावरण की नौ की नौ बंधती हैं, मोहनीय में मिथ्यात्व और सोलह कषाय

और भय, जुगुप्सा एक जीव को तो निरंतर बंधती ही बंधती हैं परंतु एक जीव को मोहनीय की २८ में से दर्शनमोहनीय की वे दो तो बंधती नहीं हैं। तो क्या चारित्रमोह की पच्चीस एक साथ बंधेगी किसी जीव को ? सोलह कषाय तो जरूर बंधेगी; सोलह और दो भय, जुगुप्सा तो जरूर बंधेगी, अठारह हो गयी। हम चारित्रमोहनीय का हिसाब लगा रहे हैं। परंतु हमने देखा था कि तीन वेद में से एक ही वेद बंधेगा और एक युगल बंधेगा। तो तीन वे हो जायेंगे यानी चारित्रमोहनीय की कितनी बंधेगी ? *श्रोता: इक्कीस।* इक्कीस, टोटल मोहनीय की कितनी बंधेगी ? मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा ये उन्नीस तो ध्रुवबंधी हैं, हर एक बंधेगी ही बंधेगी और कोई एक वेद और कोई एक युगल, तो उन्नीस और तीन बाइस बंधेगी। फिर से - मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा कितने हुये ? उन्नीस, एक वेद और एक युगल। युगल यानी दो लेना न ? उन्नीस और तीन एक जीव को एक साथ २२ का बंध होता है। मिथ्यादृष्टि की बात चल रही है।

परंतु अगर हम नाना जीवों की अपेक्षा बात करेंगे तो मिथ्यात्व और पच्चीस कषाय सभी का बंध होता है। किसीको किसीका बंध है, किसी अन्य जीव को कोई अन्य प्रकृति का बंध है। इसलिये जहां एक जीव की अपेक्षा बात आती है और अनेक यानी नाना जीवों की बात आती है तो दो अलग-अलग कथन आते हैं। यहां व्युच्छित्ति, बंध-अबंध की बात चल रही है यह नाना जीवों की अपेक्षा यानी पहले गुणस्थान में जो कोई जीव हैं, सबकी मिलकर कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधने योग्य हैं उसकी चर्चा चलेगी। किसी भी जीव को जो बंधती ही नहीं, उसको हम अबंधप्रकृति कहेंगे। इसके बंध संबंध में दो गाथायें आयी हैं १०३ और १०४। उसमें ऐसी बातें बतायी हैं कि बंध से अनंत और बंध से अंत। बंध से अंत यानी बंध का अंत यानी बंध की व्युच्छित्ति और बंध से अनंत यानी बंध का अंत नहीं होना यानी बंध का चलते रहना। यानी अपनी भाषा में बंधयोग्य प्रकृतियां कितनी हैं और अबंध प्रकृतियां कितनी हैं।

हमने व्युच्छित्ति की संख्या देखी थी। अब यहां व्युच्छित्ति कितनी होती है ? वे तो उस गुणस्थान में बंधती हैं। उस गुणस्थान के बाद के ऊपर के गुणस्थान में उनको घटा देना है। परंतु उस गुणस्थान में जो व्युच्छित्तिवाली प्रकृतियां हैं, वे तो बंधयोग्य में गिननी हैं। जैसे मिथ्यात्व में व्युच्छित्ति कितनी देखी हमने ? *श्रोता: १६ की।* १६ की। १६ का वहां बंध है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* है। परंतु पहले गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियों

का बंध नहीं है ? तीर्थंकर और आहारकद्विक - आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग यानी तीन प्रकृतियों का बंध किसी भी मिथ्यादृष्टि जीव को नहीं होता। इसको हम कहेंगे अबंधप्रकृति और बंधयोग्य कितनी है ? ११७। अब इन ११७ में से १६ की व्युच्छित्ति हो जायेगी। ११७ पहले गुणस्थान में बंधयोग्य थी अब उसमें से जो जीव दूसरे गुणस्थानवाला है, ऐसा नहीं कहा कि पहले से दूसरे में जाता है। जो जीव दूसरे गुणस्थानवाला है, उसके यह पहले जो तीन नहीं बंध रही थी वे तो नहीं ही बंध रही। परंतु पहले गुणस्थान में जिन १६ की व्युच्छित्ति हुयी हैं, वे १६ तीन अबंध में हम मिला देंगे, तो दूसरे गुणस्थान में अबंध कितनी हो जायेगी ? सोलह और तीन, १९।

गुणस्थान	**व्युच्छित्ति**	**बंध**	**अबंध**
१	१६	११७	३ (तीर्थंकर, आहारकद्विक)
२	२५	१०१	१९
३	०	७४	४६
४	१०	७७	४३ (+ दो आयु, तीर्थंकर)
५	४	६७	५३
६	६	६३	५७
७	१	५९	६१ (+ आहारकद्विक)
८	३६	५८	६२
९	५	२२	९८
१०	१६	१७	१०३
११	०	१	११९
१२	०	१	११९
१३	१	१	११९
१४	०	०	१२०

अभी हम देखते हैं कि यह हिसाब कैसे लगाया है। ये नाना जीवों की अपेक्षा व्युच्छित्ति, बंध और अबंध हम यहां देख रहे हैं। देखो, यहां लिखा है व्युच्छित्ति, बंध, बंध का अर्थ है बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या और अबंध यानी जो उस गुणस्थान में नहीं बंध रही उन प्रकृतियों की संख्या। यहां व्युच्छित्ति को तो बाद में देखेंगे, बंध-अबंध

पहले देखेंगे। देखो बंध और अबंध मिलकर १२० टोटल होनी चाहिये। यानी अपना हिसाब कहीं चूक न जाये यह हम देखेंगे। कहीं लिखने में भी गलती हो सकती है।

पहले गुणस्थान में ११७ बंधयोग्य हैं, तीर्थंकर और आहारकद्विक ये बंधयोग्य नहीं हैं तो हमने लिख दिया तीन अबंध हैं। ख्याल में आती है बात ? यह कैसे लिखना और कैसे पढ़ना और कैसे समझना, समझने की बात मूल है। वहां पुस्तक में लिख दिया है ऐसे अगर हम टेबल बनायेंगे। यहां तो आपको समझने के लिये ऐसा लिखा। कहीं ऐसे आड़ा भी टेबल बनाते हैं। परंतु ये समझने में आपको और आसान हो जायेगा। बंधयोग्य हैं ११७ और अबंध में हैं तीन। कौनसी तीन हमने वहां अबंध में डाली हैं ? तीर्थंकर और आहारकद्विक। *श्रोता: आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग।* हां, आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग। पहले गुणस्थान में ही जो बंधती हैं, ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती उसको कहेंगे पहले गुणस्थान में १६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। दूसरे गुणस्थानवाला जीव इन १६ का तो बंध नहीं करेगा, उन तीन का भी नहीं करेगा। तो सोलह और तीन, १९ प्रकृतियां अबंध में चली जायेगी। १२० में से १९ नहीं बंधती तो कितनी बंधेगी ? *श्रोता: १०१।* १०१। तो बंधयोग्य प्रकृतियां हमने देखी हैं १०१। जो बंधयोग्य ही नहीं हैं उनके साथ पूर्व के गुणस्थान की व्युच्छित्ति मिला देना। सोलह और तीन १९ दूसरे गुणस्थान में अबंध हो जायेगी ।

अब तीसरे गुणस्थान की बात करते हैं। दूसरे गुणस्थान में कितनी बंधव्युच्छित्ति हुयी है ? *श्रोता: २५।* यहां पच्चीस की बंधव्युच्छित्ति हुयी और यहां उन्नीस थे, तो उन्नीस और पच्चीस कितने होते हैं ? ज़रा मुझे बताना। वहां लिखा है उसको मत पढ़ना। *श्रोता: ४४।* हां, ४४, परंतु यहां तो ४६ लिखा है। ऐसा क्यों ? क्योंकि तीसरे गुणस्थान में कोई आयु नहीं बंधती। तीसरे गुणस्थान के लिये दो आयु को हटाया इसलिये आयु को अबंध में डाला है, व्युच्छित्ति में नहीं डाला था। नरकायु इन १६ में ली थी और २५ में तिर्यंचायु ली थी, ये दो आयु ऑलरेडि हमने इन्क्लूड की हैं १६ और २५ में। चारों ही आयु का वहां बंध नहीं है, फिर भी दो तो यहां ली गयी थी और दो कौनसी आयु बची हैं अभी ? मनुष्यायु और देवायु जो आगे चलकर चौथे में बंधनेवाली हैं फिर दुबारा। इसलिये उन दो को भी यहां अबंध में लिया। ये अबंध उन्नीस, ये व्युच्छित्तिवाली पच्चीस और दो आयु, ४६ प्रकृतियों का बंध तीसरे गुणस्थान में नहीं होता; ४६ का नहीं होता, ७४ का

होता है। तीसरे गुणस्थानवाले को ७४ का बंध है, ४६ प्रकृतियों का बंध नहीं है।

अब हम चौथे गुणस्थानवाले की बात देखते हैं। तीसरे गुणस्थान में व्युच्छित्ति कुछ हुयी नहीं थी तो ये अबंधवाली यहां अबंध की अबंध लेते, परंतु चौथे गुणस्थान में आयु का बंध होता है। यह ४६ अबंध में से जो दो आयु वहां हमने बंध में से कम कर दी थी और अबंध में डाली थी वे अबंध में से बंध में फिर मिलायेंगे। ये दो आयु यहां मिल जायेगी और तीर्थंकर प्रकृति का भी बंध शुरू हो जायेगा। आहारकद्विक का तो नहीं होगा। चौथे गुणस्थान से तीर्थंकर प्रकृति बंधयोग्य प्रकृतियों में हम गिनायेंगे। हमने पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में उसको नहीं गिना था, अबंध प्रकृतियों में डाला था। अब यहां कौनसी आ मिलेगी ? यहां तीसरे में ७४ हैं और यहां चौथे में ७७ लिखी हैं, तीसरे गुणस्थान में बंध कम था ७४ का था और चौथे में ७७ का होने लगा। दो आयु आ मिली और तीर्थंकर प्रकृति भी। ये जो प्लस लिखा है न, वह बंध के लिये लिखा है और पहले गुणस्थान में लिखा था वह अबंध के लिये लिखा था। यहां दो आयु और तीर्थंकर बंधयोग्य में आ मिली, इसलिये ७४ से ये बढ़कर ७७ हो गयी। *श्रोता: दो आयु कौनसी मिली ?* हां, दो आयु कौनसी मिली ? *श्रोता: मनुष्यायु और देवायु।* हां, मनुष्यायु और देवायु। चौथे गुणस्थान में बंधयोग्य, अनेक जीवों की अपेक्षा। क्यों ? मनुष्य तो देवायु बांधेंगे, सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवायु का बंध करेंगे, सम्यग्दृष्टि तिर्यंच भी देवायु का बंध करेंगे। सम्यग्दृष्टि नारकी मनुष्यायु का बंध करेंगे और सम्यग्दृष्टि देव वे भी मनुष्यायु का बंध करेंगे। ये सारे नियम हैं। यहां तीसरे गुणस्थान में तो कोई व्युच्छित्ति नहीं थी और इन छियालीस अबंध में से ये तीन हमने कम कर दिये। इसलिये अबंध में ४३ रह गयी और बाकी यहां ७७ का बंध है। व्युच्छित्ति तो हमने देखी थी पहले।

अब यहां चौथे गुणस्थान में दस प्रकृतियों की व्युच्छित्ति हुयी। अब ये जो दस की व्युच्छित्ति हुयी है और यहां पर ४३ थी तो ये तो अबंध थी वहां पर और दस की और व्युच्छित्ति हुयी यानी इनका भी बंध रुक गया है। पांचवें गुणस्थानवाले को ४३ और दस, ५३ अबंध में चली जायेगी। पांचवें गुणस्थानवालों को कितनी प्रकृतियों का बंध नहीं हो रहा है ? अबंध प्रकृतियां कितनी हैं ? *श्रोता: ५३।* हां, तो चौथे में ४३ अबंध थी और चौथे में व्युच्छित्ति होनेवाली दस उसमें मिला दी तो ये जो ५३ प्रकृतियां - पांचवें गुणस्थान के लिये अबंध हो जायेगी। १२० में से ५३ गयी तो कितनी रह गयी ? ६७ प्रकृतियां

बंधयोग्य हैं। किसके ? पांचवें गुणस्थानवाले के। हम देख रहे हैं न, जीव मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर जितना ऊपर के गुणस्थानों में जायेगा उतना बंध घटेगा। यह तो नाना जीवों की अपेक्षा बात हो रही है। एक जीव की अपेक्षा उसमें और कुछ व्हेरिएशन्स हो जायेंगे। यहां ५३ प्रकृतियों का बंध रुक गया है। ये तो सारी अबंध में चली जायेगी।

अब छठे गुणस्थान की बात करते हैं। यहां पांचवें गुणस्थान में ५३ अबंध हैं और चार की बंधव्युच्छित्ति हुयी। कौनसे चार की ? *श्रोता: प्रत्याख्यानावरण।* प्रत्याख्यानावरण। प्रत्याख्यानावरण का बंध पांचवें में है और उसकी बंध की व्युच्छित्ति हुयी तो छठे में प्रत्याख्यानावरण का बंध नहीं होगा। तो ये चार और ये तिरपन मिलाकर ५७ अबंध हो जायेगी। ५७ अबंध हैं तो बंधयोग्य कितनी बची ? *श्रोता: १२० का हिसाब है।* १२० का हिसाब है अपना, तो ६३ बंधयोग्य हो जायेगी। अब छठे गुणस्थान की बंधव्युच्छित्ति ? *श्रोता: छह।* छह, कौनसी ? *श्रोता:अस्थिर।* अस्थिर। *श्रोता: अशुभ।* अशुभ। *श्रोता: असातावेदनीय।* असातावेदनीय। *श्रोता: अयशस्कीर्ति।* अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। छठे गुणस्थान में अबंध कितनी थी ? ५७ अबंध थी। ५३ अबंध थी न पांचवें गुणस्थान में और ये चार मिलकर छठे में अबंध ५७ हुयी और बंधयोग्य ६३ है। अब सातवें गुणस्थानवाला जो जीव उसके लिये सत्तावन और छह कितने होते हैं ? *श्रोता: ६३।* ६३ अबंध होने चाहिये थे। परंतु आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग का बंध शुरू हो जाता है। इसमें मिलाना है वह, ये सत्तावन और छह, तिरसठ हो जाते परंतु बंधयोग्य में आहारक की और दो मिला दी तो क्या हुआ ? अबंध में से मायनस हो गयी न ? बंध में मिला दी तो अबंध में से मायनस हो जायेगी। इसलिये सिक्स्टी थ्री के बदले कितनी ली यहां पर ? *श्रोता: ६१।* ६१। सातवें गुणस्थान में आहारकद्विक का बंध है इसलिये इसमें ले लिया उनको।

सातवें गुणस्थान में देवायु के बंध की व्युच्छित्ति होती है अब जो कोई आठवें गुणस्थानवाले जीव हैं उनमें अभी इसकी टोटल करना। सातवें में बंधव्युच्छित्तिवाली एक और अबंध इकसठ मिलाकर ६२ अबंध प्रकृतियां हैं। किसकी बात चल रही है ? आठवें गुणस्थान में ६२ प्रकृतियों का बंध नहीं होता। बंध कितने का होता है ? ५८ का होता है। अब आठवें गुणस्थान में व्युच्छित्ति कितने की देखी हमने ? *श्रोता: ३६ की।* ३६ की। पहले भाग में ? *श्रोता: दो।* हां, निद्रा और प्रचला दो। छठे भाग में तीस, हम नहीं

पूछेंगे कौनसी। वे हैं न ! तीर्थंकर है, निर्माण है, वज्रवृषभनाराचसंहनन है, ये सारे वे गति, जाति, सब शरीर जो जितनी हैं वे सारी, वे तीस और सातवें भाग में हास्य-रति और भय-जुगुप्सा वे चार। तो ३६ प्रकृतियों की बंध की व्युच्छित्ति होती है। यहां का एक और ये ६१ मिलकर आठवें में ६२ अबंध हुयी थी और ५८ का बंध था। तो ५८ का बंध था उसमें से ३६ का बंध रुक गया, ५८ में से ३६ मायनस करो और यहां अबंध में मिला दो। ६२ तो बंधती नहीं थी उसमें ३६ और मिला दो। कितने हो गये ? *श्रोता: ९८।* ९८। ९८ यानी यहां नौवें में अबंध ९८ प्रकृतियों का बंध नहीं है। किस गुणस्थान की बात चल रही है ? नौवें गुणस्थान की। कितनी प्रकृतियों का बंध हो रहा है ? *श्रोता: २२।* २२, अब यहां पर बंधनेवालों में से २२ में से पांच प्रकृतियों का बंध रुक जायेगा। कौनसी पांच ? एक पुरुषवेद और संज्वलन की चार। ये पांच चली जायेगी इनमें से, ये पांच और ये ९८ मिलकर १०३ हैं वे दसवें गुणस्थान में बंध के योग्य नहीं यानी अबंध प्रकृतियां हैं और कितनी बंधेगी यहां पर ? *श्रोता: १७।* दसवें गुणस्थानवाले को १७ प्रकृतियों का बंध है।

उनमें से कितने की व्युच्छित्ति हो रही है ? *श्रोता: १६ की।* १६ की। ज्ञानावरण पांच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पांच, चौदह; यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र इन १६ के बंध की व्युच्छित्ति हो जायेगी। तो अभी ग्यारहवें गुणस्थान में बंधयोग्य कितनी बची ? १७ में से १६ चली जायेगी तो १ बंधयोग्य है और ये १६ और १०३ मिलायेंगे तो ११९ प्रकृतियों का बंध नहीं है। एकमात्र सातावेदनीय का बंध है। ग्यारहवें में भी वहां कोई व्युच्छित्ति नहीं। बारहवें में भी एक का बंध है कोई व्युच्छित्ति नहीं। तेरहवें में भी एक का बंध है, ११९ का बंध नहीं है। परंतु तेरहवें में बंधनेवाली सातावेदनीय का बंध रुक जायेगा उसके अंत में। तो तेरहवें में एक बंधयोग्य रही थी और उस एक के बंध की व्युच्छित्ति हो जायेगी। तो चौदहवें में बंधयोग्य झिरो। व्युच्छित्ति का सवाल ही नहीं, बंध ही नहीं रहा और अबंधप्रकृतियां १२० यानी पूर्णरूप से वहां संवर हो जायेगा। बंध से मुक्त हुये अभी। अभी जो बंधी है ऑलरेडि उनसे मुक्त होना है। एक अंतर्मुहूर्त में हो जायेंगे। देखो, दो गाथाओं में ये सारी बातें वहां बतायी हैं बंधयोग्य और अबंधयोग्य।

श्रोता: चौथे में और सातवें में थोड़ा दुबारा ? चौथे में और सातवें में फिर दुबारा देखो, कैसे इसको समझना ? बंधयोग्य प्रकृतियां टोटल कितनी होती हैं ? तो १२० होती हैं। उसमें से पहले गुणस्थान में तीर्थंकर, आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग का

बंध नहीं होता। तो कहेंगे वे तीन प्रकृतियां अबंध, यानी बंधने योग्य नहीं हैं। अबंध कहेंगे हम उनको और बंध कितनों का होता है ? ११७ का। यह अनेक जीवों की अपेक्षा बात चल रही है। उसको कहते हैं नाना जीवों की अपेक्षा। यहां पहले गुणस्थान में १६ की व्युच्छित्ति होती है। तो यहां १६ की व्युच्छित्ति होती है तो दूसरे गुणस्थान में ये १६ तो बंधेगी ही नहीं और तीर्थंकर, आहारकद्विक का वहां अभी बंध नहीं है। तो ये सोलह और तीन १९ ये अबंध कहलायेंगी। दूसरे गुणस्थानवर्ती जीवों के लिये १९ प्रकृतियां अबंध में चली जायेगी। १९ गयी तो बची कितनी १२० में से ? *श्रोता: १०१।* तो १०१ प्रकृतियां वहां बंध रही हैं। दूसरे गुणस्थान में व्युच्छित्ति कितने की होती है ? *श्रोता: २५ की।* २५ की होती है। तो २५ की जो व्युच्छित्ति होती है और वहां तो १०१ बंध रही थी, है न ? और कितनी नहीं बंध रही थी ? १९ अबंध थी। १९ में हम २५ मिलायेंगे तो कितने होती हैं ? *श्रोता: ४४।* ४४ ही होती हैं। परंतु इन ऑडिशन तीसरे गुणस्थानवर्ती जीवों को आयु का बंध नहीं पाया जाता। आयु का बंध नहीं होता तो चार आयु मिलानी थी न ? नहीं, दो आयु ऑलरेडि हमने इन्क्लूड की हैं, एक १६ में और एक २५ में। इसलिये और जो बची हुयी दो आयु हैं उनको यहां ले लिया है अबंध में। तो अबंध की हो जायेगी ४६ और बंध की कितनी रह जायेगी ? *श्रोता: ७४।* ७४ रहती हैं।

अब तीसरे गुणस्थान में हमने जो दो आयु अबंध में डाली थी उनको चौथे गुणस्थान में बंध में ले लेना है। वहां तीसरे गुणस्थान में बंध कितने का हो रहा था ? ७४ का बंध हो रहा था। चौथे गुणस्थानवाले के लिये उनमें क्या-क्या और मिलाना ? *श्रोता: दो आयु और...* दो आयु और तीर्थंकर प्रकृति। इसलिये ७४ जो बंधयोग्य थी वे ७७ बंधयोग्य हो जायेगी और अबंध में से तीन कम हो जायेगी। ४६ अबंध थी तीसरे में तो चौथे में कितनी हो जायेगी अबंध में ? *श्रोता: ४३।* ४३ हो जायेगी। अब चौथे गुणस्थान में व्युच्छित्ति कितनी है ? तो दस की है। तो दस और पहले कितनी है ? ४३ थी। तो ४३ और ये १०, कितनी हो गयी ? *श्रोता: ५३।* ५३ अबंध में चली जायेगी। पांचवें गुणस्थान के लिये अबंध में ५३ और बंधयोग्य कितनी हैं ? ६७। अब पांचवें गुणस्थान में चार की व्युच्छित्ति होती है और वहां हमने अबंध की कितनी देखी थी ? *श्रोता: ५३।* हां, ५३ देखी थी न उसमें ? उसमें चार मिल गयी तो ५७ हो गयी तो छठे गुणस्थान में ५७ अबंध में चली जायेगी और बंधयोग्य ६३ रह जायेगी। यह छठे गुणस्थान की बात चल रही है।

छठे में ५७ हो जायेगी। पांचवें में जो चार बंधव्युच्छित्ति हुयी थी वे ५३ में मिलाने पर छठे गुणस्थान में ५७ अबंध में चली जाती हैं और ६३ बंधयोग्य में हैं और वहां छठे गुणस्थान में छह प्रकृतियों के बंध की व्युच्छित्ति होती है।

अभी सातवें गुणस्थान में क्या विशेषता है ? छठे गुणस्थान तक जो अबंध में पड़ी थी ऐसी आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग का बंध यहां सातवें में शुरू होगा क्योंकि उनका सातवें और आठवें में बंध है इसलिये जो अबंध में थी तो बंध में मिला देना उनको। यहां छठे गुणस्थान में ५७ का बंध नहीं था, उनमें अगर छह मिला देते तो सातवें के लिये तिरसठ अबंध होनी चाहिये थी, परंतु बंधयोग्य में दो और मिला दी हमने यहां पर। वहां अबंध में तिरसठ के बदले ६१ हो गयी और दो यहां ले ली बंधयोग्य में। तो ये ६१ अबंध हैं १२० में से। बंधयोग्य कितनी रह गयी ? ५९ का बंध रह गया। कौनसे गुणस्थान की बात चल रही है ? *श्रोता: सातवें की।* सातवें की। सातवें में बंधव्युच्छित्ति कितने की है ? *श्रोता: एक की।* एक की। कितना बंध हो रहा था अभी ? *श्रोता:* ५९ *।* कितना बंध हो रहा था ? ५९ का हो रहा था न ! हां, उसमें से एक बंधयोग्य चली गयी तो आठवें गुणस्थान में बंधयोग्य ५८ हो गयी और अबंध में एक बढ़ गयी। बंधयोग्य ५८ हो गयी और अबंध ६२ हो गयी।

नौवें गुणस्थान में क्या होता है ? आठवें में व्युच्छित्ति है ३६ की। वहां जो ६२ अबंध थी उसमें ३६ और मिल गयी, अबंध में चली गयी तो अबंध में ९८ प्रकृति होगी। बंधयोग्य कितनी बची अभी ? नौवें गुणस्थान में बंधयोग्य कितनी बची ? *श्रोता: २२ बची।* २२ बची। नौवें गुणस्थान में व्युच्छित्ति कितने की होती है ? *श्रोता: ५ की।* ५ की। दसवें गुणस्थान में एक पुरुषवेद और संज्वलन चार ये पांच उन अबंध में हमें मिलानी पड़ेगी। ९८ थी उसमें पांच मिला दो, कितनी हो गयी ? *श्रोता: १०३।* १०३ अबंध में चली गयी। १०३ अबंध हैं, बंध कितने का होगा ? *श्रोता: १७।* दसवें गुणस्थान में १७ का बंध है न ! १२० याद रखना है, १२० में से मायनस करते जाओ। दसवें गुणस्थान में १७ प्रकृतियां बंध रही हैं। उसमें से दसवें गुणस्थान में १६ के बंध की व्युच्छित्ति हो जायेगी - ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पांच, उच्चगोत्र और यशस्कीर्ति। ये ग्यारहवें में बंधेगी नहीं यानी बंध रुक गया है, तो १७ में से १६ गयी, अभी ग्यारहवें में १ बंधेगी और ११९ अबंधप्रकृति रह जायेगी। वही पोझिशन रहेगी वहां कोई

बंधव्युच्छित्ति नहीं इसलिये बारहवें में भी १ बंध रही है, ११९ अबंध हैं। तेरहवें में १ ही बंध रही है, ११९ अबंध हैं। परंतु तेरहवें में उस १ के बंध की व्युच्छित्ति होगी। वह अभी नहीं बंधेगी चौदहवें में। चौदहवें में कितने का बंध है ? झिरो का और अबंध में कितनी चली जायेगी ? सब की सब, १२०। तो कोई भी प्रकृति नहीं बंधेगी वहां।

लेकिन जो सत्ता में है उनका किस पद्धति से नाश होता है ? वह सत्त्व का और उदय का अलग प्रकरण है, उसकी बात अभी नहीं। एक-एक बंध को तो हम यहां मिटायें न ! बाद में फिर कम्पेअर करेंगे- कौनसा उदय कहां मिटता है, कौनसी सत्ता कहां क्षय हो जाती है, तो हमें सबका टोटल पिक्चर मिलेगा तो पूरा मोक्षमार्ग आपके हाथ में दिखायी देगा आपको, यह ऐसा होता है। ऐसी-ऐसी प्रकृतियों का बंध हो रहा था, ये इसतरह से उनका बंध भी रुकता है, उदय भी रुकता है तो सत्ता में पड़ी है उनका क्या होता है ? कहां कैसे वे संक्रमित होकर नष्ट हो जाती हैं वह भी ख्याल में आयेगा। वह तो क्रम से हम सीखेंगे परंतु ऐसे टेबल वहां आपको दिखायी देंगे। अब ये हमने केवल सभी गुणस्थानों में लगाया है। अब ये हम देवगति में लगायेंगे, नरकगति में लगायेंगे। वहां बंधयोग्य प्रकृतियां मूल में ही कुछ कट हो जायेगी न, सभी की सभी तो वहां नहीं बंधती हैं; सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय का बंध ही नहीं होता है। देवों के लिये नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु कुछ बंधती ही नहीं है तो उसको पहले से ही हम उसमें से बाद करेंगे, फिर उसका हिसाब करेंगे। जो बंधने योग्य है उनको बताकर फिर उसमें व्युच्छित्ति लगायेंगे। इसलिये अभी हमने इतना ही रखा है, यह जनरल है क्योंकि आगे आपके हाथ में पुस्तकें होगी, थोड़ा हम पढ़ेंगे उसमें से तो मार्गणाओं में व्युच्छित्ति, बंध, अबंध की बात सरल होती है।

इसीलिये वह विषय यहां अभी नहीं लिया जब हमारे हाथ में वह हिन्दी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड की पुस्तकें होंगी तब लेंगे। कभी होगी ? सबका प्रश्न यही है कभी होगी ? सर्वज्ञ भगवान उसे जानते हैं। हम कोशिश कर रहे हैं। हमको ऐसा लगता है कि हमारे करने से होगी, परंतु क्या ? करने से होती तो अभी हो जाती। उसका अनुवाद तो हो चुका है। संदृष्टि टाइप करनेवाले डीटीपीवाले नहीं मिलते हैं। वह बहुत तकलीफवाली बात है क्योंकि उसमें तो आपने देखी होगी पहले जीवकाण्ड की संदृष्टि। उसमें सारे सिम्बॉल होते हैं यानी असंख्यात के लिये, अनंत के लिये,

अलग-अलग चिन्ह होते हैं और वह टाइप करने के लिये। कोरल में ही जाकर चिन्ह बनाने पड़ते हैं, वह करने के लिये कोई डीटीपीवाले तैयार नहीं होते। बहुत तकलीफवाली बात है। कोई उसको हाथ लगाने के लिये तैयार नहीं है। फिर भी जब पुस्तकें तैयार हो जायेगी तो जरूर हम फिर दुबारा यहां मिलेंगे और उसको लेंगे, क्यों नहीं लेंगे ! अभी तो हमने जो बंध-अबंध देखा है उसका दो गाथाओं में इतना सारा वर्णन किया है आचार्यों ने। वह कैसे किया है ? हम देखेंगे गाथा नंबर १०३ और १०४।

सत्तरसेकग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेकोघे॥ १०३॥

यहां तो बंधवाली प्रकृतियों की संख्या बतायी हैं और आगे अबंधवाली की बतायी हैं। पहले बंधवाली हम देखेंगे गाथा के अनुसार। गाथा में कहा सत्तरस-एकग्ग-सयं यानी सत्रह और एक और आगे लगा लेना शत यानी सौ यानी सौ प्लस सत्रह ११७। देखना यहां पर आप। तो ११७ हुयी और फिर एक और शतक यानी १०१, क्रम से बता रहे हैं यानी पहले में, दूसरे में ये हमें समझना चाहिये। यहां तो गाथा में तो इतना ही बतायेंगे क्रम से। कहते हैं **चउसत्तत्तरि** यानी चार और सात और आगे सत्तर लगाया यानी ७४ और ७७ एक साथ ऐसे अलग-अलग बताया नहीं, चार और सात प्लस सत्तर **चउसत्तत्तरि** यानी ७४ और ७७। **सगट्ठि तेवट्ठी** ६७ और ६३। फिर कितना है ? **णवट्ठवण्णा** नौ और आठ और उसके साथ पचास लगाना यानी ५९ और ५८। **दुवीस** यानी २२ **सत्तारसेकोघे** सत्तारस एक यानी १७ और १, १, १। ओघे यानी गुणस्थानों में। यानी यह क्रम से गुणस्थानों में ऐसी बंधयोग्य प्रकृतियां हैं। कितनी हैं ? ११७ हैं, १०१ हैं, ७४ हैं, ७७ हैं, ६७ हैं, ६३ हैं, हां, ५९ हैं, ५८ हैं, २२ हैं, १७ हैं, १ है, १ है, १ है और झिरो। उन्होंने क्रम से चौदह गुणस्थानों में बंधवाली की संख्या एक गाथा में बता दी है। अबंधवाली प्रकृतियों की संख्या भी १०४ नंबर में बता रहे हैं।

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्त वण्णं च।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय सय तियउणवीससहिय वीससयं॥ १०४॥

तिय यानी तीन। अबंधवाली की संख्या देखना अभी एक-एक गुणस्थान में। पहले गुणस्थान में ३ अबंध हैं। **उणवीसं** यानी १९, **छत्तियतालं** छह और तीन और

तालं यानी चालीस, चालीस के साथ छह यानी ४६, यानी छह के साथ ताल लगाना और फिर तिय के साथ ताल लगाना यानी ४६ और ? *श्रोता: ४३।* ४३। फिर **तेवण्ण** यानी ? *श्रोता: ५३।* हां ५३, **सत्त** फिर **वण्णं** यानी ५७ फिर **इगिदुगसट्ठी, इगि** और **दुग सट्ठी** दोनों को साथ लगाना, **इगि सट्ठी** यानी ६१ और **दुग सट्ठी** यानी ६२। अब कहतें हैं ९८ के बदले एक बीच में **सय** शब्द डाला और कहते हैं **बिरहिय** , बिरहिय सय यानी दो से रहित सौ यानी ९८। उसी सौ के साथ और आगे शब्द लगाये **तियउणवीससहिय** यानी उसी सौ में तीन सहित सौ यानी १०३ और उन्नीस सहित सौ यानी ११९ और फिर बाद में कहते हैं **वीससयं** यानी १२०। तो ये दो गाथाओं में उन्होंने एक में तो बंधवाली प्रकृतियां गुणस्थानों में बतायी और एक में अबंधवाली।

देखो, आचार्यों की कैसी बुद्धि होगी कि एक-एक गाथा में उन्होंने इसको बता दिया है और इस गाथा का अर्थ खोलकर बतानेवाले भी जो अन्य आचार्य हो गये, अन्य ज्ञानी हो गये हैं कि इस गाथा का अर्थ खोल-खोलकर बताया है। अभी जयधवला का हमारा स्वाध्याय चलता है। अरे एक-एक गाथा पर एक-एक पुस्तक है वहां पर। अभी तो यहां हम स्थिति की बात देख रहे हैं, प्रदेशों की बात देख रहे हैं, प्रकृतियों की बात देख रहे हैं। वहां तो प्रकृतियां कैसे क्या होती हैं, उनमें कैसे संक्रमण होता है, क्या-क्या बातें होती हैं, कितने परमाणु होते हैं उनमें, कितने कम-ज्यादा होते हैं इस पर एक-एक, दो-दो पुस्तकें हैं पूरी। *श्रोता: एक-एक पुस्तक ४५० पेजेस की पूरी।* हां, एक-एक पुस्तक ४५० पेजेस की है और एक गाथा का अर्थ चार-चार, पांच-पांच पुस्तकों में चल रहा है। तो उस एक सूत्र की व्हॅल्यू कितनी है ख्याल में आता है ? तत्त्वार्थसूत्र टीकाओं में भी कैसा एक-एक सूत्र का अर्थ कितना खोलकर बताया है। ये कषायपाहुड के जो मूलसूत्र हैं उनका अर्थ चूर्णिसूत्र में यतिवृषभआचार्य ने, उसको और खोलकर बताया है। यह जो और खोलकर बताया है, वह भी हमारे समझ में नहीं आता है। तो उच्चारणाचार्य ऐसे आचार्य होते हैं उच्चारणा करते हैं यानी उस सूत्र को और खोलकर बताते हैं। फिर उन्होंने और खोलकर बताया। वह भी ख्याल में नहीं आता है तो वीरसेन स्वामी ने जयधवला और धवला की रचना की, तो और खोलकर बताया। वह भी कहां हमारे समझ में आता है ?

श्रोता: ये भी सारा मोहनीय कर्म में लगाते हैं। हां, जयधवला में तो मात्र मोहनीय

कर्म की बात है। धवला में तो सभी कर्मों की बात की है। अकेले मोहनीय कर्म के ऊपर जयधवला की सोलह पुस्तकें हैं। और वह भी शॉर्ट में क्योंकि मूल जो थी बारह अंगों की रचना कहां रही अभी ? उसमें से तो कुछ यथायोग्य बचा है हमारे नसीब से। परंतु हमें कहां पता है हमारा नसीब कहां है ? हमारा भाग्य किसमें कहां है ? *श्रोता: पैसा कमाने में।* पैसा कमाने में, हां। ये मनुष्य अच्छा कि तिर्यंच अच्छा ऐसा कभी-कभी मुझे सवाल आता है। क्यों ? तिर्यंच तो अपना पेट भरने के लिये पाप करता है और मनुष्य पेटी भरने के लिये। वह ऐसे-ऐसे पाप करता है, ऐसा धन कमाता है कि तिर्यंच तो पाप करता है पेट भरता है परंतु इसको पेटी भरने से फुरसत नहीं होती है। पेट भरने के लिये भोजन कहां मिलता है ? या तो टिफिन में खाता है या फिर रात को आकर भोजन करता है जो पाप ही पाप करता है। लोगों की ऐसी अभी अवस्था है।

बंध की हमने बहुत बात की है। किसकी ? प्रकृतिबंध की और यह बंध-अबंध किसतरह पढ़ना ? यह भी बात देखी हमने। यह गुणस्थानों में हमने देख लिया। ऐसी ही बात हर मार्गणा में लगाते हैं। जैसे हर मार्गणा का अर्थ क्या है ? मार्गणा कितनी हैं ? चौदह हैं। गतिमार्गणा में देवगति में कैसा होगा ? नरकगति में क्या-क्या होगा ? तिर्यंचों में कौनसी बंधयोग्य है ? कौनसी अबंध हैं ? अभी तीर्थंकर प्रकृति तो वहां बंधेगी नहीं, आहारकद्विक तो बंधेगी ही नहीं, गुणस्थान भी पांच ही होंगे। तो उनमें उसको लगा लेना। फिर इन्द्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय हैं, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय हैं वह इन्द्रियमार्गणा। कायमार्गणा में पांच स्थावरकाय हैं और त्रसकाय है। उसकी अपेक्षा उसमें अलग-अलग वर्णन होगा। अभी ये गुणस्थान, मार्गणास्थान का प्रकरण हमने जीवकाण्ड में देखा था। परंतु अभी ये बंध-अबंध सबमें नहीं लगायेंगे क्योंकि हर एक के सामने पुस्तक आवश्यक है।

अभी हम स्थितिबंध की बात यहां शुरू करते हैं। स्थितिबंध का अर्थ क्या है ? कितनी स्थिति बंधती है ? जब बंध शुरू होता है, हां, जब बंध होता है चार प्रकार का, कौन-कौनसे चार प्रकार के बंध देखे हमने ? *श्रोता: प्रकृतिबंध।* प्रकृतिबंध। *श्रोता: प्रदेशबंध।* प्रदेशबंध। *श्रोता: स्थितिबंध।* स्थितिबंध और। *श्रोता: अनुभागबंध।* और अनुभागबंध। अभी स्थितिबंध की बात चलेगी, पहले हम मूलप्रकृतियों में उत्कृष्ट स्थिति देखेंगे। मूलप्रकृतियां - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय वगैरह जो हैं उनकी

अधिक से अधिक स्थिति कितनी बंध सकती है उसको देखेंगे। देखो, गाथा नंबर १२७-

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं॥ १२७॥

क्या कहते हैं ? **तीसं कोड़ाकोड़ी** ३० कोड़ाकोड़ी किसमें ? **तिघादितदियेसु** यानी तीन घातिकर्मों में कितनी हैं ? ३० कोड़ाकोड़ी सागर। सागर की बात चल रही है, सागर का हमने प्रमाण देखा था। सागर किसको कहना ? *श्रोता: पल्य को देखा था।* हां, पल्य को देखा था। परंतु सागर किसे कहना ? १० कोड़ाकोड़ी पल्य का एक सागर होता है। ये कौनसे सागर की बात है ? अद्धासागर की। क्या सागर भी अलग-अलग होते हैं ? हां, होते हैं। यह जो हम देख रहे हैं कर्मों की स्थिति उसको हम कहेंगे अद्धासागर। जहां द्वीप और समुद्रों की संख्या गिनते हैं उसको कहेंगे उद्धारसागर और जो रोमखंडों की बात आती है वह व्यवहारपल्यों की उन व्यवहार पल्यों से जो बना है उसको कहेंगे व्यवहारसागर। तो व्यवहारपल्य किसको कहना ?

पहले एक बार हमने देखा था कि एक योजन चौड़ा, *श्रोता: राउंड।* राउंड नहीं, राउंड तो परिधि को कहते हैं, वह नहीं, ऐसा एक योजन डायमीटर। गोल गड्ढा करना है तो उसका डायमीटर यानी व्यास कितना चाहिये ? एक योजन, कौनसा योजन ? महायोजन। हां, दो हजार कोस का क्योंकि जो सामान्य योजन है वह चार कोस का एक योजन होता है और जब यहां प्रमाण योजन की बात होती है तो वह पांचसौ गुणा बड़ा है। तो ४ कोस X ५०० = २००० कोस का एक योजन जिसको हम प्रमाण योजन कहेंगे। तो उस प्रमाण योजनवाला एक योजन चौड़ा यानी विस्तारवाला उसका अर्थ क्या है ? एक योजन डायमीटरवाला और एक योजन डीप-ऊंडा ऐसा एक गड्ढा, जिसको पल्य कहते हैं, गर्त कहते हैं, उसको बनाना और उसको रोमखंडों से भर देना। वह हमने देखा था न, उत्तम भोगभूमिवाले जन्म के बाद सात दिन के अंदरवाले जो मेंढे के बच्चे, उनके जो बाल हैं उनका अग्रभाग; उन अग्रभागों से यानी रोमखंडों से वह ठसाठस भर देना और हर सौ साल के बाद एक रोमखंड निकाल देना। पूरा गड्ढा खाली होने के लिये जितना समय बीत जायेगा उस काल को क्या कहेंगे हम ? व्यवहारपल्य और उन रोमखंडों की संख्या को अगर हम असंख्यात करोड़ वर्षों के समयों से गुणा करेंगे तो आगेवाला उद्धारपल्य होगा। उसके रोमखंडों की संख्या

आयेगी। उसमें उतने ही समय होते हैं और उसको असंख्यात वर्षों के समयों से गुणा करेंगे तो अद्धापल्य के रोमखंडों की संख्या आयेगी। उतने ही उसमें समय पाये जाते हैं। देखो, पल्य जो है उसके असंख्यातवें भाग में असंख्यात करोड़ अरबों वर्ष चले जाते हैं। इतना पल्य का प्रमाण बहुत बड़ा है। हमें पता ही नहीं न क्या है ?

ऐसे दस कोड़ाकोड़ी; कोडाकोड़ी का अर्थ होता है करोड़ गुणा करोड़ यानी दस करोड़ गुणा एक करोड़ उसको कहेंगे दस कोड़ाकोड़ी। दस करोड़ गुणा दस करोड़ नहीं करना वह सौ कोड़ाकोड़ी हो जायेगा। दस करोड़ गुणा एक करोड़ यह दस कोड़ाकोड़ी होता है, कोड़ाकोड़ी यानी करोड़ गुणा करोड़। इतने पल्यों का एक सागर प्रमाण होता है। तो एक सागर, दो सागर ऐसे कितने सागर हम देख रहे हैं यहां पर ? अभी यहां ज्ञानावरण की तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति कितने समयों में ? कितने वर्षों में मिलकर बांधता है जीव ? *श्रोता: एक समय में।* एक समय में। समय कितना सूक्ष्म है मालूम है ? समय कहते किसको हैं ? हमें पता कहां हैं समय क्या है ? काल का जो सूक्ष्म में सूक्ष्म अंश है उसको समय कहते हैं। वह समय कितना सूक्ष्म है ? हमें तो सेकंड पता है। सेकंड भी पता है और आज की सायन्स ने तो तरक्की की है कोई नॅनो सेकंड भी निकाला है। हम देखते हैं न टीव्ही पर कोई ऑलिम्पिक्स वगैरह गेम चलती है तो उसके सेकंड के कितने भाग होते हैं ? *श्रोता: हंड्रेड।* हंड्रेड, हंड्रेड कहां रहे ? अरे लाख क्या वह जो नासा की दूरबीन वगैरह होती है न उसमें अरब, एक सेकंड के अरब इतने पार्ट किये जाते हैं। कॅमेरे भी ऐसे उसके होते हैं बहुत पॉवरफुल। वह अरब भी संख्यात संख्या है। यहां तो एक सेकंड में सैकड़ों यानी हजारों आवली होती हैं और एक-एक आवली में असंख्यात समय पाये जाते हैं। कितने असंख्यात ? *श्रोता: जघन्य युक्तासंख्यात।* जघन्य युक्तासंख्यात।

यह जघन्य युक्तासंख्यात क्या है ? एक मिनिमम असंख्यात का प्रमाण है जिसका नाम है जघन्य परीतासंख्यात। अभी वह कैसे निकालना उसमें नहीं जायेंगे। हां, *श्रोता: जघन्य युक्तासंख्यात की* संख्या *कैसे निकालनी ?* जघन्य युक्तासंख्यात की कैसे निकालनी उसको बतायेंगे। जघन्य परीतासंख्यात जो है वह मिनिमम असंख्यात है। छोटे में छोटा असंख्यात उसका नाम क्या है ? जघन्य परीतासंख्यात। अब उसको क्या करना है ? विरलन और देय करना यानी क्या करना ? हम ४ संख्या पर घटित

करते हैं। हमारे पास ४ संख्या है। उसको विरलन करना यानी १-१-१-१ में बिखेर देना। ४ को एक-एक में बिखेर देंगे तो क्या करेंगे ? एक-एक-एक-एक, ४ बार लिखेंगे न ! ४ बार एक-एक-एक लिख दिया तो हमने ४ का विरलन किया। हर एक-एक के ऊपर हम ४-४ लिखेंगे। यहां ४ लिखेंगे, यहां ४, यहां ४, यहां ४। चार बार ४ हो गये न ? अभी उन्हें आपस में गुणा करना। चार गुणा चार सोलह, और सोलह गुणा सोलह ? *श्रोता: दो सौ छप्पन।* दो सौ छप्पन। तो ४ का विरलन किया और ४ को ही देय दे दिया तो हमारी संख्या आयी दो सौ छप्पन। अपनी भाषा में फोर रेज्ड टु फोर इज ईक्वल टु टू फिफ्टी सिक्स। समझ में तो आता है न ! तो ऐसा ही क्या करना है ? यह छोटे में छोटा असंख्यात जो है जघन्य परीतासंख्यात, उसका विरलन कर दो। उसकी जितनी संख्या है एक-एक-एक-एक-एक करके लिख दो। *श्रोता: असंख्यात बार।* असंख्यात हो जायेगा न ? कितने एक लिखने हैं ? जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण एक लिखो, एक, एक, एक, एक और हर एक के माथे पर जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य परीतासंख्यात लिखते चले जाओ। बाद में क्या करना ? उनको आपस में गुणा करते चले जाओ। अपनी भाषा में जैसे हमने वह फोर रेज्ड टु फोर किये थे, वैसे अभी जघन्य परीतासंख्यात रेज्ड टु जघन्य परीतासंख्यात करना। जो कोई संख्या आयेगी वह है जघन्य युक्तासंख्यात। यह क्या है ? एक आवली में इतने समय होते हैं और ऐसी हजारों कोड़ाकोड़ी आवली एक सेकंड में होती हैं तो समय कितना सूक्ष्म होगा !

यह समय इतना सूक्ष्म है ऐसे एक समय में, हर समय में हम कर्म का बंध कर रहे हैं। कितने कर्म ले रहे हैं ? अनंत और ये एक समय में जो कर्म ग्रहण किये हैं वे कितने काल तक सत्ता में रहनेवाले हैं ? मिथ्यात्व का यदि उत्कृष्ट बंध करे कोई जीव तो कितनी स्थिति बांधी उसने ? *श्रोता: ७० सागर।* ७० कोड़ाकोड़ी सागर ! केवल सागर नहीं, कोड़ाकोड़ी सागर। एक-दो नहीं, ७० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट बंध करता है। स्थितिबंध की बात चल रही है। इतनी उत्कृष्ट स्थिति बांधता है यानी उसके जो परमाणुओं का एक-एक निषेक बनेगा न, प्रत्येक समय में एक-एक-एक-एक निषेक, कहां तक उदय चलेगा उसका ? एक समय में बंधे हुये का उदय लगातार कितने साल चलेगा ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक और ऐसा बंध हर समय चल रहा है। *श्रोता: अनादि से।* अनादि से, हां। तो आदत हो गयी न ? हां। मैं यह नहीं कहना चाहती

कि हर समय उत्कृष्ट बांध रहा है, परंतु फिर भी वह बांध तो रहा ही है।

अभी एकेन्द्रिय जीव एक सागर भी बांधे तो भी क्या है ? एक सागर का प्रमाण कितना हुआ ? इसका बंध हर समय चल रहा है अब उस बंधे हुये का उदय भी चलेगा ही चलेगा क्योंकि जो बंधा है, सत्ता में पड़ा है वह तो उदय में आने से रहा। तो इतने सागरों के कर्म हम एक-एक समय में बांधते हैं। अकेले मिथ्यात्व थोड़े ही बांध रहे हैं ? अभी हमने देखे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तो ११७ बंधयोग्य प्रकृतियां हैं, उसमें यथायोग्य एक जीव जितना बांधता होगा और वह भी ऑल्टरनेट कभी यह कभी वह। कभी न कभी ११७ प्रकृतियां तो बांधते ही रहते हैं न हम ? कभी न कभी तो बांधते ही रहते हैं और वह कितने भवों तक चलती रहेगी ? अभी हम मनुष्य आयु की बात करते हैं कि यह सौ साल जिया। अरे ! कितनी लंबी आयु ! यह तो कुछ नहीं है फिर भी इसमें प्रत्येक समय में वह जो परिणाम करता है वह परिणाम के अनुसार उसमें तो प्रकृति भी बंध रही है, प्रदेश भी बंध रहे हैं, स्थिति भी कितनी ? अधिक-कम, अधिक-कम बंध रही है और अनुभाग सहित बंध रही है। इसके ये परिणाम कभी विशुद्धिवाले, कभी संक्लेशवाले होते रहते हैं परंतु जब तक इसके वीतरागता प्राप्त नहीं हुयी है तब इसमें से छूटने का मार्ग इसको कभी मिलनेवाला नहीं।

लोग कहते हैं हम यह करणानुयोग नहीं पढ़ेंगे। नहीं पढ़ते थे तब तक तो अच्छा था। अभी तो इतने सारे कर्म सुनकर भय लगता है। परंतु हमें तो कुछ हल्का-हल्का लगता है, कुछ बोझा लगता ही नहीं है। बॉडि को तो मेंटेन करते हैं, कर्मों को कौन मेंटेन करेगा ? ना बॉडि हम हैं ना कर्म हम हैं, हमारा स्वरूप ही कुछ अलौकिक है। परंतु हमने यह जो कोई बाहर दिखायी दे रहा है यही हमारा स्वरूप है मान लिया है और फिर उसके लिये जो कोई राग-द्वेष परिणाम करते हैं, मिथ्यात्व के परिणाम करते रहते हैं उसके कारण इतना बंध होता रहता है। यह जन्म-मरण का चक्र चल रहा है, कभी कुछ प्रकृतियां बंधेगी, कभी कुछ प्रकृतियां बंधेगी। इसमें कौनसे कर्म की स्थिति कितनी बंधती है ? उसका विचार हम आगामी क्लास में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१६. मूलप्रकृति - उत्कृष्ट स्थितिबंध

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। उसके कर्मकाण्ड के आधार से और उस पर पं. टोडरमलजी ने जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से हम यहां बंध के संबंध में कुछ चर्चा कर रहे हैं। हमने देखा है जो बंध होता है कर्मों का, उसमें प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है। उसमें भी हमने देखा था कि उत्कृष्ट भी होता है, अनुत्कृष्ट भी होता है, अजघन्य भी होता है, जघन्य भी होता है। अभी यहां अपनी स्थितिबंध की बात प्रारंभ हो गयी है। जीव कितनी स्थिति का बंध करता है इसकी बात हम अभी यहां करेंगे। अधिक से अधिक कितना कर सकता है, कम से कम कितना करता है, मध्यम तो सब यथायोग्य करेंगे ही। मूलप्रकृतियों में उत्कृष्ट स्थिति पहले में पहले बतायेंगे। जो आठ मूलप्रकृतियां हैं उनमें यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिबंध करता है तो कितना करता है बतायेंगे। फिर कौनसे जीव को इतना उत्कृष्ट बंध होता है उसको कहेंगे, उसका स्वामित्व यानी वह कौन करता है उसकी बात यहां बतायेंगे। यहां बहुत विस्तार से बात नहीं होगी फिर भी अभी जो यथायोग्य है उसको हम देखेंगे। १२७ नंबर की गाथा हम दुबारा पढ़ेंगे कि मूलप्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी पायी जाती है।

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं॥ १२७॥

यानी ३० कोड़ाकोड़ी सागर की बात है। यह सागर बात कहां आयी इस गाथा में ? तो **उवही** यानी उदधि, उदधि यानी सागर। दूसरी लाइन में बता दिया। ३० कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति कौन-कौनसे कर्मों में बंधती है ? तीन घातियों में बता दी; ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय। तीन घातिकर्मों में ३० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है, वेदनीय में भी। तीन घाति का अर्थ क्या है ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय ये तीन घातिकर्म। अब उनके साथ वेदनीय का भी उत्कृष्ट स्थितिबंध ३० कोड़ाकोड़ी सागर है। तो उसके बाद नाम और गोत्र में कितना है ? *श्रोता: २० कोड़ाकोड़ी सागर।* २० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट बंध। एक ही परिणाम चल रहा है जीव का और ज्ञानावरण में ३० कोड़ाकोड़ी का बंध हो रहा है, ज्ञानावरण,

दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय चारों में ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी सागर।* ३० कोड़ाकोड़ी सागर का, नाम और गोत्र में २० कोड़ाकोड़ी सागर का और मोहनीय कर्म में ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हो रहा है। परिणाम एक, अनंतानंत पुद्गल परमाणु बंध रहे हैं और प्रत्येक में स्थिति अलग और उसमें अनुभाग अलग बंध रहा है।

हम उत्कृष्ट स्थिति की बात कर रहे हैं क्योंकि जो निषेक रचना हमने पहली देखी थी, एक समय में जब हम कहते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर का मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध हुआ तो जो अनंत परमाणु मिथ्यात्व के खाते में आये हैं उनकी रचना कैसी होती है ? तो आबाधा छोड़कर यानी ७००० वर्ष छोड़कर उसके बाद प्रति समय में एक, एक, एक, एक निषेक की रचना हो जाती है यानी कितने परमाणु जीव एक समय में ग्रहण करता होगा ? ७००० वर्ष और एक समय से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक, प्रत्येक निषेक में कितने ? अनंत-अनंत परमाणु हैं, उनकी ऐसी निषेक रचना होती है और उसका उदयकाल उतना चलेगा ! जीव जितनी स्थिति बांधता है, हम समझने के लिये मान लेते हैं १०० समय की स्थिति बांधी है क्योंकि बार-बार वह ७० कोड़ाकोड़ी को कहां याद करेंगे ? तो १०० समय की स्थिति बांधी हो, मान लेते हैं उसमें ५ समय की आबाधा चली जाये तो कितने निषेक बनेंगे ? ५ समय छोड़ दो उसके। *श्रोता: ९५ निषेक।* हां, ९५ निषेक बनेंगे न ऊपर ? तो इसतरह से वहां भी निषेक रचना होती है। हर निषेक में कितने-कितने अनंतानंत परमाणु पाये जायेंगे। तो एक समय में ऐसा बंध होता है। ऐसा प्रत्येक समय में बंध होता ही चला जाता है। जो १०० समय की बात हमने देखी थी इसका उदयकाल कितने समय का देखा ? ५ समय तक तो उदय नहीं है क्योंकि निषेक की रचना वहां बनी नहीं है तो जो एक समय के बंधे हुये का उदयकाल कितने समय तक चलेगा ? *श्रोता: ९५ समय तक।* ९५ समय तक लगातार चलेगा।

एक समय में बांधा है। उस समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध की बात चल रही है तो उसके आबाधाकाल में उदय नहीं होगा ? पूर्व में बंधे हुये का होगा क्योंकि एक-एक समय की बात चल रही है। ऐसा एक-एक समय करके हम प्रवाहरूप से हर समय बांधते आ रहे हैं, तो प्रवाहरूप से हर समय उसका उदय भी चल रहा है। ऐसा नहीं है कि इसकी आबाधा है तो उदय नहीं, ऐसा है ही नहीं क्योंकि अभी इस भव में बंधे हुये

की आबाधा चल रही है परंतु जो ७००० वर्ष पहले बंधे थे या जिनकी आबाधा अभी पूरी हुयी है उनका तो लगातार सबका उदय तो चल ही रहा है। यानी उदय तो हर समय चल रहा है और बंध भी हर समय चल रहा है। परंतु एक समय में मान लेते हैं कि उसने एक लाख परमाणु बांधे, १०० समय का स्थितिबंध हुआ, हमने देखा निषेक रचना ९५ समय की हो गयी। ये सारे लाख परमाणु बंधे हैं, वे एक साथ तो उदय में नहीं आयेंगे। ९५ जो निषेक बने हैं तो ॲट अ टाइम एक निषेक उदय में आयेगा। एक समय में बंधे हुये की बात चल रही है। इस समय एक समय में बंधे हुये का एक निषेक, अन्य समय बंधे हुये उसका एक निषेक और अन्य समय में बंधे हुये उसका एक निषेक; ऐसा सबके टोटल करेंगे वे एकसाथ उदय में आयेंगे। सत्ता में भी पड़े रहेंगे और उदय में भी आयेंगे। उदयकाल किसको कहेंगे ? आबाधा को छोड़कर जितनी निषेक रचना हुयी है, जो स्थिति बंधी थी उसमें से आबाधाकाल मायनस कर दो, उतने समय तक उसका उदयकाल कहेंगे।

सात कर्मों में आबाधा प्लस उदयकाल इज ईक्वल टु स्थिति। जब हम कहेंगे १०० समय की स्थिति बंधी है तो उदयकाल हमने कितना देखा अभी ? *श्रोता: ९५ समय।* ९५ समय। तो ५ समय की आबाधा देखी हमने, तो उसका उदयकाल कितना हुआ ? ९५ समय और आबाधा ५ समय, कितनी स्थिति बांधी थी तो १०० समय। ऐसा ही जो यथार्थ में स्थिति बंधी है - ७० कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति बंधी है तो ७००० वर्ष की आबाधा है, जो रिमेनिंग सारे इतने सागरों के जो समय हैं, उस एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है और उतने काल तक एक समय में बंधे हुये कर्मों का उदय लगातार चलेगा। उसके साथ अन्य-अन्य समयों में बंधे हुये की टोटल होती चली जायेगी। हमें तो ॲग्रिगेट फल मिलेगा। हमने जो-जो डिपॉझिट रखे हैं, जिनकी-जिनकी मॅच्युरिटी आज है उन सबकी टोटल राशि हमको मिलेगी। ऐसे ही निषेक में समझना। जिन-जिन निषेकों की अभी स्थिति पूरी हुयी है वे सभी एकसाथ उदय में आयेंगे - वे अलग-अलग समयों में बंधे हुये हैं और ॲट अ टाइम वे सारे अनंत परमाणु उदय में भी आते हैं और जैसा उनका अनुभाग है उस मात्रा में उनका फल भी मिलता है।

वह कर्म कुछ देता नहीं है। जीव स्वयं उसरूप परिणमन करता है तो वहां उस कर्म का उदय कहलाता है। यह जीव के हाथ की बात है यदि वह तत्त्वचिंतन में लीन

हो जाये, यथार्थ में समझ जाये, देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करे, तत्त्व का यथार्थ चिंतन करे तो ये सारे अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग जो हैं वे अनंतगुणा हीन होकर उदय में आते हैं। हमें फल कितने परमाणु उदय में आते हैं उसका नहीं मिलता। पहले बंधे हुये कितने कर्म उदय में आये उससे कुछ लेना देना नहीं है। हमें जो फल मिलता है कर्मों के अनुभाग का मिलता है क्योंकि हमने तो देखा मुनियों के तो असंख्यातगुणी निर्जरा हो रही है यानी उनके तो एक समयप्रबद्ध के बदले असंख्यात समयप्रबद्ध खिर रहे हैं यानी परमाणु असंख्यातगुणा खिर रहे हैं। तो वहां उनको और अधिक तीव्र उदय होना चाहिये था, परंतु ऐसी बात नहीं है। उनके अशुभकर्मों का अनुभाग घटकर उदय में आता है और शुभकर्मों का अनुभाग बढ़कर उदय में आता है। परमाणु कितने उदय में आते हैं उनसे हमारा कोई निमित्त नहीं बनता। किस प्रकृति का और कितने अनुभाग में उदय हो रहा है - यह उदय की बात है। अभी यहां हम कौनसी बात देख रहे हैं ? बंध की और वह भी स्थितिबंध की। स्थितिबंध इसलिये हम देख रहे हैं कि उसका उदयकाल लगातार उतने समयों तक, उतने वर्षों तक, उतने सागरों तक चलेगा। अब ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक कितने भव चले जायेंगे इसके ? *श्रोता: कितने भवों तक चलेगा ?* कितने ही भवों तक यह एक समय में बंधे हुये का उदयकाल चलेगा और ऐसा लगातार उसमें चलता रहता है।

श्रोता: आबाधाकाल को मायनस *कर दिया इसमें ?* आबाधाकाल में उस समय बंधे हुये का उदय नहीं है। देखो, आबाधाकाल किसको कहना फिर देखेंगे। एक समय में जो बंध होता है,अभी हमने देखा न, मान लेते हैं सौ समय का बंध हुआ; मानने के लिये, वास्तविक में सौ समय का कभी बंध होता ही नहीं। तो सौ समय का बंध हुआ है तो उसमें पांच समयों तक उस समय बंधे हुये परमाणुओं का उदय नहीं पाया जाता यानी उसमें उसकी निषेक रचना नहीं होती। तो कबसे होगी ? छठे समय से लेकर होगी। यानी छठे समय में एक निषेक है, सातवें समय में एक, आठवें में एक, नौवें में एक, सौवें में एक। तो ये सारे निषेक कितने हुये ? छठें से लेकर सौवें तक यानी नाइन्टी फाइव, पंचानवे निषेक हुये तो उदयकाल कितना कहलायेगा ? *श्रोता: पंचानवे समय का।* उदयकाल पंचानवे समयों का और आबाधाकाल ? *श्रोता: पांच समय का।* पांच समय का। तो स्थिति कितनी बांधी थी ? *श्रोता: सौ समय।* सौ समय क्योंकि स्थिति तो

हम बंध के समय से गिनते हैं। बंधने के बाद कितने काल के बाद वह अंतिम निषेक उदय में आयेगा ? तो १०० समय में, इसलिये १०० समय की स्थिति बांधी है। ५ समय तक उसमें बंधी हुयी के कोई उदय नहीं है; पहले बंधे हुये का उदय चल रहा है उसकी बात नहीं चल रही है। हम एक समय में बंधे हुये परमाणुओं का हिसाब लगा रहे हैं। तो जो कर्म का बंध होता है, जितनी स्थिति बंधी है, उसमें से आबाधाकाल को घटा देते हैं तो उर्वरित को कहेंगे उदयकाल यानी स्थिति इज ईक्वल टु आबाधाकाल प्लस उदयकाल। अब यह जो स्टेटमेंट है - यह जो कथन है, वह सात कर्मों में ही लागू होगा, आयुकर्म में नहीं।

आयुकर्म में हमने देखा था कि उसकी आबाधा पूर्वभव में ही चली जाती है। जिस समय से आयु का बंध है; हमने देखा कि भुज्यमान आयु के त्रिभाग में आगामी आयु का बंध है। कोई अभी करोड़पूर्व आयुवाला जीव है, विदेहक्षेत्र में होती है न इतनी बड़ी आयु ! तो उसने त्रिभाग में बंध किया। *श्रोता: आबाधाकाल पूर्ण होने के बाद निषेक रचना होती है या उससे पहले हो जाती है ?* निषेक रचना ? निषेक रचना बंध के समय होती है। *श्रोता: अपकर्षण, उत्कर्षण... /* अभी यहां अपकर्षण की बात नहीं कर रहे हम। अपकर्षण के द्वारा एक आवली के बाद उसका उदय भी शुरू हो जाता है, भले ही वह ७००० वर्ष की आबाधा क्यों न बंधी हो। बंधने के बाद उदीरणा होकर एक आवली में उसका उदय शुरू होता है। अभी हम तो बिगिनिंग से- शुरू से बात कर रहे हैं। यह प्रश्न मुझे भोपाल से भी आया था पं. राजमलजी साहब से। कोई दो-तीन विद्वान वहां इकट्ठे हुये थे। उन्होंने कहा आबाधाकाल बीत जाने के बाद वहां निषेक रचना होती है- ऐसी बात नहीं है। कैसी बात है ? बंध के समय यह निषेक रचना पायी जाती है। तो जिस समय बंध हुआ, अभी हम सौ समय की बात करेंगे। जिस समय बंध हुआ, उस समय ही पांच समय को छोड़कर छठे समय में एक निषेक, सातवें में एक, आठवें में एक, नौवें में एक, सौवें में एक... यह निषेक रचना हम किस समय कह रहे हैं ? बंध के समय कह रहे हैं। पांच समय बीत जाने के बाद कोई निषेक रचना नहीं होती है और ऐसी कोई रचना वहां कर्मों में होती ही नहीं है। यह तो हमारे पेपर पर, हमारी पुस्तकों में होती है क्योंकि समझाने के लिये होती है। परंतु कर्मों में यह जो स्थिति पड़ी है, वह बंध के समय पड़ेगी या बाद में पड़ेगी ? जो पहला निषेक है

वह कब खिरेगा ? छठे समय में खिरेगा। तो उस पहले निषेक की स्थिति कितनी है ? ६ समय। दूसरे निषेक की स्थिति ? ७ समय। तीसरे निषेक की स्थिति ? ८ समय और ये जो पंचानवे नंबर का निषेक है, निषेक हो ! उसकी स्थिति कितनी है ? तो १०० समय। ख्याल में आती है यह बात ? तो यह जो स्थिति पड़ती है, प्रत्येक एक-एक लॉट में वह बंध के समय पड़ती है। उन साहब का ऐसा ही प्रश्न था कि आबाधाकाल बीत जाता है और बाद में वहां निषेक रचना होती है ? ऐसा बिलकुल नहीं है। बंध के समय ही यह निश्चित होता है कि इतना आबाधाकाल है और उसके ऊपर इतने निषेक हैं। प्रत्येक समय में वहां एक-एक लॉट - परमाणुओं का एक एक समूह अपनी-अपनी स्थिति लिये है। बंध के समयवाली स्थिति कह रहे हैं हम।

उसके बाद उसमें उत्कर्षण होता है, अपकर्षण होता है, संक्रमण होता है उसकी बात हम नहीं उठा रहे हैं। केवल बंध के समय क्या हो रहा है उसकी यहां बात हो रही है, क्योंकि हमने सुन भी रखा है न कि उसमें अपकर्षण होता है, उत्कर्षण होता है, परंतु वह क्या होता है हमने अभी तक देखा नहीं है। बंध के समय की बात हम देख रहे हैं। *श्रोता: क्या आबाधाकाल टेन पर्सेंट होता है ?* नहीं ! टेन पर्सेंट कैसे होगा ? हमने क्या देखा ? एक कोड़ाकोड़ी सागर के लिये सौ वर्ष। अभी कितने पर्सेंट हुआ ? कोड़ाकोड़ी का अर्थ क्या होता है ? करोड़ गुणा करोड़। करोड़ गुणा करोड़ यानी एक के ऊपर कितने झिरो ? *श्रोता: चौदह झिरो।* चौदह झिरो और आगे इतने सागर लगाना, खाली कोड़ाकोड़ी नहीं कहा। कोड़ाकोड़ी वर्ष कहते तो एक के ऊपर चौदह झिरो और नीचे एक के ऊपर दो झिरो, सौ वर्ष की आबाधा। तो-तो आप कह सकते हैं कि वह तो बारह झिरो लगाओ उतने प्रपोर्शन में। वहां आगे सागर लगाना मत भूलना और हमने अभी देखा सागर तो कितना बड़ा, लंबा, चौड़ा है ! तो कोई प्रपोर्शन ऐसा नहीं लगा सकते। पर्सेंट कोई कह ही नहीं सकते ऐसे। वह कितना, उसका असंख्यातवां भाग है। जितनी स्थिति बंधी है उसके असंख्यातवें भागप्रमाण आबाधा है।

यह तो पहले समय में, बंध के समय है। एक आवली पश्चात्; आवली कितनी छोटी है ? पलक झपके उसमें तो कितनी ही आवली चली जायेगी ! उतने में कुछ परमाणुओं की उदीरणा होकर एक आवली में उसका उदय शुरू हो जाता है, हो सकता है। होती भी है ऐसी उदीरणा, हर एक कर्म में होती है; उसकी बात हम नहीं ले

रहे क्योंकि वह प्रकरण ही अलग हो जायेगा। अभी तो बंध के समय क्या हो रहा है, उसको देखेंगे। उसके एक समय बाद, दो समय बाद, आवली बाद क्या-क्या होता है उसमें ? वह तो आगे का अलग विषय है क्योंकि पहले हम बेसिक पढ़ेंगे तो हम आपको आगे की बात सिखा पायेंगे, है न ! तो यहां जो देख रहे हैं कि जिस समय जो बंध हुआ है उसमें विशिष्ट स्थिति पड़ती है। स्थिति क्यों बंधती है ? कषाय के कारण बंधती है, कषाय के कारण स्थिति का बंध होता है यह हमने देखा है न। प्रकृति क्यों बंधती है ? तो योग के कारण बंधती है। गुणस्थान के अनुसार हमने कहां कौनसी प्रकृतियां बंध के योग्य हैं, कौनसी अबंध हैं, किन प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है - सब देख लिया है। अभी अपना प्रकरण स्थितिबंध का चल रहा है। कर्मों में स्थिति का बंध क्यों होता है ? इतने साल तक उसका उदय क्यों चलता रहता है ? तो कहते हैं कषाय के कारण उसमें स्थिति पड़ती है। अनंतानंत परमाणुओं का बंध होता है। एक-एक लॉट में जो-जो स्थिति पड़ेगी, अभी हमने सौ समयों का उदाहरण लिया है तो कितने ही परमाणुओं में छह समय की स्थिति है, कितने ही में सात समय की स्थिति पड़ी है, कितने में आठ समय की स्थिति पड़ी है और कितने ही में सौ समय की पड़ी है। जो मॅक्झिमम स्थिति पड़ी है, हम कहेंगे उस समय सौ समय की स्थिति बंधी। जब हम कहते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हुआ है उस जीव को, तो एक समयप्रबद्ध के सभी अनंत परमाणुओं में उतनी स्थिति नहीं बंधी है। किन्हीं परमाणुओं में ७००० वर्ष और एक समय इतना स्थिति का बंध पड़ा है, दूसरे निषेक में ७००० वर्ष और दो समय, तीसरे निषेक में ७००० वर्ष और तीन समय इसतरह से उसमें स्थिति पड़ी है और उस स्थिति का जो कुछ बढ़ना-घटना होता है वह तो बाद का विषय है।

अभी बंध के समय आबाधा प्लस उदयकाल मिलकर स्थिति है यानी स्थिति में से आबाधा को घटा दो, मायनस कर दो तो जो बचेगा उतने काल तक हर समय उस कर्म का उदय होता रहेगा। बंध की अपेक्षा लगाना। आप कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर की बात कर रहे हैं आप और किसी जीव को सम्यक्त्व हो जाये, उसी भव में मोक्ष चला जायेगा तो उसके ७० कोड़ाकोड़ी का क्या होगा ? उसमें जो कुछ होना है वह हो जायेगा। उसका क्या-क्या होता है वह बाद में देखेंगे हम। ऐसा भी हो सकता है, अरे ! ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करके एक अंतर्मुहूर्त में जीव को वेदक सम्यक्त्व हो

सकता है, पता ही नहीं न हमको। हम तो बस ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध कराते रहते हैं उसको और यह ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध तो किसी-किसीको हो सकता है, सभी जीवों को इतना लंबा बंध नहीं होता। ऐसा भी होता है कि चारों गतियों में एक भी जीव ऐसा नहीं मिलेगा कि जो ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध कर रहा है। कितने काल तक ऐसा हो सकता है ? अंगुल के असंख्यातवें भाग काल तक। यह अंगुल का असंख्यातवां भाग क्या होता है ? पल्य का तो माप देख लिया न आपने, अब अंगुल का भी देख लो। आप कहेंगे अंगुल का क्या बताना है ? अंगुल तो इतनासा है। तो पल्य बड़ा कि अंगुल बड़ा ? पल्य बड़ा कि अंगुल बड़ा ? हां बोलो। *श्रोता: पल्य।* पल्य बड़ा ? *श्रोता: अंगुल बड़ा।* अंगुल बड़ा। क्यों ? थोड़ा देख लेते हैं कि अंगुल का भी क्या स्वरूप है ? क्योंकि देखो संख्यायें जो हैं, संख्यामान जिसको कहते हैं, उसको समझे बिना हमें यह शास्त्र पढ़ते समय उसका कुछ अंदाज़ा ही नहीं आता कि हम क्या पढ़ रहे हैं। उन संख्याओं की कितनी मॅग्निट्यूड है इसका पता ही नहीं चलता है। अंगुल होगा न ? हां, होगा, उसमें क्या है ? वहां तो पल्य के लिये कितना बड़ा गड्ढा किया था हमने ! एक प्रमाण योजन ऐसा चौड़ा और ऊंडा। तो यहां तो आप अंगुल कह रहे हो। अंगुल किसको कहना ? यह उंगली- तर्जनी की जो चौड़ाई है उसको अंगुल कहना। परंतु उसमें प्रदेशों की संख्या देखते हैं।

देखो, एक है द्विरूपवर्गधारा, नाम सुना है कभी द्विरूपवर्गधारा का ? दो रूप यानी दो संख्या। यह सीक्वेन्स जो है धारा, वह हमारी गणित की कुछ धारायें होती हैं। जैसे फॉर इन्स्टन्स बे एकम बे, बे दूनी चार, बे त्रिक छह हैं न ! *श्रोता: दो इक्के दो।* हां, दो इक्के दो, दो दूनी चार, दो तिया छह। हमें वह मराठी की आदत है न ! तो ऐसे ही यहां क्या लिखना है ? दो का वर्ग कितना है ? चार। वहां पहली संख्या लिखना चार। इसके आगे क्या करना है ? वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग करते जाना। पहला वर्ग है ४, दूसरा वर्ग है १६, तीसरा २५६, चौथा ? *श्रोता: नहीं आता।* नहीं आता ? ६५५३६ जिसको कहते हैं पणट्ठी और पणट्ठी का वर्ग ? *श्रोता: बादाल।* बादाल, वह तो टेन डिजिट प्रमाण है। बादाल का वर्ग इकट्ठी, वह तो ट्वेंटी डिजिट प्रमाण है। हमारे पूरे बारह अंगों के अपुनुरुक्त अक्षर कितने हैं ? तो इकट्ठी मायनस एक। पता ही नहीं न कितनी बड़ी बारह अंगों की रचना हुयी थी और क्या-क्या था उसमें ! तो ऐसे वर्ग का

वर्ग करते जाओ। यह तो हमने दो, चार बार किया तो हम थक गये। आगे हमने चलो आप बोलो, हम सुनते हैं ऐसा कह दिया। असंख्यात बार वर्ग, वर्ग, वर्ग, वर्ग, वर्ग असंख्यात बार हो, असंख्यात कितना बड़ा है ! असंख्यात बार वर्ग का वर्ग करते जाओ तब जाकर पल्य संख्या आयेगी। अभी पल्य के आगे पल्य का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग करते जाओ। कितनी बार ? जितनी बार वर्ग करके पल्य आया था उतनी ही बार पल्य के आगे और वर्ग करते जाओ तब जाकर अंगुल आयेगा। यानी पल्य का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग करने पर अंगुल आता है। अंगुल में तो हम प्रदेशों की संख्या को देखते हैं। पल्य में तो हमने समय गिने थे।

प्रदेशों की सूक्ष्मता तो इतनी है कि अंगुल में इतने प्रदेश हैं, अभी पूरे अंगुल के प्रदेश मत गिनो। अंगुल के असंख्यातवें भाग में इतने प्रदेश हैं कि उनको अगर हम समयों में कन्व्हर्ट करें, क्या कहा ? जैसे हमारे पास एक कटोरी है उसमें सौ चावल हैं। उनको हम समयों में कन्व्हर्ट करेंगे तो क्या कहेंगे ? सौ समय कहेंगे। ऐसे ही अंगुल में इतने प्रदेश हैं, अभी हम अंगुल का हिसाब छोड़ेंगे। अंगुल के असंख्यातवें भाग में इतने प्रदेश हैं कि उनको अगर हम समयों में गिनेंगे तो काल का कितना बड़ा माप होगा तो कहेंगे असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी चली जायें। *श्रोता: फिर से।* फिर से ? ये उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी क्या होती है ? अभी अपनी अवसर्पिणी चल रही है न ! पांचवां आरा चल रहा है। पहला काल, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा मिलकर कितना है ? दस कोड़ाकोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल और उतना ही दस कोड़ाकोड़ी सागर का उत्सर्पिणी काल। हमने देखा है न, पहला काल कितना बड़ा है ? *श्रोता: चार कोड़ाकोड़ी।* चार कोड़ाकोड़ी सागर, दूसरा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर और फिर चौथा, पांचवां, छठा मिलकर एक कोड़ाकोड़ी सागर क्योंकि पांचवां और छठा काल इक्कीस-इक्कीस हजार वर्षों का है और शेष चौथा काल है तो ये सारा दस कोड़ाकोड़ी सागर अवसर्पिणी और ऐसा उत्सर्पिणी काल भी दस कोड़ाकोड़ी सागर है। टोटल कितनी होती है ? *श्रोता: २० कोड़ाकोड़ी।* २० कोड़ाकोड़ी सागर, सागर लगाना, यह एक कल्पकाल है। दूसरा कल्पकाल, तीसरा कल्पकाल, ऐसे कितने ? *श्रोता: असंख्यात।* असंख्यात नहीं, असंख्यातासंख्यात। तो उसमें क्या डिफरन्स हुआ ?

हमने पहले एक छोटावाला जघन्य परीतासंख्यात देखा था और जघन्य परीतासंख्यात रेज्ड टु जघन्य परीतासंख्यात करने पर जघन्य युक्तासंख्यात देखा था। फिर जघन्य युक्तासंख्यात इन टु जघन्य युक्तासंख्यात इज ईक्वल टु जघन्य असंख्यातासंख्यात होता है और उसके वर्ग के वर्ग अनेक बार करने पर आगे मध्यमवाला ले लेना। तो ऐसी मध्यम असंख्यातासंख्यात प्रमाण अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी बीत जायेंगी, उनमें जितने समय हैं, उतने प्रदेश अंगुल के असंख्यातवें भाग में हैं। ऐसा भी हो सकता है कि इतने लंबे काल तक एक भी जीव को यह ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध न हुआ हो यह बात बताना चाहते हैं। *श्रोता: रिलॅक्स।* रिलॅक्स और इतना बंध तो चारों गतियों के जीवों को हो सकता है हो ! क्या कहा ? यह ७० कोड़ाकोड़ी सागर का जो उत्कृष्ट बंध देखा हमने किसके होता होगा ? देवों के नहीं होता होगा ? उनको तो छोड़ो ! देवों को भी होगा। कहां तक के देवों को होगा ? निलेशभाई ? *श्रोता: ग्रैवेयक तक।* ग्रैवेयक तक ? ग्रैवेयकवाले तो शुक्ल लेश्यावाले हैं उनके तो नहीं, उनके तो अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। आनत से ऊपर अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का ही बंध पाया जाता है। *श्रोता: बारहवें तक।* हां, बारहवें स्वर्ग तक। सहस्रार तक के देवों को, यानी भवनत्रिक से लेकर सहस्रार तक के देवों को इतना उत्कृष्ट बंध हो सकता है। नारकियों में तो सभी नारकियों को इतना उत्कृष्ट बंध हो सकता है। मनुष्यों को भी हो सकता है, तिर्यंचों को भी हो सकता है। परंतु एक कंडिशन है तिर्यंचों में, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तों को ही होगा। अपर्याप्त अवस्था में, भले ही वह निर्वृत्तिअपर्याप्त हो, तो भी इतना लंबा बंध यानी उत्कृष्टवाला बंध नहीं हो सकता।

देखो, ये सब बातें ऐसी लगती हैं कि क्या है यह इतना सारा पढ़कर क्या फायदा है ? वह हम अच्छे थे न, कुछ नहीं जानते थे। आराम से बंध तो कर सकते थे। अभी तो फिर बंध करते समय भी यह याद आयेगा। देखो, सर्वज्ञ ने क्या नहीं जाना ? हम तो इतना ही कहते हैं कि केवलज्ञानी हैं, केवलज्ञानी सब कुछ जानते हैं। केवलज्ञानी अनंत जीवों के प्रत्येक के अनादि से लेकर अनंतकाल तक के परिणामों को तो जानते ही हैं, वे कैसा-कैसा बंध कर रहे हैं वह भी जान रहे हैं। कर्मों की कितनी स्थिति, अनुभाग, क्या-क्या पड़ता है वह भी जान रहे हैं और अकेले एक जीव की नहीं, सभी जीवों के, सभी कर्मों की सभी बातें ! केवल जीव और कर्म की बात नहीं, अन्य भी

पुद्गल अनंतानंत हैं और पुद्गल को छोड़कर अन्य सभी द्रव्य भी हैं। प्रत्येक द्रव्य की अनादि से लेकर अनंतकाल तक की, एक-एक समय की पर्याय और उनके अविभागप्रतिच्छेदों को युगपत् जानते हैं, ॲट अ टाइम ! हम भी जानते हैं इतने सारे लोग बैठे हैं फिर भी हम क्रम से जानेंगे और केवली भगवान ? अभी यहां की बात क्या है ? हमारी अनादिअनंत सारी पर्यायें सब जान रहे हैं न ॲट अ टाइम अभी ! यहां कौनसा जीव किस समय केवलज्ञान प्राप्त करेगा वह भी जान रहे हैं; कहां-कहां घूमकर आया है वह भी जान रहे हैं। क्यों ? तो इसीको कहते हैं - केवलज्ञान।

अपने ज्ञान में ऐसे केवलज्ञान का जब तक निर्णय नहीं होता तब तक धर्म की शुरुआत नहीं होती। हमें केवलज्ञान का निर्णय करना है क्योंकि यह केवलज्ञान कहां से उत्पन्न हुआ ? *श्रोता: भगवान से।* वह भगवान ? नहीं यह मैं स्वयं भगवान। जो कोई पर्याय है वह द्रव्य के अपने स्वयं के बल से, स्वयं की सामर्थ्य से, अपने में से उत्पन्न होती है। हीनरूप पर्याय हो या उत्कृष्ट पर्याय हो, उसकी जो कुछ अमर्यादित शक्ति पर्याय में प्रकट होती है, वह सारा स्वभाव में भरा पड़ा है। यह शक्ति यहां भरी पड़ी है और वह शक्ति में से ही व्यक्ति यानी पर्याय होनेवाली है। तो उस शक्ति की अगर हमें महिमा आये और उसका सही निर्णय हो जाये तो ही हमारा उपयोग उसमें लगेगा। महिमा आये बिना लक्ष वहां जानेवाला नहीं है। ध्यान के नाम पर तो बैठ जाते हैं थोड़ी देर के लिये रीढ़ की हड्डी सीधी करके, परंतु उससे कुछ नहीं होनेवाला। उपयोग को खींचातानी करके अंदर ले जाना चाहते हैं। कहां अंदर ? *श्रोता: आत्मा में।* आत्मा में ? तो अब कहां हो ? अब आत्मा के बाहर हैं और आत्मा में जाना चाहते हैं ? क्या है क्या ? क्योंकि यह उपयोग का ऐसा ही है, वह सहज चला जाता है जहां जीव की रुचि होती है और जिस-जिस की उसे महिमा आती है। तो अपने स्वभाव का निर्णय और स्वभाव की रुचि, स्वभाव का महात्म्य हुये बिना उपयोग अपने को नहीं पकड़ेगा। वह अपने में स्थिर नहीं होगा। उपयोग को अपनी ही महिमा नहीं आती है लेकिन उसको महिमा किसकी आती है ? अरे वाह ! देवलाली कितना अच्छा बना है ! हम भी एक बंगला ले लें यहां पर। यहां आते ही क्या सोचते हैं ? किसने-किसने सोचा यहां आकर रहेंगे ? कैसा अच्छा वातावरण है, रोज स्वाध्याय भी करेंगे। किसको देखते हैं यहां आकर ? बंगलों को, परंतु यहां इतने भगवान विराजमान हैं, चलो हम भी भगवान होंगे

ऐसा कौन-कौन सोचता है ? भगवान होने के लिये कैसे तत्त्वचिंतन होता है, कैसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, उसका तो हमें कोई पता ही नहीं है न ! हमें तो महिमा बाहर की आ रही है और उसमें उपयोग उलझा है और बाहर देखते हैं तो राग-द्वेष, इष्ट-अनिष्टता होती रहती हैं, राग-द्वेष के परिणाम होते रहते हैं। वह तो बंध वगैरह वह सब चल ही रहा है और फिर भी हम मुक्ति चाहते हैं, बोलने के लिये !

देखो उत्कृष्ट स्थितिबंध की बात यहां हो रही थी। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय; अभी हम मूलप्रकृति में देख रहे हैं, उनकी उत्तरप्रकृतियों की बात अभी नहीं देख रहे। इनमें उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना होता है ? तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है। नाम और गोत्र में २० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है। मिथ्यात्व प्रकृति जो है, दर्शनमोहनीय की एकमात्र मिथ्यात्व ही बंधयोग्य है, उसमें ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है और मोहनीय को अगर कहेंगे तो हम कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर; परंतु मोहनीय के अगर दो भेद करेंगे तो दर्शनमोहनीय में तो कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर और जो कषाय कर्म हैं न चारित्रमोहनीय, उसमें कहेंगे ४० कोड़ाकोड़ी सागर। जिनका ४० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है उन प्रकृतियों को चालीसिय कहते हैं। क्या कहते हैं ? *श्रोता: चालीसिय।* चालीसिय। हम हर बार चार नाम क्यों कहेंगे ? जिनका-जिनका ३० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है उन चार कर्मों को कहेंगे तीसिय और नाम-गोत्र का २० कोड़ाकोड़ी सागर होता है उनको कहेंगे बीसिय प्रकृति। उत्कृष्ट स्थितिबंध की अभी हमने बात की, यह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की बात की। उनके इतना उत्कृष्ट स्थितिबंध हो सकता है; हो सकने की बात है। वह भी उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवालों को - तीव्र संक्लेश परिणामवालों को इतना उत्कृष्ट बंध हो सकता है।

अन्य भी पर्यायों में हम देखते हैं कितना-कितना बंध हो सकता है क्योंकि यहां सारे संज्ञी पंचेन्द्रिय थोड़े ही हैं, कोई एकेन्द्रिय हैं, कोई द्वीन्द्रिय हैं, कोई त्रीन्द्रिय हैं, चतुरिन्द्रिय हैं, असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी हैं और संज्ञी पंचेन्द्रिय भी हैं। सबको तो इतना उत्कृष्ट स्थितिबंध नहीं होगा, यहां मॅक्झिमम की बात चल रही है। इन प्रत्येक पर्याय में, अधिक से अधिक बंध कितना होता है उसका ज़रा हम हिसाब लगायेंगे। ये हिसाब तो हमें मोहनीय की अपेक्षा यानी दर्शनमोहनीय की अपेक्षा इसका हम प्रपोर्शन निकाल

सकते हैं। कैसा उसको देखेंगे हम ?

उत्कृष्ट स्थितिबंध

	संज्ञी पंचेन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	एकेन्द्रिय
दर्शनमोहनीय	७० कोको सा	१००० सा	१०० सा	५० सा	२५ सा	१ सा
चारित्रमोहनीय	४० कोको सा	१००० सा ४/७	१०० सा ४/७	५० सा ४/७	२५ सा ४/७	सा ४/७
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, वेदनीय	३० कोको सा	१००० सा ३/७	१०० सा ३/७	५० सा ३/७	२५ सा ३/७	सा ३/७
नाम, गोत्र	२० कोको सा	१००० सा २/७	१०० सा २/७	५० सा २/७	२५ सा २/७	सा २/७
आयु	३३ सा					

यहां संज्ञी पंचेन्द्रिय में दर्शनमोहनीय का यानी मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना दिखाया ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर।* ७० कोड़ाकोड़ी सागर। कोई असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अधिक से अधिक बंध करेगा तो कितना करता है ? *श्रोता: १००० सागर।* १००० सागर। चतुरिन्द्रिय जीव कितना करता है ? यह मिथ्यात्व के स्थितिबंध की बात चल रही है, १०० सागर। त्रीन्द्रिय जीव ? *श्रोता: ५० सागर।* ५० सागर। द्वीन्द्रिय जीव ? *श्रोता: २५ सागर।* २५ सागर और एकेन्द्रिय ? *श्रोता: १ सागर।* १ सागर। तो संज्ञी पंचेन्द्रिय होना अच्छा है कि एकेन्द्रिय होना अच्छा है ? एक सागर से ज्यादा बंध ही नहीं हो रहा है, परंतु उसको बंध से छूटने का मार्ग भी नहीं है ! हां, तो बंध थोड़ा हो उससे क्या होगा ? फल तो उसके उदय का मिल रहा है और निरंतर उसका उदय चल रहा है तो एकेन्द्रिय में गया तो अधिक से अधिक असंख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण काल तक तो भटकेगा वहां। हो सकता है, अधिक से अधिक काल तक उसने कम बंध किया तो उससे क्या होगा ? क्यों कम बंध कर रहा है ? क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय को संक्लेश बहुत होते हैं, एकेन्द्रिय को इतने संक्लेश परिणाम नहीं होते। संक्लेश की अपेक्षा होते हैं न बंध ? स्थितिबंध क्यों होता है ? जितना संक्लेश अधिक उतना स्थितिबंध अधिक। यह तो तीन आयु को छोड़कर यह स्टेटमेंट है, अपना जो कथन है उसकी बात हम करेंगे फिर।

हम एकेन्द्रियों से शुरू करते हैं। एकेन्द्रियों में मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना है ? *श्रोता: १ सागर।* १ सागर। द्वीन्द्रिय में ? *श्रोता: २५ सागर।* २५ सागर। त्रीन्द्रिय में ? *श्रोता: ५० सागर।* ५० सागर। चतुरिन्द्रिय में ? *श्रोता: १०० सागर।* १०० सागर। असंज्ञी पंचेन्द्रिय में ? *श्रोता: १००० सागर।* १००० सागर और संज्ञी पंचेन्द्रिय में ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर।* ७० कोड़ाकोड़ी सागर। यह तो हमने मिथ्यात्व की बात देखी, अभी हम चालीसिय की बात करेंगे। यहां चालीसिय लिखा कि नहीं लिखा ? चारित्रमोहनीय लिखा है न ? एकेन्द्रियादि में इसका प्रमाण अगर हमें अभी निकालना है तो उसके लिये यहां क्या लिखा है ? ४० कोड़ाकोड़ी सागर। अब हमें यहां त्रैराशिक करना है। अभी हम बीचवालों को छोड़ेंगे, डायरेक्ट एक सागरवाले की बात करेंगे।

त्रैराशिक समझते हैं क्या है ? नहीं समझते ? अच्छा हम बतायेंगे आपको। आम कितने में मिल रहा है अभी ? *श्रोता: ५ रुपये में।* ५ रुपये में। अच्छा ! देवलाली में आये हैं न ! ५ रुपये में एक आम। तो ५ रुपये में एक आम हमारे बचपन में मिलता था तो ५० रुपये में कितने मिलेंगे ? अभी आम ले लो, केला ले लो, चीकू ले लो, कोई भी खाओ न हमें क्या है ! ५ रुपये में एक फल मिलता है, तो ५० रुपये में कितने मिलेंगे ? *श्रोता: १० मिलेंगे।* १० मिलेंगे। अभी इसको हम त्रैराशिक की भाषा में समझेंगे। त्रैराशिक यानी ३ राशियां की हमने, ऐसी तीन, ५ रुपये में एक फल मिला तो ५० में कितने मिलेंगे ? हमें यह चौथी राशि निकालनी है। तो इसको कहेंगे प्रमाणराशि। प्रमाणराशि क्या है ? ५ रुपये। फलराशि क्या है ? *श्रोता: एक।* एक फल। इच्छाराशि पचास रुपये में हम निकालना चाहते हैं। तो पचास में कितने फल ? जो राशि आयेगी उसको कहेंगे लब्धराशि। प्रमाणराशि, फलराशि, यह इच्छाराशि और जो निकलेगी वह लब्धराशि। कैसे करते हैं हम ? प्रमाणराशि, फलराशि, इच्छाराशि। इच्छाराशि से फलराशि को गुणा करते हैं। पचास से एक को गुणा किया और प्रमाणराशि से भाग दिया, पचास को पांच से भाग दिया तो हमारा उत्तर दस आया कि नहीं ? ऐसे तो आप बोल देते हैं दस और उसको हम प्रमाण, फल, इच्छा कहेंगें तो आपकी गड़बड़ी हो जाती है, क्यों ? क्योंकि ये शब्द शास्त्र में आयेंगे कि यहां त्रैराशिक करना। कैसे त्रैराशिक करना ? यह प्रमाणराशि है, यह फलराशि है, यह इच्छाराशि है; तो कहेंगे इच्छाराशि से फलराशि को गुणा करो और प्रमाणराशि से भाग दो तो आपको

लब्धराशि मिलेगी।

अभी हम यहां भी ऐसा करेंगे। हमारी प्रमाणराशि क्या है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर। अभी हम ऐसा देखेंगे तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर का मिथ्यात्व का उत्कृष्ट बंध है तब एकेन्द्रियों में एक सागर का होता है। जब संज्ञी पंचेन्द्रियों को ७० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है तब एकेन्द्रियों को कितना होता है ? *श्रोता: १ सागर।* १ सागर। तो जब संज्ञी पंचेन्द्रिय ४० कोड़ाकोड़ी सागर का बांध रहा है तब एकेन्द्रिय को कितना होगा ? तो क्या करेंगे ? *श्रोता: चालीस से गुणा करेंगे।* अभी हमारी इच्छाराशि क्या है ? ४० कोड़ाकोड़ी सागर। ४० कोड़ाकोड़ी सागर गुणा १ सागर और भाग दिया, डिव्हाइडेड बाय ७० कोड़ाकोड़ी सागर से। ४० कोड़ाकोड़ी ऊपर लिखना, नीचे लिखना ७० कोड़ाकोड़ी और उसको गुणा करना १ सागर से। कितना आयेगा ? *श्रोता: चार बटे सात।* एक सागर का चार बटे सात अर्थात् $\frac{४}{७}$ सागर। एक सागर से गुणा किया था न ? तो डायरेक्ट इसका एकेन्द्रिय का लेना, ये बीचवाले छोड़ दो। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को जहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होता है, वहां एकेन्द्रियों को १ सागर का होता है। ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये १ सागर तो जहां ४० कोड़ाकोड़ी का हो रहा है, वहां कितना होगा ? तो क्या करेंगे ? ऊपर ४० कोड़ाकोड़ी सागर, नीचे ७० कोड़ाकोड़ी सागर और मल्टिप्लाइड बाय १ सागर। तो ४० ऊपर और नीचे ७० क्योंकि कोड़ाकोड़ी सागर बाद हुआ और ४० ऊपर और नीचे ७० तो झिरो-झिरो भी बाद हुये। तो ऊपर चार और नीचे सात रह गये, हं, चार बटे सात यानी $\frac{४}{७}$। तो कोई एकेन्द्रिय जीव कषाय कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध करेगा तो कितना करेगा ? एक सागर का चार सप्तमांश भाग।

अभी १ सागर के बदले हमारी फलराशि हम २५ सागर बनायेंगे। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करता है वहां द्वीन्द्रिय जीव २५ सागर का करता है तो जहां यह ४० कोड़ाकोड़ी सागर का करता है तो वह कितना करेगा ? ऐसा ही फिर करना है। ४० कोड़ाकोड़ी सागर ऊपर, नीचे ७० कोड़ाकोड़ी सागर मल्टिप्लाइड बाय २५ सागर। तो यह $\frac{४}{७}$ रह गया और यह २५ सागर रह गया। यह वैसे आसान है क्योंकि यह जो प्रपोर्शन है उसी प्रपोर्शन में होगा। *श्रोता: फोर बाय*

सेक्न कॉन्स्टन्ट है ? $\frac{४}{७}$ किसके लिये ? चालीसिय के लिये। चालीसिय के लिये $\frac{४}{७}$। ज्ञानावरण की बात करेंगे तो क्या होगा ? देखो जहां संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, ये ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय; जहां संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव इनका ३० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करता है वहां एकेन्द्रिय जीव कितना बंध करता है ? ऊपर, यहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये १ सागर तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये कितना ? *श्रोता: तीन सप्तमांश सागर।* $\frac{३}{७}$ सागर क्योंकि ३० कोड़ाकोड़ी ऊपर लिखना, नीचे ७० कोड़ाकोड़ी लिखना। वह बाद हो जायेंगे ऊपर की फिगर तो ऊपर तीन और नीचे सात, तीन सप्तमांश और आगे जो उसका अपना-अपना मिथ्यात्व का प्रमाण है उससे मल्टिप्लाय करो। एकेन्द्रिय के लिये तीन सप्तमांश सागर, द्वीन्द्रिय के लिये २५ सागर का तीन सप्तमांश, त्रीन्द्रिय के लिये ५० सागर का तीन सप्तमांश, चतुरिन्द्रिय के लिये १०० सागर का तीन सप्तमांश, ऐसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये १००० सागर का $\frac{३}{७}$। तीन सप्तमांश क्यों ? क्योंकि यहां ७० के बदले यहां ३० हो गये न ? तो वहां भी १००० के बदले उसके १००० का तीन सप्तमांश हो जायेगा। ये बात कुछ ख्याल में आती है ? उसी प्रपोर्शन में होता है।

एकेन्द्रिय के लिये ७० कोड़ाकोड़ी के बदले १ सागर लेना और जहां ४० कोड़ाकोड़ी सागर है वहां १ सागर का $\frac{४}{७}$ यानी उसको $\frac{४}{७}$ करना, जहां ३० कोड़ाकोड़ी है वहां $\frac{३}{७}$ करना। नाम, गोत्र के लिये क्या करेंगे ? *श्रोता: दो सप्तमांश।* $\frac{२}{७}$। वह बीसिय है। ७० कोड़ाकोड़ी के लिये १ सागर तो २० कोड़ाकोड़ी के लिये कितने ? *श्रोता: दो बाय सात।* हां, दो बाय सात यानी $\frac{२}{७}$; ख्याल में आती है बात ? दो बटे सात सागर। आगे सागर लिखना। लौकिक में तो हम कितने सयाने हैं ! देखो, तो ऐसे ये सारे त्रैराशिक करके हम मूलप्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबंध के प्रमाण निकालते हैं। हमने कौन-कौनसी मूलप्रकृतियां देखी ? देखो क्रम से देखेंगे। ज्ञानावरण का उत्कृष्ट स्थितिबंध पंचेन्द्रियों को, संज्ञी पंचेन्द्रियों को कितना होता है ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी सागर।* ३० कोड़ाकोड़ी सागर। दर्शनावरण का ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी सागर।* ३० कोड़ाकोड़ी सागर। मोहनीय का ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी सागर।* ७० कोड़ाकोड़ी सागर। फिर अंतराय का ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी सागर।* ३० कोड़ाकोड़ी सागर। अब हम अघाति

की बात करेंगे, वेदनीय का ? *श्रोता: ३० कोड़ाकोड़ी।* ३० कोड़ाकोड़ी सागर। नामकर्म का ? *श्रोता: २० कोड़ाकोड़ी सागर।* २० कोड़ाकोड़ी सागर, गोत्र का ? *श्रोता: २० कोड़ाकोड़ी सागर।* २० कोड़ाकोड़ी सागर।

अब आयु का उत्कृष्ट बंध कितना है ? *श्रोता: ३३ सागर।* ३३ सागर, परंतु आयु में कुछ विशेषता है जो हमने देखी थी। अधिक से अधिक संक्लेश परिणाम होंगे; संक्लेश परिणाम का अर्थ क्या है ? तीव्र कषाय। तो क्या होगा ? सात कर्मों की स्थिति उत्कृष्ट बंधेगी। जिसके अत्यंत संक्लेश परिणाम हैं, मिथ्यात्व तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंधेगा, ज्ञानावरण आदि की स्थिति भी ३० कोड़ाकोड़ी सागर बंधेगी, सभी कषाय कर्म ४० कोड़ाकोड़ी सागर बंधेंगे। परंतु उस जीव के आयु कितनी बंधेगी ? आयु में कुछ अलग बात है क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम में तो आयु का बंध होगा ही नहीं। मध्यम परिणामों में आयु का बंध होता है और जो बंध होता है तो आयु की अपनी जो उत्कृष्ट स्थिति को वह बांधेगा। उत्कृष्ट स्थिति किसको होती होगी ? सर्वार्थसिद्धिवाले देव की भी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर और सातवें नरक के नारकी की भी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर है। परंतु एक ही परिणाम से उन दोनों का बंध नहीं हो सकता। तीन आयु के बारे में कुछ प्रपोर्शन उलटा है जो हमने मोक्षमार्गप्रकाशक में भी देखा था।

देखो यहां स्थितिबंध की बात पं. टोडरमलजी लिखते हैं **कषाय से स्थिति और अनुभाग का बंध** होता है। दूसरा अधिकार, पृष्ठ २७, हिंदी मोक्षमार्गप्रकाशक। **मोह के उदय से मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव होते हैं।** क्या कहा ? मोह के यानी मोहनीय के उदय में, मोहनीय यानी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उदय में मिथ्यात्व, क्रोधादिक। क्रोधादिक में क्रोध, मान, माया, लोभ और नौ नोकषाय सभी। तो मोहनीय के उदय में मिथ्यात्व और कषाय यानी ये क्रोधादिक सभी होते हैं **उन सबका का नाम सामान्यतः कषाय है।** बोल्ड लेटर्स में लिखा है। मिथ्यात्व को भी यहां कषाय में ले लिया है क्योंकि हमने देखा है जो बंध के हेतु हैं - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। कषाय तक के सबको कषाय कह दिया है और योग को अलग नाम दिया है। तो जब कहेंगे कषाय से स्थितिबंध होता है तो मिथ्यात्व से, अविरति से, प्रमाद से और कषाय से सबको मिलकर यानी मिथ्यात्व और कषाय को मिलकर कषाय कह दिया है। **उससे उन कर्मप्रकृतियों की स्थिति बंधती है। जितनी स्थिति बंधे उसमें**

आबाधाकाल को छोड़कर पश्चात् जब तक बंधी स्थिति पूर्ण हो तब तक प्रति समय उस प्रकृति का उदय आता ही रहता है। अभी हमने क्या देखा था ? हमने सौ समय का उदाहरण लिया था। यहां लिखा है उससे जो स्थिति बंधे, मान लेते हैं सौ समय की जो स्थिति बंधी, उसमें आबाधाकाल को छोड़कर, हमने आबाधा के ५ समय छोड़े थे। आबाधा को छोड़कर पश्चात् जब तक बंधी स्थिति पूर्ण हो तब तक; ५ समय के बाद छठे समय से जब तक १०० समय पूर्ण नहीं होते **तब तक प्रतिसमय** हर समय **उस प्रकृति का उदय आता ही रहता है।** बीच में रुकता है ऐसा नहीं कहा, आता ही रहता है।

वहां अभी आयु के बारे में कुछ अन्य जो नियम है यानी कितनी लंबी आयु बंधती है उसके बारे में यहां कुछ विशेष बात बता रहे हैं। देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु इन तीन आयु के बारे में बता रहे हैं। देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु का जो बंध होता है उसमें उनको छोड़कर, इन तीन आयुओं को छोड़कर अन्य जितनी हमने बंधयोग्य प्रकृतियां देखी थी उन सबमें **घातिया का भी अघातिया का भी अल्प कषाय होने पर थोड़ा स्थितिबंध होता है और बहुत कषाय होने पर बहुत स्थितिबंध होता है।** क्या कहा ? तीन आयु को अलग रखना। अब जितना कषाय अधिक यानी अपनी भाषा में जितने संक्लेश अधिक, उतना स्थितिबंध अधिक और जितने कषाय कम यानी जीव विशुद्धि की ओर जा रहा है, जितने संक्लेश कम उतना स्थितिबंध भी कम। बहुत कषाय होने पर बहुत बंध होता है, स्थितिबंध की बात है और तीन आयु का क्या होता है ? जहां कषाय मंद है वहां देवायु भी बड़ी- लंबी बंधती है, मनुष्यायु बंध रही हो तो वह भी बड़ी बंधती है और तिर्यंचायु बंधती हो तो वह भी अधिक स्थितिवाली बंधती है। तीन आयु के बारे में क्या नियम है ? तीन आयु की जो स्थिति है, स्थितिबंध की बात चल रही है।

तीन आयु का जब स्थितिबंध होता है तो तीन आयु के बारे में जहां कषाय अत्यंत मंद है वहां बड़ी आयु बंधती है, यानी उसकी स्थिति अधिक बंधती है और जहां तीव्र कषाय है; तीव्र कषाय से कोई मनुष्यायु बांधता है तो वह तो अल्पआयु का बंध करेगा, देवायु बांधता है तो अल्पआयु का बंध करेगा। इसका अर्थ क्या है ? ये तीन तो शुभ प्रकृतियां हैं तो तीव्र कषाय से बंध रही है कि नहीं बंध रही हैं ? यथायोग्य उसके

जो बंधयोग्य जो लेश्यायें हैं उसमें बंध सकती हैं। तो जहां उसमें प्रपोर्शनेटली जहां तीव्र कषाय के काल में बंध रही है वहां उनकी आयु कम बंधेगी और जहां मंद परिणामों से बंध रही है तब आयु का स्थितिबंध अधिक होगा। क्योंकि हम देखते हैं न आयु की बात, कोई तो ३३ सागर की लंबी देवायु बांधेगा और कोई भवनवासी की दस हज़ार वर्ष की आयु बांधेगा। उसमें स्थिति में जो व्हेरिएशन्स हैं वे क्यों पड़ते हैं ? तो कषायों की जो मंदता या तीव्रता है उसके कारण इसमें ऐसा भेद पड़ता है। अभी कोई नरकायु बांध रहा है तो नरकायु का अधिक से अधिक बंध किसके होगा ? जिसके अत्यंत संक्लेश परिणाम हैं यानी तीव्र कषाय कहेंगे हम, संक्लेश को छोडो , तीव्र कषाय से क्या होगा ? नरकायु भी लंबी - बड़ी में बड़ी बंधेगी, हं, ३३ सागर की बंध सकती है। यथायोग्य, सबको ३३ सागर की थोड़े ही बंधेगी ? तीसरे नरक की ७ सागर की बंधेगी, कम-ज्यादा बंधेगी। परंतु इसका प्रपोर्शन किससे ? जहां कषाय ज्यादा है, तीव्र है; ज्यादा है यानी तीव्र है। जहां कषाय तीव्र वहां नरकायु की स्थिति लंबी। अकेले नरकायु की नहीं, सभी अन्य प्रकृतियों की।

जहां तीव्र कषाय है वहां सभी, तीन आयु को छोड़कर, सबकी स्थिति अधिक से अधिक बंधेगी। तो मेरा प्रश्न है कि पुण्य प्रकृतियों की स्थिति अधिक बंधेगी या पाप प्रकृतियों की अधिक बंधेगी ? *श्रोता: पाप प्रकृतियों की।* पाप प्रकृतियों की अधिक बंधेगी ? अभी तो हमने कहा तीन आयु को छोड़कर बाकी ११७ की। क्या कहा ? जहां तीव्र संक्लेश परिणाम हैं; अभी उनके योग्य जिस संक्लेश परिणाम में पुण्य प्रकृतियां भी बंध रही हैं, ऐसी पुण्य प्रकृतियों की बात करें या उनके बंध के योग्य जो संक्लेश परिणाम हैं। जैसे तीर्थंकर प्रकृति लंबी बंधना अच्छी कि छोटी बंधना अच्छी ? तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध किसके होता है, हं, किसको होता है ? *श्रोता: सर्वार्थसिद्धिवाले के।* नरक जानेवाले के या सर्वार्थसिद्धिवाले देव के ? कितनी स्थिति बंधेगी उनकी तीर्थंकर प्रकृति की ? *श्रोता: आप ही बताइये।*

देखो, १३६ नंबर की गाथा में बताते हैं। ये जो चार प्रकृतियां हैं न, कौनसी ? उनकी बात हम पहले करेंगे। आहारकद्विक यानी आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, तीर्थंकर और देवायु इनका उत्कृष्ट बंध कौन करता है ? उत्कृष्ट स्थितिबंध कौन जीव करता है ? अभी देवायु को हमने देखा था। कौन करता है ? तो सम्यग्दृष्टि जीव जो छठे

गुणस्थान में है, वगैरह वे उसका उत्कृष्ट स्थितिबंध करेगा। यानी वहां भी देवायु की उत्कृष्ट स्थिति कौन बांधेंगे ? जो छठे गुणस्थान में है और अभी सातवें के सन्मुख है वह जीव देवायु का उत्कृष्ट बंध करता है, एक बात। क्या सातवें गुणस्थान में भी देवायु का बंध है न ? आयु का बंध तो सातवें में भी होता है फिर भी वहां उत्कृष्ट स्थितिबंध नहीं होता ऐसा कहा है। यह तो भगवान ने जो जाना है वह बताया है। अभी आहारकद्विक का उत्कृष्ट स्थितिबंध कौन करता है ? स्थितिबंध की बात चल रही है, अनुभागबंध की नहीं। तो हमने क्या देखा कि जिसके कषाय ज्यादा उसकी स्थिति ज्यादा बंधेगी। बंधती तो सम्यग्दृष्टि को है परंतु उत्कृष्ट स्थिति किसके बंधेगी ? तो देखो यहां लिखते हैं कि प्रमत्त गुणस्थान के सन्मुख हुआ ऐसा जो अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती संक्लेश परिणामी जीव बांधता है। क्या अर्थ होता है उसका ? कौन बांधता है ? तो सातवें-आठवेंवाला बांधता है। आठवें से सातवें में संक्लेश ज्यादा है यानी विशुद्धि कम है। अब सातवें में जो कोई विशुद्धि है तो सातवें में से जो छठे में आने को अभी उद्युक्त है, अभी नेक्स्ट समय में छठे में आनेवाला है उसको अधिक से अधिक संक्लेश कहेंगे हम। उसके आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग की स्थिति उत्कृष्ट बंधती है।

पुण्य प्रकृतियों में भी और पाप प्रकृतियों में भी उत्कृष्ट स्थिति का बंध संक्लेश परिणामों से होगा। अधिक स्थिति बंधना कुछ अच्छी बात नहीं है। आप कहेंगे तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध किसको होगा ? आपने कहा न सर्वार्थसिद्धि जानेवाले को, यहां क्या लिखते हैं देखो। तीर्थंकर प्रकृति उत्कृष्ट स्थिति सहित कौन बांधता है ? बांधते कौन हैं ? तो चौथे गुणस्थानवाले बांध रहे हैं अभी और वह भी कौनसे चौथे गुणस्थानवाले ? दूसरे और तीसरे नरक जाने को सन्मुख हुआ ऐसा असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य वही बांधता है। अब जो मिथ्यात्व में जाकर नरक में जाता है वह तो मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं कर रहा है। अभी हम श्रेणिक राजा को बुलाते हैं। वे जब नरक जाने को सन्मुख हुये थे उस समय भी उनका तीर्थंकर प्रकृति का बंध चल रहा था। क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे और एक बार बंध शुरू होता है तो बीच में मिथ्यात्व में जानेवाले का ही एक अंतर्मुहूर्त के लिये रुकेगा बाकी तो रुकेगा ही नहीं। तो जब वे नरक के सन्मुख थे उस समय वे संक्लेश परिणामी थे। देखो ऐसा है न, नरक में जानेवाला किस लेश्या में जाकर उत्पन्न होनेवाला है ? वह कापोत लेश्या में जन्मेंगे

क्योंकि पहले नरक में हैं। तीसरे नरक तक कापोत लेश्या होती है। उसी लेश्या में उनका मरण होता है। जो सातवें नरक में जानेवाला है कृष्ण लेश्यावाला, उसका मरण भी उसी लेश्या में होता है और उसी लेश्या में वहां जन्म लेता है।

इसलिये वह श्रेणिक की कथा आती है न ! वे तो कैद में थे और उनको छुड़ाने के लिये गये थे परंतु वे आत्मघात करके, या गिरकर जो कुछ है वे मरे। तो वहां संक्लेश परिणाम में मरे तो उस समय जो संक्लेश परिणाम थे फिर भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो रहा था। हां ! ख्याल में आता है ? यह षोडशकारण भावना वहां भी चलेगी उनकी, भले बाह्य दिखने में संक्लेश परिणाम हैं। अबुद्धिपूर्वक वह भी चलेगा वहां पर क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध है तो उसके योग्य परिणाम भी वहां होंगे, पाये जायेंगे। वह हमारे आपके ख्याल में नहीं आयेंगे। तो यहां कहते हैं कि तीर्थंकर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति कौनसा जीव बांधता है ? तो तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाला जो तीसरे नरक में जानेवाला जीव मिथ्यात्व के सन्मुख है, नरक जाने के अंतर्मुहूर्त पहले अभी उसका चौथे गुणस्थान का अंतिम समय आया है उसीके तीव्र संक्लेश पाया जाता है और तभी उसकी स्थिति भी अधिक से अधिक बंधेगी। इसतरह से हमने देखा है कि जहां ये तीन आयु को छोड़कर, कौनसी तीन आयु ? देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु को छोड़कर स्थिति का उत्कृष्ट बंध कौन करता है ? तो जहां संक्लेश परिणाम अधिक वहां उस प्रकृति का, वह भले पुण्य प्रकृति भी क्यों न हो तीर्थंकर प्रकृति जैसी भी, उनके योग्य उत्कृष्ट संक्लेश में उसका उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा। अनुभाग की बात यहां नहीं ले रहे हैं। अनुभाग में तो पुण्य और पाप में उलटा-पुलटा प्रपोर्शन होगा। स्थिति में तो दोनों को समानरूप से लेना। पुण्य की भी उत्कृष्ट स्थिति बंधना कुछ अच्छी बात तो थोड़े ही है ? क्योंकि जितनी उत्कृष्ट स्थिति बंधेगी भले सम्यग्दृष्टि को बंधेगी तो भी उतना काल तो उसे इस संसार में रखड़ना पड़ेगा कि नहीं पड़ेगा ? हां, तो अनुभाग का प्रकरण जब आयेगा तब उसकी और हम चर्चा करेंगे। यहां तो जो हमने मूलप्रकृतियों में उत्कृष्ट स्थिति देखी है, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों में, हम उनकी जघन्य स्थिति भी देखेंगे और उत्तरप्रकृतियों की भी बात करेंगे अभी आगामी अपने प्रवचन में।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१७. उत्तरप्रकृतियां - उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबंध

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड भाषाटीका की रचना की है। उसीके आधार से हम कर्म बंध के संबंध में कुछ बातें देख रहे हैं। हमने प्रकृतिबंध का विस्तार से स्वरूप देखा है, अभी हम स्थितिबंध की बात देख रहे थे। मूलप्रकृतियों में उत्कृष्ट स्थिति का बंध किसी जीव के कितना हो सकता है उसकी बात हमने देखी, हो सकने की बात है, हर समय इतना नहीं होगा क्योंकि जीव के परिणाम बदलते रहते हैं। कभी संक्लेश परिणाम होते हैं, कभी विशुद्ध होते हैं। संक्लेश परिणामों में भी कभी अधिक संक्लेश होता है कभी कम संक्लेश होता है, विशुद्धि में भी कभी कम विशुद्धि होती है कभी अधिक विशुद्धि होती है और उसके अनुसार स्थिति और अनुभाग में भी अलग-अलग स्थिति और अलग-अलग अनुभाग का बंध होता है।

हम यहां केवल बंध की बात कर रहे हैं। एक समय के परिणाम से बंध तो होता ही होता है, परंतु पूर्व में बंधे हुये और सत्ता में पड़े हुये कर्मों में भी अपकर्षण, उत्कर्षण आदि बहुत सारी बातें बनती हैं, संक्रमण भी होता है। उसकी चर्चा हम यहां नहीं कर रहे हैं क्योंकि हम एक समय में कोई एक विषय हाथ में ले लेंगे और उसके बाद जब हम एक-एक, एक-एक, अलग विषय देखेंगे तो एक साथ कौन-कौनसे हो सकते हैं, उसकी चर्चा बाद में भविष्य में होगी। अभी तो नहीं हो सकती क्योंकि अभी तो हमें जो प्रोसेस है जो कुछ कर्मों में अवस्थायें बदलती हैं उनके नाम भी नहीं पता है। हमने तो अभी केवल चार ही नाम देखे हैं। कौनसे चार नाम ? प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। उनमें से स्थितिबंध की चर्चा अपनी चल रही है।

यह उत्कृष्ट बंध किसको होता है ? जिसको उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम होते हैं, अत्यंत तीव्र कषायें होती हैं, तो उसको उत्कृष्ट बंध होता है। यहां यह पूछा था कि ७० कोड़ाकोड़ी सागर की उत्कृष्ट स्थिति बांधनेवाला जीव कौन होता है ? उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला होता है। एक प्रश्न यह भी पूछा है कि, नरक जानेवाला जीव संक्लेश परिणामों के साथ तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध करता है; यहां बंध करता है ऐसा लिखा है, परंतु यहां स्थितिबंध की अपनी बात चल रही थी, अनुभाग की नहीं। इसमें श्रेणिक राजा का उदाहरण दिया जब कि श्रेणिक राजा तो कम आयु के साथ

तीर्थंकर बनेंगे। कैसे ? कि यहां मान लेते हैं कि उन्होंने जो बंध किया और वहां नरक में उनकी कितनी आयु बीत जायेगी ? हां चौरासी हज़ार वर्ष और फिर आने के बाद जो कुछ होगी क्योंकि उत्सर्पिणी के पहले तीर्थंकर हैं तो आयु छोटी ही होगी और यहां बंध कितना होगा ? तीर्थंकर प्रकृति का बंध कितना होगा ? यहां जो हमने देखा था तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट बंध किसको होता है ? दूसरे या तीसरे नरक में जानेवाला मरण के पूर्व मिथ्यात्व के सन्मुख हुये ऐसे सम्यग्दृष्टि के होता है जो तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है तो कितना करेगा ? *श्रोता : २० कोड़ाकोड़ी।* सम्यग्दृष्टि जीव को आयु को छोड़कर किसी भी प्रकृति का बंध अंत:कोड़ाकोड़ी सागर के ऊपर होता ही नहीं। हमने देखा कि तीर्थंकर प्रकृति का भी उत्कृष्ट स्थितिबंध; उत्कृष्ट यानी वह जघन्य भी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर ही करेगा और उत्कृष्ट भी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर ही करेगा । क्योंकि अंत:कोड़ाकोड़ी सागर में भी बहुत व्हेरिएशन्स हैं, फर्क हैं।

यह अंत:कोड़ाकोड़ी सागर किसे कहना पहले इसको देखते हैं। कभी-कभी क्या शब्द आता है तो अंतर्मुहूर्त यानी मुहूर्त से कम। मुहूर्त किसे कहते हैं ? दो घड़ी को मुहूर्त कहते हैं यानी अड़तालीस मिनट को मुहूर्त कहते हैं और उससे कम उसको अंतर्मुहूर्त कहेंगे। ऐसे ही अंत:कोड़ाकोड़ी सागर किसको कहते हैं ? कोड़ाकोड़ी सागर से कम यानी लेस दॅन कोड़ाकोड़ी सागर, परंतु उसकी लोअर लिमिट क्या है ? मोर दॅन करोड़ सागर और लेस दॅन कोड़ाकोड़ी सागर यानी करोड़ सागर के ऊपर और कोड़ाकोड़ी सागर के नीचे उसको कहेंगे अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। देखो जैसे हम अपने लौकिक उदाहरण की बात देखते हैं। हम कहेंगे करोड़ के नीचे और लाख के ऊपर हम उसको क्या कहेंगे ? अंत:करोड़ कह देंगे। है न ? समझने के लिये तो जब हमने अंत:करोड़ कह दिया और लाख के ऊपर तो दो लाख को भी अंत:करोड़ कहेंगे और दस लाख को भी अंत:करोड़ कहेंगे और नब्बे लाख भी अंत:करोड़ हो जायेगा। ऐसे ही अंत:कोड़ाकोड़ी कहने से छोटी संख्या भी अंत:कोड़ाकोड़ी होगी, जैसे नौ करोड़ दस करोड़ भी अंत:कोड़ाकोड़ी कहलायेगा, पचास करोड़ को भी अंत:कोड़ाकोड़ी कहेंगे। तो उसमें भी जो नौ करोड़ की अपेक्षा नब्बे करोड़ ज्यादा है न, दस गुना हो गया है तो उसको हम कहेंगे वह अधिक स्थिति है। अधिक जो बता रहे हैं, उत्कृष्ट जो बता रहे हैं। अंत:कोड़ाकोड़ी में ही जघन्य और उत्कृष्ट ऐसे भेद होंगे।

तीर्थंकर प्रकृति की अधिक से अधिक स्थिति कौन बांधता है ? हमने क्या देखा, पुण्य प्रकृति हो या पाप प्रकृति हो स्थिति अधिक कब बंधती है ? जब संक्लेश ज्यादा है यानी कषाय ज्यादा है तब। देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु इन तीन आयु की बात अलग रखना, उसका तो नियम हमने बता दिया, बाकी अन्य सभी प्रकृतियों के बारे में यही नियम लागू होगा कि जहां संक्लेश ज्यादा है वहां स्थिति अधिक बंधेगी। हां, पुण्य प्रकृतियों में विशुद्धि से अनुभाग अधिक बंधेगा और पाप प्रकृतियों में कम बंधेगा, क्या कहा ? अनुभाग की बात अभी हमने नहीं देखी है; ऊपर के गुणस्थानों में जहां विशुद्धि ज्यादा है, शुभ प्रकृतियों का अनुभाग अधिक बंधेगा; अशुभ प्रकृति अगर बंधती हो तो उसका अनुभाग कम बंधेगा और उससे उलटा जहां संक्लेश परिणाम ज्यादा है वहां किसका अनुभाग अधिक बंधेगा ? पाप प्रकृतियों का अनुभाग अधिक बंधेगा। जैसे जो शुभभाव कर रहा है उसके ज्ञानावरण का अनुभाग कम बंध रहा है कि ज्यादा ? कम बंध रहा है, अशुभ प्रकृति है न और जो तीव्र पाप कर रहा है उसके ज्ञानावरण का अनुभाग भी तीव्र बंधेगा। तीव्र अनुभाग बंधेगा तो उसके उदय में एकेन्द्रिय आदि पर्याय भी प्राप्त होगी जहां ज्ञान अत्यंत हीन है। अभी हम केवल स्थिति का विचार कर रहे हैं।

यह जो प्रश्न था कि नरक जाने के सन्मुख श्रेणिक राजा ने भले अंत:कोड़ाकोड़ी का बंध किया है; अंत:कोड़ाकोड़ी सागर तो बहुत बड़ा काल है और यह तो कुछ हज़ार वर्षों में तीर्थंकर बननेवाले हैं तो यह कैसे होगा ? यहां हम भूल जाते हैं कि बंध कितनी भी स्थिति का क्यों न हो जब वे मुनि अवस्था प्राप्त करते हैं और जब श्रेणी चढ़ते हैं तभी वहां स्थितिकांडकघात होते हैं। यह अपना विषय नहीं चला है, जो स्थिति बंधी है उसमें स्थिति अत्यंत घटती चली जाती है। वह एक्झॅक्टली क्या होता है उसका विषय आने पर कहेंगे परंतु वह स्थिति घटते-घटते-घटते जैसे है न अंत:कोड़ाकोड़ी से घट कर कितनी हो जायेगी ? १००० सागर हो जायेगी फिर उससे भी कम हो जायेगी १०० सागर हो जायेगी, ५० सागर हो जायेगी, २५ सागर हो जायेगी, १ सागर हो जायेगी, पल्य प्रमाण हो जायेगी, पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण होगी, ऐसे होते-होते वह स्थिति बहुत कम हो जाती है। किस कारण ? *श्रोता: विशुद्धि के कारण।* विशुद्धि के कारण, जो श्रेणी चढ़ते हैं उनके सभी कर्मों की स्थिति ऐसी घटती है। फिर घटते-घटते उनकी जो विधि-प्रोसेस है उसके अनुसार उनका क्षय हो जाता है। आप कहेंगे

तीर्थंकर प्रकृति का पहले ही क्षय करवाओगे क्या ? नहीं करवायेंगे परंतु उसकी स्थिति ज़रूर घटेगी। हमें चिंता करने का कोई कारण नहीं है कि इतनी स्थिति बंधेगी तो क्या होगा उसका ? वे तो जल्दी मोक्ष जानेवाले हैं, साथ में कर्म लेकर तो जायेंगे नहीं।

श्रोता: स्थिति झिरो कब होगी ? झिरो होगी चौदहवें गुणस्थान के अंत में। *श्रोता: स्थितिबंध झिरो कब होगा ?* स्थिति का बंध झिरो कब होगा ? सातावेदनीय का जो बंध हो रहा है न, स्थिति बंधेगी ही नहीं तब हम कहेंगे उसको स्थिति का बंध झिरो हुआ। जो सातावेदनीय ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान में बंध रही है, उसमें स्थिति ही नहीं होती और ना ही अनुभाग होता है क्योंकि स्थिति और अनुभाग तो कषाय से बंधते हैं। ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवेंवाले को कषाय है ही नहीं, वहां मात्र सातावेदनीय प्रकृति का बंध हो रहा है और एक समय में अनंत परमाणु बंध रहे हैं और वे तो उसी समय उदयरूप हैं और खिर जाते हैं। *प्रश्न: हर एक कर्म के आबाधाकाल का प्रपोर्शन अलग-अलग होता है कि निश्चित होता है ?* प्रपोर्शन वही है, कौनसा प्रपोर्शन ? हमने देखा था न, ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये ७ हजार वर्ष यानी कितना प्रपोर्शन हुआ ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये सत्तर सौ वर्ष बरोबर है न ? ७ हज़ार यानी क्या ? सत्तर सौ हो गये की नहीं ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये सत्तर सौ वर्ष, तो एक कोड़ाकोड़ी सागर के लिये एक सौ वर्ष यह प्रपोर्शन हर कर्म में लगाना। ४० कोड़ाकोड़ी सागरवालों को चार हजार वर्ष की आबाधा होगी, २० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हुआ हो तो वहां दो हजार वर्ष की आबाधा होगी प्रपोर्शन तो वही होता है।

प्रश्न: आयु बंधते समय जीव के परिणाम उत्कृष्ट है, मध्यम है या जघन्य है यह किसके आधार से निश्चित होता है ? सर्वज्ञ भगवान के आधार से निश्चित होता है क्योंकि आयु का बंध तभी होता है जब जीव के मध्यम परिणाम होते हैं। सूर्य कौनसी दिशा में उगता है कौन निश्चित करता है ? अरे जिस दिशा से उगता है उसको हम पूर्व कहते हैं। ऐसे ही आयु का बंध हो रहा है यही सिद्ध कर रहा है कि तभी जीव के मध्यम परिणाम हो रहे हैं। आप कहेंगे, तो हम मध्यम परिणाम कब रखेंगे ? आपको क्या पता है कि आप कितनी आयु लेकर आये हैं और उनका तो समयों में नाप होगा सब। कौनसा समय लेना है ? विग्रहगति के पहले समय से या ऋजुगति से आनेवाले जीव के जब गर्भ में आया है, शरीर का संयोग हुआ है तब से लेकर उसकी कॅल्क्युलेशन होगी

और मान लेते हैं आपको समझ में भी आया कि इस समय आयु का बंध होनेवाला है, तो कौनसे परिणाम करेंगे? *श्रोता : मध्यम करेंगे।* मध्यम करेंगे; अगर बंध होनेवाला है तो मध्यम होंगे ही होंगे। अब वह मध्यमवाले परिणाम कौनसी लेश्यावाले होंगे ? शुभ लेश्या या अशुभ लेश्या होगी उसमें भी आयु का बंध तो होता है। अच्छा बंध करना चाहते हो, नरक नहीं चाहते न, तो सम्यक्त्व प्राप्त कर लो; देवायु ही बंधेगी सबसे आसान उपाय है। हम तो यहां राग कौनसा करूं ? परिणाम कौनसा करूं उसीकी चिंता करते हैं, परंतु दिनभर प्रत्येक समय में बंध हो रहा है उसका क्या ? आयु कितनी बंधेगी या कौनसी बंधेगी उससे क्या है ? वह संयोग ही है न और वह अपने से भिन्न ही है। हम आत्मा है, संयोगों से भिन्न है, तो मनुष्यपर्याय में रहे या देवपर्याय में रहे या नरक में चले गये उससे क्या अपना फर्क पड़नेवाला है ? कौनसी आयु चाहिये ? मिथ्यादृष्टि देवों की आयु चाहिये या सम्यग्दृष्टि नारकी की चाहिये ? *श्रोता: आयु नहीं चाहिये।* आयु नहीं चाहिये।

देखो हम जहां कहीं रहे, हम तो उससे भिन्न ही हैं। हमारी जो हमेशा सारी विचारधारा चलती है, वह मैं मनुष्य हूं, शरीररूप हूं, यह बात रखकर ही हम विचार करते हैं। मैं जीव हूं ऐसा कभी विचार ही नहीं करते इसलिये संयोगों की ही महानता भासित होती है। हम किसको बड़ा मानते हैं समाज में ? जिसके पास पैसा हो, भले वह लोन लेकर बंगला लिया हो या गाड़ी ली हुयी हो चलेगा परंतु दिखायी दे रहा है न ! चकमक सब दिखायी दे रही है वह समाज में बड़ा और जो धनहीन होगा उसकी कोई व्हॅल्यू नहीं है, ऐसा लगता है कि नहीं लगता ? जिसको ऐसा लगता है न, यह पैसे के कारण बड़ा है, बंगले के कारण बड़ा है, उसके अधिक पुत्र हैं इसलिये वह बड़ा है, तो उसने सिद्ध भगवान को माना ही नहीं। कैसे नहीं माना ? सिद्ध भगवान अपने से बड़े की छोटे, क्यों ? बड़े हैं ? पक्का ? इसलिये हम उनके पैर छूते हैं, है न यानी इसलिये हम उनका ध्यान करते हैं। बड़े हैं असल में या छोटे हैं अपने से ? अपने से उनका दर्जा कम है या अधिक है ? *श्रोता : सबसे बड़े हैं।* सबसे बड़े हैं, क्या हमने ऐसा माना कि नहीं माना ? जो क्रायटेरिया हम समाज में किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिये लगाते हैं और उसको बड़ा मानते हैं और उसके पीछे लगते हैं; हमें भी कुछ धन मिल जाये, क्यों ? यही क्रायटेरिया सिद्ध भगवान के साथ लगाओ।

हमारे पास कितने कर्म हैं ? हम इतना सारा हिसाब लगा रहे हैं; हर समय में अनंतानंत बांध रहे हैं और ऐसा हम बांधते आ रहे हैं तो कितने सारे आठ कर्म और उनकी उत्तर प्रकृतियां, उनके असंख्यात लोकप्रमाण भेद हमारे पास हैं। सिद्धों के पास क्या है ? कुछ नहीं है, हमारे पास इतने कर्म हैं। हमारे पास कितने शरीर हैं ? तीन-तीन हैं; औदारिक भी है, तेजस भी है, कार्माण भी है। उनके पास एक भी शरीर नहीं है। हम द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भरपूर हैं; उनके पास एक भी नहीं है, वे तीनों ही कर्मों से रहित हैं। हमारे पास घर है, बालबच्चे हैं, बँक बॅलन्स है, वस्त्र हैं, गहने हैं, टीव्ही-मोबाइल सब कुछ है; उनके पास क्या है ? तो कौन बड़े हैं ? इसी कारण हम अपने को बड़े मान रहे हैं न ? अपने को किस कारण बड़े मान रहे हैं ? सिद्ध भगवान को हमने बड़ा कहां माना ? हमने सिद्ध भगवान का स्वरूप जाना ही नहीं है। इस काल में अभी सबको महत्ता पैसों की ही आ रही है। सिद्धों का स्वरूप अगर निश्चित करते हैं, सर्वज्ञता का स्वरूप निश्चित करते हैं तो उस जीव को अपने सर्वज्ञ स्वभाव की पहचान हो जाती है और जो अपने सर्वज्ञ स्वभाव को पहचानता है, उसको सम्यग्दर्शन ना हो ऐसा हो ही नहीं सकता। हमें अभी भी महानता किसी अन्य चीज़ की पड़ी है और हम ध्यान के नाम पर आत्मा का अनुभव करना चाहते हैं। जब तक उसको अपनी महानता भासित नहीं होती, संयोगों से भिन्न अपनी महानता भासित नहीं हो रही है, उसको तीन काल में आत्मा का ध्यान होगा ही नहीं। हम जिस शुद्ध आत्मा के ध्यान की बात करते हैं वह कब प्राप्त होगा ? जब वह सबसे सर्वोत्कृष्ट पदार्थ लगे तब प्राप्त होगा। उपयोग वहीं चला जाता है जो अच्छा लगता है, जो महान भासित होता है।

लोग तो पूछते हैं कि हमने इतने शास्त्र पढ़े, अभी आत्मा के अनुभव के लिये प्रयोग कैसे करना ? प्रयोग क्या करना है ? जैसे पानी स्वयं अपने स्वभाव से ढलान की ओर बहता है, अग्निशिखा ऊपर उठती है, वैसे ही ज्ञान स्वयं चला जाता है जहां उसकी रुचि है। उपयोग को कहीं यहां से हटाओ वहां लगाओ, यह बात कहनी नहीं पड़ती है और ना ही हमारे करने से यह बात होती है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है, जीव का कर्तव्य इतना ही है कि तत्त्वविचार में लीन हो जाये। जब जीव तत्त्वविचार में लीन होता है, तब तत्त्वविचार के काल में कर्मों में अपनेआप मंदता होती है, अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग घट जाते हैं, उनकी स्थिति घट जाती है और स्वयमेव दर्शनमोह मंद होकर

उपशमित हो जाता है, स्वयमेव। इस जीव का इतना ही कर्तव्य है कि वह तत्त्वविचार में लीन हो जाये। कैसा लीन हो जाये ? वह निर्णय करने तक पहुंच जाये। जिस समय निर्णय हो उसी समय उसको सम्यग्दर्शन हो जाता है। हम उसके लिये कोई अटपटे प्रयत्न करते रहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में एक-एक लाइन में इतना गजब का मर्म भरा है और पूरा मार्ग बताया है। उसमें कहां भूल होती है, वह पहले लिखी है उन्होंने। ऐसा भी नहीं कि ऐसा करो, वैसा करो। देखो, हम अज्ञानी हैं, अनादि से जो हमारी भूलें चली आयी हैं, हमें पता है। इसके लिये वैद्य का भी उदाहरण दिया कि वैद्य के पास जाते हैं तो पहले वह बताता है तुम्हें यह बिमारी है क्योंकि देखते ही पता चलता है न !

आपको पता नहीं होगा डॉक्टर के क्लिनिक पर पेशंट आता है तो पेशंट को देखकर नाइंटी पर्सेंट डायग्नोसिस हो जाता है, हां मैं भी जब पढ़ती थी न, हमारे ऐसे-ऐसे टीचर थे कि अगर कोई पेशंट वह कोई लड़की हो, लड़का हो अगर चलकर आया है, कुर्सी पर बैठा है, बिना उसके पूछे पूरा डायग्नोसिस बता देते थे; कैसा निर्णय किया वह भी बताते थे, तो यह पहचानने में आ जाता है। ऐसे ही यहां कहते हैं, पं. टोडरमलजी ने उदाहरण दिया कि वैद्य आपको बताता है, आपको यह तकलीफ है, आपने ऐसा खाना खाया था, हां हां हां, तो पेशंट को अंदाज़ आता है कि नहीं-नहीं यह कोई चतुर वैद्य होने चाहिये। फिर जो उपाय बतायेंगे वह करेगा। ऐसा है न ? तो ऐसे ही यहां कहते हैं। पं. टोडरमलजी साहब ने मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले अपनी भूल कहां-कहां हो रही है वह बताया है। छहढाला में भी ऐसे ही है, पहले क्या बताया सारा ? क्या-क्या विपरीत मान्यता चल रही है उसका पहले स्वरूप बताया है और फिर सही उपदेश क्या-क्या होता है, वस्तु का सही स्वरूप क्या है उसकी बात की है क्योंकि जो हमारी पहचानवाली चीज़ है वह पहले बताते हैं। अपनी इन भूलों से हम परिचित हैं इसलिये उनको पहले बताया और फिर उनका क्या उपाय है - क्या सही मार्ग है, सही ज्ञान कैसे करना उसकी बात बतायी है। कोई बात नहीं, मोक्षमार्गप्रकाशक में तो बाद में देख लेना, अभी हम आगे बढ़ेंगे।

एक प्रश्न है *देवपर्याय व नरकपर्याय में भी आयु बंध पहले हो,* क्या प्रश्न है ? पहले आयु का बंध हुआ हो और *फिर सम्यग्दर्शन हो जाये देवों को या नारकियों को, ऐसा हो सकता है और फिर वे भोगभूमि के मनुष्य आदि हो सकेंगे कि नहीं ?* उन्होंने

आयु का बंध किया हो या नहीं किया हो, देव में से कोई भोगभूमि में जाता ही नहीं और ना ही नरक में से कोई भोगभूमि में जन्म लेता है। भोगभूमि में जानेवाले मनुष्य या तिर्यंच ही होते हैं और वे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। ये अपर्याप्त जीव भी मरकर वहां नहीं जाते, ये एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव भी मरकर भोगभूमि में नहीं जा सकते ऐसे नियम हैं। यह कोई सवाल ही नहीं है कि पहले आयु बंध किया हो, तो क्या वे भोगभूमि में जा सकते हैं या नहीं जा सकते। देव या नारकी ने सम्यग्दर्शन होने से पहले तिर्यंचायु का बंध किया हो तो मरण के पूर्व मिथ्यात्व में जाकर कर्मभूमि के तिर्यंच होंगे और यदि मनुष्यायु का बंध किया हो तो सम्यक्त्व के साथ कर्मभूमि में जन्मेंगे जहां चौथा काल चल रहा है।

यह जो हम उत्कृष्ट स्थितिबंध देख रहे थे, वह तो हमने मूलप्रकृतियों में देखे। अभी थोड़ी उत्तरप्रकृतियों की भी बात करेंगे। वैसे तो बहुत डीटेल में जाने की हमें जरूरत नहीं है, फिर भी हम देखते हैं ज्ञानावरण की तो पांचों ही प्रकृतियां एक साथ बंधती हैं और हर समय बंध रही हैं क्योंकि वे ध्रुवबंधी प्रकृतियां हैं यह बात हमने देखी थी। ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की नौ, अंतराय की सभी पांच और वेदनीय में से असातावेदनीय इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध कितना होगा ? ज्ञानावरण का उत्कृष्ट बंध कितना देखा था हमने ? *श्रीताः तीस।* हां, ३० कोड़ाकोड़ी सागर। तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय की जो उत्तरप्रकृतियां हैं, उनका भी बंध कितना होता है ? तो ३० कोड़ाकोड़ी सागर, उत्कृष्ट बंध की बात चल रही है। हमने वेदनीय का भी देखा था ३० कोड़ाकोड़ी सागर, परंतु वह कौनसे वेदनीय का होता है ? तो असातावेदनीय का ३० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है। परंतु सातावेदनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध १५ कोड़ाकोड़ी सागर का ही होता है, उसके आधा। मूलप्रकृतियों में तो हमने अलग-अलग देखा था, यहां असाता अशुभ प्रकृति है, उसकी उत्कृष्ट स्थिति अधिक बंधती है जो ३० कोड़ाकोड़ी सागर है। तो १५ कोड़ाकोड़ी सागरवाली और कोई प्रकृतियां हैं ? हां, सातावेदनीय १५ कोड़ाकोड़ी सागर है, स्त्री वेद है, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी। आप कहेंगे, इतना लंबा मनुष्यगति का बंध होगा तो कब तक भोगेगा ? देखो ऐसी बात नहीं होती। जितना लंबा बंध करे उतने काल तक लगातार मनुष्यगति चलती रहे यह बात नहीं है। किसी भी गति का बंध हुआ हो, हमारी सत्ता में वे परमाणु पड़े रहते हैं।

हर एक जीव की सत्ता में चारों ही गति के परमाणु विद्यमान हैं, भले वह तीर्थंकर का भी जीव क्यों न हो। तो क्या होगा ? अभी हमारी मनुष्यगति चल रही है, मनुष्यगति का उदय चल रहा है और जो अन्य गति के परमाणु हैं उनकी स्थिति पूरी होने को आयी तो क्या होता होगा ? उदय के समय में वे मनुष्यगतिरूप से टर्न होकर उदय में आते हैं। संक्रमित होकर एक समय, एक समय, एक समय; इसको कहते हैं थिउक्क संक्रमण; हमारी भाषा में ठिबक सिंचन एक-एक ड्रॉप निकलता है। *श्रोता: ड्रिप इरिगेशन।* सुना है की नहीं सुना ड्रिप इरिगेशन ? ड्रिप-ड्रिप-ड्रिप ऐसा एक-एक समय के लिये वह कर्म संक्रमित होते-होते-होते उदय में आता है। अभी जो नरकगति, देवगति और तिर्यंचगति के परमाणु अपनी सत्ता में यहां बंधे हुये पड़े हैं और अभी तो हमारे मनुष्यगति का ही उदय चलेगा। जब तक मनुष्यायु चल रही है, भव चल रहा है, अन्य गति नामकर्म का उदय यहां नहीं होगा तो उन कर्मों का क्या होगा ? जो उदयरूप प्रकृति है उस रूप से वह संक्रमित होकर उदय में आती रहेगी।

देखो, हम फिर श्रेणिकराजा को बुलाते हैं। जब मिथ्यादृष्टि थे, जब उन्होंने मुनि पर उपसर्ग किया तो नरकायु तो बांधी, उस समय उन्होंने नरकगति भी बांधी। उसके बाद सम्यग्दृष्टि हुये, सम्यग्दर्शन होने के बाद कौनसी गति बांध रहे थे ? *श्रोता: नरकगति।* सम्यग्दृष्टि तो देवगति बिना अन्य गति बांधता ही नहीं है सम्यग्दर्शन होने के बाद। क्योंकि नरकगति की बंधव्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में हुयी, तिर्यंचगति की बंधव्युच्छित्ति दूसरे में हुयी और मनुष्य के लिये मनुष्यगति की भी बंधव्युच्छित्ति दूसरे में होगी। तो सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के लिये एक मात्र गति बची, जो बंधने के लिये रह गयी वह है देवगति। आयु नहीं गति की बात कर रहे हैं, आयु की बात बाद में करेंगे। तो श्रेणिकराजा सम्यग्दर्शन होने के बाद लगातार देवगति बांध रहे थे। अभी क्षायिक सम्यग्दृष्टि है, फिर मिथ्यात्व में जाने का भी सवाल नहीं है। अब वर्तमान में वे नरक में गये हुये हैं, अभी चौरासी हजार वर्ष तक सम्यग्दर्शन के साथ कौनसी गति का बंध कर रहे होंगे वे वहां पर ? *श्रोता: देवगति।* नहीं कोई नारकी जीव देवगति बांधते नहीं हैं, नारकी सम्यग्दृष्टि मनुष्यगति का ही बंध करते हैं। अभी चौरासी हजार वर्ष तक मनुष्यगति बांधेंगे। यहां माता के गर्भ में आयेंगे, आते ही कौनसी गति बांधना शुरू करेंगे ? मनुष्य हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, देवगति का बंध करेंगे। नरक जाने के पहले भी देवगति

बांधी थी; नरक में जाने पर मनुष्यगति बांध रहे हैं, उदय नरकगति का चल रहा है, वहां से आने पर मनुष्यगति का उदय चालू हो जायेगा और बांधेंगे देवगति। वह कब तक बांधेंगे ? जब तक व्युच्छित्ति होगी तब तक। कब होती है ? आठवें गुणस्थान में; देवायु नहीं कहा, देवगति कहा; आठवें गुणस्थान तक बांधते रहेंगे फिर क्या होगा ? क्षपकश्रेणी मांडकर मोक्ष चले जायेंगे।

तो लोग पूछते हैं उस बंधी हुयी देवगति का क्या होगा ? बिचारे ! उसका क्या फायदा ? यानी हम फायदा तभी समझते हैं जब उसको भोगने के लिये देव का और एक भव करते तो फायदा हो जाता यानी हमने देवगति भोगने में फायदा माना या नहीं माना ? ये जो कुछ गति आदिक के जो कोई परमाणु पड़े हैं, जो कोई कर्म के परमाणु पड़े हैं, तो जब क्षपणा करने का समय आता है, तब वे सारे संक्रमित होकर उलट-पुलट जिसमें संक्रमित होकर खिरना है; उसका अभी अलग पूरा प्रोसेस है तो वे सारे नष्ट हो जाते हैं। इतनी सारी शुभ प्रकृतियां बंधेगी और फिर उसका क्षय कर देना ? यानी हम अभी भी पुण्य को छोड़ना नहीं चाहते। जैसे वह दसलक्षण के बाद क्षमावाणी पर अभी क्या फॅशन है मिच्छामि दुक्कडम्; फिर कार्ड भी भेज देते हैं, क्यों ? मिच्छामि दुक्कडम् का अर्थ क्या होता है ? मिथ्या मे दुष्कृतम्, मैंने जो कुछ गलत किया है वह मिथ्या हो जाओ। क्या-क्या मिथ्या हो जाओ ? क्या-क्या मिथ्या करना चाहते हो ? जो हमने गलती की है, वह सब निकल जाओ। निकल जायेगी, नहीं जायेगी लेकिन हम भावना तो करेंगे कि नहीं करेंगे ? तो आप क्या-क्या, दस दिन में क्या-क्या आपने भूल की वह सब मिथ्या हो जाओ ऐसा हम कह देंगे। क्या-क्या मिथ्या करने के लिये तैयार है ? *श्रोता: हिंसा।* हिंसा झूठ जो कोई दोष लगा हो उसको तो मिथ्या करना चाहते हैं या नहीं चाहते ? और दस दिन में उपवास किया है, स्वाध्याय किया है, इतना रोज-रोज मंदिर में गये हैं, भगवान के दर्शन करने के लिये, उनको दर्शन देने के लिये रोज़ मंदिर गये हैं ये सब मिथ्या करने के लिये कौन तैयार है ? अरे हमने भूल की है हमको माफ़ कर दो किसको बोलेंगे ? हमारे मित्र को। कोई शत्रु के सामने जाकर बोलता है मैंने सबको आज से माफ़ किया ? अरे यह तो छह महीने क्या, दस साल पहले, पचास साल पहले की बातें याद-याद करके क्रोधित होता रहता है और कहता है मैंने सबको माफ किया और सब मुझे माफ़ करें। यदि माफ़ किया होता तो फिर वह क्रोधित क्यों

होता है उसको स्मरण करके ? और क्या केवल पाप ही मिथ्या करना चाहता है कि पुण्य को भी मिथ्या करना चाहता है ? यदि सब छोड़ना ही है, अगर छोड़ने की भावना ही कर रहे हैं तो मैंने दस दिन में जितना पुण्य कमाया सब मिथ्या हो जाओ कौन कहेगा बोलो ? यानी हमने शास्त्र पढ़ा और हमने कह दिया वहां पुण्य हेय है, हेय है। आप कहेंगे, बहुत मुश्किली से दस दिन निकालकर हमने कुछ थोड़ा पुण्य कमाया है उसको तो रहने दो, बाकी तीन सौ पैंसठ दिन में से जो जितना तीनसौ पचपन दिन पाप करते हैं, उसीमें से थोड़ा मिथ्या हो जाये तो चलेगा, ये ऐसी बातें हैं।

हमने देखा न, उत्तरप्रकृतियों में कितना स्थितिबंध होता है ? हमने देखा अभी सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इनका १५ कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट बंध होता है। दर्शनमोहनीय में तो एक मिथ्यात्व का ही बंध होता है और हमने देखा उसका उत्कृष्ट बंध ७० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। चारित्रमोहनीय में कषाय जो सोलह कषाय है, उनका ४० कोड़ाकोड़ी सागर का होता है और जो अन्य नोकषाय हैं उनको हम बाद में देखेंगे। अब यहां नामकर्म में जो अलग-अलग प्रकृतियां हैं न, अभी उसमें बहुत डीटेल है; हम उस डीटेल में नहीं जायेंगे। परंतु जो संस्थान है, संहनन है, तो पहलेवाला संस्थान और संहनन शुभ है, बाकी तो अशुभ हैं ही हैं। छठवां संहनन, छठवां संस्थान सबसे अशुभ है तो उसकी उत्कृष्ट स्थिति कितनी होगी ? २० कोड़ाकोड़ी सागर। पांचवें से पहले तक दो-दो कोड़ाकोड़ी सागर कम करते जाना यानी छठे संस्थान, संहनन की २० कोड़ाकोड़ी होगी, फिर १८ कोड़ाकोड़ी होगी, फिर १६ कोड़ाकोड़ी, फिर १४ कोड़ाकोड़ी, १२ कोड़ाकोड़ी, इसतरह से उसको पहले तक घटा कर पहले संस्थान, संहनन की उत्कृष्ट स्थिति १० कोड़ाकोड़ी सागर होगी। ऐसे ही प्रत्येक एक-एक कर्म की अलग-अलग स्थिति उन्होंने बतायी है, अब उसके डीटेल में जाने से कोई अर्थ नहीं क्योंकि आपके हाथ में पुस्तक हैं नहीं और मैं खाली बोलती चली जाऊंगी। इतना ही समझना है कि जो प्रकृतियां सम्यग्दृष्टि ही बांधते हैं; ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं जो मात्र सम्यग्दृष्टि के बंधती हैं, नीचे तीन गुणस्थानों में नहीं बंधती ? *श्रोता: तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक।* तीर्थंकर प्रकृति जो चौथे गुणस्थान से बंधती है और आहारकद्विक जो मुनियों के ही बंधती हैं, उनका उत्कृष्ट बंध कितना होगा ? मैंने बताया था, अंत:कोड़ाकोड़ी सागर।

सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् किसी भी कर्म का बंध यानी सत्ता में जो पड़े हैं न सारे, पहले किसीने ७० कोड़ाकोड़ी सागर बांधी होगी और अन्य किसी की ३०, किसी की २० कोड़ाकोड़ी सागर जो कुछ बंधी होगी। जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है उस काल में वे सारी स्थितियां कट हो जाती हैं एक साथ, एक छोटे अंतर्मुहूर्त में सारी स्थितियां घटकर कम हो जाती हैं। तो परमाणु कहां चले जाते हैं ? नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं और सबकी स्थिति कितनी हो जाती है ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। आयु में कोई परिवर्तन नहीं होता; आयु जितनी है उतनी ही रहती है, बाकी सभी कर्मों की स्थिति घटकर अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाती है। *श्रीता: दुबारा फिर से।* फिर से दुबारा, जब जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो मिथ्यात्व अवस्था में उसने कभी ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध किया था; कभी थोड़ा कम किया था; कम से कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर तो किया ही किया था। फिर भी अभी वह जब सम्यक्त्व के लिये करणलब्धि मांड़ रहा है, उसके पहले प्रायोग्यलब्धि होती है। तो उसके काल में; प्रायोग्यलब्धि यानी क्या है ? तत्त्वचिंतन का काल चल रहा है तब; अभव्यों को भी यह होगा; तो उसके सभी कर्मों की- पुण्य हो या पाप हो- सभी कर्मों की स्थिति घटकर अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बन जाती है। ये ७० कोड़ाकोड़ी, ५० कोड़ाकोड़ी, ३० कोड़ाकोड़ी सागर आदि जितनी कोई पहले कभी बंधी थी, वह सारी घट जाती है। इतनी कम हो जाती है, सहज रूप से होती है, उसमें उस जीव को कर्मों में कुछ करना ही नहीं पड़ता। कर ही नहीं सकता, वह तो मात्र तत्त्वचिंतन में लगा है, तो उसी कारण ये सारी बातें वहां बन जाती हैं।

अब यह तो हो गयी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर की बात, अब ऐसे सम्यग्दर्शन होने के बाद जो नया स्थितिबंध होगा तो प्रत्येक कर्म में जितनी स्थिति सत्ता में पड़ी है उससे भी स्थितिबंध छोटा होगा। मिथ्यात्व का तो बंध है ही नहीं, ना ही अनंतानुबंधी का है; हमने देखा न १६ और २५ मिलकर ४१ प्रकृतियों का बंध ही नहीं है और जो प्रकृतियां बंध रही हैं उनकी स्थिति घटकर अभी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर रह गयी है, उससे भी छोटा बंध होगा और ये ऐसे ही लगातार चलते रहेगा। स्थिति तो उसकी लगातार घटती चली जायेगी और नया जो बंध होगा वह कम स्थितिवाला ही बंधेगा, पुण्य में भी और पाप में भी। दोनों प्रकृतियों में स्थिति तो सबकी घटती है, पुण्य प्रकृतियों की भी स्थिति

घटती है, पाप प्रकृतियों की भी स्थिति घटती है। परंतु सम्यग्दर्शन होने के समय और पश्चात् अशुभ कर्मों का अनुभाग घटता है और शुभ कर्मों का अनुभाग बढ़ता है; अपने आप बढ़ता है, प्रशस्त कर्मों का अनुभाग अपने आप बढ़ता चला जाता है। यह ऐसी सहज सुव्यवस्थित व्यवस्था है कर्मों में भी। हमें तो पहले से डर लगता है, क्या अरे ! कर्म क्या करेंगे अभी ? हमने इतने ऐसे खोटे तीव्र कर्म बांधे हैं न, दर्शनमोहनीय है न, इसलिये हमको मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व हमारा छूट नहीं रहा, क्यों ? दर्शनमोहनीय पड़ा है इसलिये। तो जिसको सम्यग्दर्शन होता है क्या उसका दर्शनमोहनीय नहीं था वहां पर ? *श्रोता: हमारे जैसा ?* हमारे जैसा यानी कैसा ? *श्रोता: गाढ़ा दर्शनमोहनीय है।* सबका गाढ़ा है, वह कुछ नहीं करता। जो तत्त्वविचार में लग जाता है, उसका गाढ़ा है वह एकदम फीका-पतला हो जाता है। उसका अनुभाग घट जाता है; तत्त्वविचार मात्र से घट जाता है। बिलकुल ऐसी सहज वस्तुव्यवस्था है। पंचलब्धि पुस्तक में यह सारा वर्णन आया है, यहां शिबिर में विषय चला था एक बार।

हम देख रहे हैं, ये जो अलग-अलग उत्तरप्रकृतियां हैं, उनका उत्कृष्ट स्थितिबंध अलग-अलग है। परंतु जो तीर्थंकर और आहारकद्विक; तीर्थंकर प्रकृति तो चौथे से आठवें तक बंधती है। आहारकद्विक सातवें, आठवेंवाले को बंधती हैं, उनका भी स्थितिबंध कितना होगा ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। वह उत्कृष्ट किसको होगा ? हमने देखा था तीर्थंकर प्रकृति अधिक से अधिक लंबी किसको बंधेगी यानी अधिक से अधिक का अर्थ जो चौथे गुणस्थानवाला है; तीर्थंकर प्रकृति की बात चल रही है; जो चौथे गुणस्थानवाला है क्योंकि मिथ्यात्व में जाने के बाद तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध होगा नहीं। परंतु अभी जो दूसरे या तीसरे नरक में जानेवाला मिथ्यात्व के सन्मुख है, उसके वहां संक्लेश परिणाम हैं और उसका बंध अधिक स्थितिवाला करेगा। अधिक स्थितिवाला कहने से भी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर ही है, उससे ज्यादा तो करता ही नहीं है और आहारकद्विक का भी कौन करेगा ज्यादा से ज्यादा ? जो सातवें गुणस्थानवाला छठे के सन्मुख है, अभी वह गिरने के सन्मुख है इसलिये उसके उसकी लंबी स्थिति होगी। फिर भी होगी कितनी ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। अब इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध देखा हमने वह किसके होता है ? तो कहते हैं उत्कृष्ट संक्लेश जिसको होता है, ऐसे जीवों को यह उत्कृष्ट स्थिति बंधती है। मूलकर्मों की देखेंगे हम, अब उत्तरप्रकृतियों की

अधिक चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि एक-एक प्रकृति का अलग-अलग स्थितिबंध देखते जाये तो ख्याल में रहनेवाला नहीं है कुछ। हम मूलप्रकृतियों की बात देखेंगे कि इतना अधिक से अधिक बंध क्यों होता है, कौनसे जीव को होता है, नारकी के होता होगा कि तिर्यंच के होता होगा ? तो कहते हैं चारों ही गतियों के जीवों को हो सकता है। परंतु वह कैसा जीव है ? अत्यंत संक्लेश परिणामी जीवों को यह उत्कृष्ट बंध होता है। अभी हम मिथ्यात्व की बात करेंगे तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट बंध होता है।

देखो यहां जीव कुछ पुण्य कमाकर देव में जाता है, वहां भवनत्रिक और सौधर्म-ईशानवाले एकेन्द्रिय का भी बंध करते हैं और मरकर एकेन्द्रिय में जा सकते हैं। वह बंध ऊपर के देव नहीं करते। देवों को तो पता चलता है कि अभी यहां आयु समाप्त होने को आयी है, छह महीने पहले उनको पता चलता है। हमें भी कभी-कभी पता चलता है, कैसे ? डॉक्टर बता देते हैं अब इतना ही काल शेष है। फिर क्या करता है जीव ? संक्लेश परिणाम करता है, रोता रहता है। अच्छा है, तो ये देव संक्लेश परिणाम करता है, अरे क्योंकि वहां तो सागरों की आयु है न ! सागरों की आयु है तो उसको अमर कह दिया, देवों का नाम क्या है ? *श्रोता: अमर।* कहां सुना है ? *श्रोता: भक्तामर।* भक्त अमर भक्तामर; उसको अभी हमने भक्ताम्बर बना दिया जैसे दिगम्बर, श्वेताम्बर वैसा भक्ताम्बर। यह भक्तामर शब्द है, तो उनको अमर इसलिये कहते हैं कि इतनी लंबी आयु है। १ सागर का प्रमाण कितना है ? १० कोड़ाकोड़ी पल्य। अब पल्य कितना बड़ा है हमने देखा था, असंख्यात अरब करोड़ वर्षों का तो पल्य होगा। इतनी लंबी आयु है, हां, अब समाप्त होने को आयी है; यह सारा अपना वैभव जानेवाला है, अब वह इतना संक्लेश परिणाम करते हैं कि एकेन्द्रिय संबंधी बंध करके एकेन्द्रिय में चले जाते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक या ? *श्रोता: वनस्पतिकायिक।* कौनसे होते हैं ? प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त होते हैं, देव में से कोई निगोद में नहीं जाते डायरेक्ट; ना ही कोई अग्निकायिक और वायुकायिक में जाते हैं। होंगे तो बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त में जायेंगे, बादर जलकायिक पर्याप्त में जायेंगे या प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त में जायेंगे। यह जो संक्लेश परिणामी ऐसा देव उसने ७० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट बंध किया और दूसरे ही समय में मरकर एकेन्द्रिय में चला गया ऐसा हो सकता है। इतनी सारी कर्म की स्थिति लेकर गया है वहां पर, अब

उसका आगे क्या होता है वह अलग बात है। परंतु ऐसा उत्कृष्ट बंध नारकी भी कर सकते हैं, मनुष्य भी कर सकते हैं और तिर्यंच भी कर सकते हैं। परंतु तिर्यंचों में तो हमने देखा, उत्कृष्ट बंध किसके होगा ? *श्रोता: संज्ञी पंचेन्द्रिय।* संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त को होगा। संज्ञी पंचेन्द्रियों को जिसको संक्लेश परिणाम हैं, तीव्र कषाय के कारण ऐसा उत्कृष्ट बंध होता है; यह किसको होता है उसकी बात देखी है। अब हम आगे बढ़ते हैं।

यहां पर जघन्य स्थितिबंध कितना होता है उसकी भी बात देखेंगे। उत्कृष्ट की तो बात देखी, बहुत डर लगने लगा तो अभी जघन्य कितना करता है उसको देखेंगे। जघन्य स्थितिबंध कितना होता है मूलप्रकृतियों में देखेंगे हम क्योंकि एक-एक उत्तरप्रकृति में अलग-अलग नहीं देखेंगे। मूल जो आठ प्रकृतियां हैं, उनमें कम से कम स्थितिबंध कितना होता है उसमें भी लिमिट है। पंचेन्द्रियों को कितना हो सकता है, असंज्ञी पंचेन्द्रिय को कितना हो सकता है, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय को अपना-अपना, अलग-अलग; जो कुछ उनकी रेंज है वह हम देखेंगे गाथा नंबर १३९।

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं॥ १३९॥

क्या कहते हैं **बारस य वेयणीये**, वेदनीयकर्म का जघन्य स्थितिबंध कितना है ? तो कहते हैं १२ मुहूर्त है। **णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता** नामकर्म और गोत्रकर्म का ८ मुहूर्त है। फिर **भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी** भिण्णमुहुत्तं यानी अंतर्मुहूर्त होती है स्थिति, किसकी ? अन्य जो पांच हैं उनकी जघन्य स्थिति। स्थितिबंध जघन्य कितना हो सकता है ? तो कहते हैं, भिण्णमुहुत्त यानी अंतर्मुहूर्त अभी उसकी बात यहां हम थोड़ी देखते हैं कि वह कैसे-कैसे है। यहां डायरेक्ट ही क्या बता दिया है? वेदनीय से शुरू किया था, अभी हमने जो गाथा में देखी थी, वेदनीय की जघन्य स्थिति कितनी बंधती है ? *श्रोता: १२ मुहूर्त।* १२ मुहूर्त। किसको बंधती होगी ? केवली को ? केवली को स्थितिबंध होता ही नहीं। ग्यारहवेंवाले को, बारहवेंवाले को, तेरहवेंवाले को सातावेदनीय का बंध तो है परंतु स्थिति और अनुभाग बंध नहीं है। जब तक कषायें हैं तब तक स्थिति बंधेगी; दसवें तक कषाय है तो दसवें तक उनकी स्थिति बंधेगी। बाद में प्रकृति का बंध तो हो रहा है, सातावेदनीय तो बंधेगी; परंतु एक समय के लिये बंध कर चली जायेगी, वह रुकेगी नहीं इसको ईर्यापथास्रव कहते हैं। तो वह कर्म रुकता ही नहीं है, आता है और चला जाता

है, परंतु स्थिति कब पड़ेगी ? दसवें के अंत तक, तो क्षपकश्रेणी के दसवें गुणस्थान के अंत में वेदनीयकर्म का जो बंध हो रहा है वह कितने काल का हो रहा है ? कहते हैं १२ मुहूर्त का। ख्याल में आती है बात ? तो यह १२ मुहूर्त का जघन्य बंध किसका है ? *श्रोता: वेदनीय का।* वेदनीय का।

जघन्य स्थितिबंध (आयु बिना)

एकेन्द्रिय	: उत्कृष्ट मायनस पल्य का असंख्यातवां भाग	
द्वीन्द्रियादि	: उत्कृष्ट मायनस पल्य का संख्यातवां भाग	
संज्ञी पंचेन्द्रिय		
मिथ्यात्व	: अंत:कोड़ाकोड़ी सागर	
चारित्रमोहनीय, ज्ञानावरण	: अंतर्मुहूर्त	आयु
दर्शनावरण, अंतराय	: अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
वेदनीय	: १२ मुहूर्त	
नाम, गोत्र	: ८ मुहूर्त	

अब यहां नाम, गोत्र का कितना देखते हैं हम ? *श्रोता: ८ मुहूर्त।* ८ मुहूर्त। परंतु हमने देखा है दसवें गुणस्थान में बंधनेवाले नाम और गोत्र कर्म कौन-कौनसे हैं ? किसीको याद है क्या ? यहां से कोई नहीं बोले, यह मालूम हैं न इन लोगों को। हां दसवें गुणस्थान में कौनसा नामकर्म और कौनसा गोत्रकर्म बंध रहा है ? हां बोलो, जयश्रीबेन बोलो। *श्रोता: उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति।* उच्चगोत्र और यशस्कीर्ति दो ही प्रकृतियां बंध रही हैं। वहां विशुद्धि बहुत ज्यादा है- कितने काल के लिये बंध रही हैं यानी उनका स्थितिबंध कितना हो रहा है ? *श्रोता: ८ मुहूर्त।* ८ मुहूर्त। दसवें में बंध रही हैं। अब बाकी कौनसी है ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय ये कहां तक बंध रही हैं ? अभी तीन की बात पहले देखते हैं; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, कहां बंध रही है ? दसवें के अंत में बंध रही हैं न ये। ये कहां गयी - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय दसवें के अंत में और चारित्रमोहनीय अंत में कहां तक बंध रही है ? कौनसा लास्ट गुणस्थान है जहां चारित्रमोहनीय का बंध हो रहा है ? *श्रोता: बारहवें में।* बारहवें में तो है ही नहीं, क्षय हो चुका है। *श्रोता: नौवें में।* नौवें में, दसवें में तो उदय है; नौवें में लास्ट में संज्वलन

लोभ बंधेगा, तो वहां उसका बंध कितना है ? अंतर्मुहूर्त का है। यह जघन्य स्थिति कहां बंध रही है इनकी ? एकदम जहां अंत में है, उसके भी बंध की व्युच्छित्ति जहां होनेवाली है, वहां पर इनका जघन्य में जघन्य स्थितिबंध होगा। यहां चारित्रमोहनीय को लिया है मिथ्यात्व को यहां नहीं लिया है। अभी जो अंतर्मुहूर्त प्रमाण बताया है, मोहनीय का कितना है ? तो जहां जघन्य होगा उसको मोहनीय का कहेंगे परंतु उसमें दर्शनमोहनीय का अगर अलग निकालना है, तो मिथ्यात्व का जघन्य में जघन्य किसके लिये ? संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये पूछा, एकेन्द्रिय के लिये नहीं। संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये मिथ्यात्व का कम से कम बंध कब होता है ? पहले कितना होता है वह बात छोड़ दो, कब होगा ? *श्रोता: प्रयोग्यलब्धि।* प्रयोग्यलब्धि में और कोई दूसरा उत्तर हां ? *श्रोता: हां सम्यग्दृष्टि को ?* क्या ? सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का बंध ? सम्यक्त्व में मिथ्यात्व का बंध ही नहीं होता तो मिथ्यात्व का बंध कहां तक होता है लास्ट में लास्ट ? *श्रोता: करणलब्धि के अंतिम समय में।* करणलब्धि के अंतिम समय में। उपशम सम्यग्दृष्टि को कुछ बंध नहीं है, सम्यक्त्व होते समय कुछ बंध नहीं है, ना ही उदय है ना ही बंध है। तो करणलब्धि का जो अंतिम समय है, वहां मिथ्यात्व का उदय भी है और बंध भी है और बंध कैसा है ? मिनिमम है। *श्रोता: तीसरे करण में कि पहले करण में ?* तीसरे करण का अंतिम समय जिसका नाम है अनिवृत्तिकरण।

हमने देखा अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन नाम हैं और हर एक का काल अंतर्मुहूर्त- अंतर्मुहूर्त है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की बात नहीं चल रही है, उपशम सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाले तीन करण परिणाम हैं उनकी बात चल रही है। दसवें गुणस्थान में मिथ्यात्व का सवाल ही कहां है ? यहां मिथ्यात्व के बंध की बात चल रही है; जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तो करणलब्धि में अभी मिथ्यात्व गुणस्थान चल रहा है, करणलब्धि पार करके औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तब उसका गुणस्थान चौथा, पांचवां, या सातवां यथायोग्य जिसका जो होगा वह उसका होगा। वह जो अंतिम समय में बंध कर रहा है तब उसका कम से कम बंध हो रहा है। स्थितिबंध कितना होगा ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर, हां, सम्यक्त्व से एक समय पूर्व यानी मिथ्यात्व का अंतिम समय, यह संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये हम देख रहे थे। यह जो चार्ट में सभी प्रमाण लिखे हैं न हमने; मिथ्यात्व का अंत:कोड़ाकोड़ी सागर, चारित्रमोहनीय,

ज्ञानावरण, दर्शनावरण अंतराय का अंतर्मुहूर्त, वेदनीय का १२ मुहूर्त और नाम, गोत्र का ८ मुहूर्त का जो स्थितिबंध लिखा है, वह संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये जघन्य स्थितिबंध लिखा है। संज्ञी पंचेन्द्रिय को क्यों कहा ? क्योंकि इतना कम स्थितिबंध क्षपकश्रेणी के बिना अन्यत्र नहीं हो सकता; यहां विशुद्धि मॅक्झिमम है, बाकी अन्य जो नीचे के गुणस्थानवालों को इतना कम स्थितिबंध कहीं नहीं होगा। हां, मुनिराज भी होंगे तो भी उनके अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होगा ही होगा। ज्ञानावरण हो, दर्शनावरण हो, चारित्रमोहनीय हो, नाम गोत्र हो, कोई भी हो, अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होगा; क्षपकश्रेणी में ही इतना कम बंध हो सकता है। जहां उसकी व्युच्छित्ति का समय होता है वहां उसका जघन्य स्थितिबंध पाया जाता है।

आप कहेंगे एकेन्द्रियों का उत्कृष्ट आपने बताया था कि मिथ्यात्व का एक सागर होता है, तो जघन्य कितना होगा ? यहां लिखा है देखो, एकेन्द्रियों में जघन्य स्थितिबंध कितना हो सकता है ? उत्कृष्ट कितना देखा हमने मिथ्यात्व का ? यहां जो कुछ उत्कृष्ट होगा; जो कुछ क्यों कहा ? क्योंकि मिथ्यात्व में एक सागर देखा और ज्ञानावरण में तो $\frac{३}{७}$ सागर देखा था। तो जो कोई उसका अपना-अपना उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा उसमें से मायनस करना, किसको ? पल्य के असंख्यातवें भाग को यानी पल्य के असंख्यातवें भाग कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति। किसके लिये ? एकेन्द्रिय के लिये। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये क्या है ? उसकी अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति मायनस ? *श्रोता: पल्य का असंख्यातवां भाग ?* पल्य का असंख्यातवां नहीं, पल्य का संख्यातवां भाग कम कहना। दूसरी भाषा में कहना है तो उनकी बंध की रेंज कितनी है ? जघन्य बंध कितना है और उत्कृष्ट कितना है ? उत्कृष्ट एक सागर है, तो जघन्य सागर में पल्य के असंख्यातवां भाग कम है यानी जो एकेन्द्रिय जीव की जघन्य से उत्कृष्ट तक कितनी रेंज है ? *श्रोता: पल्य से।* हां पल्य के असंख्यातवें भाग जितनी, पल्य से नहीं। सागर से पल्य का असंख्यातवां भाग कम है, वहां से लेकर एक-एक समय बढ़ते हुये एक सागर तक इतने उसके अलग-अलग बंध हो सकते हैं। किसमें ? मिथ्यात्व में। ज्ञानावरण में लगाना है तो $\frac{३}{७}$ सागर; उसमें से पल्य का असंख्यातवां भाग मायनस करना, इतनी उसकी जघन्य स्थिति होगी। सब कषाय कर्म हैं उनमें उत्कृष्ट

स्थिति $\frac{४}{७}$ सागर देखी थी। नाम, गोत्र में $\frac{२}{७}$ सागर देखी थी। जिसकी जो उत्कृष्ट स्थिति होगी उसमें से पल्य का असंख्यातवां भाग कम ये उनकी जघन्य स्थिति है, इतने लिमिट में कम या ज्यादा बंध होगा। उससे ज्यादा स्थिति नहीं होगी, सागर से ज्यादा बंधेगी नहीं और जघन्य से कम भी नहीं बंधेगी, यह उनकी वहां पर रेंज होती है।

श्रोता: उपशमश्रेणीवाले को भी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होगा ? नहीं ऐसा नहीं है, परंतु क्षपकश्रेणीवाले से ज्यादा होगा। जहां क्षपकश्रेणीवाले को जितना होता है उसी स्थान पर उपशमश्रेणीवाले को डबल होता है। यहां जघन्य स्थितिबंध १२ मुहूर्त है, तो वहां २४ मुहूर्त होगा। क्षपकश्रेणी में दसवें गुणस्थान में जिन प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है, उनका जघन्य स्थितिबंध वहां पर होगा। हमने देखा न, ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, अंतराय है, नाम और गोत्र की एक-एक प्रकृति जो उनका वहां जघन्य बंध होता है और अन्य कौन रही अभी ? संज्वलनक्रोध का जघन्य में जघन्य स्थितिबंध कितना कब होता है ? क्रोध की बंधव्युच्छित्ति कहां होती है ? नौवें गुणस्थान में। पहले क्रोध का बंध मिटता है, फिर मान का, फिर माया का, फिर लोभ का; तो क्रोध का बंध मिटता है उससे पहले उसने कितना क्रोध बांधा ? कितना समय का बांधा ? तो दो महीने का। जब मान का बंध रुक गया तो एक महीने का बंध किया कम से कम। माया का पंद्रह दिन का बंध हुआ, जब उसके बंधव्युच्छित्ति हो उसके पूर्व समय की बात है और फिर लोभ का तो अंतर्मुहूर्तवाला होगा, क्योंकि वह लास्ट में बंधता हैं न, नौवें गुणस्थान के अंत में। पुरुषवेद का जो नौवें गुणस्थान के शुरू में बंध रुक जाता है तो उसका आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबंध होता है। दसवें गुणस्थान में जो स्थिति का बंध रुकता है, जिनकी बंधव्युच्छित्ति होती है वहां तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण देखा। नौवें गुणस्थान में जिसकी बंधव्युच्छित्ति होती है, पहले किसकी होती है ? पुरुषवेद की, उसकी बंधव्युच्छित्ति हुयी तब आठ वर्ष का बंध हुआ। फिर क्रोध का बंध रुका, तब दो महीने का बंध हुआ। फिर मान का बंध रुका तो एक महीने का बंध हुआ। माया का बंध रुका तो वहां पंद्रह दिन का। संज्वलन लोभ नौवें गुणस्थान के अंत तक बंधता है, वहां अंतर्मुहूर्त प्रमाण हो जायेगा। इसतरह से हमने जघन्य स्थितिबंध के कुछ उदाहरण यहां भी देख लिये हैं। अब यहीं पर अपना यह विषय समाप्त होता है।

बोलो, चोबीसों भगवान की जय।

१८. एकेन्द्रियादिकों में स्थितिबंध

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है और उसके कर्मकाण्ड की पं. टोडरमलजी ने लिखी हुयी जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका है, उसके आधार से हम कर्म की कुछ अवस्थाओं का वर्णन देख रहे हैं। यहां बंध-उदय-सत्त्व नाम का जो महाअधिकार है जिसमें बंध की, उदय की और सत्त्व की यानी सत्ता की चर्चा कर रहे हैं। बंध का प्रकरण चल रहा है। प्रकृतिबंध के बाद हम स्थितिबंध की बात देख रहे हैं। उसमें उत्कृष्ट स्थितिबंध कौनसे कर्मों में कितना होता है और किस जीव को होता है उसकी भी हमने चर्चा की।

जिसके उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम होते हैं उसको उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है यानी अकेले मिथ्यादृष्टि हैं इसलिये उत्कृष्ट होता है ऐसा नहीं हैं। मिथ्यात्व के साथ संक्लेश भी जहां उत्कृष्ट होते हैं, वहां मिथ्यात्व का भी उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है, चारित्रमोहनीय का भी होगा, अन्य भी कर्मों का अपना-अपना उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा। उत्कृष्ट के बाद अभी हमने जघन्य की बात शुरू की थी और उसके बारे में कुछ प्रश्न भी आये हैं। दो तीन जनों ने तो एक ही प्रश्न पूछा है, यह क्रोध वगैरह जो दो महीना वह क्या बात है जरा फिर से समझाना। हमने देखा, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ की बंधव्युच्छित्ति कहां होती है ? *श्रोता: नौवें गुणस्थान में।* नौवें गुणस्थान में, तो उसका जघन्य बंध भी किसके होगा ? *श्रोता: नौवें गुणस्थान।* नौवें गुणस्थानवाला जो क्षपकश्रेणी चढ़ रहा है उसको उसका जघन्य स्थितिबंध होगा क्योंकि उसकी विशुद्धि मॅक्झिमम होती है। जब क्रोध का बंध रुक जाता है तो जहां क्रोध का उदय भी मिटता है और क्रोध का बंध भी मिट जाता है वहां पर; पहले क्या हो रहा था ? जहां क्रोध का जिसको क्रोध वेदककाल कहते हैं; क्रोध का उदय जहां हो सकता है, वहां तक अकेले क्रोध का बंध नहीं हो रहा था; क्रोध-मान-माया-लोभ चारों का बंध हो रहा था। मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर कहीं पर भी कोई एक कषाय करता हो तो उसको बंध तो चारों का होता है। जैसे अनंतानुबंधी जो कर रहा है, उसके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चारों कषाय विद्यमान हैं। तो वह अनंतानुबंधी क्रोध करता है यानी उसका अर्थ क्या है ? अनंतानुबंधी का क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण का क्रोध, प्रत्याख्यानावरण का क्रोध और संज्वलन का क्रोध- चारों का उदय हो रहा है वहां पर और बंध हो रहा

है सोलह का। बंध तो क्रोध-मान-माया-लोभ सबका होता है; भले कषाय एक करे, बंध तो चारों का होता है।

नौवें गुणस्थान में जब संज्वलन क्रोध का वहां बंध हो रहा है तो अकेले क्रोध का बंध नहीं हो रहा है; संज्वलन क्रोध का भी हो रहा है, संज्वलन मान का भी, संज्वलन माया का भी और संज्वलन लोभ का भी। जब क्रोध का बंध रुक जाता है तो तीन का बंध चालू रहता है; किसका ? मान, माया और लोभ। अंतर्मुहूर्त तक तीनों का बंध चलेगा। परंतु क्रोध का बंध रुक गया न, तो जिस समय क्रोध का बंध रुक गया है उस समय अंत में उसने कितना स्थितिबंध किया? तो दो महीने का स्थितिबंध किया। इसके ऊपर और प्रश्न है उसकी बात बाद में करेंगे। अंतर्मुहूर्त तक संज्वलन के मान-माया-लोभ तीनों बंधते रहे, फिर मान का बंध रुकने का समय आ गया है। उस समय इन तीनों का ही बंध कितना किया था ? हम मान का इसलिये कह रहे हैं क्योंकि बाकी दो का बंध आगे चलता रहनेवाला है। जिस समय क्रोध का बंध रुकनेवाला था तो चारों का बंध उसने कितना किया था ? दो महीने का और फिर क्रोध का बंध रुक गया, अन्य का चलता रहा; दो महीने से भी कम होते होते होते जब कम होते होते एक महीना बंध रह गया तो मान का भी बंध रुक गया है। मान का जो अंत में बंध हुआ तो कितने का हुआ ? एक महीने का हुआ। अभी क्या हो रहा है ? माया और लोभ दोनों का बंध होता चला आया है; यह नौवें गुणस्थान की बात चल रही है। माया और लोभ दो का बंध हो रहा है तो कितना होकर रुकेगा अभी ? माया का पंद्रह दिन हुआ, दोनों का पंद्रह दिन हुआ और फिर माया का बंध रुक गया। अब लोभ का पंद्रह दिन से भी कम होते-होते अंत में कितना बंधा ? अंतर्मुहूर्त बंधा। फिर लोभ का भी बंध रुक गया।

इस पर बहुतों ने अभी-अभी प्रश्न पूछा कि दो महीने का यहां बंध हो रहा है; गुणस्थान नौवां चल रहा है। पूरे नौवें गुणस्थान का काल भी अंतर्मुहूर्त है, दसवें का भी काल अंतर्मुहूर्त है। यहां तो यह संज्वलन की बात हो रही है, दसवें गुणस्थान में तो नष्ट होनेवाला ही है सब। दसवें गुणस्थान की क्या बात है ? दसवें में तो लोभ ही रह गया है यानी नौवें में ही नष्ट होनेवाला है। नौवें में ही अंत में बंधा है; क्रोध भी बंधा है, फिर मान, फिर माया - बंध रुक गया है फिर भी कितने का बंध किया था ? दो महीने का और अंतर्मुहूर्त में तो दसवें गुणस्थान में चला जानेवाला है, तो यह कैसे ? यही प्रश्न था न

सबका ? क्रोध का बंध हुआ है कितना बंध हुआ ? दो महीने का। उसमें एक छोटा अंतर्मुहूर्त आबाधा है और उसके ऊपर उसकी भी निषेक रचना होती है। जब-जब बंध होता है वहां आबाधा छोड़कर उसकी निषेक रचना हो जायेगी। दो महीने का बंध हुआ है तो उसमें आबाधा का जो प्रमाण है वह छोड़कर ऊपर उसकी भी निषेक रचना हो रही है यानी अंतर्मुहूर्त कम दो महीने इतने उसके निषेक बन गये। जब बंध होता है उसके बाद आवली काल तक उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता। उसके बाद अभी ये जो अंत में जो बंधा है वह नष्ट होगा, पूर्व में जो बंधा था और पड़ा था उसकी तो अभी तक क्षपणा हो गयी है। अंत में जो बंधा है वह पड़ा है वहां, वह दो आवली काल में नष्ट होनेवाला है। दो आवली काल में ही वह भोगकर यानी एक-एक समय का उदय आकर नष्ट होनेवाला नहीं है; उदय भी मिटा है और बंध भी मिट गया है। यहां क्रोध का उदय है ही नहीं है कि जो दो महीने तक वह लगातार उसको भोगना पड़े और एक-एक समय में एक-एक नष्ट होकर निषेक नष्ट हो ऐसा है ही नहीं।

क्षपणा का प्रोसेस ही कुछ अलग होता है। ये जितने निषेक बने हैं उतने सारे ही अभी संक्रमण नाम का जो कुछ प्रोसेस होता है, वे सारे संक्रमित होकर यानी उनका क्षय होकर नष्ट होनेवाले हैं। कितने काल में ? दो आवली काल में ही। भले दो महीने का बंध हुआ है, परंतु वह तत्काल थोड़े ही काल में नष्ट होनेवाले हैं। ऐसा हर एक में समझना- क्रोध में भी, मान में भी, माया में भी और लोभ में भी। लोभ का भी जो नौवें गुणस्थान के अंत में बंध हुआ है, वह तो दसवें में तो सूक्ष्मलोभ बनकर वह भी नष्ट होनेवाला है। क्योंकि हमें आगे के प्रोसेस मालूम नहीं हैं न, अभी तो बंध में ही अटके हैं, अनादि से ही अटके हैं, अभी क्या नवाई ? हां, इसलिये आगे कैसे-कैसे कर्म नष्ट होते हैं यह हमें पता नहीं है; क्योंकि मूलभूत अगर हमें बंध क्या होता है, सत्त्व क्या होता है मालूम नहीं है, अभी तो हमने अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण की बात को तो छुआ तक नहीं, उसकी बात ही नहीं उठायी है; तो कैसे समझायें कि आगे चलकर कैसा वह नष्ट हो जाता है ? कैसा क्षय होता है ? वैसे बहुत ही इंटरेस्टिंग सब्जेक्ट है कि कोई जीव अपने में पुरुषार्थ करता है तो कर्म में क्या-क्या अवस्थायें, कैसी बन जाती हैं और कैसा वह कर्म से मुक्त हो जाता है, यह बात आगे आयेगी।

प्रश्न: कृपया स्पष्ट करें कि क्या मनुष्य के आयु के अंत में यानी मृत्यु के समय

आयु और गति का बंध होता है ? आयु का बंध तो पूर्व में ही होता है, मरण के समय में नहीं होता; कम से कम एक अंतर्मुहूर्त पहले तो होता ही होता है। आयु का बंध होने के बाद भी थोड़ा काल बाकी रहता है तब जाकर मरण होता है। तत्काल आयु के बंध के काल में मरण नहीं होता। गति का बंध तो निरंतर ही होता है, मरने के समय में भी यथायोग्य जिस गुणस्थान में है और जैसे उसके परिणाम हैं वैसे उस गति का उसके बंध होगा। *प्रश्न: तत्त्वविचार किसे कहते हैं और कैसे करना चाहिये ? जिससे सम्यक्त्व भी प्राप्त हो कृपया विस्तार से समझाना ?* बहुत अच्छा प्रश्न है अभी यहां इसका विषय नहीं है क्या करें ? अच्छा बॉम्बे में आना। हां, ऐसी जिज्ञासा होनी ही चाहिये और पंचलब्धि पुस्तक जो आपके हाथ में है उसमें बहुत विस्तार से उसका वर्णन किया है। यहां केवल कर्मों की बात नहीं लिखी है; जीवों के परिणाम कैसे होते हैं, उसको देशना कैसी होती है, उस पर विचार कैसे किया जाता है, तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय का क्या अर्थ है, वहां क्या करना चाहिये और जीव क्या करता है - इन सारे ही बातों पर बहुत विस्तार से चर्चा आयी है पंचलब्धि पुस्तक में। हां, यही पूरा विषय उसमें समझाया है।

प्रश्न है, देखो क्या लिखते हैं कि *मुनिनिंदा जैसा तीव्र पाप का फल उसके फल के कारण सात दिन के अंदर कुष्ठरोग से पीड़ित दुर्गति प्राप्त किये हैं ऐसे जीव की कथा हम पढ़े हैं।* यानी हमने यह कथा पढ़ी है प्रथमानुयोग में कि मुनिनिंदा के कारण सात दिन के अंदर ही उसको कुष्ठरोग जैसा उसके पाप का फल शुरू हो गया है। *उधर कर्मप्रकृति का आबाधाकाल ही नहीं रहा है न, आबाधाकाल तो बड़ा है और उसके फल तो तत्काल मिल रहा है और तीव्र पाप का उदय उसी भव में प्रारम्भ हुआ है न ?* बहुत अच्छा प्रश्न है। देखिये अभी जो हम आबाधा देख रहे हैं न, तो उसको कहते हैं उदय की अपेक्षा आबाधा। जिस समय बंध हुआ था उस समय उस कर्म में; अभी हम मिथ्यात्व की बात करेंगे। मिथ्यात्व का बंध किसीको ७० कोड़ाकोड़ी सागर का होगा। यह तो फॉर एक्झॅम्पल, हर समय इतना बंध नहीं होता है। तो उसने ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध किया हो तो उसका आबाधाकाल कितना हुआ ? *श्रोता: सात हज़ार वर्ष।* सात हज़ार वर्षों का, यह बंध के समय की बात है। अभी आयु की बात अलग है। अभी सातों ही कर्मों में बंध होने के पश्चात् एक आवली काल तक उस निषेक रचना में और उस आबाधाकाल में कोई परिवर्तन नहीं होता। कब तक ? एक

आवली तक। आवली कितनी छोटी है ? सेकंड में भी हज़ारों कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं। तो इतने छोटे काल के बाद - आवली बीतने के पश्चात् जितने निषेक बने हैं, उन प्रत्येक निषेक में से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते ही हैं, तो उसको कहेंगे अपकर्षण होना। अपकर्षण होकर कुछ तो नीचे उदय के समय में भी आ जाते हैं उसको उदीरणा कहते हैं। पूर्वबद्ध सत्ता के निषेकों में से उदयावली में जो दिये जाते हैं उनको उदीरणा कहते हैं और ऊपर भी वहां निषेक नहीं थे आबाधाकाल में वहां निषेक रचना हो जाती है। ऊपर के निषेकों से कुछ परमाणु नीचे आते हैं और उदय के समय से लेकर वहां सारी निषेक रचना नयी तैयार होती है।

बंधे हुये परमाणु जिनकी स्थिति हमने ७००० वर्ष और एक समय, दो समय देखी थी इसतरह से ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक बंधे थे। वे सारे अपनी-अपनी जगह पर हैं, हर एक निषेक में अनंत परमाणु हैं। उनमें से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते हैं और नीचे जो निषेक नहीं थे वहां निषेक रचना हो जाती है। उसको कहते हैं उदीरणा की अपेक्षा आबाधा का काल एक आवली होता है। बंध के समय उदय की अपेक्षा जो कल हमने आबाधा देखी थी, जिस समय बंधा था तो उस समय आबाधा कितनी थी ? जो हमने प्रपोर्शन देखा उतनी। परंतु बंधने के आवली काल के पश्चात् ही इसको संक्रमण कहते हैं। स्थिति का संक्रमण यानी स्थिति चेंज होती रहती है। परमाणुओं में उदीरणा और यह अपकर्षण आदि होते रहते हैं और उनके नये निषेक तैयार होते हैं। एक आवली के बाद उनका उदय उस समय से शुरू हो सकता है। आपने तो यहां सात दिन की बात लिखी है। ऐसा भी होता है और दूसरी भी एक बात, अभी हम वर्तमान में जो परिणाम करते हैं, उस परिणाम से बंध हुआ है मान लेते हैं; अभी जो कुछ उसकी आबाधा पड़ी है परंतु उसी परिणाम के कारण जो पूर्वबद्ध प्रकृतियां सत्ता में पडी हैं उनका अनुभाग भी चेंज हो सकता है और वे प्रकृतियां भी संक्रमित हो सकती हैं। साता की असाता, असाता की साता क्योंकि अत्यंत अशुभ परिणाम चल रहे हो, मुनिनिंदा जैसा या मुनि पर उपसर्ग करने जैसा परिणाम चल रहा है अशुभ परिणाम; उस काल में तो नया असाता का बंध हो रहा है और पुराना जो साता है वह भी असातारूप होकर उदय में आता है क्योंकि वह बंधनेवाली प्रकृति में संक्रमित होता है। ऐसा भी कोई वहां पर नियम है, तो अभी तो असाता बांध ही रहा है, पूर्व के

साता भी उसरूप टर्न होकर उदय में आते हैं। जो पूर्व में बंधे हैं जिनका उदयकाल अभी चालू है, जो सातारूप से उदय में आनेवाले थे वे असातारूप होकर उदय में आते हैं। यह जरूरी नहीं कि अभी बंधे हुये अभी उदय में आवे। वे तो आवली काल के बाद आते हैं परंतु पुराने कर्म भी टर्न होकर उदय में आते हैं।

कथा भी आती है न कि दो मित्र जा रहे थे। रात हो गयी जंगल में कहीं रुकना था। एक जाकर मंदिर में ठहरा और दूसरा वेश्या के घर गया। उसके बाद क्या हुआ ? सुबह होते ही वह मंदिर से बाहर आया तो उसको पैर में कांटा चुभ गया और दूसरा जो वेश्या के घर गया था वह निकला तो वहां उसे रास्ते में मोती की माला मिल गयी। फिर दोनों मित्र आपस में मिल गये; देख, तेरेसे मैं भला, मैंने मजा की और मुझे मोती की माला भी मिल गयी और तूने क्या किया ? वहां धर्मध्यान किया और तुझे कांटा चुभ गया। जो मंदिर में गया था उसको तो पता था कि इसका कारण कुछ अन्य होना चाहिये। उसने बोला कि यहां पर मुनिराज हैं उनके दर्शन लेते हैं, उनसे हम प्रश्न करेंगे। कोई अवधिज्ञानी मुनि थे उनको पूछ लिया यह ऐसा-ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि हम भी ऐसे हैं न ! कार्य करते हैं और जो फल मिल रहे हैं उसका-उसका संबंध लगाते हैं क्योंकि संबंध होता है वह पूर्व पुण्य का या पाप का। अभी हम क्या करते हैं ? सारा दिन-रात मेहनत करते हैं और पैसा कमाते हैं तो पैसा मेहनत से आता है कि नहीं ? *श्रोता: नहीं, पूर्व पुण्य से आता है।* पूर्व पुण्य से आता है, वर्तमान में हम क्या करते हैं ? *श्रोता: पाप।* पाप और मानते भी हैं झूठ बोले बिना थोड़े ही पैसा आता है ? थोड़ा तो झूठ चाहिये ही। मित्रों ने नक्की किया हम मुनिराज को मिलेंगे। मुनिराज ने बताया कि यह जो तेरे कांटा चुभा है तो कुछ बहुत बड़ा हादसा होनेवाला था, उसके बदले एक कांटे पर ही तेरा संकट टल गया और जिसको मोती की माला मिली थी उसके तो राज मिलनेवाला था परंतु उसके पुण्य का वह सारा अनुभाग घट गया।

प्रथमानुयोग में तो ऐसी कथायें होंगी परंतु करणानुयोग में तो उसका बहुत सूक्ष्म वर्णन आता है। कितने समय बाद उसमें क्या होता है, कितना संक्रमण होता है, कौनसी प्रकृतियां किसमें संक्रमित हो सकती हैं - यह सारा ही उसका बहुत विस्तार से वर्णन है जो आगे जयधवला आदि में भी बहुत बताया है। अभी घर पर सामूहिक स्वाध्याय में हमारा वह विषय चल रहा है। तो कौनसी प्रकृतियां हैं, किसमें संक्रमित

होती हैं, कौनसे गुणस्थान में कौनसी संक्रमित होती हैं और किसमें संक्रमित होती हैं - यह सारा ही सायंटिफिक पूरा इसका बेस है, यह पूरा सायन्स है। कहीं भी ऐसा नहीं कि आप बुरा कर्म करके नरक में जाओगे और अच्छा करके स्वर्ग में जाओगे ऐसी बात नहीं है। क्योंकि ऐसा भी कहनेवाले हैं न, ये नरक और स्वर्ग कुछ होते ही नहीं हैं। सबको डराने के लिये ये बातें बनायी हैं। ऐसा कहनेवाले सर्वज्ञ को नहीं मान रहे हैं क्योंकि जिसकी सर्वज्ञ की श्रद्धा है तो सर्वज्ञ ने जो बतायी हुयी सभी बातें हैं उन पर तो उसकी श्रद्धा होनी ही चाहिये। तो अभी हमने प्रश्न देख लिये हैं, अभी आगे बढ़ते हैं। हमने जो जघन्य स्थितिबंध देखा था वह कौनसे जीव के होता है उसकी थोड़ी बात हम गाथा के द्वारा भी देखेंगे। देखो यह जघन्य स्थितिबंध कौनसे जीव के होता है उसकी बात १५१ नंबर की गाथा में है।

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा॥१५१॥

ये पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अंतराय, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय इतनी ही प्रकृति कहां बंध रही है ? *श्रोताः दसवें गुणस्थान में।* दसवें गुणस्थान में। ये सत्रह हैं न ? सत्रह का बंध है उसमें से १६ की व्युच्छित्ति होनेवाली है। यहां इन सत्रह प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध है, वेदनीय का भी यहीं पर जघन्य स्थितिबंध कहा, क्यों ? आगे उसका स्थिति का बंध नहीं होगा। बंध तो होगा, प्रकृति तो बंधेगी, प्रदेश यानी परमाणु का बंध होगा परंतु स्थिति और अनुभाग का बंध नहीं होगा। इसलिये कहते हैं इनका जघन्य स्थितिबंध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव करता है। वह भी क्षपकवाला करेगा क्योंकि उपशामक की अपेक्षा क्षपक की विशुद्धि अधिक पायी जाती है। पुरुषवेद और चार संज्वलन कषाय इनका जघन्य स्थितिबंध अभी कितना होता है हमने देखा। किसके होता है वह देख रहे हैं। अभी हमने जो दसवें गुणस्थानवाली बात देखी थी, दसवें गुणस्थान में जघन्य स्थितिबंध किस-किसका होता है ? जितनी प्रकृतियां वहां बंध रही है उनका होता है। कौन-कौनसी बंध रही है ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, ? *श्रोताः उच्चगोत्र।* हां, उच्चगोत्र। *श्रोताः यशस्कीर्ति।* यशस्कीर्ति और वेदनीय भी बंध रही है न, सातावेदनीय। उसमें से सातावेदनीय का कितना होता है हमने देखा ? *श्रोताः पंद्रह।* पंद्रह क्या ? अरे नहीं, यहां पर जघन्य बंध

हो रहा है न १२ मुहूर्त। उच्चगोत्र का ? *श्रोता: ८ मुहूर्त।* ८ मुहूर्त और यशस्कीर्ति का ? *श्रोता: ८ मुहूर्त।* ८ मुहूर्त। नाम-गोत्र का हमने ८ मुहूर्त देखा था और बाकी जो ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है और अंतराय है उनका कितना हो रहा है ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त।* अंतर्मुहूर्त।

अब हम नौवें गुणस्थानवाली बात देखेंगे कि जो वहां बंध रही है और ऊपर नहीं बंधेगी ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं ? तो पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ। पुरुषवेद का जघन्य बंध कितना देखा था हमने ? *श्रोता: ८ वर्ष।* ८ वर्ष का। क्रोध का ? अभी अभी देखा न। *श्रोता: दो महीने।* दो महीने। मान का ? *श्रोता: एक महीना।* एक महीना हां, माया का ? *श्रोता: पंद्रह दिन।* पंद्रह दिन और लोभ का हमने देखा था अंतर्मुहूर्त। तो इनका जघन्य स्थितिबंध कौन करता है ? *श्रोता: क्षपकश्रेणीवाला।* क्षपकश्रेणीवाला जीव जो नौवें गुणस्थानवाला है वह जीव करता है। तीर्थंकर और आहारकद्विक का कौन करता है ? तीर्थंकर प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति ? उत्कृष्ट बंध कौन करता है ? *श्रोता: नरक के सन्मुख।* दूसरे या तीसरे नरक के सन्मुख जो सम्यग्दृष्टि है जो मिथ्यात्व में जाकर मरेगा वह करता है। अब यहां हम जघन्य की बात कर रहे हैं। कम से कम स्थिति कब बंधेगी ? जब उसकी व्युच्छित्ति होने का समय आयेगा तब। तो उसकी व्युच्छित्ति कहां होती है ? *श्रोता: आठवें गुणस्थान में।* आठवें गुणस्थान में। यहां लिखते हैं **तीर्थंकर, आहारकद्विक का जघन्य स्थितिबंध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती करता है।** कितना करता होगा ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। अन्य कर्मों का जो जघन्य स्थितिबंध होता है वह नौवें गुणस्थान में और ऊपर होता है जहां क्षपणा आदि का कार्य चलता है।

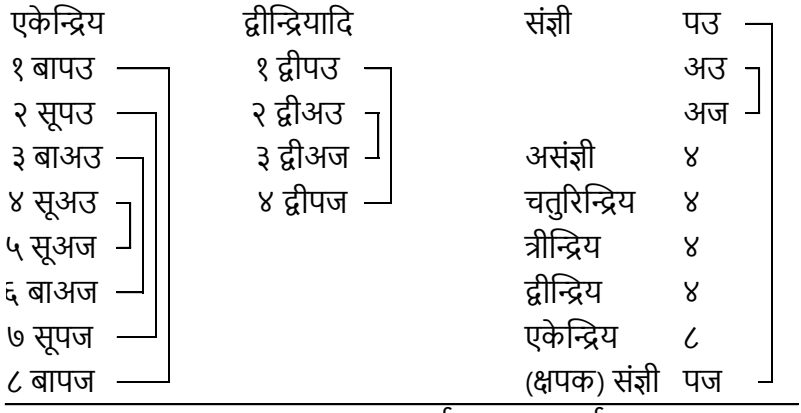
आठवें गुणस्थान में किसी प्रकृति की क्षपणा नहीं होती है, कोई क्षय नहीं होता। बहुत सारा कार्य नौवें में ही होता है। हां, तो यहां आठवें गुणस्थान में भी जो प्रकृतियां बंध रही हैं उनका स्थितिबंध अंत:कोड़ाकोड़ी सागर हो रहा है, आठवेंवाले को भी हां। देवगति और देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग इनको कहते हैं वैक्रियिकषट्क इनके जघन्य स्थितिबंध की बात देखते हैं। तो देवगति का बंध कौन करते हैं ? मनुष्य भी कर सकते हैं और तिर्यंच भी कर सकते हैं। परंतु कम से कम बंध कौन करेगा ? गति नामकर्म का कम से कम बंध

देवगति की बात चल रही है न ! आप क्या कह रहे हैं ? क्षपक जीव कितना करेगा ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। परंतु देव में क्या असंज्ञी जीव मरकर जा सकते हैं ? हां, जा सकते हैं। *श्रोता: भवनवासी और व्यंतर।* भवनवासी और व्यंतर में ही जा सकते हैं। दो ही उसके मार्ग हैं खुले, ज्योतिषी में भी नहीं जाते। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव; असंज्ञी यानी एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी नहीं; असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मरकर देवों में भवनवासी और व्यंतर में जा सकते हैं। वैसे ही असंज्ञी पंचेन्द्रिय मरकर पहले नरक में भी जा सकते हैं। तो वे जीव क्योंकि असंज्ञी जीव कम बंध करते हैं न, तो क्षपक की अपेक्षा भी; क्षपक आठवें गुणस्थान की अपेक्षा भी; जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं वे देवगति का जघन्य बंध करेंगे। कौनसे असंज्ञी ? असंज्ञी पंचेन्द्रिय। उसके नीचेवाले क्यों नहीं लिये ? एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक को बताओ न ! तो वे देवगति का बंध ही नहीं करते हैं। ख्याल में आयी न बात ?

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव करते हैं तो उनके तो हमने मिथ्यात्व का ही स्थितिबंध १००० सागर देखा है और नाम-गोत्र वगैरह का कितना होगा उनका ? नाम का कितना देखते हैं हम हं ? *श्रोता: १००० सागर।* १००० सागर का $\frac{२}{७}$ हो जायेगा। तो उसमें जो उत्तरप्रकृतियों की स्थिति यथायोग्य और कम हो जायेगी। आयुकर्म का जघन्य स्थितिबंध कौन करता है ? कोई भी कर सकता है। कितनी आयु बांधते हैं जघन्य से जघन्य ? वह लब्धिअपर्याप्तवाली आयु और उत्कृष्ट में उत्कृष्ट कितनी देखी थी हमने ? *श्रोता: तैंतीस सागर।* तैंतीस सागर। जघन्य में जघन्य आयु कौन बांधता है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय भी बांधकर अपर्याप्त में जा सकता है या अपर्याप्त जीव भी अपर्याप्त में जा सकता है। इसलिये आयु का जघन्य स्थितिबंध करनेवाले जीव कौन है ? तो एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव आयु का जघन्य स्थितिबंध करेंगे, परंतु देव और नारकी नहीं करेंगे क्योंकि उनके तो अपर्याप्त नामकर्म बंधता ही नहीं है। नारकियों के तो एकेन्द्रिय का भी बंध नहीं होता, देव एकेन्द्रिय का बंध कर सकते हैं। परंतु देव जो एकेन्द्रिय का बंध करते हैं तो वह पर्याप्त में जाते हैं; वह भी बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त या बादर जलकायिक पर्याप्त या प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तों में जाते हैं; सूक्ष्म, साधारण या अपर्याप्त नामकर्म उनके बंधते ही नहीं। इसलिये अपर्याप्त नामकर्मवाले जो लब्धिअपर्याप्त हैं उनमें जानेवाले ऐसे जो मनुष्य, तिर्यंच जीव आयु का इतना छोटे

में छोटा जघन्य स्थितिबंध करेंगे। यह बात ख्याल में आयी ? इसतरह से हमने यहां पर जघन्य स्थितिबंध की बात देखी है। अब हम एकेन्द्रियों में जघन्य और उत्कृष्ट कितना होता है, द्वीन्द्रिय में कितना होता है उसकी भी थोड़ी बातें यहां देखेंगे। गाथा के द्वारा हम उसका पहले अर्थ देखेंगे। एकेन्द्रियों में कितनी रेंज है और द्वीन्द्रिय आदि में कितनी-कितनी रेंज है उसको भी हम देखेंगे। १४८ नंबर की गाथा, पेज १५७ है, नीचे यहां जो लिखा है न उसका अर्थ भी हम देखेंगे क्या लिखा है, बापउ क्या होता है, सूपउ क्या होता है। गाथा देखते हैं १४८ नंबर की।

बासूप - बासुअ – वरट्ठिदीओ, सूबाअ - सूबाप- जहण्णकालो।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं॥ १४८॥



उ=उत्कृष्ट, ज=जघन्य, प=पर्याप्त, अ=अपर्याप्त

अभी इसका अर्थ देखते हैं, यहां क्या-क्या लिखा है उसको भी देख लेते हैं। आप कहेंगे यह सारा क्या झमेला है ? यहां जो सारे लिखे हैं न, एकेन्द्रियों के बंध लिखे हैं। बाप का अर्थ होता है बादर पर्याप्त। ये सारे एकेन्द्रियों संबंधी है, ये सारे जो आठों बंध लिखे हैं न, वे एकेन्द्रिय संबंधी हैं। बादर पर्याप्त का उत्कृष्ट स्थितिबंध, फिर सूक्ष्म पर्याप्तों का उत्कृष्ट स्थितिबंध। ये एकेन्द्रियों की बात है सभी, बादर अपर्याप्तों का उत्कृष्ट स्थितिबंध, सूक्ष्म अपर्याप्तों का उत्कृष्ट स्थितिबंध। यानी बापउ सबसे ज्यादा, सूपउ उससे कम, बाअउ उससे कम, सूअउ उससे कम यानी सूक्ष्म अपर्याप्तों में जो उत्कृष्ट स्थितिबंध है वह इन चारों में सबसे कम है। परंतु जघन्य स्थितिबंध अगर देखेंगे

तो सूक्ष्म जो यहां चौथे नंबर पर था न, अभी इसको पांचवें नंबर पर लेना है। सूक्ष्म अपर्याप्तों का उत्कृष्ट स्थितिबंध इन चारों में कम था, परंतु सूक्ष्म अपर्याप्तक का जघन्य स्थितिबंध इन चारों में ज्यादा है। जो चार नंबर पर उत्कृष्ट था, वह पांच नंबर पर जघन्य है, जो तीन नंबर पर बादर अपर्याप्त का उत्कृष्ट था उसको यहां अभी छठे नंबर पर बादर अपर्याप्त का जघन्य ले लिया। जो यहां दो नंबर पर सूक्ष्म पर्याप्त का उत्कृष्ट था वह यहां सात नंबर पर सूक्ष्म पर्याप्त के जघन्य को ले लिया है। एकेन्द्रियों में बादर पर्याप्त को जो उत्कृष्ट है; उत्कृष्ट में उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रियों में कौन बांधता है ? बादर पर्याप्त जीव बांधता है और एकेन्द्रियों में सबसे जघन्य स्थिति कौन बांधता है ? वह भी बादर पर्याप्त ही बांधता है।

फिर से, एकेन्द्रियों में हम रेंज देख रहे हैं। एकेन्द्रियों में सूक्ष्म जीव भी होते हैं और बादर जीव भी होते हैं; पर्याप्त भी होते हैं, अपर्याप्त भी होते हैं यानी एकेन्द्रियों के चार प्रकार- बादर पर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त। एकेन्द्रियों में सबसे अधिक से अधिक स्थितिबंध कौनसे जीव करेंगे ? *श्रोता: बादर पर्याप्त।* बादर पर्याप्त जीव ही उत्कृष्ट स्थितिबंध करेंगे और एकेन्द्रियों में जघन्य में जघन्य स्थितिबंध कौन जीव करेंगे ? *श्रोता: बादर पर्याप्त।* वह भी बादर पर्याप्त जीव ही जघन्य करेंगे। उत्कृष्ट स्थितिबंध हो या जघन्य स्थितिबंध हो, ये पर्याप्त ही जीव करेंगे वे भी बादर जीव करेंगे। अभी उसके नीचे दूसरे नंबर पर कौन है ? सूक्ष्म पर्याप्त लेना, बादर के अपर्याप्त को पहले नहीं लिया। तो एकेन्द्रियों के भी उत्कृष्ट से नीचेवाला दूसरा स्थान जो हम देख रहे हैं वह सूक्ष्म के पर्याप्तों का है। वह सूक्ष्म पर्याप्तों का उत्कृष्ट है और नीचे से अभी ऊपर की ओर ७ नंबर पर लिखा है वह भी सूक्ष्म पर्याप्तों का जघन्य है। इसलिये यहां से यहां तक लाइन खींची है न, यह १ के साथ यह यहां नीचे का ८, यह २ के साथ नीचे का ७ है, यह ३ के साथ नीचे का ६ और यह बीचवाले ३ के साथ ४, तो इनकी अपनी-अपनी यानी सूक्ष्म अपर्याप्तों के उत्कृष्ट और जघन्यवाली रेंज सबसे कम है। सूक्ष्म अपर्याप्त जो बंध कर रहा है, उनमें से जो उत्कृष्ट और उनमें से जो जघन्य उसकी रेंज बहुत छोटी है। उतने में ही उनका बंध होता रहेगा। ऐसे ही एक-एक का समझना। एकेन्द्रियों में चार प्रकार हैं तो उसके ये जो स्थितिबंध के अलग-अलग प्रकार आठ हो जायेंगे। बादर पर्याप्तों के उत्कृष्ट-जघन्य दो हो गये; सूक्ष्म पर्याप्तों के

उत्कृष्ट-जघन्य दो हो गये; फिर बादर अपर्याप्त के उत्कृष्ट-जघन्य दो हो गये और सूक्ष्म अपर्याप्तों के उत्कृष्ट-जघन्य दो हो गये। एकेन्द्रियों में ये आठ अलग-अलग स्थितिबंध के स्थान पाये जायेंगे।

अब द्वीन्द्रियों में देखते हैं। द्वीन्द्रियों में सूक्ष्म और बादर ऐसा भेद है ही नहीं। तो कौनसा भेद है ? *श्रोता: पर्याप्त और अपर्याप्त है।* पर्याप्त और अपर्याप्त है यानी द्वीन्द्रियों में सभी बादर ही होते हैं, द्वीन्द्रिय आदि सभी ऊपर के जो जीव हैं- *श्रोता: सब बादर।* वे तो बादर ही हैं। एकेन्द्रियों में ही दो टाइप पाये जाते हैं; कोई सूक्ष्म हैं और कोई बादर हैं। द्वीन्द्रिय आदि लिखा है नीचे से ऊपर यानी पहले हम द्वीन्द्रिय में घटित करेंगे। द्वीन्द्रियों में उत्कृष्ट बंध जो मिथ्यात्व का हमने कितना देखा था ? *श्रोता: २५ सागर।* हां, २५ सागर। द्वीन्द्रियों में उत्कृष्ट बंध मिथ्यात्व का २५ सागर देखा। वह द्वीन्द्रियों में से कौनसे टाइप को होगा ? पर्याप्तों के होगा कि अपर्याप्तों के होगा ? *श्रोता: पर्याप्तों के होगा।* पर्याप्तों के होगा। तो द्वीन्द्रियों में जघन्य स्थितिबंध कितना देखा था हमने ?*श्रोता: २५ सागर।* २५ सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग है न, तो ये जघन्य भी किसके होगा ? द्वीन्द्रिय पर्याप्त को होगा। द्वीन्द्रियों में उत्कृष्ट बंध भी पर्याप्तों को होगा और द्वीन्द्रियों में जघन्य बंध भी पर्याप्तों को होगा। इतनी बात ख्याल में आयी ? अभी पर्याप्तों का जो उत्कृष्ट बंध है उससे अपर्याप्तों का उत्कृष्ट बंध थोड़ा नीचे है, कम है और अपर्याप्तों का जघन्य बंध भी बीच में ही है। इन अपर्याप्तों की उत्कृष्ट और जघन्य की रेंज जो है, मर्यादा दोनों ओर से वह कम है और पर्याप्त का बंध उत्कृष्ट की ओर भी अधिक है और जघन्य की ओर भी और नीचे तक है।

एकेन्द्रियों का कितना हमने देखा ? १ सागर से लेकर यहां पल्य का असंख्यातवां भाग कम। अभी हम एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय में नंबर लगायेंगे। तो ये आठों ही स्थान पहले एकेन्द्रियों के हो जायेंगे। एकेन्द्रियों में १ सागर फिर उसके ऊपर ये २५ सागरवाली जो रेंज है, द्वीन्द्रियों के होगी। उसके ऊपर किसका नंबर लगेगा ? *श्रोता: त्रीन्द्रिय।* त्रीन्द्रिय के चार स्थान हो जायेंगे, उसमें भी पर्याप्त ऊपर हैं और नीचे हैं और अपर्याप्त बीच में हैं। उसके ऊपर हो गये चतुरिन्द्रियों के स्थान, स्थितिबंध के स्थान हम देख रहे हैं। उसमें भी चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त को अधिक से अधिक और फिर कम से कम बंध होता है। उसके बाद असंज्ञी का नंबर, अब सबसे ऊपर किसको लेंगे हम ?

श्रोता: संज्ञी पंचेन्द्रियों को। संज्ञी पंचेन्द्रियों को। परंतु क्या संज्ञी पंचेन्द्रियों के जघन्य स्थान भी सबसे ऊपर ले सकते हैं ? तो हम देख रहे हैं यहां पर एकेन्द्रियों के आठों स्थान सबसे नीचे हैं; ये आठ स्थान जो हैं एक से आठ स्थान; क्योंकि यहां कितनी स्थिति है ? एक सागर और उसमें जो कुछ पल्य का असंख्यातवां भाग कम। उसके ऊपर द्वीन्द्रिय के चारों ही स्थान होंगे क्योंकि ये २५ सागर और उसमें कुछ कम होते हैं। उसके ऊपर त्रीन्द्रिय के चार स्थान होंगे क्योंकि ये ५० सागर और उस से कुछ कम होंगे। फिर चतुरिन्द्रिय के चार स्थान होंगे क्योंकि वे १०० सागर और कुछ कम होंगे। फिर उसके ऊपर असंज्ञी के चार स्थान होंगे क्योंकि वे १००० सागर से लेकर उसमें पल्य का संख्यातवां भाग कम तक होंगे। उसके ऊपर क्या-क्या लिखा है ?

सर्वोत्कृष्ट स्थान किसको होता है ? *श्रोता: संज्ञी पर्याप्त।* संज्ञी पर्याप्त के उत्कृष्ट होता है। जो हम मिथ्यात्व की बात करनी है तो संज्ञी पर्याप्त जीव है वह मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध ७० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण करता है। अब यहां अपर्याप्त का उत्कृष्ट कितना होगा ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। अपर्याप्त का जघन्य उसका ही कोई छोटा अंतःकोड़ाकोड़ीवाला जो कुछ बंध है। परंतु संज्ञी में, संज्ञी का जो जघन्य है वह यहां नहीं लिखा है; कहां लिखा ? एकेन्द्रिय से भी नीचे लिखा। एकेन्द्रिय की जो कम से कम सागर और उसमें जो कुछ कम था उसके भी नीचे संज्ञी पंचेन्द्रियों का जघन्य लिखा। वह कब होता है ? मात्र क्षपकश्रेणी में होता है। अन्यथा यदि हम ऑर्डिनरि देखेंगे अभी क्षपकश्रेणी को छोड़कर यानी ये श्रेणीवालों को छोड़कर, मुनिराजों की अवस्था में भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बंध तो होता ही होता है। इससे कम कब बंध होता है ? श्रेणी में होता है। इसलिये श्रेणी की अपेक्षा उनका बंध एकेन्द्रिय से भी कम होता है, जो अभी-अभी हमने देखा था। अभी हमने देखा था न, चार संज्वलनों का कितना होता है, ज्ञानावरण का कितना होता है, नाम-गोत्र का कितना होता है। यानी इतना अल्पबंध एकेन्द्रियों से भी कम, ऐसावाला संज्ञी पंचेन्द्रियों के ही होता है; वह भी मात्र श्रेणी में होगा। यह मिथ्यादृष्टि आदि को इतना कम बंध नहीं होगा, यह बात यहां हमें ख्याल में आती है।

तो ये जो ऐसे उनके स्थितिबंध हैं तो ये उसके शॉर्ट फॉर्म लिये हैं। बा यानी बादर, सू यानी सूक्ष्म, प यानी पर्याप्त, अ यानी अपर्याप्त, उ यानी उत्कृष्ट और ज यानी

जघन्य। तो इसलिये मूलगाथा में यह बापउ, बासूप, वगैरह-वगैरह शब्द लिखे हैं। द्वीन्द्रिय के लिये भी क्या लिखा उन्होंने ? **बीबीवरो** और **बीबिजहण्ण** बीबी यानी, हां द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, उसको यहां सब बता दिया है। गाथा नंबर है १४८। वहां उन्होंने सबके बंध उसमें घटित कर दिये हैं कि वह कितने-कितने क्या-क्या हो सकते हैं ? अब यहां तक तो ये बात आयी है और जितना उसका जघन्य भी बंध होगा उसके प्रमाण में उसकी आबाधा भी होगी। ये एकेन्द्रियों के तो सागर वगैरह के बंध होते हैं तो उनके तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आबाधा पायी जाती है।

श्रोता: संज्ञी अपर्याप्त का उत्कृष्ट कितना होता है ? संज्ञी अपर्याप्त में उत्कृष्ट स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है। देखो, यह बंध की बात है। कोई एकेन्द्रियों में कितना बंध करता है ? सागर जितना कहेंगे हम। एकेन्द्रिय पर्याय में बहुत काल बिताया है उसके कर्मों की स्थिति यानी स्थितिसत्त्व सागर जितना हुआ। अब संज्ञी पंचेन्द्रिय में जन्म लिया उसने तो सागर से अभी कितना हो जायेगा नया बंध ? निर्वृत्ति-अपर्याप्त दशा में है न पहले-पहले; अभी तो शरीर ग्रहण कर रहा है, पर्याप्ति शुरू हो गयी है तो नया बंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हो जायेगा। अब पर्याप्त होने पर अभी वह कितना भी हो सकता है, ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक यथायोग्य कोई भी हो सकता है। यानी एकेन्द्रिय में से आया है, वहां उसकी स्थिति सागर की ही चल रही थी बहुत सालों तक, फिर भी पंचेन्द्रिय में आया है तो उसका स्थितिबंध फिर ज्यादा हो जायेगा और फिर वह जब तक पंचेन्द्रिय में है तब तक उसका उत्कृष्ट बंध भी होगा या अनुत्कृष्ट भी होगा, परंतु इतना कम नहीं होगा जो एकेन्द्रिय में हो रहा था। अब कोई पंचेन्द्रिय जीव इतना उत्कृष्ट स्थितिबंध लेकर एकेन्द्रिय में जायेगा तो क्या होगा ? वहां तो नया बंध कितने का करेगा ? सागर का करेगा और यहां से तो कितना- ७० कोड़ाकोड़ी यानी अनेक कोड़ाकोड़ी सागर ले गया है और फिर वहां भी उसकी स्थिति घटती चली जायेगी। वह कैसे घटती है, क्या है वह तो अलग बात है; परंतु घटते-घटते फिर बहुत बड़ा काल बीत जाता है, पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण, तब उसकी भी स्थिति घटते-घटते-घटते *श्रोता: सागर प्रमाण।* सागर प्रमाण हो जाती है क्योंकि ऐसा ही चलता है न।

कभी एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय से नीचे के असंज्ञियों में कहीं चला जाता है और वह जितना बंध किया है वह उसके साथ चला जाता है। भले स्थिति घटी फिर

भी परमाणु उसकी सत्ता में रहते हैं। नहीं समझे ? अनेक निषेकों में जो डिस्ट्रिब्यूट हुये थे, अब उसकी स्थिति घटी का अर्थ क्या होता है ? सारे जो ऊपर के निषेक हैं, उनके परमाणु नीचे आ गये हैं, नीचे के निषेकों में मिल गये हैं तो नीचे के निषेक और बड़े-बड़े हो गये। परमाणु सत्ता में तो रहे न और फिर पंचेन्द्रिय में जाता है फिर अधिक बंध होता है। फिर उनका उत्कर्षण होता है, नये बंध के साथ। यह ऊपर और नीचे ऐसा चलता ही रहता है, कुछ न कुछ चलता रहता है। हमें भी कुछ न कुछ किये बिना चैन नहीं पड़ती है न, बेकार की बातें करते रहते हैं। तो यहां कर्मों में भी चलता होगा ऐसा ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर चलता रहता है; अपकर्षण और उत्कर्षण। अभी इसके बाद का हमारा जो विषय है, वह आबाधा संबंधी है। अभी हमने जो बात देखी न आबाधाकाल, तो उसके संबंधी अभी हम बात करेंगे। यह स्थितिबंध हमने उत्कृष्ट और जघन्य देखा। किसको होता है उसको भी देख लिया। अभी हम आगे बढ़ते हैं। यहां उन्होंने अलग-अलग जीवों के आबाधाकाल बताये हैं उसमें तो हम नहीं जायेंगे। हां देखो, यह गणित है इसलिये मैं इसको छोड़कर आगे जाना चाहती हूं क्योंकि गणित में घुस गये न तो कठिन होगा, हां। यहां यह जो कोई विशेषता है वह बता रहे हैं देखो, हां आबाधा मूलप्रकृतियों में; आबाधा का लक्षण पहले कहेंगे और फिर वह मूलप्रकृतियों में उसको हम देखेंगे। १५५ नंबर की गाथा है, यहां आबाधा का लक्षण कहते हैं।

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदिउदयरूवेण।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे॥ १५५॥

कार्माणशरीर नामक नामकर्म के उदय से जीव के प्रदेशों का जो चंचलपना होता है वही योग है। यह हमने पहले ही देखा था। योग किसे कहते हैं ? तो हमने कहा था कि आत्मप्रदेशों के चंचलपने को योग कहते हैं। यह आत्मप्रदेशों का चंचलपना क्यों होता है ? जो हमें आपको होता है, सयोग केवली के होता है और अयोग केवली के नहीं होता ऐसा क्या होता है ? *श्रोता: शरीर नामकर्म।* शरीर नामकर्म के उदय से। योग होना स्वभाव है कि विभाव है ? *श्रोता: विभाव है।* हां, जो कंपनवाला; योग शब्द के अनेक अर्थ हैं। आत्मस्वभाव में स्थिरता करने को भी योग कहा क्योंकि हम कहते हैं न ये योगी है। *श्रोता: योगसार।* योगसार भी है, योगी कहते हैं। समाधि कहते हैं, उसको भी योग कहेंगे। परंतु यहां जो हम योग की बात कर रहे हैं यह तो

विभाववाली बात चल रही है। आत्मप्रदेशों के कंपनवाली बात है यह तो विभावपर्याय है। जहां विभाव पर्याय होती है वहां हम कर्म का निमित्त ज़रूर देखेंगे कौनसा है। कर्म का उदय कि जिसके कारण आत्मप्रदेशों का कंपन होता है या वह जो भावयोग उत्पन्न हो रहा है, तो कहते हैं कि शरीर नाम का जो नामकर्म है, उसके उदय से होता है।

अभी यहां कर्मों की बात चल रही है तो यहां मात्र हम कार्माणशरीर की बात करेंगे; कार्माणशरीर नामकर्म इतना पूरा लंबा नाम लेना। अकेले कार्माणशरीर का उदय नहीं, कार्माणशरीर नामकर्म के उदय में जीव के जो वहां भावयोग पाया जाता है। कैसी शक्ति है ? कर्म को ग्रहण करने की। ग्रहण करने का अर्थ ऐसा नहीं है कि कर्म कहीं बाहर से खींचे चले आते हो। आत्मप्रदेशों के क्षेत्र में जो कार्माणवर्गणायें हैं उनका जीव के योग के निमित्त से बंध होता है यानी वे कर्मरूप परिणमित होती हैं। स्थिति-अनुभाग तो कषायों से बंधते हैं और प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध जो हैं वह योग से होते हैं। तो उतनी संख्या में विशिष्ट प्रकृतियों का बंध होता है। वे कर्मरूप परिणमित होती हैं तो इसको कहते हैं योग। आत्मप्रदेशों का चंचलपना, देखो, प्रदेशों की चंचलता को योग कहते हैं और परिणामों की चंचलता को कषाय कहते हैं और दोनों ही चंचलता से यहां बंध होता है। दोनों को मिलकर एक नाम क्या है ? कषाय और योग को मिलकर नाम क्या है ? *श्रोता: लेश्या।* लेश्या। तो इसलिये हम कहते हैं न लेश्या से बंध होता है। तो यहां कहते हैं **कार्माणशरीर नामक नामकर्म के उदय से जीव के प्रदेशों का जो चंचलपना होता है वह योग** है। और **उसके निमित्त से** उस योग के निमित्त से, जीव का यह जो योग यानी विभाव परिणमन है, उसके निमित्त से, **कार्माणवर्गणारूप पुद्गलस्कंध मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिरूप होकर आत्मा के प्रदेशों में परस्पर प्रवेश करते हैं।** क्या कहना चाहते हैं ?

आत्मा के प्रदेशों में वहां तो अनंतानंत कार्माणवर्गणा पड़ी हैं। उसमें जो अभी कर्मरूप परिणमने को योग्य हुयी हैं वे ही कर्मरूप होती हैं, सभी के सभी तो चेंज नहीं हो रही हैं। जीव का जो कोई यहां परिणमन हो रहा है, विभावरूप परिणमन हो रहा है यहां तो हम योग की बात कर रहे हैं। योग भी विभाव है और राग-द्वेष-मोह भी विभाव हैं। तो योग के कारण क्या हो रहा है वहां पर ? यह जो कार्माणवर्गणा हैं वे कर्मरूप परिणमित होती हैं। कैसे परिणमित होती हैं ? वे स्वयं अपने उपादान से परिणमित

होती हैं क्योंकि कार्माणवर्गणा भी अलग-अलग प्रकार की हैं। कोई ज्ञानावरणरूप होती हैं, कोई दर्शनावरणरूप, कोई मोहनीयरूप; अपनी-अपनी योग्यता से कर्मरूप परिणमित होती हैं। परिणमित होने पर और क्या होता है ? आत्मा के ही प्रदेशों में जो पुराने कर्म हैं उनके साथ जुड़कर रहती हैं यानी उनका एक स्कंध तैयार होता है जिसको हम कहेंगे कर्मस्कंध या कार्माणशरीर। वह नामकर्मवाला कार्माणशरीर नहीं; उस आठ कर्मरूप शरीर को भी हम कार्माणशरीर कहते हैं और कार्माणशरीर नामकर्म यह नामकर्म का भेद है। आठों कर्मों का जो एक स्कंधरूप पिंड है जो जीव के प्रदेशों के साथ बंधा हुआ है उसको भी हम कार्माणशरीर कह रहे हैं। हां, तो आत्मा के प्रदेशों में वह बंधकर रहता है और जीव अन्य भव में चला जाता है तो भी उसके साथ वह जाता है, ऐसा जिसका लक्षण है।

वह जब तक उसका उदय नहीं होता, जब तक उसकी उदीरणा होकर वह खिर नहीं जाता है; तब तक क्या कहेंगे उसको ? यानी बंधने के बाद जब तक वह उदययोग्य नहीं है यानी जब तक एक भी निषेक का उदय नहीं हो रहा तब तक उसको क्या कहेंगे? आबाधाकाल। बंधने के बाद जब तक वह निषेक की रचना नहीं है न वहां पर। आबाधाकाल कहते किसको हैं ? जहां कोई निषेक बने नहीं हैं उसको कहेंगे आबाधाकाल। उसके ऊपर एक-एक समय में एक-एक निषेक बना पड़ा है और उदीरणा की अपेक्षा आबाधा किसको कहेंगे ? कि बंधने के बाद एक आवली बीत जाती है तो ऊपर के सभी निषेकों में से इतने जो ७० कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण जो निषेक पड़े हैं; सभी निषेकों में से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते हैं और फिर नीचे निषेक रचना होती है उदय के समय तक। एक आवली के बाद यह होता है। तो हम कहेंगे उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कितनी हुयी ? एक आवली हुयी। उदय की अपेक्षा अलग है और उदीरणा की अपेक्षा अलग है। उदय की अपेक्षा क्यों ? क्योंकि वहां निषेक बने ही नहीं थे और उदीरणा की अपेक्षा वहां नयी निषेक रचना हो गयी है और जो पुराने सत्ता में पड़े हैं उनके साथ वे उदीरणा होकर जुड़ जाते है, उदय में आ जाते हैं उसको भी हम कहेंगे उदीरणा हो जाती है। तो कहते हैं जब तक वे उदयरूप नहीं होते तब तक उसको क्या कहेंगे ? आबाधाकाल कहेंगे। समझ में आयी बात ?

बंधने के बाद जब तक उनका उदय नहीं हो रहा है; उस समयप्रबद्ध में जो

परमाणु बंधे थे, उनकी बात चल रही है। पूर्व के बंधे हुये का तो उदय चल ही रहा है। एक ही समय में जितने परमाणु बंधे हैं, उस लॉट में से एक भी परमाणु जब तक उदय में नहीं आ रहा, तब तक हम उसको कहेंगे आबाधाकाल। बंधे तो हैं, सत्ता में पड़े तो हैं, परंतु अभी उदय शुरू नहीं हुआ। बंधने के समय से हमने जो सात हज़ार वर्ष आदि जो कोई अलग-अलग कर्मों में देखा था उसको कहेंगे आबाधाकाल। यदि आवली के बाद उदीरणा से नीचे आ जाते हैं, तब हम कहेंगे उदीरणा की अपेक्षा आबाधाकाल।

यहां भावार्थ लिखते हैं पं. टोडरमलजी - **कर्मप्रकृति का बंध होने के पश्चात् जब तक उदयरूप या उदीरणारूप नहीं प्रवर्तन होता, उस काल को आबाधाकाल कहते हैं।** यह आबाधाकाल की बात ख्याल में आयी ? आबाधाकाल का अर्थ है वहां कोई निषेक रचना नहीं हुयी है और उस विशिष्ट समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध में से एक भी परमाणु खिर नहीं रहा। यह जो प्रश्न उठ रहा था न, भोपाल से भी विद्वानों ने दो तीन प्रश्न पूछे थे। उनकी समझ ऐसी थी कि आबाधाकाल बीत जाता है फिर बाद में निषेक रचना होती है ऐसा बिलकुल नहीं है। बंध के समय से ही इतना आबाधाकाल है और उसके ऊपर निषेक रचना है ऐसी ही स्थिति बन जाती है। **वहां फल देनेरूप परिणमना** उसको **तो उदय** कहते हैं और काल आये बिना ही अपक्व कर्म का पकना उसको उदीरणा कहते हैं। यह देखते हैं पहले, क्या कहना चाहते हैं यहां पर। फल देनेरूप परिणमना का अर्थ क्या है ? अपने समय में उसकी स्थिति पूरी होती है तो वह उदय में आते हैं और उदय में आकर उसका फल मिलता है क्योंकि फल तो उदय में आनेवाले का ही मिलता है, सत्ता में पड़े हुये का कोई वहां फल नहीं मिलता। तो जिस समय उदय चलता है तब हम कहेंगे यह स्थिति पूरी करके अभी उदय में आये हैं उसको उदय कहते हैं और बिना काल आये अपक्व कर्म का पकना का अर्थ क्या होता है ? यानी वह ऊपर के निषेकों में पड़े थे परमाणु। ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हुआ था। कोई परमाणु १ कोड़ाकोड़ी सागर के ऊपर है, कोई २ कोड़ाकोड़ी सागर, ३ कोड़ाकोड़ी सागर, ऐसे बीच में भी हर एक निषेक में से परमाणु और नीचे आये हैं। किसी एक की हम बात करेंगे।

हम मान लेते हैं अभी कोई लाख वर्ष बाद उदय में आनेवाला था और वहां का कोई परमाणु छूटकर अभी उदयावली में आकर मिला और वह भी उदय में आनेवाला

है। उसको क्या कहेंगे हम ? अपनी लाइन छोड़कर वह नीचे जल्दी उदय में आया। जैसे बहुत लंबी लाइन खड़ी है, भोजनालय के बाहर और हमारी कोई पहचानवाले हैं तो हम उसको जा मिलते हैं। चलो-चलो अंदर जाओ तुम; तो क्या किया हमने ? आप कहेंगे वहां तो असाता की उदीरणा हो रही थी इसलिये अभी हमने लाइन छोड़कर वहां भी उदीरणा शुरू कर दी क्योंकि भूख-प्यास वगैरह क्यों लगती है ? असाता की उदीरणा होती है, तीव्र उदय होता है तो उसके उदय में वहां भूख प्यास आदि हो जाते हैं। इसलिये हम भी लाइन छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। यह तो उदीरणा का एक्झॅम्पल है, उसको उदीरणा नहीं कहेंगे हम। *श्रोता: कल से लोग बोलना चालू करेंगे।* हां, कल से लोग वह आबाधा की बात बोलना चालू करेंगे। अभी मूलप्रकृतियों में आबाधा कितनी है उसकी बात बतायेंगे। देखो, अभी एक सौ छप्पन नंबर की गाथा।

उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च॥ १५६॥

क्या कहते हैं ? **वाससयं** आयु बिना सात कर्मों के उदय की अपेक्षा आबाधा। अब ये आबाधा के पहले एक शब्द और लगा रहे हैं; कौनसा ? उदय की अपेक्षा आबाधा क्योंकि उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कहेंगे तो कम से कम आवली तो हो ही जाती है। तो यहां शब्द क्या लगाया है ? **उदय की अपेक्षा** आबाधा कितनी है तो **एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति का एक सौ वर्ष जानना।** जो हमने निकाला था ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये ७००० वर्ष। तो १ कोड़ाकोड़ी सागर के लिये १०० वर्ष। अवशेष स्थिति की इसी प्रतिभाग करी यानी उसी प्रपोर्शन में आबाधा जाननी यानी अन्य जो कम स्थिति है यह तो उत्कृष्ट स्थिति की बात या अन्य स्थिति की बात की। परंतु इससे भी जो कुछ अन्य स्थितियां होगी तो उनकी भी उसी प्रपोर्शन में आबाधा होगी यह बात कहते हैं। प्रतिभाग का अर्थ, उनका भी यही प्रपोर्शन होगा। वही कहते हैं यहां फिर त्रैराशिक कर रहे हैं। ये आमवाले कहां गये ? *श्रोता: आम लेने गये।* हां, १ कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की १०० वर्ष आबाधा होती है तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर की आबाधा कितनी होगी ? यह उलटा अभी निकाल रहे हैं। १ कोड़ाकोड़ी सागर के लिये कितनी ? १०० वर्ष। तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये - ७० सौ यानी ७००० वर्ष। वहां प्रमाणराशि १ कोड़ाकोड़ी सागर, अभी याद है न प्रमाणराशि किसे कहना ? ये पांच

रुपये का आम था न अपना एक, तो प्रमाणराशि किसको कहेंगे ?

देखो तीन राशियां हमने देखी थी। *श्रोता: प्रमाण।* देखो १ कोड़ाकोडी सागर के लिये १०० वर्ष तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये कितनी उसका उत्तर हम निकालेंगे बाद में। तो इस १ कोड़ाकोडी सागर को कहेंगे ? *श्रोता: प्रमाणराशि।* प्रमाणराशि। इसको यानी १०० वर्ष को कहेंगे ? *श्रोता: फलराशि।* फलराशि। हमारी इच्छाराशि कौनसी है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये कितना होगा ? तो क्या मिलेगी ? *श्रोता: लब्धराशि।* वह लब्धराशि निकलेगी। तो कहते हैं प्रमाणराशि १ कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि १०० वर्ष, इच्छाराशि ७० कोड़ाकोड़ी सागर। फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करेंगे और प्रमाणराशि का भाग देंगे तो कितने आ जायेंगे ? ७००० वर्ष आयेंगे। वही मिथ्यात्व प्रकृति की उत्कृष्ट आबाधा है। उत्कृष्ट आबाधा; जहां उत्कृष्ट स्थिति का बंध है वहां आबाधा भी उत्कृष्ट है। ऐसे ही हर एक में ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है सभी में समझना। अभी जहां ७० कोड़ाकोड़ी सागर लिखा है, वहां ये जो चालीसिय प्रकृतियां हैं न चारित्रमोहनीय की कषायवाली तो उसको क्या कहेंगे ? ४० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये आबाधा कितनी होगी ? ४००० वर्ष। ३० कोड़ाकोड़ी सागरवालों को कितनी होगी आबाधा ? *श्रोता: ३००० वर्ष।* ३००० वर्ष। २० कोड़ाकोड़ी सागरवालों की कितनी होगी ? *श्रोता: २००० वर्ष।* २००० वर्ष। यही प्रपोर्शन चलेगा सर्वत्र। ३३ सागर की आयु के लिये कितनी होगी आबाधा ? *श्रोता: आयु को छोड़कर बोला है।* हां, आयु को छोड़कर बोला है क्योंकि आयु की आबाधा तब से गिनते हैं जब से उसका बंध हुआ था पहले भव में। अभी हम इस भव में जिस समय से आयु का बंध करते हैं उस समय से मरण तक का जो काल है वह आगामी आयु की आबाधा कहलाती है। आयु में जितनी स्थिति बंधती है उतनी ही पूरी भोगते हैं और अन्य कर्मों में आबाधा छोड़कर बाकी उदयकाल होता है। हम इसकी अधिक चर्चा कल करेंगे। अभी हम यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१९. आबाधाकाल, आबाधाकांडक

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है। उसके आधार से कर्मकाण्ड की जो भाषाटीका है सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका, जो पं. टोडरमलजी ने लिखी हुयी है उसके आधार से हमारा यहां कुछ बंध संबंधी स्वाध्याय चल रहा है। अभी बंध से हम बाहर ही नहीं निकल रहे हैं ! नहीं, निकलेंगे जल्दी क्योंकि अनादि से उसमें ही रचे पचे हैं तो उसका वर्णन भी इतना चल रहा है। लोगों को ऐसा लगता है कब ख़त्म होगा, क्या होगा ? कितनी सारी अवस्थायें हैं कर्मों की। परंतु इसको ठीक तरह से समझे बिना केवल आगे बढ़ने से कुछ फायदा नहीं होगा। जितना हम जानेंगे, थोड़ी अच्छी तरह जानेंगे तो जब आप स्वयं कर्मकाण्ड पढ़ेंगे तब सरलता से उसका अर्थ आपको समझ में आ सकता है।

हमारा प्रयोजन तो मूलग्रंथों को अच्छी तरह से समझकर आत्मसात करना है और उसके लिये जो कुछ पारिभाषिक शब्द समझने में कठिनाई होती है, जो मुझे स्वयं को भी पता है कि क्या-क्या कठिनाई हो सकती है। जब पहली बार हम दोनों ने इसको पढ़ा था तो बस केवल शब्द ही पढ़ते गये थे। उसका अर्थ बिलकुल भासित नहीं होता था और किसको पूछे ? कोई था भी नहीं। बस पढ़ते गये; जब आगे पढ़ते गये, पीछे का कुछ अर्थ - उसका खुलासा होता गया। तो ऐसे एक बार, दो बार, चार बार जब पढ़ा है उसमें से कुछ न कुछ अर्थ प्रतीत होता है। इसको सरल करके समझाने का यहां राग है ताकि आप भी हमारे जो ये अमूल्य ग्रंथ हैं, अमूल्य खजाना है हमारा यह, उसका फायदा कर लें, आत्मसात कर लें।

अभी हम यहां प्रकृतिबंध के बाद स्थितिबंध की बात देख रहे थे। स्थितिबंध में हमने देखा है कि कोई जीव कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति भी बांधता है, कोई जघन्य भी बांधता है और कोई बीचवाली मध्यम स्थिति बांधता है यानी जिसको अनुत्कृष्ट कह सकते हैं, अजघन्य कह सकते हैं। हमने जैसे देखा था स्थिति में, अनुभाग में और प्रदेशों में कौन-कौनसे भेद होते हैं ? उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य। यहां हम स्थिति के जो भेद देख रहे हैं उसमें उत्कृष्ट और जघन्य देख रहे हैं, बीचवाले हम समझ लेंगे। उत्कृष्ट हमने देखा था- मिथ्यात्व का उत्कृष्ट है ७० कोड़ाकोड़ी सागर; चारित्रमोहनीय का उत्कृष्ट है ४० कोड़ाकोड़ी सागर; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय

और वेदनीय का है ३० कोड़ाकोड़ी सागर। उत्कृष्ट स्थितिबंध की बात चल रही है और नाम-गोत्र का २० कोड़ाकोड़ी सागर है। आयु की कितनी है उत्कृष्ट स्थिति ? *श्रोता: ३३ सागर।* ३३ सागर जो देवों की होती हैं; सर्वार्थसिद्धिवाले देवों की इतनी आयु होती है और नीचे सातवें नरकवालों की भी इतनी उत्कृष्ट आयु होती है। जघन्य की भी बात हमने देखी थी। यह उत्कृष्ट स्थितिबंध किसको होता है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों को होता है क्योंकि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियों को अपने-अपने योग्य उसका उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा। सबको ऐसा उत्कृष्ट नहीं है। एकेन्द्रियों को ऐसी उत्कृष्ट स्थिति बंधती ही नहीं है, उनकी अपने योग्य उत्कृष्ट कहलायेगी। कौनसी पर्याय में कितनी अधिक से अधिक स्थिति बंधती है, कम से कम कितनी बंधती है यह सारा हमें यहां करणानुयोग द्वारा पता चलता है।

हम जघन्य स्थिति की बात देख रहे थे। मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति में भी देखना पड़ेगा कि एकेन्द्रिय कितनी बांधता है ? द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कितनी बांधते हैं; हम पंचेन्द्रियों की बात करते हैं। मिथ्यात्व के जघन्य स्थितिबंध की बात चल रही है, सत्ता की नहीं क्योंकि सत्ता की बात तो अलग होगी। जब दर्शनमोह की क्षपणा होगी तो उसकी सत्ता एकदम कम हो जायेगी लास्ट में; उसकी बात हम नहीं ले रहे। बंधते समय कम से कम बंध संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को, मिथ्यात्व का कम से कम स्थितिबंध कब होता है और कितना होता है ? *श्रोता: अंत:कोड़ाकोड़ी सागर।* अंत:कोड़ाकोड़ी सागर होता है और कब होता है ? तो मिथ्यात्व का अंतिम समय। यानी जो करणलब्धि के परिणाम हैं उसमें तीसरा अनिवृत्तिकरण नाम का जो अंतर्मुहूर्त है, उसके अंतिम समय में। अभी अनंतर यानी नेक्स्ट समय में ही उसको सम्यक्त्व होनेवाला है। फिर भी एक समय पूर्व तक वहां मिथ्यात्व का उदय भी है और बंध भी है। हां, वहां उदय जो है वह अत्यंत मंद अनुभागवाला उदय चल रहा है। परंतु वहां स्थिति जो बंध रही है वह कितनी बंध रही है ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर, यह संज्ञी पंचेन्द्रियों के लिये है।

नीचे एकेन्द्रियादि जीवों के लिये कितनी है ? हमने उत्कृष्ट देखी थी एक सागर और जघन्य कितनी है ? सागर से थोड़ी कम। थोड़ी कम यानी कितनी कम ? तो कहते हैं पल्य का असंख्यातवां भाग कम यानी एक सागर मायनस पल्य का असंख्यातवां

भाग। द्वीन्द्रिय की मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति २५ सागर देखी थी और फिर जघन्य कितनी होगी ? तो २५ सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग। अपनी-अपनी उत्कृष्ट में से, अभी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये उनकी जो अपनी-अपनी उत्कृष्ट है, उसमें से पल्य का संख्यातवां भाग कम करना। द्वीन्द्रिय के लिये हमने देखी, २५ सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग। त्रीन्द्रिय के लिये ५० सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग। चतुरिन्द्रिय के लिये १०० सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये १००० सागर मायनस पल्य का संख्यातवां भाग। एकेन्द्रिय के लिये पल्य का असंख्यातवां भाग कम कहा था और बाकी सबके लिये पल्य का संख्यातवां भाग कम कहा। अभी संज्ञी पंचेन्द्रिय की बात हमने देखी थी। हमने उत्कृष्ट से लेकर जघन्य तक के स्थिति के अलग-अलग भेद देखे। संज्ञी पंचेन्द्रियों में और एकेन्द्रियादि में जब स्थिति बंधती है तो एक-एक समय के भेद से इतनी सारी अलग-अलग स्थितियां अलग-अलग जीवों को बंध सकती हैं।

हमने कल देखा न हर एक की अपनी-अपनी रेंज है। एकेन्द्रियों में हमने आठ प्रकार देखे थे। बादर पर्याप्त को उत्कृष्टवाला बंध होता है और जघन्य भी उसीको होता है यानी उसकी रेंज बड़ी है; उत्कृष्ट बंध भी उसीको, जघन्य बंध भी उसीको होता है। फिर उसके अंदर सूक्ष्म पर्याप्त को लेना, उसका उत्कृष्ट, उसका जघन्य; उसके अंदर बादर अपर्याप्त को और उसके अंदर सूक्ष्म के अपर्याप्त को; यानी सूक्ष्म अपर्याप्तों की उत्कृष्ट से जघन्य तक की जो रेंज है वह सबसे कम है। फिर उससे ज्यादा, बादर अपर्याप्तों की, उससे ज्यादा सूक्ष्म पर्याप्तों की और सबसे अधिक ? *श्रोता: बादर पर्याप्तों की।* बादर पर्याप्तों की। एकेन्द्रियों में ऐसे स्थिति के अलग-अलग हमने आठ भेद देखे हैं। द्वीन्द्रियों में, त्रीन्द्रियों में, चतुरिन्द्रियों में, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रियों में चार-चार होंगे क्योंकि उनमें सूक्ष्म-बादर भेद नहीं हैं; सभी बादर ही होते हैं। इसतरह से हमने ये स्थिति के भेद भी देखे थे।

हमने यह बात भी देखी थी कि जिस समय बंध होता है उसी समय निषेक रचना होती है। निषेक रचना का अर्थ हमने क्या देखा था ? कि एक साथ उदय में आने योग्य जो परमाणु हैं उनके समूह को हम निषेक कहते हैं। उसको हमने देखा था - वह आड़ी लाइन के द्वारा हमने देखा था। नीचे ऐसी व्हर्टिकल लाइन थी उसको तो हमने

आबाधा कहा और उसके ऊपर निषेक रचना थी। तो आबाधाकाल के पश्चात्; आबाधाकाल के पश्चात् का अर्थ ऐसा नहीं है कि निषेक रचना बाद में होती है; ऐसा उसका अर्थ नहीं है। इसमें कन्फ्यूजन है, कहीं-कहीं चल रहा है क्योंकि ऐसे प्रश्न भी आते हैं हमारे पास, फ़ोन पर भी चर्चा होती रहती है। जिस समय बंध हुआ है उसी समय वहां आबाधाकाल का जितना प्रमाण है समयों का, उतने समय तक की कोई निषेक रचना वहां नहीं है। परंतु उसके ऊपर प्रत्येक समय में परमाणुओं का एक-एक लॉट, एक-एक निषेक पड़ा है जो प्रति समय उदय आने योग्य है। यानी यह निषेक रचना कब होती है ? बंध के समय ही होती है यानी हमारे ज्ञान में होती है क्योंकि वहां प्रत्येक परमाणु में अपनी-अपनी स्थिति निश्चित होती है। जिनकी-जिनकी आबाधा के ऊपर की एक समयवाली स्थिति है उनको हम कहेंगे पहला निषेक। आबाधा प्लस दो समयवाली जिनकी स्थिति है उसको कहेंगे दूसरा निषेक। आबाधा प्लस तीन समय जिनकी स्थिति पड़ी है उसको कहेंगे तीसरा निषेक इसतरह से समझना।

यह ऐसा नहीं है कि आबाधाप्रमाण ७००० वर्ष बीत गये उसके बाद वहां निषेक रचना हुयी, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। क्योंकि ऐसे प्रश्न आ रहे हैं इसलिये ऐसा कन्फ्यूजन कहीं चल रहा है, इसका अर्थ - निषेक रचना बंध के समय ही होती है। अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो बंधने के एक आवली के पश्चात् जो अभी हमने इतनी निषेक रचना देखी है ७००० वर्ष के ऊपर, वहां से प्रत्येक निषेक में से परमाणु छूटकर नीचे आते रहते हैं और उदय के समय से लेकर वहां निषेक रचना शुरू होती है और हम उसको उसकी उदीरणा भी कहेंगे। उसका उदय भी एक आवली के पश्चात् शुरू हो सकता है। आबाधाकाल के बीत जाने के बाद अगर निषेक रचना मानेंगे तो उदीरणा का भी सवाल नहीं हो सकता क्योंकि वहां निषेक ही नहीं हैं, परंतु ऐसा है नहीं। हां, तो अब हम आगे बढ़ते हैं। हमने यह आबाधा देखी। जहां उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है वहां आबाधा का प्रमाण भी अधिक होता है। जहां स्थिति कम बंधती है वहां आबाधा का प्रमाण भी कम होता है। हमने देखा था कि ७० कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति का बंध जहां हो, वहां ७००० वर्ष की आबाधा है और उसी अनुपात में, उसी प्रपोर्शन में हमने अन्य सभी की बात देखी थी। यानी उसका प्रमाण कितना देखा था ? १ कोड़ाकोड़ी सागर का जहां बंध हो वहां आबाधा का प्रमाण हमने १०० वर्ष देखा था।

जहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण बंध होता है वहां आबाधा अंतर्मुहूर्त होती है। एकेन्द्रियों को तो १ सागरप्रमाण ही बंध है तो उसकी आबाधा कितनी होगी ? तो कहते हैं कि उसकी आबाधा जो है वह भी अंतर्मुहूर्त है।

यह अंतर्मुहूर्त किसे कहते हैं ? कल हमने देखा था मुहूर्त अड़तालीस मिनट को कहते हैं। उसमें एक समय कम हो तो भी अंतर्मुहूर्त, वह सैंतालीस मिनट हो तो भी अंतर्मुहूर्त; अड़तालीस मिनट का एक मुहूर्त, उससे कम यानी सैंतालीस मिनट, पैंतालीस मिनट - अभी एक मिनट हो तो भी हम उसको अंतर्मुहूर्त कहेंगे। एक सेकंड को भी अंतर्मुहूर्त कहेंगे। एक आवली के ऊपर, क्या कहा ? एक आवली के ऊपर और अड़तालीस मिनट से एक समय कम तक, एक-एक समय से बढ़ते हुये जितने सारे विकल्प, जितने भेद हो सकते हैं उन सबका नाम है अंतर्मुहूर्त। तो छोटे में छोटा अंतर्मुहूर्त आवली प्लस एक समय, फिर दो समय, तीन समय, चार समय। दो आवली होते-होते तो जघन्य युक्तासंख्यातप्रमाण समय बीत गये यानी उसमें असंख्यात विकल्प होंगे। तो ऐसे दो आवली, चार आवली, दस आवली जितनी हो सकेगी तो कितनी सारी बढ़ जायेंगी अड़तालीस मिनट में ? कितने अलग-अलग टाइप के अंतर्मुहूर्त होंगे। एक समय कम अड़तालीस मिनट वह सबसे बड़ा अंतर्मुहूर्त है जिसको भिन्नमुहूर्त भी कहते हैं। परंतु सब जगह वह अड़तालीस मिनटवाली बात नहीं लगाना क्योंकि इतना लंबा काल हर अंतर्मुहूर्त में नहीं लगता क्योंकि शास्त्र में भी आती है बात कि दो घड़ी। अंतर्मुहूर्त को दो घड़ी कहने की पद्धति है।

ऐसा भी कहते हैं न कि एक अंतर्मुहूर्त तक अपने शरीर का पड़ोसी होकर देख लो- ऐसा आता है न ! तो उसका अर्थ है कि शरीर से भिन्न अपना भेदज्ञान कर लो। परंतु ऐसी बातें हम कहते भी हैं, सुनते भी आये हैं कि अड़तालीस मिनट तक अपनी आत्मा में स्थिर हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। केवलज्ञान होने के लिये इतना बड़ा अंतर्मुहूर्त नहीं लगता। छठे गुणस्थान का जो छोटा अंतर्मुहूर्त है, उससे भी सातवां, आठवां जो है; पहले मैं उपशमश्रेणी की बात करूंगी; सातवां, आठवां, नौवां, दसवां, ग्यारहवां, फिर दसवां, फिर नौवां, फिर आठवां, फिर सातवां ये सबकी टोटल जितनी है, उससे भी छठे गुणस्थान का काल बड़ा है। यानी उपशमश्रेणी पूरी चढ़कर उतरते हैं उसका जो अंतर्मुहूर्त है, उससे छठे का अंतर्मुहूर्त बड़ा है यानी ये सारे अंतर्मुहूर्त बहुत

छोटे हैं। फिर भी एक नौवें गुणस्थान का आप स्वरूप देखेंगे तो उसमें बार-बार यह बात आती है कि यहां संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होते हैं। यानी संख्यात हजार अंतर्मुहूर्त बीत जाते हैं फिर और आगेवाले स्टेप पर कहेंगे कि यहां भी संख्यात हजार अंतर्मुहूर्त बीत जाते हैं फिर आगे कहेंगे यहां भी संख्यात हजार अंतर्मुहूर्त बीत जाते हैं। यानी वह अकेले नौवें गुणस्थान के अंदर-अंदर कितने अंतर्मुहूर्त हैं - हजारों करोड़ों अरबों। *श्रोता: असंख्यात।* उसको संख्यात ही कहेंगे, असंख्यात नहीं कहेंगे।

यह अंतर्मुहूर्त का जो स्वरूप है; क्योंकि यह अंतर्मुहूर्त छोटे-छोटे होते हैं, हमारे ख्याल में नहीं आते। हर बार उसका अड़तालीस मिनट ऐसा अर्थ नहीं करना। देखो इसका हमें थोड़ा एहसास हो जाये इसलिये मैं एक उदाहरण से समझाऊंगी। हमें यह पता है कि जो क्षयोपशमज्ञानी हैं, इन्द्रियज्ञानी हैं, तो ॲट अ टाइम एक समय में उपयोग एक इन्द्रिय के द्वारा ही काम करता है। यह तो हमें सभी मालूम है, आगम के द्वारा हम जानते हैं। यानी भले ही हम पंचेन्द्रिय हैं, पांचों ही इन्द्रियों संबंधी जानने का उघाड़ एक ही समय में विद्यमान है। यानी ज्ञान की पर्याय में तो कहेंगे पांचों इन्द्रियों संबंधी ज्ञान विद्यमान है, परंतु उपयोगरूप ज्ञान की बात चल रही है। हमारा उपयोग या तो देखने में होगा या सुनने में होगा या स्पर्श के संबंध में या घ्राण इन्द्रिय के संबंध में होगा। तो कितना जल्दी-जल्दी पलटता होगा। यह भी बात है कि ऐसा नहीं होता कि एक समय के लिये देखा, फिर दूसरे समय में सुना और तीसरे समय में वह घ्राणेन्द्रिय का काम सुगंध-दुर्गंध का ज्ञान हुआ ऐसा नहीं होता। लगातार अंतर्मुहूर्त तक उसी पदार्थ को जानते रहेंगे तो ही क्षयोपशम ज्ञानी उसको पकड़ सकता है। इसका अर्थ जब हम देख रहे हैं तो कम से कम अंतर्मुहूर्त देखते रहे तो उसका ज्ञान होता है। तब जाकर वह पलटकर वह आवाज़ संबंधी यानी ध्वनि संबंधी ज्ञान होगा। वहां भी अंतर्मुहूर्त उपयोग टिकेगा तो उसको ग्रहण करेंगे। उसके बीच में दर्शनोपयोग भी अंतर्मुहूर्त तक होगा फिर अन्य इंद्रिय संबंधी ज्ञानोपयोग होगा। तो यह कितना फ़ास्ट पलटता होगा क्योंकि हमें कभी ऐसा भासित नहीं होता है। हमें तो ऐसा लगता है हम देख भी रहे, सुन भी रहे, सूंघ भी रहे, मजे से हवा भी ले रहे हैं।

हम बम्बईवाले पांचों इन्द्रियों का ज्ञान ॲट अ टाइम करते हैं। सामने टीव्ही ऑन कर देते हैं। फिर भोजन की थाली लेकर टीव्ही के सामने बैठ जाते हैं यानी वहां

खा भी रहे हैं क्यों ! स्वाद भी ले रहे हैं, सामने देख भी रहे हैं, सुन भी रहे हैं, ऊपर पंखा हो या एसी जो हो है वह चल रहा है तो स्पर्शन इन्द्रिय का भी ज्ञान चल रहा है। सबका ज्ञान हमें एकसाथ चलता है। *श्रोता: रूम फ्रेशनर।* हां, वह सुगंध-रूम फ्रेशनर जो कुछ हैं, सुगंध भी ले रहे हैं। परंतु उपयोग एक समय में एक का ही ज्ञान करता है। वह इतना फ़ास्ट बदलता है जैसे एक जलती हुयी अगरबत्ती देखें और हम बहुत फ़ास्ट ऐसी घुमायें तो क्या लगता है ? एक पूरा सर्कल - राउंड दिखायी देता है। उसका अर्थ क्या है ? वह इतना जल्दी-जल्दी पलटता है तो हमारा वह इम्प्रेशन रह जाता है और हमें वह पूरा सर्कल दिखायी देता है। उस इम्प्रेशन को हम ज्ञान का संस्कार कहते हैं। अंतर्मुहूर्त कितना छोटा है यह मैं बताना चाहती हूं। हमें हर एक इन्द्रिय के द्वारा अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त जानकर ऐसा लगा कि हमने पांचों इन्द्रियों का ज्ञान ॲट अ टाइम किया। तो यह अंतर्मुहूर्त कितने छोटे-छोटे होंगे। ऐसे यहां पर भी जब-जब अंतर्मुहूर्त की बात आती है तब ऐसा नहीं समझना कि अड़तालीस मिनट तक आत्मा में स्थिर हुआ इसलिये केवलज्ञान हुआ। इसलिये हम क्या कहते हैं ? पौने घंटा ऐसा स्थिर बैठते हैं क्योंकि अंतर्मुहूर्त की बात की है न ! ऐसा नहीं होता, यह जो उपयोग सहज अपने आप में स्थिर हो जाता है वहां पर विशुद्धि बढ़ती है। ऊपर के गुणस्थान प्राप्त होते हैं। वह अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में ऊपर-ऊपर चढ़ते हैं। तो अंतर्मुहूर्त का अर्थ है मुहूर्त से नीचे और एक आवली से ऊपर। ऐसे ही अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का क्या अर्थ है ? करोड़ गुणा करोड़ कोड़ाकोड़ी सागर कहलाता है, उससे नीचे और एक करोड़ सागर के ऊपर इसको कहेंगे अंत:कोड़ाकोड़ी सागर।

हमारी स्थितियों की बात चल रही थी। उसकी आबाधा कितनी है ? एकेन्द्रियों की जो जघन्य कहो या उत्कृष्ट १ सागर जितनी स्थिति है उसकी आबाधा कितनी है ? तो एक अंतर्मुहूर्त। द्वीन्द्रिय की कितनी है ? २५ सागर। अभी हम कितना कम करना उसको भूल जायेंगे। हम उत्कृष्ट स्थिति की बात करेंगे। तो २५ सागर की आबाधा कितनी होगी ? एकेन्द्रिय की १ सागर की अंतर्मुहूर्त तो २५ सागर की कितनी होगी ? *श्रोता: २५ अंतर्मुहूर्त।* २५ अंतर्मुहूर्त, उसको भी अंतर्मुहूर्त कहेंगे। वह बड़ा है, वह अंतर्मुहूर्त पच्चीस गुणा बड़ा है परंतु हम उसको पच्चीस अंतर्मुहूर्त नहीं कहेंगे। समझने के लिये कहो तो कोई बात नहीं परंतु वह भी अंतर्मुहूर्त ही है। अब जहां ५० सागर की

स्थिति है वहां की आबाधा कितनी है ? वह भी अंतर्मुहूर्त ही है जो पचास गुणा बड़ा है और जहां १०० सागर की स्थिति है वहां भी आबाधा अंतर्मुहूर्त है जो वह सौ गुणा बड़ा है। जहां १००० सागर की स्थिति है तो उसकी आबाधा भी अंतर्मुहूर्त ही है, वह हज़ार गुणा बड़ा है। क्योंकि अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं। *श्रोता: सबसे छोटा अंतर्मुहूर्त कितना है ?* एक आवली और एक समय। यह बात आबाधा के लिये नहीं है, जनरल कथन चल रहा है। सबसे बड़ा अंतर्मुहूर्त कौनसा देखा हमने ? अड़तालीस मिनट में एक समय कम और छोटे में छोटा अंतर्मुहूर्त किसको कहेंगे ? *श्रोता: आवली प्लस एक समय।* आवली प्लस एक समय यानी वह जघन्य युक्तासंख्यात प्लस एक समय। इतने समयों का वह जघन्य अंतर्मुहूर्त होगा। बीचवाले एक-एक समय बढ़ाते जाओ तो कितने ही अलग-अलग अंतर्मुहूर्त हमें प्राप्त होंगे।

शास्त्र में कहीं कथन आता है अंतर्मुहूर्त है तो हमें उसी शब्द में उसको स्वीकार करना है। हम उनको सेकंडों में और मिनटों में ढालना चाहते हैं। ऐसी कोशिश करने की कोई जरूरत नहीं है। जैसा भगवान ने देखा है वैसा यथायोग्य अंतर्मुहूर्त ऐसा हम समझेंगे क्योंकि शास्त्र की जो भाषा है उसी भाषा में कहना। भले समझने के लिये हम कोशिश करें, परंतु हम उसकी कोई नयी परिभाषा नहीं बना सकते। कहीं भी शास्त्रों के मूल शब्द बदलने की कोशिश नहीं करना है। अपने समझ में कम आवे, अधिक आवे, उसकी बात नहीं है। हम अपनी भाषा में उसको समझाने के लिये तो प्रयास कर सकते हैं परंतु हम अपनी ओर से वैसा कथन, उसका स्टेटमेंट, उसकी परिभाषा नहीं बना सकते क्योंकि हम अल्पज्ञानी हैं और कितना कम जानते हैं और वहां एक-एक शब्द में इतना माल भरा है कि यहां से वहां थोड़ा पलटने जाओ तो उसके अर्थ का अनर्थ हो जाता है। तो यह हमारी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

करणानुयोग के लिये पं. टोडरमलजी साहब ने कितना बड़ा कार्य किया है कि सब मूलभाषा तो व्यवस्थित रखी, संदृष्टि भी उन्होंने बदली नहीं है। संदृष्टि का अर्थ क्या है ? 'चिह्न', जैसे 'सिम्बॉल' है उसके। सूच्यंगुल के लिये भी २ लिखा और आवली के लिये भी २ लिखा। तो स्वयं प्रश्न पूछते हैं कि यहां यह दूसरी संदृष्टि तो बना सकते थे, वही २ आंकड़ा क्यों लिखा उसके लिये ? तो कहते हैं कि जो बात मूलग्रंथो में लिखी है वह कायम रखनी है क्योंकि हमें मूलग्रंथों को पढ़ते समय उसके अर्थ का उकेल यानी

उसका ज्ञान होना चाहिये। हम उस संदृष्टि को अपने मॉडर्न गणित में भी डाल सकते हैं। कितना आसान है, कोई भी अंग्रेजी लेटर लिख लो और वह संदृष्टि हो गयी उसकी। कोई भी अपने मन से सिम्बॉल बदल सकते हैं परंतु वह बदलने से अपनी मूलधारा नहीं रहेगी। इसलिये भले ही समझने के लिये आप उसको एन कहो, एम कहो कुछ भी कहो; परंतु मूल संदृष्टि, मूल जो सिम्बॉल, मूल जो चिह्न आचार्यों ने दिये हैं उसको नहीं बदल सकते। हमें मूलग्रंथों को समझने में भी कठिनाई होगी क्योंकि फिर बीच में वह धारा ही टूट जायेगी। यह २ क्या लिखा है ? ४ क्या लिखा है ? कोई भी करणानुयोग के मूलग्रंथ निकालो। अभी गोम्मटसार, धवला, जयधवला आदि हैं तो उनमें मात्र संदृष्टि लिखी है। वह आंकड़े लिख दिये उसका अर्थ कहीं एक्स्प्लेन नहीं किया है।

पं. टोडरमलजी की यह विशेषता है कि उन्होंने संदृष्टि का एक-एक सिम्बॉल लिया है, एक-एक चिह्न लिया है और एक-एक चिह्न का अर्थ समझाया है। मायनस किसको कहेंगे, प्लस किसको कहना, वन प्लस किसको कहना, वन मायनस किसको कहना, मल्टिप्लाय की क्या साइन है, उसमें से मायनस करते हैं तो कैसे अलग-अलग लिखना ? असंख्यात के लिये क्या लिखना, संख्यात के लिये क्या लिखना। पल्य लिखना है, सागर लिखना है तो पूरा शब्द नहीं लिखेंगे, उसकी अलग साइन-चिह्न करके उसका सिम्बॉल बनायेंगे। ये सारे चिह्न उन्होंने पहले में पहले समझाये हैं फिर आगे गणित समझाया उन चिन्हों की - सिम्बॉल की भाषा में। कहीं भी, किसी भी ग्रंथ में ऐसा सविस्तार समझाया ही नहीं है। डायरेक्ट उसका कथन आता है। पं. टोडरमलजी की यह विशेषता है कि उनको ऐसा लगता था कि यह बात जन-जन समझे। भले ही गणित पूरा नहीं समझे परंतु किसीको गणित में भी रुचि होती है तो उसको इसका अर्थ जरूर समझ में आ जाता है। अभी जो हम देख रहे थे यहां अंतर्मुहूर्त के ऊपर से यह बात निकली थी कि अपनी भाषा में उसकी परिभाषा नहीं बनाना। आप अपनी भाषा में समझो। अपने आप समझने के लिये भले आप उसको एम कहो, एन कहो कुछ भी कहो फिर भी हम वह पुस्तकों में उस पद्धति से नहीं लिख सकते हैं। लिखेंगे तो भी हम ब्रॅकेट करके, विशेषार्थ करके, उसको अलग से लिखेंगे, हां, क्योंकि हमारी जिम्मेदारी है कि मूलधारा टूटे बिना आगे चले। देखो, अभी हम देख रहे हैं यहां पर कि आबाधाकांडक किसको कहना ? आबाधा तो हमने देख ली।

क्या प्रश्न है ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त तो हो गया यह, मुहूर्त किसे कहेंगे ?* हां, अच्छा, मुहूर्त। कल बताया था फिर भी देखते हैं। दो घड़ी को मुहूर्त कहते हैं। एक घड़ी कितनी होती है भाई ? *श्रोता: चौबीस मिनट।* चौबीस मिनट की एक घड़ी, दो घड़ी का अर्थ होता है ? *श्रोता: अड़तालीस मिनट।* अड़तालीस मिनट उसीको एक मुहूर्त कहते हैं और जो मुहूर्त से कम है वह तो अंतर्मुहूर्त है। लोग मुहूर्त देखकर कार्य करते हैं वह मुहूर्त नहीं। यहां काल का जो माप है उसको मुहूर्त कह रहे हैं। *श्रोता: आवली काल के अंदर, अंदर का समय जो है वह क्या कहलायेगा ?* आवली से कम काल कहेंगे फिर उसको हम। कितना समय है। *श्रोता: ...* उसको बिलकुल नहीं कहेंगे। उसको आवली का असंख्यातवां भाग या जो कुछ यथायोग्य है संख्यातवां भाग, जहां जो संख्या है उसे बतायेंगे। जहां जिस काल का कथन आता है, वहां उसको कहेंगे। कहीं-कहीं आवली को भी अंतर्मुहूर्त कहा है कहीं एक जगह, फिर भी आवली प्लस एक समय को ही अंतर्मुहूर्त तरीके से गिना है। स्पष्ट शब्दों में लिखा है आवली से ऊपर और मुहूर्त से नीचे वे सारे ही अंतर्मुहूर्त कहलायेंगे।

अभी अपना विषय चलेगा, आबाधाकाल हमने देखा, अभी आबाधाकांडक क्या है उसको देखना है। अभी तक हमने क्या देखा ? आबाधाकाल और अभी हम देखने जा रहे हैं आबाधाकांडक। आबाधाकांडक यानी क्या ? कांडक का अर्थ क्या होता है ? एक टुकड़ा - पर्व, जैसे गन्ना खाते हैं न, नहीं समझते हैं ? *श्रोता: शेरडी।* समझते हैं न। शेरडी, हां गुजराती में। मराठी में ऊस, हां, हां, तो उसमें क्या होता है ? शेरडी बताया न गुजराती में। तो उसमें ऐसे कटके-कटके होते हैं न बीच में तो। *श्रोता: आंख।* आंख कहते हैं, कोई पर्व कहते हैं उसको। तो यह है एक टुकड़ा जैसे उंगली में ऐसी आड़ी लाइन है। तो हम क्या कहते हैं ? एक पेर कहते हैं मराठी में। ऐसे इसको हम कहेंगे कांडक यानी एक विशिष्ट उतना उसका जो पोर्शन है उसको हम कांडक कहेंगे। आबाधाकांडक क्यों कहा ? तो देखो हमने देखी अभी किसीकी स्थिति उत्कृष्ट है, किसीकी उससे कम है, किसीकी उससे कम है। तो एक-एक समय के स्थिति के डिफरन्स से क्या आबाधा भी एक-एक समय कम होती चली जायेगी ? ऐसा नहीं है। तो कैसा है ? बहुत सारी अलग-अलग स्थितियों के लिये आबाधा का प्रमाण उतना ही रहता है। हम मान लेंगे एक्स समय तो फिर उतने स्थिति के भेद बीत गये। अभी

उसके नीचे आये तो उन विशिष्ट नंबर ऑफ स्थितियों के लिये, अलग-अलग स्थितियों के लिये आबाधा कितनी होगी ? अभी नीचे आये न ? एक्स मायनस वन।

आबाधाकांडक हमें समझना है। हम यह स्थिति मान लेते हैं चौंसठ समय की है, हमें समझ में आये इसलिये यहां छोटी-छोटी संख्या लेकर समझाने की कोशिश कर रहे हैं। अभी एक के नीचे एक लिखना था परंतु हम इतना लंबा देख नहीं सकते, समझा नहीं सकते तो हमने इसको आड़ा लिखा है। कोई स्थिति है चौंसठ समय और उसकी आबाधा है सोलह समय। किसीने तिरसठ समय की स्थिति बांधी उसकी भी आबाधा सोलह समय है; किसीने बासठ समय की स्थिति बांधी उसकी भी आबाधा सोलह समय है और किसीने इकसठ समय की स्थिति बांधी है उसकी भी आबाधा सोलह समय है। यानी स्थिति के चार भेद हुये चौंसठ, तिरसठ, बासठ और इकसठ, इन सबके लिये आबाधा उतनी की उतनी रही। कितनी रही ? सोलह समय। इसके बाद क्या हुआ इकसठ के बाद ? किसी जीव ने साठ समय का स्थितिबंध किया है उसकी आबाधा इसमें एक समय कम, पंद्रह हो गयी। तो साठ के लिये, उनसठ के लिये, अट्ठावन के लिये, सत्तावन के लिये, उतनी ही आबाधा रही। कितनी ? *श्रोता: पंद्रह समय।* पंद्रह समय। तो ये चार अलग-अलग भेद हुये, उनके लिये आबाधा है पंद्रह समय। फिर उसके बाद छप्पन, पचपन, चौवन, तिरपन इन स्थिति के भेदों के लिये आबाधा है चौदह समय यानी चार-चार अलग-अलग भेदों के लिये आबाधा उतनी ही रहती है। फिर जाकर एक समय घटती है। देखो पहले स्थिति के चार भेद हुये न, चौंसठ, तिरसठ, बासठ, इकसठ। आबाधा कितनी रही ? *श्रोता: सोलह समय।* सोलह समय। आगे के चार भेद कौनसे हैं ? साठ, उनसठ, अट्ठावन, सत्तावन उनके लिये सेम आबाधा है, वही है। कितनी है ? पंद्रह समय। फिर नीचे आते हैं छप्पन, पचपन, चौवन, तिरपन, उसके लिये आबाधा एक ही है, चौदह समय। फिर और नीचे आते हैं बावन, ५१, पचास और उनचास तो उनकी आबाधा है तेरह समय। उससे और नीचे आते हैं अड़तालीस, सैंतालीस, छियालीस और पैंतालीस उनकी आबाधा है बारह समय। इसका अर्थ क्या होता है ? चार-चार, अलग-अलग स्थितियों के लिये, कैसी स्थिति ? एक-एक समय से घटती हुयी, कोई भी चार नहीं ली। क्रम से जो चार एक-एक समय से घटती हुयी स्थिति के चार भेदों में यहां समझाने के लिये चार कहे। यथार्थ में तो

उसका जो प्रमाण है वह अलग है। यहां पहले हम समझ लें फिर हम यथार्थ की बात करेंगे। यहां चार-चार, अलग-अलग स्थिति भेदों के लिये, आबाधा उतनी की उतनी रहती है। हमने जो चार प्रमाण देखा उसको कहेंगे आबाधाकांडक। यहां आबाधाकांडक कितना लिखा ? चार लिखा, क्यों ? चार-चार स्थिति के भेद कहलायेंगे। स्थिति चौंसठ समय है या तिरसठ समय है या बासठ समय है या इकसठ समय है। ये स्थिति के चार अलग-अलग भेदों में आबाधा उतनी की उतनी रहती है इसको कहते हैं आबाधाकांडक का प्रमाण है चार। आबाधाकांडक का प्रमाण चार है।

श्रोता: चार समय कहां से आया ? समझने के लिये हम चार कह रहे हैं। आबाधाकांडक का प्रमाण चार है ऐसा कहो यानी ये चार अलग-अलग स्थिति भेदों के लिये, उतनी की उतनी आबाधा है। चार समय मत कहो, उसको चार कहो तो कन्फ्यूजन नहीं होगा। हमने देखा चौंसठ समय उत्कृष्ट स्थिति बांधी थी और उत्कृष्ट आबाधा कितनी लिखी यहां पर ? सोलह समय। उत्कृष्ट स्थिति आप लिख सकते हैं, उत्कृष्ट स्थिति को उत्कृष्ट आबाधा से भाग देंगे तो क्या मिलेगा ? आबाधाकांडक का प्रमाण होगा। कांडक का प्रमाण उत्कृष्ट-जघन्य नहीं होता, कांडक का प्रमाण उतना का उतना ही रहता है। उत्कृष्ट स्थिति डिव्हाइडेड बाय यानी भाग देना, बीच में भागाकार का चिह्न लिखना। उत्कृष्ट स्थिति डिव्हाइडेड बाय उत्कृष्ट आबाधा इज ईक्वल टु आबाधाकांडक। उत्कृष्ट स्थिति को उत्कृष्ट आबाधा से भाग दीजिये तो हमें आबाधाकांडक का प्रमाण मिलेगा। यहां उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ? *श्रोता: चौंसठ।* चौंसठ समय; अपने इस उदाहरण में उत्कृष्ट स्थिति है चौंसठ समय और उसकी आबाधा है सोलह समय तो उसका आबाधाकांडक का प्रमाण है चार, क्योंकि चौंसठ को हमने सोलह से भाग दिया तो चार प्रमाण आया। अभी यहां यह इकसठ को सोलह से भाग नहीं देना। अभी इन चार में से साठ को हमने पंद्रह से भाग दिया तो भी आबाधाकांडक का प्रमाण चार आया। यहां भी ये छप्पन को चौदह से भाग देते हैं तो भी चार आता है, बावन को तेरह से भाग देते हैं तो भी चार आता है और यहां अड़तालीस को बारह से भाग देते हैं तो भी चार आता है।

यह चार अपने यहां उदाहरण के लिये इसको हम कहेंगे आबाधाकांडक। यानी इतने-इतने चार-चार स्थितिभेद चले जाने पर आबाधा एक-एक समय से घटेगी।

चौंसठ, तिरसठ, बासठ, इकसठ चार भेद गये, वहां तक तो उतनी ही सोलह समय की आबाधा रही। उसके बाद जब साठ से शुरू हुयी, स्थिति का अलग भेद शुरू हुआ तब वहां से आबाधा सोलह समय से लेकर पंद्रह समय हो गयी यानी एक समय घट गयी। ऐसे जो उत्कृष्ट स्थिति ॲक्चुअल में है, यथार्थ में जो है; कितनी है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर। अभी हम मिथ्यात्व में लगा रहे हैं, कहीं पर भी लगाओ प्रपोर्शन तो वही आयेगा। ७० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति है तो उसकी उत्कृष्ट आबाधा कितनी देखी थी याद है ? *श्रोता: ७००० वर्ष।* ७००० वर्ष। उससे भाग देना है, तो जो कोई प्रमाण आयेगा उसको हम कहेंगे आबाधाकांडक। यह यथार्थ में आबाधाकांडक का प्रमाण है। अब हम १४७ नंबर की गाथा पढ़ेंगे फिर और इसको समझेंगे।

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण।
आबाहवियप्पहदेणेगुणेणूणजेट्ठमवरठिदी॥ १४७॥

एकेन्द्रियादि जीवों की यानी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, हर एक की अपनी-अपनी, **अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा का जो प्रमाण है**, अपनी-अपनी उत्कृष्ट; पंचेन्द्रियों के लिये उत्कृष्ट स्थिति भी अलग है और उत्कृष्ट आबाधा भी अलग है। तो अपनी-अपनी आबाधा से - उत्कृष्ट आबाधा से यानी **उसका भाग**, **अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति को देने पर**। क्या कहा ? एकेन्द्रिय आदि यानी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक यही रूल है। क्या है ? कि अपनी-अपनी जो उत्कृष्ट आबाधा है उसका भाग अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति को देने पर, हमने यही तो फॉर्म्युला बनाया। उत्कृष्ट स्थिति डिव्हाइडेड बाय उत्कृष्ट आबाधा। **जो प्रमाण आता है वह आबाधाकांडक का प्रमाण जानना।** अभी यहां जो बोर्ड पर हमने लिखा था उत्कृष्ट स्थिति यहां हमने चौंसठ समय मान ली है और उत्कृष्ट आबाधा सोलह समय मान ली है। तो चौंसठ को हमने सोलह का भाग दिया तो चार आये तो आबाधाकांडक का प्रमाण चार है। यानी इतने-इतने स्थिति के भेदों के लिये यानी चार-चार भेदों के लिये। चार भेद का अर्थ है चौंसठ, तिरसठ, बासठ और इकसठ ये जो चार भेद हैं उनमें आबाधा का प्रमाण वही का वही है। यानी उन सबके लिये आबाधा का प्रमाण एक ही है। कितना है ? *श्रोता: सोलह समय।* सोलह समय। चौंसठ, तिरसठ, बासठ और इकसठ ये अलग-अलग स्थिति के जो भेद देखे हैं उन सबमें आबाधा का प्रमाण सोलह समय।

हमने कल्पना से यह उदाहरण लिया है। यह जो सोलह समय हमने चारों ही स्थिति के भेदों के लिये देखा है तो उसमें उत्कृष्ट भेद जो चौंसठ है उसको हम आबाधा का प्रमाण सोलह से भाग देंगे तो चौंसठ डिव्हाइडेड बाय सोलह। कितने आये ? *श्रोता: चार।* चार आये। तो चार यहां आबाधाकांडक का प्रमाण है। यह आबाधाकांडक का प्रमाण उतना ही रहेगा। आगे के जो चार भेद हैं कौनसे ? साठ, उनसठ, अट्ठावन और सत्तावन; ये भी चार भेद हुये। वहां भी आबाधाकांडक का प्रमाण चार है परंतु आबाधा का प्रमाण अभी एक समय कम हो गया सोलह थे अभी पंद्रह हो गये। उसके आगे के जो चार भेद हैं। कौन-कौनसे हैं ? *श्रोता: छप्पन।* छप्पन। *श्रोता: पचपन।* पचपन, चौवन और तिरपन; चार भेदों के लिये आबाधाकांडक सेम है परंतु अभी आबाधा एक समय और कम हो गयी। *श्रोता: ग्रुप ?* ग्रुप यानी कितने समयों के कितने स्थिति भेदों का ग्रुप। अकेला ग्रुप नहीं कह सकते हम; स्थिति के अलग-अलग भेद, एक-एक समय से घटते हुये स्थिति के अलग-अलग भेद। उतने भेदों का, कितने भेद हैं ? यहां जो हमने चार भेद देखे और चार भेदों के लिये आबाधा का प्रमाण सेम है, वही है इसलिये आबाधाकांडक को हमने चार कहा। कितनी स्थितियों में आबाधा वही की वही रहती है ? यहां उदाहरण में चार लिये। तो चार स्थितिभेद हैं, उनके लिये आबाधा उतनी की उतनी है, इसलिये आबाधाकांडक का प्रमाण है चार यानी जितने स्थिति के भेद हैं उतने ही आबाधा के भेद नहीं हैं। हां, बहुत सारे भेदों के लिये आबाधा कॉमन, फिर उसके नीचे और भेदों के लिये आबाधा कॉमन, फिर उसके नीचे के और कुछ भेदों के लिये आबाधा कॉमन तो आबाधा के भेद कम होंगे। आबाधा के भी भेद कम होंगे न ? कांडक तो अलग बात है।

आबाधाकांडक चार, चार, चार हमने देखा। आबाधा के देखो, स्थिति के भेद कहां से कहां तक होंगे यहां पर ? उत्कृष्ट स्थिति अपने गणित में कितनी देखी हमने ? *श्रोता: चौंसठ।* चौंसठ, चौंसठ से लेकर एक-एक-एक समय से घटते हुये पैंतालीस तक स्थिति के भेद कितने हुये ? *श्रोता: बीस भेद।* देखो कैसे निकालना है ? स्थिति के भेद निकालना है। कैसे निकालेंगे ? उत्कृष्ट स्थिति मायनस जघन्य स्थिति, कितने हुये ? *श्रोता: उन्नीस।* हां, उन्नीस। प्लस वन; प्लस वन क्यों ? क्योंकि हमको पैंतालीस को भी गिनना है और चौंसठ को भी गिनना है। हर एक में चार-चार हैं न देखो। चार गुणा

पांच बीस, बीस भेद हैं न ! यहां स्थिति के कितने भेद हुये ? *श्रोता: बीस।* बीस। कहीं पर भी स्थिति के भेद निकालना है तो कैसे निकालेंगे ? उत्कृष्ट स्थिति मायनस जघन्य स्थिति प्लस वन। *श्रोता: प्लस वन क्यों ?* प्लस वन इसलिये क्योंकि पैंतालीस को भी गिनना है और चौंसठ को भी गिनना है। यदि चौंसठ में से पैंतालीस मायनस करते हैं तो कितने आये ? *श्रोता: उन्नीस।* उन्नीस आये और यहां भेद कितने हैं ? *श्रोता: बीस।* बीस है न ? बीस भेद हैं इसलिये पहले इसको मायनस किया और एक मिला दिया क्योंकि हमको इसको भी गिनना है। मायनस करेंगे तो इसके आगे के स्थान हो जायेंगे, हमें इसको भी गिनना है। देखो हम दस और चार देखेंगे - दस हमारा उत्कृष्ट है और चार जघन्य है। तो कितने अलग-अलग भेद हुये ? बोलो ? *श्रोता: सात हुये।* छह हुये क्या सात हुये ? *श्रोता: छह हुये। अन्य श्रोता: सात हुये।* छह हुये ? कहां से कहां तक गिनना है चार से दस तक गिनना है। हं ? पहले चार को गिनो चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस। कितने हुये ? *श्रोता: चार को भी गिनना है ?* चार को भी गिनना है। हां, दस में से चार मायनस करेंगे तो हमने चार को निकाल दिया है। हां, पहले चार को मायनस करो और एक मिला दो। *श्रोता: एक से सौ तक, सौ होंगे ?* एक से सौ तक सौ होंगे परंतु जघन्य भेद १वाला होगा और उत्कृष्ट सौ होगा तो हम एक को मायनस करेंगे तो निन्यानवें हो जाते हैं; जो मायनस किया है उसको रखना नहीं है वहां पर। इसलिये उत्कृष्ट चौंसठ है, जघन्य पैंतालीस है; पहले उसको मायनस करो और वह पैंतालीस को भी गिनना है उसको रखो न वहां पर।

यह जो बड़ी-बड़ी गणित की संख्यायें हैं वहां पर ऐसा ही कहेंगे। अभी उत्कृष्ट कितना है हमारा ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर की उत्कृष्ट स्थिति है। स्थिति उत्कृष्ट कितनी बंधी ? संज्ञी पंचेन्द्रिय की देख रहे हैं। ७० कोड़ाकोड़ी सागर और जघन्य ? *श्रोता: ७०००।* आबाधा नहीं पूछी, जघन्य स्थिति पूछी है। जघन्य है अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। मायनस करो और प्लस वन रखो- इतने स्थिति के भेद होंगे संज्ञी पंचेन्द्रियों के। हम यहां एकेन्द्रियों, द्वीन्द्रिय को नहीं गिन रहे हैं। ख्याल में आया ? संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, अलग-अलग जीव कितनी-कितनी स्थिति बांध सकते हैं ? तो यहां कोई उत्कृष्ट चौंसठ बांध रहा है, कोई तिरसठ, कोई बासठ और कोई पैंतालीस। तो टोटल कितने हमने देखे ? *श्रोता: बीस।* चौंसठ में से पैंतालीस मायनस किये, उन्नीस आये और प्लस एक

कर दिया तो बीस हो गये। ऐसे ही कोई उत्कृष्ट स्थिति का बंध करता है तो कितना करता है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर और जघन्य में जघन्य ? अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। ७० कोड़ाकोड़ी सागर में से अंत:कोड़ाकोड़ी सागर मायनस कर दो और प्लस एक कर दो। इतने स्थिति के अलग-अलग विकल्प; विकल्प यानी पॉसिबिलिटिज़, ऑप्शन्स होंगे, अलग-अलग जीव इतनी अलग-अलग स्थितियों का बंध करते हैं। *श्रोता: ये अपना शिबिर चौदह से अठारह तक है न ?* हां, चौदह से अठारह तक कितने दिन हैं ? अठारह मायनस चौदह चार दिन हैं कि पांच दिन हैं ? *श्रोता: पांच।* पांच दिन हैं न; चौदह को भी गिनना और अठारह को भी गिनना है। है न ?

देखिये इसको तो स्थिति के भेद कहेंगे। एक-एक समय से बढ़ते हुये स्थिति के भेद और अनेक स्थिति भेदों के लिये आबाधा का प्रमाण उतना का उतना है। जैसे ७० कोड़ाकोड़ी सागर को आबाधा कितनी है ? *श्रोता: ७००० वर्ष।* ७००० वर्ष। ७० कोड़ाकोड़ी सागर से एक समय कम नीचे आओ फिर भी आबाधा का प्रमाण ७००० वर्ष। और एक समय नीचे आओ फिर भी ७००० वर्ष। और एक समय नीचे आओ फिर भी ७००० वर्ष। कहां तक नीचे आना ? *श्रोता: चार समय।* चार समय ? नहीं। यह तो चौंसठ के लिये हमने उदाहरण देखा था इसीलिये मैंने पूछा। पल्य के असंख्यातवें भाग तक नीचे आओ यानी ७० कोड़ाकोड़ी सागर मायनस एक समय, मायनस दो समय, मायनस तीन समय, मायनस चार समय कहां तक ? पल्य के असंख्यातवें भाग कम तक आओ। *श्रोता: क्यों पल्य के असंख्यातवें भाग तक ?* क्योंकि वह आबाधाकांडक का प्रमाण है। यथार्थ में कांडक का वह प्रमाण है। यहां जो हमने देखा था न ? *श्रोता: नहीं, ७० कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति और ७००० वर्ष है आबाधा।* ७० कोड़ाकोड़ी सागर डिव्हाइडेड बाय ७००० वर्ष इज ईक़ल टु आबाधाकांडक। तो उसका प्रमाण कितना आता है ? पल्य का असंख्यातवां भाग आता है। *श्रोता: पल्य का असंख्यातवां भाग ?* पल्य का असंख्यातवां भाग। यह उसका प्रमाण आता है वहां पर। हमने अभी गाथा १४७ पढ़ी थी न, तो जो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति है, उसको अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा का भाग देंगे, जो प्रमाण आयेगा उसको हम आबाधाकांडक कहेंगे। *श्रोता: पल्य का असंख्यातवां भाग जो निकालेंगे आबाधाकाल का नहीं निकाल सकते ?* पल्य के असंख्यातवां भाग अगर स्थिति कोई बांधता है, ऐसा कौनसा जीव है ? भाग्यशाली

या पुरुषार्थी कि जो पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति का बंध कर रहा है ? क्या कोई ऐसा एकेन्द्रिय है ? क्योंकि उसकी सागर जितनी बंधती है, एक सागर में थोड़ी कम। पल्य का असंख्यातवां भाग इतनी स्थिति कौनसा जीव बांध रहा है ? *श्रोता: कोई नहीं।* कोई नहीं ? *श्रोता: एकेन्द्रिय।* एकेन्द्रिय कहां ? एकेन्द्रिय तो सागर में पल्य का असंख्यातवां भाग कम इतनी बांधता है। *श्रोता: क्षपकश्रेणीवाला।* क्षपकश्रेणीवाला। हां, मुनिराज जो हैं क्षपकश्रेणी में, वे इतना बंध करेंगे। ऑर्डिनरि जो उनका छठवां-सातवां गुणस्थान है, वहां भी अंत:कोड़ाकोड़ी सागर का बंध करेंगे। यहां मिथ्यात्व की बात नहीं चल रही, अन्य कर्मों की बात चल रही है, बंधयोग्य प्रकृतियों की बात चल रही है। परंतु जब क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं तो उनकी स्थिति तो घटती ही घटती है। उनका नया बंध भी पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। अब वह कौनसे स्टेज पर होता है उसका तो बहुत डीटेल स्टडी है। परंतु इतना कम स्थितिबंध तो मात्र उन्हींको होगा और उनकी भी आबाधा अत्यंत छोटा अंतर्मुहूर्त होगी क्योंकि आवली से पहले तो कोई उदय में आ ही नहीं सकता है। आवली के ऊपर ही है। आवली के बाद भी उदय आता है तो उदीरणा से आता है यानी उससे बड़ावाला कोई अंतर्मुहूर्त होना चाहिये।

अब यहां जो हम देख रहे थे आबाधाकांडक किसे कहना यह ख्याल में आया ? स्थितियों के अलग-अलग भेदों के लिये, अलग-अलग ऑप्शन्स के लिये, अलग-अलग विकल्पों के लिये उतनी की उतनी आबाधा रहती है तो ऐसे कितने भेदों के लिये एक ही आबाधा है ? उन भेदों का जो प्रमाण है उसको कहेंगे आबाधाकांडक। उतनी की उतनी आबाधा के लिये; यह सोलह ही आबाधा के लिये, स्थिति के कितने अलग-अलग भेद हैं ? *श्रोता: चार।* चार हैं। चौंसठ भी है, तिरसठ भी है, बासठ भी है, इकसठ भी है। तो यहां कहेंगे आबाधाकांडक चार है। अपने इस गणित में उत्कृष्ट आबाधा कितनी देखी हमने ? ये सारे आबाधा के अलग-अलग भेद हुये। देखो यहां स्थिति के भेद कितने हुये ? चौंसठ से लेकर पैंतालीस तक। *श्रोता: बीस।* बीस, क्या किया हमने ? चौंसठ मायनस पैंतालीस प्लस एक, बीस हो गये। अभी आबाधा के कितने भेद मिले हमें यहां पर ? *श्रोता: पांच।* एक सोलह है, एक पंद्रह है, एक चौदह, तेरह, बारह। कितने हैं ? पांच हैं, ये आबाधा के भेद हुये। आबाधाकांडक कितना हुआ ? चार। *श्रोता: चार।* आबाधाकांडक का प्रमाण था चार और आबाधा के भेद थे ? *श्रोता: पांच।* पांच।

जघन्य आबाधा है बारह और उत्कृष्ट आबाधा है सोलह तो आबाधा के भेद कितने ? सोलह मायनस बारह प्लस वन। ऐसे हम गिन सकते हैं इसलिये पांच बता दिया डायरेक्ट परंतु उसका फॉर्म्युला बना दो न ? कि उत्कृष्ट आबाधा मायनस जघन्य आबाधा, चार आये न, प्लस वन। आबाधा के भेद पांच हुये। तो आबाधा के भेद कितने हैं ? सोलह मायनस बारह प्लस वन इज ईक्वल टु तो पांच। *श्रोता: मायनस क्यों कर दिये ?* उसका प्रमाण आसानी से निकाल सके इसलिये। क्योंकि जब यहां असंख्यातों की बात होगी वहां सूत्र बना सकते हैं न। जब असंख्यातों की बात आती है वहां हमको दोनों को गिनना है। हमको बारह को भी गिनना है और सोलह को भी गिनना है। तो आप गिनो न, एक, दो, तीन चार, पांच डायरेक्ट निकालो। यह तो छोटी संख्या है तो समझ सकते हैं बिना डिव्हाइड करके, बिना कुछ करके। सोलह में से बारह मायनस कर दो, चार आ गये; बारह को भी हमको लेना है। बारह घटाने से नहीं चलेगा, बारह भी हमको साथ में रखना है तो उसको फिर मिला दो। एक भेद वह तो चार प्लस एक, पांच भेद हो गये उसके अलग-अलग। क्योंकि ये तो छोटी संख्या है हम डायरेक्ट उसका उत्तर निकाल सकते हैं। जहां असंख्यातों में प्रमाण है तो उसका भेद कैसे निकालेंगे हम ?

क्योंकि उत्कृष्ट आबाधा जो यहां सोलह लिखी है, संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्कृष्ट आबाधा है ७००० वर्ष और ७००० वर्ष मायनस एक समय, ७००० वर्ष मायनस दो समय, आबाधा भी एक-एक समय से घटेगी तो उसके कितने असंख्यात भेद हो जायेंगे। जघन्य आबाधा कितनी होगी ? अंतर्मुहूर्त। तो अंतर्मुहूर्त से लेकर ७००० वर्ष के जितने समय हैं, वहां डायरेक्ट ७००० में से मायनस नहीं करना है। ७००० वर्षों के जितने समय हैं उसमें से अंतर्मुहूर्त के समय मायनस करो और प्लस एक करो, इतने अलग-अलग आबाधा के भेद होंगे। क्योंकि स्थितियों के भेद हम कितने देख रहे हैं ? एक-एक समय से घटते हुये स्थिति के भेद देखेंगे। उसके लिये आबाधा उतनी की उतनी रहेगी। तो यहां उत्कृष्ट आबाधा हमने सोलह देखी, जघन्य आबाधा बारह देखी तो हमें उसका फॉर्म्युला बनाना है। यहां तो आप देखकर एक साथ बता रहे हैं पांच भेद हैं। फॉर्म्युला बनाओ न, उत्कृष्ट मायनस जघन्य प्लस वन। क्यों ? हमको जघन्य को भी गिनना है उसके साथ। बारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह; डायरेक्ट सोलह में से

बारह मायनस करेंगे तो चार ही रहेंगे तो यह बारहवाला भेद हमें लेना है कि नहीं साथ में ? इसलिये उसको फिर मिला देना। तो अभी हमें, हमें इतना नहीं मालूम है। क्या मालूम है ? आबाधा के पांच भेद हैं यह मालूम है और आबाधाकांडक चार है इतना मालूम है। तो अभी हमें स्थिति के कितने भेद हैं यह जानना है। क्या ? कितना आसान है ! क्या कहा ? एक-एक आबाधा के लिये स्थिति के चार-चार भेद- ऐसे आबाधा के कितने भेद देखे हमने ? पांच, तो स्थिति के टोटल भेद ? पांच गुणा चार बीस। क्या किया हमने ? आबाधाकांडक का जो प्रमाण है, देखो, स्थिति के भेद डायरेक्ट कैसे निकाले ? उत्कृष्ट स्थिति मायनस जघन्य स्थिति प्लस वन, यह हमें डायरेक्ट मिला। हमें मालूम नहीं है कुछ, हमें केवल यह मालूम है कि आबाधा के भेद कितने हैं, तो पांच हैं और आबाधाकांडक कितना है ? चार है तो हमें स्थिति के भेद दूसरी पद्धति से निकालना है तो क्या करेंगे ? आबाधाकांडक यानी यहां चार है, आबाधा के भेद पांच हैं तो पांच गुणा चार या चार गुणा पांच करना। कितने आ गये ? *श्रोता: बीस।* बीस आ गये। यह दूसरी पद्धति से हमने स्थिति के भेद निकाले।

उत्कृष्ट मायनस जघन्य प्लस वन इज ईक्वल टु टोटल भेद। कहीं पर, कहीं पर जाओ यही फॉर्म्युला चलेगा। हमको दोनों ओर को, दोनों को गिनना है। जैसे पांच से सौ तक कितनी संख्यायें होती हैं ? पांच से लेकर सौ तक संख्या कितनी हुयी ? *श्रोता: छियानवे। अन्य श्रोता: नाइन्टी फाईव्ह।* नाइन्टी सिक्स कि नाइन्टी फाईव्ह ? *श्रोता: नाइन्टी सिक्स।* सौ मायनस पांच प्लस वन। हमको पांच को भी गिनना है तो पांच से गिनना शुरू हुआ तो कितने छोड़े उसके नीचे ? चार ही छोड़े। तो डायरेक्ट सौ में से पांच मायनस करो और एक मिला दो या सौ में से डायरेक्ट चार मायनस करो तो भी संख्या उतनी ही आनेवाली है। ख्याल में आती है बात ? यह तो आसान है और हम करते भी हैं रोज़, जानते हैं; उसको फॉर्म्युला में रखे तो ऐसा-ऐसा हो जाता है। तो हमने यहां पर कांडक के भेद देखे। हां, देखो, यह १४७ नंबर का सूत्र भी देखा है। तो आबाधाकांडक किसको कहते हैं ? कि स्थिति के जितने भेदों में एक ही प्रमाणवाली आबाधा रहती है, उतनी की उतनी आबाधा रहती है। क्या कहा ? स्थिति के जितने भेदों में, यहां हमने चार भेदों में देखा। तो स्थिति के जितने भेदों में आबाधा का प्रमाण वही का वही रहता है उतने भेदों का जो प्रमाण है उस प्रमाण को क्या कहेंगे ?

आबाधाकांडक। यह तो हमने अभी टेबल में भी देख लिया है। तो अभी हम और आगे बढ़ेंगे। यह आबाधा के भेद हमने देखे, स्थिति के भेद देखे, आबाधाकांडक भी देख लिया है और यह तो कांडक का प्रमाण तो सब जगह उतना ही रहेगा, हां, क्योंकि उसका प्रपोर्शन तो उसी पद्धति से रहेगा। हमने जघन्य स्थिति भी देख ली है। अब हम आगे अपना विषय बढ़ाते हैं।

स्थिति के भेदों की बात और चर्चा तो हो गयी है। अभी थोड़ा अनुभागबंध देखने जा रहे हैं। अनुभाग किसको कहते हैं ? *श्रोता: फल देने की शक्ति।* कर्मों की जो फल देने की शक्ति है। *श्रोता: स्थिति।* स्थिति नहीं कहना। फल देने की शक्ति, फलदान की शक्ति। यह कभी निश्चित होता है ? जिस समय बंध हो रहा है। यह कौन निश्चित करता है कि यह कर्म कितना फल देगा ? *श्रोता: कषायों से।* क्योंकि यह सहजरूप से कर्मों की अवस्था बन जाती है। जहां उत्कृष्ट संक्लेश होते हैं कहो या तीव्र कषाय होते हैं, वहां जो अशुभकर्म हैं, उनमें तीव्र अनुभाग पड़ता है; जहां अत्यंत मंद कषाय है जिसको हम विशुद्धि कहते हैं तो विशुद्धि के काल में तीव्र अनुभाग किसमें बंधेगा ? *श्रोता: प्रशस्त कर्मों में।* प्रशस्त कर्मों में, शुभ कर्मों में जिसको हम पुण्य प्रकृतियां कहेंगे। अभी स्थिति में तो जिसको कहेंगे एक समान रूल था। क्या कहा ? स्थिति में रूल एक ही था। क्या रूल था कि पुण्य हो या पाप हो, जहां ज्यादा संक्लेश परिणाम हैं, वहां स्थिति अधिक बंधती है। जहां मंद परिणाम हैं, विशुद्धि है, वहां स्थिति कम बंधती है। इसके लिये एक ही अपवाद बताया था तीन आयु का। तीन आयु में उलटा प्रपोर्शन है। बाकी सभी, ये तीन आयु के अलावा अन्य जितनी सारी प्रकृतियां हैं उनमें हमने क्या देखा था ? स्थिति की बात देखी। जहां संक्लेश ज्यादा है वहां स्थिति अधिक और जहां विशुद्धि अधिक है या संक्लेश कम है वहां स्थिति कम। पुण्य प्रकृतियों में भी यही रूल देखा था हमने, तीर्थंकर प्रकृति में भी देखा था यही रूल है कि जहां संक्लेश परिणाम ज्यादा है, वहां स्थिति भी अधिक बंधेगी।

आप कहेंगे तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले को संक्लेश कैसे हो सकता है ? हो सकता है कि नहीं हो सकता ? हो सकता है। चौथे गुणस्थानवाले को तो छहों लेश्या हो सकती हैं क्योंकि एक लेश्या में अंतर्मुहूर्त रहता है और उसमें चौथे गुणस्थान तक तो कृष्ण लेश्या भी पायी जाती है। मनुष्यों में भी, नारकियों में भी पायी जायेगी। वहां

सातवें नरक में तो एक कृष्ण लेश्या ही होती है, उसकी बात नहीं है। मनुष्यों में भी पलट-पलटकर लेश्या जो बदलती है उसमें भी पॉसिबल है। हमने तीर्थंकर प्रकृति का भी उत्कृष्टबंध, अनुभाग की बात नहीं है स्थिति की बात चल रही है, तो वह कहां बंधती है ? कब बंधती है ? किस जीव के बंधती है ? बंधती तो चौथे गुणस्थानवाले को। परंतु अभी चौथेवाला जो नरक के सन्मुख है, नरक जाने के लिये अभी उसके जो परिणाम हैं संक्लेशयुक्त परिणाम; क्योंकि मरण आया है अभी और दूसरे तीसरे नरक में जानेवाला मिथ्यात्व के सन्मुख है तो वह संक्लेश परिणामी है, उसके वहां उत्कृष्ट स्थितिबंध होगा। उत्कृष्ट होगा तो कितना होगा ? *श्रोता: अंत:कोड़ाकोड़ी।* अंत:कोड़ाकोड़ी सागर। हां, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने के बाद किसी भी कर्म का बंध अंत:कोड़ाकोड़ी सागर से ज्यादा नहीं बंधता। आयु की बात यहां नहीं हो रही है; देवायु या मनुष्यायु यथायोग्य बंधेगी, उसकी बात नहीं है। यह बात ख्याल में आयी ?

यह तो अपनी स्थिति की बात चल रही थी। अब इसके आगे अनुभाग की जहां-जहां बात आयेगी वहां अनुभाग में; पुण्य प्रकृतियों में और पाप प्रकृतियों में अलग-अलग अनुभाग पड़ेगा। जहां संक्लेश ज्यादा है, वहां पाप प्रकृतियों में अनुभाग अधिक पड़ेगा। जहां विशुद्धि मॅक्झिमम है, ज्यादा में ज्यादा है, वहां पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग ज्यादा बंधेगा। स्थिति की बात हमने अलग देखी थी, स्थिति के लिये पुण्य-पाप को ईक्वल रखा था कि जहां संक्लेश ज्यादा वहां स्थिति ज्यादा, जहां संक्लेश कम वहां स्थिति कम। अनुभाग में हम किसकी बात कर रहे हैं यह सोचना पड़ेगा। पुण्य प्रकृति की बात कर रहे हैं कि पाप प्रकृति की बात कर रहे हैं ? तो पुण्य प्रकृति में विशुद्धि से अनुभाग ज्यादा, विशुद्धि यानी मंद कषाय, शुभभाव और पाप प्रकृतियों में जहां संक्लेश ज्यादा है वहां उसका अनुभाग भी ज्यादा है। *श्रोता: ज्यादा है ?* हां, पाप प्रकृतियों में अनुभाग अधिक पड़ेगा। हां, अभी तो हमने यह अनुभाग की बात शुरू की है, इसकी विशेष चर्चा अभी हम थोड़े समय में करेंगे।

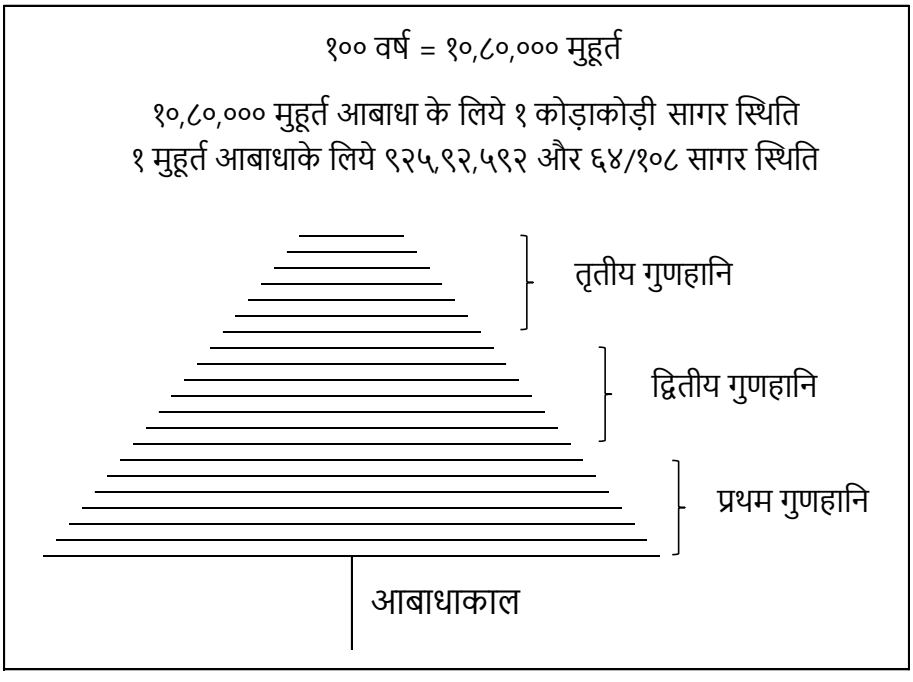
बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२०. निषेक रचना

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है; जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार आदि और उसके आधार से हम यहां कर्मों की कुछ विशेष जानकारी हासिल कर रहे हैं। वैसे तो हमने स्थितिबंध का प्रकरण देखा है। उसमें यह भी बात देखी है जिस समय बंध होता है उस समय से लेकर जितने काल तक कोई भी परमाणु उदय में नहीं आते उस काल को कहते हैं आबाधाकाल। उसके पश्चात् हर समय में कितने ही परमाणु उदय में आते रहते हैं। एकसाथ जो उदय में आते हैं उनको निषेक कहते हैं। निषेक रचना होती है, कहां होती है ? तो आबाधाकाल में नहीं होती है। इसका अर्थ क्या है ? आबाधाप्रमाण काल छोड़कर ऊपर की जितनी स्थिति है, प्रत्येक समयवाले कोई न कोई परमाणु वहां मौजूद हैं। निषेक रचना होती है, यह हम ग्राफ बताते हैं; ऐसी कोई परमाणुओं में रचना नहीं होती। परंतु प्रत्येक परमाणु में कुछ न कुछ स्थिति वहां अवश्य बंधती है तो उसकी बात आलेख द्वारा, चित्र द्वारा यहां हम प्रस्तुत करते हैं। यह बात अपनी हो गयी थी।

यह भी बात देखी थी कि १ कोड़ाकोड़ी सागर के लिये आबाधा का प्रमाण हमने १०० वर्ष देखा था। देखा था न कि ७० कोड़ाकोड़ी सागर के लिये ७००० वर्ष, तो उसका प्रपोर्शन क्या हुआ ? अनुपात क्या हुआ ? एक कोड़ाकोड़ी सागर के लिये १०० वर्ष और फिर हमने ऐसा भी देखा था जहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण बंध होता है वहां आबाधा का प्रमाण अंतर्मुहूर्त होता है। तो यह प्रमाण कैसे निकला ? किसीके ऐसा प्रश्न होना संभव है इसलिये हम देखते हैं। १०० वर्ष के मुहूर्त कितने होते हैं उसको निकालेंगे। १०० वर्ष में मुहूर्त कितने होते हैं ? वहां लिखे हैं इसलिये नहीं चलेगा। एक दिन में कितने होते हैं मुहूर्त यह तो मालूम है न ? *श्रोता: तीस मुहूर्त।* कितने ? तीस मुहूर्त का एक दिन है। तो एक दिन में तीस मुहूर्त होते हैं तो तीन सौ साठ दिन में १०८०० मुहूर्त होते हैं। तीन सौ साठ दिन में यानी एक साल में और ऐसे १०० साल में कितने होंगे ? उसके ऊपर और दो झिरो लगा लो तो दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त हो जायेंगे। यह तो १०० साल में इतने मुहूर्त हो जाते हैं। तो हम ऐसे हिसाब लगायेंगे- १०८०००० मुहूर्तों की जहां आबाधा पायी जाती है, वहां स्थिति कितनी है ? तो १

कोड़ाकोड़ी सागर। जो यहां त्रैराशिक लिखा है। इसको कहते हैं त्रैराशिक, स्कूल में हमने सीखा है न। यहां तो १०० वर्ष में कितने मुहूर्त हैं उसकी बात लिखी है। यहां लिखते हैं १०८०००० मुहूर्त जहां आबाधा पायी जाती है वहां कितनी स्थिति है ? *श्रोता:* १ *कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति।* १ कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति है। तो जहां एक मुहूर्तप्रमाण आबाधा होगी, अड़तालीस मिनटवाली तो वहां कितना बंध होगा ? कितने सागर की स्थिति होगी ? तो यहां क्या लिखा है ? ९२५९२५९२ और ६४ बटे १०८। यहां अपूर्णांक में आगे की संख्या है, इतने सागर की स्थिति होगी।



अपनी भाषा में करीबन सवा नौ करोड़ तो समझो न ? नौ करोड़ पच्चीस लाख हो गये। आगे की संख्या वह बानवे हजार वगैरह है तो पच्चीस के बदले छब्बीस लाख कर दो। नौ करोड़ छब्बीस लाख के आसपास बात है, एक मुहूर्त के लिये इतनी स्थिति। अब उससे कम स्थिति जहां होगी वहां तो आबाधा अंतर्मुहूर्त होगी। यह प्रमाण कैसे निकला इसकी बात यहां चल रही है। जहां अंतर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा कहते हैं वहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति बंधती है। वहां आबाधा का प्रमाण कितना है ? अंतर्मुहूर्त। हमने एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों की जो नीचेवाली

सारी स्थितियां हैं उनमें सबमें अंतर्मुहूर्तप्रमाण ही आबाधा देखी थी और वह यथायोग्य प्रमाण में होती है।

एक बात आती है उदीरणा की अपेक्षा आबाधा। हमने देखा है कि बंध के समय उदय आने योग्य निषेकों की क्या स्थिति होती है; बंधने के समय जो स्थितिबंध हुआ है, वहां निषेक रचना कैसी हुयी है। देखो, यहां इस समय बंध हुआ है। उस बंध के समय से लेकर इतने काल तक यहां कोई परमाणु उदय में नहीं आयेंगे। कोई निषेक उदयरूप नहीं आयेंगे। इसलिये इतने काल को कहते हैं आबाधाकाल। फिर इसके ऊपर यह नीचे का जो पहला निषेक है वह पहले समय यानी आबाधाकाल होने के पश्चात् प्रथम समय में यह निषेक उदय में आयेगा। दूसरे समय में यह निषेक, तीसरे समय में, चौथे, पांचवे, छठे, इसतरह से यह लगातार जितनी स्थिति बंधी है उसके हर एक समय में उस विशिष्ट समय में बंधे हुये समयप्रबद्ध में से एक-एक निषेक उदय में आता रहेगा। सात कर्मों में ऐसी ही बात बनती है, आयुकर्म में ऐसी बात नहीं बनती। क्यों ? यहां आयु का बंध हुआ है तो बंधी हुयी आयु का उदय कब शुरू होगा ? जो हमारी वर्तमान की भुज्यमान आयु है यानी हमारा यहां मरण होगा तो बंधी हुयी आयु का उदय चालू होगा। आयु जितनी बंधती है ३३ सागर हो या १०० साल हो या जितनी भी बंधती है तो उसका आबाधाकाल पूर्वभव में चला जाता है। आयु की जितनी स्थिति बंधती है, उतना ही उसका उदयकाल होता है।

हम आये हैं मनुष्यभव में, मान लेते हैं १०० साल की आयु लेकर आये हैं। कभी बंधी थी ? *श्रोता: पिछले भव में।* पूर्वभव में, पूर्वभव के त्रिभाग में बंधी होगी। देव में से आया होगा तो अंतिम छह महीनों में बंधी होगी यथायोग्य काल में। उसकी आबाधा बीत चुकी है और इस मनुष्य आयु का पहला निषेक कब उदय में आया ? हमारे इस भव के पहले समय में। यानी हम विग्रहगति में थे तब से शुरू हुआ। तो पहला समय, दूसरा समय इसतरह १०० साल के कितने समय हैं उतने निषेक हम बांधकर आये हैं; आयु के इतने निषेक बांधकर आये हैं और हर समय एक-एक निषेक खिरेगा। इसमें बढ़ेगा कि नहीं कुछ ? *श्रोता: बढ़ेगा।* बढ़ेगा ? नहीं बढ़ेगा। यह हम पूर्व भव में बांधकर आये हैं; इसमें कुछ बढ़ोतरी नहीं होगी, न कुछ कटौती होगी। कदलीघात की बात हम छोड़ देते हैं अभी यहां। आयु के जितने निषेक हैं - बंधे हुये पड़े हैं - हर समय में एक-

एक निषेक उदय में आ रहा है और हमारी आयु चल रही है और जितने निषेक बांधकर आये हैं वे तो कायम हैं। वे कहीं किसीकी मेहरबानी से बढ़ेंगे नहीं और ना ही कोई डॉक्टर उसमें बढ़ोतरी कर सकता है ना कोई कटौती कर सकता है। जितने निषेक हैं वे क्रम से उदय में आयेंगे। आयु की बात चल रही है। जीव यहां पर है और उसके इतने निषेक बाकी हैं। कौन मारेगा उसको ? कोई मार ही नहीं सकता। अभी यहां पर है जीव, उसका अंत समय आया है, उसको कौन बचायेगा ? इसलिये कुंदकुंद आचार्य ने भी लिखा है, कोई किसी को आयु दे नहीं सकता और कोई किसी की आयु ले नहीं सकता, मार नहीं सकता। फिर भी हमें दूसरा बचाता है, मारता है या हम दूसरे को बचाते हैं, मारते हैं- यह कितनी मिथ्या मान्यता है। कितनी जीव की कर्ताबुद्धि है।

इतना हम जान लेते हैं तो करणानुयोग के अभ्यास से क्या फायदा है यह पता चलता है न कि अरे कोई मार नहीं सकता और कोई आयु बढ़ा नहीं सकता है। अभी मैं बीमार हो जाऊंगा तो कहां जाना ? पैसे होते तो अमेरिका चला जाता। आजकल तो अमेरिकावाले यहां आ रहे हैं, यहां अच्छी ट्रीटमेंट मिलती है हिन्दुस्तान में। हमारी यह जो मान्यता है हाय मैं मर जाऊंगा, मेरा अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। यह शरीर सारा रोगपीड़ित हुआ है तो अभी कहां-कहां, क्या-क्या ट्रान्स्प्लांट करूं तो मैं बच जाऊंगा। यहां वस्त्र को ठिगड़े लगाकर कोई आते हैं ? क्या कहते हैं आप ? *श्रोता: ठिगड़ा।* ठिगड़ा, ठिगड़ा, पसंद करोगे ? यह बाजूवाला क्या कहेगा हमको ? साड़ी यहां फ़टी है और हमने सिलाकर लायी। कैसा दिखेगा ? और इस शरीर को कहां-कहां सिला-सिलाकर रखते हैं ? यह जॉइंट बदलो, हार्ट बदलो, किडनी बदलो और लिव्हर बदलो। नहीं-नहीं खून तो डालो उसके अंदर। क्यों ? वह ठिगड़ावाला वह शरीर चले। *श्रोता: कपड़ा नहीं चलेगा।* कपड़ा नहीं चलेगा। उसके कारण हम जिन्दा रहते हैं यह मान्यता है, अभिप्राय की बात चल रही है यहां। ये क्यों ? हम अपना कारावास अच्छा रखना चाहते हैं न। जब तक आयु है तब तक इस कारागृह से हमारी मुक्ति नहीं हो सकती है। हम मुक्ति तो चाहते हैं; कैसी मुक्ति ? आयु चलनी चाहिये और हम मोक्ष चाहते हैं यानी हम ऐसा मोक्ष चाहते हैं जहां हमारी आयु चलती रहे। अभिप्राय में क्या है हमारे ?

देखो यहां आबाधाकाल के बाद एक-एक समय में एक-एक निषेक उदय में आयेगा। आप कहेंगे यह ऐसा तिरछा यानी त्रिकोण क्यों बनाया है ? यह नीचे का

निषेक बड़ा दिखाया; ऊपर का छोटा, छोटा, छोटा, छोटा और लास्ट में एकदम छोटा निषेक बताया है। यह जो पहला निषेक है उसमें परमाणु की संख्या बहुत ज्यादा है। यह जो आड़ी लाइन दिखायी है वह क्या है ? एक साथ, एक समय में उदय आनेवाले परमाणु हैं। उनकी मॅक्झिमम संख्या पहले निषेक में होती है जो निषेक पहले समय में, आबाधाकाल के बाद पहले समय में जो खिरेगा। इसको निषेक कहते हैं न ? तो उसमें सबसे अधिक से अधिक परमाणु हैं; उसके ऊपर जो दूसरा निषेक है उसमें परमाणुओं की संख्या थोड़ी कम है; तीसरे में और कम है; चौथे में और कम है; पांचवें में और कम है। जिस समय बंध हुआ उसी समय इसी पद्धति से ऐसी रचना हो जाती है। हर एक निषेक में कितने परमाणु हैं उसका भी गणित है। अभी कोई भाई पूछ रहे थे कि यहां गणित तो कुछ सिखा ही नहीं रहे, हमने बोला आप सबकी इतनी तैयारी हो तो हम जरूर सिखायेंगे। परंतु फिर यहां दूसरे लेक्चर में कोई नहीं बैठेगा। हम गणित को थोड़ा गौण करके आगे बढ़ रहे हैं। गणित जानने की इच्छा है तो और अलग से पढ़ायेंगे। हर एक के सामने पुस्तक होनी चाहिये। गणित कोई डिफिकल्ट चीज़ नहीं है, बहुत आसान है। उसमें टू प्लस टू फोर होता है। दूसरा कोई उत्तर आयेगा ही नहीं !

यहां कहते हैं पहले निषेक में परमाणुओं की संख्या ज्यादा है, दूसरे में थोड़ी कम है, तीसरे में और थोड़ी कम है, चौथे में और कम है। कहीं तो जाकर आधी हो जायेगी कि नहीं हो जायेगी ? कम होते-होते कहीं पर आधी हो जाती है। मान लेते हैं पहले निषेक में ५१२ परमाणु हैं, थोड़े कम हुये, थोड़े कम हुये, थोड़े कम हुये तो २५६ जहां हो जाते हैं वहां कहेंगे आधे हो गये। आधे हो गये उसको हम कहेंगे गुणहानि। गुणहानि का अर्थ होता है गुणित प्रमाण में हानि। दो गुणा हानि यानी जो ५१२ परमाणु थे; वे कम होते होते २५६ हो गये तो कहेंगे एक बार गुणहानि हुयी। फिर २५६ में से कम होते, होते १२८ हो गये तो हम कहेंगे दूसरी बार यानी यह दूसरी गुणहानि हुयी। फिर वहां से और कम होते होते १२८ से ६४ हो गये तो तीसरी गुणहानि हुयी; फिर ३२ हुये; फिर १६ हुये। इसतरह से घटते चले जाते हैं। उसको कहेंगे पहली गुणहानि, दूसरी गुणहानि, तीसरी, चौथी, पांचवीं इसतरह जितनी भी होती हो।

मान लेते हैं एक गुणहानि का प्रमाण यानी कितने निषेक जाने पर एक गुणहानि होती है ? समझने के लिये मान लेते हैं आठ निषेक। हम ऐसा मानेंगे कि

अड़तालीस समय की स्थिति बंधी है और आठ निषेक चले जाने के बाद परमाणुओं का प्रमाण आधा हो जाता है। एक गुणहानि का प्रमाण कितना हुआ ? आठ समय। तो अड़तालीस में कितनी होगी गुणहानियां ? *श्रीताः छह।* छह होंगी न ? अड़तालीस डिव्हाइडेड बाय आठ, छह हो जायेगी। हम केवल अभी यहां शब्द क्या है उसको बता रहे हैं, उसके डीटेल में नहीं जानेवाले। एक गुणहानि किसको कहते हैं ? निषेक में से परमाणुओं की संख्या कम होते-होते जहां आधे प्रमाण हो जाती है, वहां तक के जो निषेक हैं - कितने निषेक गये ? आठ। तो उसको कहेंगे एक गुणहानि। ऐसे मान लेते हैं अड़तालीस समय की स्थिति है और आठ निषेकों में एक गुणहानि होती है। तो कितनी होंगी टोटल नंबर ऑफ़ गुणहानियां ? छह होंगी। उसको कहेंगे नाना गुणहानि। ये दो शब्द हमने नये सीखे। गुणहानि यानी निषेकों में परमाणुओं की संख्या कम होते-होते जहां आधी हो जाती है वहां तक कितने निषेक गये ? आठ गये हमारी भाषा में। तो हम कहेंगे आठ, यह गुणहानि का आयाम यानी लंबाई है, गुणहानि का प्रमाण है और ऐसी पूरी जो स्थिति बंधी है उसमें ऐसी गुणहानि कितनी बार हुयी ? अगर हम मानते हैं अड़तालीस समय की स्थिति बांधी थी और आठ समय में एक गुणहानि होती है तो हमारी नाना गुणहानि हो गयी छह। नाना गुणहानि का अर्थ होता है टोटल गुणहानियां - टोटल नंबर ऑफ़ गुणहानियां। इसके और डीटेल गणित में उलझना नहीं है। शास्त्र में पढ़ते समय कौनसे शब्द आनेवाले हैं उसको हम यहां देख रहे हैं।

जिस समय बंध हुआ है उसी समय यह निषेक रचना होती है। यहां नीचे आबाधाकाल है और ऊपर यह सारी निषेक रचना हुयी है। हमने आबाधा देखी है वह उदय की अपेक्षा आबाधा कही, जिस समय बंध हुआ उस समय ऐसी पोझिशन है। जहां बंध होता है उसके एक आवली काल बीत जाने के बाद क्या होता है ? इन सारे निषेकों में से परमाणु अपकर्षण होकर नीचे आना शुरू हो जाते हैं। थोड़े-थोड़े परमाणु आते हैं। पूरे निषेक तो अनंत परमाणुओं के बने हैं। उनमें से थोड़े-थोड़े परमाणु नीचे आते हैं और यहां सत्ता में तो निषेक ऑलरेडि हैं न, उदय तो चल रहा है; सत्तावाले निषेक पड़े हैं तो उनके साथ आकर नीचे जुड़ जाते हैं। या यहां पर इसकी और नीचे निषेक रचना हो जाती है। उसको हम क्या कहेंगे ? यह उसका अपकर्षण हुआ। अपकर्षण होकर जब उदय में आने लगेंगे; क्योंकि सत्ता में तो थे, यह तो एक समय में

बंधे हुये की बात है। सत्ता में तो ऑलरेडि पहले बंधे हुये पड़े थे, उसका उदय भी चल रहा था। तो ये नीचे आकर, वह उदय में आनेवालों के साथ जुड़ जाते हैं। हम लाइन छोड़कर आगे बढ़ते हैं वैसा हमने उदाहरण देखा था। वे उदयावली में आकर मिल जाते हैं तो उसको कहेंगे उदीरणा हुयी। उदीरणा होकर उदय में आते हैं।

इसके बंधने के बाद एक आवली पूरी हो गयी। यह आवली की कंडिशन क्यों डालते हैं ? क्योंकि बंधने के बाद एक आवली तक इन निषेकों में, उनके परमाणुओं में कुछ परिवर्तन नहीं होगा। ना उनका अपकर्षण होगा, ना उत्कर्षण होगा, ना अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण होगा- कुछ नहीं होगा तो इसको कहेंगे बंधावली या अचलावली। अचल यानी उसमें कोई उसको डिगा नहीं सकता है वहां पर। बंध होने के बाद एक आवली तक उस समयप्रबद्ध के सत्ता में निषेक जिस स्थिति में जो कोई परमाणु पड़े हैं, उसीरूप से रहते हैं। एक आवली के बाद उसका अपकर्षण होकर उदय भी शुरू होता है तब उसको क्या कहेंगे हम ? उदीरणा। अपकर्षण होकर उदय के साथ उदयवाले परमाणु के साथ उदय आना इसको कहेंगे उदीरणा होना। उदीरणा की अपेक्षा आबाधा कितनी हो सकती है ? *श्रोता: एक आवली।* हां, एक आवली। एक आवली के बाद वह उदीरणा होकर उदय शुरू हो सकता है इसलिये उसको कहते हैं उदीरणा की अपेक्षा आबाधा का काल जो एक आवली प्रमाण है और इसीलिये इसको अचलावली भी कहते हैं। आगे बढ़ते हैं, अनुभागबंध का अपना प्रकरण शुरू हुआ था।

श्रोता: अपकर्षण कहा, उत्कर्षण भी होता है न ? आपका प्रश्न है, इसको आपने अपकर्षण कहा, उत्कर्षण भी होता है न ? उदय की अपेक्षा आबाधा की बात करनी थी न इसलिये हमने उत्कर्षण की बात नहीं उठायी, उत्कर्षण का पूरा प्रोसेस आगे देखेंगे। फिर भी, उत्कर्षण होता है इसका अर्थ क्या होता है ? परमाणुओं की जो स्थिति बंधी है जो सत्ता में पड़े हैं, वहां से लेकर नया जो बंध हो रहा है, उन नये बंधनेवाले परमाणुओं के साथ ये परमाणु ऊपर चले जाते हैं। अपनी स्थिति अभी नीचे है, अब अपनी स्थिति छोड़कर; अभी मान लेते हैं इतना बंध हुआ है। बंध हुआ एक आवली काल बीत गया है क्योंकि तब तक इसमें कुछ परिवर्तन नहीं हो सकता। उसके बाद इसके परमाणु नीचे आ गये। कहां तक नीचे आये ? उदय के समय तक नीचे आये। अभी यहां उदयावली के ऊपर के कुछ परमाणु उस समय जो नया बंध हो रहा है, उसके साथ

ऊपर चले जाते हैं। यानी पहले नीचे आये थे अभी फिर वे या अन्य ऊपर चले गये। परंतु उसके लिये एक आवश्यक कंडिशन है। कौनसी ? बंधनेवाले के साथ उत्कर्षण होता है। जहां-जहां अपकर्षण है यानी स्थिति घटती है, वहां नये बंध की कोई अपेक्षा नहीं है। सामान्य से मिथ्यादृष्टि हो, सम्यग्दृष्टि हो, कर्मों में तो अपकर्षण यथायोग्य प्रपोर्शन में चलता रहता है। परंतु जहां-जहां उत्कर्षण कहेंगे हम, वहां-वहां उस कर्म का बंध होना चाहिये। जिसका बंध नहीं होता उस समय उसका उत्कर्षण भी नहीं होगा। हां, तो बंधनेवाले कर्म के साथ उसका उत्कर्षण होता है। तो मिथ्यात्व में उत्कर्षण होगा। किस जीव के होगा ? मिथ्यादृष्टि के होगा और वह भी कब होगा ? जब वह नया बंध कर रहा है। वह मिथ्यादृष्टि तो बंध करेगा ही करेगा। परंतु इनका उत्कर्षण कब होगा ? इसकी ज्यादा स्थिति बंधेगी तो हम उत्कर्षण कहेंगे। इससे कम स्थिति बंधेगी तो उत्कर्षण नहीं होगा। उसमें बहुत सारे बिंदु हैं कि उसमें जो कंडिशन्स बनती हैं। तो जब हम अपकर्षण-उत्कर्षण का विषय लेंगे विस्तार से तब उसकी चर्चा अवश्य करेंगे। अभी तो बंधने के समय स्थिति में क्या-क्या पोझिशन है उसकी चर्चा यहां हो रही थी।

श्रोता: यह जो अपकर्षण होता है उदय के साथ अपकर्षण होता है ? उदय के साथ अपकर्षण नहीं हो रहा है। जो उदय में आ रहे हैं, उदय होनेवाले निषेक में आकर मिल रहे हैं उसको उदीरणा कहते हैं। परंतु अपकर्षण तो सर्वत्र होगा, उदय समय से ऊपर तक; यह अपकर्षण से उदीरणा हो रही है। उदीरणा प्रोसेस है वह अपकर्षण का ही नाम है। अपकर्षण होकर, अपकर्षण होने के बाद जो वर्तमान समय से लेकर एक आवली काल तक जिसको उदयावली कहते हैं उसमें यदि आ मिलते हैं उसको कहेंगे उदीरणा। परंतु कुछ परमाणु ऊपर से नीचे आकर उदयावली में नहीं मिल गये, उसके ऊपर के निषेकों में मिल गये तो उसको अपकर्षण कहेंगे, उसको उदीरणा नहीं कहेंगे। मात्र नीचे उदयावली में यानी उदय में आनेवाले समय से लेकर एक आवली काल तक के जो निषेक उनमें नीचे आकर मिलते हैं उसीको उदीरणा कहते हैं। जो उदयावली के ऊपर के निषेकों में जाते हैं उसको सामान्य अपकर्षण कहेंगे। वह विषय यहां नहीं है, इसलिये उसकी चर्चा छोड़कर हम आगे बढ़ेंगे। हमने अनुभाग की बात चालू की थी। अनुभागबंध की बात गाथा १६३ से शुरू होती है, तेईस

गाथाओं के द्वारा अनुभागबंध का वर्णन किया है। उसमें से कुछ मुख्य बिंदुओं को लेते हुये हम आगे बढ़ेंगे। गाथा है -

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण।
विवरिदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥ १६३॥

ये शुभ प्रकृतियां हैं अब शुभ प्रकृतियां कहां-कहां हैं ? हमने आठ कर्म देखे थे। मेरा प्रश्न है ४७ घातिकर्म हैं उसमें शुभ प्रकृतियां कितनी हैं ? *श्रोता: एक भी नहीं।* एक भी नहीं। सभी पापरूप ही हैं। पुण्य प्रकृतियां यानी शुभ प्रकृतियां कहां-कहां पड़ी हैं ? तो कहते हैं जो अघातिकर्म हैं उनमें जो चार कर्म हैं; कौनसे ? वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। उनमें प्रत्येक में कुछ प्रकृतियां शुभ हैं, कुछ अशुभ हैं। यहां कहते हैं शुभ प्रकृतियां जिसको कहेंगे सातावेदनीयादि; आदि लिखा न, सातावेदनीयादि यानी सातावेदनीय, फिर शुभआयु जो तीन शुभआयु हैं, फिर शुभ नामकर्म, नामकर्म की जो कोई शुभ प्रकृतियां हैं और फिर उच्चगोत्र। इन सबको क्या कहेंगे ? शुभ प्रकृतियां-प्रशस्त प्रकृतियां। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियां जिनका विशुद्ध परिणामों से तीव्र यानी उत्कृष्ट अनुभागबंध होता है। क्या कहा ? शुभ प्रकृतियां जो बंधती हैं, पुण्य प्रकृतियां बंधती हैं तो पुण्य प्रकृतियों में अधिक फल देने की शक्ति को कहेंगे उत्कृष्ट अनुभाग। क्या कहा ? पुण्य प्रकृतियों में अधिक फलदान शक्ति जो है यानी उसका हमें बहुत अच्छा फल मिलेगा ऐसा जो हम मानते हैं।

पुण्य प्रकृतियां अच्छी हैं न तो उसका जो अधिक से अधिक फल मिलता है उसको कहेंगे पुण्य प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग। वह क्यों बंधता है ? जहां विशुद्ध परिणाम अधिक होंगे वहां पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग भी अधिक पड़ेगा। देखो यह कहते हैं शुभभाव से, तो क्या जैनियों ने ठेका लिया है शुभभावों का ? अरे ! शुभभाव तो निगोद जीवों को भी होते हैं। उसके बिना थोड़े ही वे मनुष्यायु और अन्य सारे बंध करके आते हैं यहां पर। शुभाशुभ भाव सभी जीवों को होते रहते हैं परंतु उन शुभभावों को जो हम कहेंगे न अलग-अलग प्रकार के शुभभाव। अभी एकेन्द्रियों के शुभभाव तो हम बता भी नहीं सकते। यहां हमारे-आपके शुभभावों की चर्चा करते हैं, ॲक्चुअलि परिणाम अलग हैं और बाह्य क्रिया अलग है। हम चर्चा बाह्य क्रियायों की ही करते रहते हैं परंतु उस क्रिया के पीछे वैसे भाव होना जरूरी है तब उसको शुभभाव कहेंगे।

केवल यात्रा करके आया, हमने शुभभाव किया कि नहीं किया ? *श्रोता: जरूरी नहीं।* जरूरी नहीं, क्यों ? क्योंकि हम बचपन में जाते थे तो कौन कितने घंटों में ऊपर चढ़कर नीचे दौड़कर आता था उसको देखते थे। *श्रोता: कहां जाते थे ?* हम शिखरजी जाते थे। कौन दौड़ लगाकर कितने छह घंटों में आया कि नौ घंटों में आया उसकी चर्चा करते थे। हमने क्या किया वहां जाकर ? दौड़ लगायी और क्या ! पर्वत चढ़कर आये हैं। तो क्या पर्वत चढ़ने को यात्रा कहते हैं ? वहां से जो जीव मोक्ष गये हैं उस क्षेत्र को देखकर; ऐसा नियम है जहां से मोक्ष होता है, वे जीव आकाश की सीधी श्रेणी में आकाश के प्रदेशों में ऊपर सिद्धालय में विराजमान हैं। वहां जाते हैं तो हमें उनका स्मरण होता है। उनका स्मरण होता है तो हमें भी उनसे प्रेरणा मिलती है कि हम भी इसीतरह से पुरुषार्थ करके संसार का अभाव करके मुक्त हो जायें। परंतु वहां जाते हैं तो ऐसा बोलते भी हैं कि आपको यही जगह मिली थी मोक्ष जाने के लिये ? हमें कितनी परेशानी हो रही है। अरे ! किसने बोला है परेशानी करने के लिये ? घर में बैठ कर भी भगवान ने किसतरह से कर्मों का अभाव किया है, वैसे जानकर अपने आत्मा का अनुभव कर लेते तो आपका काम हो जाता। तो क्या यात्रा नहीं करना ? जरूर करो। किसने कहा नहीं करने को ? लेकिन वह यात्रा करते हैं तो किसलिये कर रहे हैं ? हमने इतने भगवान देखे, इतनी हसरी मूर्ति थी। हसमुख-हसमुख गुजराती भाषा में हसमुख, मराठी में हसरी। तो कषाय रखकर वे भगवान मोक्ष गये हैं ? यह हास्य-कषाय है कि नहीं ? हास्य नोकषाय है और वह कषाय उनका अभी बाकी है ?

अरे ! क्या पत्थर था सफ़ेद। *श्रोता: बाहुबली का।* बाहुबली का। एक अखंड पत्थर देखा हमने, अरे पत्थर को देखा कि वह मूर्तिमान को देखा ? हम तो बाहरी चीज़ें देखते रहते हैं। यात्रा में जाते हैं तो कोई कहता है अरे कितनी भीड़ थी इतना बड़ा जुलूस वहां निकला था, मुझे गोमटेश्वर की याद है। जब महामस्तकाभिषेक हुआ था तब मैं तीसरी स्टॅंडर्ड में थी। कौनसा साल था ? सन १९५३ में हुआ था। वहां सारे दुकान-स्टॉल्स बाहर लगते हैं न, मेला सब लगता है। तो क्या-क्या लगा था ? क्या-क्या हम कहां रहे थे ? कैसे वह अभिषेक हुआ था सब याद है। हम किसमें चले जाते हैं ? बाह्य चीजों में। यहां जो बात हो रही है, कहां से क्या विषय निकल गया ? हम जो परिणामों की बात कर रहे हैं तो मात्र क्रिया परिणाम नहीं है। परंतु हमारे वैसे शुभभाव

हैं तो वहां शुभ प्रकृतियों का बंध भी होता है। जहां परिणाम विशुद्ध है वहां साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग का बंध होता है।

जब हम मंदिर में भगवान की प्रतिमा को देखते हैं, देखकर, उनके भावों को देखकर हम अंतर्मुख होकर अपने भावों के संबंध में विचार चलेगा; उनकी सर्वज्ञता, उनकी वीतरागता के बारे में हमें विचार आ जायेगा, उसका स्वरूप हमारे ख्याल में आ जायेगा तो ही हमने दर्शन किया। तभी हमारी विशुद्धि होगी। मोक्षमार्गप्रकाशक में शुरुआत में ही लिखा है, वहां अरिहंत आदि को देखने मात्र से विशुद्धि कही है। परंतु किसके ? मात्र देखना नहीं है, वह देखकर उनके स्वरूप का चिंतवन होना चाहिये। हमारे घरों में हमारे माता के, पिता के, किसी दादा के, दादी के, नानी के, फोटो लगे रहते हैं। हमें उनका स्मरण है वे कैसे थे तो हम उनके प्रति हाथ जोड़ते हैं, हमें आदरबुद्धि हो जाती है। हमारे कोई मित्र या अन्य कोई पहचानवाले आते हैं, हमने हाथ जोड़े तो उन्होंने भी हाथ जोड़े। तो उन्हें क्या पता वे कैसे थे ? हम इमली का नाम लेते हैं तो क्या होता है ? *श्रोता: मुंह में पानी आता है।* मुंह में पानी आता है। क्यों ? उसका भावभासन हो गया इसलिये। ऐसे ही क्या वीतराग की मूर्ति देखकर हमें वह वीतरागता के अंदर भाव होते हैं कि नहीं होते ? यह देखना है। *श्रोता: भावभासन।* भावभासन होना चाहिये। यह वीतरागता और सर्वज्ञता क्या है ? उनका स्वरूप कैसा है ? भगवान की मूर्ति क्यों विराजमान करते हैं ? साक्षात् भगवान जैसी हमने उस मूर्ति में स्थापना कर दी है न ? जैसे साक्षात् भगवान समवशरण में विराजमान हैं वैसे स्थापनानिक्षेप से उनकी यहां स्थापना करके हम वैसा ही उनके नमस्कारादि करते हैं, उनका स्मरण करते हैं। उनको देखकर उनके गुणों की हमें आदरबुद्धि हो जाती है। उनके गुणों का स्मरण करते हैं तब जाकर वह शुभभाव होंगे यानी शुभभाव भी अलग-अलग ग्रेड के, अलग-अलग क्वॉलिटि के होंगे।

स्कूल खोलना शुभभाव है कि अशुभभाव है ? स्कूल खोलना है, हॉस्पिटल खोलना है, किसीको मदद करना है, चलते-चलते रास्ते में किसीको कोई तकलीफ हुयी तो उसको हाथ देकर उठाना भी शुभभाव है। यह क्रिया में बता रहे हैं, फिर भी यह भावों की बात उसमें लेना। अपने परिणामों की बात समझ लेना। ये शुभभाव अलग-अलग क्वॉलिटि के होंगे। वहां जितनी विशुद्धि होगी उनके कारण जो बंध होता

है, उनके कारण जो पुण्य प्रकृतियां बंधती हैं उन पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग भी अलग-अलग पड़ेगा। हम शुभभाव किसको मानते हैं ? बाह्य क्रिया को ही मान लेते हैं। अब ठीक है बाह्य क्रिया के साथ उसमें अपने परिणाम लगे हों तो वे परिणाम भी विशुद्ध होंगे। सर्वोत्कृष्ट शुभभाव किसको कहा है ? शुभभाव की बात कर रहे हैं। *श्रोता: आत्मा संबंधी।* आत्मा संबंधी जो चिंतन-विकल्प है, विकल्पात्मक भूमिका है यह शुभभाव है। आत्मा का अनुभव वह शुद्धभाव है और आत्मा संबंधी यदि विकल्प, अनुभव के पहले विकल्प चल रहे हैं या अनुभव के बाद भी जो विकल्प चल रहे हैं या अन्यथा भी जो कुछ विषयों का हमारा अभ्यास चलता है। आत्मा के लक्ष से जो स्वाध्याय, चिंतन, मनन वगैरह चलता है वे तो विशुद्ध परिणाम हैं और उस काल में जो शुभ प्रकृतियां बंधती हैं, बंधती हैं बंध से रहित नहीं हो रहे हैं। मात्र स्वाध्याय करने से और मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, ऐसा चिंतन करने से बंध से छुटकारा नहीं है, वहां तो बंध हो रहा है। परंतु कौनसा ? पुण्य बंध हो रहा है, उसमें भी अनुभाग अधिक पड़ रहा है और उससे भी संसार ही बढ़ रहा है। फिर भी अशुभ से बचने के लिये और जब तक अंतरंग में स्थिरता नहीं होती तो अपनी कमजोरी के वश ऐसे शुभभाव भी आते हैं।

यहां क्या बात हो रही है ? यह अनुभाग कैसे-कैसे पड़ता है ? जो शुभ प्रकृतियां हैं; शुभ प्रकृतियों की लिस्ट हमने देखी थी पहले। पुण्य प्रकृतियों का हिसाब तो हमें अघाति में ही देखना पड़ेगा क्योंकि घाति तो सारी पापरूप ही हैं। पुण्यरूप कितनी प्रकृतियां हैं ? पंचलब्धि पुस्तक में ३८ नंबर का पृष्ठ है। अघातिकर्मों में प्रशस्त प्रकृतियां कौनसी हैं ? पहला ही नाम है सातावेदनीय। इसलिये अभी जो हमने वाक्य पढ़ा था उसमें सातावेदनीय आदि कहा था। आदि में और कौन-कौन है ? शुभआयु तीन - देवायु, मनुष्यायु और तिर्यंचायु; शुभनाम की ६३ हैं परंतु ब्रॅकेट में ३७ लिखी हैं, क्यों ? हमने देखा था शरीर, पांचों ही शरीर नामकर्म शुभकर्म हैं, प्रशस्त प्रकृतियां हैं, बंधन भी और संघात भी, तो पंद्रह के बदले हम पांच ले लेंगे, दस को कम कर दिया। जो शुभ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं उन बीस के बदले हम चार कहेंगे तो वह सोलह निकाल दिये। छब्बीस कम किये; ६३ में से छब्बीस कम कर दिये तो ३७ रह गये और उच्चगोत्र की एक, इसतरह से डीटेल में देखेंगे तो ६८ होती हैं और ऐसे अभेद करके देखेंगे तो ४२ होंगी। प्रशस्त प्रकृतियां कितनी हैं ? टोटल ४२ हैं।

अशुभ जो हैं, अशुभ नामकर्म में ५० लिखी हैं यहां पर। गुजराती में कुछ चेंज हुआ। पचास करना। पहले करेक्शन किया था, जिसमें नहीं किया है वह कर लेना। गुजराती में जो अप्रशस्त प्रकृतियां लिखी हैं न वे अघाति की अप्रशस्त हैं। इसमें घाति की मिलानी पड़ेंगी हम बाद में मिलायेंगे। हमने प्रशस्त देखी, कितनी देखी ? *श्रोता: ४२/* ४२, तो ४२ के हिसाब से देखेंगे। अप्रशस्त प्रकृतियां कौनसी हैं ? असातावेदनीय की १ है; अशुभआयु जो नरकायु है, वह १ है; अशुभ नामकर्म हैं वे ५० हैं। यहां भी अशुभ नामकर्म में कौनसी कम की हैं ? अशुभ स्पर्श आदि, उसमें बंधन, संघात कम नहीं किये उसमें तो सोलह ही कम किये हैं। अशुभ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण की बीस के बदले चार कही तो सोलह कम हुयी। इसलिये शुभ में से छब्बीस कम की क्योंकि बंधन और संघात तो शुभ प्रकृतियां हैं और अशुभ में से मात्र सोलह ही कम की क्योंकि अशुभ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, बीस के बदले चार कहे और १ नीचगोत्र है तो उनकी टोटल ५३ होती है । ब्रॅकेट में कितनी लिखी हैं ? *श्रोता: ३७/* ३७, और कोई हैं अशुभकर्म ? घाति की ४७। यहां लिखी है ३७ और घाति की हो गयी ४७। टोटल कितनी हो गयी ? ८४। शुभ प्रकृतियां ४२ और अप्रशस्त प्रकृतियां ८४।

देखो, शुभ प्रकृतियां जो सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियां, उनका विशुद्ध परिणाम से तीव्र यानी उत्कृष्ट अनुभागबंध होता है। यह बंध की बात चल रही है। इसका अर्थ क्या है ? कितना भी शुभभाव हो उत्कृष्ट में उत्कृष्ट, उससे बंध हो रहा है कि बंध से मुक्ति हो रही है ? *श्रोता: बंध हो रहा है/* बंध हो रहा है। ख्याल में आया ? यह करणानुयोग के आधार से हम जो कुछ अन्य अनुयोगों में भी कहते हैं, उसको तो कितना बल, पुष्टि मिलती है। अशुभ प्रकृतियां कौनसी ? असातावेदनीय आदि। आदि में अघाति की तो सब लेनी ही लेनी है यह घाति की भी सभी लेनी। उनका संक्लेश परिणाम से तीव्र अनुभागबंध होता है। हमारा प्रश्न यही था न हम इतना पुण्य कर रहे हैं और घातिकर्म तो निरंतर बंध ही रहे हैं, उतना पाप तो बंध ही रहा है तो उसमें कुछ व्हेरिएशन होता है कि नहीं ? हां, जो शुभभाव कर रहा है उसके ज्ञानावरण आदि कर्मों में अनुभाग कम पड़ रहा है और जो तीव्र पाप कर रहा है उसके सभी अशुभकर्मों में तीव्र अनुभाग पड़ रहा है तो उसका फल जब मिलना है तब उसको अत्यंत प्रतिकूलतायें या ज्ञान की हीनता आदि होगी, हर एक में लगा लेना। हर एक कर्म का

जो-जो फल है उसको वैसा ही मिलेगा। इसलिये कहते हैं न, तीव्र संक्लेश परिणाम कोई करता है, बहुत रोता है, बहुत शोक करता है, बहुत अन्य-अन्य चीज़ें करता है तो उसको कहते हैं ऐसा मत करो। अभी तो ऐसी प्रतिकूलता आयी है उसमें आप इतना तीव्र कषाय कर रहे हो। कोई भी कषाय, तीव्र शोक या अन्य कषाय कर रहे हो, तो अभी ऐसे कर्म बंधेंगे तो इसके फल में फिर दुबारा इससे भी ज्यादा प्रतिकूलता होनेवाली है। उसका उपाय क्या है ? जिसे तत्त्वज्ञान का चिंतन होता है, भले ही शोक या दुःख हो परंतु इतनी मात्रा में शोक या दुःख नहीं होता कि फिर अत्यंत प्रतिकूलता झेलनी पड़े। हम देख रहे हैं कि शुभ प्रकृतियों में शुभभावों से यानी विशुद्ध भावों से उत्कृष्ट अनुभाग बंधता है और अत्यंत संक्लेश परिणाम हो तो अशुभ प्रकृतियों में उसका अधिक अनुभाग पड़ता है, बंध होता है। अब वह कितनी हैं उसकी संख्या गाथा नंबर १६४ में बताते हैं। कितनी देखी थी ? बयालीस और चौरासी।

बादालं तु पसत्था विसोहीगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।
वासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स॥ १६४॥

सातावेदनीय आदि जो **बयालीस** प्रकृतियां हैं, वे **प्रशस्त प्रकृतियां हैं** और विशुद्ध गुण की उत्कृष्टता जिसके पायी जाती है ऐसे जीव को तीव्र अनुभाग का बंध होता है, तीव्र यानी उत्कृष्ट अनुभाग बंधता है। किसका ? पुण्य प्रकृतियों का और असाता आदि जो बयासी अप्रशस्त प्रकृतियां हैं, मिथ्यादृष्टि के उत्कृष्ट संक्लेश से उनका तीव्र अनुभाग बंधेगा। अब आगे १६५ नंबर की गाथा है उसकी बात देखते हैं। यहां क्या कहा ? यह संक्लेश परिणाम, मिथ्यादृष्टि के संक्लेश परिणाम से तीव्र कहा और वहां विशुद्धि के बारे में सम्यग्दृष्टि के जो विशुद्ध परिणाम हैं उससे पुण्य प्रकृतियों का बंध अधिक पड़ता है कहा। परंतु पुण्य प्रकृतियों में चार प्रकृतियां छोड़ दी हैं। सम्यग्दृष्टि को अधिक अनुभाग नहीं बंधता ऐसी चार प्रकृतियां यहां छोड़ी हैं। कौनसी ४ हैं ? आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यंचायु ये शुभ प्रकृतियां हैं। तो आतप का बंध कौन करते हैं ? *श्रोता: एकेन्द्रिय।* एकेन्द्रियों को उदय होता है। आतप का बंध तो देव भी करेंगे। आतप प्रकृति का बंध, आतप की व्युच्छित्ति कहां हुयी ? पहले गुणस्थान में। एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप देखा था हमने यानी आतप का बंध कौन करते हैं ? *श्रोता: मिथ्यादृष्टि।* मिथ्यादृष्टि करते हैं। मिथ्यादृष्टि ही अपने यथायोग्य विशुद्ध परिणामों में

आतप का उत्कृष्ट अनुभाग बांधेगा, सम्यग्दृष्टि उसको बांधता ही नहीं है। उद्योत का बंध कौन करते हैं ? पहले और दूसरे गुणस्थानवर्ती क्योंकि उद्योत के बंध की व्युच्छित्ति दूसरे में है। इसलिये उनमें जो-जो यथायोग्य विशुद्धतावाले जीव हैं उनकी अपेक्षा वहां उनका उत्कृष्ट बंध होगा। यथायोग्य इसलिये कहा कि अधिक विशुद्धि में एकेन्द्रियजाति तिर्यंचगति इनका बंध ही नहीं होता। मनुष्यायु और तिर्यंचायु- यह तिर्यंचायु का भी बंध कहां तक होता है ? *श्रोता: दूसरे गुणस्थान तक।* दुसरे गुणस्थान तक और मनुष्यायु का बंध ? चौथे तक होता है परंतु वह देवों के होगा, नारकियों के होगा। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मनुष्यायु नहीं बांधेंगे इसलिये इनमें जो कोई व्हेरिएशन्स हैं उसकी अपेक्षा बता दी है यहां। *श्रोता: तिर्यंचायु को क्यों बताया ?* तिर्यंचायु को इसलिये बताया; तिर्यंचायु कौनसे जीव बांधते हैं ? पहले या दूसरे गुणस्थानवाले बांधते हैं। भले यह है तो शुभ प्रकृति, परंतु बांधनेवाले सम्यग्दृष्टि हैं, वे तिर्यंचायु बांधते ही नहीं हैं। इसलिये उसको उत्कृष्ट अनुभाग सहित कौन बांधेगा ? तो यह मिथ्यात्व में जो यथायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिवाला है उसकी अपेक्षा, वह बांधेगा ऐसा यहां लिया।

उसके बहुत डीटेल में जाने की हमें जरूरत नहीं है। जो पुण्य प्रकृतियां हैं, पुण्य प्रकृतियों में उत्कृष्ट अनुभाग कब बंधेगा ? जिस समय बंध की व्युच्छित्ति होती है तब बंधेगा, हां, क्योंकि जैसे तीर्थंकर प्रकृति हो या कोई आहारकद्विक हो या अन्य भी प्रकृति, देवगति बंध रही हो। कहां तक बंधती है ? आठवें गुणस्थान तक बंधती है। कोई मिथ्यादृष्टि देवगति बांधता है और कोई आठवें गुणस्थानवर्ती देवगति बांधता है तो अनुभाग में कोई व्हेरिएशन होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* आठवें गुणस्थानवाला जहां उसकी बंधव्युच्छित्ति होती है वहां उसका अनुभाग भी अधिक बंधेगा। ख्याल में आती है बात ? प्रशस्त प्रकृतियों में अनुभाग कहां ज्यादा बांधता है ? जो सम्यग्दृष्टि है और जहां ऊपर के गुणस्थानों में उसकी बंध की व्युच्छित्ति हो रही है, वहां पर उसकी विशुद्धि ज्यादा है। जैसे कोई चौथे गुणस्थानवाला है और कोई सातवें है या आठवें गुणस्थानवाला है तो पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग अधिक किसके बंधेगा ? ऊपर के गुणस्थानवालों को। यही सभी प्रकृतियों में लगा लेना। चार प्रकृतियां इसलिये छोड़ी थी कि आतप, उद्योत तो पहले दूसरे गुणस्थान में बंधती है; आतप पहले में और उद्योत पहले, दूसरे गुणस्थान में; इसलिये उनको छोड़ा था। मनुष्यायु, तिर्यंचायु का उत्कृष्ट

अनुभागबंध भोगभूमिसंबंधी ३ पल्यवाली आयु बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यंच को होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन का उत्कृष्ट अनुभाग चौथे गुणस्थानवाले देव-नारकी बांधेंगे, जब वे अनंतानुबंधी की विसंयोजना करते समय तीन करण परिणाम में अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में विद्यमान होते हैं। बाकी जो शुभ प्रकृतियां हैं, ऊपर के गुणस्थानों तक बंधती रहती हैं इसलिये उनका अनुभाग ऊपर के गुणस्थानवाले बांधेंगे। अभी अनुभाग की बात यहां लेते हैं गाथा नंबर १८० के आधार से।

सत्ती य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं॥ १८०॥

हमने देशघाति और सर्वघाति पर बहुत सारी मेहनत की थी न, अभी वह काम आयेगी। देखो क्या कहते हैं यहां पर ? घातिकर्म- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय कर्म उनकी शक्ति के यानी शक्ति किसको कहना ? यहां स्पर्धकों में बात करेंगे। शक्ति के अंश तो अविभागप्रतिच्छेद हैं। परंतु यहां समान अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त परमाणुओं के समूह को हम वर्गणा कहेंगे। कर्म परमाणु को वर्ग कहेंगे और उनके समूह को वर्गणा कहेंगे। फिर वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहेंगे। इसलिये यहां स्पर्धकों में ही बात करेंगे। शक्ति को बतानेवाले ये स्पर्धक हैं, स्थिति को बतानेवालों को हमने क्या कहा था ? *श्रोताः निषेक।* निषेक। स्थिति को बतानेवाले परमाणु जिनकी-जिनकी समान स्थिति है ऐसे परमाणुओं के समूह को हमने निषेक कहा और जिनके-जिनके समान अनुभाग है उन परमाणुओं के समूह को हमने वर्गणा कहा था और वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कह रहे हैं। ऐसे स्पर्धक भी अनंत होते हैं। एक समय में स्थितिबंध होता है तो मॅक्झिमम ७० कोड़ाकोड़ी सागर का यानी असंख्यात समयों का होता है। परंतु अनुभाग रचना होती है, उसमें स्पर्धकों की कितनी रचना होती है ? तो अनंत स्पर्धक होते हैं। अनुभाग को बतानेवाले जो स्पर्धक कहते हैं वे अनंत हैं। उनको हमने चार-चार में विभाजित किया था। उसीका अभी हमने नाम लिया देखो।

इन ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय कर्मों की शक्ति बतानेवाले स्पर्धक वे लता, दारु, अस्थि और शैल की उपमा के धारक चार भागों में रहते हैं यानी

चार भाग में स्थित हैं उनको हमने चार नाम दिये हैं। यह उपमा देकर समझाया। कौन-कौनसे नाम लिये ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल।* लता, दारु, अस्थि और शैल। हां, वहां लता यानी बेल, बेल समझते हो न ? हां, दारु यानी काष्ठ; यह दारु यानी मद्यवाली दारू नहीं। काष्ठ यानी सूखी लकड़ी यह दारुहल्दी नाम सुना है न, हां, तो दारु यानी सूखी लकड़ी - काष्ठ जिसको कहेंगे। अस्थि यानी हड्डी और शैल यानी पाषाण, पर्वत। ये अधिक-अधिक कठोर हैं। जो बेल है वह कितनी नरम होती है; उससे जो वनस्पति की सूखी लकड़ी है, वह कितनी कठिन है और उससे हड्डी कठिन है और शैल तो सबसे कठिन है। अधिक-अधिक कठोरता अनुक्रम से यहां पायी जाती है। वैसे ही स्पर्धक यानी जो वर्गणाओं के समूह हैं वे लताभागरूप, दारुभागरूप, अस्थिभागरूप और शैलभागरूप चार प्रकार के पाये जाते हैं यानी उनमें फल देने की शक्ति अधिक-अधिक है। लतावाले हैं वे मंद अनुभागवाले हैं और ऊपर शैलवाले हैं वे तीव्र अनुभागवाले हैं। ज्ञानावरण में तीव्र अनुभागवाले जो हैं उनका फल अधिक आवरण होगा न ? अधिक आवरण का अर्थ क्या है ? ज्ञान की हीनता। जहां आवरण सर्वोत्कृष्ट बंधेगा वहां ज्ञान सबसे हीन होगा, जब उसका उदय आयेगा तब की बात है। परंतु वह बंधेगा तभी उसमें अनुभाग तो कुछ न कुछ पाया जाता है न।

जैसे अभी हम आप सब पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। हमारा जितना अनुभाग का उदय, उदय की बात चल रही है, हमारा जितना अनुभाग का उदय चल रहा है और हमारी अपेक्षा कोई एकेन्द्रिय है, कोई निगोद है उसके ज्ञानावरण का जितना अनुभाग का उदय चल रहा है; किसका अनुभाग ज्यादा है ? *श्रोता: एकेन्द्रिय का।* एकेन्द्रिय का। ज्ञानावरण की बात चल रही है। ज्ञान का अनुभाग नहीं पूछ रहे हम यानी ज्ञान की शक्ति नहीं पूछ रहे हैं; कर्मों की शक्ति पूछ रहे हैं। यहां ज्ञानावरण में ज्यादा अनुभाग है तो उसका फल क्या है ? तीव्र आवरण, तीव्र आवरण यानी अत्यंत मंद ज्ञान। अभी जो एकेन्द्रिय आदि पर्यायों में हैं उनके ज्ञान का उघाड यानी ज्ञान का क्षयोपशम जिसको हम कहते हैं वह अत्यंत मंद है यानी उनके आवरण का तीव्र अनुभाग का उदय चल रहा है। ख्याल में आया न ? जो तीव्र अनुभाग का बंध करेगा उसका कालांतर में जब उसकी स्थिति पूरी होती है तब ऐसा तीव्र उदय भी आयेगा। यहां कहते हैं लताभाग से लेकर दारु के अनंतवें भाग तक जो स्पर्धक हैं उनको हमने

क्या नाम दिया था, याद है ? लताभागवाले प्लस दारुभागवाले का अनंतवां भाग इसको क्या कहा था ? *श्रोता: देशघाति स्पर्धक।* देशघाति स्पर्धक। इनका उदय होने पर भी आत्मा का गुण प्रकट होता है। आत्मा के गुण प्रकट रहते हैं यानी क्या ? ये जो देशघाति स्पर्धक हैं वे आत्मा के गुण का पूरा घात नहीं करते यानी अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात नहीं करते। घातिकर्मों की सामान्य से चर्चा चल रही है; ज्ञानावरण, दर्शनावरण की अलग-अलग नहीं चल रही है। यहां उनका निमित्त आत्मा के गुण के साथ होता है तो जहां देशघाति का उदय है वहां आत्मा का गुण भी प्रकट होता है, पूरा आवरण उस पर नहीं है और बाकी जो दारु का जो अनंत बहुभाग है, अस्थिभाग है और शैलभाग है इन सबको क्या नाम है ? *श्रोता: सर्वघाति स्पर्धक।* सर्वघाति स्पर्धक। उनका उदय होने पर आत्मा के गुण का अंश भी प्रकट नहीं होता। *श्रोता: केवलज्ञानावरण।* केवलज्ञानावरण है तो केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति तो है ही है, उसके स्पर्धक कैसे हैं ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति हैं। यह सर्वघाति का उदय हो रहा है और उसके उदय में केवलज्ञान प्रकट नहीं है। हम अज्ञान कहेंगे न उसको; केवलज्ञान नहीं है, उसको क्या कहेंगे ? ज्ञान नहीं है, ज्ञान का अभाव है। केवलज्ञान का अभाव है तो उसको हम अज्ञान कहेंगे।

उस अज्ञान का नाम क्या है ? परसों किसीने मुझे अज्ञान के बारे में पूछा था। अज्ञान भी अलग-अलग होते हैं। *श्रोता: छद्मस्थ।* छद्मस्थ क्या ?*अन्य श्रोता: औदयिक अज्ञान।* औदयिक अज्ञान, हां, औदयिक अज्ञान, अभी यह औदयिक क्या होता है, हम देखेंगे। पहले अज्ञान शब्द को देखते हैं। गणधर भी भगवान को क्या कहते हैं ? सर्वज्ञ भगवान को गणधर भी जो चार ज्ञान के धारी हैं वे क्या कहेंगे ? आप तो केवलज्ञानी हो हम अज्ञानी हैं। हम आप सब केवलज्ञान के सामने कैसे हैं ? अज्ञानी हैं क्योंकि केवलज्ञान के सामने श्रुतज्ञान तो नहीं के बराबर है। तो हम कहेंगे केवलज्ञानी, वे ज्ञानी हैं और हम अज्ञानी हैं- बारहवें गुणस्थान तक। अब जिसको सम्यग्ज्ञान हुआ है उसको शास्त्रों में भी लिखा है वह ज्ञानी है और जो मिथ्यादृष्टि हैं पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थानवाले उनको क्या कहेंगे ? ये अज्ञानी हैं। इन अज्ञानियों की अपेक्षा से सम्यग्ज्ञानी वह ज्ञानी है।

अब हम मिथ्याज्ञानियों की बात करेंगे। छह द्रव्यों में जीवद्रव्य जानने का काम

करता है तो छह द्रव्यों में जीवद्रव्य ज्ञानी है और बाकी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अज्ञानी हैं; यह ज्ञानी और अज्ञानी की अपेक्षा से भी कथन हो सकता है। हां, यह रिलेटिव्ह टर्मिनॉलॉजि है। यहां तो हम ज्ञान और अज्ञान कहेंगे। हम आपको ज्ञान है कि नहीं ? तो है। इस ज्ञान का नाम क्या है ? क्षयोपशम ज्ञान। देखो, हमें अभी क्षयोपशम ज्ञान कौनसा चल रहा है ? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान हमारा क्षयोपशम ज्ञान है। आपको अवधिज्ञान है क्या ? *श्रोता: नहीं है।* मनःपर्ययज्ञान ? *श्रोता: नहीं है।* नहीं है। केवलज्ञान ? *श्रोता: नहीं है।* नहीं है। यह कौनसा अज्ञान कहलायेगा ? *श्रोता: औदयिक अज्ञान।* औदयिक अज्ञान कहेंगे, क्यों ? यहां अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण के सर्वघाति का उदय है; क्षयोपशम नहीं है; उदय है और केवलज्ञानावरण का भी उदय है और उनका उदय है तो यहां कौनसा अज्ञान चल रहा है ? औदयिक अज्ञान। फिर से, जहां सर्वघाति का उदय हो रहा है, कौनसे सर्वघाति का उदय है ? अवधिज्ञानावरण का भी सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो रहा है। है तो वह देशघाति प्रकृति, उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है, अवधिज्ञान नहीं है तो हम कहेंगे यह हमारा औदयिक अज्ञान है। मनःपर्ययज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है, यहां हमें मनःपर्ययज्ञान नहीं है यह हमारा औदयिक अज्ञान है। केवलज्ञानावरण का उदय चल रहा है वह तो सर्वघाति है ही है, हमें यहां केवलज्ञान प्रकट नहीं है यह हमारा औदयिक अज्ञान है।

जो हमें ज्ञान प्रकट है उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: क्षायोपशमिक ज्ञान।* उसको क्षायोपशमिक ज्ञान कहेंगे। तो क्षायोपशमिक भावों में हमने ज्ञानसंबंधी कितने भाव देखे ? क्षायोपशमिक भाव तो अठारह हैं। कोई कहेंगे उसमें क्या-क्या होते हैं ? *श्रोता: मतिज्ञान, श्रुतज्ञान।* कितने ज्ञान हैं ? कौनसे-कौनसे ? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और भी कुछ है क्या ? *श्रोता: तीन कुज्ञान।* तीन कुज्ञान। उसको क्षायोपशमिक अज्ञान कहा है। देखो, एक है औदयिक अज्ञान और एक है क्षायोपशमिक अज्ञान। दोनों ही जगह अज्ञान कहा। दोनों में कुछ फर्क है कि नहीं ? फर्क है। जिसको हम औदयिक अज्ञान कह रहे थे वहां तो उसके प्रतिपक्षवाला जो कर्म है उसके सर्वघाति का उदय चल रहा था, यानी वहां ज्ञान था ही नहीं। जिसको हम क्षायोपशमिक अज्ञान कह रहे हैं वह मिथ्यादृष्टि की बात अभी हम कहेंगे; दूसरे, तीसरे गुणस्थानवाले को भी होगा, उनका जो ज्ञान है, उसका क्षयोपशम है कि नहीं ? वह

क्षायोपशमिक ज्ञान है कि नहीं ? ज्ञान का उघाड़ तो है वहां पर। जानने का कार्य चल रहा है। भले वह मिथ्याज्ञान है परंतु जानता तो है कि नहीं है ? वहां मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम चल रहा है। जो भी कुमति-कुश्रुत कहो उसको, उसका ज्ञान क्षायोपशमिक ही है परंतु क्षायोपशमिक ज्ञान चार बता दिये ऑलरेडि। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान; यह सम्यग्ज्ञान की बात हो गयी। जो मिथ्याज्ञान है वह भी क्षायोपशमिक है तो उसका क्या नाम दिया ? क्षायोपशमिक अज्ञान।

औदयिक अज्ञान भी लिया और क्षायोपशमिक अज्ञान भी लिया। औदयिक अज्ञान में हमें अभी मनःपर्यय ज्ञान नहीं है, अवधिज्ञान नहीं है, केवलज्ञान नहीं है। जो नहीं है, क्यों नहीं है ? उनके प्रतिपक्षी सर्वघाति का उदय है। यह निमित्त की भाषा है, कर्म के कारण नहीं रुका है। वह हमने पहले ही दिन आपको बताया था। वह जो है वह औदयिक अज्ञान है और क्षायोपशमिक अज्ञान का अर्थ क्या है ? जो मिथ्याज्ञान है वहां उन कर्मों का क्षयोपशम चल रहा है, देशघाति का उदय भी हो रहा है और यहां कुछ न कुछ ज्ञान प्रकट है। भले वह निगोद जीव है, अन्य एकेन्द्रिय हो, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जो कोई जीव है। जो मिथ्यादृष्टि हैं उनके कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान जो कुछ है, वह सारा क्या कहलायेगा ? क्षायोपशमिक अज्ञान। इसको भी अज्ञान कहा, उसको भी अज्ञान कहा। वहां ज्ञान का अभाव था तो अज्ञान कहा जैसे केवलज्ञान का अभाव है इसलिये अज्ञान कहा और यहां ज्ञान तो है परंतु मिथ्याज्ञान है इसलिये अज्ञान कहा। औदयिक अज्ञान में तो मिथ्यात्व की बात नहीं उठाई है। वहां तो अवधिज्ञान, केवलज्ञान नहीं है; सर्वघाति का उदय है इसलिये वहां उसकी बात कही। तो यह औदयिक अज्ञान किसको है ? सम्यग्दृष्टि को है कि मिथ्यादृष्टि को है ? *श्रोता: सभी को है*/ सभी को है। बहुत अच्छा, सभी को चल रहा है। हां, तो इसतरह से लता आदि की जो बात सर्वघाति, देशघाति, क्या है उसकी यह बात और आगे चलेगी अपनी। यहां लता, दारु, अस्थि और शैल ऐसे हमने देशघाति और सर्वघाति मिलकर जो स्पर्धक बताये हैं तो उसकी और चर्चा हम आगामी अपने प्रवचन में करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२१. अनुभाग बंध, सादि अनादि पुद्गल

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है, उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने यह जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से हम यहां कुछ कर्मों के बंध संबंधी चर्चा कर रहे हैं। अभी यहां अनुभाग संबंधी अपना विषय चल रहा है। अनुभागबंध की बात चल रही है और उसमें हम देख रहे हैं यह अनुभाग संबंधी जो स्पर्धक होते हैं, तो यह स्पर्धक किसे कहना ? हमने पहले देखा था। फिर दुबारा ज़रा ले लेते हैं कि यह स्पर्धक क्या होता है ? यहां फल देने की शक्ति को स्पर्धक कहा था।

पंचलब्धि पुस्तक में ४५ नंबर का पृष्ठ, स्पर्धक किसे कहना है उसकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं। अनुभाग और स्थिति क्यों बंधती है उसकी हमने चर्चा की थी; कषाय के कारण बंधती है; फिर भी स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम और अनुभागबंध के कारणभूत परिणाम कुछ अलग-अलग हैं। है तो एक ही परिणाम परंतु उसमें स्थितिबंध के कारणभूत जो परिणाम उसको हम कहेंगे स्थितिबंध अध्यवसायस्थान। क्या कहेंगे ? स्थितिबंध के कारणभूत परिणामों को स्थितिबंधाध्यवसायस्थान कहते हैं और अनुभागबंध के कारणभूत परिणामों को अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कहते हैं। है तो परिणाम एक परंतु उस एक परिणाम में एक समय में एक परिणाम है उसमें स्थिति को बांधनेवाले परिणाम और अनुभाग को बांधनेवाले परिणाम ऐसे उसमें दो विभाग हो जाते हैं; तो उसको कहेंगे स्थितिबंधअध्यवसायस्थान और अनुभागबंधअध्यवसायस्थान; उसके अनुसार यहां स्थिति का और अनुभाग का अलग-अलग बंध होता है। यहां हमने यह जो स्पर्धकों के नाम देखे थे; घातिया में हमने चार प्रकार के स्पर्धक देखे थे, अघातिया में भी हर एक में - पुण्य और पापरूप चार-चार स्पर्धक देखे थे। अभी स्पर्धक का विषय फिर से दुबारा लेते हैं। पहले में पहले यह कर्मों का जो अनुभाग है, फल देने की जो शक्ति है, वह नापने का क्या एकक है ? क्या यूनिट है ? क्या माप है हमारे पास ? तो उसको क्या कहते हैं ? अविभागप्रतिच्छेद। आपने बोर्ड पर भी देखा होगा यह जो यहां पर अनुभागबंध को बतानेवाले अविभागप्रतिच्छेद, इसका अर्थ क्या है ? शक्ति का सबसे सूक्ष्म अंश। यहां हम कर्म की बात कर रहे हैं तो इसे कर्म के फल देने की शक्ति का सूक्ष्म अंश कहेंगे।

अनुभाग-बंध

अविभागप्रतिच्छेद	-	शक्ति का सबसे सूक्ष्म अंश
वर्ग	-	कर्मपरमाणु-अविभागप्रतिच्छेदों का समूह
वर्गणा	-	समान अविभागप्रतिच्छेदों युक्त वर्गों का समूह
स्पर्धक	-	१-१ अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी वर्गणाओं का समूह
गुणहानि	-	अनंत स्पर्धकों का समूह
नानागुणहानियां	-	कुल गुणहानियां (अनंत)

अविभागप्रतिच्छेद यह शब्द हर जगह आता है। ज्ञान की पर्याय में कितनी शक्ति है, ज्ञान का उघाड़ कितना है उसको बताने के लिये भी कहेंगे ज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद कितने हैं ? जिस किसी शक्ति की बात हम कर रहे हैं वहां उसके अविभागप्रतिच्छेदों में बात करेंगे। पुद्गल की शक्ति हो या जीव की हो या और किसी अन्य द्रव्य की, उसको कहेंगे अविभागप्रतिच्छेद। यहां कर्मों की बात चल रही है; तो कर्मों में जो फल देने की शक्ति है उस शक्ति के अविभागप्रतिच्छेद यहां कहेंगे। जैसे ज्ञानावरण की अपनी शक्ति है, दर्शनावरण की अपनी शक्ति है, क्योंकि हर एक का कार्य जुदा-जुदा है। मोहनीय की अपनी शक्ति है परंतु वह शक्ति किसमें नापेंगे ? तो अविभागप्रतिच्छेदों में नापेंगे और यह अविभागप्रतिच्छेद यानी शक्ति कहां पड़ी है ? कर्म परमाणुओं में है।

एक-एक परमाणु में अपनी-अपनी जो फल देने की शक्ति है ऐसे एक-एक परमाणु को एक-एक वर्ग कह दिया; यहां लिखा है वर्ग। यहां हम कर्मों की बात कर रहे हैं तो यहां कर्म को यानी कर्म के एक-एक परमाणु को यहां वर्ग संज्ञा दी है; यानी एक कर्म परमाणु; कर्म परमाणुओं में क्या है ? तो ये अविभागप्रतिच्छेद उसमें पाये जाते हैं। तो कहते हैं अविभागप्रतिच्छेदों के समूह को वर्ग कहते हैं। अविभागप्रतिच्छेद किसमें हैं ? यह शक्ति किसमें है ? तो कर्म परमाणुओं में है। इसलिये कर्म परमाणुओं को यहां वर्ग कह दिया। वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक यह जो टर्मिनॉलॉजि है, ये जो शब्द हैं वे अलग-अलग जगह आते हैं। कर्म के बारे में भी आते हैं, योग के प्रकरण में भी आते हैं और अन्यत्र भी यही टर्मिनॉलॉजि, यही शब्द आते हैं परंतु यहां हम वह कर्म के बारे में

समझ रहे हैं ऐसा यहां ग्रहण करना।

वर्गणा किसको कहना है ? तो जिन-जिन कर्म परमाणुओं में समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं; समान अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गों के समूह को कहेंगे वर्गणा। यहां हमारी बात कर्म कब उदय में आते हैं उसकी नहीं है। उसको तो हमने निषेक कहा था। एक समय में उदय में आनेवाले परमाणुओं के समूह को हमने निषेक कहा था और यहां समान अविभागप्रतिच्छेदवाले परमाणुओं के समूह को हम... *श्रोता: वर्गणा।* वर्गणा कह रहे हैं। तो यह वर्गों का समूह हुआ वर्गणा।

अब यह जो वर्गणा है, सबसे कम अविभागप्रतिच्छेद युक्त जो वर्गणा है उसको हम पहली वर्गणा या जघन्य वर्गणा कहेंगे। जो एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद युक्त परमाणुओं का समूह है उसको दूसरी वर्गणा, ऐसी ही तीसरी वर्गणा, चौथी वर्गणा कहेंगे यानी वर्गणा-वर्गणा प्रति, नीचे से ऊपर वर्गणा बतायी जायेगी; नीचे की वर्गणा में प्रत्येक परमाणु में अविभागप्रतिच्छेद कम हैं, ऊपर की वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद एक से ज्यादा हैं, उसके ऊपर और एक से ज्यादा हैं। हमने देखा न कल परसों, कि मान लेते हैं सौ अविभागप्रतिच्छेद हैं; होते तो अनंत हैं परंतु यदि हम उसको सौ मान लेते हैं तो पहली वर्गणा में १००; फिर दूसरी वर्गणा में १०१वाले परमाणु; तीसरी में- नीचे १०० देखे, फिर १०१, फिर १०२, फिर १०३, १०४। ऐसे हां तो हमने १०० लिये हैं तो हम १२० तक वर्गणा लेंगे। मूल में तो अनंत अविभागप्रतिच्छेद होते हैं तो उसकी वर्गणायें भी अनंत हो जाती हैं।

जहां वर्गणा का अविभागप्रतिच्छेद दो गुणा हो जाता है; १०० से लेकर २०० हो जायेगा; तो वहां से दूसरा स्पर्धक शुरू होगा। यानी वर्गणा में पहली वर्गणा, दूसरी वर्गणा, तीसरी वर्गणा, चौथी वर्गणा ऐसी अनंत वर्गणायें होती हैं तो उन अनंत वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कहते हैं। जहां उस वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद दो गुणा होते हैं, जैसे हमने १०० माने थे, जहां २०० हो जायेंगे। उसको क्या कहेंगे ? वह दूसरे स्पर्धक की पहली वर्गणा कहलायेगी। फिर वहां पर अनंत वर्गणायें होंगी। फिर तीन गुणा होगा वहां से तीसरा स्पर्धक। इसतरह से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी वर्गणाओं का समूह-उसको हम कहेंगे स्पर्धक। नीचे का स्पर्धक उसको कहेंगे पहला या जघन्य स्पर्धक फिर दूसरा स्पर्धक, तीसरा स्पर्धक, चौथा, पांचवां, छठा, ऐसे ऊपर-

ऊपर अनंत स्पर्धक पाये जाते हैं।

यहां एक और नाम आया है गुणहानि। हमने निषेकों की रचना में गुणहानि शब्द सुना था। वहां हमने क्या देखा था निषेकों की रचना में; निषेक स्थिति बताते हैं। वहां जो पहला निषेक है उसमें जितने परमाणु हैं, दूसरे निषेक में परमाणुओं की संख्या कुछ कम है; तीसरे में और कम है; चौथे में और कम है। जहां जाकर वह संख्या आधी होती है वहां तक जितने निषेक हैं, उनके समूह को हमने कहा था गुणहानि और जितनी टोटल नंबर ऑफ़ गुणहानियां होती हैं उसको कहेंगे नानागुणहानि। वह कौनसी ? निषेकों की या स्थिति की गुणहानि कहलायेगी। अब यहां हम अनुभाग की गुणहानि देख रहे हैं; स्थिति की गुणहानि अलग है, शब्द तो वे ही हैं। गुणहानि का अर्थ होता है वह आधा-आधा होते जाना। परंतु यहां हम स्पर्धकों में जब गुणहानि की बात करेंगे तो यहां गुणहानि किसको कहना ? जो अभी हमने देखी थी पहली वर्गणा, दूसरी वर्गणा, तीसरी वर्गणा; तो नीचे की वर्गणा जिसमें अविभागप्रतिच्छेद सबसे कम हैं उसमें परमाणु की संख्या सबसे अधिक होती है। जैसे निषेक-निषेक प्रति परमाणु घटते चले जाते हैं वैसे वर्गणा-वर्गणा प्रति परमाणुओं की संख्या घटती चली जाती है। कितने ही स्पर्धक पार होने के बाद उस पहली वर्गणा में जितने परमाणु थे, वे संख्या में आधे होते हैं। जितने स्पर्धक जाने के बाद वर्गणा में परमाणुओं की संख्या आधी होती है उतने स्पर्धकों को मिलकर यह अनुभाग की गुणहानि कहने में आती है। एक गुणहानि में अनंत स्पर्धक होते हैं।

पहले हमने स्थिति की रचना में गुणहानि देखी थी, यहां अनुभाग की रचना में हम गुणहानि देखते हैं। गुणहानि का अर्थ परमाणुओं की संख्या आधी होना। अविभागप्रतिच्छेद आधे होना नहीं कहा क्योंकि अविभागप्रतिच्छेद यानी जो शक्ति है-फलदान शक्ति, वह नीचे की वर्गणा में सबसे कम है और ऊपर बढ़ती चली जाती है। परंतु परमाणुओं की संख्या नीचे अधिक है, ऊपर घटती चली जाती है। तो ऐसे अनंत स्पर्धक जाने पर वह परमाणुओं की संख्या आधी होती है तो उसको कहेंगे गुणहानि और ऐसी गुणहानियां भी अनुभाग के प्रकरण में अनंत होती हैं। स्थितियां तो असंख्यात ही होती हैं क्योंकि निषेक रचना जो होती है एक समय में एक निषेक। स्थिति तो सागरों की होती है तो उसमें असंख्यात ही समय पाये जाते हैं परंतु अनुभाग में तो

अनंत स्पर्धक होते हैं। अभी उसके तो गणित हमें कुछ करने नहीं हैं। केवल यहां जो गणितों में शब्द आनेवाले हैं, कौन-कौनसे आयेंगे ? स्पर्धक शब्द आयेगा, गुणहानि आयेगा, नानागुणहानि आयेगा। तो उनका अर्थ क्या है उतनी ही बात हम यहां देख रहे हैं। बाकी हमारे समझने के लिये इतना तो अभी हमें काफी है।

इतना है कि जब हम निषेकों की रचना करते हैं तो शुरू में उदय में आनेवाले हम नीचे लिखते हैं और भविष्यकालीन ऊपर लिखते हैं और जहां स्पर्धक लिखते हैं, स्पर्धकों में ऐसा नहीं है कि वे कब उदय में आयेंगे। बस सत्ता में पड़े हैं जो जघन्य अनुभागवाले स्पर्धक हैं उन्हें नीचे लिखते हैं और तीव्र अनुभागवाले स्पर्धक ऊपर लिखते हैं। अनुभाग में स्पर्धक जब नीचे ऊपर लिखते हैं तब वे कौनसे निषेक में हैं तो वह वहां नहीं बताया जाता, वह अलग रचना है। जैसे नीचे का निषेक शुरू में उदय में आयेगा, ऐसे मंद अनुभागवाला पहले उदय में आयेगा ऐसा नहीं है; वह रचना ही अलग है। एक निषेक रचना है कब उदय में आयेंगे ऐसी और दूसरी अनुभाग की रचना है उसमें उसकी व्हॅल्यू कितनी है, उसमें शक्ति कितनी है, उसकी अपेक्षा से। वे कब उदय में आयेंगे वह बात स्पर्धक रचना में नहीं बतायी गयी है। केवल शक्ति कितनी है, वहां शक्ति के अनुसार उसकी लाइन लगायी जाती है, उसके नंबर लगाये जाते हैं।

जैसे स्कूल में कभी-कभी ऐसे नंबर दिये, कैसे ? अे, बी, सी, डी अनुक्रम से, अपना जो कोई सरनेम है, नेम है, तो उसको किसतरह से नंबर दिये जाते हैं ? क्रम से जैसे अे, बी, सी, डी, है वैसे उसके नंबर दिये जाते हैं। कभी-कभी हम वह पी टी - कवायत करते हैं तो कैसे खड़ा करते हैं ? *श्रोता: हाइट से।* हाइट के अनुसार, ऊंचाई के अनुसार। ऐसे ही यहां हम दो अलग-अलग रचनायें दिखा रहे हैं। एक तो स्थिति की अपेक्षा रचना है जिसको हम निषेक रचना कहेंगे और एक है अनुभाग बतानेवाली रचना है उसको हम स्पर्धक रचना कहेंगे। परंतु नीचे के निषेक में मंद स्पर्धक होते हैं ऐसा बिलकुल नहीं है। यथायोग्य जहां जो स्पर्धक पाये जायेंगे, हर एक निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक अलग-अलग अनुभागवाले स्पर्धक पाये जाते हैं। तो आप कहेंगे फल किसका मिलता है ? तो जैसे जीव के परिणाम हैं तो उसके साथ उदय का भी निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। तो उदय किसका है ? जब उदय की चर्चा आयेगी तब हम उसकी बात करेंगे क्योंकि फल तो उदय के समय मिलता है; अभी तो हम

बांध रहे हैं। तो जब उदय में आयेंगे, उदय की बात आयेगी तब उसकी चर्चा करेंगे हम। *श्रोता: निषेक और स्पर्धक में क्या अंतर है ?* अभी तक तो हम निषेक और स्पर्धक का ही अंतर देख रहे थे न ? निषेक जो हैं वे परमाणुओं की स्थिति बताते हैं और स्पर्धक हैं वे परमाणुओं का अनुभाग बताते हैं; शक्ति को बतानेवाले उसको हम स्पर्धक कहेंगे और स्थिति को बतानेवाले उसको हम निषेक कहेंगे; यह उनके बीच में अंतर है। हमने यह भी देखा था कि यह सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक क्या हैं, उसकी हमने विस्तार से चर्चा भी की थी।

हमने १८० गाथा देखी थी और उसमें शक्ति के लता, दारु, अस्थि और शैल उपमावाले ये सारे स्पर्धक भी देखे थे। उसमें स्पर्धक जो सर्वघाति हैं उनके नाम याद हैं न ? सर्वघाति स्पर्धकों के नाम याद हैं ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि।* सर्वघाति स्पर्धकों के नाम क्या हैं ? स्पर्धक; लता उसमें नहीं आता। ऊपर से शुरू करो। शैल... *श्रोता: शैल।* अस्थि, *श्रोता: अस्थि, दारु का बहुभाग।* हां, दारु का बहुभाग- यहीं तक रुकना। हां और दारु का जो नीचे का अनंतवां एकभाग है और जो लताभागवाले हैं वे देशघाति हैं। स्पर्धकों की बात चल रही है। अब प्रकृति की अगर बात करेंगे तो सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति हैं यानी कौनसे हैं ? शैल, अस्थि और दारु बहुभाग। देशघाति प्रकृतियों के स्पर्धक ? *श्रोता: लता, दारु, अस्थि, शैल।* दोनों होते हैं। दोनों होते हैं, देशघाति प्रकृति के स्पर्धक दोनों होते हैं- सर्वघाति भी और देशघाति भी।

अभी यहां यह बताया है कि ये जो सत्रह प्रकृतियां हैं, उनमें तो चार ही प्रकार होते हैं। कौनसी सत्रह प्रकृतियां हैं ? यानी यह जो देशघाति प्रकृतियां हैं। ज्ञानावरण में मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण; फिर दर्शनावरण में कौन-कौनसी लेनी हैं ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण ये तीन; चार और तीन सात हुये; फिर अंतराय की पांच और संज्वलन की चार और पुरुषवेद। ये जो सत्रह प्रकृतियां हैं उनमें शैल, अस्थि, दारु और लता, चारों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। यह मूलगाथा में लिखा है, अब हम १८२ नंबर की गाथा पढ़ेंगे।

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं।
चदुविधभावपरिणदा तिविधा भावा हु सेसाणं॥ १८२॥

यह सत्रह के चार प्रकार हैं और बाकी जो हैं वे कौन-कौनसे बाकी रहे ? अभी उसमें सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व को अलग रखना। बाकी रहे यानी कौनसे रहे ? सर्वघाति प्रकृतियां जो बाकी रहती हैं तो वे कौन-कौनसी हैं? केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पांच निद्रा; अनंतानुबंधी की चार, अप्रत्याख्यानावरण की चार, प्रत्याख्यानावरण की चार; ये जो उन्नीस हैं उनके स्पर्धक सर्वघाति ही हैं। क्यों ? वे सर्वघाति प्रकृतियां हैं और पुरुषवेद बिना जो आठ नोकषाय हैं, उसमें तो यहां लिखा है शैल, अस्थि, दारु, लता चार अनुभागरूप हैं। यहां शैल-अस्थि-दारु-लता अथवा अस्थि-दारु-लता अथवा दारु-लता तीन प्रकार के भावरूप हैं। परंतु जहां प्रदेश का बटवारा आता है वहां इन नोकषायों को कुछ अलग तरह से वहां प्रस्तुत किया है। जिसमें उनको देशघाति मात्र कहा।

कुछ प्रश्न भी आया था। कर्मकाण्ड १८१ गाथा में सम्यक् प्रकृति में देशघाति स्पर्धक होते हैं यह तो मिला लेकिन सात नोकषाय में देशघाति स्पर्धक ही होते हैं इसका आगम प्रमाण चाहिये। उन्होंने प्रमाण चाहियेवाली बात की थी तो उसके आगे चलकर २०२-२०३ वगैरह गाथायें वे पढ़ लें तो-तो उनको - आपको आगम का प्रमाण मिला है। मुझे पता है किसका प्रश्न हो सकता है। यह विमलाबेन का होना चाहिये, हां, अच्छा अभ्यास है आपका। यह मत समझना वह सुन रही हैं इसलिये कुछ कम जान रही हैं। बहुत सारे विद्वान हैं यहां पर जिनका बहुत अच्छा अभ्यास है। *श्रोता: आपकी क्या गलती होती है वो देखने...* नहीं-नहीं, बिलकुल देखना ही चाहिये। यदि गलती हो तो सुधारनी भी चाहिये क्योंकि यह गलती आगे नहीं चलनी चाहिये। यदि कहीं अज्ञानवश या कुछ हो सकता है कि अपनी उसमें कुछ बात ख्याल बाहर हो जाती है और कुछ गलती हो जाये, तो उसको तो सुधारना हर एक का कर्तव्य ही है। इसमें किसीका कोई इन्सल्ट मानने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जिनवाणी के प्रति सावधान रहने की यह बात चल रही है और हो सकता है कि बोलने में, लिखने में कहीं भूल होती है, कभी कुछ छूट जाता है तो उसको जरूर गौर करना ही चाहिये।

यहां उन्होंने लिखा है पुरुषवेद बिना अन्य को उन्होंने चार, तीन और दो प्रकार से अनुभाग बताया है, परंतु जहां प्रदेशों का बटवारा होता है, वह हम देखेंगे प्रदेशों के बटवारे में क्या होता है। उसमें तो सर्वघातिद्रव्य और देशघातिद्रव्य कहकर बटवारा

किया है। उसमें तो वह नौ ही नोकषाय में सर्वघातिद्रव्य का बटवारा किया ही नहीं है। फिर भी जब उसकी चर्चा आयेगी तब हम देखेंगे। यह तो हमने घाति के देखे। अघाति में भी हमने चार-चार प्रकार देखे थे पुण्य के और पाप के, बहुत बार हमने रिपीट भी किया, है न ? तो उसमें भी यह जो प्रशस्त प्रकृतियों के गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत चार प्रकार के स्पर्धक हो सकते हैं। वहां अधिक-अधिक मिठास है उसमें, उसको कहते हैं अधिक-अधिक सुख के कारण हैं। वैसे ही यह जो पुण्य प्रकृतियां हैं उनमें चारों प्रकार का अनुभाग है वह अधिक विशुद्धि के कारण बंधता है तो उसमें उसका फल भी अधिक-अधिक मिलता है गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत में।

अप्रशस्त में हमने देखा था नीम, कांजीर, विष और हलाहल। उसमें अधिक-अधिक दुःख का कारण जो कटुता उसकी उपमा दी है, यह उदाहरण दिया उसमें। वैसे ही उनके जो उदयरूप फल मिलते हैं वे अधिक-अधिक दुःख के कारण हो जाते हैं। यहां भी जो अनुभागबंध है वह चाररूप होता है या तीनरूप होता है या दोरूप होता है। हमने देखा था, उसको चतुःस्थानीय, त्रिस्थानीय या द्विस्थानीय अनुभागबंध कहते हैं। इसतरह यह अनुभाग का प्रकरण यहीं समाप्त होता है। हम अभी प्रदेशबंध की बात शुरू करेंगे। कभी-कभी क्या होता है आगे चले जाते हैं और फिर कुछ प्रश्न आते हैं तो फिर दुबारा पीछे चले जाते हैं।

प्रदेशबंध हमने देखा था याद है ? हमने जो देखा था प्रदेश और प्रकृति किससे बंधते हैं ? *श्रोता: योग से।* योग से बंधते हैं और स्थिति और अनुभाग ? *श्रोता: कषाय।* कषाय से बंधते हैं; कषाय में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय सबको लेना; यानी मिथ्यात्व और कषाय को मिलकर यहां कषाय कह दिया है। अब बात यह है यह जो प्रदेशबंध होता है; जैसे हमने स्थिति में देखा कि कम स्थिति बंधती है, अधिक स्थिति बंधती है; अनुभाग में भी देखा कभी जघन्य अनुभाग बंध होता है, कभी उत्कृष्ट होता है। यहां प्रदेश यानी परमाणुओं की संख्या; तो परमाणुओं की संख्या भी कभी कम बंधेगी, बंध की बात चल रही है और कभी अधिक से अधिक परमाणुओं का बंध होगा; यह कैसे होता है, किस कारण से होता है और वह कितना होता है उसकी बात हम देखेंगे। कम से कम भी कितना होता है और अधिक से अधिक भी कितना होता है तो उसकी बात यहां प्रदेशबंध के अधिकार में देखते हैं।

पहले में पहले यहां इस प्रकरण में उन्होंने ये बातें समझायी हैं कि एकक्षेत्र किसे कहना और अनेकक्षेत्र किसे कहना। उसके बाद यह बात बतायेंगे- सादिद्रव्य किसको कहते हैं और अनादिद्रव्य किसको कहते हैं। तो कहते हैं कि जीव के प्रदेशों में एकक्षेत्रावगाहरूप से जो परमाणु रहते हैं; यह एकक्षेत्रावगाह क्या होता है पता है भाई ? एक क्षेत्र को अवगाहन करना यानी क्या है ? एक ही स्पेस में, एक ही क्षेत्र में अलग-अलग द्रव्य रहते हैं। आकाश के एक ही क्षेत्र में, अभी हम देखेंगे, लोकाकाश में कितने द्रव्य हैं ? *श्रोता: छह।* छह द्रव्य। सारे अनंत जीव कहां रहते हैं तो लोकाकाश में रहते हैं। अनंतानंत पुद्गल कहां रहते हैं ? *श्रोता: लोकाकाश में।* वे भी लोकाकाश में रहते हैं; धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, वे भी लोकाकाश में; आकाश तो स्वयं है ही है और कालद्रव्य जो असंख्यात हैं, लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु है; तो यह स्पेस कितनी है ? असंख्यातप्रदेशी और उसमें द्रव्य कितने हैं ? इतने अनंतानंत। तो वह कैसे रहते हैं ? तो कहते हैं एकक्षेत्रावगाहरूप से रहते हैं यानी एक ही स्पेस में सुपरइंपोझ होकर वे रहते हैं। जीव तो अनंत हैं और एक-एक जीव छोटे में छोटा भी हो जाये तो आकाश के कितने प्रदेश रोकता है ? कहते हैं असंख्यात प्रदेश रोकता है।

एक जीव जितने प्रदेश रोकता है वहां कम से कम उतने तो रोकेगा ही, जो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव जगह रोकता है, जो अति अल्प है, उतना तो रोकेगा। किसी एक जीव के सभी प्रदेश आकाश के एक प्रदेश पर तो आ नहीं सकते। *श्रोता: वहीं कालद्रव्य है।* वह नहीं, कालद्रव्य की बात नहीं हो रही यहां पर। अनंत जीवों के प्रदेश इतने ही क्षेत्र में हैं। तो एक दूसरे में ऐसे अवगाहरूप से हैं। जैसे इस एक ही हॉल में हमने एक बल्ब जलाया है सामने। उसका प्रकाश कहां फैला है ? इस पूरे हॉल में और अगर हम चार पांच बल्ब और जलाते तो उसका प्रकाश ? उतने ही स्पेस में। उसी हॉल में उसका भी प्रकाश है और हम अलग-अलग रंगों के बल्ब जलायेंगे, प्रकाशित करेंगे तो भी उनका भी प्रकाश वहीं पर है। वहां क्या सबके प्रकाश एक दूसरे में मिल गये ? एक ही क्षेत्र में रहते हुये भी हर एक का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। वह एक दूसरे में मिल नहीं जाते हैं। एक बल्ब हम ऑफ कर देंगे तो उतना ही प्रकाश चला जाता है बाकी के हैं वहां पर। एक ही क्षेत्र में रहते हुये भी हर एक का अस्तित्व भिन्न-भिन्न रहता है। छहों द्रव्य आकाश में, लोकाकाश में ही पाये जाते हैं फिर भी

इकट्ठा रहने पर भी सबका अस्तित्व भिन्न-भिन्न है।

अभी तक कितने जीव सिद्ध हो चुके हैं ? *श्रोता: अनंत।* अनंत। कितने क्षेत्र में रहते हैं ? कहां रहते हैं ? सिद्ध कहां पाये जाते हैं ? *श्रोता: सिद्धक्षेत्र में।* सिद्धक्षेत्र में। *श्रोता: ४५ लाख योजन में।* ४५ लाख योजन उसका डायमीटर है। ढाईद्वीप से ही जीव जो अरिहंत हैं वे मुक्त होकर सीधे ऊपर चले जाते हैं और सिद्धालय में विराजमान होते हैं। सिद्धशिला में नहीं कहा, सिद्धालय कहा; सिद्धशिला में एक भी सिद्ध नहीं है। सिद्धशिला के ऊपर तीन वातवलय हैं। कौन-कौनसे हैं ? *श्रोता: घनोदधिवातवलय।* घनोदधिवातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय। तो अंतिम जो तनुवातवलय है और उसके भी टॉप में क्योंकि वह तनुवातवलय भी १५७५ धनुष प्रमाण है और उसके टॉप मोस्ट जो लास्ट लेव्हल है उसमें सभी जो सिद्ध यहां से; यानी अरिहंत अवस्था तो यहां थी, सिद्ध अवस्था की शुरुआत तो यहीं थी; एक समय मात्र में वे वहां पहुँच गये और सबके जो सिर के प्रदेश हैं वे एक लेव्हल पर हैं। यहां हमारे सबके पैर एक लेव्हल पर हैं, वहां सबके टॉप मोस्ट जो भाग हैं वे एक लेव्हल पर हैं और हर एक की हाइट अलग-अलग है। कोई ५०० धनुष के, कोई ५२५ धनुष के कहो आप, या कोई अभी महावीर हैं तो वे ७ हाथ के हैं। तो इसतरह से ऊपर की लेव्हल समान और नीचे असमान। कोई खड्गासन में हैं तो कोई पद्मासन में हैं। तो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्धालय में तो सब मिलकर एक हो जाते होंगे कि नहीं हो जाते होंगे ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। हर एक का अपना-अपना अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। सबका मिलकर तो इकट्ठा सुख होता होगा कि नहीं होता होगा ? तो हर एक के अपने-अपने प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं; अपने-अपने प्रदेश भिन्न हैं; एक ही आकाश के प्रदेश में रहते हुये भी, हर एक का अपना-अपना द्रव्य अलग है; अपना-अपना क्षेत्र अलग; अपना-अपना काल यानी परिणमन अलग; अपना-अपना भाव अलग है; गुण पर्याय सब अलग-अलग हैं हर एक के। यह तो, यह तो मूल बात है। द्रव्यों की स्वतंत्रता की यह मूल बात है कि एक ही क्षेत्र में रहते हुये प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना स्वचतुष्टय भिन्न-भिन्न है।

अब निगोद की बात करेंगे, सिद्धों की बात देख ली हमने। अनंत निगोद जीवों का एक शरीर है। मान लेते हैं मेरी हथेली जितना बड़ा है, इतना बड़ा तो है ही नहीं। तो इस एक शरीर में कितने जीव रहते हैं ? तो कहेंगे कि अनंत रहते हैं। अनंत तो रहते ही

हैं क्योंकि एक समय में तो अनंत का एक लॉट आता है; दूसरे समय में अनंत का दूसरा लॉट आता है, पहले अनंत वहां रह रहे हैं; तीसरे समय में और एक अनंत का लॉट आता है और सभी जीव अपनी-अपनी आयु पूरी करके निकल जाते हैं। जैसे स्कूल में हर साल, हम मान लेते हैं सौ-सौ बच्चे नये-नये आते हैं और जिन्होंने दसवीं पास की है, वे निकल चले जाते हैं। फिर भी वह स्कूल तो हमेशा हरा-भरा रहता है बच्चों से। ऐसे ही निगोद शरीर तो बना रहता है और उसमें हर समय अनंत-अनंत जीव उत्पन्न होते हैं; सब एक साथ उत्पन्न होनेवाले एक साथ मरते हैं, आगे पीछे नहीं मरते। हां, इतना कम्युनिझम है, हां, कि सबका शरीर तो एक है ही है, एक साथ उत्पन्न होनेवाले सबकी आयु का प्रमाण भी एक सरीखा ही है, सबका जो आहार ग्रहण करना यानी वह शरीर के परमाणुओं को जो ग्रहण करते हैं वह भी एक है, एक ही श्वासोच्छ्वास है; यानी सब समान है फिर भी प्रत्येक जीव का अपना-अपना अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। अपना-अपना स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव भिन्न-भिन्न है। हर एक का अपना-अपना कार्माणशरीर भिन्न है और तेजसशरीर भिन्न है। हर एक के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं। एक ही क्षेत्र में रहते हैं, एक साथ जन्मते हैं, एक साथ मरते हैं परंतु हर एक के परिणाम भिन्न- भिन्न हैं। कोई उसी निगोद पर्याय में दुबारा जन्म लेंगे और कोई वहां से मरकर संज्ञी पंचेन्द्रिय होकर उसी भव में मोक्ष भी जा सकते हैं। बादर निगोद से निकलकर सीधा मनुष्य होकर वहां उसी भव में मोक्ष भी जा सकते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं है। कितनी परिणामों की अलग-अलग भिन्नता होगी; एक ही शरीर में रहते हैं; अनंत एक साथ जन्में हैं; फिर भी हर एक का अपना-अपना अस्तित्व भिन्न, अपना-अपना परिणाम भिन्न-भिन्न है। इसको कहेंगे एकक्षेत्रावगाह रीति से रहते हैं।

अब यहां यही बात हो रही है कि वहां तो जीव एकक्षेत्रावगाह देखे हमने। उसी एक क्षेत्र में जितनी निगोद के शरीर की अवगाहना है, उसमें ही प्रत्येक जीव का कार्माणशरीर उतना बड़ा है। प्रत्येक जीव का तेजसशरीर उतना बड़ा है। अनंत जीवों के ये अनंत कार्माणशरीर और अनंत तेजसशरीर हैं फिर भी सबका औदारिकशरीर एक है, ख्याल में आती है यह बात- यह भिन्नता ? तो ऐसे ही यहां पर जो बात बता रहे हैं कि जीव के प्रदेशों में एकक्षेत्रावगाहरूप रहनेवाले अनंतानंत पुद्गल परमाणु हैं, वे कार्माणरूप परिणमित हुये हैं उसको तो कार्माणशरीरवाले कहेंगे; वहां तो

तेजसशरीरवाले परमाणु भी हैं; परंतु इसके अलावा वहां अन्य भी पुद्गल हैं न, जो अभी तक कर्मरूप परिणमित नहीं हुये - जो तेजसशरीररूप परिणमित नहीं हुये हैं; अन्य जिसका अपना कुछ लेना-देना नहीं है; उसको कहेंगे उस एकक्षेत्र में रहनेवाले परमाणु। कितने हैं ? अनंतानंत हैं ! तो जो अभी तक इस जीव से उसका कुछ लेना-देना नहीं है ऐसे अनंतानंत परमाणु वहां रहते हैं; तो उसमें से अनंतवें भागप्रमाण परमाणु ही कर्मरूप होने को योग्य होते हैं। जीव के एक ही क्षेत्र में रहनेवाले, जहां जीव रहता है उसी क्षेत्र में अनंतानंत पुद्गल परमाणु पाये जाते हैं - जो कर्मरूप के होने योग्य हैं किन्तु उसमें से कितने ? अनंतवें भाग परमाणु ही योग्य पुद्गल हैं यानी वे कर्मरूप परिणमने के योग्य पुद्गल हैं; उसको योग्य पुद्गलद्रव्य कहा। अब उसमें भी दो भेद करेंगे, वह तो हम देखेंगे। पहले में पहले उसको एक शरीर या एकक्षेत्र कहा है उसकी बात हम देखते हैं यहां पर। प्रदेशबंध यहां तैंतीस गाथाओं द्वारा कहेंगे। १८५ नंबर की गाथा है।

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं॥ १८५॥

उसमें और भी भेद कर दिये, पढ़ेंगे हम। सूक्ष्म निगोदिया का शरीर, हमने देखा न सूक्ष्म निगोद का जो शरीर है, उसकी अवगाहना यानी उसका साइझ कितना है ? तो कहते हैं घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र। घनांगुल देखा था न ? हां, उसका असंख्यातवां भाग। अंगुल यानी जो उसकी लंबाई है एक लाइन में, उसको हम अंगुल कहेंगे। जैसे यह हॉल कितना लंबा है ? जो कुछ हम तीस, चालीस फीट कहेंगे वह उसकी लंबाई होगी। अब वह कितना लंबा और चौड़ा है ? तो हम कहेंगे कितना स्क्वेअर फीट है उसको क्षेत्रफल कहेंगे और उसका घनफल कितना है तो उसकी हाइट भी देखेंगे। तो लंबाई, चौड़ाई और उसकी जो ऊंचाई, तीनों ही जो भुजायें हैं उनको आपस में गुणा करेंगे तो उसका घनक्षेत्रफल मिलेगा; जिसको हम घनफल कहते हैं। ऐसे ही यह निगोदशरीर की अवगाहना यानी साइझ कितना है ? तो घनांगुल का असंख्यातवां भाग। अंगुल गुणा अंगुल को प्रतरांगुल कहते हैं और अंगुल गुणा अंगुल गुणा अंगुल को घनांगुल कहते हैं; यानी अंगुल का वर्ग उसको कहेंगे प्रतरांगुल और अंगुल का घन उसको कहेंगे घनांगुल। तो निगोद के शरीर की अवगाहना कितनी

है? तो कहते हैं घनांगुल का असंख्यातवां भाग। यह जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्र है यानी किसी जीव की - शरीर की छोटी में छोटी अवगाहना कितनी है ? तो इतनी छोटी है। इससे छोटा या इससे छोटी जगह उतने में कोई एक जीव रह जाये ऐसी बात नहीं बनती यानी जीव मिनिमम इतना क्षेत्र तो व्यापेगा ही।

जीव में प्रदेश कितने हैं ? जो जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं उतने प्रत्येक जीव के प्रदेश हैं। लोकाकाश के प्रदेश तो आकाश के स्पेस की बात हुयी और यहां जीव के प्रदेश यानी आत्मा के प्रदेश हुये। उस लोकाकाश में, उस स्पेस में, यदि एक जीव पूरा फ़ैल जायेगा तो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर आत्मा के एक-एक प्रदेश हो जाये इतने प्रत्येक जीव में प्रदेश हैं और सभी जीवों के प्रदेशों की संख्या वही उतनी ही है। कितनी है ? लोकप्रमाण असंख्यात। लोकाकाश में जितने प्रदेश हैं; वैसे हर एक जीव में, सिद्धों में भी, निगोद में भी, आप में भी, हमारे में भी, हर एक में इतने प्रदेश हैं; ये आत्मा के प्रदेश हैं। यदि फ़ैल जायें तो पूरे लोकाकाश प्रमाण फ़ैल सकते हैं। मालूम है ? आपने जाना है, देखा है ? देखा है यानी जाना है कि नहीं ? हां। *श्रोता: केवली समुद्घात।* केवली समुद्घात होता है, तेरहवें गुणस्थान के अंत की ओर। अभी उसका कारण हम नहीं देखेंगे। परंतु जीव यानी मुनिराज जो हैं, जो केवलज्ञानी हैं, अरिहंत अवस्था के हैं, अभी चौदहवें गुणस्थान में जानेवाले हैं, उनके अघातिकर्मों की स्थिति की समानता होने के लिये जो कुछ वहां कार्य बनता है तो उनके प्रदेश फ़ैल जाते हैं। कैसे ? अभी जहां मुनिराज बैठे हैं उनके आत्मप्रदेश पहले में पहले ऐसे ऊपर से नीचे तक खंभे जैसे फैल जाते हैं। उसको कहेंगे दंड। फिर ऐसे फ़ैल जाते हैं हॉरिझॉन्टल, लोकाकाश के एक एण्ड से दूसरे एण्ड तक उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: कपाट।* कपाट। ऐसे आड़े तो फैले फिर आगे पीछे भी फ़ैल जायेंगे लोकाकाश के एण्ड तक तो उसको कहेंगे प्रतर; वे लोकाकाश के एण्ड तक जाते हैं परंतु वातवलयों में प्रवेश नहीं करते हैं। चौथे समय में वातवलय सहित सर्वत्र प्रवेश कर जाते हैं; वातवलय यानी लोकाकाश के बाजूवाला वातवलय, बीचवाले नहीं - तो उसको कहेंगे लोकपूरण समुद्घात यानी लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर अरिहंतों के एक-एक प्रदेश स्थित हैं यानी सर्वत्र वे प्रदेश फ़ैल जाते हैं; एक ही समय के लिये, फिर सिमटते हैं जो चौथा समय हुआ न ? पहला कौनसा ?- दंड, फिर कपाट, प्रतर और लोकपूरण। फिर प्रतर,

फिर कपाट, फिर दंड फिर मूलशरीर। इन आठ समयों में उनका सारा वह जो कोई कार्य तीन कर्मों की स्थिति का घटना वह हो जाता है।

यहां यही बात है कि प्रत्येक जीव के इतने प्रदेश हैं। फिर भी वे सारे प्रदेश समेटकर अभी कितने भाग में समा गये हैं ? अभी हम आपके जितना देह का प्रमाण है उतने में। तो हमने क्या समझा ? वह तो ठिंगना है न और हम कैसे टॉल है ! अच्छा है तो किसके प्रदेश बड़े हैं ? जीव के ? पुद्गल के ? हां, तो उसमें हमें क्या मिला ? कुछ नहीं मिला। फिर भी हम एक दूसरे को शरीररूप देखते हैं न ? हां, तो यह ठिंगना है और मैं ऊंचा हूं। मेरा प्रश्न है आदिनाथ भगवान को अधिक सुख होगा कि महावीर भगवान को ? अरे ! वे भगवान महावीर तो ७ ही हाथ के हैं और वे आदिनाथ भगवान ५०० धनुष के हैं तो हमें कौनसे भगवान को नमस्कार करना चाहिये ? *श्रोता: दोनों।* दोनों ! उसमें तो कोई भेद नहीं है, हमको पता है। परंतु आपस में ? अरे ! यह तो कितना ठिंगना है ? हम कैसे अच्छे लंबे हैं ! ऐसा समझते हैं कि नहीं समझते ?

देखो यहां यह जो बात देख रहे हैं हम, कि एकक्षेत्र किसको कहा कि ये जो लोकाकाश प्रमाण प्रदेश हैं, वे अभी उस निगोद के शरीर में सारे प्रदेश वहां समेटे हैं। वह मान लो इस क्लिप जितना है इतना लंबा बड़ा नहीं होता निगोद का शरीर; समझने के लिये बता रही हूं। ये सारे प्रदेश यदि स्प्रेड हो जाते तो पूरे लोक में व्याप्त हो जाते। वे अभी कितने प्रदेशों में समेटे हुये हैं ? इतने से प्रदेशों में। तो इसमें जीव के प्रदेश छोटे हुये कि नहीं ? *श्रोता: संकुचित होते हैं।* संकुचित होते हैं यानी क्या होता है ? प्रदेशों का संकोच होता है का अर्थ क्या होता है ? सिकुड़ जाते हैं ? प्रदेश सिकुड़ जाते हैं ? प्रदेश किसको कहते हैं ? मिनिमम जिसका साइझ है उसको प्रदेश कहा हमने। यदि प्रदेश सिकुड़ जायेगा तो अभी मिनिमम से भी मिनिमम हो जायेगा, कैसे क्या होगा ? तो प्रदेश तो सिकुड़ नहीं सकता। तो क्या होगा ? संख्या कम हो जायेगी ? जो संख्या हमने देखी थी, मान लेते हैं लाख प्रमाण थे और अभी यह दस ही प्रदेश में व्याप्त हो रहा है। लोकाकाश जितने ही प्रदेश हैं न ? हम उसके बदले लाख प्रदेश कहेंगे या सौ प्रदेश समझो न ! गणित ज़रा आसान हो जायेगा। तो सौ प्रदेश पूरी संख्या है। प्रदेशों की संख्या कितनी है ? *श्रोता: सौ।* सौ है। और अभी यह शरीर का साइझ कितना है ? दसप्रदेशी है। तो क्या है यह सौ प्रदेश जो बड़े-बड़े थे, वे छोटे होकर

उसके वन टेंथ, वन टेंथ प्रदेश हो जायेंगे ? हम उसको प्रदेश ही नहीं कहेंगे क्योंकि प्रदेश यानी छोटे में छोटा वह जो कुछ उसका साइझ है उसको हमने प्रदेश कहा।

हमने तो देखा है, आत्मा में तो संकोच और विस्तार होने की शक्ति है। वह विभाव है कि स्वभाव है ? *श्रोता: स्वभाव है।* स्वभाव है ? *श्रोता: विभाव है।* विभाव है क्योंकि सिद्धों में तो नहीं होता है। तो यह असंकुचितविकासत्व क्या है ? *श्रोता: शक्ति।* तो किसका विकास होता है ? किसका संकोच होता है ? प्रदेशों का ? असंकुचितविकासत्व में किसका संकोच होता है ? असंकुचितअविकासत्व ऐसा नहीं है न ? असंकुचितविकासत्व यानी असंकुचित और विकासत्व ऐसा ही है, उसमें 'अ' मत लगाना। तो उसका अर्थ क्या है ? *श्रोता: अवगाहना ?* हां-हां ? *श्रोता: प्रदेश नहीं अवगाहना।* अवगाहना का संकोच और विस्तार नहीं होता है ऐसा। *श्रोता: शक्ति की बात है न !* कौनसी शक्ति की ? *श्रोता: आत्मा की।* देखो, असंकुचितविकासत्व में प्रदेशों से कोई संबंध नहीं है। वहां तो आत्मा में ऐसी शक्ति है कि प्रत्येक गुण का 'संकोच वगरनो विकास थाय' असंकुचितविकासत्व यानी संकोच बिना का पूर्ण विकास, अमर्यादित विकास। ज्ञान का विकास कितना होता है ? *श्रोता: अमर्यादित।* अमर्यादित। जिसको हम अनंतज्ञान कहते हैं। दर्शन का विकास कितना होता है ? अमर्यादित, जिसको हम अनंतदर्शन कहेंगे, केवलदर्शन कहेंगे। हर एक में लगाना। सुख कितना प्रकट होता है ? वीर्य कितना प्रकट होता है ? तो अनंत। जिसमें कोई लिमिट नहीं है लिमिटलेस विकास जिसको हम कहेंगे यह ऐसी आत्मा में शक्ति है। वह प्रदेशों के संकोच विस्तारवाली वह शक्ति है ही नहीं है। तो हमारा प्रश्न था ये सौ प्रदेश सिकुड़कर, सिमटकर दस प्रदेशों में आ गये हैं तो प्रदेश छोटे होने चाहिये कि नहीं चाहिये ? *श्रोता: नहीं।* यानी इसका अर्थ- प्रदेशों का संकोच नहीं हुआ है।

फिर भी संकोच तो हुआ है साइझ का। जैसे बड़ा स्पंज हाथ में लिया था हमने उसको ऐसा मुठ्ठी में दबा लिया तो उसका मॅटर- उसका मटेरियल कम हुआ कि नहीं हुआ ? तो क्या हुआ ? वह एक दूसरे में अवगाहना दी उसने, एक ही प्रदेश पर अनेक प्रदेश रहे। वैसे सौ प्रदेश अगर दस प्रदेश में आ जाते हैं तो उसका अर्थ एक प्रदेश ने दूसरे प्रदेश को अवगाहना दी है, वे सुपरिंपोझ हुये हैं। यदि स्प्रेड होते तो सौ प्रदेश सौ प्रदेशों में आते। अभी संकोच हुआ है इसका अर्थ एक-एक प्रदेश में दस-दस प्रदेश

आये हैं और यह बात गुरुदेवश्री के प्रवचनों में आयी है। आत्मवैभव, आत्मप्रसिद्धि और समयसार के प्रवचन रत्नाकर के ग्यारहवें भाग में हैं, उनमें सभी में नियतप्रदेशत्व शक्ति में यह बात आयी है, हां, चौबीसवीं शक्ति। क्योंकि इसके बारे में बहुत भ्रमणा चलती है और उसका उस असंकुचितविकासत्व शक्ति के साथ कुछ घोटाला कर देते हैं। क्योंकि यहां प्रदेश एक दूसरे को अवगाहना देते हैं। एक ही आत्मा के प्रदेश अपने ही प्रदेशों को एक दूसरे में अवगाहना देते हैं तभी तो वह सिकुड़कर इतने प्रदेशों में समा जायेगा। नहीं तो क्या ? प्रदेशों को अगर एक-एक प्रदेश को हम छोटा समझेंगे, प्रदेशों का संकोच होता है मानेंगे तो प्रदेश छोटे नहीं होते क्योंकि प्रदेशों की संख्या उतनी ही रहती है और प्रदेशों का साइझ भी उतना ही रहता है तो अभी रहा क्या ? तो वे सुपरइंपोझ होंगे।

एक दूसरे को अवगाहना देंगे तो ही वे एक क्षेत्र में वहां रह सकते हैं। फिर भी ऐसा कभी नहीं होता कि आकाश के एक ही प्रदेश पर जीव के सभी असंख्यात प्रदेश समा जायें ऐसा कभी नहीं होगा। यानी छोटे में छोटी अवगाहना हो जायेगी, जैसे निगोद के शरीर में जीव के सारे प्रदेश वहां रह रहे हैं तो वह कितने प्रदेश रोकेगा ? यह घनांगुल का असंख्यातवां भाग, इतने प्रदेश तो रोकेगा ही; उसको कहेंगे असंख्यात प्रदेश। कौनसावाला असंख्यात ? यह घनांगुल का असंख्यातवां भागवाला असंख्यात क्योंकि असंख्यात के भी असंख्यात प्रकार हैं, भेद हैं, व्हेरिएशन्स हैं। क्या करें ! क्योंकि क्या होता है कि यह कुछ अपनी कल्पना से उसका अर्थ लगाते हैं और फिर आगम से विरुद्ध प्ररूपणा भी होती है और फिर केवल अपनी ही भ्रमणा नहीं होती परंतु वे लोग दूसरों को भी समझाते हैं तो सबकी वह गलत प्ररूपणा चलती रहती है। तो यहां जो बात देख रहे हैं कि यह तो घनांगुल का असंख्यातवें भागप्रमाण जो क्षेत्र है उसको एकक्षेत्र कहा। क्योंकि निगोद में तो अनंत जीव रहते हैं और हम अगर कहेंगे जीव ॲव्हरेज कितना क्षेत्र रोकता है ? तो ॲव्हरेज में जो अनंतों की अवगाहना होगी उसको ॲव्हरेज कहेंगे। हमारी अवगाहना कौन लेगा ख्याल में ? बड़ी-बड़ी अवगाहनावाले जीव हैं इस विश्व में, वे कितने हैं ? थोड़े हैं, असंख्यात होंगे और यह छोटी अवगाहनावाले अनंत हैं। इसलिये उनकी अपेक्षा से उसको एकक्षेत्र कह दिया। घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जो निगोद की अवगाहना है उस क्षेत्र को यहां

एकक्षेत्र कह दिया और इस एकक्षेत्र में वहां अनंतानंत पुद्गल परमाणु रहते हैं, उस उतनी अवगाहना में अनंतानंत पुद्गल परमाणु रहते हैं, वे कैसे हैं ? तो कर्मरूप परिणमने के योग्य हैं। यह बात ख्याल में आयी ?

जीव के ही प्रदेशों में यानी हम जब कहते हैं न कि हम छोटे थे। छोटे थे का अर्थ क्या है ? जब तत्त्वज्ञान सीखना प्रारंभ किया था तब सात तत्त्व सीखते थे। तो क्या कहा ? आस्रव यानी क्या ? कर्मों का आना। जैसे हम सोचते थे बाहर से कहीं से आते होंगे और फिर खिरना यानी यहां से कहीं चले जाते होंगे। ऐसा है नहीं है, हां। उसी क्षेत्र में जो रहते हैं; प्रवचनसार में भी यह बात आयी है; यह कर्मरूप होने योग्य उसी क्षेत्र में से उसका परिणमन हो जाता है। तो यहां कहते हैं उस एकक्षेत्र में जो अवगाहरूप से रहनेवाला ऐसा जो कर्मरूप होने के योग्य अनंतानंत पुद्गलद्रव्यों का समूह है। अभी उसमें भी दो भेद किये - एक है सादिद्रव्य और एक है अनादिद्रव्य। तो ऐसे जो परमाणु हैं, तो पड़े हैं न वहां पर ? कर्मरूप होने के योग्य ऐसे वहां अनंतानंत पुद्गल परमाणु पड़े हैं, तो जीव के मिथ्यात्व आदि के निमित्त से वे कर्मरूप परिणमित होते हैं। यह हुआ निमित्त; वहां पर परमाणु स्वयं कर्मरूप परिणमने योग्य हैं और वे उपादान शक्ति से कर्मरूप परिणमित होते हैं। क्यों ? तो क्यों में हम निमित्त को बताते हैं हमेशा। वे कौनसे हैं ? मिथ्यात्व आदि; आपको मालूम है मिथ्यात्व आदि में किसको लेना ? मिथ्यात्व.. *श्रोता: अविरति, प्रमाद, कषाय, योग।* मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। कहीं-कहीं प्रमाद को नहीं भी बताते हैं तो मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ऐसा भी कहने की पद्धति है। हां, कुन्दकुन्द आचार्य ने भी लिया, समयसार में भी लिया है, उसको द्रव्यप्रत्यय कहते हैं।

श्रोता: परमाणु के दो नाम कौनसे हैं ? यहां जो एक ही क्षेत्र में रहनेवाले जो अनंतानंत परमाणु हैं उसको क्या कहते हैं ? अनादिद्रव्य और सादिद्रव्य। यह क्यों कहा उसकी बात कहेंगे हम। अनादिद्रव्य किसको कहना और सादिद्रव्य किसको कहना ? तो यह जो सादिद्रव्य है; सादि यानी आदिवाला; तो किसकी आदि ? तो जिसको जीव ने कभी पहले ग्रहण करके छोड़ा था। कभी उस जीव ने उसको पहले ग्रहण किया था, अपने शरीररूप से ग्रहण किया या कर्मरूप से ग्रहण किया था। अभी हम कर्मरूप की बात करेंगे। पूर्व में; पूर्व में यानी कभी अनादिकाल से लेकर आज

तक कभी ना कभी उसको ग्रहण करके छोड़ा था। अनंतकाल में कभी ना कभी उसके साथ संयोग हुआ था और अभी वह जीव के क्षेत्र में पड़ा है उस द्रव्य को सादिद्रव्य कहेंगे और अनादिद्रव्य यानी अनादिकाल से लेकर आज तक उस जीव के साथ उसका संयोग हुआ ही नहीं था कभी, उसको कहेंगे अनादिद्रव्य। यह तो एक जीव की अपेक्षा हुआ। इसीतरह इस विश्व में सभी जीवों की अपेक्षा बात करेंगे तो सादिद्रव्य और अनादिद्रव्य है। सादिद्रव्य का अर्थ है किसी न किसी, अनंत जीवों में से किसी न किसी जीव ने कभी ग्रहण करके छोड़ा है उसको सादिद्रव्य कहेंगे और अनादिद्रव्य उससे भी अधिक है। कैसा ? एक भी जीव के साथ उसका कोई संबंध आया ही नहीं। क्योंकि यह पॉसिबिलिटि कितनी रेअर है कि एक भी जीव के साथ उसका संबंध नहीं आया हो ! परंतु ऐसे अनंतानंत पुद्गलद्रव्य हैं; एक भी जीव ने कभी उसका ग्रहण करके उसको छोड़ा नहीं है। क्योंकि इस विश्व में पुद्गल कितने हैं उसीका हमको पता नहीं है। हमने तो यह रट लिया है न, जीव कितने हैं ? अनंत। पुद्गल ? *श्रोता: अनंतानंत।* अनंतानंत। अनंतानंत का अर्थ क्या ? अनंतगुणा अनंत।

अब थोड़ा उसको भी देखेंगे- यह अनंतगुणा अनंत क्या होता है ? हमने द्विरूप वर्गधारा देखी थी एक बार। द्विरूप यानी दो; दो का वर्ग चार और वह आगे धारा देखी थी। उसको कहेंगे वर्गधारा। कौनसी वर्गधारा ? *श्रोता: द्विरूप।* दो का वर्ग चार, अभी उस धारा में सभी वर्ग संख्यायें होती हैं। चार का वर्ग सोलह, सोलह का वर्ग दो सौ छप्पन, दो सौ छप्पन का वर्ग पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस जिसको हम पणट्ठी कहते हैं। पणट्ठी का वर्ग... *श्रोता: बादाल।* बादाल; बादाल का वर्ग इकट्ठी; आगे चले जाओ- अनंत वर्गस्थान केवलज्ञान तक होते हैं; वर्ग, वर्ग, वर्ग, वर्ग, करते जायेंगे तो अंतिम स्थान तो केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद होंगे। हां, तो ऐसे वर्ग करते, करते, करते, करते अनंतानंत स्थान जाने पर जीवों की संख्या आती है। वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, करते-करते अनंत स्थान आगे जायेंगे हम, तब जाकर जीवराशिवाला अनंत उसकी संख्या आयी। अब वह जीवराशिवाले अनंत से आगे शुरू करते हैं क्योंकि आगे बहुत जाना है न ! तो उसके एक बार वर्ग किया, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग, कितने बार ? *श्रोता: अनंत।* अनंत नहीं अनंतानंत।

अनंतानंत किसको कहते हैं ? छोटेवाले अनंत को कहते हैं जघन्य परीतानंत।

जघन्य परीतानंत रेज्ड टु जघन्य परीतानंत इज ईक्वल टु जघन्य युक्तानंत और ऐसे जघन्य युक्तानंत इन टु जघन्य युक्तानंत वह होता है जघन्य अनंतानंत और उसके वर्ग करते जाओ तो मध्यमवाला कोई अनंतानंत। इतनी बार जीवराशि का वर्ग, वर्ग, वर्ग, वर्ग, इतनी बार वर्ग करना है। एक बार वर्ग किया तो राशि कितनी ज्यादा हो जायेगी और उसका फिर वर्ग करो, उसका फिर वर्ग करो। एक दो चार बार नहीं, अनंतानंत बार, तब जाकर पुद्गलराशि आती है। आगे भी सुनना है। अब वह पुद्गलराशि के आगे अनंतानंत वर्गस्थान चले जाओ तो तीन काल के समय आते हैं; तीन काल के समयवाली जो अनंतराशि है उसके आगे अनंतानंत स्थान चले जाओ तो आकाश के प्रदेश आते हैं और उसके आगे अनंतानंत चले जाओ तो एक द्रव्य में गुणों की संख्या आती है। इतने गुणधारी हम स्वयं हैं- पता ही नहीं हमको और केवलज्ञानियों ने यह सब एक समय में जाना है। उन गुणों की तीनों काल की पर्याय कितनी अनंतानंत होगी और उसके एक-एक के अविभागप्रतिच्छेद कितने होंगे ! हर समय के अलग-अलग और इन सबको युगपत् और भिन्न-भिन्न एक समय में केवलज्ञानी जान रहे हैं। तो केवलज्ञान क्या है ? हमको पता ही नहीं है न !

यहां किसकी बात है ? सादिद्रव्य और अनादिद्रव्य क्या है उसकी यहां चर्चा चल रही है। सादिद्रव्य, एक जीव की अपेक्षा सादि-अनादि कह सकते हैं और अनंत जीवों की अपेक्षा भी सादि-अनादि कह सकते हैं। एक जीव की अपेक्षा क्या बात है ? उस पर्टिक्युलर, उस विशिष्ट जीव ने, उस विवक्षित जीव ने अनादि से लेकर आज तक कोई पुद्गलद्रव्य ग्रहण करके छोड़ा है उसको कहेंगे सादिद्रव्य और उस एक विवक्षित जीव की अपेक्षा, अनादि से लेकर आज तक उस जीव का कोई संबंध नहीं आया है उसको कहेंगे अनादिद्रव्य। यह एक जीव की अपेक्षा बात हुयी। अब सभी अनंत जीवों की, नाना जीवों की अपेक्षा बात करेंगे तो वहां ऐसा भी द्रव्य है जो किसी न किसी जीव ने ग्रहण करके छोड़ा है; किसी एक भी जीव ने ग्रहण करके छोड़ा है तो उसको हम सादिद्रव्य कहेंगे। सभी जीवों की अपेक्षा बात कर रहे हैं न और जिस पुद्गल को किसी एक भी जीव ने, अनादि से लेकर आज तक ग्रहण किया ही नहीं है कभी, उसको कहेंगे.. *श्रोता: अनादिद्रव्य।* अनादिद्रव्य। कभी किसी जीव के साथ उसका कोई संबंध नहीं आया है। तो यह पुद्गलद्रव्य कितना होगा ? ख्याल में आती है न बात ?

यहां यह अनादिद्रव्य और सादिद्रव्य देख रहे हैं। तो देखो यहां क्या कहते हैं ? यह एकक्षेत्र-अनेकक्षेत्र तो देखा हमने। एक जीव का क्षेत्र वह एकक्षेत्र और बाकी सब अनेकक्षेत्र और उसमें जो किसी न किसी जीव ने ग्रहण किया है वह सादिद्रव्य और अनादि से लेकर किसीने भी कभी भी ग्रहण नहीं किया है वह अनादिद्रव्य। तो वह कितना होता है ? उसका प्रमाण कितना होता है ? तो कोई एक जीव एक समय में यदि ग्रहण करेगा; कर्म परमाणुओं की ही बात चल रही है अपनी यहां पर- तो कितना ग्रहण करता है ? एक समयप्रबद्ध यानी एक समय में अनंत परमाणु ग्रहण करता है। यह जघन्य योग से ग्रहण करेंगे तो समयप्रबद्ध थोड़ा छोटा होगा और उससे असंख्यात गुणावाला जो योग है - मॅक्झिमम उत्कृष्ट योग, उससे ग्रहण करेंगे तो असंख्यात गुणावाला समयप्रबद्ध जिसे हम उत्कृष्ट समयप्रबद्ध कहेंगे। तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध में मॅक्झिमम नंबर ऑफ परमाणु ग्रहण होंगे। तो मान लेते हैं हर समय उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ग्रहण किया; मान लेते हैं- हर समय तो उत्कृष्ट ग्रहण करेगा नहीं क्योंकि कोई भी जीव किसी एक ही योग में लगातार रह नहीं सकता; तो अगर हम मान भी लेते हैं कि हर समय उत्कृष्ट योग से उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ग्रहण किया, एक समय में उत्कृष्ट समयप्रबद्ध - अब कितने समय अभी तक बीत गये हैं अनादि से ? एक, एक, एक, एक समय को ले लेना है तो अनादि से यानी अतीतकाल जितना है सारा भूतकाल अनंत, अनंत, अनंत और हर समय में उत्कृष्ट समयप्रबद्ध यदि ग्रहण किया है तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को अतीतकाल के समयों से गुणा करना; वह सब क्या होगा ? सादिद्रव्य। ग्रहण करके छोड़ा है न ? उसको कहेंगे सादिद्रव्य और इसके अलावा जो किसीने ग्रहण ही नहीं किया है यानी पूरी पुद्गलराशि मायनस सादिद्रव्य इज ईक्वल टु अनादिद्रव्य।

फिर से - *श्रोता: शिरा पचाना है।* अच्छा, हलवा पचाना है। क्या करें ? वहां खाने में कुछ मिष्टान्न आता है तो कैसा अच्छा लगता है ! भले ही वह गरिष्ट हो तो भी पचाने की ताकत रखते हैं हम और यहां पर कुछ गरिष्ट आता है तो ? *श्रोता: अच्छा नहीं लगता।* अच्छा नहीं लगता ! देखो, यह जीव और पुद्गल इनका तो आपस में संबंध आता रहता है। यहां तो हम कार्माणवर्गणा की अपेक्षा बात कर रहे हैं। वैसे जो तेईस जाति की वर्गणायें हैं; उसमें जीव के साथ संबंध रखनेवाली तो मात्र पांच ही वर्गणायें हैं।

कौन-कौनसी हैं बहन ? *श्रोता: आहारवर्गणा।* आहारवर्गणा, तेजसवर्गणा, *श्रोता: तेजसवर्गणा।* भाषावर्गणा, *श्रोता: भाषावर्गणा।* मनोवर्गणा, *श्रोता: मनोवर्गणा।* और कार्माणवर्गणा। इन्हींको जीव ग्रहण करता है छोड़ता है। हां, उनका परिणमन अलगरूप से हो सकता है। कार्माणवर्गणारूप से ग्रहण किया है; उनका कार्माणशरीर हो गया; फिर परमाणु छूट गये और अन्य वर्गणारूप भी हो गये; कुछ भी हो सकता है उनका। फिर भी वह जीव ने एक बार ग्रहण करके छोड़ा हुआ कहने में आयेगा। एक बार किसी न किसीरूप में ग्रहण किया है और छोड़ा है तो उसको हम सादिद्रव्य कह देंगे।

श्रोता: नाना जीवों की अपेक्षा भी ? नाना जीवों की अपेक्षा भी और एक जीव की अपेक्षा भी। पहले एक जीव की अपेक्षा घटित करेंगे। एक जीव की अपेक्षा घटित करना है तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध मल्टिप्लाइड बाय अतीत काल इज ईक्वल टु एक जीव की अपेक्षा सादिद्रव्य।अब हम अनंत जीवों की अपेक्षा घटित करेंगे तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध मल्टिप्लाइड बाय अनंत जीवराशि, मल्टिप्लाइड बाय अतीत काल के समय, इज ईक्वल टु सभी जीवों की अपेक्षा सादिद्रव्य। अब जितना टोटल पुद्गलद्रव्य है उसमें से सादिद्रव्य को मायनस कर दो तो क्या बचेगा ? *श्रोता: अनादिद्रव्य।* अनादिद्रव्य। जो किसी भी जीव ने आज तक ग्रहण किया ही नहीं उसको हम अनादिद्रव्य कहेंगे। तो प्रत्येक जीव के प्रदेशों में कर्मरूप परिणमने योग्य; यह भी एक विशेषण लगाया क्योंकि अन्य भी परमाणु हैं जो कर्मरूप होने योग्य नहीं हैं; वह आहारवर्गणावाले होंगे, औदारिकशरीररूप होने योग्य होंगे, कोई तेजसवर्गणावाले हैं, कोई मनोवर्गणावाले हैं उसकी बात नहीं कर रहे; कर्मरूप परिणमने योग्य जो अनंतानंत परमाणु पड़े हैं उसमें कुछ तो सादिद्रव्य है और कुछ अनादिद्रव्य है। उसमें से ही कुछ जीव ग्रहण करके उसको कर्मरूप परिणमायेगा। यह जीव कर रहा है ऐसा कथन होगा। वे जो वर्गणायें हैं वे स्वयं कर्मरूप परिणमित होगी उसमें निमित्त क्या है कहते हैं, तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। अब इसका और क्या होता है आगे प्रदेश ग्रहण करने पर ? वह बात हम अपने आगामी सेशन में देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२२. प्रदेशबंध - बटवारा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है और यहां उसीके कर्मकाण्ड के आधार से जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका है, द्वितीयखण्ड जो कर्मकाण्ड का, उसके आधार से हम यहां कर्म के संबंध में कुछ विशेष जानकारी हासिल कर रहे हैं। हमारा प्रदेशबंध का प्रकरण शुरू हुआ है; प्रदेश यानी परमाणु। परमाणुओं का जो बंध होता है यानी कर्म का जो बंध होता है; कर्मबंध होता है इसका अर्थ क्या है ? कर्मरूप परिणमने योग्य पुद्गल परमाणु कर्मरूप परिणमित होते हैं और उसमें जीव के मिथ्यात्व आदि परिणाम निमित्तभूत हैं। तो ये कर्मरूप परिणमने योग्य पुद्गल ही कर्मरूप होते हैं। तो ये जो योग्य पुद्गल हैं तो वे कितने हैं ? जीव के क्षेत्र में जितने परमाणु स्थित हैं उनमें से अनंतवें भागप्रमाण परमाणु ही कर्मरूप परिणमने के योग्य पाये जाते हैं और अनंत बहुभागप्रमाण परमाणु कर्मरूप होने के अयोग्य हैं। अभी इस समय तो कहेंगे हम उसको। क्योंकि हमने देखा न ! उसमें भी बहुत सारी, अलग-अलग जाति की वर्गणायें पायी जाती हैं और वर्तमान में उनमें जिसमें योग्यता है कर्मरूप परिणमने की, सभी के सभी तो उसमें परिणमित नहीं होंगे और जितने परमाणु परिणमित होने योग्य हैं उसमें से भी जीव के उन परिणामों का निमित्त पाकर कुछ परमाणु कर्मरूप परिणमित हो जायेंगे। इसको कहेंगे योग्य और अयोग्य। कर्मरूप परिणमने के योग्यद्रव्य और कर्मरूप परिणमने के अयोग्यद्रव्य।

योग्यद्रव्य कितना है ? तो अनंतवें भागप्रमाण है। जितना पुद्गलद्रव्य है उसमें से परिणमने योग्यद्रव्य कितना है ? तो अनंतवें भागप्रमाण है। तो जो परिणमने योग्यद्रव्य है वह कौनसा है ? तो ऐसा भी पुद्गलद्रव्य उसमें है कि जीव ने पूर्व में ग्रहण करके छोड़ा हुआ है। यहां हम पहले एक जीव की अपेक्षा बात करेंगे। उसी जीव ने उसके आत्मप्रदेशों में जो कर्मरूप परिणमने योग्यद्रव्य है उसमें से ऐसा भी द्रव्य है; द्रव्य यानी परमाणु; ऐसे भी परमाणु हैं कि जो अतीतकाल यानी अनादि से आज तक कभी न कभी ग्रहण करके छोड़े हैं- उसको कहेंगे सादिद्रव्य; और ऐसे भी बहुत सारे परमाणु हैं जो अनादिकाल से आज तक एक बार भी ग्रहण नहीं किये हैं- उसको कहेंगे अनादिद्रव्य। यह तो एक जीव की अपेक्षा बात हुयी। सभी अनंत जीवों की अपेक्षा बात करनी है तो सभी अनंत जीवों ने; किसी भी जीव ने; कभी न कभी ग्रहण

करके जो छोड़ा है। एक भी जीव ने ग्रहण किया हो तो उसको हम सादिद्रव्य कह देंगे और अनंत जीवों में से एक भी जीव ने कभी भी उसको ग्रहण नहीं किया है ऐसा जो द्रव्य है उसको कहेंगे अनादिद्रव्य।

इस पर बहुत प्रश्न आये हैं सबमें एक ही प्रश्न रिपीट हुआ है। पुद्गलपरावर्तन और अर्धपुद्गलपरावर्तन काल का प्रमाण क्या है ? एक ने पूछा है पुद्गलपरावर्तन में जीव हर परमाणु को ग्रहण करता है फिर सादि की व्यवस्था कैसे ? क्योंकि पुद्गलपरावर्तन की परिभाषा समझी नहीं है। हम देखेंगे क्या है। प्रश्न ऐसा है कि *पंच परावर्तन में द्रव्यपरावर्तन में देखते हैं कि एक भी पुद्गलद्रव्य ऐसा नहीं है जिसे जीव ने अनंतबार ग्रहण करके न छोड़ा हो। फिर ये अनादिद्रव्य की संकल्पना कैसे होती है ?* जो भगवान ने जानी है और बतायी है वैसी होती है। हम देखेंगे पुद्गलपरावर्तन किसको कहते हैं ? *अनादिद्रव्य किसी जीवद्रव्य ने ग्रहण नहीं किया है तो पुद्गलपरावर्तन पूर्ण कैसे माना जायेगा ?* वही प्रश्न है। *जब जीवराशि से अनंतगुणा अनादिद्रव्य है तो अर्धपुद्गलपरावर्तन कैसे पूरा होता है ?* वैसे कहते हैं कि ऐसा कोई द्रव्य नहीं जो भोगा न हो। ये ऐसे सभी जो प्रश्न हैं वह यही बात है कि ऐसा हमने देखा न कि एक भी जीव ने ग्रहण नहीं किये हैं ऐसे अनंतानंत पुद्गल परमाणु इस विश्व में पड़े हैं; तो सबका प्रश्न क्या है कि पुद्गलपरावर्तन कैसे सिद्ध होगा ?

यानी वे पुद्गलपरावर्तन सुनना चाहते हैं। वह तो अपना विषय नहीं है फिर भी पुद्गलपरावर्तन किसको कहते हैं ? परावर्तन कहो, परिवर्तन कहो एक ही बात है। पंच परिवर्तन, परिवर्तन यानी घूम-फिर कर फिर उसी जगह में आना उसीको हम कहेंगे परिवर्तन या परावर्तन। जैसे हमारी घड़ी में तीन सुइयां हैं। मराठी में कांटे कहते हैं न ! एक सेकंडवाली, एक मिनटवाली, एक घंटेवाली सुई। वे क्या कर रही हैं ? बारह से शुरू करते हैं हम, वे घूमकर, फिर लौटकर वहीं पर आती हैं, फिर लौटकर वहीं पर आती हैं, फिर लौटकर वहीं पर आती हैं; तो उनका एक-एक परिवर्तन, एक-एक राउंड पूरा हो जाता है। पुद्गलपरावर्तन या द्रव्यपरावर्तन की परिभाषा ऐसी है कि किसी जीव ने उसके छह पर्याप्ति के योग्य; यानी उसके जो शरीर के योग्य हम कहेंगे या उसके कुछ अभी हमने देखा न; द्रव्य में तो उसको पुद्गल में दो प्रकार होते हैं - एक नोकर्म यानी शरीर के परमाणु और एक कर्म यानी कर्म के परमाणु; दोनों ही अपेक्षा से

कथन है, काल तो लगभग उतना ही है; तो किसी जीव ने एक समय में पहले समय में अनंतानंत पुद्गल यानी एक समयप्रबद्ध ग्रहण किया।

एक समयप्रबद्ध ग्रहण करता है यह तो मालूम है हमें। एक समयप्रबद्ध ग्रहण करता है तो उनका कैसे डिस्ट्रिब्यूशन होता है ? जैसे कर्मों की बात करेंगे। मान लेते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक वह मिथ्यात्व प्रकृति की निषेक रचना हो जायेगी। जितना लॉट एक समय में ग्रहण किया है वह क्या एक समय में ही कोई खिरेगा ? हो ही नहीं सकता। जो अनंतानंत परमाणु उसने एक समयप्रबद्ध में ग्रहण किये हैं उस एक-एक परमाणु के जो अनंत गुण हैं; हमें तो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार मालूम हैं; स्निग्ध-रुक्ष जो कुछ है, तो उसके जो अनंत गुणों की जो अनंत पर्यायें हैं; तो वे ही परमाणु उसी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, रुक्ष, और स्निग्ध वगैरह सभी अवस्थायें वैसी की वैसी होनी चाहिये। परमाणु भी वे ही और उनकी अवस्था भी उसी प्रकार की होनी चाहिये। एक भी परमाणु की अवस्था अन्य प्रकार की होगी तो नहीं चलेगी। जब कभी लौटकर यह जीव दुबारा ग्रहण करेगा सबको एक साथ क्योंकि जो एक साथ ग्रहण किये हैं उसमें से कुछ परमाणु तो ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक जीव के साथ पड़े रहेंगे। उसमें से एक-एक निषेक ॲट अ टाइम खिरेगा। जो खिरेगा तो क्या जीव के लिये ऐसा राह देखता बैठेगा कि यह जीव मुझे फिर कब ग्रहण करेगा ? ये सारे निषेक इकट्ठे हो जायें, फिर हम सारे मिलकर जीव के साथ चलें जायेंगे ऐसा कभी नहीं होगा क्योंकि उसका अन्य-अन्य परिणमन चलता रहेगा। इसका पूरा टेबल बहुत बड़ा है। जिसको कहेंगे जो छोड़े हुये ही ग्रहण करते हैं या नहीं छोड़े हुये ग्रहण करेंगे। उसमें भी ऐसा कहते है तो गृहीत द्रव्य को ग्रहण करते हैं या अगृहीत को ग्रहण करते हैं या मिश्र को ग्रहण करते हैं।

हम उदाहरण के द्वारा समझेंगे। जैसे हमारे पास एक लाख रुपये हैं। एक-एक के नोट हैं हमारे पास। कितने हैं ? एक लाख रुपये। हमने क्या किया ? घर में कहां रखे ? तो बँक में जमा कर दिये। बँक में जमा कर दिये तो दो दिन के बाद लेने को गये हम। हमें वे ही के वे ही नोट मिलेंगे कि नहीं मिलेंगे ? *श्रोता: नहीं मिलेंगे।* सब गॅरंटी के साथ कहते हैं कि नहीं मिलेंगे क्योंकि वहां तो कितने ही लोग आते-जाते हैं। भले एक रुपये की छोड़ो, सौ रुपये की भी अगर हम रकम जमा करेंगे तो भी वे ही के वे नोट नहीं मिलेंगे। हमें लाख रुपये मिलेंगे जरूर परंतु वह हो सकता है वह सबके सब कहीं

चले गये दूसरे के हाथ में और वे एक ही व्यक्ति के नहीं अलग-अलग व्यक्तियों के हाथ में चले गये हैं। तो हमें जो हमने जमा किये वे नोट नहीं मिलेंगे। तो जो हमें मिलेंगे वे क्या होंगे ? अगृहीत होंगे; अगृहीत जो हमने ग्रहण नहीं किये थे वे। हमने जो दिये थे, ग्रहण करके जो दिये थे वे नोट हमें नहीं मिले हैं, हमें कोई अन्य नये ही नोट; नये यानी नया नंबर यानी कोई अन्य जो हमने पहले नहीं दिये थे; हमारे नहीं थे वे नोट हमें मिल जायें, इसको कहेंगे अगृहीत। फिर दूसरी बात यह हो सकती है कि गृहीत और अगृहीत, मिलकर मिले - मिश्र। यानी उसमें से कुछ नोट हमारे दो, चार, पांच हमको हमारे मिल गये और बाकी अन्य हैं उसका प्रपोर्शन कुछ भी हो सकता है। तो ये हमने ग्रहण किया। या कभी बाय चान्स ऐसा भी हो सकता है न कभी जाकर, जो अन्य-अन्य जीवों ने ग्रहण किये थे वे उन्होंने दे दिये वहां और फिर इकट्ठे हुये और उतने के उतने, उतने के उतने चाहिये और वे के वे चाहिये; हां, और वैसे के वैसे चाहिये। अभी इतना हॅण्डलिंग में तो उसका कुछ तो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदल गये, वह नहीं चलेंगे। तो ये कैसी रेअर पॉसिबिलिटि है तो इसके लिये अनंत, अनंत, अनंतकाल चला जाता है।

वह किसरूप से उसमें कब अगृहीत का ग्रहण होता है कब गृहीत का ग्रहण होता है इसका पूरा टेबल है। अनुक्रम से उसी ऑर्डर से हम ग्रहण करेंगे तो ही गिनना। परंतु ये वे ही के वे परमाणु चाहिये यानी संख्या भी उतनी चाहिये, परमाणु भी वे ही चाहिये; एक परमाणु भी अधिक या कम नहीं चलेगा और उनकी सभी पर्यायें भी वैसी कि वैसी चाहिये। वैसी कि वैसी- पर्याय तो वैसी कि वैसी कहेंगे; परमाणु वे के वे ही और उनकी सारी संख्या भी उतनी ही चाहिये और उसका जैसे हम कहें न - स्पर्श जैसे हलका-भारी जो कुछ होगा, परंतु उसके अविभागप्रतिच्छेद भी उतने ही चाहिये। एक भी अविभागप्रतिच्छेद का डिफरन्स होगा तो नहीं चलेगा। तो यह कितनी रेअर पॉसिबिलिटि है फिर भी पूरी होती है। तो उसको कहेंगे एक पुद्गलपरावर्तन। उसमें पूरे विश्व के सभी परमाणु ग्रहण करके छोड़े ऐसा भी कहीं शास्त्र में उल्लेख आता है; वह तो समझाने के लिये, स्थूल कथन जीव को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये ऐसा कथन आता है, परंतु उसको पुद्गलपरावर्तन का कथन नहीं समझना। ऐसा कहते हैं कि ऐसा भी कोई द्रव्य नहीं कि जिसको हमने अनेक बार लेकर भोगा नहीं है, छोड़ा नहीं है। ऐसा कथन आता है परंतु विवक्षावश आता है। ये करणानुयोग का जो पुद्गलपरावर्तन

का स्वरूप है वह ऐसा है क्योंकि हमारे आगम में ही ये बात आती है कि ऐसे भी अनंतानंत पुद्गल हैं, परमाणु हैं जो किसी भी जीव ने आज तक ग्रहण किये ही नहीं और छोड़े भी नहीं। ग्रहण किये नहीं तो छोड़ने का सवाल कहां है। तो ये ग्रहण करने योग्य नहीं है यह तो बात कर्मरूप होने योग्य की बात चल रही है; उसकी बात अलग है।

हमने अभी देखा कि एकक्षेत्र में यानी जीव के क्षेत्र में। देखो, जो हमने घनांगुल का असंख्यातवां भाग कहा उसको एकक्षेत्र कहा। एकक्षेत्र में प्रदेश तो असंख्यात हैं। एक प्रदेश नहीं कहा, एकक्षेत्र कहा और उस एकक्षेत्र को छोड़कर बाकी पूरा लोकाकाश क्या है ? अनेकक्षेत्र है। इसे एकक्षेत्र कहेंगे तो बाकी जो है वह अनेकक्षेत्र। या यह एकक्षेत्र है तो इसके प्रदेशों की अपेक्षा इसीको अनेक भी कहेंगे। तो विवक्षावश उसका डिफरन्स है। हम ऐसा समझेंगे कि प्रत्येक जीव के प्रदेशों में- जहां जीव स्थित है उन्हीं प्रदेशों में अनंतानंत पुद्गल परमाणु पड़े हैं। कैसे हैं वे ? कर्मरूप परिणमने के योग्य हैं उसको योग्यद्रव्य कहेंगे, कर्मरूप परिणमने के अयोग्य हैं उसको अयोग्यद्रव्य कहेंगे। योग्यद्रव्य में भी सादि है और अनादि है; अयोग्य में भी सादि है और अनादि है। अभी उसकी योग्यता नहीं तो उसमें भी सादिद्रव्य, अनादिद्रव्य पाया जायेगा। जीव के मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग परिणाम हैं उनके निमित्त से जो योग्यद्रव्य है; भले वह सादि हो या अनादि हो; उस योग्यद्रव्य में से कुछ परमाणु कर्मरूप परिणमित होते हैं। वे जीव के प्रदेशों में ही स्थित हैं। ये परमाणु जो कार्माणशरीररूप से ऑलरेडि परिणमित हुये हैं; एक-एक समय में अनंत परमाणुओं का समयप्रबद्धरूप से ग्रहण होता है और वे कर्मरूप परिणमित होते हैं और जीव के साथ सत्ता में पड़े रहते हैं। अभी उसका लंबा-चौड़ा गणित है, उसको कहते हैं डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध यानी उसका बहुत बड़ा प्रमाण है। इतने कर्मपरमाणु कर्मरूप से यहां विद्यमान हैं।

अब उस एक-एक कर्मपरमाणु के साथ हमारा आपका जो कुछ लगता नहीं है ऐसे वहां स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण; मेरी भाषा में उसके साथ चिपके हुये ऐसे अनंत-अनंत परमाणु हैं। एक-एक कर्मपरमाणु के साथ- सबके साथ लेना; तेजसशरीर के एक-एक परमाणु के साथ, औदारिकशरीर के एक-एक परमाणु के साथ, सबके साथ लेना। एक-एक परमाणु के साथ अन्य अनंत-अनंत परमाणु, कितने अनंत ? जीवराशि से अनंतगुणा। इतने परमाणु एक-एक कर्मपरमाणु के साथ चिपके हुये चले आते हैं;

जो हमारे कर्म नहीं हैं, जो हमारे भावों के कारण वहां नहीं आये हैं। उसको कहेंगे विस्रसोपचय। क्या कहेंगे उसको ? *श्रीता: विस्रसोपचय।* विस्रसोपचय कहते हैं। ऐसे हर कर्म परमाणु के साथ भी हैं। तेजस परमाणु के साथ भी हैं, औदारिकशरीर के परमाणुओं के साथ भी रहते हैं। तो ये विस्रसोपचय वहां पड़े हैं अनंतानंत पड़े हैं; उसमें भी योग्यद्रव्य है, अयोग्यद्रव्य है; उसमें भी सादिद्रव्य है, अनादिद्रव्य है। हो सकता है उसीमें से ये कर्मरूप भी परिणमित होते हैं। जो कर्मरूप से छूटकर इसरूप से रह जायेंगे या उसकी अन्य अवस्था हो जायेगी। वह तो अपना विषय नहीं है न ! अपना विषय क्या है ? कर्म का जो बंध हो रहा है वह कौनसे परमाणु कर्मरूप होते हैं ? तो जो होने योग्य हैं वे ही होते हैं क्योंकि इसके कारणभूत वहां उपादान शक्ति वह कर्मपरमाणुओं की अपनी है और उसमें निमित्त कौन है ? तो जीव के परिणाम। हमने देखा न ! जीव का योग और जीव के कषाय ये उसमें निमित्त हैं परंतु कितने नंबर ऑफ़ परमाणु आते हैं उसमें तो जीव का योग निमित्त है। ये योग्यद्रव्य, अयोग्यद्रव्य, सादिद्रव्य और अनादिद्रव्य ऐसी बातें हमने देखी थी उसकी गाथा देखते हैं। सादिद्रव्य का प्रमाण कितना है ? ये सादि और अनादिद्रव्य है यह गाथा १८७ में देखेंगे।

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ॥ १८७॥

जो एकक्षेत्र में या जो अनेकक्षेत्र में रहनेवाला जो पुद्गलद्रव्य है उसके अनंतवें भागप्रमाण योग्यद्रव्य है। योग्य किसको कहना ? कर्मरूप परिणमने के योग्यद्रव्य और बाकी क्या है ? अयोग्यद्रव्य है। योग्यद्रव्य कितना है ? अनंतवें भागप्रमाण है योग्यद्रव्य और जो शेष है वह है अयोग्यद्रव्य और उन दोनों में **सादि अणादी भवेत्तत्र** या **सादि अनादी हवे तत्थ**। यानी उसमें ही सादिद्रव्य भी है अनादिद्रव्य भी है। यानी योग्यद्रव्य में भी सादि अनादि भेद हैं, जो कर्मरूप परिणमने के अयोग्य है उसमें भी सादि और अनादि ऐसे दो-दो भेद हैं। अब उसका प्रमाण कितना है ? इस सादिद्रव्य का या अनादिद्रव्य का प्रमाण कितना है ? वह १८८ नंबर की गाथा में बता रहे हैं।

जेट्ठे समयपबद्धे अतीदकाले हदेण सव्वेण।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं॥ १८८॥

उत्कृष्ट योग से उत्पन्न ऐसा; हमने देखा था जघन्य योग है तो समयप्रबद्ध का प्रमाण भी छोटा होगा और जहां योग उत्कृष्ट है वहां समयप्रबद्ध भी उत्कृष्ट होगा। योग किसको कहा था ? आत्मप्रदेशों का जो चंचलपना; चंचलपना यानी हाथ-पैर हिलाना वह चंचलपना नहीं है। हां, नहीं तो लोग समझते हैं ऐसे स्थिर बैठा है न, तो योग नहीं है और यहां कुछ दौड़ा-दौड़ी करेंगे तो योग ज्यादा होगा; ऐसा नहीं है। तो उत्कृष्ट योग से जो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ग्रहण किया जाता है उसको अतीतकाल के समयों से गुणा करना। पहले हमने देखा था न; मान लेते हैं कि हर समय उत्कृष्ट ग्रहण किया है। तो अभी तक कितने समय हो गये हैं अनादि से लेकर अभी तक ? तो अनंतकाल हो गया है; अनंत समयों से उत्कृष्ट समयप्रबद्ध को गुणा करने पर उसको सर्व जीवराशि के प्रमाण से गुणा करना। क्यों ? सभी जीवों ने जो ग्रहण करके छोड़ा था वह हमको लेना है। वह कहते हैं सभी जीवों संबंधी सादिद्रव्य है। फिर से देखेंगे।

सादिद्रव्य का अर्थ क्या है ? जो जीव ने ग्रहण करके छोड़ा है। इसलिये हम अधिक से अधिक लेना चाहते हैं तो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ग्रहण किया ऐसा मान लेते हैं। एक समय में उत्कृष्ट समयप्रबद्ध ग्रहण किया था। ऐसे कितने समय बीत चुके हैं आज तक ? अनादि से आज तक के अनंत समय गये हैं, अनंतकाल गया है। तो उसको हम उससे गुणा करेंगे तो- यह तो एक जीव की बात हो गयी। हमें तो सभी जीवों की अपेक्षा बात करनी है। तो जो सर्व जीवराशि है उससे उसको गुणा करेंगे। आप कहेंगे सिद्धों को क्यों लेना ? अरे ! उन्होंने भी ग्रहण करके छोड़कर गये न वे। हां, इसलिये सभी जीवराशि से उसको गुणा करेंगे। तो हमें जो मिलेगा तो सभी जीव संबंधी सादिद्रव्य हमको मिलेगा। किसी न किसी जीव ने कभी न कभी लेकर छोड़ा हुआ सभी जीवों का सादिद्रव्य है और अनादि किसको कहना ? संपूर्ण पुद्गलराशि में से इस सादिद्रव्य को मायनस कर देना- घटा देना। शेष जो हमें मिलेगा वह अनादिद्रव्य का प्रमाण मिल जायेगा। यह उसका प्रमाण हुआ। आगे भी १८९ में कहते हैं।

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं॥ १८९॥

एकक्षेत्र या अनेकक्षेत्र; एकक्षेत्र कहा, किसको कहा था ? वह एक जीव की अवगाहना को बताया था। उसमें रहनेवाला जो सादिद्रव्य है उसको जैसे जिनदेव ने

देखा है वैसे अनंत का भाग देना। यह जो सादिद्रव्य का अनंत प्रमाण है उसको उस अनंत का भाग देना क्योंकि अनंत के भी अनंत प्रकार हैं। तो जिनेन्द्र भगवान ने जिस अनंत को जाना है उस अनंत का भाग देना। क्योंकि हम अनंत के भेद का वर्णन कैसे करेंगे यहां ! तो वहां जो एकभाग का प्रमाण है वह अपने-अपने योग्य सादिद्रव्य है। सादिद्रव्य पूरा कितना है वह बता दिया। अब सादिद्रव्य में भी कर्मरूप परिणमने के योग्य और कर्मरूप परिणमने के अयोग्य ऐसे दो-दो प्रकार होंगे। कहते हैं वह उसका अनंतवां भाग कर्मरूप होने के योग्य है और अनंत बहुभाग कर्मरूप होने के अयोग्य है और वह घटाने पर उसका जो योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्य का प्रमाण आता है। आगे भी गाथा है हम उसका डायरेक्ट भावार्थ देखते हैं जो पं. टोडरमलजी ने लिखा है - मिथ्यात्वादिक के निमित्त से जीव प्रतिसमय यानी समय-समय प्रति यानी हर समय-प्रतिसमय कर्मरूप परिणमन को योग्य ऐसे समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं के समूह को ग्रहण करके कर्मरूप परिणमाता है। जीव कर्मरूप परिणमाता है ऐसा कथन यहां करणानुयोग में करेंगे फिर भी वहां वह कर्म की अवस्था कर्म के कारण होती है।

यहां कथन क्या होता है ? जीव ने क्यों ग्रहण किया उसको ? मिथ्यात्व आदि के निमित्त से इतने परमाणुओं को- एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं को कर्मरूप परिणमाया यानी उसने ग्रहण किया कहेंगे, परिणमाया कहेंगे या उपादान की भाषा में कहेंगे तो इतने परमाणु कर्मरूप हो गये अपनी शक्ति से। तो कभी-कभी क्या करता है वह ? कभी तो सादिद्रव्य को ग्रहण करेगा। सभी सादिद्रव्य हो सकता है। जो एक समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य ग्रहण करता है तो सब का सब सादि हो सकता है। कभी ऐसा भी हो सकता है बाय चान्स सब का सब अनादिद्रव्य है और कभी ऐसा भी होगा कि दोनों मिश्र हैं। उसमें कुछ परमाणु सादिवाले भी हैं और कुछ अनादिवाले भी हैं। ये तीनों ही प्रकार उसमें हो सकते हैं। तो अभी यह समयप्रबद्ध प्रमाण जो कहा इस समयप्रबद्ध का प्रमाण कितना है ? उसके लिये यहां १९१ नंबर की गाथा आती है।

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं॥ १९१॥

यह जो समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं का समूह; परमाणुओं के समूह को यहां समयप्रबद्ध कहा है। मैं प्रश्न पूछूंगी बराबर सुनना, वह समयप्रबद्धरूप परमाणुओं का

समूह सर्व प्रकार के रस, सर्व प्रकार के यानी पांच प्रकार के रस यानी वह किसरूप से परिणमित है ? अनंत परमाणु लिये हैं तो उन परमाणुओं में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* इन कर्मपरमाणुओं का कोई रस होगा न मीठा, कड़वा, कषायला ? *श्रोता: नहीं होगा !* बाकी लोग होगा कहते हैं, आप नहीं होगा कहते हैं। कर्म परमाणु है, पुद्गल परमाणु है उसमें अवश्य ही स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाये जायेंगे; पुद्गलद्रव्य ही उसको कहते हैं जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि हैं; जो रूपी है।

कौन-कौनसे रस हैं कर्म परमाणुओं में ? पांचों हैं क्योंकि एक की थोड़े ही बात है ? पांचों प्रकार के रसवाले उसमें परमाणु पाये जायेंगे। पांच प्रकार के वर्ण; कौनसे पांच प्रकार के वर्ण ? *श्रोता: काला, नीला, पीला, लाल और सफ़ेद।* काला, नीला, पीला, लाल और सफ़ेद। तो पांच प्रकार के वर्ण। दो प्रकार के गंध सहित है; सुगन्ध और दुर्गन्ध। क्या दुर्गन्धवाले भी हम ग्रहण करते हैं ? हां, अभी वह दुर्गन्ध परमाणु में है हमें क्या है उसमें ? बहुरि स्पर्श का आठ भेदनी विषै, कौनसे स्पर्श के आठ भेद कोई कहेंगे ? *श्रोता: हलका, भारी, रुखा, चिकना, कड़ा, नरम, ठंडा, गरम।* हलका, भारी, रुखा, चिकना, कड़ा, नरम, ठंडा, गरम अच्छा है। यहां कहते हैं, सभी आठ होंगे कि नहीं कर्मपरमाणुओं में ? तो कहते हैं नहीं। कहते हैं अंत के चार भेद, कौनसे ? शीत, उष्ण और स्निग्ध, रुक्ष; उन्हीं करि परिणया यानी उन्हीं से संयुक्त परिणमता है। क्या कहते हैं ? ये जो कर्मपरमाणु हैं, कर्मपरमाणुओं का समूह उसको समयप्रबद्ध कहते हैं। तो हमने तो अभी तक स्पर्श की आठ पर्याय सीखी हैं तो यहां क्या कहते हैं ? वे परमाणु किसरूप से परिणमित हैं ? तो कहते हैं शीत-उष्ण और स्निग्ध-रुक्ष। यानी शीत-उष्ण में से कोई न कोई पर्याय होगी अलग-अलग परमाणुओं में और स्निग्ध-रुक्ष में से कोई उनकी पर्याय होगी, ऐसा क्यों ? *श्रोता: स्कंध में।* स्कंध ? *श्रोता: स्कंध के रूप में पायी जाती हैं।* कौन बोल रहा है ? हां, स्कंध से, ये परमाणुओं की बात चल रही है। ये जो आठ पर्याय हैं वह मात्र स्कंध में ही पायी जाती हैं। जो सिंगल परमाणु है उसमें मात्र चार ही पर्याय यानी चार में से दो होंगी। दो जोड़ी हैं न कौनसी ? शीत, उष्ण और स्निग्ध, रुक्ष उसमें से, दो जोड़ी में से, एक-एक जोड़ी में से एक-एक होगा।

यह बात नियमसार में भी आयी है, पंचास्तिकाय में भी यह बात आयी है। क्या आयी है ? कि जो सिंगल पुद्गलपरमाणु है उसके स्पर्श की दो ही पर्याय होती हैं। इन

चार में से दो यानी दो जोड़ी में से एक-एक। कौनसी दो हैं ? शीत-उष्ण में से एक और स्निग्ध-रुक्ष में से एक और जो स्कंधरूप परिणमित हुये हैं उनके वे चार जोड़ी पायी जाती हैं। उसमें वह हलका-भारी, रुखा-चिकना, कड़ा-नरम, ठंडा-गरम सब होगा। यह बात हर जगह आयी है। हर एक आगम में यह बात आयी है। यहां लिखा है आगे गुरु, लघु, मृदु, कठिन ये चार न पाइये हैं। न पाइये- ये पाये नहीं जाते, यह ढूंढ़ारी में लिखा है न ! तो चार ही पाये जाते हैं; अन्य चार यहां नहीं पाये जाते। क्यों ? यहां जो समयप्रबद्ध है वह अनंत परमाणुओं का समूह है। सिंगल-सिंगल परमाणुओं की बात चल रही है यहां पर। वह समयप्रबद्ध कितना है ? कितना है का अर्थ उसमें कितने परमाणु हैं ? तो कहते है सिद्धराशि के अनंतवें भाग और दूसरी पद्धति से कहना है तो, अभव्यराशि से अनंतगुणा। तो अभव्यराशि कितनी है ? *श्रोता: जघन्ययुक्तानंत।* बहुत अच्छा, कितनी है ? जघन्ययुक्तानंत। जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण क्या देखा था हमने ? *श्रोता: आवली।* आवली में समयों का प्रमाण और यहां देख रहे हैं हम जघन्ययुक्तानंत यह क्या है ? अभव्यराशि का प्रमाण है। अभव्य अनंत हैं तो हम उसमें आयेंगे तो ? ऐसी घबराने की जरूरत नहीं है। क्योंकि भव्यराशि अभव्यराशि से भी अनंतगुणी पायी जाती है। सारे भव्य मोक्ष चले जायेंगे तो ? ऐसा कभी नहीं होगा।

अनंतकाल जाने के बाद भी अभव्यों से भव्य अनंतगुणे ही इस विश्व में रहेंगे। यानी घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। लोगों को ऐसा लगता है अरे सब सिद्धों में चले जायेंगे तो संसार का क्या होगा ? मेरा क्या होगा ऐसी किसीको चिंता नहीं है। ये बाकी सभी संसार का क्या होगा ऐसी चिंता रहती है। क्योंकि हम परोपकारी जीव हैं। परोपकाराय सतां विभूतय:। अपना कुछ बुरा हो जाये तो हो जाये परंतु दूसरों का कल्याण करना चाहते हैं; जो होता नहीं है वह बात अलग है। समाज का कल्याण, देश का कल्याण, कुटुंब का कल्याण ! मानते हैं हम कर रहे हैं और उसमें तो हमारा क्या होता है उसकी किसीको चिंता ही नहीं है !

देखो, इतने परमाणुओं के समूह को जीव प्रति समय ग्रहण करता है। कितने ? सिद्धों के अनंतवें भाग और अभव्यराशि से अनंतगुणे। अभव्यराशि से अनंतगुणे का अर्थ होता है वह कुछ अनंतानंतवाला प्रमाण होगा। क्योंकि अभव्यराशि कितनी है ? जघन्ययुक्तानंत। अभी उसको अनंतगुणा कर दो तो यह अनंतानंतवाला मामला हो

जायेगा। तो इतने परमाणु हर समय ग्रहण करता है जीव। *श्रोता: दोनों का प्लस है ?* दोनों का प्लस नहीं है। वह पर्टिक्युलर अनंत जो सिद्धराशि के अनंतवें भागवाला है और अभव्यों से अनंतगुणेवाला है। ऐसावाला पर्टिक्युलर अनंत उसे उसके दोनों ओर से बताया। कैसे बताया ? जो १६ संख्या है वह ६४ का चौथा भाग है और ४ का ४ गुणा है। ख्याल आया न ? ऐसे दोनों ओर से उस अनंत को शास्त्र में डिफाइन किया है। जो सिद्धराशि का अनंतवां भाग है और जो अभव्यराशि से अनंतगुणावाला है। *श्रोता: दोनों को एक ही में लेना ?* एक ही अनंत को बताने के लिये; क्योंकि अनंत के अनंत प्रकार हैं तो उसको दोनों ओर से डिफाइन करने के लिये यह बात बतायी है। तो इतने परमाणुओं के समूहरूप वर्गणाओं को ग्रहण करता है; कितनी वर्गणायें ग्रहण करता है ? देखो, एक वर्गणा में कितने परमाणु हैं ? तो सिद्धराशि के अनंतवें भाग, अभव्यों से अनंतगुणे यानी हम अनंत कहेंगे अभी। एक वर्गणा में अनंत परमाणु और ऐसी अनंत वर्गणायें जीव एक समय में ग्रहण करता है। क्या कहा ? एक वर्गणा में परमाणु कितने हैं ? सिद्धराशि के अनंतवें भागवाला अनंत और ऐसी कितनी वर्गणायें एक समय में ग्रहण करता है ? उतनी ही अनंत। यानी वह आपस में गुणा हो जायेगा न ! इतने परमाणु जीव हर समय समयप्रबद्धरूप से ग्रहण करता है। इतने प्रदेशों का बंध होता है हर समय। कितना वजन लगता है ? कहते हैं एक समय में इतने अनंतानंत परमाणु ग्रहण होते हैं तो फिर उसको रास्ता कौन दिखाता है ? चलो तुम जाओ ज्ञानावरणरूप हो जाओ, तुम दर्शनावरणरूप हो जाओ। तो इनका जो आठ प्रकृतियों में बटवारा होता है; आठ थोड़े ही हैं, उनकी उत्तरप्रकृति, उनकी उत्तरोत्तर प्रकृति ऐसे असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। हम उसकी चिंता नहीं करेंगे परंतु वह उसका बटवारा होता कैसे है, किसमें कितना माल चला जाता है, माल यानी कितने परमाणु किसमें जाते हैं ? पहले मूलप्रकृतियों में बटवारा कैसे होता है उसको १९२ नंबर की गाथा में देखेंगे।

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।
घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये॥ १९२॥

उसका अर्थ है ये सभी मूलप्रकृतियों में आयुकर्म का जो भाग यानी उसका जो हिस्सा, हम कहते हैं न ! हमारी पार्टनरशिप है तो जो कोई आय होती है इन्कम, उसका बटवारा कैसे होता है ? किसको कितना जाता है ? जिसका जितना हिस्सा है

उसका उतना बटवारा हो जाता है। तो हर एक कर्म में क्या समानरूप से बटवारा होता है आठों में ? किसमें कितना जाता है ? उसकी बात यहां बता रहे हैं।

प्रदेशबंध बटवारा
: मूलप्रकृतियों में :
वेदनीय ⟶ *मोहनीय* ⟶ *ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय* ⟶ *नाम, गोत्र* ⟶ *आयु*
(सर्वाधिक) (अल्प)
: उत्तरप्रकृतियों में :
मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण - अनुक्रम से हीन
नाम, अंतराय - अनुक्रम से अधिक
वेदनीय, गोत्र, आयु - एक काल में एक, बटवारा नहीं
: घातिकर्मों में :
सर्वघातिद्रव्य - अनंतवें भागप्रमाण
देशघातिद्रव्य - अनंत बहुभागप्रमाण

कहते हैं आयुकर्मों का जो हिस्सा है अपनी भाषा में उसको हिस्सा कहेंगे उसका जो पर्सेंटेज है वह सबसे थोड़ा है। मूलप्रकृतियों में आयु में सबसे अल्प है और यहां उलटी तरफ से सर्वाधिक की तरफ तक बताया है। चार्ट में सर्वाधिक से हम अल्प तक चले गये हैं। हां, अब यहां हम आयु की ओर से इसका वर्णन करेंगे। तो आयु में सबसे थोड़ा हिस्सा है। नामकर्म और गोत्रकर्म में दोनों का समान भाग है, परंतु आयुकर्म से अधिक है। आयुकर्म में सबसे अल्प है। नामकर्म और गोत्रकर्म दोनों में समान-समान विभाजित होता है और फिर वह आयुकर्म के भाग से वह अधिक है।

फिर अंतराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन तीनों का समान है; फिर भी नाम और गोत्र के भाग से अधिक है। तीनों में समान पाये जाते हैं और उससे मोहनीय का भाग अधिक है। उससे भी जो तीसरा कौनसा रह गया ? वेदनीय- उसका भाग सबसे अधिक है। आयु में सबसे थोड़ा; उससे अधिक परंतु समानरूप से नाम और गोत्र में; उससे अधिक परंतु समानरूप से किसमें ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय में और फिर उससे अधिक मोहनीय में और सबसे अधिक वेदनीय में।

जहां जिसका बंध है तो आयु का जहां बंध है। कहां बंध होता है आयु का ? *श्रोता: त्रिभाग में।* त्रिभाग में, परंतु कौन-कौनसे गुणस्थानों में होता है और कहां नहीं होता ? पहले गुणस्थान में होता है; दूसरे में होता है; तीसरे में नहीं होता; चौथे में, पांचवें में, छठे में और सातवें में हो सकता है; ऊपर के गुणस्थानों में नहीं होता। तो यह जो वेदनीय में सबसे अधिक भाग क्यों जाता है ? उसका कारण बता रहे हैं। *श्रोता: अंत तक तेरहवें गुणस्थान तक वेदनीय का बंध रहता है।* हां, तेरहवें गुणस्थान तक वेदनीय का बंध होता है। तो आगे क्या ? प्रश्न क्या है ? *श्रोता: इसलिये वेदनीय में ज्यादा भाग जाता है ?* ऐसा थोड़े ही है। नहीं, मिथ्यात्व अवस्था में, मिथ्यात्व अवस्था में भी ऐसे ही उसका डिस्ट्रिब्यूशन होगा। कहां तक बंधता है उसकी बात नहीं है; अंत में बंधता है तो वहां अंत में तो सारा का सारा माल वेदनीय में चला जायेगा। वहां तो बटवारा ही नहीं है न; जहां एक ही प्रकृति का बंध है तो जो कोई समयप्रबद्ध लिया जायेगा वह सबका सब वह वेदनीय को ही मिलेगा और वह भी एक समयवाला है वह तो आकर चला जायेगा। ख्याल में आती है न बात ? वहां तो कोई बटवारा ही नहीं है अंत में। बस मात्र एक ही प्रकृति का बंध है। *श्रोता: इसीलिये इसमें ज्यादा है।* इसीमें इसीलिये ज्यादा नहीं है। हम उसका कारण देखते हैं न ! आचार्यों को पूछेंगे क्या कारण है ? क्योंकि आपकी कल्पना तो आपने अभी बता दी, अच्छी बात है। हमने सोच लिया; परंतु 'मेरे विचार से ऐसा होना चाहिये' हमें ऐसा नहीं कहना।

हमें आचार्यों को पूछना है कि इसका सच्चा कारण क्या है ? क्योंकि आचार्यों ने भी अपनी कल्पना से कभी नहीं कहा, इमॅजिनेशन करके कुछ नहीं लिखा। वे कहते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने जानकर बताया है। इन्होंने बताया; खाली ऐसा बताया नहीं है; यह किसी छद्मस्थ की रचना है ही नहीं। केवलज्ञानी ने जानकर इसको बताया है और दिव्यध्वनि में जो बात आयी है उसके अनुसार ग्रंथों की रचना हुयी है और गणधर ने जो रचना की है और वह आचार्यों की परंपरा से बाद में वह लिखितरूप से आयी है उसीको हम आधार मानकर चलेंगे। कहते हैं १९३ नंबर में इसका कारण बताते हैं।

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं॥ १९३॥

णिद्दिट्ठं यानी **निर्दिष्टं** यानी सर्वज्ञ भगवान ने बताया है। हां, आचार्य कभी नहीं

कहते कि मेरी कल्पना से यह कारण होना चाहिये। तो क्या कहते हैं, तो देखते हैं यहां पर, वेदनीयकर्म सुख दुःख का कारण है। यह अतीन्द्रिय सुख की बात नहीं चल रही है; जो इन्द्रियजन्य सुख-दुःख हम कहते हैं, उसकी बात चल रही है। तो वेदनीयकर्म उसका कारण है। इसलिये सुख-दुःख के होते हुये इसकी निर्जरा बहुत होती है। निर्जरा बहुत होती है यानी उदयरूप परमाणु बहुत होते हैं। ये मोक्षमार्गवाली निर्जरा नहीं समझना, नहीं तो कहेंगे, हम दुःख भोगते हैं और सुख भोगते हैं तो हमारी निर्जरा हो रही न, चलो हम सुख-दुःख ही भोगते रहेंगे। वह तो अनादि से भोगते ही आये हैं। यह इन्द्रिय के सुख-दुःख की बात है यहां यानी वेदनीय के उदय में होनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख की बात कर रहे हैं और हर समय जीव सुख-दुःखरूप परिणमित हो रहा है। उसके साता, असाता के बहुत परमाणु उदयरूप होकर खिर जाते हैं। तो इसलिये कहते हैं उसकी निर्जरा बहुत होती है। इसलिये अन्य मूलप्रकृतियों के भागरूप द्रव्य प्रमाण से वेदनीय का द्रव्य बहुत है, ऐसा परमागम में कहा है। गोम्मटसार कर्मकाण्ड में स्वयं आचार्य कहते हैं कि ऐसा परमागम में कहा है। यानी मूलआगम में यह बात परंपरा से चली आयी है और अन्य कर्मों के जो हीनाधिक भाग कहे उसी ऑर्डर से क्यों ? आयु में सबसे अल्प क्यों ? फिर नामकर्म, गोत्रकर्म का नंबर क्यों ? उसका भी कारण आगे की गाथा १९४ में यहां कह रहे हैं।

सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण॥ १९४॥

अवशेष यानी वेदनीय के बिना यानी वेदनीय को छोड़कर अन्य जो शेष प्रकृतियां हैं उन प्रकृतियों का स्थिति प्रतिभाग करी द्रव्य हो है। स्थिति प्रतिभाग का अर्थ क्या है ? जिसकी स्थिति बहुत है उसमें अधिक द्रव्य है। पहले में पहले वेदनीय में बहुत द्रव्य क्यों है सर्वाधिक ? क्योंकि वह तो सुख-दुःख का कारण है और उसमें बहुत अधिक द्रव्य की निर्जरा होती है उसमें बहुत अधिक बटवारा होता है। उसके बाद उससे कम द्रव्य किसमें चला जाता है ? मोहनीय में। यहां क्या लिखा है ? देखो, जिस कर्म की स्थिति बहुत है उसका अधिक द्रव्य है। जिसकी स्थिति परस्पर समान है उसका द्रव्य परस्पर समान जानना। अभी हमने क्या देखा है ? वेदनीय को तो उन्होंने पहले आउट कर दिया, अधिक माल दे दिया उसको, क्योंकि उसका द्रव्य अधिकरूप

से खिरनेवाला है। फिर नंबर आया मोहनीय का क्योंकि उसमें ७० कोड़ाकोड़ी सागर और ४० कोड़ाकोड़ी सागरवाला मामला है। स्थिति ज्यादा है इसलिये उसमें गया बटवारा होकर। क्यों ? क्योंकि उसका जो डिस्ट्रिब्यूशन होनेवाला है वह लंबे काल तक होनेवाला है। ३० कोड़ाकोड़ी सागर और ७० कोड़ाकोड़ी सागर में डिस्ट्रिब्यूशन होगा; दो करोड़पति पिताजी हैं उनमें जिसके तीन बच्चे हैं उसको जितना माल मिलेगा और जिसके सात बच्चे उसको माल मिलेगा; तो जो सातवाले हैं उसको थोड़ा अधिक दे देंगे न, जिससे परस्पर समान हो जाये। यहां कहते हैं कि एक समयप्रबद्ध में से जिसकी स्थिति लंबी है, वह मोहनीय की स्थिति लंबी है, तो उसमें अधिक बटवारा होगा, हिस्सा अधिक जायेगा। जिसकी स्थिति परस्पर समान है अभी यहां ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है और अंतराय है। आप कहेंगे वेदनीय को भी वहां हमने लिया था समान, परंतु उसको पहले निकला है न अधिक द्रव्य देकर, इसलिये बचे हुये में से हम समान देख रहे हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय, मोहनीय के बाद इसकी अधिक स्थिति है। नाम-गोत्र की २० कोड़ाकोड़ी सागरवाली है उसको बाद में देंगे; तो इसलिये फिर उसका नंबर आया। जिसकी स्थिति हीन है उसका द्रव्य थोड़ा जानना यानी नामकर्म को और कम। तो ये अधिक-अधिक का प्रमाण क्या है ? ये उसका विभाग कैसे होता है ? तो उसका थोड़ा यहां प्रमाण बताया है।

यहां तो केवल कितना अधिक है, हीन है इतना ही बताया है। तो यह प्रमाण कैसा समझना ? कितना किसमें चला जाता है ? तो जो कोई समयप्रबद्ध में परमाणुओं की टोटल संख्या है तो उसको, अभी हम जिसका प्रमाण देखेंगे उस एक विशिष्ट संख्या से भाग देंगे। कौनसी संख्या से ? तो आवली के असंख्यातवें भाग से। विशिष्ट संख्या से भाग देंगे तो उसमें एकभाग आयेगा उसको अलग रख देंगे। क्या कहा ? एक समयप्रबद्ध में कितने परमाणु हैं ? तो अनंत हैं। उसके वह एक विशिष्ट असंख्यात से भाग देंगे जिसका नाम है आवली का असंख्यातवां भाग; एकभाग जितना आयेगा उस एकभाग को अलग रख दो; जो बचा भाग है वह बहुभाग जिसको कहेंगे उसके समान आठ भाग कर दो और आठों कर्मों को समानरूप से दे दो। क्या कहा ? कि जो कार्माण का समयप्रबद्ध है; समयप्रबद्ध यानी जो अनंत संख्या है; उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना; एकभाग अलग रखना और जो बहुभाग है उसके आठ

समान भाग करना और आठ कर्मों में समानरूप से देना। वह एकभाग अलग रखा है हमने; एकभाग अलग निकालने के बाद हमने आठ समान टुकड़े किये और उनमें से एक-एक भाग एक-एक मूलप्रकृति को दे दिया।

अभी जो एकभाग अलग रखा था उसको फिर आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया; उसमें से फिर एकभाग अलग रखा और बहुभाग किसको दिया ? सर्वाधिक किसको दिया था ? वेदनीय को। वेदनीय को कितना मिलेगा ? पहला जो समान भाग था वह और जो अभी एकभाग का बहुभाग है वह- मिलकर वह वेदनीय को मिल गया। अभी वह जो एकभाग बाहर निकला अभी उसको फिर से आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दे दो। बहुभाग वेदनीय को दे दिया न और एकभाग बचा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया और एकभाग अलग रखा और बहुभाग मोहनीय को दिया। क्रम से हीन हो रहा है कि नहीं ? क्योंकि हमने वेदनीय को बहुत बड़ा भाग दिया था। अब क्रम से हीनरूप हो रहा है। अब जो एकभाग अलग निकाला, बहुभाग तो मोहनीय को दे दिया। एकभाग अलग निकाला उसको फिर आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना। आप कहेंगे बचपन में हमने एक स्टोरी सुनी थी कौनसी ? नेव्हर एंडिंग, एक चिड़िया आयी एक दाना चोंच में लायी और मराठी में कहते हैं भुर्कन उडून गेली। तो हर बार हम आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दे रहे हैं और जो बहुभाग, बहुभाग है वह इसी पद्धति से दे रहे हैं।

पहले तो एकभाग अलग निकाला और बहुभाग को समान आठ में विभाजित किया। फिर वह एकभाग का बहुभाग वेदनीय को दिया और एकभाग को फिर आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया। फिर उसका बहुभाग मोहनीय को दिया फिर जो एकभाग बचा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया। उसमें से एकभाग अलग रखा और बहुभाग के समान तीन भाग करके ज्ञानावरण को, दर्शनावरण को और अंतराय को दे दिये। जो एकभाग अलग रखा था उसको फिर आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया और फिर जो एकभाग जुदा रखकर, जो बहुभाग था उसके समान दो हिस्से करके नाम को और गोत्र को दिये। अब एकभाग बचा, अभी उसको भाग नहीं देना, वह पूरा एकभाग आयु को दे देना। *श्रोता: बचा-कुचा ?* बचा-कुचा नहीं पहले समान भाग दिया था न हमने। यानी हर एक के हिस्से में

समान भाग तो आया ही था और इन ॲडिशन जो माल दिया गया वह सर्वाधिक वेदनीय को; फिर मोहनीय को; फिर समानरूप से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय को; फिर नाम, गोत्र को; अभी एकभाग बचा वह सारा का सारा आयु को दे दिया। यह है प्रदेशों का बटवारा। एक समयप्रबद्ध में अनंत परमाणु हैं वे किसरूप से विभाजित होते हैं उसकी बात यहां चल रही है। उसे कोई वहां करनेवाला है नहीं।

देखो, यह प्रदेशबंध का बटवारा और वह भी मूलप्रकृतियों में देख रहे थे हम। यानी जब एक समयप्रबद्ध ग्रहण किया तो एक समयप्रबद्ध ग्रहण करके आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया। वह एकभाग अलग रखा और बहुभाग सभी कर्मों में समानरूप से आठ भाग करके यानी आठ भाग जो दिये हैं सबमें, वे तो समान हैं; उसके अलावा और क्या मिला ? इन ॲडिशन क्या दिया ? तो एकभाग का बहुभाग वेदनीय को दिया। रिमेनिंग एकभाग का फिर बहुभाग करके मोहनीय को दिया। फिर एकभाग का बहुभाग के तीन भाग करके तीन को दिये। फिर एकभाग के बहुभाग के दो भाग करके नाम, गोत्र को दिये और फिर लास्टवाला जो है वह आयु को दिया। ये जो-जो दिये न अभी, वे मूल समान भाग में मिला देने हैं। हर एक प्रकृति को अपना-अपना द्रव्य टोटल कितना मिला उसकी बात है। मूलप्रकृतियों में क्या-क्या दिया उसकी बात है। जो मूलप्रकृतियों के खाते में आया है वह उत्तरप्रकृतियों में कैसे जायेगा वह हिसाब अलग है। तो सर्वज्ञ भगवान ने कितना-कितना और क्या-क्या जाना है ? हर एक जीव के हर समय में ये जो कुछ बातें हो रही हैं उन सबको जाना।

यह तो ऑटोमॅटिक हो रहा है हमें कुछ चिंता नहीं न कहां किसको भेजना ? आप कहेंगे कैसा भाग देना ? फिर हमको भागाकार नहीं आता है। तो हमें चिंता करने की जरूरत नहीं, वह कर्म का कार्य कर्म कर रहा है। नहीं तो कहेंगे जिसको गणित नहीं आता और वह उलटा-सुलटा किसीको कितना भी दे देंगे तो क्या होगा ? इसकी चिंता हमें करने की जरूरत नहीं है। ना कर्म को गणित आता है और ना ही कर्म बांधनेवाले को आ रहा है। फिर भी उसका ऑटोमॅटिक चल रहा है कार्य। क्या ऐसा लगता नहीं कि यह इतना सारा जानकर क्या फायदा है ? हमारे पांच दिन बेकार के गये और पांच दिन की मॅच होती तो क्या होता? पांच की छोड़ो एक दिन की; एक दिन की मॅच है ट्वेंटी-ट्वेंटी हो या वह क्या होता है दूसरा फिफ्टी-फिफ्टी हो; तो पूरा दिन

बेकार नहीं जाता हमारा ! वहां कहेंगे कितने-कितने रन बनाये और फिर उसके साथ पूरी प्रीव्हियस हिस्टरी जोड़ देंगे। हां, यहां तो हमारे सर्वज्ञ भगवान अतीतकाल और अनागतकाल यानी भूत, भविष्य को जानकर बता रहे कि कितने जीव कैसा बंध करते हैं और कर्म परमाणुओं में कहां-कहां डिस्ट्रिब्यूशन होता है। वहां तो आज इतने रन निकाले, किसने ये रेकॉर्ड तोड़ा, क्या किया था वह सब इन्फॉर्मेशन मिल जाती है और उसके पीछे पूरा दिन हम बिताते हैं, है न ? कितना मजा आता है कि नहीं ? और ये पढ़ने से, इसको पढ़ने से क्या होगा ? वहां तो कितना आनंद-आनंद आता है। हां, इसलिये वेदनीय को ज्यादा बटवारा मिला क्या ? तो अभी हम देखते हैं कि उत्तरप्रकृतियों में बटवारा कैसे होता है ? मूलप्रकृतियों की बात ख्याल में आयी न !

यह बटवारा सहजरूप से होता है। जैसे हम भोजन करते हैं उसका वह जो भोजन का पिंड़ है उसका बटवारा होता है। परमाणु अन्य-अन्यरूप हो जाते हैं; जो आयर्नवाले हैं वे हिमोग्लोबीनरूप होकर खून के आरबीसीरूप हो जाते हैं; जो कॅल्शियम के हैं वे हड्डी में चले जायेंगे; वैसे यहां पर भी उनका अपना-अपना परिणमन उनमें स्वयंचलित होता है। उसको करनेवाला कोई है ही नहीं। *श्रोता: लेकिन ऐसा हो सकता है कि जैसे मोहनीय कर्म जैसे नहीं बांधा तो मोहनीय का द्रव्य उसमें ज्यादा जायेगा और बाकी के कर्म में कम जायेगा ऐसा नहीं है ?* जीव हर समय आठों ही कर्मों का, आयु कभी-कभी बंधती है परंतु हर समय सात कर्म बांध रहा है तो मोहनीय कर्म नहीं बांधा की बात ही नहीं है। मोहनीय कर्म हर समय बंध रहा है। मिथ्यादृष्टि जीव तो सभी सातों ही कर्म तो बांध ही रहा है। उसके भी वेदनीय में ही ज्यादा जायेगा। मोहनीय में उसके बाद का नंबर आयेगा और मिथ्यात्व बांध रहा है तो मिथ्यात्व के साथ सोलह कषाय भी बंध रहे हैं। सोलह कषाय बंध रहे हैं तो भय, जुगुप्सा भी बंध रही है। भय, जुगुप्सा बंध रही है तो कोई एक वेद बंध रहा है और एक कोई युगल बंध रहा है। तो मिथ्यादृष्टि जीव बाईस प्रकृतियों का बंध कर रहा है। तो मोहनीय के खाते में जो आया है वह अभी बाईस में विभाजित होगा। समझ में आया न ! ज्ञानावरण के खाते में जो आया है वह कितने में विभाजित होगा ? पांच में विभाजित क्योंकि ॲट अ टाइम पांच प्रकृति बंधती ही हैं। दर्शनावरण के खाते में जो आया है वह नौ में विभाजित होगा। अंतराय के खाते में आया वह पांच में विभाजित होगा। नामकर्म का ?

श्रोता: तिरानवें प्रकृतियों में। तिरानवें में कभी नहीं होगा। क्योंकि तिरानवें ॲट अ टाइम बंधती ही नहीं हैं। वे कितनी बंधती हैं वह हम देखेंगे और वेदनीय के खाते में आयेगा तो पूरा का पूरा एक को मिलेगा क्योंकि ॲट अ टाइम एक ही बंधती है। ऐसा नहीं कि वेदनीय के खाते में आनेवाला दो में विभाजित हो। क्यों ? क्योंकि जिस समय साता का बंध है उस समय साता में ही सारा माल चला जायेगा और जिस समय असाता का बंध है उस समय वेदनीय का सारा माल असाता में चला जायेगा। यानी वेदनीय का जितना सारा द्रव्य वह है ही सर्वाधिक और जो सर्वाधिक बंध रहा है वह सारा द्रव्य जो प्रकृति बंध रही है साता या असाता, उसमें चला जा रहा है।

श्रोता: आयुकर्म को सबसे कम बताया था। आयुबंध कभी-कभी होता है। *श्रोता: आयु का बंध हर समय हो रहा है।* हर समय नहीं है; जिस समय आठों का बंध है उस समय आयु में चला जायेगा। अन्यथा क्या होगा ? जिस समय सात कर्म बंध रहे हैं उस समय जो समयप्रबद्ध है वह सात में विभाजित होगा। यानी पहले क्या ? वह समयप्रबद्ध आया उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दिया, एकभाग अलग रखा, बहुभाग के सात समान भाग किये- जब आयु नहीं बंध रही है। फिर एकभाग यानी जो समानभाग के अलावा जो एकभाग है उसका बहुभाग वेदनीय को, फिर एकभाग का बहुभाग मोहनीय को, फिर एकभाग का बहुभाग तीन में विभाजित करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय को, फिर एकभाग रहा, अभी उसको फिर भाग नहीं देना, वह नाम, गोत्र में समानरूप से दे देना क्योंकि अभी आयु का बटवारा है नहीं। सात में ही विभाजित कर देना। मूलप्रकृतियों का बटवारा ख्याल में आया ? देखो, मूलप्रकृतियों का तो सात या आठ का बंध हो रहा है। तो सात या आठ में उसका बटवारा करना है। जब सात में बटवारा होता है तो सात समान भाग करेंगे। जब आठ में बटवारा होता है तो आठ समान भाग करेंगे यानी पहले जो समान भाग किये वे आठ करेंगे। आयु नहीं बंध रही है तब अन्य सात जो बंध रही हैं तो सात में बटवारा किया।

वेदनीय का बटवारा है वह एक ही प्रकृति बंधती है उसकी साता या असाता, उसको पूरा का पूरा द्रव्य मिलेगा जो वेदनीय में बंध रहा है। उसके बाद मोहनीय में जो बंध रहा है। मिथ्यादृष्टि के तो बाईस प्रकृतियां बंधती हैं उसमें विभाजन कैसे होता है वह तो हम बाद में देखेंगे। तो मोहनीय के द्रव्य का बाईस में बटवारा होगा। उसमें

सर्वाधिक किसमें जायेगा वह बात बाद में देखेंगे। फिर मोहनीय के बाद नंबर किसका है ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय जो उसका अपने-अपने खाते में आया है ज्ञानावरण का, वह पांच में विभाजित होगा। दर्शनावरण का नौ में विभाजित होगा। अंतराय का पांच में विभाजित होगा। उसके बाद नंबर किसका है? नाम और गोत्र का। गोत्र में तो दो में से कोई एक बंधेगी; जिस समय उच्चगोत्र बंध रहा है उस समय नीच नहीं बंधता है और नीचगोत्र बंध रहा है उस समय उच्चगोत्र नहीं बंधता है। तो गोत्र के खाते में जितने परमाणु आये वे सारे उस बंधनेवाली प्रकृति में चले जायेंगे।

अब नामकर्म में - नामकर्म में जो बंध होते हैं जिसको बंधस्थान कहते हैं। ॲट अ टाइम कितनी प्रकृतियां बंधती हैं ? एक जीव को ॲट अ टाइम जितनी प्रकृतियां बंध सकती हैं उस संख्या को कहेंगे यह नामकर्म का बंधस्थान है। तो हम कहेंगे कौनसी गति बंध रही है उसके हिसाब से उसके अलग-अलग जो बंधस्थान होंगे। तो जितनी बंधती हैं उन बंधनेवाली प्रकृतियों में उसका डिस्ट्रिब्यूशन होगा। कोई एकेन्द्रिय का अपर्याप्त का बंध कर रहा है तो उसके २३ प्रकृतियों का बंध होगा। कोई देवगति बांध रहा है उसके २८ का बंध हो रहा है। कोई मनुष्य-तिर्यंचगति बांध रहा है उसके २९ का बंध हो रहा है। नामकर्म जो हमने देखा दसवें गुणस्थान में वहां नामकर्म की कौनसी प्रकृति बंध रही है ? नामकर्म की कौनसी प्रकृति बंध रही है वहां ? *श्वेता: यशस्कीर्ति।* यशस्कीर्ति बंध रही है वहां। तो वहां तो सात कर्म हैं ही नहीं बंधनेवाले; वहां तो मोहनीय और आयु बिना छह कर्म बंधते हैं उनमें बटवारा हो रहा है उसमें जो नामकर्म में बंध हो रहा है वह सारा का सारा यशस्कीर्ति को मिलेगा। तो जहां जितनी प्रकृतियां बंधती हैं उनमें उसका बटवारा होगा - उत्तरप्रकृतियों में। तो कितनी बंध सकती हैं उसको देखेंगे, वह विषय अलग है। आयु तो एक ही बंधती है जो कोई आयु है; उसका जो माल है वह तो उसी एक ही प्रकृति में चला जाता है। तो इन उत्तरप्रकृतियों में बटवारा कैसा होता है ? उसकी बात तो हम शाम को देखेंगे। तैयारी है न ! क्योंकि ये तो मूलप्रकृतियों में बटवारा देखा हमने। फिर वह घातिकर्म में कैसे जाता है; सर्वघाति प्रकृतियों में कैसा; देशघाति प्रकृतियों में कैसा उसकी भी चर्चा करेंगे। अभी यहीं रुकते हैं हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२३. प्रदेशबंध - एकभाग, बहुभाग

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना की है और पं. टोडरमलजी ने उसके ऊपर सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है। जिसके आधार से यहां हम कर्मप्रकृतियों में समयप्रबद्ध का बटवारा कैसा होता है, प्रकृतिबंध होता है तो क्या होता है, उसकी यहां हम चर्चा कर रहे थे। हमने दोपहर में मूलप्रकृतियों का बटवारा कैसे होता है उसकी बात देखी थी। जो एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु जीव एक समय में ग्रहण करता है तो उनका आठ कर्मों में या सात कर्मों में विभाजन होता है। जिस समय आयु का बंध होता है उस समय आठ मूलप्रकृतियों में विभाजित होगा और जिस समय आयु का बंध नहीं हो रहा है उस समय मात्र सात मूलप्रकृतियों में ही उनका बटवारा होगा।

हमने देखा था कि जितना एक समयप्रबद्ध प्रमाण ग्रहण होता है उसमें बहुभाग यानी अधिकांश तो वेदनीय में जाता है; फिर दूसरा नंबर है मोहनीय का; तीसरे नंबर पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय में समानरूप से हैं; फिर है नाम और गोत्र उनमें भी समानरूप से है और सबसे अल्प जो है वह आयु में चला जाता है, जब आयु का बंध होता है तब। अब यह किसतरह से होता है ? तो जितना समयप्रबद्ध का प्रमाण है उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देते हैं और जो बहुभाग है यानी एकभाग को अलग रखेंगे और बहुभाग के यदि आठ कर्म बंधते हैं तो आठ समान भाग करेंगे और यदि सात कर्म बंधते हैं तो सात समान भाग करेंगे। प्रश्न था यह बहुभाग, एकभाग क्या है ? उसको समझने में बहुत कठिनाई आ रही है लोगों को। तो यह एकभाग, बहुभाग समझने के लिये हम लेते हैं ८१ संख्या और उसको ९ से भाग देते हैं। ९ से भाग देने पर एकभाग की व्हॅल्यू कितनी आयी ? उसका प्रमाण कितना है ? ९ से भाग देते हैं तो एकभाग का प्रमाण ९ है। ८१ में से एकभाग की संख्या ९ निकली, उसे अलग निकाला तो बचे कितने ? *श्रीता: ७२।* ७२ बचे न ! ७२ बचे उसको कहेंगे बहुभाग।

अगर हमें बहुत बड़ी संख्या है और उसको ९ का भाग देकर एकभाग अलग निकालना है और बहुभाग की व्हॅल्यू निकालनी है तो कैसे करेंगे हम ? तो ८१ को हम ९ से भाग देंगे और ८ से गुणा करेंगे तो डायरेक्ट हमें बहुभाग की संख्या मिलती है। क्या किया हमने ? जिस संख्या से भाग देते हैं, ९ से भाग देना है तो नीचे हमने ९ से

भाग दिया और डायरेक्ट उसको ८ से गुणा किया। तो ९ से भाग देंगे तो ९ आ गया ऊपर और ८ से गुणा किये तो ७२ आ गये। किसी भी संख्या से ऐसा बहुभाग, एकभाग करना है तो जिस संख्या से भाग देते हैं उसको तो नीचे छेद में रखना और ऊपर उस संख्या में से १ कम करके उससे गुणा करना। हम कोई अन्य संख्या लेते हैं और ९ के बदले अन्य संख्या लेकर उसका बहुभाग, एकभाग करेंगे। जैसे ऊपर लिखेंगे १५० और नीचे हम उसके ५ भाग करेंगे। १५० के ५ भाग करेंगे तो कितना उत्तर आता है ? *श्रोता: तीस।* तीस। तो एकभाग की व्हॅल्यू यानी प्रमाण है ३० तो बहुभाग कितना होगा ? *श्रोता: १२०।* १२०; अभी छोटी संख्या है तो डायरेक्ट आप उत्तर निकाल सकते हैं। तो हमें उत्तर निकालना है तो १५० डिव्हाइडेड बाय फाईव्ह यानी उसको ५ का भाग देंगे और ४ से गुणा करेंगे। ५ से भाग दिया तो कितना आया ? *श्रोता: ३०।* ३० और ४ से गुणा करेंगे तो... *श्रोता: १२०।* १२०। हम किसी संख्या को असंख्यात से भाग देंगे तो यह असंख्यातवां भाग हमने अलग निकाला तो बहुभाग की व्हॅल्यू निकालनी है तो क्या करेंगे ? नीचे असंख्यात से भाग देंगे और ऊपर एक कम असंख्यात से गुणा करेंगे। यहां जो आवली के असंख्यातवें भाग से भाग दे रहे हैं हम, तो नीचे हम असंख्यात से भाग देंगे तो एकभाग की व्हॅल्यू आ गयी और उसको हम एक कम असंख्यात यानी असंख्यात में से एक बाद करके उससे गुणा करेंगे तो बहुभाग की संख्या आ जायेगी।

यह एकभाग क्या होता है और बहुभाग क्या होता है उसको पहले समझेंगे। उसके लिये यहां ये हमने सारी संख्यायें यहां पर लिखी हैं। दोपहर में किसीने बताया था कि वह संख्या लेकर समझाना और अभी पांच मिनट में ये संख्यायें तैयार करके यहां लिखी हैं। तो क्यों, कहां गयी है बहन हमारी, कन्नड़वाली बहन ? नहीं आयी ? आ रही है। अरे आ रही है तो फिर उसके पहले बता कर क्या करेंगे हम ! तो बहन ने बताया मुझे चार पुत्र हैं और मुझे बटवारा करना है तो ये बहुभाग, एकभाग बता दो तो हम अपने लिये कुछ भाग बचाकर शेष उसको हम विभाजित कर सकेंगे। इसलिये हमने सोचा चलो अभी कुछ संख्यायें लेंगे यानी बहुभाग, एकभाग कैसे करना यह ख्याल में आया न ? तो इसके लिये देखो, अभी हमने ८१ संख्या ली तो बहुभाग के लिये क्या करना ? हमने ९ से भाग दिया। *श्रोता: ९ कैसे आया ?* ९ कैसे ? हमने तो इमॅजिन कर लिया। ९ के बदले आप ११ लो, आप १२ लो, कुछ भी संख्या लो; हम कोई भी

संख्या मान लेते हैं। आपको आवली का असंख्यातवां भाग कहने से क्या समझेगा ? हम आपको ९ कहेंगे तो जहां ९ से भाग देते हैं तो जो एकभाग की व्हॅल्यू आयेगी उसीको ८ से गुणा करेंगे तो बहुभाग की व्हॅल्यू आयेगी। यदि हम ५ से भाग देते हैं तो एकभाग की व्हॅल्यू आयेगी उसीको ४ से गुणा करेंगे तो बहुभाग की व्हॅल्यू आयेगी। यदि हम ११ से भाग देंगे तो एकभाग की व्हॅल्यू आयेगी उसीको १० से गुणा करेंगे तो बहुभाग की व्हॅल्यू आयेगी। यह इतना आसान है।

इसलिये हमने क्या किया यहां पर ? हमें पहले में पहले जितना समयप्रबद्ध है उस समयप्रबद्ध को हम आवली के असंख्यातवें भाग के बदले हम यहां ९ समझेंगे उससे भाग देंगे क्योंकि आवली का असंख्यातवां भाग हो या अनंत का भाग देना हो तो वह कुछ हम सोच नहीं सकते, उसकी कल्पना नहीं कर सकते। तो हमें कल्पना करना है, कुछ छोटी-छोटी संख्या लेकर समझना है। तो हम यहां क्या करेंगे कि कोई एक संख्या लेकर उसको हम ९ का भाग देंगे तो हमें एकभाग का प्रमाण मिलेगा क्योंकि हमने यह मान लिया है कि हम ९ से भाग देंगे। कोई भी संख्या आपको तैयार करनी हो तो आप कर सकते हैं, कोई भी संख्या बना सकते हैं।

श्रोता: आवली का असंख्यातवां भाग, आवली तो एक सेकंड से बहुत कम है और उसका असंख्यातवां भाग और भी कम है - तो एकभाग कितना ? आवली में जघन्ययुक्तासंख्यात समय होते हैं। आपका प्रश्न ऐसा है आवली का असंख्यातवां भाग कितना कम है, हैं न ! परंतु आवली असंख्यात समयों की है। कितने समय हैं आवली में ? *श्रोता: जघन्ययुक्तासंख्यात।* जघन्ययुक्तासंख्यात, तो यह जघन्ययुक्तासंख्यात कैसे निकला है ? जो जघन्यपरीतासंख्यात नाम की संख्या है उसको जघन्यपरीतासंख्यात बार लिख दो और आपस में गुणा करो तो आवली का प्रमाण आता है। तो इतने असंख्यात रेज्ड टु असंख्यात वह तो आवली का प्रमाण है। अब उसका असंख्यातवां भाग कॅन बी अेनिथिंग इन बिट्वीन; कोई भी परीतासंख्यात उसकी व्हॅल्यू हो सकती है। जो कोई यथायोग्य जो भगवान ने जानी है। तो हमें उसको समझने के लिये हम यहां ९ का उदाहरण देकर आपको समझा रहे हैं। क्योंकि केवल असंख्यातों में कहने से उसका बराबर एहसास नहीं हो रहा है। बहुभाग क्या, एकभाग क्या; बहुभाग क्या, एकभाग क्या, हम आपको संख्याओं में उदाहरण बना करके बता रहे हैं। तो हमारे

पास कितनी संख्या है ? जैसे हम वह मिथ्यात्व, अविरति समझाते हैं न ! ५ बार ९ लेते हैं। तो यहां पांच बार ९ का आपस में गुणाकार करेंगे। आप देखना ९ x ९ x ९ x ९ x ९ हम पांच बार लेंगे तो उसकी कितनी होती है संख्या ? हां, यहां हमारे एक भाई ने हमको बताया है। क्या है ? ५९०४९ - यह संख्या कहां से निकली ? ९ x ९ x ९ x ९ x ९ हमने पांच बार ९ का आपस में गुणाकार किया है और ये संख्या वहां लिखी है, यह संदृष्टि मैंने अभी तैयार की है।

मान लो, ५९०४९ परमाणु ७ कर्मों में विभाजित करने हैं -
भागहार का प्रमाण ९ है ; ५९०४९ को ९ से भाग देकर ८ से गुणा करने पर
५९०४९ का बहुभाग ५२४८८ सात में विभाजन, समान भाग ७४९८.२८प्रत्येक में।
५९०४९ का एकभाग ६५६१, उसका बहुभाग ५८३२ वेदनीय में।
६५६१ का एकभाग ७२९, उसका बहुभाग ६४८ मोहनीय में।
उसका एकभाग ८१, उसका बहुभाग ७२ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय में २४, २४, २४।
एकभाग ९ नाम,गोत्र में ९/२, ९/२।

पांच बार ९ का गुणकार करने से ५९०४९ संख्या आयी है। अब इसको हम क्या करेंगे ? इसको ९ का भाग देंगे; ९ का भाग, बराबर है कि नहीं देखते रहना हां, भाई। ९ का भाग देंगे; तो ऊपर पांच बार ९ लिये थे, ९ का भाग देने पर एक ९ कॅन्सल हो गया तो चार बार ९ रहे और मल्टिप्लाइड बाय ८, बहुभाग निकालना है न ! एकभाग की व्हॅल्यू कितनी होगी इसमें ? ४ बार ९ का आपस में गुणा करना। एकभाग की व्हॅल्यू कितनी आती है और बहुभाग की कितनी आती है ? बहुभाग जो है उसको कैसे निकाला ? ९ से भाग दो और ८ से गुणा करो, तो वह कितना आया ? ५२४८८। बराबर है क्या कुछ गलत है ? बराबर है हां, तो आगे बढ़ेंगे। हमने जो ५९०४९ को ९ का भाग दिया तो एकभाग आया उसको अलग रखा। बहुभाग की व्हॅल्यू कितनी है ? ५२४८८। यह बहुभाग है उसका क्या करना है हमने देखा था।

अभी सात कर्म बंध रहे हैं; हम ऐसा मान लेते हैं अभी सात कर्म बंध रहे हैं। तो सात में समानरूप से उसको विभाजित कर दो। सातों को ही इतना-इतना तो दे ही दो, उसके ऊपर किसको कितना देना है बोनस, वह देखेंगे। उन्हें समानरूप से तो इतना

सबको दे देंगे, बेसिक इतना समान भाग दे देंगे। अभी हम ५२४८८ को ७ से भाग देते हैं तो ७४९८.२८ इतनी व्हॅल्यू आ गयी, बराबर है ? हां, करते जाना, कुछ उसमें गलत है तो सुधारते जाना। तो यह समानभाग हर एक कर्म को मिला। सात कर्मों की बात चल रही है। यहां तक समझ में आयी बात ? बहुभाग का हमने समान विभाजन किया, आगे बढ़ेंगे। अभी एकभाग जो बचा है उसको फिर ९ से भाग देना है। तो एकभाग जो बचा है, एकभाग कितना है ? ५२४८८ के समान भाग करने के बाद जो हमने निकाला था उस एकभाग की व्हॅल्यू है ६५६१। उस एकभाग का फिर बहुभाग निकालना है। बहुभाग निकालने का तरीका क्या है ? डिव्हाइडेड बाय ९ मल्टिप्लाइड बाय ८; जो संख्या आयेगी एकभाग की उसको फिर ९ से भाग देंगे और ८ से गुणा करेंगे क्योंकि हम एकभाग का बहुभाग निकालना चाहते हैं और डिव्हिजन जो है हमारी ९ से कर रहे हैं हर बार इसलिये ९ से भाग देंगे और ८ से गुणा करेंगे। तो इसकी व्हॅल्यू आ गयी इसका बहुभाग कितना आता है ? ५८३२, यह बहुभाग हुआ। यह उसका बहुभाग जो है यानी समान भाग पहले किये थे। समान भाग के बाद जो एकभाग बचा था ६५६१ उसका जो बहुभाग है ५८३२ किसमें देंगे हम ? *श्रोता: वेदनीय में।* वेदनीय में, तो वेदनीय में टोटल कितना होगा ? जो पहले ७४९८.२८ दिये थे हमने और अभी उसमें ५८३२ और मिल गये, ये वेदनीय में गये।

एकभाग जो बचा - एकभाग की व्हॅल्यू है यहां ७२९; अब इस एकभाग का फिर बहुभाग निकालेंगे। क्या करना है ? ९ से भाग देंगे और ८ से गुणा करेंगे। तो इस एकभाग का बहुभाग ६४८ आता है। ये ६४८ किसमें देना है ? *श्रोता: मोहनीय में।* मोहनीय में देना; तो मोहनीय में पहले ७४९८.२८ दिये ही थे उसमें अभी ॲडिशनल ६४८ दे दिये। बराबर ? अभी जो एकभाग बचा, कितना बचा था ? ८१ बचा था अब ८१ का फिर बहुभाग एकभाग करना है। तो ८१ का बहुभाग कितना होता है ? ९ से भाग दो और ८ से गुणा करो तो ७२ होता है। ये ७२ किसमें हमको देना है ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय में समान देना है। तो समान देने के लिये ७२ को तीन से भाग दिया, तो २४ आ गये। ये २४ किसमें मिलाना ? पहले जो समानभाग था ७४९८.२८ उसमें ये २४ और मिला दिये तो हर एक में इतना-इतना माल चला गया। अब जो एकभाग बचा है, कितना है एकभाग ? ९ है, तो अभी तो आयु का बंध नहीं है हमने तो

सात में विभाजित किया था तो अभी ये जो ९ बचे हैं वह नाम और गोत्र में ईक्कल देना है। ९ बटे २ यानी ४.५ - ४.५ किसमें मिलाना ? पहले जो ७४९८.२८ थे उसमें ये ४.५ - ४.५ और मिला देना। इसतरह से यह मूलप्रकृतियों में बटवारा होता है। हमें संख्या चाहिये थी न !

श्रोता: ये आयु में नहीं दिया ? आयु अभी बंधी नहीं थी, हमने सात में ही विभाजित किया है। हमने पहले ही बताया कि अभी सात में विभाजन चल रहा है। अगर आठ में विभाजन करना हो तो पहले जो हमने बहुभाग की व्हॅल्यू ५२४८८ निकाली थी उसको आठ में विभाजित करो और फिर जो एकभाग है यानी आठ में विभाजित है तो उस विभाजन यानी समान भाग की व्हॅल्यू कम आयेगी। अब उसमें हम बहुभाग एकभाग, बहुभाग एकभाग करते चले जायेंगे। तो नाम-गोत्र में जो एकभाग दिया था उस एकभाग के फिर बहुभाग, एकभाग करेंगे; यानी नाम-गोत्र में हमने ९ को डिव्हाइड किया था दो में उसके बदले क्या करेंगे ? आठ और एक करेंगे और वह ८ समानरूप से नाम, गोत्र में देंगे यानी उनमें चार-चार देंगे और जो एक बचेगा वह आयु में देंगे जब आठ में विभाजन होता है।

श्रोता: बहुभाग बच रहा है उसको फिर जो बाकी है उन्हीं में डिव्हाइड करना है तीन-तीन करके; सात में डिव्हाइड नहीं करना है ? ना, ना, ना, पूरे सात में नहीं। बहुभाग-बहुभाग जो क्रम हमने यहां लिखा है; पहले वेदनीय का नाम लिखा, फिर मोहनीय का लिखा, फिर ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अंतराय इनको समान लिखा, नाम-गोत्र को समान लिखा और फिर आयु को लिखा। जहां समान तीन हैं तो वह बहुभाग तीन में विभाजित होगा। दो हैं तो दो में विभाजित होगा और लास्ट में जो बचा हुआ भाग है, आयु बंधती हो तो एकभाग आयु में चला जायेगा और आयु नहीं बंधती है तो जो नाम, गोत्र के खाते में आया था वही दो में डिव्हाइड होगा, डिव्हिजन हो जायेगी उसकी। इसतरह से इन मूलप्रकृतियों में कर्मों का बटवारा होता है।

बहुभाग, एकभाग का अर्थ क्या है ? यानी हर बार हमने ९ को असंख्यात मान लिया है अभी यहां पर समझने के लिये और हर बार हम ९ से भाग देते गये और आठ से गुणा करते गये तो हमें बहुभाग मिला और आठ के बदले एक रखो तो एकभाग मिलेगा। देखो, कैसे ये असंख्यातों के, अनंतों के गणित करके बतलाये हैं सारे संदृष्टि में

और उसमें नीचे असंख्यात लिख दिये जायेंगे और ऊपर असंख्यात मायनस एक लिखे जायेंगे और उसके लिये भी कुछ खास सिम्बॉल चिन्ह बनायेंगे। यानी ये संदृष्टिवाली जो बात है वह कमाल की बात है। यानी इसमें इतना रहस्य भरा है और इतने असंख्यातों के और अनंतों के गणित इसमें सॉल्व्ह करके बताये हैं और ये समझने में भी सरल होते हैं। एक बार वह हमें ख्याल में आ गया कि किसतरह से हैं यानी हर एक बार बहुभाग करो, एकभाग करो, बहुभाग करो, एकभाग करो; तो हम केवल वहां आगे लिखते ही चले जायेंगे। एक बार ९ से भाग दो और ८ से गुणा करो; फिर दूसरा है न और एक नीचे ९ बढ़ा दो, वह उसका एकभाग का बहुभाग हुआ फिर और एक ९ बढ़ा दो तो एकभाग का बहुभाग हुआ और नीचे ९ एक-एक बढ़ाते बार चले जाओ और ऊपर आठ कायम रखो तो एक का बहुभाग, एक का बहुभाग, एक का बहुभाग ऐसे होता चला जायेगा। यानी हर बार इतने कॅल्क्युलेशन की भी जरूरत नहीं है। *श्रोता: कॉन्स्टन्ट रहेगा।* हां, यानी इतना ये सरल करते हैं गणित, बहुत सरल करके बताया है। अभी क्या है कि हम यहां बहुत फ़ास्ट ले रहे हैं इसलिये समझने में आपको थोड़ी तकलीफ होती होगी क्योंकि... *श्रोता: पहली बार कर रहे हैं।* पहली बार कर रहे हैं हां, तो क्या हुआ ? कुछ तो हम पहली बार तो करेंगे ही कोई चीज़। परंतु ये गजब का सायन्स है। आजकल के जो मॉडर्न मॅथेमॅटिक्स हैं उसमें से भी कितने ही गणितों के हमारे यहां इसमें फॉर्म्युले हैं, कॅल्क्युलस है, लॉग है, कितने हैं ? वहां तो लॉग टू की बात है। हमारे तो हर एक की है लॉग थ्री, लॉग फोर, लॉग टेन सबकी है। परंतु हमें पता ही नहीं है न हमारे पास क्या और कौनसी निधि है अपने ग्रंथों में, इसका हमें पता ही नहीं है और हम यहां-वहां भटक रहे हैं।

मुनिराज अपना उपयोग कहां लगाते होंगे ? आत्मा के अनुभवी हैं। तो आत्मा में स्थिर होने का अर्थ क्या है ? ऐसा खाली बैठे रहने से आत्मा में स्थिरता थोड़े ही होती है ? मैं शुद्धात्मा हूं, ज्ञायक हूं जान लिया तो जानने का विषय हर बार आत्मा ही होता है ऐसी बात नहीं है। श्रेणी में भी आत्मा ही विषय होता है ऐसा नहीं है। पुद्गल परमाणु को भी विषय करेंगे और ये धर्मध्यान में तो विपाकविचय और अपायविचय धर्मध्यान में सारी कर्म की बात है इसको ही विषय करेंगे; भूगोल को भी विषय करेंगे संस्थानविचय धर्मध्यान में। जो जिनेन्द्र भगवान ने बताया हुआ है उसकी बात चल रही है। अन्य

सांसारिक बातें छोड़ दो। ये सारे करणानुयोग के जो विषय हैं वे ध्यान के विषय कहे हैं और इसको पढ़ते हुये ज्ञानियों को असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टियों की बात नहीं कर रहे। *श्रोता: व्यावहारिक धर्मध्यान कहा।* हां, व्यावहारिक धर्मध्यान भले कहा है परंतु जो वीतरागता सहित इसको जान रहे हैं उनकी असंख्यातगुणी निर्जरा हो रही है। श्रेणी में भी जो पृथक्त्ववितर्कवीचार आदि जो शुक्लध्यान हैं उनके उपयोग में ये जो विषय हैं, ज्ञेय विषय हैं वे भी पलटते रहते हैं। श्रुत के शब्द उसके ऊपर भी विचार करते हैं, इसको तो ध्यान का विषय कहा है।

श्रोता: वहां तो शुद्धोपयोग ही है। शुद्धोपयोग है वह द्रव्यानुयोग उसको शुद्धोपयोग कह रहा है। हमने पहले देखा था मोक्षमार्गप्रकाशक में हमने पढ़कर सुनाया था कि द्रव्यानुयोगवाला शुद्धोपयोग और करणानुयोगवाला शुद्धोपयोग अलग बात है। *श्रोता: शुभ उपयोग।* हां, तो वहां बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक भी वहां चलेगा और यहां शुद्धोपयोग में अबुद्धिपूर्वक किसी विषय को ज्ञेय बनायेंगे। ध्यान की परिभाषा क्या है ? शुद्धात्मा को जाने वह ध्यान कहा है कि **एकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानं** कहा है ? आत्मा के अनुभवी संत हैं, वीतरागी हैं और उतनी वीतरागता के साथ ही वे करणानुयोग के ग्रंथों को लिख रहे हैं, जान रहे हैं, उस पर विचार चल रहा है, चिंतन चल रहा है तो उपयोग की इतनी सूक्ष्मता हो रही है। एक ही विषय पर उपयोग केंद्रित है तो यह उनके लिये ध्यान है। *श्रोता: ऐसे में वे श्रेणी चढ़ जाते हैं ?* बिलकुल श्रेणी भी चढ़ जाते हैं। करणानुयोग के विषय पढ़ते-पढ़ते आत्मा का अनुभव होता है।

बीजसम्यक्त्व नाम का जो सम्यक्त्व है वह क्या है ? मिथ्यादृष्टि भी इसको पढ़ रहे हैं और इसमें इतने एन्ग्रॉस हो गये हैं और इतनी महिमा आती है ज्ञानस्वभाव की, ये केवलज्ञानियों की और बाकी तो निर्णय पहले हो चुका है; अकेले गणित करते-करते नहीं होता है। जिसके तत्त्व संबंधी पहले निर्णय हो चुका है, तत्त्वविचार चल रहा है; उसके करणानुयोग के विषय संबंधी तत्त्वविचार के काल में भी मिथ्यात्व का अनुभाग इतना घट जायेगा और वहां दर्शनमोहनीय का उपशम भी हो जायेगा और उसको स्वसन्मुख दशा में सम्यक्त्व होता है। यहां से उपयोग पलटकर अपने आपपर आता है। आत्मा तो सूक्ष्म है, वह सूक्ष्म उपयोग में पकड़ में आता है और उपयोग को सूक्ष्म करने का करणानुयोग जितना दूसरा अन्य साधन नहीं है। तो वहां से उपयोग पलटकर

अपनी आत्मा को पकड़ लेता है और सम्यग्दर्शन होता है। उसको शास्त्र में कहा है बीजसम्यक्त्व। ये गणित संबंधी जो कुछ बात चल रही है, उसको करते-करते उसका उपयोग वहां से छूटकर अपने आप पर आ जाता है।

श्रोता: वह सविकल्पदशा में है जीव। हां, कुछ भी दशा कहो, वह निर्विकल्प हो जाती है अपनेआप। अभी जो हम देख रहे हैं क्योंकि मुनि भी अपना समय कहां लगाते होंगे ? २४ घंटे तो आत्मा में स्थिरता तो होती नहीं है और जिस समय ध्यान भी चलता है उस समय उनके ध्यान के विषय भी ये होंगे; उस एक विषय पर एकाग्रता से उनका चिंतन चलता है और फिर वह तो अतीन्द्रिय आनंद में बीच-बीच में लीन हो जाते हैं क्योंकि सोचने के लिये तो कुछ अवलम्बन है न ! मन के लिये कुछ तो अवलम्बन होगा। तो इसके अलावा अन्य कौनसा उत्कृष्ट अवलम्बन है ? *श्रोता: ध्यान में लीन हुये तब निर्विकल्प ही होते हैं।* देखो यह द्रव्यानुयोग कहता है निर्विकल्प और सविकल्प की बात। करणानुयोग तो करण परिणाम को जानता है। हां, क्योंकि हम द्रव्यानुयोग के ही अभ्यासी हैं और हमने उसी भाषा में सीखा है। इसलिये हम हर बार वह निर्विकल्प की बात करते हैं। हां, जरूर निर्विकल्प है परंतु निर्विकल्प का अर्थ क्या है ? *श्रोता: विचारों से रहित।* विचारों से रहित ? नहीं, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है निर्विकल्प का अर्थ विचार रहित दशा ऐसा नहीं है, हां, तो क्या है कि अभी विकल्प, निर्विकल्प किसे कहना ? विकल्प के भी बहुत अर्थ होते हैं। अभी अपना द्रव्यानुयोग का विषय तो है नहीं। राग को भी विकल्प कहेंगे, भेद को भी विकल्प कहेंगे। जो हम भेद में अटके हैं; आत्मा ऐसा है, वैसा है, वैसा है भेद सहित विचार चलता है तो राग उत्पन्न होता है और निर्विकल्प यानी अभेद अखंड आत्मा को ग्रहण करते हैं तो वह निर्विकल्प कहलाता है। ज्ञान को सविकल्प भी कहेंगे। केवलज्ञान सविकल्प है कि निर्विकल्प है बोलो ?*श्रोता: सविकल्प।* तो ये सविकल्प क्यों ? भेद करके जान रहे हैं; अनंत द्रव्यों को जान रहे हैं तो इकट्ठा करके जान रहे हैं कि भेद करके जान रहे हैं ? अनंत द्रव्यों के अनंत गुणों को जान रहे हैं तो एक-एक गुण सेपरेटली जान रहे हैं कि नहीं जान रहे हैं ? ॲट अ टाइम जान रहे हैं परंतु सेपरेटली जान रहे हैं। उसमें भेद है ऐसा वे जानते हैं। एक-एक गुण की तीन काल की पर्याय जान रहे हैं; तो एक-एक समय की पर्याय अलग-अलग है तो हम कहेंगे न कि वे अनंत पर्यायों को जान रहे हैं।

इतना सारा भेद करके अलग-अलग भिन्न-भिन्न जान रहे हैं ॲट अ टाइम जान रहे हैं तो उसको हम कहेंगे ज्ञान सविकल्प है।

श्रोता: ज्ञान, दर्शन, चारित्र आत्मा के गुण हैं। अभी हम चर्चा नहीं करेंगे, क्यों ? ऑलरेडि हमने विषयांतर किया है। करणानुयोग से हम द्रव्यानुयोग पर उतर आये। यहां बात हो रही है कि ये जो सारी सूक्ष्मता है उसमें ये सारी बेकार की बातें नहीं हैं। क्योंकि ये तो हम सत्य बातें जान रहे हैं। तो सत्य बातें जानते हुये ज्ञान में कुछ विकास हो रहा है कि वहां अवनति चल रही है ? ये दुनिया की ख़बरें क्यों जानते हैं ? वे सच्ची हैं किसने कहा ? टीव्ही पर जो खबरें बता रहे हैं, तो उसमें कितनी मॅनिप्युलेटेड होती हैं और कितनी सच्ची होती हैं ? वह देख-देखकर तो राग-द्वेष के बिना कुछ होता नहीं यहां पर। फिर भी उसमें कितना रस आ रहा है, क्यों ? परंतु यहां तो हम सत्य परिस्थिति जान रहे हैं कि प्रत्येक जीव कितना कर्म बांधता है, कर्म का बटवारा कैसे होता है, वह कहां-कहां चला जाता है और यह सारी स्वयंचलित व्यवस्था है; कोई करनेवाला है नहीं है और जीव का हर समय कोई एक परिणाम होता ही होता है।

अभी तो हमें परिणामों की सूक्ष्मता का पता नहीं है; एक-एक परिणाम में संक्लेश विशुद्धि स्थान अलग होंगे और उसके अनुभाग के बंधवाले स्थान अलग होंगे। तो एक परिणाम के इतने भेद बताये हैं अभी उसका वर्णन भी करने जाओ तो ये सारा, दोपहर को पुद्गलपरावर्तन देखा था न ! ऐसे भावपरावर्तन में जब बातें आती हैं; एक भावपरावर्तन समझाने के लिये कम से कम दस घंटे चाहिये इतना उसमें माल भरा है। योगस्थान क्या होते हैं, कषाय अध्यवसायस्थान क्या होता है, स्थितिबंध के परिणाम क्या होते हैं, अनुभाग बंधनेवाले परिणाम क्या होते हैं; अभी तो हमने केवल स्थिति कितनी बंधती है इतना देखा। वह उसके कारणभूत परिणाम को तो हमने देखा ही नहीं। अनुभाग को देखा, अनुभाग के कारणभूत परिणामों को नहीं देखा। प्रदेशबंध को देखा, उसके कारणभूत योगस्थानों को नहीं देखा। तो उसमें कितनी-कितनी क्या-क्या बातें होती हैं वह हमें कहां पता है और जीव जब कोई परिणाम करता है वह क्रम से ये सारे परिणाम एक-एक करके करेगा। अभी वह तो बहुत लंबी-चौड़ी बात है। परंतु हमें शास्त्र की कितनी ही बातों का पता नहीं हैं।

हमें तो लगता है कि नहीं, हम समयसार पढ़े हैं। समयसार पढ़े हैं ? पचास से

पचपन गाथा पढ़ी है ? उसके एक-एक शब्द का अर्थ बताओ मुझे। उसमें भी वर्ग क्या होता है, वर्गणा क्या, स्पर्धक क्या, अनुभाग क्या है- वह सब आया है। बंधस्थान क्या है, उदयस्थान क्या है, अध्यात्मस्थान क्या है, गुणस्थान क्या है, जीवस्थान क्या है, मार्गणास्थान क्या है- कहां पता है ? इतना पता है कि मैं उसरूप नहीं हूं। परंतु वह क्या है उसका भी पता नहीं है और मैं उसरूप नहीं हूं बस। वह अर्थ समझ में नहीं आता जाने दो, उसमें तो कितना-कितना डीटेल है ! जब उसके एक-एक शब्द का अर्थ ख्याल में आयेगा और जिसको कहते हैं न उसकी मॅग्निट्यूड ख्याल में आयेगी तब पता चलेगा कि इसको जाने बिना कुन्दकुन्द आचार्य ने वह नहीं लिखा है। कुन्दकुन्द आचार्य ने भी षट्खण्डागम में से तीन खण्डों पर टीका लिखी थी जिसका नाम है 'परिकर्म', जो आज की तारीख में हमारे दुर्भाग्यवश अव्हेलेबल है नहीं। मात्र अध्यात्मशास्त्र लिखे ऐसी बात नहीं है, उनका तो सर्वांगीण अभ्यास था। इसलिये तो ये सारी बातें लिखी न ! उसरूप 'मैं नहीं हूं' तो उसे जाने बिना हम ऐसा कहेंगे ? क्योंकि अगर हमें पता ही नहीं उसमें क्या लिखा है, उसका स्वरूप ही मालूम नहीं है और हमने बस कह दिया हम उसरूप नहीं हैं, बस हो गया। क्यों ? ये गुणस्थान, मार्गणास्थान जानने से बहुत विकल्प होते हैं। पं. टोडरमलजी ने लिखा है; ये क्या कहता है ये गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेद जानने से क्या होता है ? बहुत विकल्प होते हैं और हमें तो निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति करनी है। वाह रे वाह ! इसको विकल्प नहीं कहते क्योंकि उसके भेद जाने बिना भेदज्ञान कैसे करेंगे हम ? इनसे भिन्न मैं हूं तो उसके विकल्प उठना उसको विकल्प में नहीं लिया वहां पर। अभी उसकी चर्चा हम बाद में करेंगे कभी।

मोक्षमार्गप्रकाशक तो बिलकुल पढ़ने लायक है। एक-एक वाक्य में इतना माल भरा है ये सारी बातें वहां आयी हैं कि अज्ञानी कैसे सोचता है कि ये मार्गणास्थान, गुणस्थान, करणानुयोग पढ़ने से बहुत विकल्प होते हैं इसलिये इसको नहीं करना चाहिये। क्योंकि हम आत्मा का ध्यान करना चाहते हैं, ये गुणस्थान पढ़ने से और करणानुयोग पढ़ने से क्या फायदा ? उसमें नहीं है, इसमें आ गया है। यहां लिखा है देखो ९ पेज पर कर्मकाण्ड में ये जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका पीठिका हैं न, वहां लिखते हैं **यहां द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है** हमारी आपकी बात है। मैं ऐसा नहीं कहती

कि सब पक्षपाती हैं, होते तो यहां आते ही नहीं करणानुयोग के शिबिर में, क्यों ? जो कोई पक्षपाती है; पक्षपाती का अर्थ क्या है ? बस उतना ही करो, ये बाकी बेकार की बातें हैं इसमें मत उलझो। कहते हैं कि नहीं ? आपको कोई मिले होंगे जो कहते हैं कि इसमें उलझने की कोई जरूरत नहीं है। छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो चलो आगे बढ़ो। तो कहते हैं कि **इस शास्त्र में जीव के गुणस्थानादिरूप विशेष,** विशेष यानी एक्स्ट्रॉ जो डीटेल्स **और कर्म के विशेष** यानी डीटेल्स वर्णन किये हैं। किसमें ? करणानुयोग में। उनको **जानने से अनेक विकल्प तरंग उठते हैं** और **कुछ सिद्धि नहीं** होती। बहुत विकल्प होते हैं, ये कर्म ऐसा बंधा, उसका बटवारा ऐसा होगा, ये विकल्प करने से क्या है ? हमें तो निर्विकल्प अवस्था चाहिये। **तातैं** यानी इसलिये **अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव** करना **और** अपने **आपा-पर का भेदज्ञान करना इतना ही कार्यकारी है अथवा इनके जो उपदेशक अध्यात्मशास्त्र** हैं, समयसार आदि हैं **उनका ही अभ्यास करना योग्य है** ऐसा द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है। उसको कहते हैं - पं. टोडरमलजी ने हर एक को एक-एक पदवी बहाल कर दी है। वे कहते हैं **हे सूक्ष्माभासबुद्धि** ! तुझे सूक्ष्म का आभास हो रहा है। वह बहुत सूक्ष्म चर्चा, सूक्ष्म चर्चा, सूक्ष्म चर्चा क्या ? केवलज्ञान से भिन्न भगवान आत्मा मैं हूं ऐसा कहेंगे वह हो गयी हमारी सूक्ष्म चर्चा। फिर वह पर्यायों को रखना कि बाहर करना इसके बारे में हम एक दूसरे के साथ चर्चा करेंगे।

पं. टोडरमलजी कहते हैं **हे सूक्ष्माभासबुद्धि !** पहले में पहले तो कहते हैं **तूने कहा वह सत्य है।** क्या सत्य है कि हमें अपनी आत्मा में लीन रहना चाहिये; **परंतु अपनी अवस्था देख**, कहते हैं वह तेरी अवस्था क्या है उसकी तो बात सोच। **जो स्वरूपानुभव में और भेद-विज्ञान में उपयोग निरंतर अगर रहता हो**, २४ घंटे उसमें रहता हो, **तो काहे को अन्य विकल्प करे?** तो कोई बात ही नहीं न ! **वहां ही** यानी अपने स्वरूप में ही स्वरूपानंद **सुधारस**... क्या कहा ? स्वरूप का आनंद ही है सुधारस यानी अमृत, तो स्वरूप का अनुभव यानी अतीन्द्रिय आनंद के अमृत का पान **करके संतुष्ट रह जा।** परंतु, यह पं. टोडरमलजी का 'परंतु' हर जगह है, **परंतु निचली अवस्था में**, निचली अवस्था में यानी मात्र मिथ्यादृष्टि की भी बात नहीं है सम्यग्दृष्टि के भी। अब जब पक्षपाती कहा वह तो मिथ्यादृष्टि है क्योंकि सम्यग्दृष्टि तो ऐसा पक्षपात

करेगा ही नहीं क्योंकि उसको पता है भले उसमें अपना ज्ञान नहीं चलता होगा गणित आदि में, फिर भी वह ऐसा नहीं कहेगा ये बेकार की बातें हैं; वह कह ही नहीं सकता क्योंकि सर्वज्ञ की जो वाणी है और वाणी से चली आयी परंपरा है उसको जो बेकार कहने का ढाढ़स करता है तो उसकी पोझिशन समझना कहां है। तो कहते हैं कि **परंतु निचली अवस्था में वहां निरंतर उपयोग रहता नहीं।** सम्यग्दृष्टि जीव भी है; सम्यग्दृष्टि जीवों का भी निचली अवस्था में चौथे, पांचवें में भी वहां आत्मा में निरंतर उपयोग नहीं रह सकता। **उपयोग अनेक अवलंबन को चाहता है।** ज्ञान का जो उपयोग है पलटते रहता है, एक ही जगह लगातार नहीं रह सकता; अशुभोपयोग भी लगातार नहीं होगा; अंतर्मुहूर्त में शुभोपयोग होगा; शुभोपयोग-अशुभोपयोग, शुभोपयोग-अशुभोपयोग अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता रहता है। शुभोपयोग में से शुद्धोपयोग भी होगा तो भी अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहेगा। तो **उपयोग अनेक अवलंबन चाहता है**। **जिस काल वहां उपयोग न लागे**, जिस काल आत्मा में उपयोग नहीं लगता है, आत्मस्थिरता नहीं होती है **तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना,** स्वयं कह रहे हैं, उपदेश दे रहे हैं कि तुम जरूर उसका अभ्यास करना। किसको बता रहे हैं ? सम्यग्दृष्टियों को भी बता रहे हैं। कि जब आत्मा में स्थिरता से उपयोग नहीं लग रहा है क्योंकि इतना अधिक काल तक वहां उपयोग को टिका नहीं पाता, तो क्या करेगा दिनभर ? तो गुणस्थानादि का अभ्यास जरूर करना। उसका **विशेष जानने का अभ्यास करना।**

यहां कहते हैं कि अध्यात्मशास्त्रों से ये शास्त्र विरुद्ध भासित होते हैं। प्रश्न पूछा, बहुत डीटेल में चर्चा है परंतु मैं उसमें से मुख्य-मुख्य पॉइंट्स बता रही हूं। तो कहते हैं कि नय दो होते हैं एक निश्चयनय और एक व्यवहारनय और निश्चयनय से जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेषों से यानी भेदों से रहित अभेद वस्तुमात्र है। किस नय से ? निश्चयनय से, जिसको हम शुद्धनय भी कहेंगे। तो जीव कैसा है ? अभेद एक वस्तु है। भेद रहित है का अर्थ उसमें भेद नहीं हैं वह बात नहीं है; सभी भेदों को गौण करके हम अभेद का विचार करते हैं तो अभेद वस्तुमात्र है और व्यवहारनय से; व्यवहारनय ही उसको कहते हैं कि जो भेद करके जानता है; भेद करके जानना वह है व्यवहार। दयाधर्म का आचरण किया, लौकिक उपवास किये वह व्यवहार हुआ और यहां

बैठकर आत्मा-आत्मा किया वह निश्चय हुआ, ऐसा बिलकुल नहीं है। लोग तो, समाज में तो सामान्यत: लोगों को ऐसा ही लगता है कि हम सब करते हैं न क्रियायें, वह हम व्यवहार कर रहे हैं। तो व्यवहार तो करना चाहिये कि नहीं करना चाहिये ? व्यवहार कुछ करने की चीज नहीं होती है। 'वस्तु को भेद से जानना वह है व्यवहार'; एक ही वस्तु में समझने के लिये, भेद करके समझना वह है व्यवहारनय का कथन और उसीको, हमने अभी भेद जान लिये और वस्तु कैसी है ? वस्तु तो अभेद एक है। तो समझ लिये हमने भेद, अब उस वस्तु को अभेदरूप से स्वीकार करना, समझना वह है निश्चयनय। तो लोग कहते हैं कि आप आत्मा-आत्मा की बातें करते हो आप निश्चयवाले हैं और हम सब व्यवहार संभालते हैं। घर में कोई आता है तो उसको चाय पानी पूछते हैं तो हम व्यवहारवाले हैं। यह थोड़ी ही निश्चय व्यवहार की परिभाषा है ?

निश्चय और व्यवहार कुछ अलग बातें नहीं होती हैं। एक ही वस्तु पर अलग-अलग अपेक्षाओं से जो कथन या समझना होता है वह है निश्चय-व्यवहार। बहुत बातें हैं अभी क्या करें ? तो कहते हैं **बहुरि सुनिये** और समझो **तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा में तो प्रवर्तते नहीं** हैं। क्या कहा ? पं. टोडरमलजी साहब कह रहे हैं सामनेवाले जीव को कि तेरा उपयोग स्वरूपानुभव में तो टिकता नहीं है; या भले तू अभी मिथ्यादृष्टि है ऐसा नहीं कहा परंतु तेरा अभी उपयोग वहां टिकता नहीं है और विकल्प जानकर गुणस्थानादि भेदों का विचार नहीं करेगा तो उसको कहते हैं तू '**इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट**' होकर अशुभोपयोग में ही प्रवर्तेगा और तेरा बुरा होगा। क्या कहते हैं ? इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट समझते हैं ? मराठीवाले समझेगें। क्या ? 'तेल गेले अन् तूपही गेले आणि हाती धुपाटणे राहिलें' समझतंय का ? समझते हैं कुछ ? नहीं समझे हम समझायेंगे आपको। यह धूप खेते हैं न ! वह मिट्टी का एक बर्तन होता है। कैसा होता है ? वह ऊपर ऐसे एक कटोरी होती है ऊपर की तरफ मुंहवाली और नीचे दूसरी कटोरी ऐसे नीचे की तरफ मुंहवाली होती है, हां, और बीच में एक हॅण्डल होता है। मराठी में उसको कहते हैं धुपाटणे। धुपाटणे यानी पहले के ज़माने में उसमें धूप खेने की पद्धति थी। तो क्या हुआ मेरे बचपन में ? मेरी मां ने मुझे भेजा तेल और घी कुछ लाना था, घर में खलास हो गया था। बोली जा तेल और घी लेकर आ। तो मैं तो सयानी, वह धुपाटणे लेकर गयी। मैंने दुकानदार को बोला कि तेल दे दो। उसने कहा तेल दे दूं, तो किसमें

दे दूं ? मैंने कहा इसमें दे दो। तो एक कटोरी ऊपर में थी न, उसमें उसने तेल डाला। अभी घी देना है किसमें दूं ? इसमें दे दो। मैंने नीचे की कटोरी सीधी कर दी। उसने घी डाला तब तक वह तेल गिरने लगा तो फिर मैंने उलटा किया। तेल भी गया और घी भी गया और हाथ में क्या रहा ? वह धूप खेने का वह पात्र रह गया केवल। मराठी में कहावत है ऐसी। आपने सुनी होगी मराठी लोग बहुत आये हैं यहां। औरंगाबाद के हैं, नगर के हैं, कोल्हापुर के हैं कहां-कहां के हैं। कारंजा के हैं, बहुत सारे लोग आये हैं। मुंबई के भी मराठी हैं। अच्छा है, यह देवलालीवालों की कृपा है कि यहां हम सब इकट्ठा बैठकर ऐसा अच्छा शास्त्र स्वाध्याय कर रहे हैं।

देखो अभी हम यह देख रहे थे यानी करणानुयोग कहने से, क्या पूछा ? इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट हो गया न ! यानी ना तो आत्मा का अनुभव कर रहा है और ना ही आत्मा संबंधी कुछ विचार चल रहा है और विकल्प समझकर गुणस्थान का अभ्यास नहीं कर रहा है। तो क्या कर रहा है तू ? अशुभोपयोग में ही चला जायेगा, दिन कहां बितायेगा ? वह न्यूज पेपर शुरू से लेकर लास्ट पेज तक सब पूरा पढ़ेगा, कहीं कुछ नहीं छोड़ेगा। वह पढ़ गया फिर उसमें कोई क्रॉसवर्ड-शब्दकोडे वगैरह होगा, वह सॉल्व्ह करेगा क्योंकि टाइम पास होना चाहिये न ! यह आपके पास टाइम कितना मिलता है पास करने के लिये हमें समझ में नहीं आता। हमारे सुबह न्यूज पेपर आता है फोल्ड किया हुआ वह भी खोलने को हमको फुरसत नहीं मिलती और आप हमें पूछते हैं कि आपको स्वाध्याय के लिये समय कैसा मिलता है ? जिसको जिसमें रुचि है उसको उसके लिये समय जरूर मिलता है। किसी दूसरे को उसे यह सिखाने की जरूरत नहीं होती है। तो पं. टोडरमलजी साहब स्वयं कहते हैं कि इसमें अपना उपयोग जरूर लगाना। इससे तो भेदज्ञान में इतना बल मिलता है। जब तक करणानुयोग नहीं पढ़ते न, तब तक उसकी महत्ता ही समझ में नहीं आती कि हम क्या मिस कर रहे हैं; उसके समझ में ही नहीं आता। क्यों भाई ? ये हमारे साधर्मी, कहां से आये आप ? चन्द्रपुर से; ये सारे धवला, जयधवला, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका सब की सीडीज मंगाते हैं, वहां सुनते रहते हैं। कितने ही लोग सुनते हैं, कोई एक दो सुन रहे हैं ऐसी बात नहीं, बहुत सारे सुन रहे हैं। यहां की बात क्या, अमेरिका में डॉ. महावीर शहा है वे रोज ५-६ घंटे सुनते हैं; वह है गॅस्ट्रोएंटेरॉलॉजिस्ट, ५-६ हॉस्पिटल्स में तो जाते हैं। वहां तो सब कारोबार संभाल रहे

हैं और हमारी हजारों कॅसेट हैं उनके पास हजारों। पहले तो ऑडिओ जाती थी और अभी तो सीडीज कितनी जाती हैं अप टू डेट। धवला की सभी १६ भागों की, अभी जयधवला की भी सब चली गयी उनके पास और ऐसा नहीं कि कलेक्शन करके रखते हैं; सबकी सब सुनते हैं। यानी हमें ऐसा लगता है कि हम ही यहां बहुत जैनी हैं ऐसा कुछ नहीं। जिसको जहां रुचि है कहीं भी हो दुनिया के कोने में और उसको मार्ग नहीं मिले ऐसा हो नहीं सकता। अगर कोई चाहता है स्टडी करना है, स्वाध्याय करना है तो वह बहुत समय निकाल सकता है। ये हम कुछ-कुछ एक्झॅम्पल बताते हैं, कुछ अपना बड़प्पन नहीं है उसमें। तो स्वाध्याय की रुचिवाले भी कहां कितना समय निकाल रहे हैं उसकी बात बतानी है कि हम भी कुछ प्रेरणा उसमें से लेंगे और हम भी आगे बढ़ेंगे।

यहां हमारी बात कौनसी चल रही थी ? ये बटवारे की बात चल रही थी न ! हां, अभी उत्तरप्रकृतियों में भी हम बटवारा देखेंगे कैसा है। अभी तो मूलप्रकृतियों में सात में या आठ में बटवारा कैसे होता है उसको हमने देखा। अभी आगे जो उत्तरप्रकृतियों में जो बटवारा होता है उसकी थोड़ी बात हम देख लेते हैं। उत्तरप्रकृतियों में कैसा बटवारा होता है १९६ नंबर की गाथा में बताते हैं।

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा।
अहियकमा पुण णामाविग्घा य ण भंजणं सेसे॥ १९६॥

क्या अर्थ है इस गाथा का ? उत्तरप्रकृतियों में से अभी जो मूलप्रकृतियां हैं उसकी हर एक की अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतियां हैं। तो कौनसे मूलप्रकृतियों के अपने-अपने उत्तरप्रकृतियों में किस प्रकार से विभाजन होता है उसकी चर्चा चल रही है। तो कहते हैं मोहनीय में, ज्ञानावरण में और दर्शनावरण में हीनक्रम यानी अनुक्रम से हीनरूप से बटवारा होता है। जब हम उत्तरप्रकृतियां याद करते हैं तब उसी क्रम से याद होनी चाहिये और वह क्रम क्यों लिखा है ? तो ज्ञानावरण की कौन-कौनसी प्रकृतियां मालूम है आपको ? *श्रोता: मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।* मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। तो इसमें क्या है कि हीनक्रम से द्रव्य का बटवारा होता है। पहले हमने कैसे देखा था ? ज्ञानावरण के खाते में कितना आया तो जो समानभाग आया था और फिर ॲडिशनल जितना आया था वह

कहेंगे हम ज्ञानावरण का द्रव्य है। यानी ज्ञानावरण के खाते में टोटल इतना हिस्सा, इतना बटवारा आया। अभी जितना ज्ञानावरण के खाते में आया है वह इन पांच प्रकृतियों में कैसा बटवारा होगा उसकी बात अभी चलेगी। तो कहते हैं मतिज्ञानावरण के द्रव्य से हीनक्रम का अर्थ क्या है ? पहली प्रकृति को ज्यादा, फिर दूसरी में उससे कम, फिर तीसरी में उससे कम, फिर चौथी में उससे कम। तो कहते हैं मतिज्ञानावरणवाले द्रव्य से श्रुतज्ञानावरण का द्रव्य थोड़ा है; यानी थोड़ा यानी अल्प है, कम है; उससे भी अवधिज्ञानावरण का द्रव्य कम है; ऐसे ही अनुक्रम जानना।

एक समय में यानी हर समय में अनादि से ज्ञानावरण का बंध हो रहा है। उसके खाते में समयप्रबद्ध का सातवां या आठवां जो कोई भाग आता है तो जितना उसके अपने खाते में आया है उसका विभाजन उत्तरप्रकृतियों में कैसे होता है ? तो जैसे अभी हमने देखे न पहले समान भाग करो, फिर एकभाग के बहुभाग-बहुभाग करते जाओ। ऐसा ही इन पांच प्रकृतियों में बटवारा होगा। पहला जो अधिक से अधिक द्रव्य मतिज्ञानावरण में है; फिर श्रुतज्ञानावरण में; उससे कम अवधिज्ञानावरण में; उससे कम मन:पर्ययज्ञानावरण में और सबसे कम केवलज्ञानावरण में। तो परमाणु कितने आते हैं उस पर उसका कोई कार्य निर्भर नहीं है। सबमें अनंत तो हैं ही हैं; फिर भी जो विशेष हीनाधिकता है उसका यहां ज्ञान कराया जाता है। तो यह हो गयी ज्ञानावरण की बात। मोहनीय में भी कैसे हैं ? विशेष हीनक्रम से। फिर भी मोहनीय में कितना द्रव्य दिया जाता है उसका हिसाब हम अलग से देखेंगे क्योंकि मोहनीय में दर्शनमोहनीय भी है, चारित्रमोहनीय भी है और चारित्रमोहनीय की कितनी सारी प्रकृतियां हैं, है न, क्योंकि निरंतर बंधनेवाली, निरंतर यानी ध्रुवबंधी जो हमने देखी थी। मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगप्सा तो बंधेंगी ही बंधेंगी और जो ऑप्शनल हैं वे कौनसी हैं ? तीन वेद में से एक वेद और एक युगल बंधेगा। तो उसमें बटवारा कैसे होता है उसकी बात हम थोड़ी देर के बाद देखेंगे। अभी तो ज्ञानावरण के पांच में हीनक्रम से दिया जाता है यह बात हमने देखी।

दर्शनावरण की भी नौ बंधती हैं तो उसमें भी हीनक्रम से दिया जायेगा। दर्शनावरण में पहले किसको लेना ? *श्रोता: चक्षुदर्शनावरण।* हां, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, इसतरह से और आगे

निद्रावाली प्रकृतियां। अब जो नामकर्म और अंतरायकर्म हैं इनमें अधिक क्रम से है यानी अनुक्रम से अधिक-अधिक है। क्या कहते हैं ? नामकर्म में, नामकर्म की तो कोई गिनी चुनी प्रकृतियां होती नहीं हैं; कभी कम हैं कभी ज्यादा हैं। तो नामकर्म में और अंतराय में, अंतराय में कौनसे कर्म हैं बहन ? *श्रोता: दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।* दानांतराय, हां, दान, लाभ यानी हर एक के आगे अंतराय लगा लो। दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय। अंतरायकर्म में जितना माल आता है, जितने परमाणु बटवारे में आते हैं उसका सबसे बड़ा हिस्सा वीर्यांतराय में जाता है। अधिक क्रम से बोला न ! ज्ञानावरण में तो हमने हीनक्रम से दिया यानी मतिज्ञानावरण को ज्यादा और केवलज्ञानावरण को अंत में कम। अभी अंतराय में उलटा, वीर्यांतराय को सबसे अधिक माल। अधिक क्रम से का अर्थ क्या है ? पहले में अल्प, फिर दूसरे में और अधिक, तीसरे में और अधिक, चौथे में और अधिक, पांचवें में सबसे अधिक। यानी उसका डिस्ट्रिब्यूशन कैसे होगा ? पहला बहुभाग तो जायेगा वीर्यांतराय में उलटे क्रम से। हां, फिर नंबर किसका आयेगा ? *श्रोता: उपभोगांतराय का।* उपभोगांतराय का फिर, भोगांतराय का, फिर लाभांतराय का और सबसे कम दानांतराय का; इसको कहेंगे उलटे क्रम से।

नामकर्म की बात थोड़ी अलग रखते हैं क्योंकि नामकर्म की मिनिमम तो तेईस बंधेंगी जो एकेन्द्रिय संबंधी लब्धिअपर्याप्त का बंध कर रहे हैं। इसलिये उसमें कैसा डिस्ट्रिब्यूशन होता है वह बाद में देखेंगे। मोहनीय का भी हम बाद में देखनेवाले हैं। तो हमने देखा है कि मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण में तो हीन क्रम से देते हैं; अंतराय और नाम में अधिक क्रम से देते हैं यानी उलटे क्रम से उसमें डिस्ट्रिब्यूशन होगा। अब जो वेदनीय, गोत्र और आयु इसमें क्या होगा ? कोई कहेंगे, किसी एक से हमें उत्तर चाहिये, वेदनीय में किसको ज्यादा दिया जायेगा साता को या असाता को ? *श्रोता: असाता को।* असाता को, आप क्या कहते हैं ? *श्रोता: किसी एक को ही दिया जायेगा जो बंध रही है।* बहुत अच्छा ! बंध के समय का बटवारा चल रहा है अपना। जब सातावेदनीय बंधती है तो वेदनीय का सारा माल साता के खाते में जा रहा है, इसलिये उसमें बटवारे का सवाल नहीं है। असाता बंध रही है तो जो कुछ वेदनीय के खाते में आ रहा है वह सारा का सारा असाता को जा रहा है। वेदनीय में कोई बटवारा नहीं है।

गोत्र में ? उसमें भी बटवारा नहीं है। आयु में ? अरे ! एक ही बंधती है जब बंधती है, तो जो बंध रही है उस आयु का जितना माल है वह उसीमें ही चला जायेगा। उसमें भी बटवारे का सवाल नहीं है। उत्तरप्रकृतियों के बटवारे में वेदनीय में बटवारा नहीं है, आयु में भी नहीं है और गोत्र में भी नहीं है।

अब जो बची है ज्ञानावरण में, दर्शनावरण में और मोहनीय में; शुरुआत में जो हम नाम लेते हैं उसमें ज्यादा से ज्यादा फिर लास्ट में कम और नाम में और अंतराय में पहले कम और बाद में अधिक, इसी क्रम से दिया जाता है। अब उसकी और बात आगे देखेंगे। घातिकर्म जो हैं अभी जो हमने देखे न- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय उसमें और कुछ विशेषता है, उसकी बात यहां करेंगे। वह क्या है घातिकर्मों की बात, तो यहां देख रहे हैं हम। इन उत्तरप्रकृतियों में जो बटवारा होता है न, इसको जरा देख लेते हैं फिर आगे बढ़ेंगे। मूलप्रकृतियों की बात तो हमने देखी थी कि वेदनीय में सर्वाधिक है और फिर उसके बाद है मोहनीय का नंबर; उसके बाद जो एकभाग का बहुभाग-बहुभाग करते-करते इसमें तीन में विभाजित होगा; फिर एकभाग का बहुभाग दो में समानरूप से विभाजित होगा और लास्ट में यदि आयु बंधती है तो उसमें एकभाग चला जायेगा। अभी उत्तरप्रकृतियों में बात चलेगी।

तो मोहनीय की उत्तरप्रकृतियां, ज्ञानावरण की उत्तरप्रकृतियां और दर्शनावरण की उत्तरप्रकृतियां हैं उनमें, मूलप्रकृतियों के उसके अपने-अपने हिस्से में जितना द्रव्य आता है, जितने परमाणु आते हैं उसका अनुक्रम से हीनरूप से बटवारा होगा। अनुक्रम से हीन का अर्थ समझ में आया ? हम जिस क्रम से उनका नाम लेते हैं मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण आदि उसी क्रम से पहले में सबसे ज्यादा, दूसरे में कम, फिर कम इसतरह से उसमें बटवारा होता है। मोहनीय में भी ऐसा ही बटवारा होगा परंतु यहां जो ये घाति में सर्वघाति और देशघाति का बटवारा है उसकी बात दुबारा अभी हम थोड़ी देर में देखेंगे, बाद में। नाम में और अंतराय में अनुक्रम से अधिक; यह अनुक्रम से अधिक जैसे कोई तिर्यंचगति बांध रहा है एकेन्द्रिय संबंधी। तो तिर्यंचगति का भी बंध कर रहा है; गति के बाद कौनसी है ? जाति। जिस ऑर्डर से हमने नाम याद किये थे इसलिये ये जो नाम हम याद करते हैं तो उसी ऑर्डर में नाम याद करने चाहिये। करणानुयोग में जिस ऑर्डर से दिये हैं उसमें कुछ विशेषता

होती है। मैंने एक बार बात बतायी थी। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं कह रहे, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श कहेंगे। क्यों ? उसका बटवारा उलटे क्रम से हो रहा है। स्पर्शवाले में ज्यादा फिर रस, गंध, वर्ण में इसतरह से। यानी गति, जाति, शरीर, बंधन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन यह जो क्रम हम याद करते हैं। अब ऐसा पहले लिखो सब, जितनी उसके एक साथ बंधनेवाली प्रकृतियां है और फिर क्या करना ? उलटे क्रम से उसमें दे देना। लास्टवाले में ज्यादा में ज्यादा दे देना और पहलेवाले में सबसे कम देना। जो बंधयोग्य, वहां बंधती होगी उसमें; ९३ तो कभी किसीको एक साथ बंधेगी नहीं; जोड़ी-जोड़ी में कोई एक बंधेगी और वह भी तिर्यंचगति बांध रहा है कोई एकेन्द्रिय संबंधी बांध रहा है तो उसके जो पूरक प्रकृतियां उसको बांधेगा। तो कौन-कौनसी बंध सकती हैं उसकी तो हम बंधस्थानों में बात करेंगे; एक जीव को एक साथ कितनी बंध सकती हैं। अभी तो हम कैसे बटवारा होता है उसकी बात देख रहे हैं। यहां वेदनीय, गोत्र और आयु में देखो, वेदनीय में एक ही बंधती है ॲट अ टाइम। गोत्र में भी नीच या उच्च बंधेगी और आयु तो एक ही बंधती है। एक काल में एक ही बंधती है इसलिये जितना उसके हिस्से में है उसका बटवारा नहीं होता। बटवारा नहीं होता का अर्थ क्या है ? जितना उसके हिस्से में आया है वह सारा का सारा उस एक प्रकृति को मिलता है- उस काल में, जिस समय वह बंध रही है।

अब घातिकर्मों में कुछ विशेषता है। घातिकर्मों में क्या विशेषता है ? घातिकर्म हमने दो प्रकार के देखे हैं। यहां प्रकृति की बात नहीं है सर्वघातिद्रव्य कहा है इसका अर्थ क्या है ? ये सर्वघाति प्रकृतियों में तो सारे ही परमाणु सर्वघाति के होंगे जिसको हमने स्पर्धक कहा था। स्पर्धक तो परमाणुओं से ही बने हैं न ! तो यह है सर्वघातिद्रव्य और देशघातिद्रव्य यानी क्या है ? देशघाति स्पर्धकवाले जो परमाणु हैं, वह देशघातिद्रव्य है देशघाति प्रकृतियों में सर्वघातिद्रव्य भी है। क्या कहा ? देशघाति प्रकृतियों में स्पर्धक दोनों प्रकार के हैं तो उसमें द्रव्य यानी परमाणु भी दोनों प्रकार के हैं क्योंकि परमाणु से ही तो वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक बने हैं। तो जो देशघातिद्रव्य यानी देशघाति टाइप के परमाणु ये नीचे दिखाये हैं और ये ऊपर सर्वघाति टाइप के परमाणु हैं। तो सर्वघाति का द्रव्य कितना होता है ? तो हमें लगेगा की सर्वघाति है न तो बहुत ज्यादा होंगे, ऐसा नहीं है उसका द्रव्य तो अनंतवां भाग है और देशघाति का द्रव्य ?

अनंत बहुभाग, यह बहुभाग समझ में आता है अभी ? अनंत से भाग दो और अनंत मायनस एक से गुणा करो तो वह हो जायेगा उसका बहुभाग। तो अभी हम यहां पढ़ेंगे घाति, अघाति का क्या कैसे बटवारा होता है ? यानी घातिकर्मों में सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का बटवारा बताते हैं १९७ नंबर की गाथा में, जो अभी हम पढ़ रहे हैं।

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं।
सेसा अणंतभागा देसावरणं हवे दव्वे॥ १९७॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय इन तीन मूलप्रकृतियों का जो-जो अपना द्रव्य है। अभी हमने देखा है न कितना अपना-अपना है। बटवारा जो है उसको जैसे जिनेन्द्र भगवान ने देखा है वैसे यथायोग्य अनंत का भाग दीजिये। कौनसे अनंत से भाग देना है ? जो जिनेन्द्र भगवान ने जाना है, उस अनंत का भाग देंगे और एकभाग प्रमाण यानी अनंत का भाग देकर जो एकभाग आता है उसको हम क्या कहेंगे ? अनंतवां भाग। नहीं समझे ? ८१ को ९ से भाग दिया था। तो एकभाग का प्रमाण क्या था ? ९, उसको हम क्या कहेंगे नौवां भाग कहेंगे न ! *श्रोता: एकभाग।* एकभाग परंतु वह नौवां भाग है न ! ९ से भाग देकर एकभाग आया है, नहीं समझे ? यदि २७ का भाग देते तो ३ आते, उसको हम, ३ यह संख्या जो है उसको ८१ का २७वां भाग कहते हैं। समझ में आया न ! १० को ५ से भाग देते हैं तो २ आते हैं तो २ संख्या क्या है ? १० का पांचवां भाग है। वैसे ही यहां हम अनंत का भाग देंगे और जो एकभाग आयेगा उसको क्या कहेंगे ? अनंतवां भाग कहेंगे। यह भाषा थोड़ी समझ लेना, ख्याल में आया न ? तो यह जो एकभाग प्रमाण सर्वघाति संबंधी द्रव्य, **सव्वावरणं दव्वं** यानी सर्वघाति संबंधी द्रव्य है और जो अनंत बहुभाग बाकी रहा वह क्या है ? देशघाति संबंधी द्रव्य है। इन तीन की बात यहां ले रहे हैं; किस-किस की ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय में सर्वघाति द्रव्य कितना है ? अनंतवें भागप्रमाण है। अनंत से भाग देने पर एकभाग प्रमाण सर्वघाति का द्रव्य है और देशघाति द्रव्य कितना है ? बहुभाग प्रमाण है यानी अनंत बहुभाग प्रमाण देशघाति का द्रव्य है। अब इसका आगे कैसे बटवारा होता है उसकी चर्चा हम करेंगे थोड़ी देर में।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२४. उत्तरप्रकृतियों में बटवारा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है और उसके आधार से सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जो भाषाटीका है पं. टोडरमलजी द्वारा लिखी हुयी, पं. टोडरमलजी ने इसको लिखा है ढूंढ़ारी भाषा में, उसके आधार से हम यहां कर्मों की कुछ बातों का अभ्यास कर रहे हैं। उसमें हम बंध की बात देख रहे थे। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध में से अभी प्रदेशबंध की चर्चा चल रही है। हर समय जीव एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओं को बांधता है यानी ग्रहण करता है। योग उसमें निमित्त है; जहां योग ज्यादा वहां वह समयप्रबद्ध का प्रमाण भी अधिक पाया जाता है।

एक समयप्रबद्ध का यानी सभी कर्मों का मिलकर जो ग्रहण हुआ है- उसका बटवारा कैसे होता है ? तो हमने इसमें देखा है कि जो अनंत परमाणु ग्रहण किये हैं उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग अलग रखना; बहुभाग जो है, यदि सात कर्म बंधते हैं तो सात में और यदि आयु का बंध होता हो तो आठ में उसका विभाजन करना, सबमें समान भाग दे देना। यानी पहले तो समान हिस्सा सबके खाते में आ गया। अब जो एकभाग अलग रखा था, हर बार उसी भागहार से भाग देना है; आवली के असंख्यातवें भाग से। तो हम केवल एकभाग का बहुभाग, एकभाग का बहुभाग कहेंगे। तो जो एकभाग अलग रखा था, उसका बहुभाग सर्व प्रथम वेदनीय को देना। फिर जो एकभाग बाकी रखा था, दुबारा, उसका बहुभाग मोहनीय को देना। फिर जो एकभाग बचा, उसके बहुभाग के तीन समान भाग करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय को देना। यदि सात कर्म बंधते हैं तो जो एकभाग बचा है, उसके दो हिस्से करके नाम और गोत्र को देना है और यदि आयु बंधती है तो उस एकभाग के बहुभाग करके उसके समान दो भाग करके फिर नाम, गोत्र को देना और जो लास्ट में एकभाग बचेगा, वह आयुकर्म को दे देना। यह हो गया मूलप्रकृतियों में विभाजन - उसका बटवारा। मूलप्रकृतियों में यह बटवारा हो गया।

अभी जो अपने-अपने खाते में; जो वेदनीय के खाते में आया वह पूरे का पूरा जो प्रकृति बंध रही है - साता या असाता - उसको चला जायेगा। आयु का भी एक ही आयु बंधती है, उसीको सारा माल जायेगा और गोत्र में भी ऐसा ही है। अब जो बचे हैं,

उनमें मोहनीय का क्या होगा ? ज्ञानावरण, दर्शनावरण का क्या होगा ? तो इनकी उत्तरप्रकृतियों में बटवारा किस प्रकार से होता है उसकी बात यहां चलेगी। तो सामान्य कथन ऐसा बता दिया कि जो हमने देखा न मोहनीय में, ज्ञानावरण में और दर्शनावरण में हीनक्रम से दिया जाता है और अंतराय में और नाम में अधिक क्रम से दिया जाता है। अधिक से कहो या उलटे क्रम से दिया जाता है कहो, एक ही बात है क्योंकि बहुभाग लास्टवाले को दिया जायेगा। इसतरह से इनका बटवारा होता है। ये पांच और वेदनीय, आयु, गोत्र ये तीन, आठ का बटवारा हो गया। अब यह तो सामान्य कथन किया कि ज्ञानावरण में हीन क्रम से दिया। यानी मतिज्ञानावरण को अधिक दिया, फिर श्रुतज्ञानावरण को दिया, इसतरह से। फिर भी इसमें सर्वघाति और देशघाति ऐसा बटवारा अभी हम देखेंगे। हमने पहले क्या देखा था ? जो-जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं, उनमें तो सर्वघाति स्पर्धक ही होते हैं, ख्याल में आया ? यानी उनके सभी परमाणु सर्वघाति टाइप के हैं। जो-जो देशघाति प्रकृतियां हैं; अभी ज्ञानावरण में चार प्रकृतियां देशघाति हैं- मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण; उनमें परमाणु के बटवारे की बात चल रही है, उदय की नहीं चल रही है। वह क्षयोपशम वगैरह तो उदय में लागू होता है। बंधते समय देशघाति और सर्वघाति सभी बंधते हैं तो उसमें सर्वघाति परमाणु भी हैं और देशघाति परमाणु भी हैं।

मोहनीय के खाते में जितना टोटल द्रव्य आता है, पहले में पहले वह दो में विभाजित होता है, सर्वघाति द्रव्य और देशघाति द्रव्य। क्या कहा ? फिर से सुनो जरा। मोहनीय के खाते में जितना द्रव्य आया; टोटल नंबर ऑफ़ परमाणु जो मोहनीय के खाते में आये हैं उनका दो में विभाजन होगा। एक सर्वघाति परमाणु, जिसको हम द्रव्य कह रहे हैं। अभी हम स्पर्धक इसलिये नहीं कह रहे हैं क्योंकि हमें परमाणुओं की संख्या को देखना हैं इसलिये उसको द्रव्य कहकर पुकार रहे हैं। सर्वघाति द्रव्य का अर्थ है सर्वघाति प्रकार के परमाणु, जिनमें अनुभाग कौनसा है ? वह शैल-अस्थि और दारु बहुभागवाला। ऐसे जो परमाणु हैं वे कितने हैं और जो देशघाति प्रकार के परमाणु हैं वे कितने हैं ? देशघाति का अर्थ क्या है ? जिसमें अनुभाग कैसा है ? दारु का अनंतवां भाग और लता भाग। इतना अनुभागवाले जो परमाणु हैं उन्हें अलग रखेंगे। जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें तो सर्वघाति द्रव्य भी दिया जायेगा और देशघाति द्रव्य भी

दिया जायेगा और जो सर्वघाति प्रकृतियां है, उनमें मात्र सर्वघाति द्रव्य ही दिया जायेगा।

पहले हम देखते हैं कि मोहनीय के खाते में जितना सारा द्रव्य आया, उसका दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय में विभाजन नहीं कर रहे हैं हम। पहले में पहले मोहनीय का जितना टोटल द्रव्य है उसका दो में विभाजन करेंगे। कैसे करेंगे ? तो अनंत का भाग देंगे; मोहनीय में जितना समयप्रबद्ध का प्रमाण आया है, उसको अनंत का भाग देंगे और जो प्रमाण आयेगा उस एकभाग प्रमाण सर्वघाति द्रव्य है। सर्वघाति में पॉवर तो ज्यादा है परंतु द्रव्य उसमें बहुत कम है। तो वह सर्वघाति का द्रव्य किसमें-किसमें चला जायेगा ? जो अनंतवां भाग सर्वघाति का द्रव्य है वह देशघाति प्रकृति में भी जाता है और सर्वघाति प्रकृति में भी जाता है। तो जो यह अनंतवां भाग पहले में पहले अलग निकाला, वह सर्वघाति का द्रव्य किसमें-किसमें चला जायेगा ? मोहनीय की बात चल रही है। मोहनीय में सर्वघाति कौन-कौन है ? मिथ्यात्व और बारह कषाय-अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण। ये तो सर्वघाति प्रकृतियां हैं ही हैं, देशघाति प्रकृतियों में भी सर्वघाति द्रव्य जाता है। तो बाकी जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें भी यह सर्वघाति द्रव्य चला जायेगा। यानी मोहनीय की बंधनेवाली सब प्रकृतियों में यह चला जायेगा। क्यों ? क्योंकि सर्वघाति द्रव्य सर्वघाति प्रकृतियों में भी दिया जाता है और देशघाति प्रकृतियों में भी दिया जाता है।

पहले में पहले हम सर्वघाति का बटवारा करेंगे। सर्वघाति का द्रव्य कितना है ? जो टोटल मोहनीय का द्रव्य है उसके अनंतवें भाग प्रमाण है। तो उसका जो बटवारा है वह सर्वघाति-देशघाति सबमें चला जायेगा। किस ऑर्डर से जायेगा ? जिस ऑर्डर से अभी हम यहां देखेंगे। बटवारा अलग क्रम से होता है और हम जो याद करते हैं प्रकृतियों के नाम, वह तो क्षय की अपेक्षा याद करते हैं। तो उसकी बात हम अभी देखेंगे। फिर देशघाति का जो बटवारा है, वह देशघाति का द्रव्य किसमें चला जायेगा ? वह सर्वघाति प्रकृतियों में जा नहीं सकता, तो ना ही मिथ्यात्व में देना है और ना ही बारह कषायों में देना है। तो कौन बच गये ? संज्वलन और नौ नोकषाय बच गये। अभी उनमें करीब हाफ-हाफ जाता है। उसमें थोड़ा कम-ज्यादा जाता है उसकी हम बात करेंगे। तो यह जो हमने अभी मोहनीय के बारे में देखा है, अभी हम इसका विभाग यहां चार्ट में देखेंगे। ज्ञानावरण में भी ऐसा ही समझना है - सर्वघाति और देशघाति का।

पहले हम मोहनीय का देख लेते हैं और फिर अन्य का।

प्रदेशबंध बटवारा - मोहनीय कर्म

मोहनीय का सर्वघाति द्रव्य - अनंतवां भाग

मिथ्यात्व → अनंतानुबंधी लोभ-माया-क्रोध-मान → संज्वलन लोभ-माया-क्रोध-मान → प्रत्याख्यान लोभ-माया-क्रोध-मान → अप्रत्याख्यान लोभ-माया-क्रोध-मान

मोहनीय का देशघाति द्रव्य - अनंत बहुभाग

साधिक आधा	कुछ कम आधा
संज्वलन ४	नोकषाय ५
	वेद→ रति/अरति → हास्य/शोक → भय → जुगुप्सा

गुणस्थानानुसार बंधनेवाली प्रकृतियों में बटवारा

बंधस्थान - २२ - २१ - १७ - १३ - ९ - ५ - ४ - ३ - २ - १

देखो, बोर्ड पर देखेंगे फिर पुस्तक में से भी देखेंगे। यह मोहनीयकर्म का सर्वघाति द्रव्य है। पहले में पहले मोहनीय के खाते में जितना सब द्रव्य आया है, उसको अनंत का भाग देंगे; तो जो अनंतवां भाग है वह है सर्वघाति द्रव्य, जिसको हमने कहा अनंतवां भाग। वह किसमें-किसमें दिया जायेगा ? सर्वघाति द्रव्य किसमें-किसमें बटवारा हो रहा है ? तो कहते हैं मिथ्यात्व में सबसे ज्यादा; फिर अनंतानुबंधी, पहला नाम किसका लिखा है यहां ? लोभ का; प्रदेशों के बटवारे में अनंतानुबंधी लोभ में ज्यादा जायेगा, फिर माया में, फिर क्रोध में और फिर मान में; उसके बाद नंबर आता है संज्वलन का। प्रदेशों के बटवारे में सर्वघाति जो द्रव्य है उसके बटवारे में सबसे पहले सर्वाधिक दिया मिथ्यात्व को; अभी हम क्रम से हीन की ओर जा रहे हैं। फिर नंबर किसका है ? अनंतानुबंधी लोभ-माया-क्रोध-मान। उसके बाद नंबर है संज्वलन लोभ-माया-क्रोध-मान। फिर प्रत्याख्यानावरण लोभ-माया-क्रोध-मान और लास्ट में अप्रत्याख्यानावरण लोभ-माया-क्रोध-मान। यह सर्वघाति द्रव्य का बटवारा हुआ।

अब देशघाति कितना है ? तो अनंत बहुभाग है। मोहनीय का देशघाति द्रव्य अनंत बहुभाग है, वह मात्र यहां देशघाति प्रकृतियों में चला जायेगा। ये तो सारी

सर्वघाति प्रकृतियां थी न; मिथ्यात्व भी था, यह अनंतानुबंधी था, यह प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण; ये सारी सर्वघाति प्रकृतियां थी उनमें तो मात्र सर्वघाति का डिस्ट्रिब्यूशन हुआ। परंतु सर्वघाति का डिस्ट्रिब्यूशन मात्र सर्वघाति प्रकृति में नहीं होता, देशघाति में भी होता है। इसलिये यहां संज्वलन को भी लिया था। अब देशघाति का बटवारा होगा। तो देशघाति का बटवारा कैसे हो रहा है ? अनंत बहुभाग का बटवारा। इसमें साधिक आधा कहा। क्यों ? इसमें भी बहुभाग अलग निकालेंगे और बहुभाग के भी दो भाग करेंगे, ख्याल में आया ? बहुभाग के दो समान भाग करेंगे संज्वलन में और नोकषाय में देंगे और एकभाग का बहुभाग संज्वलन में देंगे और एकभाग नोकषाय में देंगे। तो संज्वलन में आधे से कुछ ज्यादा होगा, नोकषाय में आधे से कुछ कम होगा। तो हम सामान्य तरह से आधा-आधा समझ ले तो भी कोई बात नहीं। तो आधा किसमें जायेगा ? संज्वलन चार में विभाजित होगा और दूसरा आधा किसमें जायेगा ? नोकषाय कितने होते हैं ? नौ होते हैं कि पांच होते हैं? *श्रोता: नौ।* तो वहां पांच क्यों लिखें ? एक साथ पांच का ही बंध होता है; कौनसे पांच ? भय, जुगुप्सा तो निरंतर बंध ही रही हैं; तीन वेद में से एक ही वेद बंधेगा और हास्य-रति या अरति-शोक बंधेगा; एक समय में पांच का ही बंध होगा तो उन पांच में उसका डिस्ट्रिब्यूशन होगा। तो इन पांच में किस प्रकार से डिस्ट्रिब्यूशन होगा ? किसमें ज्यादा जायेगा ? तो वेद में सबसे अधिक जायेगा; उसके बाद नंबर है रति या अरति का; और उसके बाद हास्य या शोक का जो कोई प्रकृति बंध रही है; और फिर भय और लास्ट में जुगुप्सा। इसतरह से यह उत्तरप्रकृतियों में बटवारा होता है। हम दुबारा इसको ग्रंथ के आधार से देखेंगे जो अभी हमने पढ़ा है या यहां दिखाया है, वही हम दुबारा देखते हैं।

श्रोता: ऊपर में सर्वघाति में संज्वलन को पहले क्यों लिया ? आप कहते हैं ऊपर सर्वघाति में संज्वलन को पहले क्यों लिया ? हां, तो जहां जैसे बटवारा होता है और केवलज्ञानी जैसे जानते हैं, वैसे उसका कथन होता है। *श्रोता: उसका कोई लॉजिक नहीं है ?* नहीं, लॉजिक कोई नहीं है। हम जो याद करते हैं, पहले अनंतानुबंधी फिर अप्रत्याख्यानावरण फिर प्रत्याख्यानावरण फिर संज्वलन क्योंकि गुणस्थान के अनुसार एक-एक का उदय का अभाव होता है। वैसे ही क्षय होते समय भी इसी ऑर्डर से क्षय होता है; पहले क्रोध, फिर मान, फिर माया, फिर लोभ। परंतु जब प्रदेशों

का बटवारा होता है तो पहले लोभ फिर माया फिर क्रोध फिर मान। अभी हमारा अनुभाग का विषय नहीं चल रहा है, उसमें भी ऐसा उलटा-पुलटा है और फिर बाद में वह क्षपणा के काल में जो कुछ उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। तो इसलिये इसमें ये बातें यहां चलेगी। अभी यह मोहनीय में जो विशेष है उसकी बात यहां चल रही है। ज्ञानावरण की भी बातें उन्होंने बतायी हैं। पहले हम मोहनीय का पढ़ेंगे फिर ज्ञानावरण की भी बात देखेंगे। क्यों ? ज्ञानावरण में भी देशघाति-सर्वघाति है; तो उसमें भी जो सर्वघाति है वह कहां-कहां चला जायेगा और देशघाति कहां चला जायेगा उसकी चर्चा हम करेंगे। तो हम यहां २०२ नंबर की गाथा देखते हैं।

मोहे मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

आगे का संस्कृत है, वह छोड़ देंगे। **मोहनीयकर्म में मिथ्यात्व**, **अनंतानुबंधी**, फिर **संज्वलन**, उसके बाद **प्रत्याख्यानावरण**, उसके बाद **अप्रत्याख्यानावरण**। किस ऑर्डर से ? **लोभ, माया, क्रोध, मान**। ये कितने हुये ? **सोलह।** मिथ्यात्व एक हुयी और ये सोलह; **इन सत्रह प्रकृतियों को हीनक्रम** से यानी **अनुक्रम से हीन-हीन**-हीन ऐसा **द्रव्य देना।** यानी सबसे अधिक मिथ्यात्व को, फिर नंबर अनंतानुबंधी लोभ-माया-क्रोध-मान का, फिर संज्वलन का उसी ऑर्डर से है। **पांच नोकषायों का भाग संज्वलन के भागवत् जानना। नोकषाय नौ हैं उनमें एक समय में पांच ही का बंध होता है** -इसलिये पांच नोकषाय कहते हैं। तीन वेद में से एक ही वेद का बंध होता है; रति-अरति में एक का बंध है; हास्य-शोक में एक का ही बंध है और भय-जुगुप्सा इन दो का ही बंध है; ऐसे पांच नोकषाय बंधते हैं। तो इनका विभाजन कैसे होता है ? जो अभी हमने देखा है, उसीको फिर यहां ग्रंथ में पढ़ते हैं।

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

मोहनीयकर्म का जो सर्वद्रव्य का प्रमाण; सर्वद्रव्य यानी देशघाति-सर्वघाति मिलकर सभी। उसको अनंत का भाग देना। अनंतवें भाग को हम क्या कह रहे हैं यहां पर ? किसका प्रमाण आयेगा ? सर्वघाति द्रव्य का। लिखा है न बोर्ड पर भी और जो

अवशेष बहुभाग है वह देशघाति द्रव्य है। वहां देशघाति द्रव्य को; देशघाति द्रव्य किसमें चला जायेगा ? हां, देशघाति प्रकृतियों में जायेगा, सर्वघाति में तो जायेगा नहीं। तो देशघाति के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना, वहां बहुभाग का आधा तो नोकषायों को देना। क्या कहते हैं ? आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एकभाग अलग निकालना। नहीं समझे ? जैसे मान लेते हैं ८१ है। तो ९ का भाग देकर एकभाग यानी ९ अलग निकाला। कितने रहे ? ७२ रहे, तो ७२ में से आधा किसको देंगे हम ? कषायों को यानी संज्वलन को देंगे और आधा नोकषायों को देंगे तथा जो एकभाग ९ रहे वह संज्वलन को देंगे। आधा नोकषायों को देना है तो ७२ का आधा कितना होता है ? ३६ और बहुभाग का आधा और एकभाग अवशेष रहा वह संज्वलन के देशघाति संबंधित द्रव्य का जानना। ७२ का आधा हमने किसको दिया ? पांच नोकषाय में दिया। यहां लिखा है न ! नोकषायों को देना और जो आधा यानी ३६ प्लस एकभाग निकाला था ९, तो ३६ और ९ मिलाकर ४५ हुये वह संज्वलन को देना।

क्या किया हमने पहले ? जो देशघाति का द्रव्य हमने मान लिया ८१ है, उसको हमने भाग दिया ९ से। एकभाग अलग निकाला, बचे ७२; उसके दो समान भाग किये- ३६ और ३६। एक ३६ है वह नोकषायों को दिया जो पांच में विभाजित होगा और जो बाकी ३६ है और वह एकभाग अलग रखा था ९, वह ३६ और ९ मिलाकर ४५ हुये वह दिया हमने संज्वलन को। संज्वलन में सर्वघाति आया ही था, उसके साथ-साथ यह देशघाति भी उसमें आ गया। इतनी बात समझ में आयी ? ऐसे यह सारा द्रव्य दिया। तीन प्रकार से दिया न ? एक सर्वघाति का बटवारा और फिर देशघाति का बटवारा। संज्वलन को वह सर्वघातिवाला भी मिल गया, देशघातिवाला भी मिल गया और नोकषायों को तो देशघाति द्रव्य के बहुभाग का आधा ही मिल गया है।

अभी हम थोड़ा ज्ञानावरण कर्म का विभाजन देखते हैं। देखो, ज्ञानावरण में भी ऐसी प्रकृतियां हैं; सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। अब सर्वघाति द्रव्य कितना हमने देखा था ? किसी भी प्रकृति का सर्वघाति द्रव्य कितना होता है ? *श्रोता: अनंतवां भाग।* अनंतवां भाग, तो अनंतवां भाग यानी अनंत से भाग देने पर जो एकभाग है वह है सर्वघाति द्रव्य। वह सर्वघाति द्रव्य ज्ञानावरण की कितनी प्रकृतियों में चला जायेगा ? यहां कोई बताना चाहता है ? ज्ञानावरण की कितनी प्रकृतियों में सर्वघाति जायेगा ? हां

बोलो बहन, किसमें ? पांचों में ? किसमें चला जायेगा ? *श्रोता: केवलज्ञानावरण में।* केवलज्ञानावरण में। आप क्या कहते हैं ? *श्रोता: पांचों में जायेगा।* पांचों में जायेगा। सर्वघाति द्रव्य किसमें है ? पांचों में है; देशघाति में भी है और सर्वघाति प्रकृति में भी है। तो सर्वघाति द्रव्य पांचों में विभाजित होगा यानी ज्ञानावरण के खाते में जितना आयेगा उसका अनंतवां भाग सर्वघातिवाला द्रव्य है और उसका डिस्ट्रिब्यूशन कैसे होगा ? पांचों में होगा। वह मतिज्ञानावरण में ज्यादा और केवलज्ञानावरण में कम; इस पद्धति से, डिसेंडिंग ऑर्डर से। देखो, यहां लिखा है देखो, देखते हैं। ज्ञानावरणकर्म का जो सभी द्रव्य, पूरा द्रव्य जो है, टोटल द्रव्य उसको अनंत का भाग देंगे। कौनसेवाले अनंत का ? जो जिनेन्द्र भगवान ने देखा है उस अनंत का। उतना क्या है एकभाग प्रमाण ? सर्वघाति द्रव्य है। अब इस सर्वघाति द्रव्य को यहां वैसे ही करना; उसे आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना यानी विशिष्ट भागहार से भाग देते चले जाना। उसका एकभाग अलग रखना और जो बहुभाग है उसके पांच समान भाग करना, जो हमने पहले देखा था। अभी हम सर्वघाति में ही यह कर रहे हैं क्योंकि पांचों में सर्वघाति का द्रव्य जायेगा। फिर एकभाग का बहुभाग करना, पहला बहुभाग चला जायेगा मतिज्ञानावरण को, फिर श्रुतज्ञानावरण को, फिर अवधिज्ञानावरण को, फिर मनःपर्ययज्ञानावरण को, फिर केवलज्ञानावरण को यानी केवलज्ञानावरण को सबसे अल्प हां मिनिमम पॉसिबल द्रव्य चला जायेगा। मॅक्झिमम पॉसिबल काम कर रहा है न। परमाणु की संख्या पर कुछ निर्भर नहीं है यह बात कहना चाहते हैं। तो यह तो हो गया सर्वघाति का बटवारा।

सर्वघाति के बटवारे के बाद अभी हम आगे बढ़ते हैं। तो यह जो देशघाति द्रव्य बाकी रहा है, तो यह देशघाति का द्रव्य किसमें चला जायेगा ? चार में, क्योंकि केवलज्ञानावरण में कोई परमाणु देशघाति है ही नहीं। अभी जो बच गये हैं; अभी क्या बच गये है ? मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, और मनःपर्ययज्ञानावरण; अब इसमें फिर ऐसे ही करना। पहले में पहले आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देना, एकभाग अलग रखना, बहुभाग के चार समान भाग कर देना और इन चार ज्ञानावरणों में देना। समान भाग में फिर पहला बहुभाग, फिर दूसरा, फिर तीसरा इसतरह से डिस्ट्रिब्यूट करना। तो मतिज्ञानावरण को पहला सर्वघातिवाला भी मिल

गया था और अभी देशघातिवाला भी मिला है। देशघाति तो मॅक्झिमम है क्योंकि वह अनंत बहुभागवाला है और सर्वघाति द्रव्य तो अनंतवां भाग था और वह अनंतवां भाग भी पांच में डिस्ट्रिब्यूट हुआ था और यह अनंत बहुभाग चार में डिस्ट्रिब्यूट हुआ है। तो मतिज्ञानावरण का द्रव्य सर्वोत्कृष्ट, अधिक से अधिक है। फिर चार में हीन क्रम से डिस्ट्रिब्यूशन हो जायेगा उसका - यह है ज्ञानावरण का बटवारा।

अभी दर्शनावरण में भी ऐसा ही है। दर्शनावरण की जितनी प्रकृतियां हैं, नौ की नौ में सर्वघाति द्रव्य जायेगा ही जायेगा। उसकी सर्वघाति प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं ? पांच निद्रा और केवलदर्शनावरण; इन छह में तो सर्वघाति द्रव्य जायेगा ही जायेगा। उसकी जो देशघाति प्रकृतियां; कौन-कौनसी हैं ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण। इनमें भी सर्वघाति द्रव्य दिया जायेगा। उसी ऑर्डर से पहले जैसे हमने देखा था जिस ऑर्डर से हम उसका नाम लेते हैं न - नौ का नाम लेते हैं; स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और लास्ट में केवलदर्शनावरण। पहले सर्वघाति द्रव्य कितना है ? तो अनंतवां भाग सर्वघाति द्रव्य है। सर्वघाति द्रव्य है उसको आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग अलग निकालेंगे। जो बहुभाग है वह नौ में समानरूप से विभाजित करेंगे। फिर जो एकभाग बचा है उसका बहुभाग-बहुभाग सबमें देंगे। ऊपर बताये हुये क्रम से स्त्यानगृद्धि आदि ५ निद्रा में, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, फिर केवलदर्शनावरण को देंगे। तो सर्वघाति तो नौ में विभाजित होगा और देशघाति कितने में विभाजित होगा, आप कहेंगे ? *श्रोता: तीन में।* तीन में; जो बहुभाग है, अनंत बहुभाग वह तीन में चला जायेगा। ख्याल में आया न किसतरह से बटवारा हो रहा है ? प्रदेशों के बटवारे की बात चल रही है यहां पर। वह चक्षुदर्शनावरण में अधिक, फिर अचक्षुदर्शनावरण में, फिर अवधिदर्शनावरण में। यह तो दर्शनावरण की बात हो गयी। तो यह हमने ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय में यह प्रदेशों का बटवारा कैसे होता है ? इसकी यहां बात देखी है।

अभी हम नोकषायों में जो अभी हमने बात देखी थी; तो यह किसतरह से डिस्ट्रिब्यूशन होता है उसकी बात देखते हैं हम। नोकषाय का बटवारा यानी नोकषाय संबंधी जो द्रव्य दिया था। कितना दिया था ? देशघाति में से जो हमने ८१ में से ९ अलग

निकाले थे और ७२ का बटवारा किया था न। नोकषाय के खाते में जो कोई द्रव्य आया था उसको भी, उसी प्रतिभाग का भाग देंगे। प्रतिभाग यानी जो फिक्स भागहार है हमारा, आवली का असंख्यातवां भाग उससे भाग देंगे, एकभाग अलग रखेंगे। एक साथ कितनी प्रकृतियां बंधती हैं हमने देखा ? पांच ही का बंध होता है। तो पांच में बटवारा होगा। पांच में बटवारा किस प्रकार से होता है ? तो कहते हैं कि पहले में पहले एकभाग अलग रखो, फिर बहुभाग के पांच समान भाग कर दो। पांच समान तो दे दिये। अभी जो एकभाग है उसको फिर उस प्रतिभाग से भाग देंगे और फिर बहुभाग जो है तो किसको देना ? वेद को - जिस किसी वेद का बंध हो रहा है उसको देना। क्योंकि तीन में से किसी एक वेद का बंध होगा उसको दे देना। अब जो एकभाग बचा, फिर उसी प्रतिभाग से भाग देकर बहुभाग देना रति या अरति को। यहां लिखा है न, उसकी ऑर्डर लिखी है। फिर जो एकभाग रहा उसको प्रतिभाग से भाग देकर वह हास्य या शोक को देना। फिर उसका बहुभाग भय को और एकभाग है वह जुगुप्सा को देना। यह ऐसी बात है।

अभी वहां कौनसे गुणस्थान में कौनसे बंध होते हैं उसकी बात देखने की ज़रूरत नहीं है। पांच का तो बंध होगा, मिथ्यादृष्टि को तीन वेदों में से एक का होगा; दूसरे गुणस्थानवाले को दो में से एक होगा; ऊपर के गुणस्थानवालों को पुरुषवेद का होगा; तो उसका बटवारा पुरुषवेद में चला जायेगा। कोई भी वेद बंधे जो बंधने योग्य है वहां पर, उसमें वेदवाला जो बटवारा है वह उसके खाते में चला जायेगा। ऐसे ही रति या अरति में जाता है। तो अरति का बंध कहां तक है ? छठे गुणस्थान में अरति के बंध की व्युच्छित्ति होती है वहां तक रति या अरति कहेंगे। बाद में तो अकेले रति का ही नाम लेंगे। ऐसे ही शोक और हास्य में लेना। शोक का भी बंध छठे गुणस्थान तक है, उसकी बंधव्युच्छित्ति हो जाती है और छठे गुणस्थान के ऊपर हास्य का बंध होता है आठवें तक, हां। देखो अभी और ऊपर चला जायेगा जीव तो ? क्या कहते हैं पहले गुणस्थान से यह एक, दो, तीन, चार और पांच नोकषायों का तो बंध हो रहा है। दूसरे गुणस्थान में भी पांच का बंध होगा। अभी यहां तीन वेदों के बदले स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दो में से एक का बंध होगा। तीसरे गुणस्थान में पुरुषवेद का ही बंध होगा। ऐसे कहां तक चले जायेगा पांच का बंध ? छठे में तो ऑप्शन कम हो जायेगा

परंतु फिर भी रति और हास्य का बंध हो ही रहा है सातवें में भी, आठवें में भी हो रहा है। हां, तो आठवें तक क्या हुआ ? अभी आठवें में देखते हैं। आठवें में भी हास्य-रति का बंध तो है ही है; हां भय-जुगुप्सा का भी बंध है। परंतु आठवें में व्युच्छित्ति होती है यानी आठवें तक बंध है, आठवें के अंत तक इन पांचों का ही बंध है यानी पांच नोकषायों में डिस्ट्रिब्यूशन तो होगा।

अब नौवें गुणस्थान में चले जाने पर, क्या होगा यहां पर ? वेद है परंतु ये बाकी कोई नोकषाय नहीं हैं, ख्याल में आती है बात ? उदय भी मिट गया है उनका; बंध भी नहीं है, कुछ नहीं है; तो वेद का बंध हो रहा है तो नोकषाय का सारा माल एक पुरुषवेद में चला जाता है। अब उसके बाद जब वेद का उदय भी मिटेगा और बंध भी मिटेगा। परंतु अभी संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ है वहां पर। तो क्या होगा वहां ? यह सारा देशघाति द्रव्य संज्वलन चार में डिस्ट्रिब्यूशन होगा। जब क्रोध का भी बंध रुक जायेगा, तो फिर तीन में डिस्ट्रिब्यूशन होगा। फिर मान का भी बंध रुक जायेगा, तो दो में हो जायेगा। माया का भी बंध रुक जायेगा, तो देशघाति का पूरा अनंत बहुभाग यह अकेले लोभ में जायेगा। क्योंकि तब तक ये बाकी तो सब बंधना बंद हो गये हैं न। तो मोहनीय का जितना पूरा का पूरा द्रव्य है एक संज्वलन लोभरूप से हो रहा है वहां पर। यह प्रदेश की यानी परमाणु की बात चल रही है। अभी यहां उसका कितना अनुभाग है क्या है उसकी बात नहीं है। वह तो भले ही मंद अनुभाग होगा क्योंकि यहां विशुद्ध परिणाम हैं नौवें में और लोभ का बंध वहां अंत तक है। परंतु जहां एक मात्र लोभ बंध रहा है तो मोहनीय का पूरा का पूरा द्रव्य उस एक संज्वलन लोभरूप से बंध रहा है, ख्याल में आती है बात ? यह बंधनेवाले कर्म का क्या होता है वे बातें तो और कुछ हैं अलौकिक हैं; फिर भी अभी बंध में क्या होता है उसको देखेंगे हम। हमने यहां पर प्रकृतियों के बटवारे की बात देखी।

अंतराय में उलटा होता है। अंतराय में उलटा क्या होता है ? पहला बहुभाग तो वीर्यांतराय को जायेगा और उलटे क्रम से दानांतराय की तरफ आ जाता है। नामकर्म में तो बहुत कुछ डीटेल्स हैं। कैसे डीटेल्स हैं ? तो मेरी भाषा में उसके पॅकेज होते हैं; हम किस पर्याय संबंधी बंध कर रहे हैं। देखो, अपने परिणामों के अनुसार कोई देवगति का बंध करता है, कोई नरकगति का करता है, कोई मनुष्यगति का करता है,

कोई तिर्यंचगति करता है। उसमें भी तिर्यंचगति का कर रहा है तो कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय संबंधी कर रहा है, कोई असंज्ञी का कर रहा है, चतुरिन्द्रिय का कर रहा है, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय का कर रहा है। उसमें भी एकेन्द्रिय का कर रहा है तो लब्धिअपर्याप्त का कर रहा है या पर्याप्त का कर रहा है उसमें भी भेद हैं। उसके साथ आतप का बंध हो रहा है, उद्योत का बंध हो रहा है, उसके साथ भी विशेषता है। यानी कितनी प्रकृतियां ॲट अ टाइम एक जीव को बंध सकती हैं ? जैसे हमने यहां देखा न ! नाना जीव नोकषायों का; नौ नोकषायों का बंध कर रहे है; परंतु एक जीव एक समय में कितने का बंध करेगा ? तो पांच ही नोकषाय बांधेगा। ऐसे नामकर्म में जो अलग-अलग प्रकृतियों की संख्या बंधती है, उसको कहेंगे उसके बंधस्थान कौन-कौनसे हैं। तो यह नामकर्म में भी देखते हैं। तो उसमें यहां हम एक स्थान लेकर उसकी चर्चा करेंगे। जैसे २३वाला एक स्थान है, नामकर्म का; *श्रोता: ऐसे कितने बंधस्थान हैं ?* नहीं, वह विषय अभी नहीं है; नामकर्म के ये बंधस्थान तो हम बाद में देखेंगे।

अभी नामकर्म का जहां २३ का बंध होता है ऐसे बंधस्थान में प्रदेशों का बटवारा कैसे होता है उसकी चर्चा करेंगे। हमने क्या देखा था ? पहले नामकर्म के खाते में कितना आता है ? समान भाग आयेगा। वह बहुभाग गया वेदनीय में; फिर गया मोहनीय में; फिर गया ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अंतराय में; फिर जो है वह नाम और गोत्र में आया। तो उसके खाते में जितना माल मिला, जितने परमाणु आये, अभी उसका बटवारा कैसे होता है तो एक तेईस प्रकृति का स्थान है। तेईस प्रकृतिक स्थान कौनसा है ? जो एकेन्द्रिय के लब्धिअपर्याप्त संबंधी बंध कर रहा है उसके यह २३वाला स्थान पाया जाता है। यह कौनसी हैं तेईस प्रकृतियां ? कहते हैं तिर्यंचगति है; एकेन्द्रिय संबंधी बंध कर रहा है, तो एकेन्द्रियजाति है और फिर औदारिकशरीर है, तेजसशरीर है, कार्माणशरीर है; उनके अंगोपांग तो कोई नहीं होता है। संस्थान कौनसा होता है एकेन्द्रिय को ? हुंडकसंस्थान। फिर वर्ण, गंध, रस, स्पर्श जो यथायोग्य है; उसके बाद एक है तिर्यंचानुपूर्वी, परंतु एकेन्द्रिय को तो विहायोगति नहीं होती। इसमें फिर आगे के अगुरुलघु, उपघात, परघात होंगे, उच्छ्वास नहीं लेंगे क्योंकि यह अपर्याप्त संबंधी बंध कर रहा है। उच्छ्वास नामकर्म का उदय तो पर्याप्तों के ही पाया जाता है। फिर स्थावर, यह सूक्ष्म निगोद की बात चल रही है तो सूक्ष्म; सूक्ष्म एकेन्द्रिय की बात चल रही है-

सूक्ष्म; फिर अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर क्योंकि वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त है तो ये सारी अशुभ प्रकृतियां होगी उनके। अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण। ये जो २३ प्रकृतियां हैं उनका युगपत् बंध यानी ॲट अ टाइम बंध होगा। जो लब्धिअपर्याप्त एकेन्द्रिय संबंधी बंध कर रहा है, वह इन २३ का बंध कर रहा है। इसकी विशेषता हम बाद में देखेंगे, यह अपना अभी विषय नहीं है; इसमें बटवारा कैसे होता है उसकी बात चल रही है। नामकर्म में हमने क्या देखा था ? कैसे बटवारा होता है ? उलटा होता है न ? यानी अधिक क्रम से, अधिक क्रम से होता है यानी जो प्रकृति लास्ट में हमने देखी उसमें अधिक से अधिक परमाणु जायेंगे और जो पहले हमने देखी थी उसमें कम से कम जायेंगे। तो इसमें जो है बटवारा अभी हम देखेंगे।

मूलप्रकृतियों में नामकर्म के खाते में जितना द्रव्य यानी परमाणु की संख्या आयी है उसको फिर उसी प्रतिभाग से भाग देंगे - आवली के असंख्यातवें भाग से। क्या करेंगे ? एकभाग को अलग रखेंगे और बहुभाग को इन २१ में समानरूप से दे देंगे; ऑल ट्वेंटी वन में और अभी हम पहला बहुभाग किसको देना है ? लास्टवाले को। उसका नाम क्या देखा हमने ? निर्माण और पहला हमने देखा था तिर्यंचगति। यानी तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, इसतरह से, इस ऑर्डर से हमने जो अभी नाम लिये, तो जो अंत में जिसका नाम लिया था उसको बहुभाग देना। यहां तो २३ भाग नहीं करने, २१ करने है, हां, क्योंकि वह शरीर नामक पिंड प्रकृति में ये सब शरीर नामकर्म समा जाते हैं, औदारिक, तेजस और कार्माण। इनमें वह जो उनके खाते में जो एकभाग आयेगा वह तीन में डिस्ट्रिब्यूट होगा। इसलिये यहां २३ भाग न करके २१ भाग करने हैं क्योंकि शरीर नामकर्म में वे सारे विभाजित हो जाते हैं, अलग से। हां, तीन शरीर में। है उनके तीनों ही नामकर्म फिर भी तीनों में समानरूप से वह एकभाग है, वह उसमें डिस्ट्रिब्यूट हो जायेगा। यानी पहले में पहले क्या किया ? एकभाग अलग रखा, बहुभाग का २३ के बदले २१ में डिस्ट्रिब्यूशन किया। क्यों ? शरीर नामकर्म पिंड प्रकृति है उसमें औदारिक है, तेजस है और कार्माण है। जो शरीर नामकर्म के खाते में आयेगा, वह तीनों में डिस्ट्रिब्यूट होगा। इसलिये दो प्रकृतियां कम हो गयी। एक ही उसके खाते में आया और वही डिस्ट्रिब्यूट हुआ। इसलिये हमें विभाग कितने करने हैं ? २१ ही करने हैं और फिर जो बहुभाग-बहुभाग जो है वह उलटे क्रम से देना। लास्ट में हमने निर्माण

देखा था, उसके पहले अयशस्कीर्ति, उसके पहले अनादेय, उसके पहले दुर्भग, उसके पहले अशुभ, उसके पहले अस्थिर। इसी क्रम से, उलटे क्रम से दे देना।

यह तो प्रकृतियां याद नहीं हैं, क्योंकि अपना विषय हुआ नहीं है अभी तक। परंतु हमें इतना ही समझना है, नामकर्म की एक समय में एक जीव को जो कोई प्रकृतियां बंध रही हैं। अभी कोई देवगति बांध रहा होगा तो उसके तो २८ प्रकृतियां बंधती हैं। तो जो कोई वहां बंध रही है उनमें उलटे क्रम से वहां डिस्ट्रिब्यूशन हो जायेगा। उसका एकभाग-बहुभाग देते-देते उलटे क्रम से आ जाना। इसलिये जब वह बटवारा किया जाता है तो स्पर्श को अधिक द्रव्य मिलेगा, जब स्पर्श का नंबर आयेगा; फिर रस, फिर गंध, फिर वर्ण। इसलिये जब हम सीखते हैं उसकी ऑर्डर तो हमेशा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श कहते हैं। उसका भी कारण है न - समयसार में भी वर्णादिक कहते हैं, स्पर्शादि नहीं कहा कभी, वर्णादि आता है क्योंकि ये तो करणानुयोग के क्रम हैं, क्योंकि उसमें बटवारे का सवाल होता है। जब हम पहले अनंतानुबंधी, फिर अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन का नाम लेते हैं, वह तो उसके क्षय होने के क्रम से हैं। बटवारे के क्रम लेने है तो पहले अनंतानुबंधी; हां, यानी वह भी लोभ-माया-क्रोध-मान; फिर संज्वलन फिर प्रत्याख्यानावरण और फिर अप्रत्याख्यानावरण। इसतरह से उसमें डिस्ट्रिब्यूशन हो जाता है वह तो बस भगवान ने जाना है। यह उत्तरप्रकृतियों में प्रदेशबंध हो गया।

अब यह उत्कृष्ट प्रदेशबंध क्यों होता है ? प्रदेशबंध में भी हमने जो पहले भेद देखे थे याद है ? उत्कृष्ट भी हो सकता है अनुत्कृष्ट भी होता है। एक समय में दो ही भेद करना; या तो उत्कृष्ट होगा, उत्कृष्ट नहीं है वह सारा क्या कहलायेगा ? अनुत्कृष्ट। तो उत्कृष्ट प्रदेशबंध हर समय तो हो नहीं सकता और ना ही अनादि से उत्कृष्ट हो सकता है। कभी उत्कृष्ट, कभी अनुत्कृष्ट होता रहता है और यदि दूसरी पद्धति से डिव्हिजन करेंगे तो जघन्य और अजघन्य। वह भी कभी जघन्य होगा; कब होगा तो जब योग कम से कम होता है तो प्रदेशबंध भी जघन्य होता है। यदि योग उत्कृष्ट होता है तो उसका प्रदेशबंध भी उत्कृष्ट हो जाता है। उसको यहां हम अन्य भी कारण देखेंगे। इसको कहते हैं उत्कृष्ट प्रदेशबंध की सामग्री। यानी कौन-कौनसी पोझिशन में, कौन-कौनसे कारणों में प्रदेशबंध उत्कृष्ट होता है, उसकी यहां चर्चा की है। हम देखेंगे यहां गाथा में

- २१० नंबर की गाथा में बताते हैं कि उत्कृष्ट प्रदेशबंध होने की सामग्री क्या है ? सामग्री क्या है यानी हां, कौन-कौनसे कारणों से प्रदेशबंध उत्कृष्ट होता है।

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ॥२१०॥

पहले बताते हैं उत्कृष्ट की यह सामग्री है और जघन्य में इसके विपरीत जानो। हम देखेंगे टीका में, हमें कहां आती है प्राकृत! देखो **जो जीव उत्कृष्ट योग से** संयुक्त **हो**। पहली एक कंडिशन क्या लिखी ? योग की; जहां योग उत्कृष्ट वहां प्रदेशबंध यानी जो संख्या है प्रदेशों की वह भी उत्कृष्ट होती है। दूसरी बात - **संज्ञी हो**ना चाहिये; संज्ञी पंचेन्द्रिय को ही यह उत्कृष्ट योग हो सकता है। तीसरी बात **पर्याप्त हो**ना चाहिये क्योंकि भले संज्ञी है फिर भी संज्ञी के अपर्याप्त अवस्था में योग कम है और संज्ञी के ही पर्याप्त अवस्था में योग अधिक है तो अधिक प्रदेशबंध होता है। फिर **जिसके थोड़ी प्रकृतियों का बंध होता हो**। थोड़ी प्रकृतियों का बंध होता हो का अर्थ क्या है ? हां जहां अधिक प्रकृति, हां, अभी जब आठ प्रकृतियां बंधती हैं तब उनके खाते में अधिक माल मिलेगा कि जब सात या छह प्रकृतियां बंधती हैं तब मिलेगा ? तो दसवें गुणस्थान में छह प्रकृतियां बंधती हैं तब उनमें अधिक माल मिलेगा। यह तो मूलप्रकृतियों की बात है। अब उत्तरप्रकृतियों में देखते हैं। पहले दर्शनावरण की बात करेंगे क्योंकि ज्ञानावरण तो पांच की पांच प्रकृतियां थ्रूआउट बंधती हैं दसवें गुणस्थान तक। दर्शनावरण की पहले और दूसरे गुणस्थान में नौ-नौ बंधती थी। अब दूसरे गुणस्थान में उनमें से तीन की बंधव्युच्छित्ति हुयी, कौनसी तीन ? स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला। अब तीसरे गुणस्थान से कितनी बंधेगी दर्शनावरण की ? छह ही बंधेगी। तो जहां कम बंधती हैं तो उसमें अधिक माल मिलेगा कि नहीं मिलेगा ? यह बटवारा करना था न। कहां गयी हमारी बहन ? बटवारा करनेवाली। तो जहां कम प्रकृतियां बंधती हैं क्योंकि समयप्रबद्ध तो योग से उतना आयेगा और जितना आयेगा वह कम प्रकृतियों में विभाजित होगा। तो एक-एक प्रकृति के खाते में अधिक-अधिक परमाणुओं की संख्या हो जायेगी। ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में जहां बंधनेवाली प्रकृतियों की संख्या घटती चली जाती है, वहां उसमें प्रदेशों की संख्या बढ़ती चली जायेगी। भले मिथ्यात्व बंधने से रुक गया, अनंतानुबंधी रुक गया, ऊपर के गुणस्थानों

में वह अप्रत्याख्यानावरण रुक गया, प्रत्याख्यानावरण रुक गया। अभी मुनिराज हो गये तो उनमें तो सारा बटवारा जो है मोहनीय का तो उतने थोड़े में संज्वलन और नोकषाय में बटवारा होगा, तो उसमें अधिक परमाणु मिलेंगे उसके खाते में।

प्रदेशों की बात चल रही है यहां पर। तो हमने क्या देखा ? जहां उत्कृष्ट योग है जिसके लिये संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त होना चाहिये और जहां कम प्रकृतियां बंधती हैं वहां वह जीव उत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है। यह उसकी उत्कृष्ट की सामग्री बतायी और जघन्य प्रदेशबंध में इससे उलटा लेना। जहां जघन्य योग है, जहां अपर्याप्त है, असंज्ञी है क्योंकि योग है न, वह एकेन्द्रियों से द्वीन्द्रियों को योग ज्यादा है, उससे त्रीन्द्रिय को ज्यादा है, उससे चतुरिन्द्रिय को, उसकी जो रेंज है योगों की, वह अधिक-अधिक होती है; उसमें भी कम-ज्यादा होता है। द्वीन्द्रियों के योग्य जितने कोई योग के परिणाम हैं, योग के स्थान हैं उसमें भी जघन्य से उत्कृष्ट तक बहुत सारे व्हेरिएशन्स हैं। इसलिये यहां संज्ञी को लिया, वहां असंज्ञी में भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय को ले लेंगे कि जो जीव जघन्य योग का धारक है, सूक्ष्म एकेन्द्रिय है, अपर्याप्त है और अनेक अधिक प्रकृतियों को बांधनेवाला है उसके खाते में कम परमाणु आ जायेंगे। अब यह मूलप्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध का स्वामी कौन है ? अब आठ में ही देखना है, अभी उत्तरप्रकृतियों में नहीं देखना। तो इसका उत्कृष्टबंध किसके होता है ? जैसे आयु के खाते में उत्कृष्ट में उत्कृष्ट परमाणु कब आते हैं ? उसकी बात यहां बता रहे हैं, गाथा नंबर है २११।

आउक्कस्स पदेसं छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणं तणुकसाओ बंधदि उकस्सजोगेण ॥२११॥

इस गाथा का अर्थ मैं महाबंध की छठी पुस्तक में मूलप्रकृतियों के उत्कृष्ट प्रदेशबंध का स्वामित्व इस अधिकार के आधार से करना चाहती हूं। आयु के प्रदेशबंध के छह स्थान हैं यानी १ला, २रा, ४था, ५वां, ६ठा, ७वां गुणस्थानवर्ती जीव उसका स्वामी है। मोहनीय के उत्कृष्ट प्रदेशबंध का स्वामी १ले से ९वें गुणस्थान तक का जीव है। यानी उसके नौ स्थान हैं। परंतु वहां अन्य सामग्री भी होनी चाहिये अर्थात् वह संज्ञी, पर्याप्त और उत्कृष्ट योगवाला होना चाहिये। **अवशेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अंतराय का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव करता है।** यहां छह मूल प्रकृतियां बंधती हैं इसलिये इन सबका उत्कृष्ट प्रदेशबंध यहां

पर है। स्थितिबंध में उत्तरप्रकृति का उत्कृष्ट बंध करता होगा न तो उसका उस मूलप्रकृति पर आरोप आता है। कैसे ? हम क्या कहते हैं मोहनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध कौन करता है ? अभी स्थितिबंध की बात मैं पूछ रही हूं। तो मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति है; वह एक की ही है परंतु हम मोहनीय की कहते हैं। ऐसा ही अब ज्ञानावरण के खाते में है, ज्ञानावरण की बात छोड़ दो। अभी जो हम देख रहे हैं, मोहनीय का उत्कृष्ट बंध पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक देखा था इसमें, प्रदेशबंध की बात चल रही है। प्रदेशबंध में मूलप्रकृति में जितना द्रव्य आया है, वह उत्तरप्रकृतियों में विभाजित होता है। इसलिये जैसे स्थितिबंध के विषय में उत्तरप्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति मूलप्रकृति की कहने में आयेगी वैसे प्रदेशबंध में वेदनीय, गोत्र और आयु में तो कह सकते हैं परंतु अन्य कर्मों में नहीं कह सकते। जब संज्वलन लोभ अकेला रहता है तो उसके खाते में मोहनीय का पूरा का पूरा द्रव्य चला जाता है, तो उसको कहेंगे वह मॅक्झिमम प्रदेशबंध उस मूल और उत्तर प्रकृति का है। हां, ओवरऑल यानी वह मोहनीय की एक ही प्रकृति रही है और वह सारा का सारा द्रव्य उसके खाते में जा रहा है। तो वहां नौवें गुणस्थान में संज्वलन लोभ का मॅक्झिमम प्रदेशबंध कहा।

ऐसे ही हर एक में लिया कि जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अंतराय ये तो सूक्ष्मसाम्पराय में छह ही बंधते हैं वहां पर। तो वहां उनका उत्कृष्ट प्रदेशबंध कहा है। यानी वहां कैसे ? दो कंडिशन चाहिये, वहां पर भी उसका योग उत्कृष्ट चाहिये। ऐसा नहीं है कि ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में योग कम होता है, ऐसा बिलकुल नहीं है। योग का अलग टाइप है क्योंकि गुणस्थान से योग का कुछ लेना-देना नहीं है। गुणस्थानों में जो विशुद्धि है और योग के जो स्थान हैं, वे अलग होते हैं। पंचेन्द्रियों में योग अधिक होते हैं, द्वीन्द्रिय आदि में योग कम होते हैं। यानी वहां जो योग ज्यादा है और प्रकृतियां थोड़ी बांधता है उस जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट प्रदेशबंध कहा है क्योंकि ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में कम प्रकृतियां बंधती हैं तो उसकी अपेक्षा वहां प्रदेशबंध ज्यादा है ऐसी बात वहां बतानी है और जघन्य प्रदेशबंध ? जघन्य में जघन्य प्रदेशबंध किसमें किसको होता है ? जो कम से कम योगवाला जीव है उसके जघन्य होगा। उसके लिये यह गाथा है, देखो २१५ नंबर की गाथा।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे।
सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्त जीव। यह समझते हैं सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्त क्या होता है ? निगोद नाम तो सुना है, वह कौनसा जीव है ? कौनसे इन्द्रियवाला है ? *श्रोता: एकेन्द्रिय।* एकेन्द्रिय; कौनसे कायवाला है ? अभी आवाज नहीं आ रही है। कौनसे कायवाला है ? *श्रोता: स्थावर कायवाला।* स्थावर कायवाला है, हां, स्थावर काय में कौनसा है ? वनस्पतिकायवाला है मालूम नहीं है ? यह साधारण वनस्पतिकायिक जीव है। निगोद क्या है ? निगोद किसको कहना ? तो जहां एक शरीर और अनंत जीव हैं। तो ये कौनसे जीव हैं निगोद शरीरवाले ? तो ये वनस्पतिकायिक जीव हैं। वनस्पतिकायिक के दो भेद होते हैं - साधारण और प्रत्येक; उनके अलावा बाकी सभी जो हैं वे प्रत्येक जीव ही हैं। प्रत्येक जीव का अर्थ क्या है ? एक शरीर, उसका स्वामी एक जीव; एक शरीर और एक जीव उसका स्वामी। जैसे मनुष्यशरीर है और उसका स्वामी हम एक मनुष्य है। वह भूत लगता है उसका अपना वैक्रियिकशरीर अलग है, वह हमारे शरीर का स्वामी नहीं होता है। क्यों ? तो यह अग्निकायिक है, वायुकायिक है, जलकायिक है, अन्य जो कोई हैं देव हैं, नारकी हैं, मनुष्य हैं, अन्य तिर्यंच हैं, अन्य एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय आदि सभी; सभी कैसे हैं ? प्रत्येक शरीरी हैं और साधारणवाले कौन हैं ? वनस्पति में ही दो भेद हैं- प्रत्येक शरीरी और साधारण शरीरी। अब साधारण शरीरवाले को ही निगोद कहते हैं; उस निगोद में फिर हम और भेद करते हैं - बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद। जैसे अन्य एकेन्द्रियों में हैं न, ऐसे ही निगोद में भी बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद होते हैं; फिर उनमें भी पर्याप्त भी और अपर्याप्त भी होते हैं।

यहां जो जघन्य में जघन्य पर्यायवाला जीव है; जो ज्ञान से भी हीन है, जिसका योग भी कम से कम है; ऐसा कौनसा जीव है ? सूक्ष्म निगोद; पर्याप्तों में भी योग ज्यादा होगा, उसका भी अपर्याप्तवाला भेद ले लिया; इसलिये यहां कहा सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त। क्योंकि जो पर्याप्त जीव होंगे उनमें निर्वृत्तिअपर्याप्त भी होंगे, उनकी बात नहीं लेनी है। इसलिये जिसमें जघन्य योग पाया जाता है, ऐसा जीव हमें लेना है यहां पर। वह कौनसा जीव लिया ? सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त। अपनी पर्याय का

पहला समय; पर्याय का पहला समय यानी आयु का पहला समय। क्यों ? उस समय जो योग होता है, योगस्थान जो होते हैं, उसकी चर्चा हम कल करेंगे, क्योंकि वह विषय अभी यहां हुआ नहीं अपना। तीन प्रकार के योग होंगे; पहले समय में जो होता है वह उपपादयोग होता है, बाद में एकांतवृद्धिवाले होते हैं, बाद में परिणामयोग होते हैं। उसकी चर्चा हम चार्ट के द्वारा कल देखनेवाले हैं। तो उसका यह जघन्य में जघन्य योग आयु के पहले समय में होता है। पहले में जीव कौनसा लिया ? वह सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्तवाला। दूसरी बात योग कौनसा लिया ? मिनिमम पॉसिबल योग जो है, जिसको कहेंगे वह आयु के पहले समय में होता है, इसको उपपादयोग कहते हैं। वह भी जघन्य में जघन्य क्योंकि उसमें भी बहुत रेंज है। उसमें भी जघन्य योगवाला ले लिया। उस समय जो सात प्रकृतियों का बंध कर रहा है वह जघन्य प्रदेशबंध होता है उसका। पहले समय में सात कर्मों का बंध क्यों कहा ? आठ क्यों नहीं कहा ? आयु तो त्रिभाग में बंधती है, पहले समय में कैसे बंधेगी ? ख्याल में आता है न ! तो पहले समय का योग लिया उस समय तो सात का ही बंध होगा और वह जीव बाद में जब आयु का बंध कर रहा है तो उस समय आयु का भी प्रदेशबंध जो होगा वह जघन्य होगा। क्योंकि जीव वही लिया है न, तो उसके हिसाब से उसके योग भले अन्य प्रकार के होंगे, फिर भी वहां आयु का बंध कर रहा है, तब आठ में डिस्ट्रिब्यूशन होता है और फिर उस समय आयु का भी प्रदेशबंध उसका जघन्य हो जायेगा।

श्रोता: बादर निगोद कहां-कहां रहते हैं ? हां, आपका प्रश्न ऐसा है यह सूक्ष्म निगोद कहां रहते हैं और बादर निगोद कहां रहते हैं ? ये जो सूक्ष्म जीव हैं, सभी पांचों प्रकार के; कौनसे ? सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म जलकायिक और सूक्ष्म पृथ्वीकायिक- ये पूरे ही लोकाकाश में पाये जाते हैं। उनको किसी आधार की ज़रूरत नहीं यानी किसीके आधार से वे नहीं रहते। सूक्ष्म क्यों कहते हैं ? किसीके आधार से नहीं रहते; ना ही अग्नि से जलते हैं और ना ही वायु से बहते हैं या ना ही जल से वे गलकर या बहकर नष्ट हो जाते हैं; यानी उनकी कोई हिंसा करे ऐसी बात नहीं है। इस डंड़े में भी सूक्ष्म जीव रहते हैं, वे प्रतिघात से रहित होते हैं। उनका शरीर ऐसा है कि दूसरे शरीर को नहीं रोकता है और वह भी दूसरों के द्वारा नहीं रोका जाता। इसलिये वे तो सर्वत्र पूरे लोकाकाश में हैं, सभी सूक्ष्म जीव। सभी जो

बादर हैं वे किसी न किसी आधार से रहते हैं। बादर निगोदिया किसके आधार से रहते हैं ? तो अन्य प्रत्येक शरीरी जीवों के आधार से रहते हैं। तो प्रत्येक शरीरी तो बहुत हैं; अग्निकायिक भी प्रत्येक शरीरी है, वायुकायिक भी है परंतु वहां निगोद नहीं रहते। तो यह बादर निगोद किसके आधार से रहते हैं ? तो प्रत्येक वनस्पति के आधार से रहेंगे; या मनुष्य और तिर्यंचों के जो औदारिकशरीर हैं- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य इनके जो शरीर हैं उनके आधार से अनंतानंत बादर निगोदराशि रहती है।

इसीलिये जो त्रस जीवों के शरीर हैं उनको मांस कहते हैं। मांसभक्षण का दोष क्यों आता है ? क्योंकि जहां ये त्रस जीवों के शरीर हैं उन शरीरों में निरंतर हर समय अनंतानंत निगोदराशि वहां उत्पन्न भी होती रहती है, मरती भी रहती है और नये-नये जीव भी वहां उत्पन्न होते हैं। यानी वह त्रस जीव मर भी गया फिर भी त्रस जीव का जो शरीर है जिसको हम मुर्दा कहेंगे, अभी वह जीव तो निकल गया है फिर भी उस शरीर में वहां अनंत जीवराशि उत्पन्न होती रहती हैं। जैसे चमड़ा भी है, सूखा चमड़ा भी है उसमें भी वह निगोद जीवराशि उत्पन्न होती रहती है। इसलिये हम जो चमड़े की वस्तुयें नहीं वापरते, वैसे तो वे हिंसा से उत्पन्न हुयी हैं और उनमें निरंतर अनंत निगोदिया जीव भी पाये जाते हैं।

यह कहीं प्रश्न आया था न कि चरणानुयोग में वह ऐसा-ऐसा कहते हैं; क्या कंदमूल खाने से पाप का बंध होता है ? होना ही चाहिये क्योंकि जहां अनंत जीव रहते हैं तो ऐसे अनंत जीवों की विराधना हमसे होती है। तो कितने कठोर परिणाम हैं कि हम जान रहे हैं कि यहां अनंत जीव हैं; जैसे कंदमूल आदि में अनंत जीव हैं, वहां भी यह निगोदराशि रहती है क्योंकि वह प्रत्येक शरीर के आधार से निगोद रहते हैं; प्रत्येक शरीरी वनस्पति के आधार से निगोद शरीरवाले रहते हैं; ऐसी वनस्पतियां खाने से, भक्षण करने से, दूसरों को खिलाने से पाप होता है। हम तो नहीं खाते हैं लेकिन क्या करें बनाकर बच्चों को खिलाते हैं ! उतना ही पाप के भागीदारी हैं; कृत-कारित-अनुमोदना का समान पाप है। *श्रोता: कंदमूल में भी ?* कंदमूल में सभी में हमने देखा न जहां-जहां; कौनसे ? हां, केवल कंदमूल में नहीं, यानी यह निगोद कहां-कहां रहते हैं ? निगोदराशि यह तो थुअर में यानी उसको क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं हिंदी में

ग्वारफाटा ? ॲलोव्हेरा, जो अभी फॅशन चल रही है। सुन लो सब महिलायें- सभी क्रीम में और कुछ फाउंडेशन में और कुछ तेलों में और वह सब चल रहा है न, ॲलोव्हेरा की फॅशन चल रही है। ॲलोव्हेरा और कोई भी कॅक्टस जाति की वनस्पति हैं, वह सारी निगोदराशि से भरी हैं। हमें तो केवल यह मालूम है, क्या ? आलू और प्याज, लहसन। ॲलोव्हेरा वनस्पति जो हैं न सारी क्रीम में आ रही हैं, तेलों में आ रही हैं, शॅम्पू में आ रही हैं, किस-किसमें आ रही हैं ? यह सारा ही निगोद से भरा हुआ है, हां। यह बाल और खाल के लिये हम क्या-क्या पाप कर रहे हैं। बाद में चर्चा करना। यह हम किसमें यूज़ कर रहे हैं उसकी बात अगर मालूम ही नहीं है तो मालूम कर लो यहां पर और यह जाहिर करने के पहले बहुत अभ्यास किया है मैंने। चार-चार साल तक इसको जाहिर नहीं किया था। यह सभी बात अपने ग्रंथों में लिखी है।

हम छिन्दवाड़ा में गये थे न बहन, वहां प्रवचन के वक्त टेबल पर कोई पुस्तकें रखी थी। मैंने वही बात निकाली थी ॲलोव्हेरा की और मैं ऐसे ही क्या-क्या है वह पुस्तकों में देख रही थी, उनमें लाठीसंहिता नामक शास्त्र था ! हां, तो उसमें तो ग्वारफाटा लिखा है उसमें नाम लेकर लिखा है, जिसको ॲलोव्हेरा कहते हैं। उसे कोरफड, हां, मराठीवाले कोरफड कहते हैं और उस पुस्तक में तो उसका वर्णन भी किया है वनस्पतियों का जिसको थुअर कहते हैं। हां, तो यह जो कॅक्टस कहो या कोरफड कहो या ॲलोव्हेरा कहो उसमें निगोद हैं। ना वह खाने योग्य है और ना ही वह ऊपर से लगाने योग्य है क्योंकि उसमें अनंत जीवराशि की विराधना होती है और यदि हमारे इतने कोमल परिणाम नहीं हैं तो भगवान आत्मा कहने से कुछ लाभ नहीं होनेवाला। वहां भी भगवान आत्मा अनंत क्वॉंटिटि में रह रहे हैं और इतने अनंत जीवों की अगर हम विराधना करते हैं क्योंकि हमें क्या लगता है हर्बल है वह सारा निर्दोष है, सारा खाने के योग्य है और भक्षण योग्य है। ऐसा नहीं है, वह बनाने में भी और वापरने में भी अनंत जीवों की हिंसा होती है। हां, साबुन में है, सबमें है, जहां कहीं है, यह हमारा कर्तव्य है कि किसमें क्या है वह देखना चाहिये। यह चरणानुयोग की आज्ञा है। अभी अपना समय हो गया, बाकी चर्चा कल करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२५. सर्वघाति-देशघाति द्रव्य का बटवारा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है - गोम्मटसार कर्मकाण्ड और जीवकाण्ड। उसके आधार से यह जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड भाषाटीका लिखी है पं. टोडरमलजी ने, उसके आधार से हमारा यहां अभी स्वाध्याय चल रहा है। यह जो प्रदेशबंध में प्रदेशों का यानी परमाणुओं का प्रकृतियों में बटवारा कैसे होता है इसका अपना विषय चल रहा था।

मूलप्रकृतियों में हमने देख लिया है कि एक समय में जीव कितने परमाणुओं को बांधता है ? तो कहते हैं एक समयप्रबद्ध। तो एक समयप्रबद्ध में कितनी वर्गणायें होती हैं ? तो कहते हैं सिद्धों के अनंतवें भागप्रमाण और अभव्यों से अनंत गुणावाला जो अनंत है, उतनी अनंत वर्गणा जीव एक समय में ग्रहण करता है और एक-एक वर्गणा में उतने ही अनंत-अनंत परमाणु होते हैं। यानी इतने सारे परमाणुओं का समूह जीव एक समय में ग्रहण करता है तो उसका बटवारा सभी प्रकृतियों में कैसे होता है ? हमने वहां एक प्रतिभाग की बात की थी; प्रतिभाग यानी उसी भागहार से बार-बार भाग देना, उस संख्या को हमने प्रतिभाग कहा। तो प्रतिभाग की व्हॅल्यू, उसका प्रमाण कितना देखा था हमने ? आवली का असंख्यातवां भाग। उस प्रतिभाग से भाग देकर, एकभाग अलग रखकर जो बहुभाग है, उसके हमने समान सात या आठ भाग किये। जिस समय आयुकर्म का बंध होता है उस समय वे परमाणु आठ में विभाजित होते हैं और जिस समय आयुकर्म नहीं बंध रहा हो, तो यह सारा बटवारा सात में होता है। तो यह एकभाग अलग रखकर बहुभाग सात या आठ में विभाजित होंगे।

अभी हम सात की बात करेंगे। बहुभाग सात में समानरूप से दिये। पहले में पहले सात में समानभाग तो आ गये सबके। फिर जो एकभाग रखा था उसके उसी प्रतिभाग से एकभाग, बहुभाग, एकभाग-बहुभाग आगे करते रहना। तो एकभाग का पहला बहुभाग हम देंगे वेदनीय में; फिर जो एकभाग रहेगा उसका बहुभाग चला जायेगा मोहनीय में; फिर जो एकभाग रहेगा उसका बहुभाग समान भाग करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय में दिया जायेगा और यदि सात कर्म बंधते हैं तो जो एकभाग बचा उसके समान भाग करके, वह नाम में और गोत्र में दे देंगे; यदि आयु बंधती हो तो फिर वहां वह एकभाग के बदले उसका बहुभाग करना, नाम-गोत्र में

ईक्कली देना और एकभाग बचा वह आयु में देना, इसतरह से मूलप्रकृतियों में हमने बटवारा देखा था।

अभी प्रश्न है कि जरा उत्तरप्रकृतियों में थोड़ा फिर से समझाइये। उत्तरप्रकृतियों में हम देख रहे हैं, वेदनीय में पहले देखते हैं। वेदनीय के खाते में जितना द्रव्य आया वह किसमें चला जायेगा ? पूरे का पूरा एक में क्योंकि एक ही प्रकृति एक समय में बंधती है; या तो साता बंधेगी या तो असाता। तो जितना वेदनीय के खाते में आया है वह सारा का सारा माल, यानी सारे के सारे परमाणु उस बंधनेवाली प्रकृति में चले जायेंगे, उसमें कोई बटवारा नहीं होगा। अब और किसमें बटवारा नहीं होता है ? गोत्र में भी नहीं होता, आयु में भी नहीं होता क्योंकि आयु जो बंधनी है वही बंधती है; उसके खाते का भी सारा द्रव्य उसीमें चला जाता है। अब कौनसे बचें ? ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, मोहनीय है, अंतराय है। देखा न, जिसका जितना द्रव्य है उसका वह द्रव्य उसकी अनेक उत्तरप्रकृतियों में चला जाता है। तो इसमें पहले में पहले हम मोहनीय की बात करेंगे या क्रम से ले लेते हैं - ज्ञानावरण की बात करेंगे, वह आसान होगा।

ज्ञानावरण में सामान्य से कथन करना है तो हम कैसे कहेंगे ? जिस क्रम से हम नाम ले रहे हैं; मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। उसी क्रम से उसमें बटवारा होता है। यानी पहले एकभाग अलग निकालो, बहुभाग पांच में विभाजित करो और फिर एकभाग में से पहले मतिज्ञानावरण को अधिक; फिर क्रम से दे देना। परंतु यहां और एक बात विशेष समझा रहे हैं कि ज्ञानावरण में, यानी घातिकर्मों में देशघाति प्रकृतियां भी हैं और सर्वघाति प्रकृतियां भी हैं। अभी यहां प्रकृतियां नहीं कहेंगे; यहां टोटल जितना सर्वघाति द्रव्य कहेंगे और देशघाति द्रव्य कहेंगे। यानी जो सर्वघाति प्रकार के परमाणु हैं, वे किसमें-किसमें पाये जाते हैं ? तो देशघाति प्रकृतियों में भी पाये जाते हैं और सर्वघाति प्रकृतियों में भी पाये जाते हैं। इसका विभाजन अभी दो प्रकार से करेंगे। तो जितने ज्ञानावरण के परमाणु हैं, उन परमाणुओं का पहले ही पहले देशघाति द्रव्य कितना है और सर्वघाति द्रव्य कितना है ऐसा विभाजन पहले होगा। यह सब एक ही समय में होता है परंतु समझने के लिये हम क्या कहेंगे ? देशघाति द्रव्य कितना है, सर्वघाति द्रव्य कितना है यानी देशघातिवाले परमाणु कितने हैं और सर्वघातिवाले कितने हैं ? तो

सर्वघाति द्रव्य अनंतवें भागप्रमाण हैं और जो देशघाति द्रव्य है उसका प्रमाण बहुत बड़ा है - अनंत बहुभाग प्रमाण है यानी मेजॉरिटी वह देशघाति ही है। उसके सामने वह सर्वघाति द्रव्य अनंतवां भाग है जो नहीं के बराबर हम कह सकते हैं। है तो सही, परंतु वह कितना है ? तो अनंतवां भाग है। उसमें भी अनंत परमाणु होंगे फिर भी वह देशघाति की अपेक्षा अगर हम उसकी तुलना करेंगे, तो देशघातिवाला द्रव्य सर्वघातिवाले द्रव्य से अनंतगुणा होगा क्योंकि वह सर्वघाति द्रव्य अनंतवें भागप्रमाण है और यह देशघाति द्रव्य अनंत बहुभागप्रमाण है।

जो अनंतवें भागवाला सर्वघाति द्रव्य है, वह पांच में विभाजित करना। एकभाग अलग करना, बहुभाग पांच में समानरूप से देना। एकभाग का बहुभाग पहले मतिज्ञानावरण को, फिर श्रुतज्ञानावरण को, फिर अवधिज्ञानावरण को, फिर मनःपर्ययज्ञानावरण को और अंत में केवलज्ञानावरण को देना। यह सर्वघाति द्रव्य हमने अलग निकाला। अब जो देशघाति द्रव्य है अनंत बहुभाग प्रमाण, उस अनंत बहुभाग प्रमाण देशघाति का बटवारा किसमें होगा ? चार में ही होगा क्योंकि केवलज्ञानावरण में कोई देशघाति द्रव्य है ही नहीं है। तो अभी उसका बटवारा ऐसा ही करना; एकभाग अलग निकालना, बहुभाग चार में समानरूप से देना। फिर वह पहले एकभाग का बहुभाग, फिर उसी पद्धति से दे देना, हीन क्रम से। पहले मतिज्ञानावरण को, फिर दूसरा बहुभाग श्रुतज्ञानावरण को, फिर अवधिज्ञानावरण को, फिर एकभाग मनःपर्ययज्ञानावरण को। यानी मतिज्ञानावरण को कितना द्रव्य मिला ? देशघातिवाला तो मिला ही मिला, सर्वघातिवाला भी जितना उसके खाते में आया था, वह भी उसको मॅक्झिमम ही मिला था। इसतरह से इन प्रकृतियों में प्रदेशों का बटवारा होता है।

दर्शनावरण में भी ऐसा ही लेना। दर्शनावरण की नौ प्रकृतियां हैं। यह नौ प्रकृतियों का बंध - मिथ्यादृष्टि को तो सभी बंधती हैं और हम जिस क्रम से उनके नाम लेते हैं वैसा उनमें बटवारा होगा। दर्शनावरण में भी सर्वघाति द्रव्य है और देशघाति द्रव्य है। दर्शनावरण में भी सर्वघाति द्रव्य उसका अनंतवां भाग है और देशघाति द्रव्य उसका अनंत बहुभाग है; देशघाति द्रव्य मात्र तीन में चला जायेगा - चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण। उसका सर्वघाति द्रव्य किसमें-किसमें चला जायेगा ? नौ में, क्योंकि वह देशघाति प्रकृति को सर्वघाति द्रव्य भी मिलता ही है, तो नौ

में वह चला जायेगा। वहां भी ऐसे ही डिस्ट्रिब्यूशन होगा उसका। पहलेवाले को बहुभाग-बहुभाग करके वह हीन क्रम से दे देंगे और जो देशघाति है वह तीन में दिया जायेगा। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण को वह हीन क्रम से दिया जायेगा। प्रोसेस तो वही है हीन क्रमवाला- एकभाग अलग रखो, फिर बहुभाग के समान भाग करो, फिर एकभाग के बहुभाग- बहुभाग करते जाओ। यह दर्शनावरण की बात हुयी। अंतराय में उलटे क्रम से देना। अंतराय में सर्वघाति प्रकृतियां कौनसी है ? एक भी नहीं है, सभी देशघाति हैं। परंतु द्रव्य तो सर्वघाति है और देशघाति भी है। तो सर्वघाति द्रव्य अनंतवें भाग है, उसका भी डिस्ट्रिब्यूशन उलटे क्रम से करो और देशघाति द्रव्य तो है ही वहां पर, उसका भी उलटे क्रम से। उलटा क्रम का अर्थ क्या है ? वीर्यांतराय को सबसे बड़ा भाग चला जायेगा, उलटे क्रम से आना। उपभोगांतराय, भोगांतराय, लाभांतराय और फिर दानांतराय। यह उलटे क्रम से उसमें आ जायेगा। तो हमने ज्ञानावरण देखा, दर्शनावरण देखा, अंतराय देखा, अन्य तीन जो एक-एक प्रकृति का बंध करते हैं, उनको भी देखा था।

अब रहे मोहनीय और नामकर्म। अभी मोहनीय में कैसा लेना ? मोहनीय की बात करेंगे। तो मोहनीय में भी पहले में पहले सर्वघाति द्रव्य और देशघाति द्रव्य ऐसे हम दो पार्ट करेंगे। सर्वघाति द्रव्य तो सबको चला जायेगा। बंधने की बात चल रही है न। यहां सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व की बात ही नहीं है, क्योंकि वह बाद में तैयार होती है। तो बंधनेवाली जो प्रकृतियां हैं; कितनी बंधती है ? हम मिथ्यादृष्टि की बात करते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव मोहनीय की कितनी प्रकृतियों को बांध रहा है ? २२। एक समय में एक जीव कितनी प्रकृतियों को बांधेगा ? २२, हां, उसमें व्हेरिएशन होगा। कैसे ? हमेशा ही जो बंधती आयी हैं ध्रुवबंधी जिसको कहते हैं- मिथ्यात्व है, सोलह कषाय हैं, भय, जुगुप्सा है- इनका तो सबको अनादि से बंध होता ही आया है। भय-जुगुप्सा के बिना अन्य जो सात उसको हमने क्या कहा था ? प्रतिपक्षी कहा था; यानी तीन वेदों में से एक वेद बंधता है, रति या अरति का बंध होगा, हास्य या शोक का बंध होगा; ख्याल में आया न ? और भय-जुगुप्सा तो हमने ले ही ली थी पहले। तो पहले उन्नीस और तीन २२ का बंध होगा एक जीव को एक समय में। वह वेदों में परिवर्तन हो सकता है फिर भी संख्या तो बाईस की बाईस ही रहेगी। हास्य-रति के बदले अरति-

शोक बंधेगा तो भी संख्या तो बाईस की बाईस ही रहेगी।

यहां २२ का बंध हो रहा है तो उन २२ में डिस्ट्रिब्यूशन कैसे होगा ? तो ध्रुवबंधी में तो सबको ले लेना है हमें एक साथ। हम पहले में पहले यह बात देखेंगे कि सर्वघाति द्रव्य किसमें- किसमें जायेगा और किसमें नहीं जायेगा ? तो सर्वघाति द्रव्य, सर्वघाति प्रकृतियों में भी होता है और देशघाति प्रकृतियों में भी होता है। तो देशघाति प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं ? संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नौ नोकषाय, ये देशघाति प्रकृतियां हैं; फिर भी नौ नोकषायों में भी कुछ विशेषता है। जो सर्वघाति द्रव्य है वह मात्र मिथ्यात्व और सोलह कषायों में जायेगा; सत्रह में विभाजित होता है। सर्वघाति द्रव्य मिथ्यात्व में और सोलह कषायों में; उसमें संज्वलन भी आ गया न, वह देशघाति प्रकृति है उसमें चला जायेगा। उसका पहले में पहले कैसा विभाजन-बटवारा होगा ? तो मोहनीय का जितना टोटल द्रव्य है उसको अनंत का भाग देना। जो एकभाग यानी अनंतवें भागप्रमाण परमाणु हैं वे सर्वघाति हैं। सर्वघाति द्रव्य है यह, प्रकृति नहीं। यह सर्वघाति द्रव्य कैसे विभाजित होगा ? किसतरह से बटवारा होगा उसका ? तो पहले में पहला बहुभाग सत्रह में समानरूप से जायेगा फिर एकभाग का पहला बहुभाग किसमें चला जायेगा ? मिथ्यात्व में। फिर अनंतानुबंधी- पहला नंबर है लोभ का, फिर माया का, फिर क्रोध का, फिर मान का। फिर संज्वलन का नंबर है; प्रदेशों के बटवारे में अनंतानुबंधी के बाद संज्वलन का नंबर आता है। फिर संज्वलन लोभ-माया-क्रोध-मान। फिर प्रत्याख्यानावरण के चार और फिर अप्रत्याख्यानावरण के चार। सर्वघाति द्रव्य इन सत्रह में विभाजित होता है।

अब देशघाति द्रव्य किसमें चला जायेगा ? संज्वलन में भी और नौ नोकषाय में भी। तो नौ नोकषायों में यानी अभी हम जितना देशघाति द्रव्य है, जितना ग्रहण किया है उसका फिर एकभाग-बहुभाग करना; एकभाग अलग रखना और बहुभाग के दो समान हिस्से कर देना। जैसे कल हमने ८१ मान लिये थे, ९ से भाग दो तो एकभाग की व्हॅल्यू है ९। वह अलग रखो और रहे ७२; उसको दो में विभाजित करो ३६-३६; संज्वलन को ३६ और नोकषायों को ३६। फिर जो ९ अलग रखे थे वह संज्वलन को दे दो। तो संज्वलन में तो ४५ हो जायेंगे और नोकषायों में ३६ रह जायेंगे, बात ख्याल में आयी ? अब वह जो ४५ हैं वह संज्वलन लोभ-माया-क्रोध-मान में हीन क्रम से दे देना

और नौ नोकषाय; नौ नहीं रहे अभी, ३६ जो है वह पांच नोकषायों में विभाजित हो जायेगा; वह किसतरह से होगा ? तो पहले में पहले ३६ को ९ से भाग देकर पहले एकभाग अलग रखो, बहुभाग के पांच समान भाग करो, पांच में विभाजित करो। फिर एकभाग का बहुभाग वेद में चला जायेगा, वेदनीय नहीं, वेद में जायेगा; फिर एकभाग का बहुभाग रति या अरति जो कोई बंध रही है उसमें चला जायेगा; फिर बहुभाग हास्य या शोक जो बंधनेवाली है उसमें चला जायेगा; फिर भय तो सबको बंध ही रही है उसमें जायेगा और लास्ट नंबर है जुगुप्सा का उसमें एकभाग जायेगा। इस क्रम से यह बटवारा होगा।

नामकर्म के बटवारे में थोड़ा कन्फ्यूजन था। नामकर्म में तो अलग-अलग प्रकृतियां अलग-अलग जीवों के अपने परिणामों से बंधती हैं। कोई एकेन्द्रिय संबंधी बंध कर रहा है, कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच संबंधी बंध करेगा, कोई मनुष्यगति बांध रहा है, कोई देवगति बांध रहा है। ऊपर के गुणस्थानों में मुनिराज और ही कोई यानी तीर्थंकर का भी बंध कर रहे हैं, आहारक का भी बंध कर रहे हैं। तो कौनसे जीव को कैसा डिस्ट्रिब्यूशन होगा ? पहले में पहले नामकर्म में किस क्रम से होता है ? अधिक क्रम से यानी उलटे क्रम से हम देंगे। लास्ट में जिसका हम नाम लेते हैं निर्माण प्रकृति को पहला नंबर। यानी पहले में पहले क्या करना उसके ? हम मान लेते हैं २३ प्रकृतियों का बंध कर रहा है; बंधनेवाली हैं २३। कौनसे जीव को होता है ? लब्धिअपर्याप्त संबंधी बंध हो रहा है। वह बंध कौन कर रहा है यह मेरा प्रश्न है। बोलो आप, सिंगतकर बताओ ? यह २३वाला बंध कौनसा जीव करता है ? यह सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त संबंधी बंध कर रहा है यानी वह बंध कितने का हो रहा है ? जो जीव, वह लब्धिअपर्याप्त की आयु नहीं कहेंगे हम, गति बांध रहा है उसके नामकर्म की कितनी प्रकृतियां बंधती हैं उसकी बात चल रही है। परंतु वह बंध कौन जीव कर रहा है ? *श्रोता: देव और नारकी।* नहीं। हं ? देव वह बांधेंगे ही नहीं, नारकी भी उसको नहीं बांधेंगे, मनुष्य या तिर्यंच बांधेंगे। फिर से, यह समझना बराबर। कौनसे भव संबंधी; कौनसे गति सबंधी बंध कर रहा है ? तो हम कहेंगे यहां सूक्ष्म एकेन्द्रिय संबंधी बंध कर रहा है। परंतु कौन बंध कर रहा है ? अरे ! कोई मनुष्य भी कर सकता है और एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय - तक के कोई भी तिर्यंच एकेन्द्रिय का बंध कर

सकते हैं, उसकी बात चल रही है। केवल एकेन्द्रिय जीव ही यह बंध नहीं कर रहा, जो जीव इन २३ प्रकृतियों को बांधेगा- उसके उस समय परिणाम कैसे हैं ? एकेन्द्रिय में जाने योग्य हैं।

आप कहेंगे कि उस समय की क्यों बात कर रहे हैं, क्योंकि यदि आयु बंधती हो तो बात अलग है। अन्यथा ऐसे जो परिमाण हैं- तिर्यंचगति बांध रहा है; कोई एकेन्द्रिय संबंधी बंध कर रहा है; परिणाम ऐसे खोटे हैं, कभी अपर्याप्त संबंधी बंध कर रहा है। कभी परिणाम कुछ अलग हो गये - कोई स्वाध्याय में चला गया; कोई भगवान की पूजा कर रहा है, तब देवगति संबंधी बंध हो रहा है। लेकिन वह बंध कौन कर रहा है ? मनुष्य कर रहा है। देवगति का बंध कौन कर रहा है ? तिर्यंच कर रहा है। नारकी और देव तो नहीं करते हैं। ना देव देवगति का बंध करते हैं, ना नारकी देवगति का बंध करते हैं। ऐसे ही नारकी नरकगति का भी बंध नहीं कर सकते और नारकी देवगति का भी बंध नहीं कर सकते। मनुष्यों और तिर्यंचों को सब रास्ते खुले हैं और मनुष्यों के लिये पांचवां रास्ता भी खुला है मोक्ष का। तो यह जो २३ का अगर कोई बंध करता हो, फॉर एक्झॅम्पल यानी उदाहरण के तौर पर; यहां २३ प्रकृति बांधनेवाले जीव के लिये वह बटवारा कैसे होता है उसकी बात चल रही है। २३ प्रकृतियों में यह औदारिकशरीर नामकर्म बांध रहा है वह, एकेन्द्रिय संबंधी है तो अंगोपांग तो नहीं बांध रहा है। तेजसशरीर नामकर्म का भी बंध कर रहा है और कार्माण का भी कर रहा है। तो इन तीन शरीरों को एक ग्रुप में रखना वहां, क्योंकि वह पिंड प्रकृति है।

जैसे हमने एकभाग यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय को ईक्कल करके बाट दिया था वैसे वहां करना है। यानी वह पिंड प्रकृतिरूप से एक समझना और २३ के बदले यहां हम उसके २१ भाग करेंगे। पहले में पहले नामकर्म का जितना माल है उसका एकभाग अलग रखकर बहुभाग के २१ समान भाग करेंगे और २१ में देंगे और फिर उलटे क्रम से एकभाग के बहुभाग-बहुभाग देंगे। पहले निर्माण को देंगे; फिर पूर्व-पूर्व कर्मों में चले आयेंगे; यह इसके बटवारे का तरीका है। यहां एक प्रश्न आया कि *इसको जानने से हमें क्या लाभ हो सकता है ?* आप लाभ किसमें चाहते हैं ? पैसों में चाहते हैं ? शुभभावों में चाहते हैं ? पुण्य प्रकृति में चाहते हैं ? यश में चाहते हैं ? हम सभी लाभ बता देंगे आपको। किसी भी चीज का ज्ञान होना इसका सबसे बड़ा लाभ है

अज्ञान की निवृत्ति। उस संबंधी हम नहीं जान रहे थे, हमारी अपनी कुछ न कुछ कल्पनायें होती रहती हैं कर्मों के बारे में। हम उनको हटाना चाहते हैं या जुटाना चाहते हैं, जो कुछ करना चाहते हैं। परंतु हमें उस संबंधी ज्ञान नहीं था तो अभी हमें उस संबंधी ज्ञान हुआ। तो ज्ञान हुआ तो क्या हुआ ? हां लाभ कहां हुआ ? क्योंकि हमने ज्ञान को कभी लाभ माना ही नहीं न ! हमारे पांच दिन यहां बीत गये, यदि हम वहां होते, कहां ? अपने दुकान में, व्यापार में, तो कितना लाभ होता !

रमेशजी, हमेशा गुरुदेवश्री के मुख से हमने बात सुनी है आपके पिताजी की। बेंगलोर में जब मंदिर बना, तो बभूतमलजी भंडारी, वे तो उसमें लग गये। वह पंचकल्याणक बहुत बड़ा हुआ था, १९७५ में। तो वे तैयारी में लगे, आठ दिन पूरे वहीं पर थे। तो जो कुछ उनका व्यापार था, उसमें जो कुछ भाव वगैरह थे, कुछ बेचना था वह वैसे ही रह गया। चार लाख का कुछ माल था, ऐसे उनके मुंह से हमने सुना है उस जमाने में। तो क्या हुआ ? वह तो चले गये, सारे दिन यहीं पंचकल्याणक में लगे रहे। बाद में क्या हुआ ? उस माल का भाव दोगुणा हो गया। आपने ने भी सुना होगा। *श्रीता: फोर टाइम्स।* अरे वाह ! हमने तो दो ही टाइम्स सुना, अभी यह फोर टाइम्स। हां, तो उसके लिये हम नहीं पढ़ रहे। हम यहां आये तो हमारा भी दोगुणा होगा इसकी चिंता या इसकी आशा मत रखना क्योंकि घूम फिरकर हमें उसीकी महिमा आती है। डबल हुआ न तो अच्छा हुआ। क्या करें ? जीव को यह संयोगों की और पैसे की इतनी महानता भासित होती है।

अन्य भी देखो, यहां पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका में तो इतनी बात लिखी है। यहां तो लिखते हैं **शास्त्राभ्यास करने से हुआ जो सम्यग्ज्ञान, उससे उपजा हुआ जो आनंद, वही सच्चा सुख है।** यह जानते हुये कुछ आनंद हो रहा है कि नहीं ? हमें नहीं समझ में आ रहा था इसमें, इतनी बातें हैं अपने शास्त्रों में। हमें पता ही नहीं था, ऐसा लगता है कि नहीं लगता ? आचार्यों की महानता भासित होती है कि हम पर करुणा करके और पं. टोडरमलजी ने करुणा करके हमारे जैसे ऑर्डिनरि जीवों को यह समझाया कि जो समझ सकते हैं। **यह सुख तो स्वाधीन है, आकुलता रहित है और किसीसे नष्ट नहीं हो सकता।** यह तो सच्चे सुख यानी अतीन्द्रिय सुख की बात की है। परंतु यहां तो शास्त्राभ्यास की बात करते हैं देखो, और

यह कैसा है ? शास्त्राभ्यास से तो... ऐसा लिखते हैं यहां पर। **विवाहादिक कार्यों में तो बहुत अपनी बड़ाई दिखाता है**, बहुत खर्चे करता है। **तो वह बड़ाई कितने दिन तक रहनेवाली है ?** और जो वहां आनेवाले हैं न वे तो कहीं न कहीं आपकी कहां कमी है उसको देखते हैं, क्या अच्छा किया उसको नहीं देखते हैं। हां, तो फिर गप्पे भी उसीके लगायेंगे और कहते हैं कि उसके लिये कितने दिन वह बड़ाई रहेगी। **परंतु उसके लिये जो महापाप आरंभ किया है**, कितना आरंभ हुआ है ? कितना क्या-क्या हुआ है ? **उसके नरकादि में बहुत काल दुःख भोगना पड़ता है।** और वह विवाह करके हमने बहू को लाया है या बेटी को दिया है। अब वह विवाह कितना संपन्न होगा और कितना सुख देंगे हमें, वह तो बात अलग है।

क्यों ? तो **शास्त्राभ्यास की तो ऐसी बड़ाई है कि सभी जन तो महिमा करते हैं**; अपनी महिमा के लिये नहीं, परंतु **उसमें तो परंपरा स्वर्ग और मुक्ति का कारण बताया है।** स्वर्ग के लिये नहीं करना है परंतु मोक्ष के लिये यह अत्यंत कार्यकारी है क्योंकि हमें सही ज्ञान हो जाता है तो भेदज्ञान में पुष्टि मिलती है। देखो और भी यहां लिखा है। वहां तो ऐसा लिखा है कि जैसे बने वैसा अभ्यास करना यानी यहां तो इतना ही लिखा है सौ बातें समझायी हों तो उसमें दो बातें समझ में आयेंगी तो आपका कल्याण हो जायेगा। इतनी बात यहां स्वयं पं. टोडरमलजी साहब ने लिखी हैं। और भी आगे लिखते हैं कि **क्रोधादिक कषायों की मंदता होती है। पांच इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति रुक जाती है।** अभी हम यहां छह-छह घंटे, सात-सात घंटे बैठ रहे हैं तो उससे क्या हम पाप कर रहे हैं ? उलटा यह तो वस्तुव्यवस्था, वस्तुस्वरूप, इस विश्व में क्या-क्या है उसकी बात हम जान रहे हैं। कहते हैं न, **जा वाणी के ज्ञानतैं सूझे लोकालोक।** लोक-अलोक में क्या-क्या है, कैसे क्या होता है, कर्मों में क्या बातें बनती हैं - यह सब बैठे-बैठे हमें पता चलता है और क्या होता है ? **अति चंचल मन एकाग्र होता है।** आत्मा का अनुभव करना है तो चंचल मन के द्वारा होगा कि उपयोग की स्थिरता में होगा ? *श्रोता: उपयोग की स्थिरता में होगा।* हां, तो करणानुयोग का अभ्यास उपयोग की स्थिरता के लिये अत्यंत कार्यकारी है। मन भटकता ही नहीं यहां-वहां। एक घंटा कहां बीत गया पता ही नहीं चलता, हमें बार-बार घड़ी देखनी पड़ती है कि हम कहीं ओव्हरटाइम तो नहीं कर रहे हैं न यहां पर। देखो गुरुदेवश्री की परंपरा थी,

उनका प्रवचन ठीक समय पर बराबर शार्प शुरू भी होता था और शार्प बंद भी होता था। कभी उन्होंने ऐसे पांच मिनट अधिक लूं, अभी इनको और समझाऊं, ऐसा कभी नहीं किया, हां, बिलकुल नहीं !

देखो और क्या लिखते हैं ? **अति चंचल मन एकाग्र होता है।** इसमें उपयोग की इतनी सूक्ष्मता होती है, एकाग्रता होती है। ध्यान क्या होता है ? एकाग्रता ही तो ध्यान है। तो ऐसी एकाग्रता हम अपने में भी करेंगे, विकल्पों के द्वारा जो एकाग्रता होगी वह तो व्यवहार ध्यान कहेंगे। परंतु उसको छोड़कर आत्मा में जो स्थिरता है वह स्थिरता तो ऐसे ही हो सकती है। जहां उपयोग की सूक्ष्मता, यह प्रॅक्टिकल कहो या प्रॅक्टिस कहो; यही तो है न। वहां भी उपयोग की स्थिरता होना है। **हिंसादि पांच पाप नहीं प्रवर्तते। थोड़ा ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थों का जानना होता है।** हम तो अल्पज्ञानी हैं, क्षयोपशमिक ज्ञानी हैं। कितना जान रहे हैं ? पूरे तीन काल की बातें जान रहे हैं। कितने जीव क्या-क्या करते हैं; उनके परिणाम कैसे होते हैं; कैसे कर्म बंधते हैं; कैसे छूटते हैं; कर्म बंधते हैं तो कितने बंधते हैं; उसका बटवारा कैसे होता है; उसमें कितनी स्थिति बढ़ती है; वह कैसे निकल जाती है; यदि ऐसा बंध होता है तो इसमें से छूटने का मार्ग क्या है; हमारे कर्म इतने बंधे हुये हैं तो अभी हम क्या करें ? फिर आगे की भी प्रोसेस बतायेंगे, सम्यग्दर्शन होता है तो कर्मों में कितना क्या-क्या होता है, कैसे सब चले जाते हैं यानी इसका ज्ञान होने से हमें बिलकुल गॅरंटी है कि बस यह तत्त्वचिंतन से और सही मान्यता से हमारा सारा कार्य होनेवाला है। क्योंकि हम करना तो चाहते हैं और फिर भी कहीं न कहीं चूक जाते हैं।

अभी एक भाई ने यहां पूछा; भाव अच्छे-बुरे आते रहते हैं, उन्हें रोकने के लिये हमें क्या करना चाहिये ? अच्छा प्रश्न है। कुछ नहीं करना चाहिये। तो आने दें ? मेरा प्रश्न है आपके घर में मेहमान बहुत आते हैं - क्या करना चाहिये ? अरे ध्यान मत दो न उनकी तरफ। आप ही आओ-आओ, रह लो, बैठो, चाय-पानी करो, उसको खिलाओ-पिलाओ, तो आते रहेंगे। मेहमान आते हैं, हमारे यहां जो स्वाध्यायी आते हैं न, कभी-कभी कहते हैं आज नहीं आना होगा, मेहमान आ रहे हैं। हमने कहा एक ट्रिक बता दूं, मेहमान को साथ में लेकर आना यहां पर; उन्हें तो अच्छा मार्ग मिलेगा, नहीं तो आना बंद होगा। यह हमारे सुशीलाबहन है न, कोई भी उनके व्याही-विवाण भी उनके घर में

आते हैं, तो वह कहती है यह मेरा टाइम है स्वाध्याय में जाने का, आप इसके पहले आ जाओ। वे सारे जान गये हैं कि अभी इसको समझाने से तो कुछ फायदा नहीं है। तो वे बराबर उसी समय आते हैं और कहते हैं आप तो जायेंगे ही। सुशीलाबहन कहती हैं, हां हम तो ज़रूर जायेंगे, आपको आना है तो चलो। हां, जिसको स्वाध्याय नहीं रुचता तो वह तो आना ही बंद होता है। अपने लिये, स्वाध्याय के लिये और टाइम मिलता है, क्यों ? स्वाध्याय में तो फ़ायदा ही फ़ायदा है।

श्रोता: हम दूर भव्य है कि अभव्य हैं यह कैसा मालूम पड़े ? उसकी चिंता मत करना। जिसको आत्मा की बात रुचती है, यहां लिखा है **तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता। निश्चितं स भवेत् भव्यो भावि निर्वाणभाजनम्॥** वह निश्चित ही भव्य है कि जिसको आत्मा की बात भी रुचती है। जो रुचिपूर्वक श्रवण करता है, जिसको जिज्ञासा है कि मैं कौन हूं और यह स्वरूप मुझे कैसे प्राप्त हो वह निश्चित ही भव्य है, अपने अभव्यपना की शंका भी करने की ज़रूरत नहीं है। *श्रोता: आगम की सूक्ष्म बातें समझ में न पड़े तो क्या हमारा मोक्ष नहीं होगा ?* बिलकुल होगा ! बिलकुल होगा। क्योंकि अपने आत्मा को पहचानना ही मुख्य बात है। तो यह सूक्ष्म बातें जानने की क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता की बातें नहीं है। हमारा उपयोग इसमें सूक्ष्म होता है, जो हम करना चाहते हैं वह और सुलभ हो जाता है और सूक्ष्म बातें भले समझ में नहीं आती हैं परंतु उसमें जो कोई मोटी-मोटी बातें हैं वह तो समझ में जरूर आती हैं और उसीसे अपना कल्याण हो जाता है और एक-दो भव में थोड़ी यह होनेवाली बातें हैं, ख्याल में आता है न ?

श्रोता: कषायकाण्ड क्या है ? अभी हम कर्मकाण्ड देख रहे हैं, वह कषायकाण्ड पूछ रहे हैं। जैसे वह अग्निकाण्ड होता है और क्या-क्या होता है न, ऐसा यह कषायों का काण्ड ही तो चल रहा है रात-दिन। देखों यह भावों की अच्छे-बुरे की बात आयी न, तो यह भाव आते हैं परंतु उसरूप मैं नहीं हूं, मेरे से वे भिन्न हैं। वे मेरे ज्ञान के ज्ञेय हैं परंतु हम ज्ञान को उसके साथ मिला देते हैं और अपने को उन भावोंरूप मान लेते हैं। हम बहुत अच्छा कर रहे हैं क्योंकि हम पाप कुछ नहीं कर रहे हैं, हम पुण्य कर रहे हैं देखो हम अच्छे हैं; यानी वह थोड़ा पुण्यभाव, शुभभाव आया तो अपने को थोड़ा अच्छा मानने लगते हैं। औरों से हम थोड़े बढ़ गये हैं ऐसा मानते हैं।

हमें तो आनेवाले भावों से भेदज्ञान करना ज़रूरी है।

श्रोता: सम्यग्दर्शन होने के बाद छह मास में मिनिमम एक बार अनुभव होना आवश्यक है ? न हो तो वह समाप्त होकर गिरेगा ? ऐसा कहीं भी डायरेक्ट लिखा हुआ नहीं मिलता। कषायों के वासनाकाल की बात आती है परंतु वह बात समझ में आती है कि अप्रत्याख्यानावरण छह महीने से अधिक टिकता नहीं। यह बात यहां कर्मकाण्ड में कहीं लिखी है, मुझे मिलेगा पेज नंबर तो मैं बताऊंगी आपको। फिर भी वह तो सामान्य कथन है। *श्रोता: प्रत्यक्ष सद्गुरु सम्यग्दर्शन पाने के लिये आवश्यक है ?* जिसको देशनालब्धि कहते हैं, वह साक्षात् ज्ञानी के द्वारा होती है, ऐसा ही कथन आता है। *श्रोता: परिणति, प्रतीति, उपयोग, स्वसंवेदन में क्या फर्क है ?* अभी यह सारे द्रव्यानुयोग के यहां विषय आ रहे हैं। परिणति यानी परिणमन; किसी भी गुण के परिणमन को हम परिणति कह सकते हैं। प्रतीति यानी श्रद्धा। उपयोग तो ज्ञान की पर्याय है, फिर भी शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग की जो बात आती है, वह चारित्रगुण की अपेक्षा है और मोटे तौर पर अपने ख्याल में आते हैं उसकी अपेक्षा है। स्वसंवेदन यानी अपने आत्मा का वेदन, अनुभव, अतीन्द्रिय आनंद की अनुभूति, उसको कहेंगे स्वसंवेदन। *श्रोता: कोई जीव अनादि मिथ्यादृष्टि या सादि मिथ्यादृष्टि जान सकते हैं क्या ?* हां, केवलज्ञानी तो जान ही रहे हैं; हो सकता है अवधिज्ञानी भी जानेंगे। वह सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति पड़ी है उनके ज्ञान का विषय हो तो वह कह सकेंगे आपको। *श्रोता: दूरानुदूर भव्य जीव सम्यक्त्वी हो सकते हैं ?* जब दूरानुदूर कहे हैं इसका अर्थ ही वह कभी न कभी प्राप्त होनेवाले हैं, अभव्यसम तो नहीं कहा, दूरानुदूर कहा। *श्रोता: गुणश्रेणी निर्जरा क्या है ?* उसका विषय आयेगा, तब वह बात चलेगी क्योंकि गुणश्रेणी बिलकुल अच्छी तरह से समझना है तो पंचलब्धि में उसका वर्णन है। अब हम आगे बढ़ते हैं। यह इसमें और भी महिमा बहुत सारी है। यह शास्त्राभ्यास क्यों करना और करणानुयोग क्यों पढ़ना इसकी हमने बहुत सारी चर्चा करणानुयोग परिचय और पंचलब्धि पुस्तक में भी देखी है। अब हम आगे बढ़ेंगे, अपना विषय चलेगा।

कल-परसों हमने क्या-क्या देखा ? उसकी थोड़ी हमने रिव्हिजन देख ली है। वहां बटवारा भी हमने देखा न; समयप्रबद्ध का बटवारा भी देखा है। अब यहां मैं

बताना चाहती हूं कि ये बंधस्थान क्या होते हैं ? बंधस्थान का अर्थ क्या है ? उसको पहले समझेंगे। प्रत्येक प्रकृति के इतने- इतने बंधस्थान हैं उसका अर्थ क्या है ? पहले जो हमने देखा था बंधयोग्य प्रकृतियां कितनी होती हैं तो सारी टोटल मिलकर १२० बंधती हैं। तो फिर प्रत्येक मूलप्रकृति में कितनी-कितनी होती हैं ? उसको भी हमने देखा था। परंतु यह जो हम कहेंगे नामकर्म में कितनी हैं ? तो ९३ कहो या शॉर्ट में उसमें छब्बीस कम करके कहो। परंतु यह तो क्या अनेक अलग-अलग जीव कौन-कौनसी प्रकृतियां बांध रहे हैं उसकी अपेक्षा कथन है। जैसे अभी हमने मोहनीय का हिसाब लगाया था, २२ प्रकृतियों का बंध होता है। एक जीव को एक समय में २२ प्रकृतियों का बंध होता है। परंतु सभी जीवों की अपेक्षा बात करेंगे तो कोई न कोई जीव बांध रहा है। तो कितनी बांधेगा ? हां कितनी ? *श्रीता: २६/२६*; एक मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय की पच्चीस। कितनी बंधती हैं ? २६ बंधती हैं। परंतु ॲट अ टाइम एक समय में एक जीव को कितनी बंधती हैं ? २२ बंधती हैं। तो उसको बंधस्थान कहना, एक जीव को एक काल में जितनी-जितनी प्रकृतियों का बंध होता है उसको बंधस्थान कहते हैं। फिर समझना; एक जीव को एक काल में जितनी प्रकृतियां बंधती हैं, जितनी नंबर ऑफ़ प्रकृतियां बंधती हैं उतनी संख्यावाला वह बंधस्थान कहलायेगा। यहां उत्तरप्रकृतियां समझना। क्योंकि ज्ञानावरण के बंधस्थान हम देखेंगे, दर्शनावरण के देखेंगे, मोहनीय के देखेंगे। तो उसमें परिभाषा क्या बनायी हमने बंधस्थान की ? एक जीव को एक काल में जितनी-जितनी उत्तरप्रकृतियां बंधती हैं उन प्रकृतियों की संख्या को हम क्या कहेंगे ? उस कर्म का विशिष्ट बंधस्थान।

अभी ज्ञानावरण में बंधस्थान देखते हैं। ज्ञानावरण की कितनी प्रकृतियां एक जीव को एक समय में बंधती हैं ? पांचों बंधती हैं। मिथ्यादृष्टि को भी पांच बंधती हैं; मुनिराजों को पांच बंधती हैं और दसवें गुणस्थानवाले मुनिराज को ? उनको भी पांच ही बंधती हैं। ज्ञानावरण में ५ प्रकृतिवाला बंधस्थान है। पांच बंधस्थान नहीं कहेंगे, ५ प्रकृतिवाला एक ही बंधस्थान है, क्या कहा ? ज्ञानावरण कर्म की कितनी प्रकृतियां बंधती हैं ? पांच। पुस्तक में तो ऐसा लिखेंगे ५ प्रकृतिक स्थान। क लगाया न आगे, क यानी ५ प्रकृतिवाला स्थान। कितने है ऐसे ? एक ही है क्योंकि पहले गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक ५ प्रकृतियां ही सबको बंधती रहती हैं। इसलिये वह तो आसान है

न; ज्ञानावरण में कितने स्थान हैं ? एक ही स्थान है। कितनी प्रकृतियोंवाला है ? ५ प्रकृतियोंवाला है, यह बात समझ में आयी ? पांच स्थान हैं ऐसा नहीं कहेंगे, ५ प्रकृतिवाला एक स्थान है।

अब मेरा प्रश्न है आपको वेदनीयकर्म के कितने स्थान होंगे और कितनी प्रकृतिवाले होंगे ? *श्रोता: १ प्रकृतिवाला।* देखकर बता रहे हैं कि सोचकर बता रहे हैं ? देखों, वेदनीय की कौनसी प्रकृति बंधती है ? भले कोई भी बंधेगी, परंतु एक समय में एक ही बंधती है और बंधती कहां तक ? तेरहवें तक। पहले छह गुणस्थानों में दोनों में से एक बंधेगी। कहां तक दोनों में से एक बंधेगी ? क्योंकि जहां असाता की बंध की व्युच्छित्ति होती है, छठे में होती है; तो छठे गुणस्थान तक किसीके साता का बंध होगा, किसीके असाता का होगा मगर होगा तो एक का ही। उसके ऊपर के गुणस्थानों में सातवें से लेकर तेरहवें तक वहां साता का ही बंध होगा परंतु होगा एक का ही। संख्या एक ही रहेगी थ्रूआउट, पहले से लेकर तेरहवें तक, तो उसको कहेंगे १ प्रकृतिक-एक स्थान यानी १ प्रकृतिवाला एक स्थान, ख्याल में आती है कुछ बात ?

ऐसे गोत्र में क्या होगा ? १ प्रकृतिवाला एक स्थान। कहां से कहां तक ? मिथ्यात्व से लेकर उच्चगोत्र की बंधव्युच्छित्ति कहां होती है ? दसवें गुणस्थान में, वहां तक। तो नीच या उच्च ऐसा भेद कहां तक होगा ? पीछे कोई कहेंगे ? *श्रोता: दूसरे गुणस्थान तक।* हां, दूसरे गुणस्थान तक क्योंकि नीचगोत्र कहां तक बंधता है ? उसकी बंधव्युच्छित्ति हमने दूसरे में देखी थी। तो पहले में और दूसरे में या तो उच्चगोत्र बंधेगा या नीचगोत्र बंधेगा; बाद में तो उच्चगोत्र ही बंधेगा थ्रूआउट, परंतु बंधेगी एक ही प्रकृति। तो उसको क्या कहेंगे हम ? १ प्रकृतिवाला एक स्थान। उसीको कहेंगे १ प्रकृतिक एक स्थान क्योंकि हमें आगम की भी भाषा समझनी है न। प्रकृतिक कहने से क्या है ? प्रकृतिवाला। अभी आगे भी देखेंगे।

दर्शनावरण की बात करते हैं, तो पहले गुणस्थानवाला और दूसरे गुणस्थानवाला दर्शनावरण की नौ प्रकृतियों का बंध करता है। कौनसी नौ ? स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। ये सभी नौ की नौ हर समय बंध रही हैं; पहलेवाले को भी बंध रही हैं, दूसरे गुणस्थानवाले को भी बंध रही हैं।

दूसरे गुणस्थान में स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला की बंधव्युच्छित्ति होगी तो तीसरे के आगे कितने का बंध होगा ? *श्रोता: छह का बंध होगा।* छह का बंध होगा। तो हम कहेंगे पहला स्थान कितने का है ? ९ प्रकृतिवाला स्थान है। दर्शनावरण का ९ प्रकृतिवाला स्थान कौनसे-कौनसे गुणस्थानों में है ? *श्रोता: पहले और दूसरे।* पहले और दूसरे। अभी हम देखते हैं इन तीन प्रकृति की व्युच्छित्ति हुयी है तो तीसरे गुणस्थान से दर्शनावरण की कितनी बंध रही है अभी ? छह बंध रही हैं। तो कहां तक छह बंधेगी ? जब तक और दो की बंधव्युच्छित्ति नहीं होगी। तो और दो की बंधव्युच्छित्ति कहां होती है पता है पीछे किसी को ? *श्रोता: आठवें के पहले भाग में।* हां, आठवें के पहले भाग में; वहां निद्रा और प्रचला का बंध है परंतु बाद में रुक जाता है। तो वहां तक कितनी बंध रही हैं ? तीसरे में, चौथे में, पांचवें में, छठे में, सातवें में और आठवें के पहले भाग में। दर्शनावरण की छह प्रकृतियां निरंतर बंध रही हैं, हर समय बंध रही हैं। तो उसको कहेंगे ६ प्रकृतिवाला हां, दूसरा स्थान। बराबर, यह दूसरे नंबर का स्थान है।

पहला स्थान कौनसा देखा था हमने ? ९ प्रकृतिवाला एक स्थान देखा। अब यह ६ प्रकृतिवाला दूसरा स्थान है जो तीसरे गुणस्थान से लेकर आठवें के पहले भाग तक रहेगा। अब वह निद्रा और प्रचला की भी बंध की व्युच्छिति हुयी, अभी आठवें के दूसरे भाग से लेकर ऊपर कितनी प्रकृतियां बंधेगी दर्शनावरण की ? चार। कौनसी ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। यहां मात्र बंध की बात चल रही है, उदय की बात यहां अभी हमने सोची ही नहीं है। कहां तक इसका बंध होगा, चारों का ? हां, दसवें के अंत तक; यानी आठवें गुणस्थान के दूसरे भाग से लेकर, पूरा रिमेनिंग आठवां गुणस्थान, नौवां और दसवां पूरा। इसमें दर्शनावरण की ४ प्रकृतिवाला यह तीसरा स्थान होगा। तो दर्शनावरण में कितने स्थान होंगे टोटल ? तीन हुये। ९ प्रकृतिवाला एक, ६ प्रकृतिवाला एक और ४ प्रकृतिवाला एक। कितना आसान है ! लोग तो करणानुयोग को क्यों डिफिकल्ट समझते हैं मुझे पता ही नहीं। अरे ! खाली डरते ही हैं।

मेरे क्लिनिक में बच्चें आते थे। तो पहले वह इंजेक्शनवाली सुई देखकर ही डरते थे, चार-चार जन पकड़कर रखें तो भी जोर-जोर से रोना, चिल्लाना चलता था। फिर कुछ दूसरी बातें करते-करते मैं इंजेक्शन लगा देती थी उसके बाद भी चिल्लाते

रहते थे। मैं कहती थी अभी नहीं लगायेंगे इंजेक्शन, चलो अभी, दे दिया आपको इंजेक्शन। हां दे दिया ? यानी जब इंजेक्शन देते थे तो उससे वह नहीं रोता था, वह डर से रोता था। ऐसे ही करणानुयोग पढ़ते समय कुछ तकलीफ नहीं होती है, लोग पहले ही डरते हैं। हां, इंजेक्शन देखकर ही डरते हैं क्योंकि हम सारे कल्पना में ही कुछ बातें इमॅजिन करते हैं, यह बहुत क्या होगा ? डिफिकल्ट होगा, हमको नहीं समझेगा। क्या कहते हैं ? अभी उम्र हो गयी है हमारी, अभी कुछ ध्यान में नहीं रहता। बाकी सब दुनियादारी सब ध्यान में रहती है। क्या करें ! क्योंकि इसमें रुचि नहीं तो ऐसा लगता है कुछ नहीं समझ में आयेगा। ज़रूर समझ में आयेगा।

जब इसमें उपयोग लगाते हैं तो सहजरूप से सारे जितने अशुभकर्म हैं, पाप प्रकृतियां हैं, ज्ञानावरण से लेकर सब आगे की सभी पाप प्रकृतियां। हमने टोटल गिनी थी न, घाति की भी और अघाति की भी जितनी पाप प्रकृतियां हैं उनका अनुभाग मंद होकर उदय में आता है, सहजरूप से। तत्त्वविचार के काल में पूर्व में बंधी है, सत्ता में पड़ी है ऐसी अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग मंद होकर उदय में आता है। तब हमारा सामान्य जो ज्ञान का क्षयोपशम चल रहा है, तो ज्ञान का आवरण मंद होकर उदय में आयेगा तो ज्ञान खिलेगा कि क्या होगा ? बिलकुल खिलेगा, विकास होगा उसका। जो तत्त्वविचार करता है, तत्त्वों का चिंतन करता है, उसका अभ्यास करता है, बार-बार पढ़ता भी है, सुनता भी है, उसका ज्ञान भी खिलता है। ज़रूर यह बात होती है। तो हम सब एक ही मुनिराज को याद करते हैं जब हम अभ्यास करने बैठते हैं। किसको ? *श्रोता: शिवभूति को।* शिवभूति को। परंतु ऐसा नियम है जो श्रेणी चढ़ते हैं, वे दस पूर्व के ज्ञाता या चौदह पूर्व के ज्ञाता होते हैं। बिलकुल, हां, उन्हें द्वादशांग का ज्ञान तो था। तो यह हमने कहीं भूल से कुछ अन्य मान लिया। देखों उनको होता है न, हमको क्यों नहीं होता ? उनके भी द्वादशांग का ज्ञान था वे तो मोक्ष गये तो क्या है, इसके ज्ञान बिना तो कोई जाता ही नहीं है और सहजरूप से ज्ञान में भी इतनी वृद्धि होती है, क्षयोपशम भी इतना बढ़ता है, यह सारा ज्ञान उनके हो जाता है।

यहां हमें ऐसा भी प्रश्न आता है कि तिर्यंचों को तो सम्यग्दर्शन होता है कि नहीं होता ? तिर्यंचों को हो सकता है सम्यग्दर्शन और हमें इतनी अटपटी कंडिशन क्यों ? बिना करणानुयोग पढ़कर उनके भी होता है और हमें ? अरे नारकियों के होता है

क्योंकि प्रत्येक नरक में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं; सातवें नरक तक के सभी नरकों में एक-एक में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं। तिर्यंचों में असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं, देवों में भी असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं, मनुष्यों में संख्यात हैं। कहते हैं तिर्यंचों को हो सकता है तो हमें क्यों नहीं हो सकता ? लेकिन तिर्यंच कितने घर बनाते हैं ? वे कपड़ों के कितने जोड़ लाते हैं और उन्हें रोज नया चॉइस खाने के लिये, चेंज चाहिये न रोज ! हम तो सोचते हैं आज क्या मेन्यु बनायेंगे ! हमारा पेट दो रोटी और दाल-चावल से भर सकता है, तो हमें चेंज क्यों चाहिये? हां, वहां तो चाहिये सब कुछ। यह रोज-रोज रोटी वही की वही; अरे कुछ मजा नहीं, कुछ नहीं। वहां कभी तिर्यंच याद नहीं आते। तिर्यंच कितना पैसा कमाने जाते हैं ? वहां तो उनकी याद नहीं आती। तिर्यंच बस दो टाइम खाने के लिये जो कोई बाहर जाते होंगे, जो कुछ क्रियायें करते होंगे और हम दिन-भर क्या करते हैं ? कितना समय बर्बाद करते हैं वह खाना बनाने में और खाने में ? तभी हमें तिर्यंच की याद नहीं आती। कब आती है ? हां, जब शास्त्र पढ़ने की बात आती है, तब तिर्यंचों की याद आती है। यानी इसको क्या है ? जो चीज नहीं करना चाहता है उसके लिये कुछ न कुछ उदाहरण शास्त्र में से ढूंढ़कर हमें सुनाता है। यह बात है ! कुछ न कुछ शास्त्र से सुना है, अरे ! तिर्यंचों को भी होता है। तो चलो पंडितों को उन्हींकी भाषा में समझावें। जैसे कोई स्वाध्याय में आना नहीं चाहते और कह देते हैं- क्या करें हमारा अंतरायकर्म आड़ा आ गया। जैसे इसने कर्म देखा आड़ा आते हुये। पहले तो हमने बिल्ली आड़ी आती है वह देखा था; यह तो अंतरायकर्म भी आड़ा आता है क्योंकि यह बहाने बनाना बहुत खूब जानता है। यह कहां-कहां रुचि पड़ी है इसकी। तो यहां हम यह जो बंधस्थान देख रहे हैं- हमने अभी तक ज्ञानावरण का एक देखा, दर्शनावरण के तीन देखे, वेदनीय का एक तो देख ही लिया हमने और गोत्र का भी एक देखा। अभी आगे बढ़ेंगे। अब किसका नंबर लेना है ? मोहनीय का।

हम देखेंगे। देखो, हमने ज्ञानावरण के बंधस्थान देखे, ५ का एक। यह बंधस्थानों की संख्या है और यह जितनी प्रकृतियां बंधती हैं उसकी संख्या है। ५ का एक का अर्थ क्या है ? ५ प्रकृतिवाला एक बंधस्थान होता है और पहले से दसवें गुणस्थान तक यही उसका स्थान है। फिर दर्शनावरण में ९ प्रकृति का एक, ६ का एक और ४ प्रकृति का एक, ऐसे ये तीन स्थान पायें जाते हैं। अब मोहनीय में लंबी चौडी ऐसी लिस्ट बतायी है -

दस स्थान होते हैं। फिर से हम देखते हैं, २२वाला, २१वाला, १७वाला, १३वाला, ९ वाला, ५वाला, ४वाला, ३वाला, २वाला और १वाला। कैसे समझना ?

कर्म	बंधस्थान	संख्या
ज्ञानावरण	५ का	एक
दर्शनावरण	९, ६, ४ के	तीन
मोहनीय	२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ के	दस
अंतराय	५ का	एक
वेदनीय	१ का	एक
आयु	१ का	एक
नाम	२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ के	आठ
गोत्र	१ का	एक

देखो, यह २२वाला बंधस्थान है पहले गुणस्थान में। इसकी चर्चा करेंगे फिर कौनसा है ? क्या है ? फिर २१वाला है दूसरे गुणस्थान में। १७वाला है तीसरे और चौथे गुणस्थान में। यह १३वाला है पांचवें गुणस्थान में। फिर ९वाला है वह छठे, सातवें, आठवें गुणस्थान में और फिर सारे आगे के हैं वे नौवें गुणस्थान में बंध के स्थान हैं। किसके ? मोहनीय के। मोहनीय का बंध कहां तक है ? नौवें गुणस्थान तक ही है, आगे नहीं है। तो हम देखेंगे, ये संख्यायें तो लिखी हैं उसका अर्थ क्या है। २२ का तो अभी हमने बहुत बार हिसाब लगाया है। कैसे ? जो ध्रुवबंधी हैं मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा। कितनी हुयी ? उन्नीस हुयी; और आगे वेद में से एक वेद, तो मिथ्यात्व, सोलह कषाय सत्रह हुयी और भय-जुगुप्सा मिलकर उन्नीस हो गयी। उन्नीस में एक वेद और एक युगल हास्य-रति या शोक-अरति। देखो, हास्य के साथ कभी अरति का बंध नहीं होगा। हास्य के साथ रति का ही होता है यह नियम है और शोक के साथ अरति का ही होता है यह भी नियम है। तो कितनी हो गयी टोटल ? पहले उन्नीस देखी थी; एक वेद और एक युगल, युगल यानी दो; तो कितनी हो गयी टोटल ? २२ हो गयी। कहां की बात चल रही है ? मिथ्यात्व गुणस्थान की यानी पहले गुणस्थान की। अब जीव दूसरे गुणस्थान में आया है। तो दूसरे गुणस्थान में इन प्रकृतियों में से किसका बंध नहीं हो

रहा ? एक मिथ्यात्व का ही नहीं हो रहा, अनंतानुबंधी का बंध है अभी। दूसरे गुणस्थान में उसकी व्युच्छित्ति होगी परंतु वह तीसरे गुणस्थान से नहीं बंधेगा, ख्याल में आती है ? तो यहां बाईस में से एक मिथ्यात्व का बंध रुक गया है तो दूसरे गुणस्थान में २१ प्रकृतियों का बंध हो रहा है। तो उसको कहेंगे यह मोहनीय का दूसरा स्थान, पहला २२ का स्थान देखा था हमने।

मोहनीय के स्थान गुणस्थानों के अनुसार हैं। अभी नामकर्म में थोड़े व्हेरिएशन्स हैं, उसकी बात तो हम बाद में देखनेवाले हैं। अभी तो गुणस्थानों में मोहनीय की बात चलेगी। पहला हमने २२ का मिथ्यात्व में देखा, २१ का दूसरे गुणस्थान में। अब उसके बाद तीसरे गुणस्थान की बात करते हैं तो अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ के बंध की व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में होती है। और भी होती है स्त्रीवेद आदि की परंतु वह तो ऑप्शनल में चली जाती है इसलिये संख्या में कोई व्हेरिएशन नहीं पड़ता। वेद जो तीन में से एक बंध रहा है- मिथ्यादृष्टि को तीनों में से एक बंधता था; दूसरे गुणस्थानवाले को स्त्रीवेद, पुरुषवेद में से एक बंधेगा और तीसरे गुणस्थान से आगे एक पुरुषवेद ही बंधेगा; संख्या में तो कोई फर्क नहीं होगा न, नोकषाय की संख्या में। तो इसलिये तीसरे गुणस्थानवाले को क्या कम हुआ जो दूसरे में बंधता था ? अनंतानुबंधी के चार। तो अभी इक्कीस में से चार बाद कर दो, सत्रह रह गये। तो तीसरे गुणस्थान में भी १७ और चौथेवाले को भी १७ क्योंकि उसमें कुछ व्हेरिएशन नहीं है, दोनों समान है, तीसरे में कुछ बंधव्युच्छित्ति है नहीं। तो हमने पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे गुणस्थानों के बंधस्थान देखे। कौन कहना चाहता है पीछे ? पहले गुणस्थानों में कितना होता है ? *श्रोता: बाईस।* २२। दूसरे में ? *श्रोता: इक्कीस।* २१। तीसरे में ? *श्रोता: सत्रह।* १७ और चौथे में ? *श्रोता: सत्रह।* १७। हां, हो गयी न बात।

चौथे में किसकी बंधव्युच्छित्ति होती है उसको देखते हैं। अप्रत्याख्यानावरण की, तो अप्रत्याख्यानावरण चार और कम हो गये सत्रह में से, तो तेरह रह गये। पांचवें गुणस्थान में १३ प्रकृतियों का बंध होता है मोहनीय का। मोहनीय की बात चल रही है अकेले हां, बाकी बंध हो रहा है अन्य कर्मों का। अभी तक हमने एक २२ का स्थान देखा, २१ का एक देखा, १७ का एक देखा, १३ का एक देखा। अब पांचवें गुणस्थान में और क्या कम होता है जो छठे में, सातवें में ऊपर नहीं पाया जायेगा ? प्रत्याख्यानावरण

चार और कम हो गये; तेरह में से चार गये ९ रह गये। तो छठे गुणस्थानवालों को भी ९ प्रकृतियां बंध रही हैं। कौन-कौनसी बंध रही हैं जरा हिसाब लगाते हैं। संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ बंध रही हैं और नोकषाय हैं न। कितने बंध रहे हैं ? *श्रोता: पांच।* पांच बंध रहे हैं। एक पुरुषवेद बंध रहा हैं; भय-जुगुप्सा लेंगे न हम बाद में; हास्य-रति या शोक-अरति अभी भी बंध सकती है; परंतु वह ऑप्शनल है तो पांच तो बंध रही हैं। पांच और संज्वलन की चार, यहां ९ का बंध है। *श्रोता: ऑप्शनल क्यों लेते हैं ?* वहां प्रतिपक्षी है न ! या तो रति बंधेगी या अरति, शोक या हास्य; यानी हास्य-रति बंधेगी या शोक-अरति बंधेगी। इसको हमने देखा था छठे गुणस्थान तक अरति और शोक का बंध हो सकता है या किसी को हास्य-रति का होगा। इसलिये उसको हम प्रतिपक्षवाली में लिया था, सप्रतिपक्ष। उसको हमने ऑप्शनल कहा क्योंकि अंग्रेजी भाषा जल्दी ख्याल में आती है, अपनी नहीं आती जल्दी। तो यह हो गया ९ का बंधस्थान छठे में।

सातवें में क्या ? ऐसा ही होगा क्योंकि भले छठे में अरति-शोक की बंधव्युच्छित्ति हुयी है फिर भी हास्य-रति तो बंध रही है। इसलिये सातवें गुणस्थान में पुरुषवेद बंधेगा, हास्य बंधेगा, रति बंधेगी, भय और जुगुप्सा सभी बंधेंगे; यानी वे नौ की नौ बंध रही हैं। तो ९ प्रकृतिवाला ही बंधस्थान चल रहा है सातवें में भी। आठवें में क्या होता है ? वही होगा क्योंकि अभी सातवें में कोई मोहनीय की बंधव्युच्छित्ति तो हुयी ही नहीं है; देवायु की हुयी है, मोहनीय में कुछ परिवर्तन नहीं है। तो आठवें में भी मोहनीय का कितने का बंधस्थान है ? तो ९ प्रकृतिवाला। अब यह जीव हां, नौवें गुणस्थान में गया। क्या होगा ? आठवें में कौनसी प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हुयी जो नौवें में नहीं बंध रही है ? हास्य, रति, भय और जुगुप्सा - उसका बंध नौवेंवाले को नहीं होगा, परंतु अभी भी पुरुषवेद का बंध है। तो नौवें गुणस्थान के शुरुआत में, बिगिनिंग में, स्टार्टिंग में ५ प्रकृतियों का बंधस्थान है; कौनसी पांच हैं ? एक पुरुषवेद है और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ है। अब ये सारे आगे के बंधस्थान हैं वे सारे नौवें गुणस्थान में ही हैं। नौवें के शुरुआत में ५ का बंध था, फिर वेद का उदय भी रुकेगा और बंध भी रुकेगा, बंध नहीं होगा। तो संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ का बंध हो रहा है। फिर क्रोध का बंध भी रुक जायेगा; तब मान, माया, लोभ बंध रहे हैं। मान का भी बंध रुक जायेगा, माया और लोभ बंध रहे हैं। माया का भी बंध रुक जायेगा तो नौवें के अंत की ओर

संज्वलन लोभ का बंध हो रहा है। तो उसका भी बंध रुक जायेगा तो मोहनीय के कोई बंध नहीं रहे।

दसवें गुणस्थान में मोहनीय का कोई बंध है नहीं; उदय है सूक्ष्मलोभ का, बंध नहीं है। हमने देखा न यह ऐसा जघन्य है, ऐसा सूक्ष्म अंश का उदय है, तो मोहनीय से मोहनीय नहीं बंध रहा, परंतु उस सूक्ष्मलोभ के कारण ज्ञानावरण का बंध है, दर्शनावरण का बंध है, बाकी सभी प्रकृतियां बंध रही हैं वहां पर परंतु मोहनीय नहीं बंध रही। शास्त्र में इसके लिये परमाणु का भी उदाहरण देते हैं। स्निग्धांश रुक्षांश में एक अंशवाला जो परमाणु है वह अन्य से नहीं बंधता उसके लिये इसका उदाहरण देते हैं; जो सूक्ष्मलोभ है उसके कारण लोभ या अन्य मोहनीय का बंध नहीं होता, परंतु उसके कारण ज्ञानावरण का बंध है, दर्शनावरण का है, अंतराय का है, नाम का है, गोत्र का है, आयु तो बंधती नहीं है, सातावेदनीय तो बंध रही है वह भी स्थिति अनुभाग सहित बंध रही है यहां पर। इसतरह से नौवें गुणस्थान में मोहनीय के स्थान कितने हैं अकेले नौवें गुणस्थान में ? ५वाला, ४वाला, ३वाला, २वाला और १वाला। टोटल स्थान कितने हैं ? दस। कोई एक जन कहेगा कौन-कौनसे हैं दस ? हां बोलो। *श्रोता: २२वाला, २१वाला, १७वाला, १३वाला, ९वाला, ५वाला, ४वाला, ३वाला, २वाला, १वाला ।* २२वाला, २१वाला, १७वाला, १३वाला, ९वाला, फिर ५, ४, ३, २ और १वाला ये दस स्थान मोहनीय के हुये। मोहनीयकर्म जो है उसके बंधस्थानों की बात चल रही है यहां।

बंधस्थानों की संख्या है दस; परंतु वहां प्रकृतियां कितनी-कितनी हैं ? तो २२ प्रकृतिक एक स्थान, २१ प्रकृतिक दूसरा स्थान, १७ प्रकृतिक तीसरा स्थान, १३ प्रकृतिक चौथा स्थान। हम गुणस्थान नहीं कह रहे हैं, स्थान का नंबर गिना रहे हैं। १३वाला चौथा स्थान, ९वाला पांचवां स्थान, ५वाला छठा स्थान, ४वाला सातवां स्थान, ३वाला आठवां स्थान, २वाला नौवां स्थान, १वाला दसवां स्थान। मोहनीय के ये ऐसे दस अलग-अलग स्थान हैं; बंधस्थान कहेंगे इसको। *श्रोता: पांच स्थान नौवें गुणस्थान में हैं ?* हां, पांचों ही स्थान लास्टवाले, पांच से लेकर एक तक ये सारे नौवें गुणस्थान में हैं। दसवें गुणस्थान में कोई मोहनीय का बंध है ही नहीं। इसतरह हमने ये कुछ बंधस्थान देखें हैं, अभी नामकर्म की बातें जो कुछ रही हैं, हम लेंगे फिर थोड़ी देर के बाद।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२६. बंधस्थान, योगस्थान

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसमें जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि की रचना की है। उसके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की रचना की है जो ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है और उसीके आधार से हम यहां कर्मों के बारे में कुछ जानकारी ले रहे हैं। हम यहां बंधस्थानों की चर्चा कर रहे थे। बंधस्थान का अर्थ हमने देखा था, एक जीव को एक काल में यानी ॲट अ टाइम जितनी उत्तरप्रकृतियां बंधती हैं उसको हम कहेंगे उतनी प्रकृतिवाला वह बंधस्थान है। जैसे अलग-अलग गुणस्थानों में दर्शनावरण की या मोहनीय की कितनी प्रकृतियां बंधती हैं उसके अलग-अलग बंधस्थान हमने देखे थे।

हमने ज्ञानावरण के भी देखे, दर्शनावरण के भी देखे और मोहनीय के भी देखे। वेदनीय में एक का ही बंध होता है ॲट अ टाइम, तो उसका १ ही का स्थान होगा। गोत्र में भी १ ही का स्थान होता है और आयु में भी १ ही का होता है। अब कौन रह गये ? *श्रोता: नाम।* नाम; नामकर्म के नाम से ही डर लगता है, क्यों ? तो नामकर्म के बंधस्थान हम देखेंगे। नामकर्म में हमने वहां जो अलग-अलग स्थान लिखे हैं उसका अर्थ पता नहीं है। मोहनीय की तो प्रकृतियां भी मालूम हैं और वह किसके बंधती हैं मालूम हैं क्योंकि वे गुणस्थानानुसार बंधती हैं परंतु नामकर्म में ऐसा नहीं है। पहले गुणस्थानवाला नरकगति का भी बंध कर सकता है, देवगति का भी कर सकता है, मनुष्यगति का भी कर सकता है और तिर्यंचगति का भी कर सकता है। तिर्यंचगति का करेगा तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक का कोई भी करेगा और एकेन्द्रियों में भी पर्याप्त का करेगा या अपर्याप्त का करेगा। पर्याप्त का करेगा तो आतप बांधेगा या नहीं भी बांधेगा। इसलिये जितनी प्रकृतियां बंधती हैं उन प्रकृतियों की संख्या अलग-अलग हो सकती है। तिर्यंचगति संबंधी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक पर्याप्त का बंध कर रहे हैं तो उसके साथ उद्योत भी बंधेगी या नहीं भी बंधेगी। इसके अनुसार संख्या अलग-अलग हो सकती है तो जहां संख्या अलग है तो वहां उनके बंधस्थान भी अलग गिनेंगे।

हमने २३ प्रकृतिक बंधस्थान की बात पहले देखी थी। नामकर्म का विभाजन-बटवारा कैसे होता है, उसमें हमने २३ प्रकृतिक बंधस्थान की बात उठायी थी। यानी २३ प्रकृति का बंध करनेवाला जो कोई जीव है। कौनसे जीव २३ का बंध कर रहे हैं, वे

जीव कौन हैं ? मनुष्य और तिर्यंच। कौनसा बंध कर रहे हैं, किस पर्याय संबंधी बंध कर रहे हैं ? सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त संबंधी बंध कर रहे हैं। उसको हम निगोद भी कहेंगे क्योंकि उसमें साधारण प्रकृति भी बंध रही है। यह २३ प्रकृतियों का बंध करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिये क्योंकि सम्यग्दृष्टि को वह सूक्ष्म, अपर्याप्त आदि तो बंधेगी ही नहीं। मिथ्यात्व अवस्था में यह २३वाला बंध होगा। उसके बाद कौनसा वहां लिखा है ? २५वाला बंध, तो यह २५वाला बंध किसके हो सकता है ? यानी मिथ्यादृष्टि जीव कौन-कौनसे बंध कर सकता है ? यह जो २५वाला बंध है उसमें एकेन्द्रिय पर्याप्त संबंधी यह २५वाला बंध है। अपर्याप्त के बदले यहां पर्याप्त लिया तो उसमें परघात और उच्छ्वास नामकर्म और बंधेंगे तो उसकी संख्या दो से बढ़ गयी है। ये कौन-कौनसे हैं ? क्योंकि हमने देखे नहीं न ये, जब नामकर्म के बंधस्थान-उदयस्थानों की विस्तार से चर्चा आयेगी तो वहां ये कौनसे बंधस्थान हैं उसकी भी चर्चा आनेवाली है।

आगे लिखा है तो उसको देखेंगे हम, परंतु उसका सारा विस्तार अलग ही है क्योंकि नामकर्म के उदयस्थान और नामकर्मों के बंधस्थान- यह पूरा स्पेशल विषय है कि किसके बंधती हैं, कौन-कौनसी बंधती हैं और उनका उदय किसरूप से आता है। यहां तो हम बंध की बात देख रहे हैं। यह २५वाला जो स्थान है वह एकेन्द्रिय संबंधी है। २६वाला स्थान भी एकेन्द्रिय संबंधी है परंतु उसके साथ आतप या उद्योत प्रकृति बंधती है तो उसकी संख्या २६ हो जाती है। वैसे द्वीन्द्रिय आदि अपर्याप्त संबंधी भी २५ का स्थान है। अभी वे कौनसे बंधस्थान हैं, उनकी प्रकृतियां कौन-कौनसी हैं उसके डीटेल में हम नहीं जायेंगे। हम इतना ही समझेंगे मिथ्यादृष्टि जीव २५ का भी बंध कर सकता है। २३ का हमने देखा ही था, २६ का भी होगा। आगे कौनसा लिखा है ? २८वाला, यह २८वाला स्थान कब होता है ? किसके होता है ? २८वाला स्थान देवगति या नरकादि सहित है उसको २८ का स्थान कहते हैं; जो जीव देवगति बांध रहा है या नरकगति बांध रहा है तब सारी प्रकृतियों की टोटल कितनी है तो कहते हैं २८ है। जैसे देवगति बांध रहा है तो कौनसी जाति बांधता होगा ? पंचेन्द्रियजाति बांधेगा; कौनसे शरीर का बंध करता होगा ? वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग का बंध करेगा; इसतरह से सभी टोटल कितनी होती हैं ? २८ होती है। जो कोई उनके शुभ प्रकृतियां हैं जो कोई अशुभ हैं, जिसके जितनी बंधती हैं उसकी यहां टोटल २८ हो जाती है। नरकगति के

साथ के अप्रशस्त प्रकृतियां बंधेंगी और देवगति के साथ प्रशस्त, फिर भी संख्या २८ की ही होती है।

उसके बाद कौनसा नंबर लिखा है वहां ? २९वाला। २९वाला दो प्रकार से होता है; जो तिर्यंचगति संबंधी पर्याप्तों का बंध कर रहा है, वे भी उनतीस प्रकृतियां हैं; या जो कोई जीव मनुष्यगति संबंधी बंध कर रहे हैं वे भी उनतीस का करते हैं। फिर ३०वाला है, जो देव या नारकी मनुष्यगति का बंध कर रहे हैं और तीर्थंकर प्रकृति भी बांध रहे हैं उनके ३० का बंध होगा या २९वाले में जो मनुष्य देवगति बांध रहे हैं और तीर्थंकर प्रकृति बांध रहे हैं उनके भी २९ का होगा। इसमें बहुत सारे अलग-अलग व्हेरिएशन्स हैं। ३० का स्थान कहते हैं तो तिर्यंचगति बांध रहे हैं उसके साथ-साथ उद्योत भी बांध रहे हैं तो उसके साथ भी वह तीस का बंध होगा। ३१ का कौनसा होता है ? जो मुनिराज तीर्थंकर प्रकृति भी बांध रहे हैं और आहारकद्विक का भी बंध कर रहे हैं और देवगति बांध रहे हैं। देवगति तो अठ्ठाइस सहित बंधती है और प्लस ये तीन, तो उनके ३१वाला स्थान होता है और जहां सब की बंधव्युच्छित्ति हो गयी और एक मात्र यशस्कीर्ति का बंध है वहां १ प्रकृतिवाला बंधस्थान है। कहां पर यशस्कीर्ति का बंध है ? नौवें में और दसवें में। नौवें में भी यशस्कीर्ति बंध रही है; एक ही बंध रही है क्योंकि आठवें में ही बहुत सारा मामला तो व्युच्छित्तिरूप हो गया है एक यशस्कीर्ति बची है जो नौवें में भी बंधती है, दसवें में भी बंधती है तो वहां १ प्रकृतिवाला नामकर्म का बंधस्थान होगा।

ऐसे ही जो अलग-अलग स्थान हैं उनमें से मिथ्यादृष्टि कौनसा बंध कर रहा है ? उसकी बात हम देखेंगे। हमने टोटल स्थान कितने होते हैं उसकी बात देखी। २३वाला, २५वाला, २६वाला, २८वाला, २९वाला, ३०वाला, ३१वाला और १वाला। ऐसे नामकर्म के अलग-अलग बंधस्थान कितने हैं ? कहेंगे आठ हैं। उसमें कितनी प्रकृतियां बंधती हैं ? अभी हमने अलग-अलग संख्यायें देखी हैं; २३ प्रकृतिवाला एक स्थान, २५ प्रकृतिवाला एक स्थान, इसतरह हर एक का - कितनी प्रकृतिवाला है वह कहकर टोटल कितने अलग-अलग स्थान जीवों के बंध सकते हैं ? तो कहेंगे नामकर्म के बंधस्थान आठ हैं। इनमें से वह १ प्रकृतिवाला तो मिथ्यादृष्टि को नहीं होगा। वह ३१वाला भी मिथ्यादृष्टि को नहीं होगा। मिथ्यादृष्टि को कौन-कौनसे हो सकते हैं ? तो २३वाला होगा, २५वाला होगा, २६वाला होगा, २८वाला भी होगा, २९, ३०वाला भी होगा क्योंकि यह तिर्यंचगति सहित

वह उद्योत बांध रहा है उसके भी वह बंध हो सकता है। आपके सामने जब हाथ में पुस्तकें होंगी और हम वह गाथा निकालकर बंधस्थान का अभ्यास करेंगे, तब वह विषय और स्पष्टरूप से समझ में आयेगा। यहां हम केवल बंधस्थानों की सामान्य चर्चा कर रहे हैं, उसका विस्तार इसी कर्मकाण्ड पुस्तक में ही आगे चलकर आनेवाला है।

दूसरे गुणस्थान में देखते हैं अभी हम। दूसरे गुणस्थानवाला उन प्रकृतियों का बंध नहीं करेगा जिनकी व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में हो गयी है। तो जिनकी-जिनकी व्युच्छित्ति पहले में हो गयी है वे कौनसी प्रकृतियां हैं ? एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त आदि वह बांधेगा ही नहीं। इसलिये वहां २३वाला भी स्थान नहीं होगा, २५वाला भी नहीं होगा और २६वाला भी नहीं होगा क्योंकि ये स्थान किस संबंधी हैं ? एकेन्द्रिय संबंधी हैं या द्वीन्द्रिय आदि अपर्याप्त संबंधी हैं। उनके अपर्याप्त नामकर्म बंधेगा ही नहीं, क्योंकि उसकी बंधव्युच्छित्ति पहले में हो गयी है। इसलिये दूसरे गुणस्थानवाला नामकर्म बांधता है तो २८वाला बांधेगा या २९वाला बांधेगा या ३०वाला बांधेगा। परंतु ३० में वह तीर्थंकर प्रकृतिवाला नहीं लेना; दूसरे गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति बंधती नहीं, वह तो सम्यग्दृष्टि के ही बंधती है। यह २८वाला स्थान है देवगति संबंधी; देवगतिवाला नहीं बांध रहा है। यहां दूसरे गुणस्थानवाला नरकगति का बंध नहीं करेगा। मनुष्य और तिर्यंच, जब देवगति बांधता है तब वह नामकर्म की २८ प्रकृतियां बांधता है। एक देवगति भी उसीमें इन्क्लुडेड है। २९वाला होगा, कौनसा ? तिर्यंचगति या मनुष्यगति बांध रहा है या ३०वाला होगा तिर्यंचगति प्लस उद्योतवाला।

फिर उसके ऊपर मिश्र गुणस्थान में, *श्रोता: वहां आयु का बंध नहीं है न ?* यह नामकर्म की बात चल रही है यहां आयु नहीं बंधती उसका कोई सवाल ही नहीं है। तो यहां कौनसे बंधस्थान होंगे ? २८ का होगा या २९ का होगा। उद्योत की बंधव्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में हुयी है इसलिये ३०वाला स्थान यहां पर नहीं पाया जायेगा। मनुष्य, तिर्यंच, देवगति सहित २८ को बांधेंगे और देव नारकी मनुष्यगति सहित २९ को बांधेंगे। फिर ऊपर चौथे गुणस्थान में २८ का भी है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं वे २८वाले देवगति का बंध करते हैं; वे ही देवगति सहित तीर्थंकर का बंध करेंगे तो २९ का बंधस्थान कहलायेगा और ३० का भी है क्योंकि देव और नारकी सम्यग्दृष्टि हैं वे मनुष्य का ऑर्डिनरि बंध करते हैं तो २९ का बांधते हैं और तीर्थंकर सहित बांधेंगे तो ३० को

बांधेंगे। चारों गतियों की अपेक्षा ये बंधस्थान कहां पाये जाते हैं इसकी यहां चर्चा है। उसके बाद जो पांचवेंवाला है, पांचवेंवाले को २८ और २९ का ही स्थान बंधेगा। क्यों ? देव और नारकियों में गुणस्थान चार ही होते हैं। तो पांचवेंवाले कौन हैं ? मनुष्य हैं या तिर्यंच हैं। मनुष्यों की अपेक्षा हमने बात की थी। देव चौथे गुणस्थानवाले, मनुष्यगति २९ प्लस तीर्थंकर ऐसा ३० का बंध कर सकते थे, परंतु यहां पांचवें गुणस्थान की बात चल रही है तो देवों में पांचवां गुणस्थान होता नहीं है इसलिये उसको यहां नहीं लिया। पांचवें गुणस्थानवाला कितने का बंध करेगा ? पांचवें गुणस्थानवाला कौनसा बंध करता है ? देवगति का ही करता है। मनुष्य हो या तिर्यंच हो पांचवें गुणस्थानवाला जो जीव है वह देवगति का ही बंध करते हैं। ऑर्डिनरि हैं वे २८ का करेंगे और जो जीव, जो मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति बांध रहे हैं वे २९ का बंध करेंगे। देवगति बंध रही है तो २८ का बंध है, देवगति सहित तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाला २९ का बंध करेगा। ऐसे ही मुनिराजों के भी छठें और सातवें गुणस्थानों में भी ये बंधस्थान होंगे।

सातवें और आठवें गुणस्थानों में कुछ अलग बात है क्योंकि वहां देवगति और आहारकद्विक सहित ३० का और उसीके साथ तीर्थंकर सहित ३१वाला भी स्थान होगा कि नहीं होगा ? आहारकद्विक बांधेंगे वहां ३१वाला भी स्थान होगा। जो आहारकद्विक नहीं बांध रहा है और तीर्थंकर प्रकृति बांध रहा है तो उसको २९वाला भी स्थान होगा। इसतरह से वहां भी २८ का, २९ का, ३० का और ३१ का ऐसे अलग-अलग स्थान पाये जायेंगे। ऊपर के गुणस्थान में से अपूर्वकरण में तो वह १वाला भी स्थान पाया जायेगा लास्ट में- सातवें भाग में क्योंकि छठें भाग में शेष सबकी बंधव्युच्छित्ति हो जायेगी। तो सातवें भाग में अकेली यशस्कीर्ति बंध रही है उसकी अपेक्षा से १वाला स्थान भी आठवें गुणस्थान से शुरू हो जायेगा। हमने टोटल कितने स्थान हैं उनकी बात की थी; हर एक गुणस्थान की अलग-अलग बात नहीं की है फिर भी हमें समझना चाहिये कहां कौनसे बंध होते हैं। नौवें गुणस्थान में कौनसी प्रकृति बंध रही है नामकर्म की ? एकमात्र यशस्कीर्ति और दसवें गुणस्थान में भी एकमात्र यशस्कीर्ति, उसके बाद उसकी बंधव्युच्छित्ति होती है। आगे ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें में नामकर्म का बंध है ही नहीं। नामकर्म के बंधस्थान हैं हमने देखे २३वाला है, २५वाला है, २६वाला है, २८वाला है, २९वाला है, ३०वाला है, ३१वाला है और १वाला है, १वाला यानी एक प्रकृतिवाला।

ऐसे ये नामकर्म के भिन्न-भिन्न बंधस्थान हैं। जब उसका विषय आयेगा तब उन प्रकृतियों के नाम भी हम डीटेल में जान सकेंगे। अभी उनके नाम दोहराने से कुछ फायदा नहीं है क्योंकि हर एक के हाथ में उनके नाम - उसकी पुस्तक होनी चाहिये। ख्याल में आया न ? यह हमने नामकर्म की बात देखी। अभी अपना विषय यहां समाप्त होता है। गोत्र का हमने देख लिया है। अंतराय का रह गया ? अंतराय कितने बंधते हैं ? जब बंध रहे हैं पांचों का ही बंध होता है। पहले गुणस्थान से लेकर कहां तक बंधते हैं पांचों ही ? *श्रोता: दसवें गुणस्थान तक।* दसवें गुणस्थान तक उसका ५ प्रकृतिवाला एक ही स्थान पाया जाता है थ्रूआउट। मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक ५ ही प्रकृति बंधती हैं और उसका एक ही स्थान पाया जाता है। इसतरह से हमने सभी आठों कर्मों के कौन-कौनसे बंधस्थान हैं उसकी बात देखी है। अभी हम आगे बढ़ेंगे और उसके पहले कुछ प्रश्न हैं उसकी बात हम देखते हैं।

श्रोता: तत्त्वविचार में कर्मों के स्थिति अनुभाग कम होते हैं तो तत्त्वविचार में कौनसा अनुयोग लेना ? चारों अनुयोग, तत्त्वविचार चारों अनुयोग में हो सकते हैं। एक बार तत्त्व समझ में आये हैं, हमें भेद-विज्ञान करना है, तो कोई ऐसे कम्पार्टमेंट नहीं है कि इसी काल में वह स्थिति घटेगी और उस काल में नहीं घटेगी ऐसी कोई बात है नहीं है। *श्रोता: क्या सभी मोक्ष जानेवाले मुनिराजों को द्वादशांग का ज्ञान प्रकट होता है ? यदि होता है तो किस गुणस्थान में प्रकट होता है ?* द्वादशांग का ज्ञान अर्लिएस्ट हमने देखा न ! यह छठे-सातवें गुणस्थान में होता है, गणधरों को होता है कि नहीं होता ? हां, ऐसा जरूरी नहीं कि इस गुणस्थान में गये और अब द्वादशांग का ज्ञान प्रकट हुआ। जिसकी विशुद्धि जहां जैसी है उसके वैसा वहां प्रकट होता है। *श्रोता: तीर्थंकर प्रकृति को जीवविपाकी कहा, कैसे घटित करें ?* जीव के साथ उसका निमित्त बनता है न ! जिसका जीव के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है उसको जीवविपाकी कहते हैं।

श्रोता: वर्तमान में मकान आदि, आदि क्या ? *आदि है इसमें पृथ्वीकायिक जीव विद्यमान हैं ?* अभी जो ईंट है और सीमेंट है वहां कोई जीव नहीं है क्योंकि मूल में जो मिट्टी है, पत्थर है उसे पृथ्वी से अलग कर दिया है। खदान में जो कुछ धातु वगैरह पाषाण मिलते हैं वे सारे पृथ्वीकायिक हैं। वह निकल जाने के बाद क्या रहता है ? काया, कलेवर, मुर्दा। यह क्या है- हीरे, माणिक, सोना क्या है ? पृथ्वीकायिक जीव

निकल गया है; उसका कलेवर रह गया है डेड बॉडी, जो हम इस डेड बॉडी पर धारण करतें हैं। यह क्या है अभी ? डेड बॉडी तो है न ! लोग कहते हैं ऐसा अशुभ मत बोलो। अरे सच्चा बोलना भी अशुभ है क्या ? यह वर्तमान में क्या है ? जीव तो हम स्वयं हैं। यह हमारे साथ है इसलिये इसको भले ही लोग जीव कहें यह जीव थोड़े ही है ? यह तो जड़ है, अचेतन है। अब मैं यहां से चली जाऊं तो क्या कहेंगे ? बॉडी को उठाओ। चलो जल्दी लेकर जाओ, क्यों ? ले जाना भी चाहिये; अंतर्मुहूर्त के अंदर सारी क्रिया होनी चाहिये क्योंकि यह जो है न, औदारिकशरीर है जीव निकल जाये या वहां रहे उसमें तो कितने जीव उत्पन्न होते हैं। त्रस जीव भी कितने उत्पन्न होंगे। इस शरीर में निगोद जीव तो उत्पन्न होंगे ही होंगे परंतु इस शरीर के आधार से अभी त्रस जीव अनेक उत्पन्न होंगे और वह त्रसों के भी जो शरीर हैं उसमें भी निगोद कितने उत्पन्न होंगे ? तो जितने और ज्यादा टाइम रखते हैं; क्यों रखते हैं ? हमारा बेटा आयेगा अमेरिका से इसलिये रुकना। क्यों ? जिंदगी भर नहीं देखा अभी दर्शन करने हैं। यह सारा राग का पोषण हो रहा है। जब तक जीवित थे न तो बहुत प्रेम किया हमने, बहुत राग किया, अभी उसके साथ राग करके क्या है ? इतने अनंतानंत जीवों की हिंसा करते हैं। तो उसमें कुछ नहीं रखा है। क्या बात हो रही थी हमारी ? यह जो पृथ्वीकायिक हैं वह चले गये हैं मर गये हैं अब यह सोना-चांदी और जो कुछ हैं, हीरे, माणिक वह सब धारण करके हम क्या मानते हैं ? हमारी शोभा बढ़ रही है, क्या ? संपत्ति का प्रदर्शन हो रहा है। कुछ तो हो रहा है, है न, क्या करें ? क्योंकि यह शरीर ही मैं हूं ऐसा ही मान रखा है हमने।

श्रोता: श्रेणी उतरने के समय दस पूर्वादि का ज्ञान घट जाता होगा ? यह दस पूर्व का ज्ञान उपशमश्रेणी में भी होता है ? उपशमश्रेणी में भी होता है, परंतु चढ़कर उतरे तो ज्ञान घट जाता है यह बात नहीं होती है क्योंकि चढ़ने में भी और उतरने में भी बहुत सारा अनुभाग का खंडन होता है, स्थिति भी घटती चली जाती है। *श्रोता: आयु बंध हो जाने के बाद प्रति समय कर्म परमाणु आयु के खाते में भी जायेंगे ?* नहीं जायेंगे; जिस समय आयु का बंध हो रहा है, आयु का बंध मात्र अंतर्मुहूर्त तक ही होता है उसके बाद आयु के खाते में कुछ नहीं जायेगा। जो कुछ जमा किया है पोटला, वह आगे के भव में काम आयेगा; प्रति समय खिरेगा, उसमें कोई वृद्धि नहीं होगी। पोटला ही तो है। *श्रोता: घोटमान योगस्थान क्या है ?* इसकी चर्चा नहीं आयी है, जब आयेगी तब अर्थ कहेंगे।

श्रोता: क्या अपवर्तन का नाम अकाल मरण है ? देखो, अपवर्तन होता है; अपवर्तन होता है यानी क्या होता है ? कदलीघात होता है। कदलीघात होना या अपवर्तन होना यह उन कर्मों की स्थिति बताते हैं जो अनेक समयों के निषेक थे। मान लेते हैं ऐसे लगातार बहुत सारे निषेक पड़े थे। सत्ता में बहुत सारे निषेक पड़े थे; आयु के भी; इतनी आयु बाकी थी, इतनी आयु बीत गयी है। अब क्या होता है ऐसे जीव को कि यह जो सारे ऊपर एक-एक समय के निषेक हैं वे सारे के सारे निषेक नीचे आ जाते हैं और अभी यहां नीचे इतने अंतर्मुहूर्त प्रमाण या जो कुछ यथायोग्य प्रमाण निषेक हैं उनमें आ मिलते हैं, ऊपर के निषेक नीचे आने के बाद आयु का बंध होता है। अब उसके बाद उसका मरण होता है। यह अपवर्तन होना यानी ऊपर के निषेकों का घात होकर नीचे आना। देखो, आयु की सामान्य उदीरणा हर समय होती रहती है उसको कदलीघात नहीं कहते। उदीरणा यानी ऊपर के निषेकों के कुछ परमाणु नीचे आकर उदय में आ जाना। ऐसे थोड़े-थोड़े परमाणु थोड़ी-थोड़ी धूल ऊपर से नीचे आती रहती है परंतु पूरे निषेक नष्ट होकर नीचे आ जाना उसको कदलीघात या अपवर्तन कहेंगे।

ऐसा अपवर्तन देवों के या भोगभूमि के जीवों के या नारकियों के नहीं होता। इसलिये उनकी आयु को कहते हैं अनपवर्त्य आयु और कर्मभूमि के मनुष्य-तिर्यंचों की यह अपवर्त्य आयु होती है, उसमें कदलीघात हो सकता है। सभी को होता है ऐसा नहीं है विशिष्ट परिणामों से बंधी हुयी आयु में यह बात हो सकती है और इसको अपवर्तन कहते हैं। अपवर्तन होने के पश्चात् जो मरण होता है उसको हम अकाल मरण कहते हैं उसका कारण है यह कदलीघात। यानी यह दो शब्द अलग-अलग हैं। अपकर्षण तो सभी कर्मों में होता रहता है। ऊपर के निषेकों में कुछ परमाणु नीचे आना उसको कहेंगे अपकर्षण और यह अपवर्तन कुछ स्पेशल बात है जो आयुकर्म में होता है। वैसे सामान्य अपकर्षण तो अभी हमारी जो आयु हम भोग रहे हैं उसमें भी होता रहता है। अपकर्षण होने का अर्थ अपवर्तन नहीं है। अपकर्षण होने का अर्थ वह कदलीघात हो रहा है ऐसा नहीं है यह बात ख्याल में लेना है।

अभी हम योगस्थानों की बात कहेंगे। क्यों योगस्थानों को बीच में याद किया ? क्योंकि प्रदेश का बंध योग के अनुसार होता है। जहां योग ज्यादा वहां प्रदेशों का बंध भी ज्यादा। प्रदेशबंध समझ रहे हैं न ! परमाणुओं की संख्या। योग में जो व्हेरिएशन्स

होते हैं; अलग-अलग इन्टेन्सिटी के कहो या अलग-अलग डिग्री के जो योग हैं उसको हम कहेंगे योगस्थान। जैसे बंधस्थान में क्या कहा ? अलग-अलग नंबर ऑफ़ प्रकृतियां बंधती थी उनको बंध के स्थान कहे। स्थान का अर्थ होता है उसके भेद-व्हेरिएशन्स। यहां योगों में क्या-क्या भेद हो सकते हैं उसकी चर्चा चलेगी। योगस्थान का वर्णन ४२ गाथाओं द्वारा है, हम उसको शॉर्ट में देखने की कोशिश करेंगे। २१८ नंबर की गाथा है।

जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा।
भेदाएक्केक्कंपि य चोद्दसभेदा पुणो तिविहा॥२१८॥

योगस्थान जो हैं तीन प्रकार के हैं यानी योगों के ही तीन प्रकार के भेद किये हैं। कौनसे ? पहले में पहले उपपादयोगस्थान। योग के भेद करने हैं तो इन्हें हम कहेंगे उपपादयोग, एकांतवृद्धियोग और परिणामयोग। अभी उसके स्थानों की बात है, उसके व्हेरिएशन्स की बात है तो उसके आगे हम स्थान शब्द लगायेंगे। योगस्थानों के तीन भेद हैं- उपपादयोगस्थान, एकांतवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान। स्थान शब्द ही सूचित करता है कि यहां अनेक भेद होने चहिये। व्हेरिएशन्स हैं, भेद हैं। उन तीन प्रकार के योगस्थानों के एक-एक भेद के यानी उपपादयोगस्थान के भी अनेक भेद हैं। कैसे अनेक भेद ? तो चौदह जीवसमास जो हैं; याद है हमने जीवकाण्ड में देखे थे चौदह जीवसमास ? किसको मालूम नहीं है चौदह जीवसमास क्या होता है ? कितने ही लोगों को मालूम नहीं है, तो यह चौदह जीवसमास क्या है उसको देखते हैं।

जो संसारी जीव हैं उनको हम इन जीवसमासों में विभाजित करेंगे, उनका क्लासिफिकेशन करेंगे। कौन-कौनसी पर्यायों में जीव पाये जाते हैं ? तो कहते हैं एकेन्द्रियों के दो भेद हैं सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय; फिर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय। मूल भेद हैं सात, हर एक में पर्याप्त और लब्धिअपर्याप्त यानी सिर्फ अपर्याप्त कहो तो भी चले; हर एक के हम पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो-दो भेद करते हैं। यानी सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय पर्याप्त और द्वीन्द्रिय अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त। कितने हुये टोटल ? *श्रीता: चौदह।* चौदह, इसको कहते

हैं चौदह जीवसमास। ये चौदह में विभाजित हैं न सारे।

अरिहंतों को कहां रखना इन जीवसमासों में ? अभी हमने आपको जीवसमास बता दिये तो अरिहंत भगवान को किस जीवसमास में रखेंगे यानी उनका विभाजन कहां रखेंगे ? *श्रोता: संज्ञी पंचेन्द्रिय में।* हां, संज्ञी पंचेन्द्रिय में, पर्याप्त हां, अभी अपर्याप्त होते कि नहीं होते वह तो किस अपेक्षा होते हैं उसकी बात बाद में। इसतरह से किसी भी जीव की बात हम देखते हैं तो उनको जीवसमासों में ढालेंगे, क्यों ? वहां कितनी प्रकृति बंधती हैं, कितनी नहीं बंधती हैं, उनके कैसे उदय हैं- यह सब इसके अनुसार हम आगे देख सकते हैं। हमने बीस प्ररूपणा देखी थी यहां जीवकाण्ड में और हर एक जीवसमास में उसका गुणस्थान कौनसा है, कितनी इन्द्रियवाला है, कौनसी कायवाला है, उसके ज्ञान कौनसे होते हैं, उसके दर्शन कौनसे होते हैं, उसके संयम कौनसे होते हैं, उसकी लेश्या कौनसी होती है - यह सारे घटित करके दिखाये थे। किया था इतना तो याद है कि नहीं ?

योगस्थान

१) उपपादयोगस्थान २) एकांतानुवृद्धियोगस्थान ३) परिणामयोगस्थान

१) पर्याय धारण करने के पहले समय में।

२) दूसरे समय से शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व समय तक- प्रतिसमय असंख्यातगुणा वृद्धि

३) शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से मरण तक। कभी वृद्धि, कभी हानि, कभी अवस्थित

१४ जीवसमासों की अपेक्षा १४-१४ भेद, प्रत्येक के सामान्य, जघन्य, उत्कृष्ट

हम देख रहे हैं कि यह उपपादयोगस्थान है, दूसरा एकांतानुवृद्धियोगस्थान है उसको एकांतवृद्धि भी कहेंगे, एकांतानुवृद्धि भी कहेंगे। यहां क्या लिखा है ? एकांतानुवृद्धि, एकांत अनुवृद्धि कहो या एकांतवृद्धि कहो एक ही बात है। कहीं वह शब्द आता है कहीं यह शब्द यूज़ करते हैं और तीसरा कौनसा है ? परिणामयोगस्थान, ये जो तीन प्रकार के योगस्थान हैं उनके एक-एक के चौदह-चौदह जीवसमासों की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद तो मूल में होते हैं। कैसे कहेंगे ? सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के उपपादयोगस्थान ऐसा कहेंगे। फिर उसमें भी किसीके जघन्य होगा, किसीके मध्यम होगा, किसीके उत्कृष्ट होगा। ऐसे भेद तो बाकी दोनों प्रकार के योगस्थानों में भी होंगे।

अभी हम यहां जो लिखा है उसको पहले पढ़ेंगे फिर आगे बढ़ेंगे।

योगस्थान के मूल भेद तीन किये हैं उपपादयोगस्थान, एकांतानुवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान। ये कब होते हैं यह बाद में देखेंगे। जीवसमासों की अपेक्षा हर एक के चौदह-चौदह भेद हैं; उपपादयोगस्थान के चौदह भेद, एकांतानुवृद्धियोगस्थान के चौदह भेद और परिणामयोगस्थान के भी चौदह भेद हैं और उस चौदह के यानी चौदह, चौदह, चौदह बयालीस तो हो गये न ! और हर एक में क्या होंगे ? सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट। हर एक में तीन-तीन भेद होंगे। जैसे एकेन्द्रियों के जो उपपादयोगस्थान हैं कौनसे ? सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त आदि; चौदह जीवसमास हैं न; तो सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के जो योगस्थान हैं कौनसे होंगे ? उपपादवाले भी होंगे, एकांतानुवृद्धिवाले भी होंगे, परिणामवाले भी होंगे। यानी हर एक को ये सभी हैं और उसमें कैसे हैं ? कोई जघन्य उपपादयोगवाला है, कोई उत्कृष्टवाला है और कोई मध्यमवाला है। मध्यमवाले को यहां सामान्य कहा। यह बात ख्याल में आती है ?

उपपादयोगस्थान किसे कहना उसको अभी हम देखते हैं; यहां लिखा है देखो इसीका अर्थ देखेंगे हम। यह उपपादयोग जो लिखा है, उपपाद का अर्थ होता है जन्म का समय। आपने उपपाद शैय्या सुनी होगी ? देवों में होती है। जहां उनके अंतर्मुहूर्त में जवान शरीर की उत्पत्ति होती है उसको उपपाद कहते हैं। उपपादयोग जो है पर्याय धारण करने के पहले समय में होता है। पर्याय किसको कहते हैं ? भव धारण करने को; भव धारण करने के प्रथम समय में जो होता है उसको कहेंगे उपपादयोगस्थान। वह हर एक जीव को एकसा ही होता है ऐसा नहीं है; उसमें कम ज्यादा होता है इसलिये उसमें जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट ऐसे तीन-तीन भेद होंगे और वे भी एकेन्द्रियों के अलग होंगे, द्वीन्द्रियों के अलग होंगे, त्रीन्द्रियों के अलग; हर एक के अपने-अपने अलग-अलग होंगे। दूसरा नाम क्या लिखा है ? एकांतानुवृद्धियोगस्थान, अभी उसकी परिभाषा यहां बताने की कोशिश करते हैं कि जो जीव पर्याप्ति शुरू करता है भव ग्रहण करते ही संज्ञी पंचेन्द्रियों को तो छहों पर्याप्ति होती हैं। द्वीन्द्रियों से असंज्ञी तक पांच होती हैं और एकेन्द्रियों को चार होती हैं। अपनी-अपनी जो कुछ यथायोग्य हैं। तो पहले समय में कौनसा योग होता है ? उपपादवाला।

दूसरे समय से यह एकांतानुवृद्धियोग चालू हो जाता है। एकांतानुवृद्धि का अर्थ

ही क्या है ? एकांत से यानी बिलकुल अनुवृद्धि यानी वृद्धि, एकांत से वृद्धि ही होती चली जाती है। एकांत से वृद्धि का अर्थ है उपपादयोग तो पहले समय में हुआ, यह एकांतवृद्धिवाला योग दूसरे समय से शुरू होता है तो दूसरे समय में असंख्यातगुणा होता है तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा, चौथे समय में, पांचवें समय में बढ़ते चला जाता है। इसलिये इसका नाम क्या है ? एकांतानुवृद्धियोग। कब तक होता है ? तो भव धारण करने के दूसरे समय से लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व समय तक क्योंकि शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही आगेवाला जो परिणामयोग है वह शुरू हो जाता है। यानी भव धारण करने के पहले समय में जो होता है उसको कहेंगे उपपादयोग, भव धारण करने के दूसरे समय से लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के एक समय पूर्व तक उसको कहेंगे एकांतवृद्धियोग या एकांतानुवृद्धियोगस्थान। उसकी विशेषता क्या है ? कंटिन्युअस प्रत्येक समय में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा उसकी वृद्धि होती चली जाती है। उसके बाद शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर मरण तक जो पाया जाता है उसको कहेंगे परिणामयोगस्थान। अभी हम इसकी परिभाषा भी देखेंगे पुस्तक में से। यह जो अभी हमने देखे उपपाद, एकांतवृद्धि और परिणामयोगस्थान उसके एक-एक के चौदह-चौदह भेद होते हैं और उस चौदह-चौदह में हर एक में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद होते हैं। अब यह उपपादयोगस्थानों का स्वरूप बताते हैं जो हमने शॉर्ट में देखा ही था। गाथा के आधार से देखेंगे, २१९ नंबर की गाथा है यहां पर।

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा।
विग्गहइजुगइगमणे जीवसमासे मुणेयव्वा॥२१९॥

उपपादयोगस्थान पर्याय धारण करने के पहले समय में जो जीव स्थित है उसके होता है। क्या कहते हैं उपपादयोगस्थान किसके होता है ? पर्याय धारण के पहले समय में जीव को होता है। वहां जो जीव विग्रहगति यानी वक्रगति, वक्रगति का अर्थ क्या है ? मोड़वाली गति। मरण के बाद जीव जब परभव में गमन करता है, अन्यत्र जन्म लेता है तो जन्मस्थान तक कैसे पहुंचता है ? हां, तो उसका अभी कहां जाना है ? नरक में जानेवाला तो नीचे चला जायेगा, स्वर्ग में जानेवाला तो ऊपर चला जायेगा या अन्य एकेन्द्रियादि तिर्यचों में भी जानेवाला यथास्थिति जहां है वहां चला जायेगा। मनुष्य होना है तो मनुष्यलोक में ही चला जायेगा। उसका या तो पूर्व या पश्चिम या दक्षिण या

उत्तर चार मुख्य दिशा, ऊपर या नीचे, इन छह ही दिशाओं में गमन होता है; तिरछा आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान उन दिशाओं में उसका गमन नहीं होता। जहां डायरेक्ट नहीं पहुंचता वहां उसको मोड़ लेना पड़ता है। मोड़ लेना पड़ता है का अर्थ क्या है ? यहां मरा है और इस ऊपर के पीछेवाले कोने में जन्म लेना है तो कैसा जायेगा ? पहले ऊपर चला जायेगा फिर पीछे आयेगा और फिर यहां, इसने दो मोड़ लिये। यहां पर और यहां पर तो ये दो हुये, लोकाकाश ऐसा क्युबिकल होता तो दो मोड़ में पहुंच जाता परंतु लोकाकाश का आकार हम देखते हैं पूर्व-पश्चिम तो पहले ऊपर एक राजू है फिर पांच राजू फिर बीच में एक राजू फिर नीचे सात राजू। अब पूर्व या पश्चिम कोणों में है वहां से मरकर ऊपर के कोण में जाना है उसको तो अलोकाकाश में पर्मिशन मिलेगी कि नहीं डायरेक्ट जाने के लिये ? उसको बीच में आकर के फिर ऊपर जाना पड़ेगा इसलिये उसका एक मोड़ बढ़ जाता है। किसी जीव के होता है, सबको नहीं होता है। ये तीन मोड़ उसको लेने पड़ते हैं। यह मोड़वाली गति को कहेंगे विग्रहगति, वक्रगति।

कहते हैं वक्रगति से बीच में मुड़कर जो जाता है और नवीन पर्याय को प्राप्त होता है उसके जघन्य उपपादयोगस्थान होता है। क्या कहते हैं ? यह जो विग्रहगति है परभव में जब गमन होता है या तो मोड़ सहित जायेगा या डायरेक्ट जायेगा। किसीका मरण यहां होगा और बस आकाश की उसी श्रेणी में यहां पर उसका जन्म है या यहां मरण हुआ है और आड़ा यहां जन्मना है तो सीधी गति में चला जाता है इसको कहते हैं ऋजुगति। उसीका दूसरा नाम है इषुगति। एक समय में ही सीधा वहां पहुंच जाता है। तो ऐसे जो ऋजुगति से जाते हैं बीच में मुड़ते नहीं हैं उसको अविग्रहगति भी कहा है। तो ऐसी गति करके जो नवीन पर्याय को धारण करता है उसका उत्कृष्ट उपपादयोग होता है। सीधीगति से जानेवाले के उत्कृष्ट उपपादयोग होता है और मुड़कर जानेवाले के जघन्य उपपादयोग होता है।

स्वयं पं. टोडरमलजी वहां प्रश्न पूछते हैं, पर्याय के प्रथम समय में तो अपर्याप्त अवस्था है वहां पर्याप्त जीवसमासों में उपपादयोगस्थान कैसे कहते हैं ? प्रश्न समझ में आया ? हमने चौदह जीवसमास देखे हैं; उसमें पर्याप्तों के सात हैं और अपर्याप्तों के सात हैं। जो पर्याप्त जीव हैं तो जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती या पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती वे अपर्याप्त ही हैं। उनका जब उपपादयोग है तब उनकी कौनसी अवस्था

चल रही है ? निर्वृत्तिअपर्याप्त, अपर्याप्त तो हैं न वे ? तो कहते हैं उन पर्याप्त जीवों का उपपादयोगस्थान कैसे हो सकता है ? प्रश्न ख्याल में आया ? उसका समाधान - निर्वृत्तिअपर्याप्त किसको कहना ? जो पर्याप्त नामकर्म सहित हैं परंतु अभी जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुयी हैं उनको कहेंगे निर्वृत्तिअपर्याप्त। उसके पहले समय में यह जो योगस्थान होता है उसीको पर्याप्त जीवों का उपपादयोग कहेंगे क्योंकि यह नियम से पर्याप्त होनेवाले हैं और पर्याप्त नामकर्मवाले हैं। इसलिये उनके लिये उपपादयोग होता ही है क्योंकि उनकी भी निर्वृत्तिअपर्याप्त दशा चल रही है। परंतु उनको वहां वह अपर्याप्तवाला जीवसमास नहीं समझना। चौदह जीवसमासों की अपेक्षा जो चौदह भेद किये हैं तो जो पर्याप्त नामकर्मवाले जीव हैं उनके उपपादयोग होगा कि नहीं होगा ? तो होगा। उनके भी भव धारण करने के पहले समय में वह होगा क्योंकि वे ही जीव आगे चलकर पर्याप्त होनेवाले हैं।

लब्धिअपर्याप्त जीवों के ? वे तो अपर्याप्त हैं ही हैं, तो उनका अपर्याप्तवाला जीवसमास कहेंगे हम उसको। *श्रोता: और उनका योग ?* उनके भी योग होता है न, उनके भी उपपादयोग होगा। उनके भी एकांतवृद्धियोग होंगे और उनके भी परिणामयोग, अभी इतनी छोटी आयु फिर भी एक समय के लिये उपपादयोग; उसके बाद एकांतवृद्धियोग और उसके बाद मरण तक परिणामयोग। लब्धिअपर्याप्त जीवों में भी ये तीन प्रकार पाये जायेंगे। हमें वह छोटी आयु लगती है परंतु वहां भी कितने अंतर्मुहूर्त तो हैं; छोटेवाला अंतर्मुहूर्त; असंख्यात समय वहां पर भी हैं। तो उसमें भी ये व्हेरिएशन्स हो जाते हैं। *श्रोता: तो अगले समय तो मरण निश्चित है न ?* मरण कहां निश्चित है ? *श्रोता: अपर्याप्त जीव में।* अपर्याप्त जीवों में उनकी पर्याप्ति पूरी नहीं होती है। हां-हां, पर्याप्त जीवों में मैंने शरीरपर्याप्ति की बात की, परंतु लब्धिअपर्याप्तों में शरीरपर्याप्ति नहीं लेना है तो क्या लेना उसकी बात हम करेंगे। यह जो आपका प्रश्न है न लब्धिअपर्याप्त जीवों में शरीरपर्याप्ति पूरी नहीं होती तो उनमें परिणामयोग किसतरह से लगायेंगे ? तो वहां लब्धिअपर्याप्तों में भी यह जो पहले तो एकांतवृद्धियोग होगा और बाद में उनके भी परिणामयोग होते हैं। हम बतायेंगे आपको - यह भी प्रश्न आगे आया है यह जब हम आगे के परिणामयोग वगैरह देखेंगे न !

हमने अभी उपपादयोग देखा, अब परिणामयोग बताकर फिर एकांतवृद्धियोग

बतायेंगे क्योंकि दोनों के बीच में एकांतवृद्धि होती है। पहले परिणामयोगों को बतायेंगे; यानी वहां लब्धिअपर्याप्तों में आयु का त्रिभाग करना। उसकी बात आयेगी अभी। यहीं इसी २२० गाथा में आपके प्रश्न का उत्तर आ रहा है। देखो, आगे परिणामयोगस्थान का स्वरूप कहते हैं। परिणामयोगस्थान कब होता है ? अन्य जीवों में तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही शुरू होता है और लब्धिअपर्याप्तों में विशेषतया उसकी बात करेंगे और उपपादयोगस्थान पहले समय में और परिणामयोगस्थान जहां से शुरू होता है उसके बीच में एकांतवृद्धिस्थान होता है। लब्धिअपर्याप्तों में वह $\frac{१}{३}$ कहेंगे आयु का, उसकी बात पढ़ेंगे अभी हम इसमें। २२० नंबर की गाथा में है इसका यह रेफरन्स।

परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति।
लद्धिअपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोद्धव्वा॥ २२०॥

लब्धिअपर्याप्त के लिये एक लाइन लिखी खास उन्होंने। देखो इसकी टीका पढ़ते हैं **परिणामयोगस्थान शरीरपर्याप्ति** को **पूर्ण होने** पर पहले **समय से** लगाकर यानी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लगाकर **अपने आयुर्बल के** अंत **समय** पर्यंत **जानना।** कौनसे ? परिणामयोगस्थान। कब से कब तक ? सभी जीवों में क्या बता रहे ? सभी पर्याप्त जीवों में तो ऐसा ही कहेंगे कि शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही यानी उसी समय परिणामयोगस्थान शुरू हुये और वे कब तक रहेंगे ? आयु के अंत तक। जो जितनी आयु है तब तक जो योग होंगे उसको कहेंगे परिणामयोग। परिणामयोगस्थान कहेंगे उसको। किंतु लब्धिअपर्याप्त जीवों के अपनी स्थिति, कितनी है ? श्वास का अठारवां भाग। स्थिति यानी उनकी आयु की मर्यादा यानी आयु की लंबाई, क्या कहेंगे आप ? कितनी आयु, उसका स्पॅन कितना है ? उसके त्रिभाग करना और अंत का जो त्रिभाग जहां हम कहते है न आयु बंधने का अवसर है तो $\frac{१}{३}$ पोर्शन है जो अंत का, उसके पहले समय से लेकर अंत समय तक परिणामयोगस्थान होते हैं।

यह लब्धिअपर्याप्त जीव कौन-कौनसी पर्याय में होते हैं ? हमने चौदह जीवसमास देखे उनमें लब्धिअपर्याप्त जीव कितने जीवसमासों में होते हैं ? *श्रोता: सातों में ही होते हैं।* सातों में ही होते हैं। हमने पहले देखा था क्योंकि सूक्ष्म, अकेले निगोद में नहीं होते हैं; यह श्वास के अठारवां प्रमाण जो आयु देखी है वह मात्र निगोद की बात

नहीं है; तो एकेन्द्रिय में भी है, द्वीन्द्रिय में भी है, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी पंचेन्द्रिय में भी है, मनुष्य में भी है। कौनसे मनुष्य ? लब्धिअपर्याप्त मनुष्य जिसको हम सम्मूर्छन मनुष्य कहते हैं उसमें भी यह इतनी छोटी आयुवाली उसकी पर्याय है। यहां कहते हैं लब्धिअपर्याप्तों में उनकी जो आयु है श्वास का अठारवां भागप्रमाण, उसमें तीन भाग करना तो अंतिम एकभाग में परिणामयोगस्थान हैं। पहले समय में उपपादयोगस्थान है और बीच में क्या होगा ? एकांतवृद्धियोगस्थान होगा। अब यह एकांतवृद्धियोगस्थानों की बात हम कहेंगे। २२१ नंबर की गाथा यहां पढ़ेंगे हम।

सगपज्जत्तीपुण्णे उवरि सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठंपि॥ २२१॥

यानी यह जो परिणामयोगस्थान देखे हैं उसीकी बात यहां और बता रहे हैं। अपने-अपने शरीर नामक पर्याप्ति की पूर्णता होने पर, यह क्या है ढूंढ़ारी में लिखा है न ! मैं आपको हिंदी कर-करके बता रही हूं। तो अपने-अपने शरीर नामक पर्याप्ति पूर्ण होते हुये उस शरीरपर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर, शरीरपर्याप्ति पूर्ण होती है उस समय को भी पकड़ना परिणामयोग में। उस समय से लेकर उसके ऊपर यानी उसके पश्चात् कहां तक ? मरण तक, यानी जब तक आयुर्बल है, यानी आयु है तब तक। कौनसा है परिणाम ? यह परिणामयोगस्थान है। कौनसा योग है ? परिणामयोगस्थान है। वह कैसा है ? उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य भी होता है। परिणामयोगस्थान कहते ही उसको हैं कि जिसमें वृद्धि भी हो सकती है हानि भी हो सकती है और अवस्थित यानी उतना का उतना भी रह सकता है। परिणामयोगस्थान किसको कहना कि एक तो उसकी कब शुरुआत होती है ? तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से शुरुआत होती है। तो क्या होता है ? एकांतवृद्धि में तो प्रतिसमय वृद्धि ही वृद्धि होती थी इसमें क्या होता है ? इसमें उससे भी वृद्धि हो सकती है, कभी हानि भी हो सकती है, कभी उतना का उतना भी रह सकता है यह उसकी विशेषता है। इसलिये इसका नाम है परिणामयोगस्थान। लब्धिअपर्याप्त जीवों में उनकी जो श्वास के अठारवें भागप्रमाण स्थिति है उसका जो अंतिम त्रिभाग है; त्रिभाग किसको कहते हैं ? $\frac{१}{३}$ यानी एक तृतीयांश आयु बाकी रहती है उसके पहले समय से लेकर आयु के अंत तक उसके जो सर्वस्थिति के भेदों में; सर्वस्थिति के भेदों में यानी उनकी भी आयु कम

ज्यादा होती है - मिनिमम भी है और अधिक भी होती है यथायोग्य अंतर्मुहूर्त तक; तो आयु के इन सभी भेदों में उत्कृष्ट परिणामयोग भी है जघन्य भी है दोनों ही संभव हैं और मध्यम तो होंगे ही होंगे। सो दोनों ही जीवों के; दोनों ही कौनसे ? पर्याप्त में भी और लब्धिअपर्याप्त में भी ये जो सर्व परिणामयोगस्थान हैं उनको घोटमानयोग जानना।

प्रश्न: या घोटमान योगस्थानधारी का अर्थ काय आहे ? यह मराठी में प्रश्न है। घोटमानयोग किसको कहा ? परिणामयोग का ही दूसरा नाम है घोटमानयोग; परिणामयोग का ही नाम है घोटमानयोग। कहीं-कहीं उसको घोलमान भी कहा है। वह तो क्षपित कर्मांशिक उसमें आता है न ! क्षपित घोलमान वगैरह। अभी हम घोटमान की बात करेंगे। यानी कम भी होता है, अधिक भी होता है, उतना का उतना भी रह सकता है। यह घोटमान का ही दूसरा अर्थ, दूसरा उसके लिये पर्यायवाची शब्द है परिणामयोग। परिणामयोगधारी कहो या घोटमानयोगधारी कहो एक ही बात है। तो यह घोटमानयोग क्यों कहा ? यह योगस्थान घटते भी हैं और बढ़ते भी हैं। घोट कहा न - घटना; घटना शब्द से वह घोटमान कह दिया उसको या जैसे के वैसे भी रहते हैं।

क्या-क्या देखा हमने ? एक उपपादयोग एक ही समय के लिये होता है। तो उसमें जितना है उतना है या तो जघन्य होगा या उत्कृष्ट होगा; उसमें घटने बढ़ने की बात नहीं। दो जीवों की अपेक्षा कह सकते हैं इसका अधिक है इसका कम है। परंतु एक जीव में तो एक समय के लिये तो एक ही कोई होगा, एक बात। परिणामयोगस्थान किसे कहना ? शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से आयु के अंत तक पाया जाता है और लब्धिअपर्याप्तों में आयु के अंतिम त्रिभाग में पाया जाता है। उसकी विशेषता क्या है ? उसमें वृद्धि भी होती है, उसमें हानि भी होती है, उतना का उतना भी रह सकता है क्योंकि इतनी सारी आयु तक रहता है न। हर समय क्या होता है ? कभी वृद्धि होती है, कभी हानि होती है, कभी उतना का उतना रहता है। अब वह कितने समय तक अधिक से अधिक उतना ही रह सकता है, कितने समय तक वृद्धि होती है, कितने समय तक हानि होती है वह सारा अलग गणित है। अभी होती है इतना ही समझेंगे हम, हां, अब बीच में एक छोड़ दिया। कौनसा ? एकांतानुवृद्धिवाला, परिणामयोग की बात की हमने, उसीका दूसरा नाम है घोटमानयोग। अब एकांतानुवृद्धियोग की हम बात करेंगे। तो २२२ नंबर की गाथा में उसका वर्णन आता है यहां पर।

एयंतवड्ढिठाणा उभयट्ठाणाणमंतरे होंति।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्हि अंतम्हि॥२२२॥

क्या कहते हैं ? यह एकांतवृद्धिस्थान जो है वह दोनों योगों के बीच में है। कौनसे दोनों के बीच में है ? उपपादयोगस्थान जो पहले समय में है और परिणामयोगस्थान जो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर या अंतिम त्रिभाग में जो होता है; लब्धिअपर्याप्तों के लिये अंतिम त्रिभाग। इसके बीच में तो नहीं बताया तो कहते हैं वहां एकांतवृद्धिस्थान होते हैं या एकांतानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। तो उसमें क्या लिखा वहां ? **सगकालादिम्हि अंतम्हि** यानी वहां उत्कृष्ट कब होता है और जघन्य कब होता है, नहीं समझे ? देखो, यह मान लेते हैं पहले समय में उपपाद हुआ, दूसरे समय में एकांतवृद्धि शुरू हुयी, यहां जितना है उसके दूसरे समय में तीसरे समय में और वृद्धि हुयी, चौथे में और वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि जब तक परिणामयोग नहीं होता है तब तक क्या होगा ? वृद्धि होती है। तो एक ही जीव के लिये उसका मिनिमम कब है ? जब शुरू हुआ तब और उसका अधिक से अधिक कब है ? उसके अंतिम समय में। ख्याल में आया न ? यही बात यहां लिखी है।

एकांतानुवृद्धियोगस्थान पर्याय धरने के दूसरे समय से लेकर, क्योंकि पहले समय में तो उपपाद होता है इसलिये पर्याय धरने के दूसरे समय से लेकर एक समय कम शरीरपर्याप्ति का जो अंतर्मुहूर्त है। यह शरीरपर्याप्ति का काल कितना है पूरा होने का ? तो कहते हैं अंतर्मुहूर्त काल है और उसके एक समय पूर्व तक की बात है। इसलिये एक समय कम शरीरपर्याप्ति कहा उसके अंत पर्यंत, उपपादयोग और परिणामयोग इनके अंतराल में पाया जाता है। पहले समय में उपपादयोग और बाद में परिणामयोग और दोनों के बीच में, इसको कहेंगे दोनों के अंतराल में कौनसा योग होता है ? एकांतवृद्धिवाला या एकांतानुवृद्धि कहो उसको और उस एकांतवृद्धि का जघन्य स्थान कहां होता है ? अपने काल के आदि समय में यानी उपपादयोग के पश्चात् वाले समय में। वह उसका आदि समय है न, एकांतवृद्धिवाले स्थानों में वह पहला स्थान है और उसका उत्कृष्ट स्थान कब होगा ? अंतिम समय में क्योंकि यह जो अंतर्मुहूर्त काल है, अंतर्मुहूर्त में भी असंख्यात समय हैं; तो असंख्यात समयों तक लगातार वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि, वृद्धि होती है। तो कितनी वृद्धि हो जायेगी ? तो पहले समयवाला जो

शुरू हुआ तब उसका जघन्य था और जब उसका अंत हुआ तब उसका उत्कृष्ट था। इसीलिये एकांत यानी नियम से अपने काल के पहले समय से लगाकर अंत समय तक प्रति समय कितना बढ़ता है ? असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा।

पहले समय में योग के जितने अविभागप्रतिच्छेद थे; पहले हम अविभागप्रतिच्छेद कर्म पर घटित करते थे, योग की भी शक्ति उसीमें मापेंगे; उसीमें यानी उसकी अपनी शक्ति में, हमारा माप तो अविभागप्रतिच्छेदों का है। यहां जो योग की शक्ति है वह योग की शक्ति के जो अविभागप्रतिच्छेद हैं वह पहले समय में जितने हैं; एकांतवृद्धि के पहले समय में जितने हैं; दूसरे समय में असंख्यातगुणा, तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा, चौथे समय में उससे भी असंख्यातगुणा। इसतरह असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा अविभागप्रतिच्छेदों की वृद्धि जिसमें होती है उसको कहते हैं एकांतानुवृद्धियोगस्थान। कुछ ख्याल में आयी बात ? पहले समय में हमने उपपादयोग देखा। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर कहो या लब्धिअपर्याप्तों में अंतिम त्रिभाग में कहो-कौनसे होते हैं ? परिणामयोग होते हैं और दोनों के बीच में, अंतराल में एकांतवृद्धियोग होते हैं; तो जो उपपाद के पश्चात् वाले समय में जितना योग है उसके बाद योग में प्रति समय असंख्यातगुणा वृद्धि होती चली जाती है और अंतिम समय में उसका मॅक्झिमम - एकांतवृद्धिवालों का मॅक्झिमम योग पाया जायेगा। उससे परिणामयोग में मॅक्झिमम हो सकता है उसकी बात यहां नहीं है।

यहां के जो स्थान हैं पहले समय से लास्टवाला समय वह उत्कृष्ट होगा, पहलेवाला है वह जघन्य होगा। तो ऐसे जो हमने उपपादयोगस्थान देखे और कौनसे ? एकांतानुवृद्धिवाले देखे और परिणामयोगवाले देखे। यह सभी में ऐसे ही समझना। चौदह के चौदह जीवसमासों में ये ऐसे ही पाये जाते हैं। चौदह जो हमने भेद देखे हैं उसमें उपपादवाले भी हैं, एकांतवृद्धिवाले भी हैं और परिणामवाले भी योगस्थान पाये जाते हैं। अभी यह योगस्थान कैसे बनते हैं ? उसमें कैसे-कैसे वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि आदि होती हैं उसकी चर्चा हम बिना सोते हुये दोपहर में देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२७. योगस्थान - प्रकार

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। पं. टोडरमलजी ने उसके आधार से सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है जो ढूंढ़ारी भाषा में है। उसके जीवकाण्ड भी है, कर्मकाण्ड है, लब्धिसार है, क्षपणासार है; यहां हम कर्मकाण्ड की बात कर रहे हैं। कर्मकाण्ड के संबंध में विचार करते-करते अभी हमने बंध के चार प्रकार का वर्णन देखा है- प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध। प्रदेशबंध में हमने बटवारा कैसा होता है, कितने परमाणुओं को ग्रहण करता है जीव, उसकी बात देखी थी।

प्रदेश और प्रकृतिबंध का कारण है योग। योग किसे कहते हैं ? तो आत्मप्रदेशों की जो चंचलता है उसको योग कहते हैं। है तो यह जीव का विभाव क्योंकि सिद्धों के तो कोई योग है नहीं। योग शब्द के अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थ करने में आते हैं। जिसको कहते हैं यह योगी है, क्यों ? तो आत्मा में जुड़ान है इसलिये उनको योग है कहेंगे, उन्हें योगी कहते हैं यानी वहां समाधि कहो, सामायिक कहो, अंतरंग स्थिरता कहो उसको योग कहने में आता है और यहां योग की बात क्या है तो चंचलता को यहां योग कहा है। आत्मप्रदेशों की चंचलता को, स्पंदन को, परिस्पंदन को योग कहते हैं। तो यहां विभाव है तो उसमें कर्मों का उदय निमित्तरूप से पाया जाता है। कर्मों के उदय से जीव को कुछ करना पड़ता है ऐसा बिलकुल नहीं है; परंतु जहां-जहां जीव के विभावरूप परिणाम होते हैं वहां सामने वैसा कर्मों का उदय पाया जाता है। तो यहां योग क्यों होता है ? जैसे हम कहेंगे यह राग-द्वेष क्यों होते हैं ? तो कहेंगे चारित्रमोहनीय का उदय है। मिथ्यात्व क्यों हो रहा है ? तो कहेंगे मिथ्यात्वकर्म का उदय है। तो योग क्यों होता है ? क्या देखा था, हमने देखा था न ? हां, शरीर नामकर्म का उदय पाया जाता है। पूर्व में बंधे हुये जो कर्म हैं वे उदय में आते रहते हैं और वहां जीव भी उसरूप परिणमन करता है तो वहां सामने उसका उदय पाया जाता है।

कर्म का उदय आया इसलिये जीव को वैसे भाव करने पड़ते हैं ऐसा बिलकुल नहीं है क्योंकि सभी प्रकार के कर्म अंदर पड़े हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ कहो या अन्य सभी या मिथ्यात्वकर्म तो अनादि से पड़ा ही है। यदि कर्म के कारण जीव को वह भाव करना पड़े तो मिथ्यात्व का उदय तो हर समय रहता है तो हर समय जीव को

मिथ्यात्व करना पड़ता। परंतु जीवों को सम्यक्त्व प्राप्त होता है और वह मिथ्यात्व का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर आगे चलकर सिद्ध भी होते हैं। इससे ही यह बात सिद्ध होती है कि कर्म का उदय है इसलिये जीव को वैसा भाव करना पड़े ऐसा भी नहीं है। ऐसा भी मत समझना कि वर्तमान में मिथ्यात्व का उदय चल रहा है और जीव सम्यक्त्वरूप परिणमित हो रहा है ऐसा भी नहीं होता। तो यह उदय ही अपनेआप मिट जाता है वह तो अपना अभी विषय नहीं है परंतु उपशम सम्यक्त्व के काल में उन जो उदयरूप कर्मों का सहजरूप से उपशम हो जाता है उदय रुक जाता है और यहां जीव के सम्यक्त्व प्राप्त होता है। तो प्रति समय उदय हो रहा था तो अपनेआप कैसे रुक गया ? अपनेआप ही रुकता है क्योंकि तत्त्वविचार के काल में, जीव तत्त्वविचार में ऐसा लीन होता है कि उसके कर्मों की स्थिति भी घट जाती है। अशुभकर्मों का अनुभाग घटता है, शुभकर्मों का अनुभाग बढ़ता है आदि जो उसमें व्हेरिएशन्स, जो कुछ कर्मों में बदल होते हैं वे सहजरूप से होते हैं। यानी कर्म वहां पड़ा है उदय में आ रहा है अब हम क्या करें ? ऐसी बात है ही नहीं।

यह सारी कर्म की थिअरी पढ़ने से क्या फायदा ? हमें तो अभी डर लगने लगा कितने-कितने क्या-क्या कर्म होंगे ! तो कहते हैं डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्यों ? क्योंकि उसी कर्मकाण्ड के ग्रंथों में यह बात बतायी है जिस समय जीव अपने स्वरूप का चिंतन करने लगता है, स्वरूप की दृष्टि करता है; दृष्टि यानी उसका उसमें अपनत्व हो जाता है, उसमें एकाग्रता होती है उस समय कर्मों में भी वह उपशम आदि अवस्थायें स्वयमेव हो जाती हैं। यानी इतनी तो गॅरंटी के साथ हम कह सकते हैं कि जो स्वरूप का चिंतन, मनन आदि करता है, तत्त्वों का चिंतन, मनन करता है, तत्त्वनिर्णय करता है उसके कर्मों की ये अवस्थायें जरूर होती ही हैं। एक क्रोसिन टॅबलेट खाते हैं तो आधे घंटे में बुखार उतरेगा इसकी तो १००% गॅरंटी है। परंतु हमें तत्त्वचिंतन करने मात्र से आत्मा का अनुभव होगा, क्या गॅरंटी है ? ऐसा लगता है। आत्मा-आत्मा करने से क्या होगा ? कुछ करेंगे तो पायेंगे। क्या करना चाहते हैं ? क्या करेंगे तो कुछ पायेंगे ? शरीर की कुछ क्रियायें; शुभभाव तो दूर की बात है, शरीर की कुछ क्रियायें करेंगे तो हम कुछ पायेंगे ऐसा लगता है। क्योंकि जीव चाहता है कि मोक्ष प्राप्त करे और उसके लिये कुछ न कुछ करना चाहता है और करता भी है।

उपाय करना चाहता है; सुख का उपाय करना चाहता है क्योंकि सुखी होने की चाह अंदर पड़ी है परंतु उसका सच्चा उपाय मालूम नहीं है तो उस उपाय के नाम पर अपनी कल्पना से देखा-देखी या किसी अन्य के उपदेश से वैसा झूठा उपाय भी कुछ करता रहता है। परंतु ये उपाय उसके अभी तक सारे फोकट गये हैं क्योंकि वे सही उपाय नहीं हैं। क्योंकि दुःख किसी अन्य बात का है; सुख प्राप्त करने का उपाय कुछ अन्य है और वह कर रहा है कुछ अन्य; इसलिये उसके सारे ये उपाय हैं वे तो बेकार के हो जाते हैं। उसके नाम पर यानी मोक्ष के उपाय के लिये कुछ पुण्य परिणाम करता भी है, होते भी हैं और उतने मात्र से ही मैं आगे बढ़ सकता हूं ऐसी मान्यता भी है। यह सहजरूप से ऐसी मान्यता चलती है और कभी-कभी खोटी मान्यताओं का पोषण करनेवाले उपदेशक भी मिल जाते हैं। इसलिये हमारा उपाय सही है या नहीं है इसको जानना बहुत जरूरी है। हम कोई भी व्यापार करते हैं, कोई शिक्षण लेते हैं तो उसमें गॅरंटी के साथ देखते हैं कि इसमें अपना कुछ लाभ है कि नहीं है।

यहां भी करणानुयोग में पूछते हैं न ! इसको जानने से हमारा क्या लाभ होगा ? हां, तो ऐसा प्रश्न हम पूजा कर रहे है, यात्रा कर रहे है, दान दे रहे है - इससे अपना क्या हो रहा है ? पुण्य बंध रहा है या पाप बंध रहा है कि क्या हो रहा है कि शुभभाव हो रहा है या शुद्धभाव हो रहा है - यह हमें पता होना ही चाहिये। हम जो कुछ कर रहे हैं देखो, मूर्ख भी बिना प्रयोजन में कुछ ऐसी बेकार की बात नहीं करता है। हम तो विवेक सहित हैं, संज्ञी पंचेंद्रिय हैं, हमारी जो कोई क्रियायें चल रही हैं, जो कोई भाव कर रहे हैं उन भावों का क्या फल हो रहा है, वे हम क्यों कर रहे हैं यह प्रश्न जरूर पूछना चाहिये। भगवान की पूजा भक्ति क्यों करनी ? सच्चे भगवान की ही क्यों करनी ? अन्यमति जैसी चाहे जिस भगवान की क्यों नहीं आदि प्रश्न अपनेआप से जरूर करना।

श्रोता: भवनवासी, पद्मावती, क्षेत्रपाल आदि देवांचा विनय, भक्ति करणे मिथ्यात्व आहे। यानी मिथ्यात्व है, समझ में आती है ? मराठी में चल रही है बात। *प्रश्न: यदि यह मिथ्यात्व है तर प्रतिष्ठादि ग्रंथांमध्ये यांचा आदरसत्कार का करण्यात आला आहे ?* यानी प्रतिष्ठा आदि ग्रंथों में इनका आदर सत्कार करने का उपदेश क्यों किया है ? वह मूल में वह किसने लिखा है ? क्योंकि ग्रंथों के नाम पर जो कोई हमारे पास लिखित रचनायें हैं क्या बीच में किसी रागी-द्वेषी ने उनमें कुछ मिलावट की है या नहीं की है -

यह भी जानना हमारा स्वयं का कर्तव्य है। दूसरी बात जैसे हम भगवान के भक्त हैं वैसे पद्मावती आदि जो कोई शासनदेवता या यक्ष आदि जो कोई हैं वे भी भगवान के भक्त हैं। हम किसी आयोजन में यहां इकट्ठे होते हैं तो अन्य जो देश-विदेश से कहो या अन्य गांव से जो हमारे साधर्मी आते हैं तो हम उनको उचित जय जिनेन्द्र कहेंगे, आओ कहेंगे, बैठो कहेंगे, पूजा में सम्मिलित होने के लिये भी कहेंगे। ऐसे ही यहां भी जो कोई हमारे जिनेन्द्र भगवान के भक्त हैं भवनवासी हों, सौधर्म आदि हों, वे आते हैं तो हम कहेंगे जरूर आइये, पधारिये। यहां हम यह विधान कर रहे हैं उसमें आप भी सम्मिलित हो जाओ। उनको अर्घ्य चढ़ाने के लिये कहीं उपदेश दिया नहीं है।

देखो, हम कहीं भी जाते हैं प्रवचन के लिये तो सुबह-सुबह हम मंदिरजी में जाते हैं और हम बहुत भक्तिभाव से वंदन करना चाहते भी हैं। हमारे बाजू में कोई महिलायें खड़ी होती हैं तो अर्घ्य का डिब्बा सामने कर देती हैं। ये बेचारे बिना चावल लेकर मंदिर में आये हैं तो हमारे हाथ में अर्घ्य रख देते हैं चढ़ाओ भगवान को। वे हमें अर्घ्य नहीं चढ़ा रहे, हमारे हाथ में रख रहे हैं कि भगवान को चढ़ाओ। ऐसे ही जो कोई आयेंगे, उनको कहो कि भगवान को चढ़ाओ, उनको क्यों चढ़ाते हैं ? भगवान के सामने हम एक दूसरे का आदर नहीं करेंगे। इस प्रांगण में जरूर एक दूसरे का आदर करेंगे। परंतु जहां मंदिर है, भगवान की मूर्ति विराजमान है उनके सामने हम एक दूसरे को नमस्कार, जय जिनेन्द्र, आदर-सत्कार, हमारे कोई बहुत बड़े बुजुर्ग आये तो वहां उनके चरण छूना, यह बातें नहीं हो सकती, करना नहीं भी चाहिये क्योंकि वह भगवान का अविनय है।

हमारे मूल ग्रंथों में जहां कहीं बीच में खोटी रचनायें हुयी हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिखा है कि जहां जो कोई जौहरी है, जो सच्चा व्यापारी है वह तो सच्चे मोती, सच्चे जो कोई डायमंड हैं उसको बेचेगा; परंतु जिसको अपना धंधा करना है तो सच्चे के साथ खोटा भी मिलाकर बेचता है। ऐसे हमारे ग्रंथों में कोई मिलावट है या नहीं है इसका विवेक हमें स्वयं करना चाहिये क्योंकि भले ही वह रिटन मॅटर है, कहीं लिखा है परंतु लिखा है तो किसने लिखा है ? कितनी ही रचनायें बीच काल में हुयी हैं क्यों ? अन्यमतियों में बहुत देवी-देवता हैं, हमारे सारे अन्यमतियों की तरफ चले जानेवाले हैं। तो किसी-किसीको ऐसा लगा अरे यह सब दौड़े जा रहे न अन्यमतियों में, हमारे पास

भी देवियां बहुत हैं आओ इधर हैं, इधर रुक जाओ। ऐसा हुआ है। अन्यमतियों के जो देवी-देवता हैं उनके पीछे लगनेवाले हैं क्योंकि लोगों को महिमा आती है न ! जहां बहुत भीड़ जा रही है वहां स्वयं भी चले जाते हैं। उसे देखकर कोई कहते हैं जाओ मत, अपने यहां भी बहुत देवी और देवता हैं ऐसा कहकर उनको रोकने के लिये, पद्मावती है, कौनसी है, अन्य-अन्य जो शासन देवता हैं उनका वर्णन करते हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर के काल में जो कोई शासनदेवता हैं वे उनके भक्त हैं, वे स्वयं भगवान नहीं हैं। कहीं भी चौथे गुणस्थानवालों को अर्घ्य चढ़ाने का उपदेश है ही नहीं और ना ही पांचवें गुणस्थानवालों को चढ़ाने का है। छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनियों का ही यह आदर, सत्कार, विनय, उनकी पूजा, अष्ट द्रव्य से पूजन करने का उपदेश है; यहां, देव, गुरु और शास्त्र तीनों ही समानरूप से वंदनीय हैं, पूजनीय हैं। उसके नीचे के भले ही वह सम्यग्दृष्टि भी क्यों नहीं हो उनका वंदन, पूजा का निषेध है। यह पद्मावती जन्म से सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि ? *श्रोता: मिथ्यादृष्टि।* क्यों ? बोलो, पद्मावती जन्म से मिथ्यादृष्टि क्यों है ? अंजू पता है, प्रतिमा पता है ? *श्रोता: स्त्री पर्याय में थी।* सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री पर्याय में उत्पन्न नहीं होता और यह भवनवासी है। भवनवासियों में देव भी क्यों न हो, पद्मावती की बात छोड़ो धरणेन्द्र भी जन्म से वहां कोई सम्यग्दृष्टि है ही नहीं। हां, वहां जाने के पश्चात् वहां सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। हां, आप कहेंगे वह सम्यग्दृष्टि है, आप कहो, हमें कोई उसमें ऐतराज है नहीं। सम्यग्दृष्टि है तो क्या हुआ ? सम्यग्दृष्टि है, चौथे गुणस्थानवर्ती है उसको अर्घ्य तो नहीं चढ़ाया जाता है। एक बात - यानी वह जन्म से तो सम्यग्दृष्टि है नहीं।

सौधर्म इंद्र तो जन्म से सम्यग्दृष्टि है और आगामी भव में मोक्ष जानेवाले हैं। तो उसकी तो महिमा नहीं आती है, उसको तो अर्घ्य नहीं चढ़ा रहे हैं, उसका तो मंदिर में विनय नहीं कर रहे हैं; तो यह भवनवासियों का विनय वंदन करने का आग्रह क्यों है ? यदि उसमें मिथ्यात्व का - गृहीत मिथ्यात्व का पाप है; तो यह समझने के बाद भी यह प्रथा क्यों चालू रखनी ? यदि समाज कर रहा है तो क्या करे ? तो जो कर रहा है उसको करने दो आप क्यों कर रहे हैं ? उसमें आप क्यों सम्मिलित हो रहे हैं ? ऐसा नहीं करेंगे तो क्या होगा ? हमारी सब समाज विघटित हो जायेगी। बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी होना इसको धर्म नहीं कहते। वह कुम्भ मेले में भी लाखों लोग इकट्ठे होते हैं तो

क्या वह सही कर रहे हैं, क्यों ? यह विवेक हमें स्वयं को होना चाहिये। हमारा किसमें नुकसान है ? यह एक भव का नुकसान नहीं है; अरे यहां से कहां जाना पड़ेगा ऐसा गृहीत मिथ्यात्व लेकर ? अब यह अवसर आया है कि सही स्वरूप समझें। फिर भी अगर हम नहीं करेंगे, अभी तक कर रहे थे तो अभी नहीं करेंगे तो समाज में हमें क्या कहेंगे ! हम तो समाज के बहुत अग्रसर मुखिया होकर अभी तक बैठ रहे थे अभी क्या कहेंगे। यह हमारे यहां सौभागमलजी बैठे हैं। कितनी उम्र है भाई ? *श्रोता: पचहत्तर।* पचहत्तर, तो पहले वहां देश में उनकी कोई कुलदेवी थी। वे पूरा समाज इकट्ठा करके मुखिया होकर वहां चले जाते थे संघपति बनकर और सारा विधि-विधान करवाते थे। जब हमारे यहां आने लगे, कितने साल से आ रहे अभी स्वाध्याय में ? १२ साल हो गये। जब पता चला कि वहां जाना योग्य नहीं है तो शुरू में उनको ऐसा लगता था कि कुछ बहाना बनायेंगे और नहीं जायेंगे।

यह हमारी सुशीलाबहन भी है, उनके परिवार में कितनी सारी तो महासतीजी हैं और सबका पूरा विरोध था, वह भी कहने लगी कि अभी मैं कुछ बहाना बना दूंगी और गांव में कुलदेवी के पूजन में नहीं जाऊंगी। इनसे - दिनेशजी से प्रश्न किया था ऐसा, तब इन्होंने कहा था तुम कितने दिन बहाना बनाओगी ? एक बार सत्य बात कह दो, भले सास हो या अन्य कोई हो, विरोध करेंगे आपको बहुत चेंज करने की कोशिश करेंगे। यदि आपको यह सच लगता है तो सत्य का जरूर आप आश्रय करना। एक बार आप इसका आश्रय करते हैं और वहां नमन वंदन नहीं करते, नहीं जाते तो दुबारा कोई बुलायेगा भी नहीं और यही बात हुयी है, उन्होंने यह सब छोड़कर भी बहुत साल हो गये। तो यह सब कुछ छोड़ दिया है, अभी स्वयं को प्युअर दिगम्बर कहने में उनको अभिमान लगता है। भले पूर्व अवस्था जो कुछ थी जहां से वे आये थे। ये सौभागमलजी सँड़हर्स्ट रोड से आते है रोज इस उम्र में। देखो, जब मार्ग मिलता है तो सही की पहचान हमें करनी ही चाहिये। मालूम है ? हमारे यहां आनेवालों में दिगम्बरों से स्थानकवासियों की संख्या ज्यादा है और उनको स्थानकवासी कहेंगे तो उनको अच्छा नहीं लगता क्योंकि वे अभी प्युअरली दिगम्बर बन चुके हैं तत्त्वज्ञान को आत्मसात करके ! वे तो कहते हैं जैसे नित्य निगोद में से हर छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव व्यवहारराशि में आते हैं वैसे हमने पूर्व पर्याय छोड़कर हमारा इतना

महाभाग्य है कि हम दिगम्बर में आ गये, हम दिगम्बर हो गये और उसका उनको अभिमान है। परंतु कितने ही मूल दिगम्बर में जन्में हैं उन्हें पता ही नहीं कि हमारे शास्त्रों में क्या लिखा है ! बहुत दुःख लगता है, क्या करें ? यह हमारे लगने से क्या होता है ? पं. टोडरमलजी साहब कहते उनको देख-देखकर कषायी मत होना। उनको बताने का, कहने का भाव आता है, कह दो; मगर नहीं मानते तो, हां, उनकी होनहार ऐसी ही है ऐसा कहकर छोड़ दो ! क्या करें ?

श्रोता: देवगति और नरकगति में निद्रा संबंधी प्रकृति के उदय पर क्या कार्य पाया जाता है ? ये तो उदय की बात कहां आयी है अभी ? वहां तो स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला का उदय ही नहीं होता। इसलिये यहां जितना सोना है वह सो लो, हां। *श्रोता: योग किस गुण की विकारी पर्याय है ?* योग किस गुण की विकारी पर्याय है ? हम कहेंगे योगगुण की विकारी पर्याय है। *श्रोता: चारित्रगुण की ?* चारित्रगुण की कैसे होगी ? चारित्रगुण की विकारी पर्याय तो राग-द्वेष है। योग का, हं ? नामकर्म की क्या ? जीव का कौनसा गुण है यह पूछा है; कौनसे गुण की विकारी पर्याय है ? देखो, योग होना यानी क्या है ? कंपन होना और जब कंपन से रहित हो जाता है तो क्या कहते है उसको ? उसको निष्क्रिय कहते हैं, निष्क्रिय अवस्था, कंपन रहित अवस्था, निश्चल अवस्था; प्रदेशों की चंचलता पूर्ण रुक जाती है। तो रुक जाती है तो योग समाप्त होता है क्या ? तो उसका स्वभाव परिणमन शुरू होता है। तो इसको योग क्यों कहा ? मेरा प्रश्न है आपको ब्लड प्रेशर है बहन ? ब्लड प्रेशर है आपको ? है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* हाय ब्लड प्रेशर है कि लो है ? तो जब हम कहते हैं मुझे ब्लड प्रेशर की बीमारी है तो उसका अर्थ क्या है ? या तो मेरे हाय ब्लड प्रेशर है या लो ब्लड प्रेशर है। परंतु ब्लड प्रेशर नहीं है ऐसा कोई कहेगा क्या ? अरे है न ब्लड प्रेशर ! नॉर्मल ब्लड प्रेशर भी तो ब्लड प्रेशर है। ऐसे ही यह योग है, जो कंपन है वह विभाव अवस्था है और कंपन नहीं होना यह स्वभाव अवस्था है। उसको योगगुण की पर्याय कह सकते हैं हम।

श्रोता: हम जो करणानुयोग का अभी क्लास कर रहे क्या यह भी तत्त्वविचार कहलायेगा ? क्या इससे भी कर्मों की स्थिति अनुभाग घटेंगे ? हां, जरूर घटेंगे। यानी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति क्या है ? इसको समझने से भी उसकी स्थिति घट जायेगी। देखो, यह जो हम देख रहें है मात्र हमको रटना नहीं है कि कितने कर्म हैं ? क्या है ?

उसकी उत्कृष्ट, जघन्य स्थिति कितनी ? हमने रट लिया और हो गया तत्त्वविचार ऐसा नहीं है। इससे हम भेद-विज्ञान करना चाहते हैं। कर्मों की जो कोई स्थिति उसकी अपने से हो रही, हमारे से नहीं हो रही है और दूसरी बात क्या है कि उसके जो उदयरूप फल है या जो कुछ है या हमारे राग-द्वेष परिणामों के कारण इसका बंध हो रहा है तो यह राग-द्वेष परिणाम भी मेरे नहीं हैं मैं उसरूप नहीं हूं और ना ही ये कर्मों के उदयरूप जो फल है उसरूप मैं हूं। यानी हमें भेद-विज्ञान करने में अत्यंत बल मिल जाता है। इसलिये यह जो हम कर रहे हैं वह तत्त्वविचार ही तो है। किसी अन्य अनुयोग के आधार से हम कर रहे हैं; वह द्रव्यानुयोग से हो, करणानुयोग से, चरणानुयोग से हमारा मूल प्रयोजन तो वीतरागता है और सभी अनुयोगों से वीतरागता की प्राप्ति होती है। अब वह कैसे तत्त्वविचार करना और कैसे वह अपने अनुकूल बना देना यह हमारे हाथ की बात है, यह ट्रिक है। कौनसा व्यापार करना फायदेमंद होता है ? कोई हीरे का करता है, कोई कोयले का करता है, कोई चिंधी का करता है। मुंबई में बहुत बड़े-बड़े करोड़पति हैं जो चिंधी का व्यापार करते हैं और प्लॅस्टिक की जो यह सारी थैलियां रास्ते पर से इकट्ठा करके बेचते हैं। व्यापार है न वह तो फायदेमंद है। ऐसे ही यहां तत्त्वविचार करना है तो हमें चारों ही अनुयोगों के द्वारा तत्त्वविचार होता है। उसमें कोई ऐसी रोक नहीं है कि यही अनुयोग पढ़ना चाहिये। चाहियेवाली बात ही नहीं होती वहां पर। अभी एक प्रश्न है। क्या रह गया ?

श्रोता: योगस्थान किसे कहते हैं ? योगस्थान की परिभाषा क्या है ? हमने देखा है स्थान जब कहते हैं तो स्थान का अर्थ क्या है ? अलग-अलग उसके भेद; जैसे बंधस्थान में देखे थे हमने। देखे थे न बंधस्थान; कितनी प्रकृतियों का बंध हो रहा है उसको बंधस्थान कहा। स्थान यानी उसके भेद; भेद यानी जिसको हम अंग्रेजी में कहेंगे व्हेरिएशन्स। ऐसे ही योगस्थान का अर्थ क्या है ? किसीको बहुत कम योग है, किसीको अधिक है, किसीको बहुत अधिक है, किसीको उससे भी ज्यादा अधिक है। तो ये जो योगों के अलग-अलग प्रकार हैं जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक जितने भेद पाये जाते हैं उनको कहते हैं योगों के स्थान और उसको कहेंगे योगस्थान। *श्रोता: तीर्थंकर की माता भी जन्म से मिथ्यादृष्टि है या नहीं ?* बिलकुल, स्त्री है तो मिथ्यादृष्टि ही है, ही लगाओ उसमें। *श्रोता: यदि है तो वह सम्यग्दर्शन उस भव में प्राप्त कर सकती है ?* करती ही हैं

और वह सम्यग्दृष्टि हो ही जाती है, हां।

श्रोता: आप डॉक्टरी पढ़े हुये थे तो करणानुयोग की इतनी रुचि कैसे हो गयी ?
ये जो डॉक्टरी की पढ़ाई है न वह पूर्व जन्म के कर्म का उदय है। हां, लौकिक कोई जो पढ़ाई करते हैं वह तो पूर्वजन्म के वह जो कुछ ज्ञान का क्षयोपशम है वह पूर्व जन्म से संबंधित है और करणानुयोग की पढ़ाई वह इस जन्म की हमारी कमाई है। देखो, ऐसी रुचि होना स्वाभाविक है न, द्रव्यानुयोग हमने खूब पढ़ा-खूब पढ़ा; जितना अव्हेलेबल साहित्य वह सारा पढ़ा। पढ़ा उसको आत्मसात भी कर लिया तो फिर ऐसे ही हाथ में आ गयी करणानुयोग की पुस्तकें, यह जो सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार। बहुत डर लगता था उसको देखकर, फिर पढ़ना शुरू किया और हम दोनों उसको रोज आठ-साढ़े आठ घंटे पढ़ते थे, उसमें पता चले या नहीं चले। एक-एक दिन में साढ़े आठ घंटे ऐसे लगातार पढ़ते थे। पहली ९०० पन्ने की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एक महीने में पूरी कर दी - यहां लिखा है उसमें हम डेट डालतें हैं। हम कोई भी शास्त्र पढ़ते हैं तो कौनसी तारीख को पढ़ना शुरू किया और कब समाप्त किया। इसमें भी होना चाहिये शायद, यह कर्मकाण्ड है हां, सन १९९४ में पहली बार पढ़ा था, २६/०८/१९९९ से यह कर्मकाण्ड पहली बार पढ़ाया था, सन २००० तक; वह कितने बजे शुरू किया था वह भी है। मगर यह तो प्रवचन की बात है। फिर २००० में, फिर २००२ में यानी तीन बार आद्योपांत सामूहिक स्वाध्याय हो गया है; फिर संदृष्टि के साथ पढ़ाना भी आद्योपांत हो गया है और वह भी एक-एक लाइन। ऐसा नहीं कि ऐसे ही पढ़ लिया है, तो उसमें रुचि हो जाती है।

जब शुरू में कुछ नहीं समझता था तो किसके पास जाकर पढ़े, किसको पूछे ? तो स्वयं से ही अर्थ लगते गया। मैंने कहा न जब हम पढ़ना शुरू करते हैं जिज्ञासा है तो अपना ही ज्ञान का उघाड़ होते चला जाता है। उसमें डॉक्टरी पढ़ाई कुछ काम नहीं आयी क्योंकि डॉक्टरी में कोई गणित वगैरह का ज्ञान नहीं था। बस सहजरूप से गणित में पहले से मुझे रुचि थी तो इसके गणितों को भी समझ लिया, करणानुयोग के शास्त्रों का ऐसा एक भी गणित नहीं है कि जो सॉल्व्ह नहीं हुआ है। इसके सारे गणितों, हां, शास्त्र की बात चल रही है; शास्त्र के सभी गणितों का उकेल हुआ है। यह सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका में, धवला, जयधवला में, जितना सारा गणित है सबका उकेल हो

गया, सारा समझ में आया, औरों को समझाया भी। मुझे याद है- मुझे तो स्कूल में भी आठवीं नौवीं क्लास में टीचर पूछती थी कि तू कहां जाती है, कौनसी क्लास में जाती है, तुझे कौन पढ़ाता है ? कोई नहीं पढ़ाता, हमारे घर में मेरे से अधिक पढ़ा हुआ मेरा भाई है। जब मैं आठवीं में थी तो वह नौवीं में था, उससे अधिक पढ़ा हुआ तो कोई था ही नहीं। तो कहते थे कि तेरे जो गणित की पद्धति है कुछ अलग ही रहती है; हमने तो यहां स्कूल में नहीं पढ़ाया था, आपको कहां से पता चला ? मैंने कहा मुझे सूझ गया ऐसे ही। तो यह कोई बात नहीं है अंदर रुचि सहज होती रहती है। तो चलो अभी हम आगे बढ़ेंगे, यहां तो कोई पर्सनल बात नहीं करनी है।

हम जो यहां देख रहे थे, योगस्थानों की चर्चा अपनी चल रही थी। तो योगस्थानों में हमने तीन प्रकार के योग पहले देखे, फिर उसके स्थान देखेंगे। तो तीन कौन-कौनसे योगों के प्रकार देखे हमने ? याद हैं, हां। *श्रोता: उपपादयोग।* उपपादयोग। *श्रोता: एकांतानुवृद्धियोग।* एकांतानुवृद्धियोग। *श्रोता: परिणामयोग।* परिणामयोग। उपपादयोग कब होता है ? तो कोई जीव मरकर परभव में गमन करता है, तो पर्याय धारण करने यानी भव धारण करना; उसके पहले समय में जो होता है उसको कहते हैं उपपादयोग। वह एक समय मात्र के लिये होता है। उसमें भी उत्कृष्ट किसके होता है ? जो विग्रहगति का अर्थ है मोड़वालीगति; मोड़वालीगति से गमन करके जो पहुंचता है उसके उत्कृष्ट होता है और जो ऋजुगति यानी सीधीगति, इषुगति से गमन करता है उसी समय में शरीर धारण करता है उसके जघन्य होता है। वह भी सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त के सबसे जघन्य पाया जाता है और जो हमने चौदह जीवसमास देखे उसमें क्रम से अधिक-अधिक योग पाया जाता है। चौदह भेद देखे थे न हमने और हर एक में जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम देखे थे। यह तो हो गयी बात उपपादयोग की।

दूसरे ही समय से एकांतानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। एकांतानुवृद्धि, एकांत का अर्थ होता है नियमरूप से वृद्धि ही होती चली जाती है दूसरे समय से तीसरे में ज्यादा, उससे चौथे में ज्यादा, उससे पांचवें में ज्यादा इस प्रकार योग में असंख्यातगुणा वृद्धि होती है। यानी योग बढ़ता चला जाता है। जैसे हमने देखा न ! बहुत बुखार चढ़ रहा है तो क्या होता है थर्मामीटर का पारा एकदम ऊपर-ऊपर-ऊपर सतत जाता है वैसे ही यह योगों की सतत वृद्धि हो रही है उसको कहेंगे एकांतानुवृद्धि। कब तक होती है ?

श्रोता: योग क्या है ? योग ? योग यानी आत्मप्रदेशों का कंपन है उसकी जो कर्माकर्षण शक्ति है, यहां योग की शक्ति समझना; वह योग बढ़ता चला जाता है। अकेले कंपन कम ज्यादा ऐसा नहीं उसका अर्थ लेना, उसकी जो शक्ति है वह भी बढ़ती चली जाती है। यह योग जो है वह असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा बढ़ता चला जायेगा। कब तक ? शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के एक समय पूर्व तक और लब्धिअपर्याप्त जीवों में कब तक ? आयु का दो तिहाई बीत जाये तब तक, १/३ बाकी रहे तब तक। तो यह बढ़ता चला जाता है योग, तो उसको कहेंगे एकांतानुवृद्धियोगस्थान। पहले समय में जितना योग शुरू हुआ है तब जघन्य है और बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते अंतिम समय में वह उत्कृष्ट है।

उसके पश्चात् शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर मरण तक जो योग पाया जाता है उसको कहेंगे परिणामयोग और उसके जो अलग-अलग भेद हैं उनको कहेंगे स्थान। तो परिणामयोगस्थान में क्या होता है ? यह जो परिणामयोग हैं; कैसे हैं ? तो उसमें कभी वृद्धि भी होती है कभी हानि भी होती है और कभी उतना का उतना भी रह सकता है। एकांतानुवृद्धि में तो योग बढ़ता ही चला जाता है। एक समय का योग और दूसरे समय का योग इसमें कोई समानता नहीं है। वह अधिक-अधिक ही होता चला जाता है। *श्रोता: हानि वृद्धि, वृद्धि होते रुक सकती है योग में ?* योग बढ़ता ही है उसकी शक्ति बढ़ती है। उसमें उसके जो कोई कार्य होते हैं, कौनसे ? परमाणुओं के ग्रहण करने के, वह कार्य यानी अधिक परमाणुओं का वहां ग्रहण भी हो जायेगा। परंतु परिणामयोग में कभी वृद्धि हो सकती है, कभी हानि हो सकती है और कभी समानता भी पायी जाती है। इसतरह से यह हमने अलग-अलग उसके ये तीन भेद देखे हैं। तो जो चौदह जीवसमास में हर एक के अपने-अपने योगस्थानों के बहुत सारे भेद बताये हैं और यहां योगस्थानों के कुल चौरासी ऐसे मुख्यरूप से अलग-अलग स्थान बतायें हैं, जिसे कहेंगे न, स्थूलरूप से; वैसे तो उसके भेद बहुत सारे होते हैं। फिर भी स्थूलरूप से यानी जो एकेन्द्रियों के, फिर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि करते-करते पंचेन्द्रियों तक के ये चौदह जीवसमासों में तीनों प्रकार के जो भेद हैं वे बयालीस होंगे और हरेक में जघन्य और उत्कृष्ट ऐसे उसमें चौरासी तक भेद करके उन्होंने अलग-अलग उसका वर्णन करके यहां विस्तार से समझाया भी है।अब यह जो योगस्थान जब कहते हैं एक योगस्थान, तो उस योगस्थान में क्या-क्या है ? योगस्थान किसको कहेंगे ?

यह एक पहला योगस्थान है और किसीका आगेवाला योगस्थान है। जैसे ज्ञान में तो हम समझते हैं कोई हीन ज्ञानवाला है, कोई अधिक ज्ञानवाला है तो उसमें हम डायरेक्ट ज्ञान की जो पर्याय है - उसमें कितने अविभागप्रतिच्छेद हैं ? जानने की शक्ति कितनी है ? उसको कहेंगे यह एक व्हेरिएशन है उसका। यह थोड़ा ज्ञानवाला है, वह अधिक ज्ञानवाला है, वह और अधिक ज्ञानवाला है। ऐसे ही यहां योगस्थान पूरा एक स्थान जब बताते हैं तो इसमें कम योग है इसमें ज्यादा योग है ऐसा नहीं कह सकते। क्यों नहीं कह सकते ? तो एक योगस्थान में क्या-क्या होता है ? यहां की भाषा में योगस्थान के अवयव क्या हैं यानी एक योगस्थान जब कहते हैं तो उसमें क्या-क्या बातें होती हैं ? उसकी हम चर्चा करेंगे। जैसे हमने कर्मों में देखे थे निषेक रचना होती है या स्पर्धक रचना होती है अनुभाग को बतानेवाले, वैसे यहां योगस्थान जब कहते हैं तो एक कोई रचना है इसमें क्या-क्या पाया जाता है, किसमें पाया जाता है उसकी थोड़ी चर्चा करेंगे। यह पूरा ही विषय अपने लिये नया है। कभी सुना नहीं है न ! २२३ नंबर की गाथा है और यहां कहते हैं- योगस्थानों के अवयव क्या हैं ? उसकी यहां चर्चा करेंगे।

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण॥ २२३॥

यानी एक योगस्थान के प्रति ये नियम से होते हैं। क्या होते हैं ? अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, वर्ग होते हैं, वर्गणा होती हैं, स्पर्धक होते हैं, गुणहानि होती हैं; इतने भेद नियम से होते ही हैं। आप कहेंगे इनके नाम हमने कर्मों में भी सुने थे। यह अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि ये नाम हमने कर्मों में भी देखे थे। हां, देखे थे न ! यह स्पर्धक में सब हमने देखे थे वर्ग, वर्गणा वगैरह और यहां आप योगों में बता रहे हैं। ऐसे कैसे हो सकता है ? तो यह वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि यह जो हैं यह सामान्य टर्मिनॉलॉजि है। अभी यहां योगों के बारे में जब हम विचार कर रहे हैं तो अविभागप्रतिच्छेद किसको कहना ? तो योग की शक्ति को अविभागप्रतिच्छेदों में नापेंगे हम। कर्मों की जो शक्ति थी उसको उसके अविभागप्रतिच्छेदों में नापते थे और कर्मों के अविभागप्रतिच्छेद अनंतों में पाये जाते थे। यहां हम योग की शक्ति नापेंगे। योग की शक्ति असंख्यात में होगी कभी अनंत में नहीं होगी। यह एक मुख्य फर्क उनमें है। योग जो पाया जाता है उसके जो अविभागप्रतिच्छेद हैं वे असंख्यात ही होते

हैं अनंत नहीं होते यह मूल बात।

वहां वर्ग किसको कहा था हमने ? कर्मों के बारे में वर्ग किसको कहा था ? *श्रोता: परमाणु को।* परमाणु को, कर्मपरमाणु को हमने वर्ग कहा था। यहां योग के प्रकरण में वर्ग किसको कहेंगे ? आत्मप्रदेश को, एक-एक प्रदेश को। जीव में कितने प्रदेश हैं ? एक जीव में कितने आत्मप्रदेश हैं ? जितने लोकाकाश में प्रदेश हैं उतने ही एक-एक जीव में आत्मप्रदेश हैं और उन सभी प्रदेशों में समान योग नहीं पाया जाता। नयी बात है न ! जितने लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेश हैं उन सबमें समान योग नहीं पाया जाता। जैसे कर्मों में एक समय में अनंत परमाणु तो बंधते हैं परंतु अलग-अलग परमाणुओं में अलग-अलग शक्ति, कर्म की अलग-अलग शक्ति पायी जाती है और जिसमें जघन्य शक्ति है ऐसे वर्गों के समूह को अलग रखा तो उसको हमने कहा प्रथम या जघन्य वर्गणा। उससे एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदवाले परमाणुओं को कहेंगे दूसरी वर्गणा, तीसरी वर्गणा, चौथी वर्गणा, अब यहां आत्मप्रदेशों पर घटित करना है।

असंख्यात यह जो संख्या है न, जीव के प्रदेशों की; जितने लोक में प्रदेश हैं यानी लोकप्रमाण असंख्यात आत्मप्रदेश हैं एक जीव के। उनमें जिन-जिन आत्मप्रदेशों में यह मिनिमम पॉसिबल योग है उन सभी प्रदेशों को हम इकट्ठा एक लाइन में लिखेंगे, समझने के लिये। ये प्रदेश तो जहां पड़े हैं वहां पड़े हैं परंतु जिन-जिन प्रदेशों में समान और जघन्य-मिनिमम पॉसिबल योग है उन प्रदेशों की हम एक लाइन लिखेंगे, समझने के लिये। जैसे हमने वर्गणा लिखी थी। मान लेते हैं उसमें जो कोई अविभागप्रतिच्छेद हैं, सौ हैं, तो एक-एक आत्मप्रदेश को हम वर्ग कहेंगे। योग के प्रकरण में एक-एक आत्मप्रदेश को हम एक-एक वर्ग कह रहे हैं। जिन-जिन आत्मप्रदेशों में योग समान है उनकी एक लाइन करेंगे हम। पहले में पहले हम जघन्य योग की बात करेंगे। तो जिसमें-जिसमें जघन्य योग है उन सबको एक कतार में हम लिख देंगे, समझने के लिये और उसको नाम देंगे यह पहली वर्गणा है। फिर उससे एक अविभागप्रतिच्छेद योग जिनमें-जिनमें अधिक है ऐसे अन्य प्रदेशों की उसके ऊपर दूसरी लाइन करेंगे तो उसको कहेंगे यह दूसरी वर्गणा है। फिर उससे भी एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक ऐसे आत्मप्रदेशों की एक लाइन उसके ऊपर कतार करेंगे उसको कहेंगे यह तीसरी वर्गणा है।फिर चौथी वर्गणा है। वहां कर्मों में तो अनंत वर्गणाओं का एक स्पर्धक होता था;

यहां असंख्यात वर्गणाओं का एक स्पर्धक होता है क्योंकि मूल में ही आत्मप्रदेश असंख्यात पाये जाते हैं, अनंत नहीं। योगों के अविभागप्रतिच्छेद भी असंख्यात ही होते हैं और वे जघन्य वर्गणा से शुरू करके एक-एक वर्गणा में एक-एक से बढ़ते हैं।

ऐसी असंख्यात वर्गणा होती हैं तब उसको एक स्पर्धक कहते हैं। फिर दूसरा स्पर्धक कौनसा ? जघन्य वर्गणा में जितने अविभागप्रतिच्छेद थे प्रत्येक प्रदेश में उससे दोगुणा हो जाते हैं वहां से दूसरा स्पर्धक; उसकी असंख्यात वर्गणा। फिर जहां तीन गुणा हो जाता है वहां से तीसरा स्पर्धक उसकी अपनी असंख्यात वर्गणा; चौथा स्पर्धक उसकी अपनी असंख्यात वर्गणा। तो प्रति वर्गणा आत्मप्रदेशों की संख्या कम होती चली जाती है जैसा हमने निषेकों में देखा था। जहां जाकर आत्मप्रदेशों की संख्या आधी हो जायेंगी वहां तक जितने स्पर्धक बीत गये हैं असंख्यात; असंख्यात जायेंगे तो उसको कहेंगे एक गुणहानि। एक गुणहानि जिऑमेट्रिकल रिसेश्शन चलेगा वहां पर। एक गुणहानि कहेंगे; फिर वहां से लेकर और कम होते चले जायेंगे दूसरी गुणहानि; तीसरी गुणहानि; जितनी टोटल गुणहानियां होंगी उनको कहेंगे नानागुणहानि। जैसा हमने कर्मों के बारे में देखा था ठीक वैसा ही यहां भी अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि आदि की जो रचना होती है, एक ही जीव में यह आत्मप्रदेशों की योगों की अपेक्षा रचना कहलायेगी।

यहां ऐसा नहीं कहेंगे कि आत्मप्रदेश अभी ऐसे लाइन में त्रिकोण आकार हो रहे हैं। यह तो हम अपने मन में धारण करते हैं कि कौन-कौनसे प्रदेशों में कितना योग है, इसको कहते हैं एक योगस्थान। यह जो संपूर्ण रचना है, कौनसी ? एक-एक आत्मप्रदेश को एक-एक वर्ग कहा क्योंकि उसमें योग शक्ति पायी जाती है इसलिये उसका नाम है वर्ग। जिसमें-जिसमें समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जायेंगे, यानी समान योग पाया जायेगा उनकी हम अलग-अलग पंक्तियां करेंगे। जिसमें सबसे जघन्य अविभागप्रतिच्छेद हैं उसको पहली वर्गणा कहेंगे। एक अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाली दूसरी वर्गणा, उससे एक अधिक तीसरी वर्गणा, उसके एक अधिक चौथी वर्गणा, ऐसे असंख्यात वर्गणाओं का एक स्पर्धक होगा। जिस वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद दो गुणा होते हैं वहां से दूसरा स्पर्धक, जहां तीन गुणा होते हैं वहां से तीसरा स्पर्धक शुरू होता है। ऐसे जब स्पर्धक असंख्यात हो जायेंगे तब जाकर प्रदेशों की संख्या आधी होती है।

यहां परमाणु नहीं हैं; वर्ग यानी प्रदेश; प्रदेशों की संख्या जिस वर्गणा में आधी हो जायेगी वहां तक हम कहेंगे इतने स्पर्धकों की एक गुणहानि होती है। ऐसी दूसरी गुणहानि, तीसरी गुणहानि, ऐसी बहुत सारी गुणहानियां पायी जायेंगी।

जो जघन्य में जघन्य जो योगस्थान है, मिनिमम पॉसिबल योग; जिसको हमने कहा था सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त का जघन्य उपपादयोग; वह सबसे मिनिममवाला योगस्थान; उससे अधिक योगशक्तिवाला कोई अन्य जीव है जिसमें थोड़ा अधिक योग है वह होगा दूसरा योगस्थान। जिसमें उससे अधिक योग है वह हो जायेगा तीसरा योगस्थान। उससे अधिक योग है वह चौथा योगस्थान। ऐसे सारे उपपादयोगस्थान उसमें परिणामयोगस्थान, एकांतानुवृद्धियोगस्थान सारे योगस्थानों के नंबर हम क्रम से लिखेंगे तो सभी योगस्थान कितने हैं ? तो वे भी असंख्यात हैं। कौनसावाला असंख्यात है ? तो कहते हैं जगश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण। इतने असंख्यात योगस्थान पाये जाते हैं अलग-अलग जीवों की अपेक्षा से।

श्रोता: स्पर्धक किसको कहा ? वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। यानी एक ही जीव में योगों की शक्ति बतानेवाले क्या हैं ? अविभागप्रतिच्छेद हैं। वह किसमें पाये जाते हैं ? आत्मप्रदेशों में पाये जाते हैं। सभी आत्मप्रदेशों में समान योग नहीं हो रहा है, यहां पर अलग-अलग है; आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में प्रत्येक प्रदेश का योग अलग-अलग है। जिसमें-जिसमें समानता है उसको हम वर्गणा कहेंगे और असंख्यात वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहेंगे। जैसे ठीक हमने कर्मों में स्पर्धक रचना देखी थी वहां भी फलदान शक्ति के अनुसार अनुभाग की अपेक्षा से स्पर्धक रचना देखी थी। यहां योगों में भी यानी आत्मप्रदेशों में भी ऐसी ही रचना बताते हैं उसीको योगस्थान कहने में आयेगा। जब योग बढ़ता है तो हम कहेंगे यह दूसरा योगस्थान है और कहीं अधिक योगवाला कोई वही जीव होगा या अन्य जीव होगा तो हम कहेंगे यह तीसरा योगस्थान है, चौथा योगस्थान है। ऐसे योगों के स्थान भी बहुत सारे हैं। कितने हैं ? तो वे भी असंख्यात हैं। अभी उसके सारे गणित हैं; उसकी जो कोई अलग-अलग बातें हैं उनको तो अभी हमें देखना नहीं है। उसमें कुछ महत्व के शब्द आते हैं उसका अर्थ देखकर हम आगे बढ़ेंगे। अभी तक की यह बात ख्याल में आयी ?

आत्मा के जो असंख्यात प्रदेश हैं; कितने असंख्यात हैं ? जितने लोकाकाश में

प्रदेश हैं उतने। उसको हम कहेंगे लोकप्रमाण असंख्यात। यह लोकप्रमाण असंख्यात और असंख्यात लोकप्रमाण क्या होता है; दोनों में क्या अंतर है पता है ? नहीं पता। क्या कहा ? लोकप्रमाण असंख्यात कहो या असंख्यात लोकप्रमाण कहो उसमें कुछ फर्क है कि नहीं है ? देखो, देखो, देखो हम लोक के बदले एक कटोरी लेते हैं और एक कटोरी में हजार चावल हैं। हमारी एक कटोरी ऐसी है कि उसमें हजार चावल आते हैं। तो हमने कहा एक कटोरी प्रमाण चावल ले लो। एक कटोरी में कितने चावल हैं ? *श्रोता: हजार।* हजार, तो एक कटोरी प्रमाण यानी हजार चावल लो। कटोरी प्रमाण सहस्र, उसका अर्थ क्या है ? कटोरी में जितने हजार आते हैं उसको कहेंगे कटोरी प्रमाण सहस्र और सहस्र कटोरी ? सहस्र कटोरी कहेंगे तो सहस्र गुणा सहस्र हो जायेंगे। ऐसा ही जब हम लोकप्रमाण असंख्यात कहते हैं तो लोक में जितने असंख्यात प्रदेश हैं उतनी संख्या होगी और जब असंख्यात लोक कहते हैं तो ऐसा एक लोक, दो लोक, तीन लोक, चार लोक ऐसे असंख्यात लोक में जितने प्रदेश होंगे उसकी संख्या आती है। एक कटोरी और सहस्र कटोरी कैसे जल्दी समझ में आता है। तो एक लोक और असंख्यात लोक का फर्क हो गया। असंख्यात लोकगुणा हो गया वह।

श्रोता: यह ज्यादा है ? असंख्यात लोक; एक लोक में तो असंख्यात आया और ऐसे असंख्यात। वह अलग है, हां यहां हम एक जीव में कितने प्रदेश होते हैं ? तो लोकाकाश में जितने होते हैं, तो उसको क्या कहेंगे ? लोकप्रमाण असंख्यात। *श्रोता: लोकप्रमाण असंख्यात।* लोकप्रमाण असंख्यात; एक लोक में जितने प्रदेश हैं उतने ही प्रत्येक जीव में आत्मा के प्रदेश हैं। हम देखते हैं न पूरे फैल जायें केवलीसमुद्घात में तो पूरे लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर केवली भगवान के आत्मा का एक-एक प्रदेश है। देखो हम केवली के पास नहीं जा सकते। परंतु ऐसा होता है, ॲट अ टाइम कभी-कभी चालीस केवली के जो केवलीसमुद्घात फ़ैलनेवाले भी और समेटनेवाले भी; तब केवली के प्रदेश तो यहां जरूर आते होंगे हमारे थ्रू ॲण्ड थ्रू चले जाते हैं क्योंकि जब वह केवलीसमुद्घात करते होंगे कोई अभी विदेहक्षेत्र से, तो कितना सुख होता होगा हमें ? कुछ नहीं, एक क्षेत्र में रहने से कुछ नहीं होता। उनके प्रदेश यहां आये तो क्या हुआ ? हां ? उतना थोड़ा सुख होना चाहिये था, कुछ सेन्सेशन होता होगा ? कुछ नहीं होता। एक ही क्षेत्र में, हम तो क्या है सब बाहर से कुछ न कुछ दूसरे से कुछ

मिलता है ऐसा समझते हैं। कैसा समझते हैं ? अरे ऐसा हमने सुना है, क्या ? वहां उस क्षेत्र में चले जाओ वहां कुछ व्हायब्रेशन आते हैं और वहां अपना ध्यान अच्छा हो जाता है। अरे वाह ! बाहर से आते हैं व्हायब्रेशन और इसको बहुत हेल्प कर देते हैं। यानी पर के कारण हमारा कुछ होता है यह निमित्ताधीन दृष्टि इस जीव की पड़ी है अनादि से और वैसे उपदेश भी देता है। वहां क्यों जाना उस क्षेत्र में ? वहां बहुत शांति है। यह शांति बाहर से नहीं आती है। क्या करें ? महिमा तो हमें पर की आती है।

अभी यहां जो हमने योगस्थान देखे थे तो कहते हैं यह जो योग है उपपादयोग, किसी जीव को उपपादयोग लगातार कितने समय तक हो सकता है ? कोई नहीं बोलेगा मैं पूछूंगी, किसको आता है इसका उत्तर ? उपपादयोग किसी जीव को लगातार कितने समय तक होगा ? कोई पीछे बतायेंगे ? हां, बोलो भाई। *श्रोता: एक समय।* एक समय क्योंकि वह होता ही है पहले समय में। वह एक समय और एकांतानुवृद्धि का योगस्थान लगातार उतना का उतना कितने समय तक होता है ? हां बोलो, फिर बोलो। *श्रोता: एक ही समय के लिये।* एक ही समय के लिये क्योंकि दूसरे समय में तो वह असंख्यातगुणा हो जाता है। यानी उपपादयोग भी उतना का उतना, उतना क्या वह एक ही समय के लिये रहता है और एकांतानुवृद्धियोगस्थान पहले समय में था उससे दूसरे समय तो असंख्यातगुणा हो जाता है। तो उसको नहीं कह सकते लगातार उतना का उतना है क्योंकि वह हर समय बढ़ रहा है। तो उपपादयोग हो या एकांतानुवृद्धियोग हो लगातार कितने समय तक रह सकता है ? तो एक ही समय तक। एक-एक समय करके वह अंतर्मुहूर्त तक रहता है उसकी बात नहीं है यहां पर। उतना का उतना रहना चाहिये। एकांतानुवृद्धि उतने का उतना कभी रहता ही नहीं; हर समय में अधिक-अधिक- अधिक होता है। दो बात हो गयी न।

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति॥ २४२॥

हम २४२ नंबर की गाथा में देखते हैं- यह जो तीनों योगस्थान हैं तो इसमें दूसरा योगस्थान नहीं हो और वही का वही योगस्थान निरंतर रहे। हमारी भाषा में उतना का उतना योग रहे ऐसे कितने काल तक हो सकता है ? तीनों योगों के बारे में कहेंगे उपपादयोग भी एक समय के लिये और एकांतानुवृद्धि भी एक समय के लिये क्योंकि

हम उतने के उतने की बात कर रहे हैं। अधिक होता है उसकी बात नहीं चल रही है।

यानी उपपादयोगस्थान और एकांतानुवृद्धियोगस्थान इनके प्रवर्तन का, प्रवर्तन यानी रहना, चालू रहना उसका काल जघन्य और उत्कृष्ट एक समय ही है। उपपाद तो होता ही है एक समय के लिये और एकांतवृद्धिवाला भी एक समय ही है क्योंकि दूसरे समय में उसकी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि उपपादयोगस्थान भव के प्रथम समय में ही होता है और एकांतानुवृद्धिरूप योगस्थान समय-समय यानी प्रतिसमय, हर समय वृद्धिरूप अन्य-अन्य होता है। उतना का उतना नहीं रहता है बढ़ता चला जाता है। वैसे का वैसा नहीं रहेगा इसलिये दोनों ही एक ही समय के लिये पाये जाते हैं और अन्य जो अभी कौनसा बचा ? *श्रोता: परिणामयोगस्थान।* परिणामयोगस्थान, तो यह जो परिणामयोगस्थान है वह कितने काल तक उतना का उतना रह सकता है ? क्योंकि हमने उसमें देखा कभी वृद्धि हो सकती है, कभी हानि हो सकती है और कभी उतना का उतना रहता है। तो वृद्धि-हानि में तो एक-एक समय से वृद्धि होती है उसकी बात नहीं है, हानि में भी नहीं गिनेंगे। तो उतना का उतना लगातार कितने समय तक उतना का उतना रह सकता है ? तो कहते हैं दो समय से लगाकर आठ समय तक ही होता है। कोई लगातार रहे तो दो समय तक या तीन समय या चार समय या पांच समय, या छह, सात या आठ समय तक रहता है, इससे अधिक उतना का उतना योग लगातार रह ही नहीं सकता। वह नियम से या तो हीन होगा या अधिक होगा परंतु उतना का उतना रहने का उत्कृष्ट काल आठ समय और उतना का उतना रहने का कम काल, मिनिमम काल, जघन्य काल दो समय।

भावार्थ में लिखते हैं एक परिणामयोगस्थान दो समय से लेकर आठ समय पर्यंत रह सकता है अधिक नहीं रह सकता। बाद में कोई अन्य योगस्थान होगा ही होगा। यह अधिक से अधिक आठ समयों की वहां रचना होती है, आठ समय। *श्रोता: आठ समय ? दो से आठ समय ?* दो से लेकर आठ समय अधिक से अधिक। टोटल की बात कहां हैं ? कोई दो समय रहेगा, कोई आठ समय रहेगा ऐसी बात चल रही है। कोई दो समय रहेगा, कोई तीन समय रहेगा, कोई चार समय रहेगा, कोई आठ समय रहेगा उसको सात समय रहता ऐसा नहीं कहेंगे। आठ समय तक वही का वही योग रह सकता है उसके बाद में वह नियम से बदलता है। यहां मूलगाथा में **जाव अट्ठोत्ति,**

यावदष्ट इति। आठ समयों तक लगातार वही का वही योग रह सकता है। *श्रीता: गाथा नंबर २४२ ?* २४२ नंबर की गाथा है।

अब यह जो एकेन्द्रियों के योग तो अलग हैं परंतु द्वीन्द्रियों के, देखो चौदह जीवसमासों में उपपादयोग के अलग नंबर लगायेंगे हम, फिर एकांतानुवृद्धि के अलग और यहां मात्र परिणामयोगस्थान की बात चलेगी। तो द्वीन्द्रिय का जघन्य योगस्थान फिर उसके जितने कोई पॉसिबिलिटिज हैं अलग-अलग भेद हैं। फिर त्रीन्द्रियों के, चतुरिन्द्रियों के ऐसे कहां तक ? संज्ञी पंचेन्द्रियों के उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान तक। यह जो निरंतर, निरंतर का अर्थ है बीच में कोई अंतर नहीं क्योंकि उपपादवाले योगस्थान अलग हैं, एकांतानुवृद्धिवाले अलग हैं इसलिये उनकी बात नहीं ली है। परंतु द्वीन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के कौनसे ? परिणामयोगस्थान, एक के बाद एक हम क्रम से लिखेंगे तो उसको कहेंगे निरंतर योगस्थान। निरंतर का अर्थ क्या है ? बीच में कोई गॅप नहीं, कोई अंतर नहीं है। तो यह जो यहां एक यवमध्य शब्द आता है उसको हमें बहुत डीटेल में नहीं जानना है परंतु इन शब्दों से हम कन्फ्यूज होते हैं। उसका कुछ अर्थ भासित नहीं होता है। तो वहां कहते हैं यवाकार रचना होती है। शायद आपने पुस्तकों में पढ़ा होगा कालयवमध्य रचना और जीवयवमध्य रचना। ऐसे दो शब्द बहुत बार आते हैं और उसका अर्थ लोगों को भासित नहीं होता है। वह क्या है उसकी बात देखते हैं। उसके बहुत डीटेल में नहीं जाते हुये हम कुछ ही बातें देखते हैं।

यव किसको कहते हैं ? जव जिसको कहते हैं - वह तो हमारे यहां नहीं, मेरे ख्याल से मारवाड़ में वहां वह धान होता है। यव, गेहूं जैसा होता है जव, बीच में मोटा होता है और दोनों बाजू में टेपरिंग होता है; उसको जव कहते हैं, उसीको यहां यव कहा है। तो यह यवाकार रचना होती है, यव नाम के अन्न के आकार की रचना होती है। यहां काल की अपेक्षा बात कर रहे हैं। कैसे काल की अपेक्षा ? जैसे आठ समय तक लगातार रहनेवाले जो योगस्थान हैं, कोई सात समय तक लगातार रहनेवाले हैं, कोई छह समय तक लगातार रहनेवाले हैं कोई इसतरह से अन्य-अन्य, दो समय तक लगातारवाले भी योगस्थान हैं। तो यहां यह बात लिखते हैं कि ये कितने समय तक योगस्थान उतने के उतने रह सकते हैं ? निरंतर आठ समयवाले हैं वह हम लिखेंगे। निरंतर सात समयवाले जो लगातार पाये जाते हैं उनको लिखेंगे। फिर लगातार छह

समय तक, लगातार पांच, चार, तीन, दो, ऐसे। तो यह कैसी रचना होगी ? तो जो लगातार आठ समय तक पाये जानेवाले जो स्थान ज्यादा रहते हैं वे मध्य में रखेंगे। इसके लगातार सात समयों तक पाये जानेवाले उसकी दोनों ओर रखेंगे। देखो, लगातार आठ समय पाये जानेवाले योगस्थान बीच में लिखेंगे। ऐसी उसमें रचना होती है। यव नाम के आकार अभी आपको नहीं दिखेगा ऊपर छोटा, बीच में वह मोटा है फिर नीचे कम इसको कहते है यवाकार रचना। तो इसमें क्या है बीच में जो हैं, आठ समय निरंतर प्रवर्तनेवाले योगस्थान हैं। तो योगस्थान टोटल कितने होते हैं उसकी वहां संख्या आती है। फिर लगातार सात समयवाले जो हैं; लगातार सात समयवाले हैं कुछ ऊपर अधिक योगवाले कुछ नीचे कम योगवाले लिखेंगे। लगातार छह समयवाले उन्हें भी दोनों ओर लिखेंगे। लगातार पांच समयवाले उन्हें भी दोनों ओर। फिर लगातार चार समयवाले उन्हें भी दोनों ओर। परंतु लगातार तीन समयवाले हैं वे ऊपर और लगातार दो समयवाले भी उसके ऊपर लिखेंगे।

इसका अर्थ है यह नीचे जो जघन्य योगस्थान- हमने कहां से शुरू किये थे ? द्वीन्द्रियों से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रियों के उत्कृष्ट योगस्थान तक की बात चली थी। तो जो चार समय तक लगातार योगस्थान जो रहते हैं वे द्वीन्द्रियों में भी पाये जायेंगे और कोई ऊपर पंचेन्द्रियों की तरफवाले वे भी कुछ लगातार चार समय तक पाये जायेंगे। पांचवाले भी ऊपर और नीचे का अर्थ क्या है ? नीचे के सारे जघन्य हैं और ऊपर सारे उत्कृष्ट हैं। तो नीचे जो चार समय लगातार पाये जाते हैं वे कोई जघन्य योगवाले भी स्थान हैं और कोई ऊपर की ओर के उत्कृष्ट की ओरवाले भी कुछ स्थान हैं। पांच समयवाले भी नीचे जघन्य की तरफ भी हैं और उत्कृष्ट की तरफ भी कुछ पांच समय लगातार रहते हैं। छह समयवाले और थोड़ा जघन्य से मध्यम की ओर आयेंगे यहां भी हैं और वे आठवाले के ऊपर भी, उत्कृष्ट की ओर भी कुछ हैं। फिर सातवाले भी दोनों ओर हैं और जो आठ समय लगातार पाये जाते हैं ऐसे मध्यम योगवाले कुछ हैं। फिर ऊपर हमने देखा न ! सात, छह, पांच, चारवाले, नीचे और ऊपर चार-चार तो थे परंतु लगातार तीन समयवाले और लगातार दो समयवाले वे उत्कृष्ट की ओर हैं और उत्कृष्ट योगस्थान ही लगातार इतने समय तक रह सकते हैं।

अभी इसमें हम कुछ नहीं समझे यह मैं समझ सकती हूं। परंतु इतना ही उसमें

लेना है कि द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जितने योगस्थान हैं उसमें कोई अगर लगातार योगस्थान रहे, उत्कृष्ट की ओर की बात है तो दो समय ही लगातार सर्वोत्कृष्ट योगस्थान रह सकता है। वह अधिक से अधिक दो समय तक ही लगातार रह सकता है। अपनी भाषा में बोलेंगे - संज्ञी पंचेन्द्रियों का सर्वोत्कृष्ट जो परिणामयोगस्थान है वह अधिक से अधिक कितने समय तक रह सकता है ? तो दो ही समय तक रह सकता है। फिर उसके नीचेवाले कोई योग हैं वे दो समय तक और उसके नीचे के कोई-कोई तीन समय तक भी रह सकते हैं। ख्याल में आती ही कुछ बात ? उसके नीचे आते हैं अब तो चार समय तक रहनेवाले स्थान हैं, लेकिन चार समय तक उत्कृष्ट की ओरवाले हैं, वैसे जघन्य की ओरवाले, जघन्यवाले भी चार समय तक रह सकते हैं। तो यह जो बीच में आठ समय और दोनों तरफ कम होते चले गये। इसको हम कहते हैं यवाकार रचना, कालयवमध्य रचना। बीच में लंबा काल है यानी मध्यम योगस्थानों में आठ समय तक रहने की यह क्षमता है, यह पात्रता है और जो जघन्यवाले हैं और उत्कृष्टवाले हैं दोनों ही ओर, उनका लगातार रहने का काल कम होते चला जाता है। इसको कहेंगे यवमध्य रचना और यह है कालयवमध्य रचना।

एक ही योग लगातार कितने समय तक रह सकता है ? उसकी यहां बात हो रही है। कहते हैं यह कहने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि जहां, अभी अपना यह विषय नहीं है परंतु जहां जीव अधिक से अधिक कर्म परमाणुओं का ग्रहण करता है जिसको हम गुणित कर्मांशिक कहते हैं यानी उसके पास कर्म परमाणुओं का प्रमाण अधिक से अधिक कहा हैं क्योंकि उसने उत्कृष्ट योग से सारा ग्रहण किया। तो उत्कृष्ट योग कितने समय तक लगातार चला तो हम कहेंगे दो ही समय तक। उसकी और भी बहुतसी कंडिशन्स हैं, जैसे जो सातवें नरक का नारकी है वहां से निकला, बहुत संक्लेश परिणाम किया वगैरह-वगैरह तो उसमें यह बात आती है कि जो यवमध्य के ये दो समय हैं ऊपर वहां वह निरंतर दो समय तक रह सकता है ऐसी बात आती है। अन्य जो जीवयवमध्य रचना होती है - वह किसको कहते हैं ? वह कहकर हम आगे बढेंगे। अपना आगे का विषय चलेगा। अभी हम यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२८. प्रकृति - उदय और उदयव्युच्छित्ति

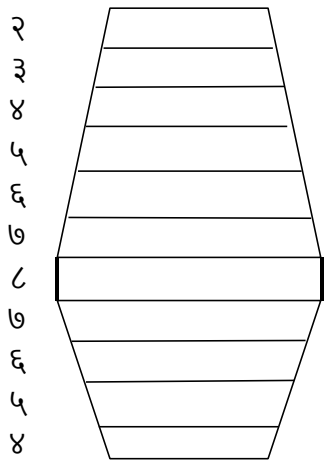
सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी हुयी है, उसके आधार से हम यहां कर्म की कुछ प्राथमिक सामान्य जानकारी ले रहे हैं। उसमें हमारी बंध की बात पूरी होती आ गयी है। हमने बंध के चार भेद देखे हैं - प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। उसका भी हमने विस्तार से यहां स्वरूप देखा। हमने योग का भी विस्तार से स्वरूप देखा है और उसमें दो बातें आयी थी, उसकी चर्चा करते हुये फिर आगे बढ़ेंगे।

श्रोता: आत्माना आठ रुचक प्रदेशो (यानी वे सेंटर के बीचवाले जो आठ प्रदेश हैं) पोताना स्थान पर स्थिर रहीने घूमे छे अने बाकीना प्रदेशो आखा शरीरप्रमाण फर्या करे छे, आ क्रियानो योगस्थान साथे कांई संबंध छे ? ये जो घूमते हैं कहो या उनका परिस्पंदन होता है कहो, उसमें हर एक प्रदेश का अपना-अपना योग अलग-अलग है और उसीकी यहां हमने योगस्थान में क्या होता है- वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक उसकी रचना समझायी थी। *श्रोता: नाना जीवों की अपेक्षा कुल योगस्थान जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तो एक जीव की अपेक्षा कितने योगस्थान बनेंगे ? क्या ऐसा गणित भी आया है ?* एक जीव के एक समय में कोई एक योगस्थान होगा। उसको योगस्थान कहते हैं न कि वह जीव के सभी प्रदेशों में कितना-कितना योग पाया जाता है। तो उसे अभी वर्तमान में कोई विशिष्ट योग है, तो दूसरे समय में दूसरा कोई योग हो सकता है। हमने देखा अभी, परिणाम योगस्थान लगातार दो समय तक रहे या तीन या चार या अधिक से अधिक आठ समय तक; फिर उसका योगस्थान तो बदलेगा ही बदलेगा। एक-एक समय में अलग-अलग हो सकता है, जिसको हम वृद्धिरूपस्थान कहेंगे। एक-एक समय में उसकी योगशक्ति घट रही है तो उसको हम जघन्य की ओर बढ़ते देखेंगे यानी उसका योगस्थान कम हो रहा है, वह कम योगवाला स्थान हो रहा है। इसतरह से उसमें बदलते हुये योगस्थान पाये जायेंगे, परंतु एक जीव को एक समय में कोई एक ही योगस्थान पाया जाता है। ऐसे, अलग-अलग जीवों के योगस्थानों में कितनी पॉसिबिलिटिज् हैं ? तो कहते हैं जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण। यह जगत् श्रेणी क्या होती है ? यह तो असंख्यात का एक माप है। जगत् श्रेणी कहते हैं ७

राजू को। हमने एक बार देखा था एक अंगुल में कितने प्रदेश होते हैं, याद है न !

अंगुल कितना है ? तो पल्य में जितने समय हैं उस संख्या के वर्ग का वर्ग, वर्ग का वर्ग करो असंख्यात बार करो तब जाकर अंगुल में प्रदेशों की संख्या आती है। अभी अंगुल इतना है। और यहां जगत् श्रेणी का अर्थ क्या है ? ७ राजू यानी लोकाकाश जो ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा है, उसको एकदम सभी जगह से ऐसे दबाओ, तो क्या होगा ? चौकोर- समान चौकोर हो जायेगा। कितने का ? ७ राजू लंबा x ७ राजू चौड़ा x ७ राजू ऊंचा। यह जो ७ राजू है उसको कहते हैं जगत् श्रेणी। श्रेणी यानी सिंगल लाइन; प्रतर यानी चौकोर; उसका क्षेत्रफल उसको कहेंगे प्रतर। जैसे हमने देखा न, यह रूम कितनी लंबी है ? तो हम कहेंगे वह ४० फीट है और चौड़ाई में ? ऐसी भी ४० फीट है। तो श्रेणी कितनी हुयी ? ४० फीट और प्रतरक्षेत्र यानी क्षेत्रफल कितना हुआ ? ४० फीट × ४० फीट = १६०० स्क्वेअर फीट हो जायेगा। घन करना है तो ? फिर वह समझो ऊंचाई भी ४० फीट है तो और ४० फीट से गुणा करो। ऐसे ही, जगत् श्रेणी का अर्थ होता है ७ राजू। जगत् प्रतर का अर्थ होता है ७ राजू × ७ राजू कितना होता है ? *श्रोता:* ४९/४९ स्क्वेअर राजू। ऐसा नहीं कहते कि हमारा घर १००० फीट का है, १००० चौरस फीट का कहेंगे। ऐसे ही, क्योंकि यहां प्रतर राजू कहते हैं, स्क्वेअर राजू यानी प्रतर राजू। लोकाकाश पूरा कितना है ? जगत् घन। घन यानी ७ राजू × ७ राजू × ७ राजू = ३४३ घनराजू। घनराजू कहना आवश्यक है। खाली ३४३ राजू कहेंगे तो सिंगल लाइन हो जायेगी। हमें घन बताना है तो ३४३ घनराजू। तो यहां जब जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण कह रहे हैं तो हमें यहां असंख्यात का प्रमाण बताना है वह कितना है ? तो जगत् श्रेणी यानी ७ राजू में प्रदेश जितने होंगे उसके असंख्यातवें भागप्रमाणवाला जो कोई असंख्यात है उतने अलग-अलग जीवों में अलग-अलग योगस्थान हैं। यह उसका अर्थ होता है, यह तो बात हो गयी।

यह यवमध्य रचना तो जल्दी समझ में आवे ऐसी तो बात नहीं है। फिर भी जब शास्त्र में ऐसे नाम आते हैं तो यवमध्य का अर्थ होता है यवाकार रचना। यानी क्या ? मध्य में अधिक हैं, नीचे और ऊपर की ओर कम हैं। नीचे और ऊपर का अर्थ क्या है ? देखो, नीचे का अर्थ है नीचे से लगाकर ऊपर तक, ये जो कोई योगों के अलग-अलग स्थान हैं, जघन्य योग से उत्कृष्ट योग तक। जघन्य योग किस अपेक्षा से कहना ? जघन्य



योग जो है, द्वीन्द्रियों के जो जघन्य योग हैं उसकी अपेक्षा से और बढ़ते हुये जो संज्ञी पंचेन्द्रियों के उत्कृष्ट योग तक होंगे उसकी हम यहां बात करेंगे। देखो, यह द्वीन्द्रियों के जघन्य योग नीचे की ओर हैं और पंचेन्द्रिय के उत्कृष्ट योग ऊपर हैं। यानी यह जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक। जघन्य योगवाला जो लगातार काल है वह कम है, मध्यम योगवाला लगातार काल ज्यादा है और फिर वह ऊपर की ओर कम हो जाता है। बीचवाले योगस्थान आठ समयोंवाले हैं वे मध्यम प्रकार के योग हैं, जो लगातार आठ समयों तक रह सकते हैं। फिर लगातार सात समयवाले योगस्थान ८वाले स्थानों के दोनों ओर लगायेंगे। यानी जो बीचवाला मोटा है वे लगातार ८ समयवाले योगस्थान हैं, लगातार ७ समयवाले दोनों ओर योगस्थान हैं, लगातार ६ समयवाले दोनों ओर हैं, लगातार ५ समयवाले दोनों ओर हैं, लगातार ४ समयवाले भी दोनों ओर हैं और ऊपर ३ समयवाले और २ समयवाले योगस्थान हैं। इसतरह से यह कालयवमध्य रचना हुयी।

अब ऐसी ही जीवयवमध्य रचना होती है। जघन्य योगवाले जीव कितने हैं ? तो कहते थोड़े हैं; फिर उससे थोड़े अधिक योगवाले जीव कितने हैं ? और अधिक हैं; उनसे और अधिक योगवाले जीव कितने हैं ? और अधिक हैं; उनसे और अधिक योगवाले- मध्यम योगवाले कितने हैं ? तो मॅक्झिमम हैं। फिर उत्कृष्ट योग की तरफ जायेंगे, उत्कृष्ट योगवाले जीव कितने हैं ? कम हो रहे हैं; उनसे और ऊपर की ओर ? कम हैं और सबसे उत्कृष्ट ? बहुत कम हैं और सर्वोत्कृष्ट योगवाले जीव ? सबसे कम हैं। इसको कहेंगे जीवयवमध्य रचना। एक हुयी कालयवमध्य रचना, लगातार वही का वही योग ८ समय तक रहने के जो योगस्थान हैं उसकी बात है। यहां जीवयवमध्य रचना में जघन्य योगवाले जीव कितने हैं ? तो कम हैं; मध्यम योगवाले कितने हैं ? तो ज्यादा हैं; ऊपर फिर अधिक योगवाले कितने हैं ? फिर कम हो रहे हैं; सर्वोत्कृष्ट योग कितने जीवों में पाये जायेंगे ? बहुत कम जीवों में। इसको कहेंगे जीवों की अपेक्षा

यवमध्य रचना। ये दो प्रकार पाये जाते हैं।

अपना यहां पर प्रदेशबंध और यह सारा बंध का प्रकरण समाप्त होता है। अब उदय की बात करेंगे क्योंकि बंध कर-करके थक गये अभी। आप कहेंगे उदय नहीं होगा तो बंध का क्या फायदा ? थोड़ी हम उदय की भी बात करेंगे तो कुछ हमें फायदा भी हो जायेगा। यह जो उदय की बात होती है, यानी उदय किसको कहना ? यह जो बंधे हुये परमाणु हैं, वे अपनी-अपनी स्थिति पूरी हो जाती है तब खिर जाते हैं। जब खिर जाते हैं तब उनका जीव के साथ कुछ निमित्त–नैमित्तिक संबंध बनता है, उसको कहेंगे अभी इसका उदय हो रहा है। २६१ नंबर गाथा से यहां उदय का प्रकरण शुरू होता है। प्रकरण का नाम है बंध-उदय और सत्त्व अधिकार। अभी तक हमने मात्र बंध की चर्चा की, अब उदय की चलेगी। हां, तो यहां २६१ नंबर की गाथा को देखते हैं।

आहरं तु पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ॥ २६१॥

अभी **चार प्रकार का बंध का निरूपण करने के पश्चात् गुणस्थानों में उदय का नियम बताते हैं।** विशिष्ट प्रकृतियों का उदय विशिष्ट गुणस्थानों में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता यह बात यहां बता रहे हैं। कुछ प्रकृतियां बतायेंगे और उनका उदय कहां होता है उसकी बात करेंगे। कहते हैं, **आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग का उदय प्रमत्त गुणस्थान में ही होता है।** अभी थोड़ी बंध की बात याद करते हैं। आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग का बंध कहां हो रहा था ? *श्रोता: सातवें और आठवें गुणस्थानों में।* सातवें और आठवें में। तो हम आपको पूछेंगे ऐसी कौनसी प्रकृति है जो बाद में बंधती है और पहले उदय में आती है ? *श्रोता: आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग।* बंधती है सातवें और आठवें गुणस्थानों में और उदय में आती है छठे गुणस्थान में। आप कहेंगे बंधने के पहले उदय आती है ? ऐसा हमने कहां कहा ? परंतु मुनिराज छठे-सातवें, छठे-सातवें गुणस्थान में हैं; जब सातवें में चले गये हैं तब सातवें में उन प्रकृतियों का बंध होता है; एक बार बंधकर पड़ी हैं अंदर सत्ता में और जब कभी छठे गुणस्थान में हैं और वह आहारकशरीर की रचना होती है तब उस काल में उनका उदय पाया जाता है। उदय कब होता है ? तो छठे गुणस्थान में। परंतु वह बंधने का कार्य कब हुआ था ? जब वे सातवें में थे या उपशमश्रेणी चढ़ते समय

आठवें में भी बंधकर के नीचे आये थे। परंतु उदय कब होगा ? तो छठे में ही होगा।

आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का उदय होता है उसका अर्थ क्या है ? जो हमने देखा न मुनिराज; आहारकशरीर की रचना होती है उनकी; कैसी होती है ? मस्तक से एक हाथ प्रमाण, सफेद, स्वच्छ, सप्तधातु रहित पुतला उत्पन्न होता है और उनके जो कोई प्रश्न है, जैसे करणानुयोग संबंधी कोई प्रश्न है, कोई तत्त्वों में शंका यानी उनके सात तत्त्वों में कोई शंका नहीं, हां, वैसी शंका नहीं पायी जाती। वैसी हो तो उनके सम्यक्त्व ही नहीं रहेगा। सात तत्त्वों की प्रतीति में उनके कोई संशय नहीं है। तो यहां तत्त्वों में शंका होने पर का अर्थ होता है ऐसी कोई जो दो धारायें चली आ रही हैं, कोई शंका है कि इसमें यह ठीक है कि वह ठीक है, या अन्य भी कोई प्रश्न हो सकता है और उसके कोई उपदेशक उनके पास नहीं मिले, तो वहां हो सकता है वे आहारकशरीर द्वारा कहीं समवशरण तक जाकर आते हैं। आत्मप्रदेश मूलशरीर में भी हैं और उस नये आहारकशरीर में भी हैं कंटिन्युएशन में, उसके दो टुकड़े कभी नहीं होते। इसको कहते हैं समुद्घात होना, आत्मप्रदेश उस आहारकशरीर के साथ फैलते हैं और फिर वापस मूलशरीर में आते हैं। जैसे वैक्रियिकशरीरवाले भी हैं। वह सौधर्म इन्द्र तो वहीं बैठेंगे ऊपर स्वर्गों में, सिंहासन पर और यहां क्या होता है ? वे आते हैं, नीचे आते हैं का अर्थ क्या है ? वह विक्रिया है, वैक्रियिकशरीर के द्वारा नीचे आते हैं। उनका शरीर ही वैक्रियिक है, परंतु देव पृथक् विक्रिया करते हैं और अन्य शरीर बनाते हैं। फिर भी उनके जो आत्मप्रदेश हैं वे सारे उन दोनों ही शरीरों में कंटिन्युअस हैं। तो यहां यही बात देख रहे थे हम, आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग, इन प्रकृतियों का उदय छठे गुणस्थान में होता है। *श्रोता: सातवें गुणस्थान में ?* सातवें गुणस्थान में तो बंध है क्योंकि मुनिराज आहारकशरीर द्वारा जाकर लौट आते हैं, छठे गुणस्थान के अंदर-अंदर यह कार्य होता है। सातवां गुणस्थान प्राप्त होने के पहले-पहले वे मूलशरीर में आ जाते हैं। ऐसा ही इसका स्वरूप है।

तीर्थंकर प्रकृति का उदय कब होता है ? *श्रोता: तेरहवें में और चौदहवें में।* तेरहवें में और चौदहवें में। बंधती कब है ? *श्रोता: चौथे से लेकर आठवें तक।* चौथे से लेकर आठवें तक बंधी है और अंदर सत्ता में पड़ी है, परंतु उदय होगा जब तेरहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो जायेगी। उसी समय उसका उदय भी चालू हो जाता है। अब

जो मिश्रमोहनीय, दूसरी भाषा में सम्यग्मिथ्यात्व नाम का जो कर्म है वह कैसे तैयार हुआ था ? बंधा तो नहीं था ? जब सबसे पहले सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी थी तो मिथ्यात्व कर्म जो है उसीका अनुभाग घटकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति हुयी थी; और भी अनुभाग घटकर सम्यक् प्रकृति की विद्यमानता हुयी थी। दो प्रकृतियां तैयार हुयी थी। मिथ्यात्व में से ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति बनती है। अब ऐसा जीव सम्यक्त्व से गिरकर तीसरे गुणस्थान में जब आता है तो उसके सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय पाया जाता है। इस प्रकृति का उदय मात्र यहीं पर पाया जाता है, अन्यत्र नहीं। सत्ता में तो है, उसका उदय है उसका अर्थ क्या है ? अभी तीसरा गुणस्थान चल रहा है। कौनसे जीव को हो सकता है ? या तो ऊपर के गुणस्थानों से गिरकर तीसरे गुणस्थान में आया है या जो सादि मिथ्यादृष्टि है, पहले गुणस्थान में है, उसके इनकी सत्ता पायी जाती है और पहले गुणस्थान से वह तीसरे गुणस्थान में आया है। उसके परिणाम भी वैसे उस जाति के होते हैं और उस प्रकृति का भी उदय पाया जाता है। परंतु निमित्त की अपेक्षा कथन करेंगे तो हम कहेंगे सम्यग्मिथ्यात्व का उदय आया तो जीव तीसरे गुणस्थान में चला गया। यह कहने की पद्धति है। परंतु जीव के वहां परिणाम वैसे बिगड़े हुये पाये जाते हैं, तभी उसका उदय पाया जाता है।

वहां तीनों प्रकृतियां हैं न, मिथ्यात्व प्रकृति भी पड़ी है वहां पर, सम्यग्मिथ्यात्व भी पड़ी है, सम्यक् प्रकृति भी है तो तीनों में से उदय किसका होगा ? जैसे जीव के परिणाम होंगे वैसा होगा। मिथ्यात्वरूप परिणमित होता है तो मिथ्यात्व का उदय चल रहा है, स्वयं सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणमित हो रहा है तो सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होता है और उसका सम्यक्त्व बना रहें तो सम्यक् प्रकृति का उदय चल रहा है। यानी ऐसा नहीं है कि उसका उदय आया और जीव को गिरना पड़ा- ऐसा बिलकुल नहीं है। तो हमने अभी तक आहारक की बात देखी, तीर्थंकर प्रकृति देखी, सम्यग्मिथ्यात्व का भी उदय देखा। *श्रोता: जीव का परिणाम निमित्त और कर्म का उदय नैमित्तिक ऐसा ले सकते हैं ?* हां, वहां पर वैसा बिलकुल ले सकते हैं। पुराने कर्म का उदय है, उसमें भी व्हेरिएशन्स होते हैं क्योंकि तीनों हैं वहां पर; तीनों ही कर्म वहां पड़े हैं। हम उदय को निमित्त कहते हैं और जीव के परिणामों को नैमित्तिक कहते हैं, परंतु ॲट अ टाइम दोनों बातें हो रही हैं, एक साथ, एक समय में दोनों बातें हो रही हैं। अगर उसके

कारण यहां होता है ऐसा हम मानेंगे तो-तो गड़बड़ हो जायेगी। उसको निमित्त कहते भी हैं, कर्म के उदय को निमित्त कहते हैं, परंतु वह जीव का अपना स्वयं का परिणाम अपने कारण होता है। कर्म का उदय आया इसलिये परिणाम हुआ ऐसा नहीं है।

जीव जिसरूप से परिणमित हो रहा है, उसरूप से उस कर्म का उदय आ रहा है। क्योंकि, यहां जब जो वेदक सम्यग्दृष्टि है कहो, वेदक यानी क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि, वहां क्या होता है ? ये तीन प्रकृतियां है न, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। अब यहां सम्यक् प्रकृति का वर्तमान समय में उदय चल रहा है और ये दो मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां एक समय ऊपर पड़ी हैं। जिस समय जीव के परिणाम पलट जायेंगे तो क्या होगा ? अभी सम्यक् प्रकृति का उदय मिट जायेगा और बीचवाले वह मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्व का उदय शुरू होगा; यह नीचे आ गयी इसका उदय चालू हो गया। तो जब जीव का परिणाम होता है, उसी समय वह उदय भी होता है- ॲट अ टाइम दोनों कार्य होते हैं। आप दर्पण के सामने पहले जाते हो कि वहां पहले प्रतिबिंब आता है ? *श्रोता: दोनों एक समय होते हैं।* दोनों बातें एक समय में होती हैं। तो कौन किसको करता है ? ऐसा ही है वहां पर भी। दोनों ही कार्य एक साथ पाये जाते हैं, वहां उसका निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहने में आता है और हमें ऐसा लगता है कि उसके कारण यह हुआ, इसके कारण वह हुआ। कोई भी किसी अन्य के कारण होता ही नहीं है, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, उसकी प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है। तो फिर इतना सारा कर्म को जानने का क्यों हमें बोझा दे रहे हो ? यहां तो ज्ञान कराया जाता है और ज्ञान को तो सही तभी कहेंगे जब जो जैसा है उसको वैसा जानेंगे। ज्ञान का कार्य ही है जो है उसको जानता है। यदि है और ज्ञान उसका इनकार करे तो ज्ञान खोटा हो जायेगा। यहां भी जो यह सारी कर्म थिअरी वगैरह जो है वह कैसे-कैसे, क्या-क्या बातें होती हैं इसका वहां ज्ञान कराया जाता है। यह हमने देख ली सम्यग्मिथ्यात्व की बात।

सम्यक् प्रकृति का उदय कहां-कहां पाया जाता है ? सम्यक् प्रकृति किसे कहते हैं ? हमने देखा, दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं; एक है मिथ्यात्व, एक है सम्यग्मिथ्यात्व, एक है सम्यक् प्रकृति। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सबसे पहले जब सम्यक्त्व होता है, जिसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा उपशम सम्यक्त्व कहते हैं, उस काल में क्या होता है ? मिथ्यात्व प्रकृति में से ये दो और प्रकृतियां तैयार होती हैं।

जब तक उपशम सम्यक्त्व है तब तक तीनों में से किसीका भी उदय नहीं होता। अब कोई जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में से चौथे गुणस्थान में आया। औपशमिक सम्यक्त्व का काल एक अंतर्मुहूर्त है, उसके पश्चात् उसका सम्यक्त्व बना रहे तो क्या होगा ? औपशमिक सम्यक्त्व में से वह वेदक यानी क्षयोपशम सम्यक्त्वी हो जाता है। यानी क्या होता है ? सम्यक् प्रकृति का उदय शुरू होता है और उसका सम्यक्त्व बना रहता है। ऐसे कहां-कहां होता है ? चौथा गुणस्थान, पांचवां गुणस्थान, छठा गुणस्थान और सातवां गुणस्थान। इन चार गुणस्थानों में सम्यक् प्रकृति का उदय पाया जाता है। उसीको कहेंगे वेदक सम्यग्दृष्टि या क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि। वेदक क्यों ? क्योंकि सम्यक् प्रकृति का वेदन कर रहा है, उदय हो रहा है, इसलिये उसको कहते हैं वेदक सम्यग्दृष्टि।

श्रोता: सातवें गुणस्थान में वापस आने के बाद मुनि के आहारकशरीर का क्या होता है ? अरे वह तो विलीन हो जाता है, उसके परमाणु बिखर जाते हैं उसका क्या होता है ? कुछ नहीं होता। आनुपूर्वी का उदय; आनुपूर्वी किसको कहते हैं याद है? जैसे गति नामकर्म है, वैसे गत्यानुपूर्वी नामकर्म होता है। गत्यानुपूर्वी का उदय कब होता है ? विग्रहगति में होता है। हमने देखा था न, मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उदय विग्रहगति में जिसके मनुष्यगति का उदय चल रहा है उसके होता है। कोई तिर्यंच मर गया, अब मनुष्य में आया यानी मनुष्यायु चालू हो गयी उसकी, मनुष्यगति का उदय भी चालू हो गया और विग्रहगति से जा रहा है। विग्रहगति का अर्थ क्या है ? मोड़वाली गति। मोड़वाली क्यों ? क्योंकि बिना मोड लिये उसी समय वह पहुंच जाता है तो उसके गत्यानुपूर्वी का उदय होता ही नहीं। क्यों ? डायरेक्ट संस्थान नामकर्म का उदय शुरू हो जाता है उसका। यह गत्यानुपूर्वी का कार्य क्या है ? जब विग्रहगति में है, अभी संस्थान नामकर्म का उदय तब ही होता है जब वहां शरीर ग्रहण का कार्य शुरू होता है। परमाणुओं का ग्रहण शुरू होता है, तब ही उसका संस्थान नामकर्म का उदय चालू हो जाता है। संस्थान यानी आकार, आकार में जो निमित्त है उसको कहेंगे संस्थान नामकर्म। हमने देखे थे न उसके प्रकार ! समचतुरस्रसंस्थान वगैरह-वगैरह। तो उसका उदय कब होता है ? जब शरीर के परमाणुओं का ग्रहण शुरू होता है। जो सीधे एक समय में चला जाता है, उसको उसी समय में शरीर का ग्रहण भी शुरू होता है तो बीच

में गत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होता। परंतु जो जीव एक, दो या तीन मोड़ लेता है तो बीच में उसके गत्यानुपूर्वी का उदय होता है। जिस गति का उदय चल रहा है उसी गत्यानुपूर्वी का उदय होता है। परंतु उस समय आकार कौनसा रहता है आत्मप्रदेशों का ? पूर्व जो गति छोड़कर आया है वह मान लो घोड़ा था, कुत्ता था, आदमी था वहां, उसका आकार कायम रहता है तो उसको कहेंगे गत्यानुपूर्वी का उदय।

मेरा प्रश्न है यह गत्यानुपूर्वी का उदय कौन-कौनसे गुणस्थानों में हो सकता है ? पीछे कोई ट्राय करेंगे ? हां, जोर से, *श्रोता: पहला, दूसरा, चौथा।* हां पहला, दूसरा और चौथा। क्यों ? क्योंकि एक भव से मरकर अन्यत्र जो जीव जाता है, तीसरे गुणस्थान में किसी का मरण ही नहीं होता; मरता ही नहीं है तो सवाल ही नहीं है। पहले गुणस्थानवाला मरकर उसी गुणस्थान में अन्यत्र जाता है, दूसरे गुणस्थानवाला भी जाता है, तीसरेवाला मरता ही नहीं है, चौथेवाला भी मरकर अन्यत्र जाता है। तो इन तीन ही गुणस्थान में होगा। पांचवेंवाला मरेगा तो भी चौथे गुणस्थान में आयेगा। ऊपर के किसी भी गुणस्थानों में मरेगा तो भी चौथा गुणस्थान हो जायेगा। इसलिये विग्रहगति में कौन-कौनसे गुणस्थान हो सकते हैं ? पहला, दूसरा और चौथा। यहां क्या कह रहे हैं ? **आनुपूर्वी का उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत में है**, इसका अर्थ ख्याल में आता है ? आनुपूर्वी का उदय विग्रहगति में ही पाया जाता है यानी मरकर अन्यत्र जानेवाले जीवों की बात है। वहां गुणस्थान कौन-कौनसे हो सकते हैं ? पहला, दूसरा और चौथा। हम जब पढ़ रहे हैं उसका अर्थ क्या है ? उसको ख्याल में लेना है। ये बातें याद करने की, रटने की तो हैं ही नहीं। उसका कारण यह है कि उनको हम सोचकर उनका विचार करेंगे तो ये ख्याल में आये ऐसी बातें हैं क्योंकि इतनी सभी बातें रटने से कुछ याद नहीं रहती हैं, ये तो कॉमनसेन्स की बातें हैं। करणानुयोग यानी कॉमनसेन्स ही तो है बहोत सारा। हां, तो थोड़ा हम सोचेंगे तो उसके उत्तर जरूर हमें प्राप्त होते हैं, स्वयं उसका हमें सोल्युशन मिल सकता है। अब यहां आगे आनुपूर्वी के उदय का और विशेष वर्णन करते हैं।

णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्सणिरयाणू।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरिमोत्ति णायव्वो॥ २६२॥

हमें एक रूल मालूम है कि सासादन गुणस्थानवाला मरकर नरक में नहीं

जाता। मालूम है ? अगर नहीं मालूम हो तो सुनना अभी। दूसरे गुणस्थान में मरण तो होता है, परंतु वह मरकर नरक में नहीं जाता। इसलिये हम क्या कहेंगे ? सासादन गुणस्थान में नारकानुपूर्वी का उदय नहीं है; देवानुपूर्वी का हो सकता है, मनुष्यानुपूर्वी का हो सकता है, तिर्यंचानुपूर्वी का हो सकता है, क्योंकि सासादनवाला जीव मरकर, सासादन के साथ इन तीन गतियों में जा सकता है, नरक में नहीं जा सकता। मेरा प्रश्न है, नारकी जीव सासादन में मरकर यहां मनुष्य में या तिर्यंच में आ सकता है कि नहीं आ सकता है ? *श्रोता: आ सकता है।* आ सकता है न, छठे नरक तक का जीव सासादन गुणस्थान में मरकर यहां आ सकता है। सासादन के साथ वहां जाने के लिये मनाई है, वह नारकी सासादन में मरकर यहां उत्पन्न हो सकता है। मनुष्य में आयेगा या तिर्यंच में आयेगा वह तो हो सकता है। सातवें नरकवाला तो सासादन में मरता ही नहीं, वह नियम से मिथ्यात्व में ही मरता है। सातवें नरकवाला जीव मिथ्यात्व में ही आयु का बंध करता है और मिथ्यात्व में ही मरता है भले वह अंतर्मुहूर्त कम ३३ सागर तक सम्यग्दृष्टि रहा हो तो भी। ऐसा क्यों ? तो ऐसा ही वस्तुस्वरूप है और आपके क्यों का जवाब देने के लिये कोई वहां बाध्य नहीं है। जो होता है उसका कथन होता है।

करणानुयोग को कहते हैं अहेतुवाद आगम। अहेतुवाद आगम इसको हेतु यानी कोई कारण नहीं, जो है, जो फॅक्टस् हैं उसको बताया जाता है। मेरु पर्वत कितनी ऊंचाईवाला है ? *श्रोता: एक लाख योजन।* एक लाख है कि एक लाख चालीस योजन ? *श्रोता: एक लाख चालीस योजन।* क्यों ? बस है, उसमें क्यों क्या लगायेंगे ? जो है उसको बतायेंगे। जम्बूद्वीप गोल ही क्यों है, चौकोर क्यों नहीं है ? जो है उसका कथन होता है इसलिये इसको कहते हैं अहेतुवाद आगम। इसमें क्यों मत लगाना; परंतु सच्चे देव वीतरागी सर्वज्ञ ही क्यों होते हैं ? उसमें क्यों जरूर लगाना। मुनि सच्चे हैं कि नहीं इसका निर्णय करना, क्यों करना ? वह जरूर करना, उनकी परीक्षा करना वह जरूरी है वहां। यह तो श्रावक का प्रथम कर्तव्य है। शास्त्र का बिलकुल निर्णय करके यह सच्चा है कि नहीं उसको ग्रहण करना और बीच में कुछ मिलावट हो तो उसकी भी परीक्षा करना कि यह सत्य हो सकता है कि नहीं हो सकता है। यह मूलधारा से चली आ रही बात है कि बीच में कोई मिलावट की गयी है ? क्योंकि रागी-द्वेषी जीवों के द्वारा संस्कृत-प्राकृत में भी मिलावट हो सकती है। ऐसा जरूरी नहीं है कि सब कुछ

जो लिखा हुआ है वह सच्चा है। वह सच्चा है कि नहीं यह जानकारी और इसका निर्णय हमें करना चाहिये। क्यों, इतना तो श्रावक होकर हमें करना ही पड़ेगा। यहां तो कहते हैं, सासादन में नारकानुपूर्वी का उदय नहीं होता। इसका अर्थ ख्याल में आया ?

अभी इस उदय के प्रकरण में व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय को समझेंगे; बंध में हमने क्या देखा था ? बंध की व्युच्छित्ति, बंध कौन-कौनसे प्रकृतियों का होता है और फिर अबंध प्रकृतियां कौनसी होती हैं ? यह देखा था न हमने पहले ? अभी उदय में भी ऐसा ही है कि कौनसे गुणस्थान में कौनसा उदय है ? वह उदय उसी गुणस्थान तक है, ऊपर नहीं है तो हम उसको कहेंगे उदय की व्युच्छित्ति। जैसे हमने बंध की व्युच्छित्ति डीटेल में और बहुत बार देखी थी- वैसे ही यहां पर अभी उदय की व्युच्छित्ति की बात चलेगी। यानी पहले गुणस्थान में ही जिन प्रकृतियों का उदय है, दूसरे, तीसरे आदि ऊपर कहीं भी नहीं है उसको कहेंगे पहले गुणस्थान में उनके उदय की व्युच्छित्ति हुयी। परंतु यहां एक बात ख्याल में रखना कि जैसे आहारक का उदय छठे गुणस्थान में है परंतु पहले से पांचवें गुणस्थान तक उसका उदय ही नहीं है, उसको उदय की व्युच्छित्ति नहीं कहेंगे, उसको अनुदय में रखेंगे। छठे में तो उदय है और ऊपर कहीं नहीं है तो छठे में उदय की व्युच्छित्ति कहेंगे। पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें गुणस्थान में उदय नहीं है परंतु ऊपर जाकर छठे गुणस्थान में है तो उसको पहले, दूसरे आदि गुणस्थानों में उदय की व्युच्छित्ति नहीं कहेंगे, अनुदय में डालेंगे उसको।

श्रोता: यदि उस प्रकृति का उदय उस गुणस्थान में नहीं होगा तो ऊपर के गुणस्थानों में उसको उदय की व्युच्छित्ति कहेंगे ? जब उदय है, हां। जिस गुणस्थान में उदय है और उस गुणस्थान के ऊपर के गुणस्थानों में उदय नहीं है, तब ही उसको व्युच्छित्ति कहेंगे। जैसे हमने बंध की बात भी देखी थी कि जिस गुणस्थान में बंध है और ऊपर के गुणस्थानों में बंध नहीं है। जैसे तीर्थंकर प्रकृति को हमने देखा था पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में नहीं बंध रही थी तो उसको अबंध में रखा था और जब बंधती है तो चौथे से आठवें तक बंधती है तो आठवें में उसके बंध की व्युच्छित्ति कही थी, क्योंकि ऊपर नहीं बंधती है। अब उदय में उसका ऐसा ही लगाना है कि जिस गुणस्थान में उदय है और उसके ऊपर के गुणस्थानों मे उदय नहीं है तब कहेंगे वहां उसके उदय की व्युच्छित्ति हुयी। इतनी बात ख्याल में आयी ? अभी वह सारी बंध की

व्युच्छित्ति याद है न, अभी हमको उदय की व्युच्छित्ति सोचना है, कौनसे गुणस्थान में कौन-कौनसी व्युच्छित्ति होती हैं। यहां हम पढ़ेंगे **उदय के प्रकरण में व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय तीन प्रकार से कथन करते हैं। जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही हो**, यहां व्युच्छित्ति-व्युच्छित्ति कह रहे हैं, तो उदय की व्युच्छित्ति समझना। अभी उदय का प्रकरण शुरू हुआ है, यहां सर्वत्र उदय का नाम नहीं भी लेंगे तो उदय की व्युच्छित्ति की बात चल रही है ऐसे समझ लेना। **उन प्रकृतियों का उस गुणस्थान पर्यंत तो उदय जानना।** जहां व्युच्छित्ति कही है उस गुणस्थान में तो उसका उदय है और उस गुणस्थान के ऊपर उसका उदय नहीं है ऐसा जानना।

इसके हमने दो नाम देखे थे। यह जो द्रव्यार्थिकनय का कथन है और पर्यायार्थिकनय का कथन है। आप कहेंगे न जहां उदय है वहां व्युच्छित्ति क्यों कह रहे हो ? तो वहां बताया था दो नय होते हैं- उत्पाद अनुच्छेद और अनुत्पाद अनुच्छेद यानी द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। जैसे कहां बिछड़े थे याद है न ? देवलाली में बिछड़े थे। तो जहां हैं वहां पर बिछड़े थे कह रहे हैं हम। ऐसे ही जहां उदय है और ऊपर नहीं है तो उस गुणस्थान में उदय की व्युच्छित्ति हुयी है ऐसा कथन होगा। इसी नय से यहां कथन चलेगा। **नीचे के गुणस्थानों में जितनी प्रकृतियों का उदय कहा हो उनमें से उसी गुणस्थान में जितनी व्युच्छित्ति** होती हैं उसको घटा देना और उसके ऊपर के गुणस्थानों में उतनी प्रकृतियों का उदय जानना। जैसे हमने बंध में देखा था और अबंध में देखा था, ठीक ऐसा ही यहां है। पहले गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है ? अब यहां यह जो कथन चल रहा है वह नाना जीवों की अपेक्षा चल रहा है। इसको उदय के स्थान नहीं कह रहे हैं।

देखो, जैसे पहले बंध की व्युच्छित्ति की बात हम याद करेंगे। पहले गुणस्थान में कितनी प्रकृतियां बंधयोग्य थी याद है किसीको ? व्युच्छित्ति नहीं, बंधयोग्य प्रकृतियां कितनी थी ? तीन ही बंधयोग्य नहीं थी; तीर्थंकर और आहारकद्विक का बंध नहीं हो रहा था बाकी ११७ बंधयोग्य थी, सभी कर्मों की मिलकर। तो उसको हमने बंधस्थान तो नहीं कहा था, क्योंकि बंधस्थान क्या होगा वहां पर ? ज्ञानावरण की पांच बंधेगी, दर्शनावरण की नौ बंधेगी, अंतराय की पांच बंधेगी, फिर मोहनीय की अट्ठाइस के बदले बाईस बंधेगी, तो उसको तो बंधस्थान कहा था। अलग–अलग जीवों को कितनी

बंध सकती हैं उसको हमने वहां बंधयोग्य में लिया था। नाना जीवों की अपेक्षा कितनी बंध सकती है ? उसका हिसाब लगाया था। जैसे नौ के नौ नोकषाय किसी न किसीके तो बंधेंगे, परंतु बंधस्थान में क्या लिया था ? ॲट अ टाइम पांच ही बंध सकते हैं। तो बंधस्थान अलग है और बंधयोग्य प्रकृतियां अलग है। कहते हैं वहां नाना जीवों की अपेक्षा आती है। जहां बंधस्थान कहते हैं, वहां एक जीव की अपेक्षा ॲट अ टाइम बंधनेवाली प्रकृतियों की बात है। अब यहां भी हम क्या देख रहे हैं ? उदययोग्य प्रकृतियां देख रहे हैं यानी सभी जीवों की अपेक्षा यहां कौन-कौनसी प्रकृतियों का उदय हो सकता है उसकी बात चल रही है।

जैसे मिथ्यात्व गुणस्थान में कौन-कौनसी प्रकृतियों का उदय होगा ही नहीं ? अभी हमने कुछ प्रकृतियों के नाम देखे थे; तीर्थंकरप्रकृति का उदय नहीं होगा, वह तो तेरहवें, चौदहवें में होता है; आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का उदय नहीं होगा, वह तो छठे में होता है; सम्यग्मिथ्यात्व का उदय नहीं होगा क्योंकि वह तीसरे में होता है; सम्यक् प्रकृति का भी नहीं होता है क्योंकि वह चौथे, पांचवें, छठे, सातवें में होता है। कैसे सोचना ? तो इनका हम अनुदय कहेंगे वहां। तो इनके अलावा बाकी प्रकृतियों को क्या कहेंगे ? उदययोग्य कहेंगे। ख्याल में आया न ? उदययोग्य, अनुदय और फिर जो उदययोग्य हैं उसमें से यहां कितनी प्रकृतियों का उदय मिट जायेगा ? दूसरे गुणस्थान में या ऊपर जिनका उदय नहीं है, उसको यहां पर कहेंगे उदय की व्युच्छित्ति हुयी। बंध में हमने ऐसे ही देखा था, अभी तो उदय की अपेक्षा सोचना है। थोड़ा-थोड़ा अलग से सोचना है। तो यहां कहते हैं, **इतना विशेष है कोई प्रकृति ऊपर के गुणस्थानों में उदय आयेगी,** जैसे हमने देखा था आहारक का उदय छठे में आयेगा। **उस विवक्षित गुणस्थान में उसका उदय नहीं है** यानी मिथ्यात्व गुणस्थान में उसका उदय नहीं है, **तो उसको** हम **उदय में से घटा देंगे** यानी उसको अनुदय में डालेंगे। उदय में से घटा देंगे यानी क्या ? अनुदयरूप प्रकृति में रखेंगे और जिनका पहले **उदय नहीं था**, जैसे नीचे के पांच गुणस्थानों में आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का उदय नहीं था और **विवक्षित गुणस्थान में उसका उदय हो तो उसको मिला लेना,** किसमें मिलाना ? उदयरूप प्रकृतियों में मिलाना। पहले उसको अनुदय में रखा था, अब वह उदयरूप हो जाये तो जहां उदय होता है वहां उसको उदयरूप में ले लेंगे। बंध में जैसा किया था

वैसे ही है। जैसे बंध के प्रकरण में पहले गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारकद्विक को हमने अबंध में रखा था और चौथे गुणस्थान में, तीर्थंकर प्रकृति को बंधयोग्य में ले लिया तथा सातवें और आठवें गुणस्थान में आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग को बंधयोग्य में ले लिया।

ऐसे ही यहां उदय का भी है। हम यहां उदय की अपेक्षा बात कर रहे हैं। और **जितनी प्रकृतियों का मूल में उदय है, उनके विवक्षित गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों का उदय कहा** है, तो उदय जितनी प्रकृतियों का कहा उससे जो अन्य जो हैं जिनका उदय नहीं हो रहा, उसको क्या कहेंगे ? अनुदय। पहले गुणस्थान में तो अनुदय समझे, परंतु ऊपर चौथे में चले गये, तो जिनकी-जिनकी उदयव्युच्छित्ति पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में हुयी है उनको सारे को तो चौथे गुणस्थान में अनुदय में डालेंगे हम, ठीक ऐसा ही जैसा हमने बंध के प्रकरण में देखा था। अभी वह कहां, कितनी होती है ? उसकी बात हम देखेंगे। देखो, बंध में हमने सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व को तो नहीं लिया था और १२० का हिसाब लगा था, याद है ? क्यों ? वे बंधयोग्य हैं ही नहीं परंतु उनका उदय होगा कि नहीं होगा ? होगा, तो उदययोग्य में १२२ का हिसाब चलेगा। बंध में हमने १२० का हिसाब लगाया था; उदययोग्य में १२२ का हिसाब चलेगा अपना। गाथा पढ़ेंगे, २६३ नंबर की गाथा है।

दस चउरिगि सत्तरसं अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविही॥ २६३॥

यहां संख्यायें बतायी हैं प्रत्येक गुणस्थान की। जैसे हमने बंध में देखा है १६, २५, ०, १०, ४, ६ ऐसा देखा था न ! ऐसे यहां पर उदय की व्युच्छित्ति है, उनकी संख्या गुणस्थानों में बता रहे हैं। **अभेद विवक्षा से उदय प्रकृति एक सौ बाईस हैं।** अभेद विवक्षा का क्या अर्थ है ? कोई कहेंगे ? अभेद विवक्षा का अर्थ ऐसा है कि हमने उसको अगर भेद करके समझाया तो १४८ प्रकृतियां होती हैं। तो बंधन और संघात को शरीर के साथ अभेद करके हम पंद्रह के बदले पांच गिनते हैं और स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के बीस के बदले हम उनको चार में गर्भित कर देते हैं इसको कहेंगे अभेद विवक्षा से। पिंड अलग, पिंड प्रकृति अलग है। हां, शरीर की भी पांच प्रकृतियां हैं, बंधन की भी पांच हैं और संघात की भी पांच हैं, उसी-उसी नाम की हैं। उन सबको शरीर नामकर्म

में हम गर्भित कर देते हैं। पिंड प्रकृति का अर्थ अलग है। जैसे चार गति, तो गति नामकर्म को हम पिंड प्रकृति कहेंगे। जाति नामकर्म को पिंड प्रकृति कहेंगे। उसका अर्थ अलग है और यहां अभेद विवक्षा का अर्थ अलग है। **उनमें उदयविधि अर्थात् उदयव्युच्छित्ति** यानी **विवक्षित गुणस्थान** के **ऊपर उदय का अभाव।**

मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति है ? तो कहते हैं, **दस**। मिथ्यात्व गुणस्थान में ऐसी कोई प्रकृतियों का उदय चल रहा है, उन दस प्रकृतियों का उदय दूसरे या ऊपर के गुणस्थानों में नहीं होता। ये कौनसी प्रकृतियां हैं वह हम देखेंगे, पहले संख्या देखते हैं। पहले गुणस्थान में संख्या है दस। आपको लिखना है तो लिख सकते हैं। पहले गुणस्थान में दस के उदय की व्युच्छित्ति है। यहां उदय की व्युच्छित्ति का प्रकरण चल रहा है। पहले गुणस्थान में दस का उदय जो हो रहा था उसका यहां उदय रुक जायेगा, ऊपर के गुणस्थानों में उदय नहीं होगा तो उसको कहेंगे दस की व्युच्छित्ति। दूसरे गुणस्थान में चार हैं। देखो, अभी यहां पर दस तो उदयरूप थी और ऊपर उसका उदय मिटनेवाला है। परंतु अनुदय में कितनी थी यहां पर ? जो हमने पहले देखी थी। तीर्थंकर प्रकृति का यहां उदय नहीं है, आहारकशरीर का नहीं है, आहारकअंगोपांग का नहीं है, सम्यग्मिथ्यात्व का नहीं है और सम्यक् प्रकृति का भी नहीं है। पांच तो अनुदयरूप थी, अब यहां दस की व्युच्छित्ति हुयी। है न, तो जो दूसरे गुणस्थान में जायेगा उसके क्या है वहां पर ? पंद्रह अनुदयरूप कहनी पड़ेगी। परंतु वहां नारकानुपूर्वी का उदय नहीं है; दूसरे गुणस्थान के लिये नारकानुपूर्वी का उदय नहीं है। इसलिये सोलह अनुदयरूप हैं। अभी हम अनुदय की बात छोड़ देंगे, मात्र उदय की व्युच्छित्ति देखेंगे क्योंकि तीन को एक साथ देखेंगे तो फिर घोटाला होगा। उसकी बात फिर करेंगे।

पहले मात्र उदय की व्युच्छित्ति देख रहे हैं। पहले गुणस्थान में दस प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है और दूसरे गुणस्थान में चार प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है। देखो, इन दो गुणस्थानों के बारे में दो पक्ष हैं, दो कथन आते हैं और दोनों ही आचार्यों की परंपरा से आते हैं। तो हमें दोनों को ही जैसा है वैसा जानना है। उसमें यह सच है कि यह सच है यह निर्णय करने का हमें कोई अधिकार भी नहीं है और हमारी वह पात्रता भी नहीं है। जो उपदेश की धारा चली आ रही है उसे हमें

जानना है और उसका कारण भी हम समझ सकते हैं, ऐसा क्यों कहा है। तो जो इस पक्ष में चार और दस कहा, क्योंकि यह जो पक्ष है उसमें एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन नामकर्म का उदय मिथ्यादृष्टि में ही है, सासादन में नहीं है ऐसा कहा। उसको पहले वह दस में गिन लिया था। दूसरे पक्ष में इनका उदय, किस-किसका ? एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये जो पांच प्रकृतियां हैं उनका उदय दूसरे में है, तो दूसरे में गिनी। दोनों गुणस्थानों की मिलकर उदयव्युच्छित्ति चौदह हैं। एक पक्ष ने क्या कहा ? पहले में दस की व्युच्छित्ति, दूसरे में चार की और दूसरे पक्ष ने क्या कहा ? पहले में पांच की है और दूसरे में नौ की है। बात वही की वही है न। ऐसा क्यों कहते है ? कौन-कौनसी हैं ये प्रकृतियां ? एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। एक मत ऐसा है कि सासादन गुणस्थान में मरकर जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न होता है। यह एक मत है। दूसरा मत ऐसा भी है कि सासादन में मरकर जीव पर्याप्त एकेन्द्रिय में, पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पंचेन्द्रिय में जन्मता है - पर्याप्तों में; परंतु वहां जाते ही शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले-पहले वह सासादन में से मिथ्यात्व में चला जाता है क्योंकि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में सासादन गुणस्थान की प्राप्ति होती ही नहीं है। सासादन की प्राप्ति औपशमिक सम्यक्त्व से गिरनेवाले को होती है।

औपशमिक सम्यक्त्व किस जीव के हो सकता है ? संज्ञी पंचेन्द्रियों के ही होता है। इसलिये सासादन की प्राप्ति कौनसा जीव करेगा ? तो जो सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है वह ही गिरकर सासादन में आयेगा। इसलिये वहां कहते हैं सासादन गुणस्थान संज्ञी पंचेन्द्रियों में ही पाया जाता है। परंतु सासादन गुणस्थान प्राप्त होने पर, उसका जो काल है - एक समय से लेकर छह आवली तक, तो कोई जीव मरकर अन्य भव में भी चला जाता है, जाता ही है। वहां मरण होगा, तो सासादन में मरनेवाला नरक में तो नहीं जाता, देव में जा सकता है, मनुष्य में जा सकता है, तिर्यंच में जा सकता है। एक मत ऐसा है कि मात्र संज्ञी पंचेन्द्रियों में ही जायेगा और दूसरा मत ऐसा है कि वह पर्याप्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि में भी जा सकता है परंतु वह इतने अल्प काल के लिये रहता है कि शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले-पहले वह मिथ्यात्व में चला जाता है। परंतु हमें दोनों मत हैं इतना ही ज्ञान कराना है। परंतु बाद में भी आगे

जितने कथन आयेंगे तो वहां ऐसा ही कहेंगे कि सासादन कहां कौनसे जीवों को पाया जाता है ? तो कहेंगे वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तों के होता है। परंतु मरकर जानेवाले की अपेक्षा, अपर्याप्त दशा में भी वह पाया जाता है, ऐसा कथन आता है। *श्रोता: मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा से कैसे होता है ?* वहां भी होता है परंतु मारणान्तिक समुद्घात में पूर्व संज्ञी पंचेन्द्रिय की अवस्था चल रही है, वह मरकर जानेवाले की बात अलग है। मारणान्तिक समुद्घात मरण के पहले होता है और वह सासादन गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात जब कर रहा है; मारणान्तिक समुद्घात तो होता है परंतु उस समय वह जीव कौन है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय है, उसको थोड़े ही एकेन्द्रिय कहेंगे हम ? मरकर जानेवाले की अपेक्षा से यह बात चल रही है। मरकर कौनसे पर्यायों में उत्पन्न हो सकता है उसकी यहां बात चल रही है।

देखो, यह थोड़ा कन्फ्यूज़िंग लगेगा आपको। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उस औपशमिक सम्यक्त्व के काल में किसीके अनंतानुबंधी का उदय हो जाये तो वह सासादन गुणस्थान में आता है। सासादन गुणस्थान में रहने का काल एक समय से लेकर छह आवली तक है और उसके बाद वह जीव नियम से पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में ही जाता है। अब उसी सासादन में वह नहीं मरेगा तो मिथ्यात्व में जायेगा। परंतु सासादन के काल में यदि मरण होता है तो वह कहां-कहां जन्म ले सकता है ? हमने पहले ही देखा, नरक में जा ही नहीं सकता, तीन गतियों में जा सकता है। तो देव और मनुष्य तो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, परंतु अन्यत्र जा सकता है या नहीं सकता इसलिये दो उपदेश अव्हेलेबल हैं। एक उपदेश से वह संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही जायेगा और दूसरे उपदेश की अपेक्षा वह इन अन्य पर्यायों में - एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी तक भी जा सकता है, प्रोव्हाइडेड वह पर्याप्त नामकर्मवाले हों। क्यों ? वह अपर्याप्त नामकर्म की उदयव्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में ही हुयी है, इसलिये वह पर्याप्तों में ही जन्म लेगा, यह बात वहां चल रही है।

हम यहां देख रहे हैं कि पहले गुणस्थान में उदय की व्युच्छित्ति १० की है और दूसरें में ४ की है। अन्य ऐसा कथन है कि यह जो अभी हमने एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय देखे थे तो उसकी अपेक्षा हम क्या कहेंगे ? पहले गुणस्थान में ५ की व्युच्छित्ति है उदय की और दूसरें में ९ की है। ये दो मत हैं इतनी

बात ख्याल में आयी ? अब आगे बढ़ेंगे। मिश्र यानी तीसरे गुणस्थान में उदय की व्युच्छित्ति १ की है जो वहां ही उदयरूप हो रही है, जिसको हमने सम्यग्मिथ्यात्व देखा था। अभी हम नाम नहीं देख रहे हैं, हम केवल संख्यायें देख रहे हैं। हम एक पक्ष चालू रखेंगे, पहले गुणस्थान में १० और दूसरे गुणस्थान में ४। बहुत अच्छा, तीसरे गुणस्थान में १। चौथे गुणस्थान में १७ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है। देशसंयत यानी पांचवें गुणस्थान में ८ प्रकृतियों की है। कितनी देखी हमने ? पहले में १०, दूसरें में ४, तीसरे में १, चौथे में १७ और पांचवें में ८। छठे गुणस्थान में ५ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति है। प्रमत्त गुणस्थान में ५ और अप्रमत्त गुणस्थान में ४। *श्रोता: सातवें में ?* सातवें गुणस्थान में ४, अपूर्वकरण यानी आठवें गुणस्थान में ६ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति है। अनिवृत्तिकरण यानी नौवें गुणस्थान में ६ की व्युच्छित्ति है। सूक्ष्मसाम्पराय दसवें गुणस्थान में १ प्रकृति के उदय की व्युच्छित्ति है। उपशांत कषाय यानी ग्यारहवें गुणस्थान में २ के उदय की व्युच्छित्ति है, उनका २ का उदय यहां तक ही है ऊपर बारहवें आदि में नहीं है। क्षीणकषाय गुणस्थान में भी २ की व्युच्छित्ति है उपांत्य समय में और १४ की है अंतिम समय में। इसलिये २ और १४ कहा, टोटल १६ हैं। बारहवें गुणस्थान में १६ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति है परंतु उसको २ और १४ कहा।

सयोगकेवली गुणस्थान में २९ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति है। कहीं २९ और ३० ऐसे दोनों कथन आते हैं क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा बात है। किसीके सातावेदनीय के उदय की व्युच्छित्ति होती है किसीके असाता के उदय की। आप कहेंगे, क्या केवली भगवान को भी असाता का उदय है ? बिलकुल है; चौदहवें तक है, हां, हो सकता है। तीर्थंकरों की बात नहीं कर रहे हम, सामान्य केवली की बात कर रहे हैं क्योंकि उनका जो असाता है वह कितना मंद-मंद-मंद होते हुये आया है, परंतु वह असातारूप है और उदय चल रहा है। उसका फल तो कुछ नहीं है वहां पर, फिर भी वहां उदय की बात चल रही है। बंध तो सातावेदनीय का है, उदय की बात चल रही है यहां। असाता का बंध तो छठे में ही रुक गया है, परंतु असाता का उदय चौदहवें तक चल सकता है, किसी-किसीके होगा। अयोगकेवली गुणस्थान में १३ की व्युच्छित्ति जाननी। यानी क्या ? जो उदयरूप वहां प्रकृति हो सकती है उसका उदय वहां मिट जायेगा। यानी अभी सबका क्षय होनेवाला है न, उसके ऊपर कोई उदय की बात ही

नहीं। वहां जितनी प्रकृतियां पायी जाती हैं उनका तो क्षय हो जाता है। इसलिये वहां १३ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति समझ लेना। अब ये कौन-कौनसी प्रकृतियां हैं उसको थोड़ा देख लेते हैं। *श्रोता: यह तेरह किसमें हैं ?* चौदहवें में १३, ये व्युच्छित्तिवाली प्रकृति कौनसी है ? अभी हम थोड़ी गाथा पढ़ेंगे फिर दुबारा शाम को इनके नाम भी डीटेल में पढ़ेंगे हम। अभी तो गाथा में देख लेते हैं कौन-कौनसी हैं। २६५ नंबर की गाथा में इसका वर्णन आया है।

मिच्छे मिच्छादावंसुहुमतियं सासणे अणेइंदी।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ॥२६५॥

यानी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त उनकी तो उदय से व्युच्छित्ति है ही है। अब इसमें जो दो पक्ष थे न, किसके बारे में ? एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय उनको यदि हम पहले में गिनेंगे तो १० हो जायेंगे। ५ का तो दोनों को स्वीकार है; कौनसे पांच ? मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये जो पांच प्रकृतियां हैं उनका उदय मात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही है। मिथ्यात्व में है, ऊपर के गुणस्थानों में उनका उदय नहीं पाया जाता। क्योंकि हम देखते हैं न, सासादन किसको प्राप्त होगा ? जो सम्यक्त्व से गिरकर आयेगा, वह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय है। ख्याल में आती है बात ? आप कहेंगे जैसे सासादन के साथ मरकर पर्याप्त एकेन्द्रिय में जाता है वैसे आतप वगैरह क्यों नहीं लिया ? उसका उत्तर बाद में जब हम नामकर्म के उदयस्थान देखेंगे उसमें उसका उत्तर मिलेगा हमको।

अभी तो इतना ही समझना है मिथ्यात्व गुणस्थान में दोनों पक्षों को जिनका स्वीकार है - वे कौनसी ५ प्रकृतियां हैं ? मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त इनके उदय की व्युच्छित्ति होती है का अर्थ है इनका उदय मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में ही है, ऊपर के किसी भी गुणस्थान में इनका उदय नहीं पाया जाता है। अब सासादन में, अन्य ५ हम सासादन में गिनेंगे, तो कैसे होगा ? सासादन में कौन-कौनसी प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है ? बेसिक ४ कौनसी हैं ? अनंतानुबंधी की ४ और जो ५ यदि पहले में नहीं लेते तो उसको यहां गिनना है। कौनसी ५ हैं ? एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। दोनों पक्ष को बेसिक ५ तो पहले में हैं ही हैं। ये जो ५ हैं एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इनको पहले ५

के साथ लेंगे तो पहले में हम १० की व्युच्छित्ति कहेंगे और इन ५ को अगर हम दूसरे के साथ रखेंगे, तो वहां होनेवाली अनंतानुबंधी ४ और ये ५, वहां हम ९ की व्युच्छित्ति कहेंगे। इसतरह पहले और दूसरे गुणस्थान के उदय की व्युच्छित्ति है। हमने देखा मिश्र गुणस्थान यानी तीसरा गुणस्थान, वहां जिसका उदय है और बाद में ऊपर कहीं भी उदय नहीं है, ऐसी कौनसी प्रकृति है ? तो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, जिसको मिश्रमोहनीय भी कहते हैं इसलिये तीसरे गुणस्थान में १ ही प्रकृति के उदय की व्युच्छित्ति पायी जाती है। अब चौथे गुणस्थान की बात करते हैं जो २६६ नंबर की गाथा में बताया है।

श्रोता: दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी के उदय की व्युच्छित्ति है, तो दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी के उदय की व्युच्छित्ति कैसे होगी ? वह पहले में आता है तो वहां पर भी उदय है ? देखो, आपका प्रश्न ऐसा है कि दूसरे गुणस्थान में आप अनंतानुबंधी के उदय की व्युच्छित्ति कहते हो, तो दूसरे गुणस्थानवाले को अनंतानुबंधी का उदय है और वह पहले में आता है वहां पर भी उदय है तो व्युच्छित्ति कहां रही ? हमने व्युच्छित्ति का अर्थ ऐसा देखा था कि जिसका उदय दूसरे में है और ऊपर में कहीं भी नहीं है। वह दूसरे से गिरकर पहले में जाता है उससे मतलब नहीं है, ऊपर उसका उदय कहीं भी नहीं है क्योंकि यह नियम से पहले में आनेवाला ही है। बंध के प्रकरण में भी यही प्रश्न आया था कि वह पहले में ही जाता है और वहां भी अनंतानुबंधी का बंध है तो आप दूसरे में बंध की व्युच्छित्ति कैसे कहते हो ? यहां उदय की व्युच्छित्ति में भी ऐसा ही प्रश्न आ गया। भले वह पहले में जावे, परंतु जो कोई जीव तीसरे में हैं, चौथे में हैं या ऊपर के गुणस्थानों में हैं, उन्हें ना उनका बंध है ना उदय है। जब तक क्षय नहीं होता तब तक या जब तक विसंयोजना नहीं होती तब तक सत्ता में है। यहां हम उदय की बात देख रहे हैं; दूसरे में उदय है, ऊपर कहीं नहीं है तो उसको हम कहेंगे उदय की व्युच्छित्ति हुयी। अनंतानुबंधी के उदय की व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान में हुयी। इन ४ की व्युच्छित्ति यहां पायी जाती है। अब चौथे गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति है ? वह हम शाम को देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२९. उदयव्युच्छित्ति

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। अभी हम यहां कर्मकाण्ड की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका जो पं. टोडरमलजी ने लिखी है, उसके आधार से कर्म की कुछ बात देख रहे हैं। अभी यहां अपना उदय का प्रकरण शुरू हुआ है तो उदय में व्युच्छित्ति की बात चल रही है। कुछ प्रश्न आये हैं, कुछ ख़ास विशेष नहीं हैं, फिर भी देखकर हम आगे बढ़ेंगे।

प्रश्नः शरीर का कोई अंग कटकर अलग होने पर वह छटपटाता है। छिपकली वगैरह का देखा होगा तो क्या आत्मप्रदेश वहां तक होते हैं ? बाद में कुछ देर बाद छटपटाना बंद होता है ऐसा क्यों ? आत्मप्रदेश तो दोनों अंगों में फैले हुये होते हैं, तो वहां छटपटाना भले हो। बाद में वह मूलशरीर में आ जाते हैं और वह जो पार्ट है वह तो अचेतन तो था ही पहले से ही, उसमें आत्मप्रदेश है ही नहीं। इसलिये वह वैसा का वैसा रह जाता है। क्रियावती शक्ति तो है ही उसमें। *प्रश्नः क्या विवाह पूर्व कुण्डली मिलाना,* अभी कैसे-कैसे प्रश्न आ रहे हैं ?... सुनो, सुनो, सुनो ! *विवाह के पूर्व कुण्डली मिलाना, शुभ कार्य के लिये मुहूर्त निकालना, यंत्र सामग्री की पूजा आदि मिथ्यात्व है क्या ?* यंत्र सामग्री की पूजा क्यों करना चाहते हैं ? अभी मिथ्यात्व है क्या पूछने की क्या ज़रुरत थी ? ख्याल में आया न ? यंत्र सामग्री की यानी कोई गाड़ी खरीदकर लाये, उसकी पूजा करना है क्या ? कारखाने की पूजा करना है; अन्य लोग विजयादशमी के दिन को अपने-अपने यंत्रों की - औजारों की पूजा करते हैं। तो हमको भी स्टेथोस्कोप की पूजा करनी चाहिये ? पूजा तो मात्र देव, शास्त्र और गुरु की ही होती है। ये अन्य की पूजा करना और उससे मेरा भला होगा मानना ये सारा मिथ्यात्व है, अन्यमतियों के संस्कार हैं। उनकी मान्यता हम भी अपनाते हैं क्योंकि कुछ करना चाहते हैं तो हम भी कर देते हैं, क्या कहें ?

ज्योतिष शास्त्र है क्योंकि देखो यह जो निमित्तज्ञानवाला भी ज्ञान है, ज्योतिष शास्त्र भी है, शास्त्र नहीं है उसकी बात नहीं है। पर उसको करने से मेरा भला होगा या कुछ मेरा अन्यथा होनेवाला है और अभी बदल जायेगा यह मान्यता तो मिथ्यात्व है ही है। अगर कुण्डली नहीं देखते और विवाह हो जाते हैं तो क्या वह टूट जाते हैं ? पशु-पक्षी भी कुण्डली देख-देखकर विवाह करते होंगे ? कि जो संयोग... भले कुण्डली

भी देखकर होते हैं तो संयोग में जो है वह कुछ चूकनेवाला है कि नहीं है ? मुझे जो मालूम है मैं एक बात बताऊंगी जो घटित हुयी है। एक बहुत ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। सभी लोग उनके पास जाते थे शादी के पूर्व कुण्डली मिलाने के लिये और वे भी सबकी कुण्डली मिला-मिलाकर ॲडव्हाइस देते थे कि यह शादी करनी कि नहीं करनी। उनकी अपनी बेटी की शादी भी उन्होंने कुण्डली मिलाकर ही कर दी। तो उसकी बेटी को अच्छा डॉक्टर पति मिला, दो बच्चे हुये, अच्छी गृहस्थी चल रही थी। तो क्या हुआ उसका ? वह डॉक्टर हमारे घर में आया था पंद्रह तारीख को, सितम्बर की पंद्रह तारीख थी, हमारे घर आया था। मेरे ससुरजी को तो आदत थी जो आये उसके सामने वे स्वाध्याय की बातें करते थे। तो उनका उत्तर था 'काका आप करो न, हमने कहां रोका है, हम आपके जैसे बूढ़े हो जायेंगे, तब हम भी करेंगे, हम भी स्वाध्याय करेंगे' और उन्नीस तारीख की बात है। चार ही दिन के बाद वह डॉक्टर उसके घर में खाना खा रहा था, बरसात के दिन थे। डॉक्टर तो था ही था, खेती आदि भी बहुत सारी थी। नौकर बुलाने आया 'चलो खेत में कुछ बिजली का प्रॉब्लेम है' पंप का कुछ था, तो खाना खाते-खाते छोड़कर चला गया खेत में। वहां तो घुटने तक तो पानी था। कीचड़ में खड़ा होकर वह वहां का फ्यूज निकालने गया, वहां बिजली नहीं थी तो उसी समय आ गयी और वह चिपककर वहीं पर काला पड़ गया, मर गया वहीं का वहीं। अभी ज्योतिषि ने तो कुण्डली मिलाकर ही अपनी बेटी की शादी की थी। ये मेरे रिश्तेदार सारे जानते हैं, मैंने नाम नहीं लिया तो भी ये सब हां कह रहे हैं। समझते हैं, किसकी बात चल रही है - उनके गांव का था वह कुण्डली देखनेवाला, है कि नहीं ?

श्रोता: और जो बिना कुण्डली देखकर शादी करें उसका क्या ? उसका जो हमारा जो हो रहा है वह आप देख रहे हैं, क्या हो रहा है ? हमने कोई कुण्डली नहीं देखी थी। ना ही हमने हमारी दोनों बेटियों की कुण्डली देखी है और ना ही हमारे इनके भाइयों के, बहनों के बच्चों की किसीकी कुण्डली देखी है, सबकी शादी हुई है। ठीकठाक चल रहा है वैसे। देखो, मुहूर्त निकालना आदि वगैरह वह पद्धति है, परंतु अभी वह मुहूर्त निकालने पर भी वह मुहूर्त पर कहां आते हैं। विवाह का भी मुहूर्त निकालते हैं कि नहीं निकालते हैं ? तो यहां मुहूर्त हो रहा है, वहां कन्या कहां है ? तो ब्यूटी पार्लर में है। तो जिस मुहूर्त पर होना है उसी मुहूर्त पर होता है। आप विवाह की

क्या बात करते हो और शुभ कार्य की क्या बात करते हैं; बम्बई में तो हमने ऐसे भी देखे हैं, डॉक्टर के पास जाते हैं यानी अभी ये डॉक्टर तो हमारे फ्रेंड ही होते हैं। हमें क्या अपॉइन्टमेन्ट लेनी है ? फिर कहते हैं आपको आज नहीं आना है, अमुक-अमुक समय पर हमने किसीको अपॉइन्टमेन्ट दी है। हमने कहा क्या है, ऐसी क्या बात है ? नहीं वह मुहूर्त देखकर डॉक्टर के पास यानी वह किसीका प्रेग्नन्सी का सातवां महीना है अभी नाम लिखवाना है, वहां डॉक्टर के पास तो मुहूर्त देखकर करते हैं। *श्रोता: रजिस्ट्रेशन।* हां रजिस्ट्रेशन जो करना है वह मुहूर्त देखकर डॉक्टर के पास नाम लिखवाते हैं, क्योंकि डिलिव्हरी होनी है, तीन महीने के बाद वह भी मुहूर्त देखकर, नॉर्मल डिलिव्हरी नहीं करवानी है, सिझेरियन करवाना है, उसी मुहूर्त पर होना चाहिये। ये सारी ऐसी मूर्खता चलती है, क्या करें ?

प्रश्न है, *श्रोता: सम्यग्दृष्टि जीव कोई सातमा गुणस्थानवाळो, इ बीजा भवमां जाय - इ मरे त्यारे सम्यक्त्व छूटी जाय अेनुं ?* क्यों ? नहीं कोई जरूरत नहीं है और सातवें में से कोई पहले में आता ही नहीं है। सातवें में से नियम से छठे में ही जाता है। यदि सातवें में मरण होता है तो नियम से चौथे गुणस्थान में आता है। बाद में मिथ्यात्व और उसका जो कुछ होना है वह हो सकता है और वह भी चौथे में एक समय में रहकर एक समय मिथ्यात्व में जायेगा ऐसा भी नहीं हैं। एक अंतर्मुहूर्त तो रहेगा ही रहेगा। बाकी कोई प्रश्न हैं नहीं खास, अभी हम आगे बढ़ेंगे।

उदय की व्युच्छित्ति संबंधी अपना प्रकरण चल रहा था यहां पर। तो उदय की व्युच्छित्ति का अर्थ क्या है ? उस विशिष्ट गुणस्थान में उस प्रकृति का उदय है, परंतु ऊपर के गुणस्थानों में वे प्रकृतियां कहीं पर भी उदयरूप नहीं होती हैं उसको कहेंगे उदय की व्युच्छित्ति। इसके आधार से तो हम आगे चलकर और भी देखेंगे। जहां तक जिस प्रकृतियों का उदय पाया जाता है और ऊपर नहीं पाया जाता है तो हमारे जो प्रश्न हैं - इस काल में उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी क्यों नहीं चढ़ता या अमुक-अमुक जीव क्षपकश्रेणी क्यों नहीं चढ़ता ? उसके उत्तर इसमें प्रकृति के उदय के रूप में आयेंगे। क्योंकि ऊपर उन प्रकृतियां का उदय ही नहीं पाया जाता है, तो वे जीव वहां ऊपर जा ही नहीं सकते। हम क्रम से देखेंगे जब उसका नंबर आयेगा तब उसकी बात करेंगे। हमने पहले और दूसरे गुणस्थानों की जो उदय की व्युच्छित्तिरूप प्रकृतियां हैं, उसकी

चर्चा की थी। दो मत हैं- एक मत से पहले गुणस्थान में ५ और दूसरे में ९ के उदय की व्युच्छित्ति है और जो दूसरा मत है उसके अनुसार पहले गुणस्थान में ? *श्रोता: १०।* १० और दूसरे में ४ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है। ये ५ प्रकृतियां कौनसी हैं ? तो पहले में मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त और उसके साथ दूसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी की ४ और ये ५ जिनके बारे में दो पक्ष हैं वे ५ प्रकृतियां कौनसी हैं ? एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। दो मत होने का कारण यही है कि सासादन अवस्था में मरकर क्या जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो सकता है ? तो पर्याप्तों में उत्पन्न होता है और वहां जाते ही, अत्यंत छोटे काल में मिथ्यात्व में जाता है ऐसा एक मत पाया जाता है, इसलिये ये दो मत हैं। जो दो मत हैं तो हमें वे हैं इतना जानना चाहिये; यह सच्चा है कि वह सच्चा है यह बात यह हमारे निर्णय की नहीं है। हमने ये दोनों ही पक्ष यहां देख लिये।

देखो, इससे कौनसी बात ख्याल में आती है ? एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जो हैं वे तो सारे मिथ्यादृष्टि ही हैं क्योंकि ऊपर के गुणस्थान तो उनके होते ही नहीं है और जो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं वे ही सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं और सासादन में आनेवाले भी वे ही हैं। ऐसा नहीं कि सम्यक्त्व के साथ एकेन्द्रिय में चले जायें और वहां सासादन में आवे, ऐसा हो ही नहीं सकता क्योंकि उपशम सम्यक्त्व के काल में मरण नहीं होता। क्या कहा ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मरण नहीं होता। मान लेते हैं उपशम सम्यक्त्व का काल सौ समय है तो सौ समय तक जब तक उपशम सम्यक्त्व चालू है तब तक मरण नहीं होगा। परंतु मान लेते हैं कि पंचानबे समय हो चुके हैं; तो अनंतानुबंधी का उदय आ सकता है। यदि उपशम सम्यक्त्व चालू रहता तो सौ समय तक मरण नहीं होता उसका, परंतु पंचानबे समय के बाद अनंतानुबंधी के उदय से वह सासादन में आया है; अब वहां एक समय में भी उसका मरण हो सकता है। *श्रोता: दूसरा गुणस्थान ?* दूसरे गुणस्थान में मरण हो सकता है। औपशमिक सम्यग्दृष्टि का मरण नहीं है, परंतु उसी उपशमकाल में जो सासादन गुणस्थान में आता है उसका मरण हो सकता है। मरण भी हो सकता है, मारणान्तिक समुद्घात भी हो सकता है।

देखो, मारणान्तिक समुद्घात का अर्थ समझते हो ? मरण के पूर्व एक अंतर्मुहूर्त काल पूर्व, जीव जहां जन्म लेनेवाला है वहां तक उसके आत्मप्रदेश फैल जाते

हैं। जैसे हम विग्रहगति में देखते हैं। जीव एक मोड़ से जायेगा या सीधा जायेगा या दो मोड़ से, तीन मोड़ से यानी जिस रूट से वह मरकर जानेवाला है, उसी रूट पर यानी उसी विग्रहगति से यानी जैसे वह जायेगा वैसे उसके आत्मप्रदेश वैसे ही स्प्रेडआउट होते हैं। जैसे एक लेज़र बीम होता है वैसे वे आत्मप्रदेश स्प्रेडआउट होते हैं वहां तक और वैसे ही रहते हैं। दो मत हैं- एक मत के अनुसार मरण तक वैसे रहते हैं और मूलशरीर से आत्मप्रदेश उठते हैं और फिर आगे चले जाते हैं। दूसरा मत है वे सारे आत्मप्रदेश वापस आते हैं और फिर एक साथ विग्रहगति से चले जाते हैं। दोनों ही मत आते हैं। अब दूसरे गुणस्थान में यह जो मारणान्तिक समुद्घात करनेवाला जीव है, अभी वह संज्ञी पंचेन्द्रिय है, अभी-अभी दूसरे में आया है और मान लेते हैं वह मरकर एकेन्द्रिय में जानेवाला है तो, जहां जन्मनेवाला है वहां तक मारणान्तिक समुद्घात करता है। परंतु अभी वह कौनसा जीव कहलायेगा ? संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहलायेगा। क्योंकि अभी मरा कहां है ? मरण के पूर्व उसने मारणान्तिक समुद्घात किया है।

समुद्घात का अर्थ समझते हो न ? मूलशरीर छोड़े बिना *श्रोता: आत्मप्रदेशों का जो फैलना है।* आत्मप्रदेशों का जो फैलना है, उसको कहेंगे समुद्घात। तो मरण के पहले, पश्चात् जो भव धारण करना है और जहां जन्म लेना है, वहां तक वे आत्मा के प्रदेश फ़ैल जाते हैं। कोई कहते हैं न वहां देखकर आया है इसलिये हंसते-हंसते मरा है, ऐसा कुछ नहीं है हो क्योंकि अनंत जीव मारणान्तिक समुद्घात करते हैं। अनंत। क्यों ? एकेन्द्रियों से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी करते हैं। सम्यग्दृष्टि भी करते हैं, मिथ्यादृष्टि भी करते हैं और बहुभाग करते हैं। थोड़े भागवाले नहीं करते, बहुभागवाले तो करते रहते हैं, फिर भी कहीं भी ट्रॅफिक जॅम नहीं होता। मारणान्तिक करनेवाले पूरे लोकाकाश में फैले हैं क्योंकि एकेन्द्रिय अनंत हैं और कितनों का तो मारणान्तिक चल रहा है; हर समय कोई न कोई मर रहा है, हर समय जा रहा है, हां और हर एक जन अपने-अपने निश्चित स्थान पर पहुंच जाता है। किसीको रास्ता ढूंढ़ना पड़ेगा, किसीको पूछना पड़ेगा ऐसी कोई बात नहीं है। जिस समय जहां जन्म लेना है, वहां वह जीव बिलकुल पहुंच जाता है। यहां तो अमेरिका में जाना है तो पहले क्या करो ? व्हिसा निकालो, फिर ? पासपोर्ट बराबर है कि नहीं है, टिकिट बुक करना है, नाना चिंतायें। किसीको पर भव जाना है तो कोई चिंता नहीं है क्योंकि सारा ऑटोमॅटिक बुकिंग है

वहां पर।

यहां जो हम देख रहे थे, सासादन अवस्था में मारणान्तिक समुद्घात हो सकता है। एकेन्द्रिय में अगर जानेवाला है तो वहां तक करेगा; अन्यत्र कहीं जन्म लेना है तो वहां तक करेगा; परंतु फिर भी, वह कर रहा है तो वह संज्ञी पंचेन्द्रिय है और फिर उसके बाद वह मरकर मिथ्यात्व गुणस्थान में चला जायेगा। किसी आचार्य के अनुसार पहले ही पहुंच जायेगा सासादन की अवस्था में ही और वहां जाते ही थोड़े समयों में वह मिथ्यात्व में चला जायेगा क्योंकि दूसरे गुणस्थानवाला नियम से मिथ्यात्व में जाता ही है। यह हमारी पहले और दूसरे गुणस्थान संबंधी चर्चा हुई। तीसरे गुणस्थान में उदय की व्युच्छित्ति कौनसी है ? कि जहां उदय है और उसके बाद उसका उदय कहीं भी नहीं है तो कहते हैं सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, मिश्रमोहनीय जिसको कहते हैं और चौथे की बात अभी हम पढ़ने जा रहे हैं। २६६ नंबर की गाथा में बताया है चौथे गुणस्थान में १७ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है। १७ प्रकृतियां जो वहां तक उदयरूप हैं, चौथे में उदयरूप हैं बाद में उदयरूप नहीं हैं। देखो, हम पढ़ेंगे।

अयदे बिदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ।
मणुयतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं॥ २६६॥

असंयत यानी चौथे गुणस्थानवर्ती जीव के वहां जिनका उदय है और बाद में जिनका उदय नहीं है ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं, कषायों में ? *श्रोता: अप्रत्याख्यानावरण।* अप्रत्याख्यानावरण। चौथे में उदयरूप हैं ऊपर तो उनका उदय है ही नहीं, तो अप्रत्याख्यानावरण चार ये तो निश्चित हो गयी। अब आगे, नारकियों में, देवों में कितने गुणस्थान पाये जाते हैं ? *श्रोता: चार।* चार यानी उनमें पांचवां गुणस्थान है ही नहीं। यानी देवगति का उदय, देवायु का उदय कहां तक पाया जायेगा ? *श्रोता: चौथे।* चौथे तक। नरकायु का उदय, नरकगति का उदय कहां तक होगा ? *श्रोता: चौथे तक।* चौथे तक, वैसे ही वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग का उदय कहां तक होगा ? *श्रोता: चौथे तक।* चौथे तक क्योंकि आगे तो देवों और नारकियों के गुणस्थान ही नहीं हैं, इसलिये आगे पाये ही नहीं जायेंगे। यहां कहते हैं, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग, देवगति और नरकगति; अब जहां देवगति का उदय है तो विग्रहगति में उसके आनुपूर्वी का भी उदय होगा। आगे तो आनुपूर्वी का भी उदय नहीं होगा। तो यहां

देवगत्यानुपूर्वी और नरकगत्यानुपूर्वी। तिर्यंचानुपूर्वी की बात मैं बाद में बोलती हूं। वैसे तो चारों आनुपूर्वी का यहां उदय है, आगे उदय नहीं है क्योंकि विग्रहगति में कहीं भी पांचवां गुणस्थान पाया नहीं जाता। चतुर्थ गुणस्थान के साथ तिर्यंच में जन्मनेवाले जीवों को तिर्यंचगत्यानुपूर्वी का उदय हो सकता है। सम्यक्त्व के साथ मरकर कोई देव, नारकी या मनुष्य मरकर मनुष्य में आता है उसके मनुष्यगत्यानुपूर्वी का भी उदय पाया जायेगा। बात ख्याल में आती है ? परंतु गुणस्थान कौनसा रहेगा ? *श्रोता: चौथा।* चौथा, उसके ऊपर तो नहीं है यानी चारों में से किसी भी गत्यानुपूर्वी का उदय चौथे गुणस्थान के ऊपर नहीं पाया जाता क्योंकि विग्रहगति में या तो पहला गुणस्थान हो सकता है या दूसरा या चौथा उसके ऊपर के गुणस्थान विग्रहगति में नहीं पाये जाते।

गत्यानुपूर्वी का उदय कहां है ? विग्रहगति में हैं। इसलिये चारों ही गत्यानुपूर्वी के उदय की व्युच्छित्ति यहीं पर कह दी हैं। पहले तो नरकगति के साथ उसकी गत्यानुपूर्वी बता दी और उसकी आयु भी बता दी। देवगति के साथ उसकी गत्यानुपूर्वी और आयु भी बता दी। अब दोनों में कॉमन ऐसा वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग भी बता दिया। अब और दो गत्यानुपूर्वी रही, उसको भी यहीं पर बताया; गति को नहीं कहा। तिर्यंचगति का उदय तो पांचवें तक होगा, क्योंकि तिर्यंचों में पांचवां गुणस्थान पाया जाता है। परंतु गत्यानुपूर्वी नहीं कहा क्योंकि सम्यक्त्व के साथ जो तिर्यंचों में उत्पन्न होंगे तो विग्रहगति में गुणस्थान चौथा होगा। ऐसे कौनसे जीव हैं जो सम्यक्त्व के साथ तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं ? *श्रोता: जिसने पहले आयु बांधी हो।* हां, जिन्होंने पहले तिर्यंचायु बांधी है, मनुष्यों की बात है; जिस मनुष्य ने पहले तिर्यंचायु बांधी है, उसके बाद में सम्यक्त्व हुआ है और पश्चात् जिसने क्षायिक सम्यक्त्व की शुरुआत की है। भले वह क्षायिक पूरा हुआ हो या अभी उसके कृतकृत्यवेदक अवस्था प्राप्त हुई हो यानी एक अंतर्मुहूर्त बाकी रहता है। वहां जाकर भी पूर्णता होती है। ऐसा ही जीव सम्यक्त्व के साथ मरकर, वहां सम्यक्त्व के साथ भोगभूमिवाला तिर्यंच होता है, जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। अन्यथा सम्यक्त्व के साथ अन्य किसी गति से तिर्यंचों में नहीं उत्पन्न होते। आप कहेंगे किसी देव ने पहले तिर्यंचायु बांधी हो, बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया तो क्या होगा ? मिथ्यात्व में जाकर उत्पन्न होंगे। ख्याल में आता है न ? डायरेक्ट सम्यक्त्व के साथ कोई देव तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं हो सकता।

यहां हमने चौथे गुणस्थान के उदय की व्युच्छित्ति देखी है। किसको-किसको देखा अभी तक ? अप्रत्याख्यानावरण चार देखे। अब देवगति और नरकगति संबंधी फिर से दुबारा विचार करेंगे। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु और दोनों में कॉमन है सिर्फ वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग। ऐसे ही अन्य जो दो आनुपूर्वी हैं- तिर्यंचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी उनका भी उदय यहां तक ही है, आगे नहीं है, उसीको कहेंगे उदय की व्युच्छित्ति और तीन रह गयी यहां पर, कौनसी ? दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति इनका उदय यहां तक ही है आगे नहीं हैं। देखो, हमने देखा था अयशस्कीर्ति का बंध तो छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज तक था, परंतु उदय चौथे तक ही है आगे पांचवें और आगे के गुणस्थानवालों में अयशस्कीर्ति का उदय नहीं पाया जाता, उसका उदय यहीं तक है। ऐसे ही ये दुर्भग है और अनादेय है ये जो अशुभरूप प्रकृतियां हैं, उनका उदय भी आगे चलकर नहीं पाया जाता।

अब आगे बढ़ेंगे हम पांचवें गुणस्थान की व्युच्छित्ति देखेंगे। यह तो कुछ पहली बार सुनकर ये प्रकृतियां याद रहनेवाली हैं नहीं, फिर भी सुनेंगे तो सही न पहली बार, कभी ना कभी तो पहली बार होगा। *श्रोता: अयशस्कीर्ति का उदय क्या पंडितजी को हुआ था ? वे तो सम्यग्दृष्टि थे।* आप कहते हैं पं. टोडरमलजी को अयशस्कीर्ति का उदय हुआ था क्या ? वे सम्यग्दृष्टि थे। क्या ऐसा हुआ था ? *श्रोता: चौथे गुणस्थानवर्ती।* हां, परंतु हम उसको अयशस्कीर्ति नहीं कह सकते। क्यों ? उन पर कोई संकट आना यह अयशस्कीर्ति नहीं हो सकती। किसी मूर्ख ने उनके बारे में कुछ अन्य सोच लिया... मेरा दूसरा प्रश्न है- परसों हनुमानजी की बात आयी थी न, वह तो मोक्ष गये हैं। कामदेव थे, विद्याधर थे, मुनि होकर मोक्ष चले गये हैं। उनको अभी बंदर का रूप दिया है तो उनके अयशस्कीर्ति का उदय है कि यशस्कीर्ति का है ? यह लोगों की कल्पना है। यह मूर्खों की कल्पना है क्योंकि वे तो सभी कर्मों का नाश करके मोक्ष गये हैं; अयशस्कीर्ति, यशस्कीर्ति की कोई बात नहीं है। पांचवें गुणस्थान और ऊपर तो यशकीर्ति का ही उदय होता है, अयशस्कीर्ति का तो होता ही नहीं हैं।

पं. टोडरमलजी पांचवें गुणस्थानवर्ती थे, उनके तो कोई अयशस्कीर्ति का उदय नहीं है। उनका यह जो स्पष्ट वक्तापना किसीको नहीं सुहाया। ऐसा होता है न, सच्ची

बात है और बतायें तो सबको सुहाता कहां है ? भले सच्ची है और भले बिलकुल मोक्षमार्ग की जो सच्ची बात है, वह बतायी उन्होंने। परंतु जो मोक्षमार्ग का नाम लेकर कुछ अन्य बातें कर रहे थे या जिनकी भूलें हो रही थी, उनको तो गुस्सा आना स्वाभाविक है। क्योंकि अपनी मन चाहे जो बात नहीं हो रही है और कोई स्पष्ट रीति से बोल रहा है। एक-एक बात गलत है, तो गलत को गलत बता रहे थे। वह किसीको नहीं सुहाया और उसने उलटा जाकर राजा को कोई झूठ कहानियां बताकर उनको जो कोई दण्ड दिलवाया। बाद में उस राजा को भी पता चला था। अब बाद में पछताने से क्या होता है ? ख्याल में आता है न ? यानी स्वयं राजा ने जो दुष्कृत्य किया था कि अन्यमतियों की झूठी शिकायत सुनकर बातें की थी। यह हो सकता है जैनियों ने किसीने शिकायत की होगी न, अन्यमतियों की क्या बात है ? *श्रोता: क्या बात है !* जैनी ही जैनियों के शत्रु होते हैं। अन्यमति को क्या पड़ी है तुम मोक्ष कैसे प्राप्त करोगे ? वह व्यवहार मोक्षमार्ग क्या होता है और निश्चय क्या होता है ? सच्चा क्या है और झूठा क्या है ? तो ऐसी बातें तो चलती ही रहती हैं। हम कर्मों के उदय के रूप से देखेंगे तो उनके कोई पूर्व कर्म का ऐसा उदय आ गया था, असातावेदनीय का कहो या अन्य कोई। परंतु वे बिलकुल निश्चितरूप से उदयरूप संयोग में जुड़े नहीं थे, ख्याल में आता है न ? उसको हम अयशस्कीर्ति नहीं कह सकते। मूर्ख लोगों की कल्पना वह उनका अयश हुआ, ऐसी बात है ही नहीं है। क्यों ज्ञानी तो जानते थे, उनका तो कितना यश था। पं. टोडरमलजी का यश बहुत था और पूरे हिन्दुस्तान में लोग उनको जानते थे। उनके जमाने की जो इन्द्रध्वज विधान नाम की पत्रिका छपी थी, उसका आपने वर्णन पढ़ा है कभी ? हां तो वहां उनको सुनने के लिये कहां-कहां से लोग आते थे। उनको अयश था, ऐसी कोई बात नहीं है और यश का उदय हो या अयश का उदय हो उससे क्या है ? एकेन्द्रियों के भी यशस्कीर्ति का उदय पाया जाता है। जो बादर एकेन्द्रिय हीरा, माणिक वगैरह में उत्पन्न हो रहे हैं, उनके क्या हो रहा है ? उससे क्या होगा ? ये तो बाह्य चीज़ें हैं।

पूर्व पुण्य के उदय में जो कुछ बातें बनती हैं; वह पुण्य का उदय हो या पाप का उदय हो, ये जो सारे संयोग हैं, उदयरूप से जो प्राप्त हो रहे हैं वे तो मेरेसे भिन्न ही हैं, बस इतना हमें पहले में पहले नक्की करना है। कोई ऐसी बात नहीं है कि जो

ऑक्सिडेंट में मरा है इसलिये वह कुछ बहुत संक्लेश में मरा है ऐसा भी नहीं कह सकते। क्यों ? उस समय वह अगर तत्त्वविचार में मरता हो तो ? वह ठीक है यह जो कुछ बातें बननी हैं, तो जो बननी हैं वैसी बनेगी, निमित्त भी वैसा ही बनेगा। हम उसको देख रहे है कि अरे रे कितना दुखी है, हो सकता है उस समय उसके समाधि में यानी उसके शुद्धोपयोग में मरण हुआ हो। बाह्य परिस्थिति को देखकर, हम अंदाज़ा नहीं लगा सकते। लोग बाह्य परिस्थिति देखते हैं, कहां मरा ? पलंग के ऊपर मरा कि चटाई के ऊपर मरा ? गुरुदेवश्री के ऊपर आरोप आता है पूरे महाराष्ट्र में, मालूम है ? *श्रोता: जसलोक में।* मरा ऊधर मरे तो चटाई पर नहीं सो सकते थे ? चटाई में मरने में क्या हो जाता है ? कुछ फर्क पड़ता है ? अरे हां, वे पद्धतियां हैं पर उसकी बात नहीं है। हमने इतने तक देखे हैं, कोमा में पेशंट है और उसको बेड से नीचे चटाई पर लेते हैं, उसको बाह्य से कुछ व्रत दे देते हैं। क्यों, देखा है कि नहीं देखा है ? क्या उस जीव के परिणाम हैं उसमें ? कि बाह्य में कुछ क्रियायें करने से उसको कुछ फल मिलनेवाला है ?

हमने तो यहां तक देखा है, अमेरीका जैसे देश में, माफ़ करना यहां के कोई नहीं हैं। अटलांटा में हमसे किसीने प्रश्न पूछा था कि हमारे माता-पिताजी मर गये हैं, हम बहुत पूजायें वगैरह करते हैं और हम उनकी फोटो लेकर वह भगवान के सामने ऐसे फोटो का माथा झुकाते हैं; तो उनको फल मिलेगा कि नहीं मिलेगा ? उनको शांति मिलेगी कि नहीं मिलेगी ? अरे वह जीव तो चला गया है, अन्य गति में चला गया है, उसके जो परिणाम चल रहे हैं, उसके अनुसार उसके जो सुख-दुःख वह भोग रहा है। हमारे कुछ भी कहने-करने से उसको कुछ भी फल मिलनेवाला नहीं है। उसकी शांति के लिये हम पूजा तो करेंगे न ? अपनी शांति के लिये करो और वह भी वीतराग भगवान का स्मरण करेंगे तो शांति मिलेगी। जो गया है उसके लिये रोने से कुछ शांति नहीं मिलनेवाली। हम कैसी कल्पनायें कर लेते हैं और उसीमें उलझे रहते हैं, ख्याल में आया न ? फिर वह पूजा भी जिसको उसमें कुछ पता ही नहीं वीतरागता क्या होती है ? पूजा के लिये पूजा कर देते हैं, कुछ ॐ ह्रीं चलता है, होम जला देते हैं और घर के बाकी सब बैठते हैं वहां पर। क्या करें ? बैठना तो पड़ता हैं न ? फिर कैसे-कैसे अर्घ्य बना देते हैं और फिर चढ़ा देते हैं, बस हाथ लगाते हैं और हो गयी पूजा हमारी। क्या बोल रहे हैं ? किसको अर्घ्य चढ़ा रहे हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? कुछ पता नहीं हैं।

यह हमने बचपन से जो देखा है वह बता रहे हैं। आपने कुछ देखा ही नहीं, आपको क्या बतायें ? यह हमारे साथ शिबिर में महाराष्ट्र की बहुत महिलायें आयी हैं और उन्होंने भी जो घरों में देखा है, इसकी बात हम यहां कर रहे हैं। शहरों में तो यह कुछ नहीं चल रहा है और हमने तो पहले से, गुरुदेवश्री को जिन्होंने जन्म से ही पाया है, उनको तो ऐसी अटपटी बातें मालूम ही नहीं है। इसलिये आपको ऐसा आश्चर्य लगता होगा कि ऐसा भी होता है कहीं ? होता नहीं है, चल रहा है, चला आ रहा है। बहुत कुछ होता है और लोग बहुत कुछ आकर हमें बताते भी हैं। *श्रोता: बिना पूछे ?* बिना पूछे ही क्या करें ? दुःख किसके पास बतायें ? जैसे ॲज अ डॉक्टर लोग मुझे घर की भी बातें सुनाते रहते हैं। क्या करें ? घर में कुछ बोलेंगे तो क्या होगा ? अच्छा नहीं लगेगा न ! सास को नहीं अच्छा लगेगा, तो जो कुछ बातें हैं मेरे पास आकर बताते हैं और यहां भी ऐसा होता है। क्या करे ? जो बड़े महंत लोग हैं, वे अगर उपसर्ग करने लगे तो किसको बतायें ? आकर हमारे पास बताते हैं। उसका सोल्युशन नहीं मिलता है, मगर कहीं तो अपनी भावना व्यक्त करना चाहते हैं। हां ऐसा ही है, ये सब बहनें यहां बैठी हैं, वे हंस रही हैं, क्या करें ? कोई संकट आता है गांव पर तो यहां चले आते हैं शिबिरों में। नहीं तो वहां रहने से उपयोग तो भ्रष्ट होनेवाला ही है। चलो हमने चौथे गुणस्थान की उदय की व्युच्छित्ति देखी, आगे देखेंगे पांचवें गुणस्थान की २६७ नंबर की गाथा है।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी।
छट्ठे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा॥ २६७॥

देशसंयत में अभी वहां कौनसे कषाय हैं और जो चले जायेंगे ? प्रत्याख्यानावरण का उदय है पांचवें में और ऊपर कहीं भी नहीं है। तो वहां पांचवें गुणस्थान में उदय की व्युच्छित्ति में पहले में पहले प्रत्याख्यानावरण चार। अब कौनसी गति पांचवें तक है और ऊपर नहीं है ? *श्रोता: तिर्यंचगति।* तिर्यंचगति में पांचवां गुणस्थान है। है न, ऊपर के गुणस्थान मात्र मनुष्यों में होते हैं। यहां तिर्यंचगति के उदय की व्युच्छित्ति हो गयी, तिर्यंचायु के भी उदय की व्युच्छित्ति यहां ही हो जायेगी और उनमें जो पाये जाते हैं ऐसे नीचगोत्र और उद्योत की भी उदय की व्युच्छित्ति यहां पर हो जाती है। देखो संज्ञी पंचेन्द्रिय, यह जो उद्योत नाम की प्रकृति है न, उद्योत का कार्य क्या है मालूम है ? उद्योत प्रकृति के उदय में क्या होता है ? ये जो शरीर है न,

चमकीला शरीर जैसे वह जुगनू है; हां, क्या कहते हैं ? अगिया, काज़वा हां मराठी में काज़वा; अगिया हां या ऐसी कोई मछलियां भी होती हैं वह रात में चमकती हैं फॉस्फरस होता है उनमें, तो ये सारा क्या है ? उद्योत प्रकृति का उदय है। ये संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी पाया जाता है। ऐसे तिर्यंच सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। पांचवें गुणस्थान तक भी जा सकते हैं। तो उद्योत प्रकृति का उदय तिर्यंचों में ही पाया जाता है; मनुष्यों में, देवों में, नारकियों में तो नहीं होता। तो कहां तक पाया जायेगा ? पांचवें गुणस्थान तक पाया जायेगा। इसलिये उसके उदय की व्युच्छित्ति भी यहीं पर बतायी है। पांचवें गुणस्थान में कौन-कौनसे देखे हमने ? प्रत्याख्यानावरण चार, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र और उद्योत इन ८ प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति पांचवें गुणस्थान में होती है। हम सुन लेंगे तो बाद में कभी-कभी याद भी करेंगे उसको। हम घूमने जाते हैं, रोटी बनाते हैं तभी यह याद करना, क्यों ? मौन से रहना और याद करते रहना या आपस में बातें करेंगे तो भी वह व्युच्छित्ति की बातें करना। चलो तुम बोलो उदय की व्युच्छित्ति, हम बोलेंगे बंध की व्युच्छित्ति। फिर झगड़ा करने को कौनसा मौका रहेगा ?

आगे जो छठे गुणस्थानवर्ती है; देखो, छठे गुणस्थान में जिसका उदय है और ऊपर कहीं भी नहीं पाया जायेगा ऐसे क्या हैं ? *श्रोता: आहारक।* एक तो आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग तो हैं ही हैं। अभी पांचवें गुणस्थान तक तो अनुदयरूप थे, छठे में उदयरूप हैं परंतु ऊपर तो कहीं भी उनका उदय नहीं है। तो उदय की व्युच्छित्ति में आहारकद्विक को लिया और किसको लिया यहां पर ? स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा और प्रचला-प्रचला। यानी उनका उदय छठे तक हो सकता है, ऊपर के गुणस्थानों में नहीं हो सकता है। बंध की व्युच्छित्ति हमने दूसरे में देखी थी; स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला का बंध तो दूसरे तक ही था, परंतु उदय कहां तक है ? छठे तक है। यहां तक उसके उदय है, ऐसा नहीं समझना कि मुनि हैं, ऐसे सोते होंगे तो क्या होता होगा ? उनकी तो निद्रा अत्यंत अल्प है क्योंकि छठे, सातवें गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में जाते हैं तो उनकी निद्रा अंतर्मुहूर्त से भी छोटे अंतर्मुहूर्त मात्र में होती है। फिर भी ये जो परमाणु हैं उदयरूप हैं। उसका अनुभाग कितना मंद होता हुआ आया है यहां पर, क्योंकि जबसे सम्यग्दर्शन हुआ है तबसे अनुभाग मंद-मंद-मंद होते आया है। उसके पहले से ही अनुभाग मंद हुआ था,

सम्यक्त्व के काल में भी अत्यंत मंद अनुभाग था। फिर भी जो परमाणु उदय में हैं, केवलज्ञानी ने जो जाने हैं तो यहां तक उसका उदय बताया है। इसके आगे इसका उदय नहीं पाया जाता। ये जो ५ हैं इनकी छठे गुणस्थान में उदय से व्युच्छित्ति होती है।

यहां जो '**व्युछिन्नाः**' शब्द आया है, वह २६६ में या २६८, २६९ गाथाओं में पहले और बाद में नहीं आया है इसको कहते हैं यहां मध्यदीपक। यह मालूम है मध्यदीपक क्या है ? अंत्यदीपक क्या है, सुना है कभी ? हां, एक होता है आदिदीपक, एक होता है मध्यदीपक और एक होता है अंत्यदीपक। इसका अर्थ क्या है ? यह ऐसा लंबा चौड़ा बड़ा हॉल है और हमने एंटर करते ही यानी अंदर प्रवेश करते ही वहां स्विचऑन कर दिया। पहलेवाला बल्ब चालू हो गया तो उसका प्रकाश कहां तक फैलता है ? पूरे हॉल में। तो उसको कहेंगे आदिदीपक और फिर मध्यभाग में कोई दिया जलाये तो उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: मध्यदीपक।* उसका भी प्रकाश। *श्रोता: दोनों तरफ।* आगे पीछे दोनों तरफ और लास्टवाला करेंगे तो वह अंत्यदीपक। उसका भी प्रकाश शुरू तक, आदि तक सर्वत्र है। तो यह जो व्युछिन्नाः शब्द है यहां, उन्होंने मध्यवाली गाथा में यूज़ किया। पहले नहीं कहा था, बाद में नहीं कहा है फिर भी इसका अर्थ दोनों तरफ जान लेना है। यहां जो उदय की व्युच्छित्ति की बात चल रही है, अन्य कुछ नहीं हैं इसको कहेंगे मध्यदीपक शब्द। अंत्यदीपक तो हमारे सबके परिचय का है कौनसा है ? *श्रोता: णमो लोए सव्व साहूणं।* हां, णमो लोए सव्व साहूणं। तो लोए सव्व जो शब्द है - णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं हर जगह लगता है परंतु हम बोलते एक बार ही। परंतु वह समझना सभी पदों में उसको लगाना है। इसको कहेंगे वहां अंत्यदीपक और कभी-कभी शुरुआत में नाम लेंगे, ऐसे सर्वश्री कहेंगे - फिर आगे सभी मुमुक्षुओं की लिस्ट बतायेंगे तो ये सर्वश्री कहो या जो कुछ लिखना है, वह सबके लिये ॲप्लिकेबल है। इसतरह से उसको आदिदीपक कहेंगे।

अब आगे देखते हैं, आगे की गाथा २६८ में। अभी तक हमने कहां तक देखा ? छठे गुणस्थान तक देखा। पहले गुणस्थान में हमने १० देखे, दूसरे में ४। हम एक पक्ष की बात करेंगे, अभी हर बार दो-दो की बात नहीं कहेंगे। पहले गुणस्थान में १० के उदय की व्युच्छित्ति। दूसरे में ? *श्रोता: ४।* ४ की। तीसरे में ? *श्रोता: १ की।* १ की। चौथे में ? *श्रोता: १७।* १७। पांचवें में ?*श्रोता: ८।* ८ और छठे में ? *श्रोता:* ५। ५। अब आगे

बढ़ेंगे सातवें की बात करेंगे यहां पर गाथा नंबर २६८।

अपमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी यऽपुव्वम्हि।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टीभागभागेसु॥ २६८॥

अप्रमत्त यानी सातवां गुणस्थान, देखो वेदक सम्यक्त्व कहां तक है, वेदक यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व ? *श्रोता: सातवें।* सातवें तक यानी कहां से कहां तक ? चौथे, पांचवें, छठे, सातवें; उसके ऊपर सम्यक् प्रकृति का उदय नहीं पाया जायेगा क्योंकि ऊपर या तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के साथ श्रेणी चढ़ेगा या क्षायिक सम्यक्त्व के साथ चढ़ेगा। यानी सम्यक् प्रकृति का उदय कहां तक पाया जायेगा ? सातवें तक। इसलिये उसके उदय की व्युच्छित्ति को सातवें में ले लिया। जो प्रकृति हम पढ़ रहे हैं वहां 'क्यों' ऐसा प्रश्न हम अपने आपको पूछे तो ऊपर उसका उदय नहीं होता इसलिये यहां पर ले लिया। तो सम्यक् प्रकृति लिया और आगे तीन संहनन लिये, कौन-कौनसे ? अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका। ये संहनन कौन-कौनसे होते हैं ? पहले से हम देखते हैं। छह संहनन होते हैं; पहला है वज्रवृषभनाराचसंहनन, दूसरा वज्रनाराचसंहनन, तीसरा नाराचसंहनन, चौथा अर्धनाराच, पांचवां कीलित और छठवां असंप्राप्त असृपाटिका यानी असंप्राप्तासृपाटिका। तो इन तीन संहनन के उदय की व्युच्छित्ति यहां तक है। इसका अर्थ है- यह नीचे के तीन संहननवाले जीव सातवें गुणस्थान तक का पुरुषार्थ कर सकते हैं, परंतु ये नीचे के तीन संहननवाले जीव श्रेणी नहीं चढ़ सकते। ना उपशमश्रेणी चढ़ सकते हैं ना ही क्षपकश्रेणी चढ़ सकते हैं।

यह संहनन के कारण कुछ श्रेणी-वेणी चढ़ना नहीं होता परंतु ऐसा ही सहज निमित-नैमित्तिक संबंध होता है कि उनके इतना ही पुरुषार्थ हो सकता है। ऐसा ही सहज वह सुमेल रहता है। शरीर के कारण यहां कुछ ध्यान–ब्यान अधिक होता है ऐसी कोई बात नहीं हैं। शरीर के कारण होता हो तो फिर चक्रवर्ती जो गृहस्थ अवस्था में ही रहता है और उसीमें रचा-पचा रहता है तो मरकर तो सातवें नरक में जाता है। वह भी वज्रवृषभनाराचसंहननवाला है। वह क्यों गया नरक में ? मोक्ष जाना चाहिये था। ऐसी कोई बात नहीं है। यहां भरतक्षेत्र में जो हम देख रहे हैं, अब इस पंचमकाल में, नीचे के तीन ही संहनन पाये जाते हैं। इस काल में जन्मनेवाले के ऊपर के तीन संहनन होते ही नहीं हैं। इसलिये कर्मभूमि में पंचमकाल का जन्मा हुआ जीव, सातवें गुणस्थान तक का

पुरुषार्थ कर सकता है, ऊपर श्रेणी का पुरुषार्थ उसके नहीं होता। चौथे काल में ये छहों संहनन पाये जाते हैं तो ऊपर के जो संहननवाले हैं, वे श्रेणी चढ़ते हैं। उपशम श्रेणी कौन चढ़ सकता है ? क्षपकश्रेणी कौन चढ़ सकता है ? उसकी बात हम देखेंगे आगे।

श्रोता: स्त्रियों को कौनसा ? हां, स्त्रियों को भी नीचे के तीन ही संहनन होते हैं; कर्मभूमि की स्त्रियों को नीचे के तीन संहनन ही होते हैं। *श्रोता: स्त्रियों को मोक्ष है ?* मोक्ष भी नहीं हैं और सातवां नरक भी नहीं है। स्त्रियों को तो पांचवें गुणस्थान के ऊपर के गुणस्थान भी नहीं होते। भले तीन संहनन हो सकते हैं, परंतु उनके छठा-सातवां गुणस्थान नहीं होता। ऐसा ही उनका पुरुषार्थ कहां तक होता है ? जो केवलज्ञानियों ने जानकर बताया है, उसकी चर्चा - उसका कथन यहां आगम में बताया है। यह कोई स्त्री-द्वेषी थे, सारे आचार्य पुरुष थे, इसलिये ऐसी रचना की, ऐसा कहनेवाले भी मिलते हैं हमको। हां, तो ऐसा कहनेवालों ने जिन्होंने स्त्री मुक्त होती है ऐसा कह दिया उनके पीछे और ज्यादा भीड़ जमा हो गयी। क्यों ? क्योंकि स्त्रियों को भी मुक्ति दिला दी उन्होंने; घर बैठे-बैठे भी मुक्ति दिला दी किसी-किसीको। किसीको हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया ऐसा कथन किया। तो यह ऐसा है न, सबको फ्री में, हां किसीको चावल बाटें, किसीको टीव्ही बाटें। तो वह तो क्या होता है ? फिर व्होट मिलते हैं। आपके साउथ में होता हैं न ऐसा कुछ ? हां, यहां भी होता है बहुत कुछ होता है।

ऐसा ही कुछ नया पंथ स्थापित किया, तो जो कुछ नयी गलत रचनायें हुयी हैं और उसकी पुष्टि के लिये कुछ मिथ्या ऐसी खोटी-खोटी कथायें भी बना दी हैं और उनको ही अपने आगम बना दिये हैं और कहते हैं हमारे इतने पैंतालीस आगम हैं वह सब ओरिजिनल हैं। अब क्या करें ? गुरुदेवश्री स्वयं जिस पंथ से आये थे, बारंबार कहते हैं हमने वहां के लाखों श्लोक पढ़े हैं, लाखों पुस्तकें, सभी कुछ पढ़ा है और सब कुछ झूठी रचना है, कल्पित रचना है। कौनसे पेज पर कहां क्या लिखा है इनका भी उन्होंने उल्लेख किया है। कितने-कितने ग्रंथों में आती है बात। क्योंकि सारा पढ़कर, फिर पता चल गया उनको कि यह सारी झूठी कल्पना - कपोल कल्पना है। फिर जब दिगम्बर शास्त्र हाथ में आ गये तो नक्की हुआ यही मोक्ष का उपाय है। जब समयसार हाथ में आया न, तो उन्होंने कहा 'आ तो अशरीरी थवानुं शास्त्र छे।' अब बाकी भी अन्यमति में से यहां आ गये, सच्चे जिनमति हो गये। तो ऐसा ही है। जिसको सही रास्ता

मिला है अभी उसको अन्य दुनिया क्या करती है उससे कोई मतलब नहीं रहता। जाने दो उसको। अभी अपना कल्याण करने का समय आ गया है क्योंकि यह तो दुनिया को सुधारने से वह सुधरनेवाली नहीं है। जहां तक बताने का राग आता है तो बताओ, नहीं तो चुप हो जाओ और शीघ्र में शीघ्र अपने आप में अपना कल्याण करो क्योंकि फिर ऐसा मौका कहां आनेवाला है ?

यहां जो बात हो रही थी, सातवें गुणस्थान में सम्यक् प्रकृति और तीन संहनन नीचेवाले; कौन-कौनसे तीन ? *श्रोता: अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका।* अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन और सम्यक् प्रकृति इन ४ के उदय की व्युच्छित्ति होती है। आठवें गुणस्थान में छह नोकषाय - कौनसे ? हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा; आठवें गुणस्थान में छह नोकषाय यानी तीन वेदों को छोड़कर बाकी जो ६ हैं- हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इनके उदय की व्युच्छित्ति होती है। यहां तक ही उनका उदय है आगे उनका उदय नहीं पाया जाता। अब आगे नौवें गुणस्थान में, नौवें गुणस्थान के पहले भाग तक वेद का उदय पाया जाता है। कौनसे वेद का ? *श्रोता: तीनों वेद।* तीनों ही वेदों का। बंध पुरुषवेद का था, यहां द्रव्य से तो पुरुष ही हैं ये जीव, मुनिराज हैं और यह भाववेदों की बात है; भाववेदों में, किसीके पुरुषवेद का उदय है, किसीके स्त्रीवेद का और किसीके नपुंसकवेद का। देखो, जब भावों की बात करते हैं तो उनके परिणामों में ऐसी कोई विचित्रता या खोट कुछ नहीं है, ना ही उनकी कोई क्रियायें ऐसी हैं। यह तो केवलीगम्य बाते हैं वहां कौनसे कर्मों का उदय चल रहा है उसको यहां बताया है। वैसे तो पांचवें गुणस्थान में उन्होंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा अंगीकार की है और उसके पहले से उनको उस संबंधी सारे विकल्प आदि छूट गये हैं। फिर भी वेद नोकषाय कर्म का उदय है, उस अपेक्षा से यहां तक यह वेद है।

वहां आगे चलकर हमने देखा था न, वह मैथुन संज्ञा भी यहां तक होती है। संज्ञा जो है चार प्रकार की आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। तो जहां तक विशिष्ट कर्म का उदय है वहां तक वह संज्ञा भी बतायी है। परंतु उनके आचरण में ऐसे कोई दोष नहीं हैं, ना ही उनके विकल्पों में ऐसी कोई बातें होती हैं। फिर भी वहां तक कर्म का उदय पाया जाता है इसलिये कर्म का उदय बताने के लिये यह बात आती है कि वहां तक

मैथुन संज्ञा है क्योंकि केवली भगवान ने उनके वेद कर्म का उदय वहां तक देखा है। यह भी बात है कि जिस जीव को जिस भाववेद का उदय जन्म से है, वही भाववेद उसका थ्रूआउट लाइफ टाइम रहता है। बीच में उसमें कोई चेंजेस नहीं होते हैं कि पहले वह पुरुषवेदी था और बाद में स्त्रीवेदी होता है ऐसा बिलकुल नहीं होता है। कुछ अलग सुना हो तो सुधार लेना। क्यों बहन ? हां, एक उसको परिवर्तनीय ऐसा शब्द आया है, धवला में भी, तो परिवर्तनशील का अर्थ ऐसा होता है कि भाव से और द्रव्य से जो कुछ उलटा-पुलटा होता है, ऐसा परिवर्तन कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों में हो सकता है। देवों में जो पुरुष हैं वे भाव से भी पुरुष हैं, जो द्रव्य से स्त्रियां हैं वे भाव से भी स्त्रियां हैं। नारकियों में तो सारे नपुंसक ही हैं। भोगभूमि में भी जो द्रव्य से और भाव से एक ही वेद होता है और यहां मनुष्य और तिर्यंचों में यह उलट-पुलट भी हो सकता है इसलिये इसको परिवर्तनशील कहते हैं। परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि जन्म के समय कोई पुरुषवेदी था और बाद में वह स्त्रीवेदी हुआ है।

हमें लोग पूछते हैं हमने पेपर में पढ़ा है न, क्या ? कुछ ऑपरेशन कर दिया, कुछ ड्रग्स ले लिये और वह स्त्री से पुरुष हो गया और बाद में उसको गर्भ रह गया। अरे ! हम भी तो वही प्रूव्ह कर रहे हैं कि गर्भ रह गया इसलिये वह स्त्री है। बाहर से दिखने में उसने कुछ चेंजेस कर दिये तो क्या हो गया ? ख्याल में आती है बात ? जो भाववेद जन्म से है वही भाववेद मरण तक रहेगा या दूसरा कौनसा ऑप्शन है ? श्रेणी चढ़ेगा तो वेद का अभाव हो जायेगा, उदय मिटेगा, नौवें तक ही उदय है। श्रेणी चढ़कर ऊपर चला जायेगा तो वह उदय ही नहीं है। तो यह हो गयी नौवें गुणस्थान की बात। नौवें गुणस्थान के स्टार्टिंग में वेद का उदय था तो उसकी व्युच्छित्ति होती है पहले भाग में यानी पहले भाग में उदय है अब उदय की व्युच्छित्ति हुयी। आगे संज्वलन कषायों का और अन्य का उदय है। अभी तो हम बंध की बात करते हैं न, बंध में तो पांच ही लेना था वहां पर। अब यहां भी देखते हैं देखो, हां, यहां अनिवृत्तिकरण में सवेदभाग और अवेदभाग ऐसे दो भेद करेंगे। सवेद यानी जहां तक वेद कर्म का उदय है उसको सवेद कहेंगे और जहां वेदों का उदय रुक जाता है, मिट जाता है, बंद हो जाता है उसके बाद कहेंगे अवेद या अपगतवेद। क्या कहा ? अवेद या अपगतवेद। उसमें किस-किसका यह उदय मिट जाता है ? उसको हम देखते हैं, २६९ गाथा।

वेदतिय कोहमाणं माया संजलणमेव सुहुमंते।
सुहुमो लोहो संते वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

अनिवृत्तिकरण का वेद सहित भाग उसमें तीन वेदों के उदय की व्युच्छित्ति हुयी क्योंकि पहले भाग में उदय है, आगे कहीं भी नहीं है। यह नाना जीवों की अपेक्षा बात कर रहे हैं इसलिये तीनों वेद लिये। अवेदभाग में, अभी वेद का उदय रुक गया, अब किसका नंबर आयेगा ? संज्वलन क्रोध का उदय हो रहा था उसका उदय मिटेगा। जब तक संज्वलन क्रोध का उदय था तब तक क्रोध, मान, माया, लोभ चारों ही बंध रहे थे। जब उदय मिट गया तो क्रोध का बंध भी मिट गया; मान, माया और लोभ का बंध हो रहा है। फिर मान का उदय मिटते ही मान का बंध भी रुक जायेगा; फिर माया, लोभ दोनों का बंध चलता रहेगा। उदय तो किसी एक का होता है। जब माया का भी उदय मिट जायेगा तो उसका बंध भी मिट जायेगा। फिर लोभ का उदय और लोभ का बंध नौवें तक, नौवें तक की बात चल रही है। तो अनुक्रम से संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया के उदय की व्युच्छित्ति हुयी। यहां उदय की व्युच्छित्ति चल रही है न, परंतु यहां लोभ को लेना है तो बादर लोभ कहना पड़ेगा। लोभ का उदय तो दसवें में भी है। दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ का उदय है और यहां नौवें गुणस्थान में बादर लोभ का उदय है। परंतु यदि हम पूछेंगे संज्वलन लोभ कहां तक है ? *श्रोता: दसवें तक।* दसवें तक है। संज्वलन लोभ के उदय की व्युच्छित्ति कहां कहेंगे ? दसवें में कहेंगे। अब नौवें में किसकी-किसकी कहेंगे ? पहले भाग में वेद की, कितने वेद ? तीनों। तो तीन वेद, क्रोध, मान और माया यहां आयी है न बात यहां देखते हैं। अनिवृत्तिकरण में, पहले सवेदभाग में तीनों वेद, फिर संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान और संज्वलन माया और बादर लोभ भी यहां कह सकते हैं, परंतु मात्र संज्वलन लोभ कहना है तो हम यहां नहीं कहेंगे और सूक्ष्मसाम्पराय में क्या है ? वहां सूक्ष्मलोभ का उदय है, ऊपर के गुणस्थानों में तो उदय ही नहीं है कोई मोहनीय का, तो यहां दसवें में उसके उदय की व्युच्छित्ति हुई कहेंगे।

उपशांत कषाय यानी ग्यारहवें गुणस्थान में वज्रनाराच और नाराच संहनन; यहां वज्रनाराच, नाराच इन दो संहनन की व्युच्छित्ति होती है। इसका अर्थ है- उपशमश्रेणी चढ़नेवाले जो जीव हैं। हमने पहले देखा था सातवें गुणस्थान में कौनसे संहनन के उदय

की व्युच्छित्ति हुई थी ? *श्रोता: अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका।* नाराच नहीं अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका यानी वे तो उपशमश्रेणी नहीं चढ़ सकते, ना ही क्षपकश्रेणी चढ़ते सकते थे, परंतु यहां दो संहनन लिये, कौनसे ? *श्रोता: वज्रनाराच और नाराच।* वज्रनाराच और नाराच। ये तो उपशमश्रेणी चढ़ सकते हैं, परंतु क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकते। वज्रवृषभनाराचवाला तो कहीं भी जायेगा, वह चढ़ेगा, उसकी बात नहीं है क्योंकि वह तो ऊपर के गुणस्थानों में भी पाया जायेगा। परंतु ये ग्यारहवें तक ही पाये जानेवाले दो संहनन हैं। कौनसे ? *श्रोता: वज्रनाराच और नाराच।* वज्रनाराच और नाराच, यानी वज्रनाराच और नाराच संहननवाले उपशमश्रेणी तो चढ़ सकते हैं परंतु क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकते यह इसका अर्थ होता है। देखो, कैसा यह सारा ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताते हैं। यानी कहीं पर भी कोई ऐसे कॉन्ट्रॅडिक्शन भी नहीं होती है और कोई फालतू की बात, जो मन चाहे ऐसी कोई बीच में घुसेड़ दी ऐसी कोई बात है नहीं है। बिलकुल सायंटिफिक है सारा। इन दो संहनन की व्युच्छित्ति यहां पर हो जाती है। अब बारहवें गुणस्थान की बात करते हैं २७० नंबर की गाथा।

खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि॥ २७०॥

क्षीणकषाय यानी बारहवें गुणस्थान के अभी अंतिम दो समय हैं जिसको कहेंगे चरम और द्विचरम या अंत्य और उपांत्य; लास्ट और लास्ट बट वन। ऐसे अंत के जो दो समय हैं, उसमें द्विचरम समय में यानी उपांत्य समय में निद्रा और प्रचला इन दो के उदय की व्युच्छित्ति होती है। यहां तक उसका उदय बताया है। तो आप पूछेंगे बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव सोते होंगे ? अरे ! वहां निद्रा कर्म जो है जो पहले था उसका कितना अनुभाग मंद हुआ है फिर भी केवलीगम्य उदय है तो उदय है बतायेंगे। तो उदय की व्युच्छित्ति यहां हो जाती है। बारहवें गुणस्थान के उपांत्य समय में और लास्ट में अंतिम के समय में पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय और चार दर्शनावरण इन १४ की व्युच्छित्ति होती है। ये १६ हो गये- उपांत्य समय में २ और अंतिम समय में १४; बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक ज्ञानावरण भी है, दर्शनावरण भी है और अंतराय भी है। उसके बाद क्या होता है तेरहवें में ? यह सारा क्षय ही होता है न। बारहवां गुणस्थान है, यहां सबका क्षय होकर तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। तो यहां उनके

उदय की व्युच्छित्ति कहेंगे, यह उनके उदय का अंतिम समय है। उसके आगे के गुणस्थानों में उदय है ही नहीं। तो ये सारे यहां समाप्त हो जाते हैं। इसतरह यहां १६ के उदय की व्युच्छित्ति होती है। क्या प्रश्न हो रहा है ? कन्फ्यूजन है बहुत ? *श्रोता: हां।* फिर दुबारा सुनो- बारहवें गुणस्थान में किस-किसकी व्युच्छित्ति होती हैं ? यही प्रश्न है न ? फिर बताते हैं, अंतिम समय की बात नहीं है, उपांत्य समय में कौनसी दो की उदयव्युच्छित्ति होती है ? *श्रोता: निद्रा और प्रचला।* निद्रा और प्रचला और अंतिम समय में कौन-कौनसी ? पांच ज्ञानावरण, अंतराय भी पांच हैं और दर्शनावरण में से निद्रा, प्रचला अभी-अभी गयी थी एक समय पहले, अब जो बाकी चार बची थी, उनके उदय की भी व्युच्छित्ति होती है। यह उनके उदय का भी अंतिम समय है और सत्ता का भी अंतिम समय है। ऐसा क्यों कहा ? यहीं पर क्षय हो रहा है न ! बारहवां गुणस्थान है यानी क्षपकश्रेणी है; अभी इस अंतिम समय के बाद, नेक्स्ट समय में, अनन्तर समय में, केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं।

देखो, मोहनीय का क्षय कहां हुआ ? दसवें के अंत में यानी मोहनीय का क्षय पहले हो गया। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, बारहवें के अंत में हैं और वहीं पर वे नष्ट हो गये। जो है वहां पर नष्ट कहेंगे न हम, वहीं पर उसका क्षय हो गया। परंतु वहां उदयरूप हैं और उदय नष्ट हो गया। तो फिर हम कहेंगे, केवलज्ञानी हुये कैसे ? चार घातिकर्मों का नाश करके, यह जो भगवान हो गये कहो या केवलज्ञान प्राप्त किया, अनंतचतुष्टय की प्राप्ति की। देखो जीव ने कितना पुरुषार्थ किया कि नहीं किया ? सभी कर्मों का क्षय कर दिया। यह तो कथन है। वे तो अपने में लीन हो गये। तो ये कर्म स्वयं ही उनकी जो कोई योग्य अवस्था है, उसरूप परिणमित हो गये। अब यहीं रुकते हैं और आगे की जो तेरहवें, चौदहवें की उदय व्युच्छित्ति थोड़ी देर के बाद देखेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

३०. उदयस्थान

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथों की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से हम यहां कुछ स्वाध्याय कर रहे हैं। कर्मों के बंध और उदय संबंधी अपनी चर्चा हो रही है। बंध की बात देखने के बाद अभी हम उदय की व्युच्छित्ति कर रहे थे, कर रहे थे यानी देख रहे थे। करेंगे तो अच्छा हो जायेगा जितने ऊपर के गुणस्थानों में बढ़ेंगे उतने उदय की भी व्युच्छित्ति हो जायेगी। कुछ प्रश्न हैं उन्हें देखकर आगे बढेंगे।

प्रश्न: शुं मरण पछी बीजी गतिमां जणार जीवने अेक, बे के त्रण समयमां कोई योग नथी ? कार्माणकाय योग है न वहां पर। *प्रश्न: तत्त्वार्थसूत्रात क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र या अपेक्षेने भूतपूर्व नैगम अपेक्षेने भेद सांगितले। भाव नपुंसकवेदवाला क्षपकश्रेणी आरोहण करू शकतो का ? जन्मापासून मृत्युपर्यंत एकच वेद असतो का ? मनुष्य, तिर्यंचगति अपेक्षेने प्लीज उत्तर मिळेल ?* देखो, क्या कहते हैं कि भाव नपुंसकवेदवाला क्षपकश्रेणी आरोहण करता है या नहीं ? तीनों ही वेदवाले जीव क्षपकश्रेणी आरोहण करते हैं, परंतु उनको वेदवाले तब तक कहेंगे जब तक वे नौवें गुणस्थान में हैं। परंतु भूतपूर्व न्याय से हम ऐसा कहेंगे नपुंसकवेदवाले जीव भी श्रेणी आरोहण करके मोक्ष जाते हैं। स्त्रीवेदवाले भी जाते हैं और पुरुषवेदवाले भी जाते हैं। तीनों ही वेदवाले जाते हैं परंतु उनको वेदवाले तब तक कहेंगे जब तक उनका वेद का उदय है, बाद में वे अपगतवेदी हो जाते हैं। परंतु हां भूतपूर्व न्याय से हम कहेंगे यह नपुंसकवेदवाले भी मोक्ष गये। हां, जन्म से मृत्यु तक एक ही वेद पाया जाता है। *प्रश्न: स्त्रियां जिनबिंब का प्रक्षाल क्यों नहीं कर सकती ठोस कारण क्या है ?* ठोस कारण ऐसा है, जब मुनिराज हैं और उनको वंदन करने जाते हैं तो भी स्त्रियां सात हाथ दूर से वंदन करती हैं। उनका जो कुछ आहारदान आदि भी है उस समय भी अन्य पुरुष वहां विद्यमान होते हैं। तो यह तो जाहिर है कि जिनेन्द्र भगवान जो हैं वहां स्त्रियों को ऐसे उनके अभिषेक, पूजन आदि का निषेध बताया है। फिर भी बीस पन्थियों में यह प्रथा अभी चल रही है। अब किसी प्रथा के बारे में हम कुछ नहीं कहेंगे, परंतु करना योग्य नहीं है यह बात तो जरूर कहेंगे, हां।

श्रोता: माझा एक प्रश्न आहे, मराठी में है। *हां मेरा एक प्रश्न है। आपण मंदिरात*

मूर्ति प्रतिष्ठित करतो, उसका मैं हिंदी करके बताती हूं, कि हम.., मराठी बोलू ? अच्छा ! *आपण मंदिरात मूर्ति प्रतिष्ठित करतो त्यावर संस्कार होतात पंचकल्याणक करतो, एवढ़े करूनही मंदिरातील मूर्ति चोरीला जाते।* सुनो-सुनो उनका प्रश्न सुनो पहले, आगे अभी प्रश्न बाकी है। *त्यावेळी त्यावर झालेल्या संस्काराचा काहीच उपयोग नाही झाला का ? णमोकार मंत्राचा उपयोग का झाला नाही ?* णमोकार मंत्र का क्या उपयोग होता है ? कुछ संकट टल जाये ? देखो यह प्रश्न ऐसा है - हिंदी में - कि मंदिर में मूर्ति प्रतिष्ठित होती है, हम उस पर संस्कार करते हैं यानी वह पंचकल्याणक विधिपूर्वक सब करते हैं। इतना करके भी कोई चोर उसको ले जाता है। तो यह सारा हमने जो किया संस्कार वह संस्कार से वह चोर में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ क्या ? ऐसा यहां पूछना चाहते हो या ऐसा क्यों होता है ? वह तो चोरी नहीं होनी चाहिये थी और णमोकार मंत्र का कुछ भी उपयोग नहीं हुआ यानी उसका कुछ फायदा कुछ नहीं हुआ। देखो यह जो हम मूर्ति प्रतिष्ठित करते हैं तो हम उस मूर्ति में, जो मूर्ति बनी थी उसमें हम स्थापनानिक्षेप से भगवान का वहां उपचार करते हैं। उसके साथ भगवान जैसी यानी 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' जिनेन्द्र भगवान साक्षात् विराजमान हैं, ऐसी उसके प्रति हमारी भावनायें हैं और हम वैसा ही उसके साथ विनय, पूजन आदि सब करते हैं। चोरों को यह कुछ मालूम नहीं है न ! उसको तो चोरी करनी है। उसको तो उसमें कुछ और वहां दिखायी देते हैं, ऊपर चांदी के छत्र हैं या अष्ट मंगलद्रव्य हैं या जो मूर्ति इटसेल्फ आजकल करोड़ों रुपयों में या डॉलर्स में बेची जाती है तो इसलिये उसको चुराकर ले जाता है। अभी ऐसे परिणाम जो हैं वे उसके साथ रहे। हमने णमोकार मंत्र बोला है या कहा है इसलिये वह ऐसा संकट नहीं आयेगा ऐसी बात तो कुछ है ही नहीं।

णमोकार मंत्र में हम पांच परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं उनमें आचार्य, उपध्याय, साधु हैं कि नहीं हैं ? तो जिनका नाम लेकर हमारा संकट दूर होना चाहिये उन आचार्य, उपाध्याय और साधुओं पर संकट क्यों आते हैं ? ख्याल में आया न ? उन पर उपसर्ग क्यों होते हैं ? यह तो उपसर्ग होते हुये दिखायी देते हैं। उन पर क्यों उपसर्ग हो रहा है ? तो यह णमोकार मंत्र का नाम लेते हैं, इसलिये उपसर्ग दूर होता है ऐसी कोई बात नहीं है। हमे कोई संकट आता है तो णमोकार मंत्र अपने आप याद आता है न ! अन्य-अन्य कार्य में भले नहीं आये परंतु संकट काल में तो हमें णमोकार

मंत्र जरूर याद आता है। आना भी चाहिये परंतु क्या कोई हमें बचानेवाले हमारे भगवान है ? क्योंकि अन्यमति राम-राम कह रहा है। कोई अपने अल्लाह का नाम ले रहा है। कोई भगवान मुझे बचाओ ऐसा कह रहा है और हम भी णमोकार मंत्र कह रहे हैं। उसी अपेक्षा से कि हमारा संकट दूर हो जाये तो हम भी वही मान रहे हैं कि भगवान अपना कुछ भला-बुरा करनेवाले हैं, बचानेवाले हैं। यह हमारी मान्यता गलत है। हम इसलिये नाम लेते हैं कि अरिहंत, सिद्धों का नाम लेते ही उनकी वीतरागता ख्याल में आती है। उस वीतरागता का स्मरण करेंगे तो हमारा यह भय जो है न, संकट के प्रति या मरण के प्रति जो कुछ भय है उस भय का नाश होगा। यह भक्तामर के बारे में भी बहुत ऐसी भ्रमणायें चलती हैं। क्या चलती है ? वह अमुक एक श्लोक बोलेंगे तो विशिष्ट संकट दूर होगा। वह ऐसा-ऐसा कहेंगे तो ऐसा होगा अरे ! णमोकार मंत्र के बारे में भी है। ऐसा कहनेवाले भी हमने सुना है 'ण' है 'ण', 'न' के बदले 'ण' कहना ठीक भी है क्योंकि वह प्राकृत भाषा है। उससे क्या होता है ? यह फेफड़े में ऐसे-ऐसे उसके फायदे हो जाते हैं। अमुक यह करने से वह किडनी में फायदा होता है, यह सारा ऐसा कहकर मिथ्यात्व का पोषण कर रहे हैं।

हमने तो पर्चे देखे हैं णमोकार मंत्र कहने से क्या फायदा होता है ? अरे ! णमोकार मंत्र कहने से उस वीतरागता की मूर्ति हमारे ख्याल में आती है। 'णमो अरिहंताणं' कहते हैं और अरिहंत का स्वरूप हमें भासित हो, 'णमो सिद्धाणं' कहते ही सिद्धों का स्वरूप भासित हो, तो यह णमोकार मंत्र का फायदा है और हम फायदा किसमें ढूंढ़ रहे हैं? शरीर में कि फेफड़े ठीक रहने चाहिये और किडनी ठीक रहनी चाहिये। जो हम स्वयं हैं ही नहीं, उसमें हम उसके फायदे ढूंढ़ते हैं। भक्तामर के बारे में भी ऐसा ही चलता है। लोग पूछते हैं- यह हमें भक्तामर का पाठ करना है, कौनसे कलर के वस्त्र पहनकर, कौनसी दिशा में मुख करके पाठ करे ? क्योंकि ऐसी ही प्ररूपणा चल रही है सर्वत्र। भक्तामर का सही स्वरूप समझना है तो गुरुदेवश्री के प्रवचन हैं भक्तामर के ऊपर और गुजराती में पढ़ना, हिंदी में नहीं पढ़ना, हां। वह भी बताऊंगी, या मराठी में ट्रान्स्लेट किया है वह पढ़ना। हिंदी में बहुत काट-छांट हुयी है इसलिये। तो इतना गजब का है कि वह पढ़ते ही अंदर से ऐसा लगता है कि ऐसा भक्ति का स्वरूप होता है ! ज्ञानी की ऐसी भक्ति होती है। पता ही नहीं न वह भक्तामर

में क्या है। हमें तो बाह्य संकट से बचने के लिये उसकी महिमा आती है। यह संकट दूर हो गया ऐसा ही लगता है। अरे ! वह संकट संबंधी जो भय है, वह भय ही दूर हुआ। वह संकट रहे या न रहे, क्या है ? पं. टोडरमलजी को पता नहीं था ? णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिये था, जब हाथी के पैर के नीचे कुचले गये। ऐसी बात नहीं है उन्होंने भी णमोकार मंत्र कहो या भगवान का स्मरण तो किया होगा। अपने अंतरंग में आत्मा संबंधी वहां पर भी उनके विकल्प चले होंगे। या हो सकता है कि शुद्धोपयोग में चले गये हो। परंतु यह हम क्या देखते हैं कि णमोकार मंत्र कहा और बाह्य संकट दूर हुआ उसीमें उसका फायदा है। ऐसे लेख भी छपकर आते हैं कि ऐसा-ऐसा संकट आया था हमने णमोकार मंत्र जपा तो संकट टल गया। मैं णमोकार मंत्र को बहुत मानती हूं। मुझे तो बचपन से ऐसी आदत थी कि अंदर ही अंदर णमोकार मंत्र ही लगातार रटा करें। ऐसा नहीं कि किसी संकट दूर होने के लिये। तो यह सहज हमें ऐसे परिणाम आते हैं। परंतु उसके कारण मेरा संकट दूर होगा यह मान्यता ही बिलकुल मिथ्यात्व है। तो यहां जो पूछ रहे हैं णमोकार मंत्र का क्या फायदा हुआ ? वह मूर्ति चोरी हो गयी, यह बात तो चलेगी - ऐसी बातें तो चलती रहेगी, यह प्रश्न तो हो गया।

प्रश्न: मारणांतिक समुद्घात क्या सब जीवों में घटित होता है ? यह सब जीवों में हो सकता है। बहुतांशी करते हैं, थोड़े नहीं भी करते हैं। दूसरी भी जो बात है न हमने जो पहले कही थी कि पूर्व कर्म का उदय है, उसी समय जीव के परिणाम हैं और उसी समय नया बंध है। फिर भी यहां कारण का यानी निमित्त कारण का पहले कथन होता है और उससे यह बात हुयी ऐसे कहने में आता है। तो क्या कहेंगे ? पूर्व कर्म के उदय के कारण यहां जीव के परिणाम हुये तो उसमें कारण को पहले बताया जाता है और फिर उससे कार्य हुआ ऐसा कहेंगे। हमें तो पता है न द्रव्यानुयोग में जब बात करते हैं तो एक ही समय में वहां निमित्त में जो कार्य हो रहा है और यहां उपादान में जो कार्य हो रहा है उनका समय एक है। तभी तो निमित्त-नैमित्तिक का उपचार होता है। यदि समय एक न हो तो उसको निमित्त का उपचार भी नहीं होता। फिर भी कारण है तो उसको पहले कहेंगे और उसके कारण यह कार्य हुआ ऐसा कथन करने में आयेगा। यह कथन पद्धति है। वैसे ही जीव ने मोह-राग-द्वेष परिणाम किये इसलिये नया बंध होगा ऐसा भी कहेंगे क्योंकि समय तो एक है, जीव के परिणाम का और नया बंध होने

का। फिर भी क्या कहेंगे ? जीव ने जैसे परिणाम किये वैसा वहां नया बंध हो गया। जीव ने कर्म का उपशम किया ऐसा भी कथन आता है। कर्म का क्षय किया ऐसा भी कथन आता है। ये सारी समझने लायक बातें हैं यदि ऐसा कथन आता है तो यह कथन पद्धति ऐसा हमें ठीक समझना चाहिये। अब हम आगे बढ़ेंगे। क्या करें ? लोगों को प्रश्न बहुत उठते हैं। अब आगे बढ़ेंगे हम। अभी तक हमने बारहवें गुणस्थान तक के उदय की व्युच्छित्ति देखी थी। पहले गुणस्थान में हमने ५ या १० यानी अभी हम १० कहेंगे, पहले में १० कहेंगे तो दूसरे में ४ हो जायेगें, तीसरे में १, चौथे में १७, पांचवें में ८, छठे में ५, सातवें में ४ और आठवें में ६ नोकषाय, नौवें में ६, हां, ६ और फिर दसवें में १, ग्यारहवें में २ देखे थे और बारहवें में ? बारहवें में १६ हां क्योंकि उपांत्य समय में २ और अंत समय में १४ मिलकर १६। अभी हम आगे देखेंगे, तेरहवें गुणस्थान- सयोगकेवली में कौन-कौनसी प्रकृतियों के उदय की व्युच्छित्ति होती है, गाथा है २७१।

तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं।
संठाणं वण्णागुरुचउक्क पत्तेय जोगिम्हि॥ २७१॥

सयोगकेवली गुणस्थान में दो वेदनियों में से कोई एक वेदनीय, ऐसा क्यों कहते हैं ? क्योंकि किसीको साता का उदय है और किसीको असाता का उदय है। तो उन दोनों में से कोई एक यहां बता दी है। **वज्रवृषभनाराच, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, औदारिकशरीर और अंगोपांग, तेजस, कार्माण, छह संस्थान।** क्या कहा ? यह कौनसे संस्थानवाले को अरिहंत दशा प्राप्त होती है ? *श्रोता: वज्रवृषभनाराच।* वज्रवृषभनाराच तो संहनन हुआ। संस्थान कौनसा चाहिये ? *श्रोता: समचतुरस्रसंस्थान।* अभी क्या पढ़ा ? छहों संस्थानों के उदय की व्युच्छित्ति होती है उसका अर्थ क्या है ? तीर्थंकरों को समचतुरस्रसंस्थान ही होगा। अभी हमारी क्या मान्यता है ? देखो इससे तो सिद्ध होता है न ! अरिहंत अवस्था में अभी हमने क्या देखा ? छहों संस्थानों के उदय की व्युच्छित्ति अभी-अभी पढ़ा कि नहीं ? उसका अर्थ क्या है ? कोई भी संस्थान क्यों न हो उनके अरिहंत अवस्था प्राप्त हो सकती है। यह काले को होगी कि गोरे को होगी ? वह दुस्वरवाले को होगी कि सुस्वरवाले को होगी ? यहां सभी कर्मों के उदय की व्युच्छित्ति है। तो उनका उदय यहां तेरहवें में भी पाया जाता है। जैसे संहनन का नियम है कि वज्रवृषभनाराचसंहननवाला

ही क्षपकश्रेणी चढ़कर अरिहंत होगा वैसा नियम संस्थान के बारे में नहीं है। यह हम करणानुयोग के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं क्योंकि हमने यहां तेरहवें गुणस्थान में छहों संस्थान के उदय की व्युच्छित्ति देखी यानी यहां तक छहों संस्थानों में से किसीका भी उदय हो सकता है।

देखो फिर पढ़ते हैं - दो वेदनियों में से कोई एक वेदनीय, वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर दोनों का, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर; हां जो तीर्थंकर हैं उनके तो समचतुरस्रसंस्थान ही होगा, उनके तो सुस्वर ही नामकर्म होगा। फिर भी अन्य अरिहंतों के यह उदय पाया जायेगा। प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, विहायोगति यानी उनकी चाल कैसी है। औदारिकशरीर और औदारिकअंगोपांग; देखो, औदारिकशरीर और औदारिकअंगोपांग के उदय में क्या होता है ? औदारिक जाति के परमाणुओं का ग्रहण होता है। हमने देखा था औदारिकशरीर नामकर्म के उदय में योग होता है उसके कारण, यह उनके परमऔदारिकशरीर है कि नहीं है ? तो परमऔदारिकशरीर के परमाणुओं का वहां ग्रहण चल रहा है। जबसे अरिहंत अवस्था पायी है कितना भोजन करते हैं एक टाइम कि दो टाइम ? *श्रोता: करते ही नहीं।* हां, बोर जितना ? कब करते हैं ? समवशरण में बैठे-बैठे ? देखो, अरिहंतों को कोई आहार यानी कवलाहार नहीं है, ख्याल में आती है बात ? उनके कर्म का ग्रहण है और नोकर्म यानी शरीर के परमाणुओं का ग्रहण है। ना कोई उनके खाना होता है, ना कुछ पानी पीना है; कुछ नहीं, वह कवलाहार उनके है ही नहीं। वह तो छठे गुणस्थान के बाद होता नहीं तो अरिहंतों को कैसे होगा ? क्यों ? उसमें यह उदीरणा का अपना प्रकरण नहीं हुआ। असातावेदनीय के उदीरणा में ही क्षुधा-तृषा आदि लगते हैं और असातावेदनीय के उदीरणा की व्युच्छित्ति छठे में ही होती है। अभी हम उदयव्युच्छित्ति देख रहे हैं, उदीरणाव्युच्छित्ति देखी ही नहीं। असातावेदनीय की उदीरणा छठे तक ही हो सकती है, आगे होती ही नहीं है तो सातवें गुणस्थान से लेकर आगे आहारसंज्ञा नहीं पायी जाती। जो छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के नहीं है; सातवें, आठवें, नौवेंवाले को नहीं है और वह तेरहवेंवाले को होगी ?

यह करणानुयोग भी सिद्ध करता है कि केवली भगवान को कवलाहार नहीं है, वह भोजन-बीजन कुछ नहीं करते। वे कवलाहार करते हैं ऐसे माननेवालों की वह

सारी कल्पना है, ऐसा कुछ होता ही नहीं है। परंतु औदारिकशरीर नामकर्म के उदय में उनके जो योग पाया जाता है, उसमें क्या होता है ? परमऔदारिकशरीर के परमाणु, उस शरीर संबंधी परमाणुओं को ग्रहण किया जाता है और हर समय शरीररूप से ढाला जाता है और हर समय पूर्व के परमाणु उदय में आकर निकल जाते हैं। औदारिकशरीर की बात चल रही है यहां पर, वैसे ही तेजस और कार्माणशरीर की बात है। तेजसशरीर नामकर्म के उदय में तेजसवर्गणा के परमाणु ग्रहण करेंगे, तेजसशरीर बनेगा और कार्माणशरीर नामकर्म के उदय में कार्माणवर्गणा का ग्रहण होगा। कौनसे कर्म का होगा ? *श्रोता: सातावेदनीय।* सातावेदनीय एक ही प्रकृति यहां बंध रही है। क्यों बंध रही है ? यहां योग है इसलिये। योग क्यों है ? कार्माणशरीर नामकर्म का उदय है इसलिये। इनको सयोगी कहते हैं और चौदहवेंवाले को अयोगी कहते हैं, ऐसा क्यों ? क्योंकि उनके कार्माणशरीर नामकर्म का उदय यहां मिट गया है इसलिये, उदय की व्युच्छित्ति हुयी न। तेरहवें गुणस्थानवाले के कार्माणशरीर नामकर्म के उदय की व्युच्छित्ति यहां हुयी यानी यहां तक उदय है आगे उदय नहीं है। इसलिये इस गुणस्थान का नाम है सयोगकेवली, उसके योग है और योग है तो कर्म का ग्रहण है - भले एक समय के लिये है। यहां बंध भी कहेंगे एक समयवाला और फिर उसका उदयरूप ही बंध होता है, जो बंधा है वही उदयरूप होकर चला जाता है। तेजसशरीर, कार्माणशरीर नामकर्म का उदय यहां तक ही है आगे नहीं है इसलिये यहां तक ही योग है और अयोगी गुणस्थानवाले के योग नहीं है, उसका कारण यह है।

श्रोता: असाता का क्या बताया छठे गुणस्थान में ? असाता के उदीरणा की व्युच्छित्ति बतायी और बंध की व्युच्छित्ति भी छठे में हुयी थी, यहां हमारी उदय की बात चल रही है। असाता का उदय किसीके चौदहवें तक भी है; किसीके साता का उदय है, किसीके असाता का उदय है। परंतु वह असाता का उदय वह दुःख का कारणवाला असाता नहीं समझना, हां, एक तो उसका अनुभाग बहुत हीन हो गया है। आगे प्रश्नोत्तर करेंगे स्वयं पं. टोडरमलजी। इन छह संस्थान, वर्णादिक चार - वर्ण, रस, गंध, स्पर्श वगैरह के भी उदय यहां तक है क्योंकि शरीर के परमाणु का बंध हो रहा है तो उस-उस जाति के स्पर्शादिक के भी उदय होंगे। अगुरुलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास; केवली भगवान को उच्छ्वास है कि नहीं ? श्वासोच्छ्वास ? आप कहेंगे मंदिर में तो हमने

नहीं देखा है ! जहां प्राण वगैरह की चर्चा हुयी थी न अपनी वहां हमने देखे थे सारे। उनके श्वासोच्छ्वास प्राण है, प्राणों की चर्चा हुयी थी न अपनी यहां पर ? प्रत्येकशरीर नामकर्म का उनका उदय चल रहा है। ऐसे इन तीस की यहां व्युच्छित्ति हो जाती है। किसीके साता, किसीके असाता इसलिये दोनों लिये, इसलिये ३० कहे यहां पर। अब अयोगकेवली गुणस्थान की बात २७२ नंबर की गाथा में बतायेंगे।

तदियेक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं।
जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्हि॥ २७२॥

अयोगकेवली गुणस्थान के अंत समय में दो वेदनीय में से एक कोई वेदनीय, दो में से एक क्यों कहा ? किसी जीव को साता का उदय है किसीको असाता का उदय है इसलिये दोनों में से एक कहा। ऊपर भी दोनों में से एक कहा था और यहां भी दोनों में से एक कहा। **मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर और पर्याप्त।** प्रत्येकशरीर का तो उदय मिट गया है तेरहवें में। फिर **आदेय, यशस्कीर्ति** और तीर्थंकरत्व, **तीर्थंकर** प्रकृति का उदय चौदहवें के अंत तक है। **मनुष्यायु** और **उच्चगोत्र** इन **बारह की व्युच्छित्ति हुयी। यह व्युच्छित्ति नाना जीव की अपेक्षा है।** नाना जीव की अपेक्षा यानी अनेक जीवों की अपेक्षा। क्यों ? क्योंकि सयोगी-अयोगी में साता या असाता एक की ही व्युच्छित्ति होती है। इसलिये एक जीव के- देखो यहां क्या कहते हैं ? सभी कर्म चाहिये आपको ? अयोगी गुणस्थान में कौन-कौनसे हैं ? जो उदयरूप हैं और यहां अभी उदय मिटनेवाला है क्योंकि अभी सभी कर्मों का क्षय होकर तो वे सिद्ध होनेवाले हैं। कौन-कौनसे हैं ? तो एक वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर और पर्याप्त; आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु और उच्चगोत्र। इन १२ की व्युच्छित्ति हो जाती है ! एक वेदनीय, पहले सुभग लिया था, पंचेन्द्रिय के बाद सुभग लिया था और त्रस, बादर, पर्याप्त कहा था। सुभग बीच में बताया था।

अब नाना जीवों की अपेक्षा सयोगी, अयोगी गुणस्थान में साता और असाता दोनों की व्युच्छित्ति, यानी दोनों की व्युच्छित्ति नहीं है। इसलिये एक जीव की अपेक्षा बात करेंगे तो सयोगी में ३० और अयोगी में १२ और अन्य-अन्य जीवों की बात करेंगे तो सयोगी में २९ और अयोगी में १३ इसतरह से उसकी व्युच्छित्ति है। साता या असाता

एक जीव की कोई एक होगी और नाना जीवों के दोनों होगी इसलिये वहां डिफरन्स है। यहां जो साता-असाता की बात आयी है तो किसीके मन में प्रश्न उठ सकता है। पहले गुणस्थानवर्ती जीव को भी साता, असाता का उदय है और आप यहां तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवाले को कह रहे हैं- क्या यह एक ही बात है ? तो २७३ नंबर की मूलगाथा में उसका जवाब दे रहे हैं।

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं॥ २७३॥

इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं है क्योंकि वहां इन्द्रियज्ञान भी नहीं है और राग-द्वेष भी नष्ट हो गये हैं। देखो, हम टीका में देखते हैं **सयोगकेवली के घातिकर्मों का नाश हुआ है, इसलिये राग के कारणभूत** राग किस कारण उत्पन्न होता है ? कि **चार प्रकार की माया।** यह कौनसे चार प्रकार की माया ? अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन **चार प्रकार की माया, चार प्रकार का लोभ।** देखो, राग के कारण ले रहे हैं यहां पर, राग के कारणभूत क्या-क्या लिया ? **माया, लोभ, तीन वेद, हास्य-रति** यह किसके कारणभूत ? राग के कारणभूत। हम पहले सीखे हैं, कषायों को दो में विभाजित करेंगे- राग और द्वेष। राग में किस-किसको रखना और तो द्वेष में किस-किसको रखना ? तो राग में माया और लोभ, नोकषाय में से हास्य-रति और तीन वेद ये राग के कारणभूत बताये। द्वेष के कारणभूत-क्रोध और मान। तो **चार प्रकार के क्रोध, चार प्रकार के मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा** ये **द्वेष के कारणभूत। इनका निर्मूल नाश हुआ है**, क्षय ही हो गया है। तो यह उत्पन्न होने का भी कोई सवाल ही नहीं है। यहां ना राग होंगे ना द्वेष होंगे। *श्रोता: रति और राग में क्या फर्क है ?* रति-राग का एक भेद है। और **युगपत् सकल प्रकाशी ज्ञान में,** युगपत् सकल प्रकाशी कौनसा ज्ञान है, मालूम है ? केवलज्ञान। युगपत् यानी एक ही समय में सकल प्रकाशी यानी सबको जाननेवाला, ऐसे ज्ञान में **क्षयोपशमरूप परोक्ष मतिज्ञान और श्रुतज्ञान नहीं संभवता।** यह क्या कहना चाहते हैं ? केवली में यह जो साता और असातावेदनीय का उदय होने पर भी वह सुख-दुःख का निमित्त क्यों नहीं है इसकी बात चल रही है।

पहले में पहले क्या कहा ? राग और द्वेष के कारणभूत ऐसे कर्म यहां पाये ही

नहीं जाते क्योंकि उनका निर्मूल नाश हो गया है। दूसरी बात यहां सर्वज्ञत्व प्रकट हुआ है, केवलज्ञान प्रकट हुआ है तो मतिश्रुतज्ञान जो क्षयोपशमरूप ज्ञान है वह यहां है ही नहीं। यानी कुछ जाने या कुछ नहीं जाने ऐसी तो बात है ही नहीं। **इसलिये इन्द्रियजनित ज्ञान नष्ट भया।** यह क्षयोपशमज्ञान कैसा है ? इन्द्रियजनित ज्ञान है वह यहां नहीं रहा यानी इन्द्रियों से नहीं जान रहे। हम इन्द्रियों से जानते हैं और उनके विषयों में सुख-दुःख मानते हैं। सुख काहे से मानते हैं ? पंखा चले तो सुख है, अच्छा खाना मिले तो सुख है। किसमें सुख माना ? इन्द्रियों के विषय में हमने सुख माना है। तो यहां इन्द्रियजनित ज्ञान ही नहीं है, केवलज्ञान प्रकट हुआ है। **इसलिये केवली के साता, असाता वेदनीय के उदय में सुख-दुःख नहीं है क्योंकि सुख-दुःख इन्द्रियजनित हैं।** साता और असाता के उदय में जिस सुख-दुःख की बात करते हैं हम; हमारा अच्छा है, साता का उदय चल रहा है। कोई कहता क्या करें ? हमारा असाता का उदय चल रहा है। तो किसकी बात चलती है ? इन्द्रियजनित सुख-दुःख की। अब उसके साथ मनजनित भी सुख-दुःख होता होगा उसमें।

वेदनीय का सहकारी कारण वेदनीय का फल तभी मिलता है प्रोव्हाइडेड, क्या है प्रोव्हाइडेड ? मोहनीय का उदय हो तो। हां, तो कहते हैं वेदनीय का सहकारी कारण, सहकारी कारण यानी निमित्त। साता और असाता वेदनीय के उदय का फल, उदय का फल क्या होता है ? हमें उसमें सुख की या दुःख की अनुभूति होती है। पंखा चल रहा है तो सुख की अनुभूति हो रही है कि दुःख की ? तो कहते हैं, वहां मोहनीय होगा तो पता चलेगा; सुख की, दुःख की अनुभूति होती है। आप रागरूप परिणमित हो रहे हैं कि द्वेषरूप परिणमित हो रहे हैं ? इसलिये वेदनीय का उदय होने पर भी वह सुख-दुःख का कार्य उत्पन्न करने में असमर्थ है। केवली भगवान के जो साता का या असाता का उदय बताया है, उसमें कोई सुख या दुःख का निमित्तपना बनता ही नहीं है। क्यों नहीं है ? उनके राग-द्वेष नहीं हैं, उनके इन्द्रियज्ञान ही नहीं है, केवलज्ञान से सारा प्रत्यक्ष पूर्ण जानते हैं। इसलिये इन्द्रियजनित सुख-दुःख का भी वहां अभाव है। इसलिये यह साता हो या असाता हो वे जो इन्द्रियजनित सुख-दुःख को उत्पन्न करनेवाले थे वे अब उसको उत्पन्न करने में असमर्थ हैं।

जो सातावेदनीय का बंध बताया है न, एक समय में आता है, बंधता है और

चला जाता है। तो उदयरूप है कि नहीं है ? परंतु है तो उदय स्वरूप। जो आता है, सातावेदनीय बंधता है और चला जाता है। दूसरी भी बात, जब से सम्यग्दर्शन होता है तो सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अत्यंत हीन होता चला जाता है। अब यह केवली हुये हैं तो कितना काल उन्होंने मुनिदशा में बिताया ? कितना सम्यग्दर्शन में बिताया ? तो यह सारे अनुभाग हीन होते-होते, जब केवली में उनका उदय हो रहा है, परमाणु भले असाता के हैं परंतु उसका अनुभाग इतना मंद हुआ है कि नहीं के बराबर है। जैसे ग्लास भर पानी है और उसमें हम पोटॅशिअम परमँगनेट डालेंगे तो कैसा डीप कलर आयेगा न, वह डीप व्हायोलेट कलरवाला उतना पानी हम एक बडे टांकी में डालेंगे तो वह कलर लाइट हो जायेगा। उसमें से एक ग्लास पानी निकालकर हम एक बडे कुअें में डालेंगे तो और डायल्यूट होगा। उसका एक ग्लास जाकर समुद्र में डालो, नहीं के बराबर है, परंतु उसके परमाणु कुछ पाये जायेंगे कि नहीं वहां पर ? ऐसे ही वहां पर पाया जाता है। इसलिये कहेंगे यहां अत्यंत अप्रकट और सूक्ष्म उदय है, फिर भी उदय है और केवलीगम्य है तो जरूर बतायेंगे कि यहां उसका उदय चल रहा है।

श्रोता: समवशरण का विघटन हो जाता है और तीर्थंकर नाम प्रकृति का उदय चौदहवें गुणस्थान के अंत तक है ? हां, चौदहवें गुणस्थान के अंत तक है। समवशरण का जो विघटन होता है क्योंकि योगनिरोध हो जाता है न, उनकी वाणी भी रुक जाती है तो समवशरण का विघटन हो जाता है। उसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि उसका उदय तो जरूर चौदहवें गुणस्थान के अंत तक पाया जाता है। वह उदयरूप प्रकृति है और अंत में उसका क्षय हो जाता है और चौदहवें गुणस्थान का काल भी कितना है ? '**अ इ उ ऋ लृ**' इतना कहते-कहते बस वह समाप्त हो गया। तो यहां जो असाता का उदय बताया है। इसलिये तत्त्वार्थसूत्र में जो '**एकादश जिने**' सूत्र आया है। वह उदय है इतना बताने के लिये। वैसे वहां जो ग्यारह परिषह बताये हैं न ! **क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल** ये तो उपचार मात्र हैं, क्योंकि असाता का उदय है इतना ही बताना था, यह इतना ही उसका प्रयोजन है। परंतु उनको क्षुधा लगती है और वह सहन करते हैं ऐसी कोई बात वहां नहीं है। क्योंकि क्या है मूल ग्रंथ पर उंगली रखकर बताते हैं; यहां बताया कि नहीं बताया ? देखो उनको क्षुधा है कि नहीं है ? तो उसका इलाज करते होंगे कि नहीं होंगे ऐसे भी प्रश्न पूछनेवाले

लोग हैं। इसलिये मूलगाथा में ही उसकी बात बतायी है। यहां लिखा है न **तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि॥** ऐसे यह परिषह जिनेन्द्र भगवान को नहीं हैं। फिर भी जो सूत्र में बताया है '**एकादश जिने**' वह तो उपचार मात्र बताया है।

श्रोता: तेरहवें गुणस्थान में वेदनीय की व्युच्छित्ति होती है कि चौदहवें में ? दो वेदनीय में से एक की किसीके तेरहवें में होती है किसीके चौदहवें में होती है। एक पहले चला जाता है दूसरा रहता है। इसलिये यहां सयोगी, अयोगी में एक जीव की अपेक्षा ३० की बात बतायी है। यह तो हमने उदय की व्युच्छित्ति देखी, दुबारा हम देखते हैं। पहले गुणस्थान में हमने दस देखे और दूसरे गुणस्थान में चार देखे। हम दस को याद करते हैं, है न ! पहले गुणस्थान में जो १० लिये थे - मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त और उसके साथ एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये हो गये १०। फिर दूसरे गुणस्थान में अभी ४ ही बचे हैं, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। तीसरे गुणस्थान में १, कौनसी ? सम्यग्मिथ्यात्व। चौथे गुणस्थान में १७, कौनसी ? अप्रत्याख्यानावरण चार मूल में मूल लेना और हमने देखा था न यहां तक ही देवगति और नरकगति है तो उस संबंधी जो कोई प्रकृतियां हैं- देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु और उनमें पाये जानेवाले वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकअंगोपांग। अन्य दो गत्यानुपूर्वी कौनसी ? मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और तीन-दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन १७ के उदय की व्युच्छित्ति चौथे गुणस्थान में होती है।

अब पांचवें गुणस्थान की बात, वहां कौनसा कषाय है ? प्रत्याख्यानावरण के चार। अभी तिर्यंचों में भी पांचवां गुणस्थान होता है तो यहां तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत और नीचगोत्र सब मिलकर पांचवें गुणस्थान में ८ के उदय की व्युच्छित्ति होती है। अब छठे गुणस्थान की बात। छठे गुणस्थान में हमने देखा आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग का उदय है, ऊपर नहीं है तो वह २ लेना और अन्य कौनसी लेना है ? ३ निद्रा लेना है स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला; इन ५ की छठे गुणस्थान में व्युच्छित्ति हुयी। अब सातवें गुणस्थान में देखते हैं। सातवें गुणस्थान में इसके ऊपर क्या नहीं है ? वेदक सम्यक्त्व नहीं है तो सम्यक् प्रकृति का उदय यहां तक ही है और नीचेवाले तीन संहनन। यहां उनके उदय की व्युच्छित्ति कहेंगे। कौनसे संहनन हैं ?

अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन यह सातवें की बात हुयी। आठवें में ६ नोकषाय - हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा। नौवें गुणस्थान में क्या लेना है ? तीन वेद और तीन कषाय। कौनसे तीन ? संज्वलन क्रोध, मान और माया। दसवें गुणस्थान में मात्र १ संज्वलन लोभ के उदय की व्युच्छित्ति है। ग्यारहवें गुणस्थान में २ संहनन लेना है, दो नंबर का और तीन नंबर का यानी वज्रनाराच और नाराच संहनन के उदय की व्युच्छित्ति ग्यारहवें में है। बारहवें में किसकी है ? तो हम दो भाग करेंगे उपांत्य समय और अंतिम समय। उपांत्य समय में निद्रा और प्रचला २; अंतिम समय में ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की चार और अंतराय की पांच ऐसी १४ और पहली २ मिलकर १६ की यहां उदय की व्युच्छित्ति हो जाती है।

अब उसके बाद सयोगकेवली में। सयोगकेवली में एक वेदनीय फिर उसके बाद वज्रवृषभनाराचसंहनन। देखो, मैं एक बात यहां बताना चाहती हूं क्योंकि इस पर विद्वानों की भी उलट-पुलट चर्चा हुयी थी और अभी हमें धवला में स्पष्ट लिखितरूप से हमने देखा हैं न ! वह अरविंदभाई दोशी जो हमारे प्रतिदिन के स्वाध्यायी हैं उन्होंने भी लाकर दिखाया था कि जो सप्तधातुरहित परमऔदारिकशरीर ऐसा कहने में आता है। परंतु उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि जो पहले में वहां कोई हड्डी-वड्डी थी, सब चली जाती हैं। उसका अर्थ गलत लगाया जाता है। यह जो वज्रवृषभनाराचसंहनन है उसका उदय है, तो उसका वहां कार्य भी है। यह हड्डी आदि जो कुछ बनी है वह वैसे बनी रहती है यह सप्तधातु से रहित हो जाता है ऐसा जो कथन है वह गलत है, ऐसा स्वयं धवलाकार ने विषय परिचय में यानी उसमें प्रस्तावना में बता दिया है। *श्रोता: जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष दिखाकर भी आपने।* सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड के हिन्दी अनुवाद की पुस्तके लेकर हम जयपुर गए थे। वहां डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के द्वारा उनका विमोचन और वहां के विद्वान एवं विद्यार्थियों के लिये नि:शुल्क वितरण कराया था। तब दादा ने कहा था आप यहां आये हैं तो २-३ दिन प्रवचन और तत्त्वचर्चा आप दोनों ही सम्हालेंगे, मैं प्रवचन नहीं करूंगा। तब तत्त्वचर्चा के समय जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष ही दिखाकर विद्वान श्रोताओं के साथ हमारी बहुत चर्चा चली थी, फिर भी वह गलत है ऐसा स्पष्टरूप से लिखा है वहां पर हां। इसलिये यह वज्रवृषभनाराचसंहनन का उदय है तो उसका कार्य भी वहां होगा। प्रत्येकशरीर नामकर्म का उदय है, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण का है तो शरीर

के परमाणुओं को ग्रहण करके उनका यथायोग्य वहां परिणमन चलेगा। सप्तधातु से रहित है ऐसा कहीं भी है ही नहीं, परमऔदारिक है वह बिलकुल सही है। *श्रोता: ट्रान्स्परन्ट स्फटिक जैसा।* हां जो कुछ है वह।

सयोगकेवली में एक वेदनीय, वज्रवृषभनाराचसंहनन, निर्माण; फिर जोड़ी-जोड़ी लेना। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति। उसके बाद अभी हम लेते हैं कि औदारिकशरीर और औदारिकअंगोपांग, तेजस और कार्माणशरीर और संस्थान छह। कौन-कौनसे ? समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुंडक, छहों संस्थानों का उदय यहां हो सकता है। वर्णादि में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श वे चार। फिर अगुरुलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास ये चार और एक लास्ट में प्रत्येकशरीर की यहां व्युच्छित्ति हो जाती है। अयोगकेवली में अभी दोनों में से कोई एक वेदनीय यहां जो रहा हो; मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति फिर सुभग उसके बाद त्रस, बादर और पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु और उच्चगोत्र इनके उदय की व्युच्छित्ति यहां पर होती है। इसतरह पहले जो हमने देखी थी सारी बंध की व्युच्छित्ति होती हैं और यहां जो हमने देखी हैं वह उदय की व्युच्छित्ति होती है। आप जब अभी फिर दुबारा इसको घर में पढ़ेंगे तो एक-एक प्रकृति को याद करना। यह कहां बंधती है ? कहां बंधने से रुकती है ? कहां उदय से रुकती है ? थोड़ा अंदाजा लगा लेना है न ! यह एक एक्सरसाइज हो जाता है न उसमें अपना पक्का हो जाता है कि कोई भी प्रकृति आप याद करोगे, यह कहां तक बंधती है ? उसके बंध की व्युच्छित्ति कहां पर है ? उदय की व्युच्छित्ति कहां पर है ? यह इसमें पता चलता है।

आगे चलकर इसमें भी एक चूलिका है, उसमें बहुत अच्छी बात है। उसमें स्वयं आचार्य पूछते हैं कि ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं कि बंधती पहले और उदय में बाद में आती हैं ? यानी पहले बंध की व्युच्छित्ति होती है और बाद में उदय की व्युच्छित्ति होती है ऐसे उन्होंने प्रश्न किये। कौनसी ऐसी प्रकृतियां हैं कि बंध के साथ ही उदय की भी व्युच्छित्ति होती है ? मिथ्यात्व है, कषाय है जहां तक उदय है वहां तक ही बंध है। ऐसी कौनसी प्रकृतियां हैं जो पहले उदय की व्युच्छित्ति होती है और बाद में बंध की व्युच्छित्ति होती है ? आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग ऐसे बहुत सारे उन्होंने बहुत

अच्छे प्रश्न पूछे हैं। उन्होंने ऐसे नौ प्रश्नों की अलग-अलग चूलिका बनायी और उसमें आगे चलकर यह कर्मकाण्ड में ही अंत में उसका बहुत अच्छा वर्णन है। यहां हमने उदय की व्युच्छित्ति देखी है। अब आगे कोई अपना प्रकरण होनेवाला नहीं है। यहां बोर्ड लगाया है, सबको उत्सुकता हो रही है यह क्या लिखा है ? इसलिये क्या है उसकी केवल चर्चा करेंगे, विस्तार से वर्णन नहीं आयेगा। तो यहां क्या लिखा है बोर्ड पर ?

नामकर्म के उदयस्थानों के काल

१) कार्माणकाल	१ से ३ समय
२) शरीरमिश्रकाल	अंतर्मुहूर्त
३) शरीरपर्याप्तिकाल	अंतर्मुहूर्त
४) उच्छ्वासपर्याप्तिकाल	अंतर्मुहूर्त
५) भाषापर्याप्तिकाल	शेष आयुप्रमाण
लब्धिअपर्याप्त-१, २	एकेन्द्रिय-१,२,३,४
आहारक-२,३,४,५	केवली समुद्घात ३,२,१,२,३,४,५

यहां लिखा है नामकर्म के उदयस्थानों के काल। हमने सुबह बंधस्थान देखे थे, याद है न ? बंध के स्थान पहले गुणस्थान में कौनसा कितने का बंध होता है ? या ज्ञानावरण के ५ का एक बंधस्थान है। ऐसे-ऐसे देखे थे न हमने, मोहनीय के कितने हैं ? दस हैं; एक २२ का, एक २१ का वगैरह। अब यहां हर एक कर्म के उदयस्थान भी अलग-अलग हैं। परंतु यहां हमने मात्र नामकर्म की बात देखी है क्योंकि हर एक कर्म के उदयस्थान अलग-अलग होंगे। फॉर एक्झॅम्पल हम पहले मोहनीय की बात करेंगे। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव है उसको ॲट अ टाइम कितनी प्रकृतियों का बंध होता है ? २२ प्रकृतियों का होता है। ॲट अ टाइम उदय कितने का होता है उसको कहेंगे उदय के स्थान। नामकर्म की बात हम बाद में देखेंगे, पहले मोहनीय की बात करेंगे कि ॲट अ टाइम उदय कितने का हो सकता है ? किस गुणस्थान की बात चल रही है ? मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ॲट अ टाइम कितने कर्मों का उदय होगा ? पहले मिथ्यात्व का उदय होगा कि नहीं होगा ? होगा और किसका होगा ? कषायों का होगा। कौन-कौनसे कषायों का होगा ? *श्रोता: सोलह कषायों का उदय होगा।* सोलह का उदय नहीं

होता। क्रोध का या मान का या माया का या लोभ का परंतु कितने क्रोध होंगे ॲट अ टाइम ? चार। जिस मिथ्यादृष्टि को क्रोध का उदय चल रहा है उसको अनंतानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और संज्वलन क्रोध चारों का उदय हो रहा है।

मोहनीयकर्म के उदय के कूट

मिथ्यात्व में - अनंतानुबंधी सहित

२ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	१ २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १	० २ २ १ १ १ ४ ४ ४ ४ १

मिथ्यात्व में - अनंतानुबंधी रहित

२ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	१ २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १	० २ २ १ १ १ ३ ३ ३ ३ १

देखो यहां हम बोर्ड पर देखेंगे। यह मिथ्यादृष्टि जीव है उसमें भी दो भाग करेंगे, चार्ट में पहले ऊपर की बात देखेंगे। यहां मोहनीयकर्म के उदय के कूट लिखा है, कूट क्यों ? जैसे मंदिर के चैत्यालय के शिखर होते हैं न, कूट कहेंगे। ऐसे यहां हमने कूट बनाये हैं इधर। क्या है यह ? अनंतानुबंधी सहितवाला लिखा है तो अभी वह सहितवाला भूल जाओ, वह सहित-रहित बाद में देखेंगे। यह नीचे जो एक लिखा है, इसका अर्थ है मिथ्यात्व प्रकृति। हां, दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व का उदय चल रहा है, मिथ्यादृष्टि है, तो मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का उदय है कि नहीं है ? है। कषायों का भी उदय है। यह ४ ४ ४ ४ यानी ऑप्शनल है। ४ क्रोध का या ४ मान का या ४ माया का या ४ लोभ का, हां किसी ४ का उदय होगा ॲट अ टाइम। यानी किसीके क्रोध, किसीका मान ऐसा नहीं है, क्रोध का उदय चल रहा है तो अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण,

संज्वलन चारों क्रोधों का उदय ॲट ए टाइम चलता है।

बंध सोलह का होता है; हमने बंध में देखा था बंध सोलह का होता है, उदय चार का होता है। यानी परिणाम क्रोध का करे तो भी सोलह के सोलह बंधते हैं। फिर ऊपर १ १ १ लिखा है, इसका अर्थ या पुरुषवेद या स्त्रीवेद या नपुंसकवेद तीनों वेद में से एक को लेना। हर एक लाइन में से कोई एक को ही लेना है। उदय की बात चल रही है यहां पर, हां, तीन वेद में से किसी एक का उदय चल रहा है। अभी यह २।२ का अर्थ है युगल, हास्य-रति या शोक-अरति। सबसे ऊपर जो २ लिखा है यहां उदय की बात चल रही है, भय-जुगुप्सा दोनों का ही उदय है। देखो, बंध में तो भय-जुगुप्सा निरंतर बंधती है परंतु उदय में चार पॉसिबिलिटिज् होती हैं। क्या होती हैं ? या तो दोनों का उदय है या अकेले भय का उदय है या अकेले जुगुप्सा का उदय है या दोनों का ही उदय नहीं है। क्या कहा ? भय और जुगुप्सा के उदय में चार अलग-अलग पॉसिबिलिटिज् होती हैं। क्या हो सकती है ?

देखो, यहां उदयस्थान में कितनी प्रकृतियां हैं कैसे गिननी ? हर एक लाइन में जो है न उसको एक-एक बार गिनो साइड से, यह १ + ४ = ५, + १ = ६, + २ = ८, + २ = १० हुये। मिथ्यात्व गुणस्थान में १० का उदय होगा तो हम कहेंगे वह १०वाला एक स्थान है। अभी दूसरा देखो- १ मिथ्यात्व, ४ क्रोध या ४ मान या ४ माया या ४ लोभ, ३ वेदों में से १ वेद, २ युगल में से १ युगल और फिर यहां १ लिया है, वहां २ लिये थे यहां १ लिया यानी यहां पर हम भय को लेंगे। तो जिसके मात्र भय का उदय है, जुगुप्सा का नहीं है उसके कितनी प्रकृतियों का उदय चल रहा है ? यहां १ + ४ = ५ + १ = ६ + २ = ८ + १ = ९ हुये। ९ का उदय है। जिसके मात्र जुगुप्सा का उदय है उसके भी १ + ४ = ५ + १ = ६ + २ = ८ + १ = ९ हुये। ९ का उदय है। यानी उसके भय और जुगुप्सा दोनों हैं तो १० का उदय था। भयवाले के ९ का है, जुगुप्सावाले के ९ का है और जिसके भय और जुगुप्सा दोनों नहीं है तो उसके ८ का उदय है। यानी मिथ्यादृष्टि के मोहनीय के उदय के स्थान कितने-कितने होंगे ? १० का होगा या ९ का होगा या ८ का होगा। ९ दो बार लिया है तो ९ संख्या सेम है, इसलिये उसको दो बार कहने की जरूरत नहीं है, एक बार कहेंगे। तो हम कहेंगे मिथ्यादृष्टि के मोहनीय के उदयस्थान कितने हैं ? तो १०वाला, ९वाला और ८वाला।

परंतु यहां अनंतानुबंधी सहित और रहित ऐसे दो नाम लिखे हैं। क्या कोई ऐसा मिथ्यादृष्टि भी है जो अनंतानुबंधी से रहित होता है ? हां ? नहीं ? सुनिये, देखो आपने शायद नाम सुना होगा कोई सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है, सुना तो होगा न ! विसंयोजना करता है का अर्थ क्या है ? उसकी विशुद्धि इतनी बढ़ती है, वहां भी तीन करण परिणाम होते हैं और उसके अनंतानुबंधी के सारे के सारे परमाणु अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और अन्यरूप हो जाते हैं और अनंतानुबंधी सत्ता में से नष्ट हो जाती है। परंतु यह टेम्पररी और रिव्हर्सिबल प्रोसेस हो सकता है। जब तक क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं हुआ है तो ऐसी विसंयोजना होने पर भी ऐसा जीव मिथ्यात्व में आ सकता है। अनंतानुबंधी की विसंयोजना की है यानी क्या है ? वह अनंतानुबंधी सत्ता में से नष्ट हो गया है। ऐसा जीव मिथ्यात्व में आया, क्यों ? मिथ्यात्व का उदय हुआ तो मिथ्यात्व में आया। मिथ्यात्व में आते ही उसने अनंतानुबंधी का बंध शुरू किया। बंध तो होता ही होता है। बंध हो रहा है परंतु हमने देखा है, कोई भी कर्म, बंधने के बाद आवली काल तक उसमें कुछ उदीरणा, उदय कुछ नहीं हो सकता क्योंकि उसकी आबाधा होती है वहां पर और आवली के पश्चात् उसकी उदीरणा होकर उदय शुरू हो सकता है। तो एक आवली काल तक क्या होगा ? अनंतानुबंधी का उदय नहीं पाया जायेगा।

देखो, यह बहुत इम्पॉर्टंट है यह जो आवली काल में अनंतानुबंधी का उदय नहीं है परंतु बंध है, क्यों बंध रहा है ? किसके बलबूते पर बंध रहा है ? किस निमित्त से बंध रहा है ? *श्रोता: मिथ्यात्व।* मिथ्यात्व से बंध रहा है और फिर मिथ्यात्व बंध में अकिंचित्कर है ऐसा भी कहते हैं उसके निषेध के लिये यह बहुत बडी दलील है। बात ख्याल में आती है न ? जिसके ख्याल में नहीं आती कोई चिंता करने की बात नहीं, हां, क्योंकि कुछ ऐसे वाद-विवाद के मूल बिंदू हैं। देखो ऐसा है, किसीका ऐसा भी गलत कथन है कि मिथ्यात्व बंध में कुछ नहीं करता बस कषाय से ही वह स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है। या जो कोई बंध होता है वह कषाय से होता है मिथ्यात्व तो कुछ नहीं करता, मिथ्यात्व से कुछ डरने की बात नहीं है। तो उससे यह कहते हैं जिसने अनंतानुबंधी की विसंयोजना की है, कब की है ? जब सम्यग्दृष्टि था तब और अब उसके सत्ता में अनंतानुबंधी है ही नहीं। ऐसा जीव मिथ्यात्व में आते ही उसी समय से

उसको अनंतानुबंधी का बंध शुरू हुआ। परंतु एक बंधावली व्यतीत होने तक उसका उदय नहीं हो सकता। बंध तो हो रहा है, उदय नहीं हो रहा है। तो उदय के कूट में हम अनंतानुबंधी को नहीं लेंगे। तो उदय किसका हो रहा है ? अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोध या मान या माया या लोभ तो उसको हम ३ गिनेंगे यहां पर। वेदों को भी गिनेंगे, हास्य-रति को भी गिनेंगे और भय-जुगुप्सा को गिनेंगे। तो यहां कितने होंगे ? तो यहीं पर ९ हो गये। ९ या ८, या ८ या ७। अभी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदयस्थान कौन-कौनसे हो सकते हैं ? १० या ९ या ८, ८ तो यहां पर भी है, या ७ क्योंकि सख्यां वही है, प्रकृतियां अलग-अलग हो सकती हैं।

हमने कहा अनंतानुबंधी की विसंयोजना करके जो मिथ्यात्व में आता है, उसके वहां अनंतानुबंधी का बंध हो रहा है। देखो, अन्यथा क्या ? यूज्वली क्या देखते हैं हम, जिस कषाय का उदय है उसका बंध होता है। अभी यहां अनंतानुबंधी का उदय भी नहीं है, फिर भी बंध हो रहा है। तो क्यों हो रहा है ? मिथ्यात्व के कारण हो रहा है। मिथ्यात्व में जो कुछ हम बंधव्युच्छित्ति वगैरह देखते हैं, वह मिथ्यात्व के कारण बंध रही थी और वहां उसकी व्युच्छित्ति भी होती है। आगम के ही आधार से हम जो कुछ विवादात्मक पॉइंट्स हैं, बिंदू हैं उनका उकेल आगम के द्वारा लेना है; नहीं कि हमने कहा इसलिये सच्चा और किसी अन्य ने कहा इसलिये झूठा, ऐसा बिलकुल नहीं है। हमें जो कोई विवादात्मक बिंदू है या कहीं पर भी अन्यमतियों की भी जो कुछ चर्चा चलती है तो वहां करणानुयोग के आधार से हम सही निर्णय कर सकते हैं। तो आगम हमें सर्वोपरी है - सर्वोत्कृष्ट है और उसीका आधार जरूर लेना चाहिये उसके लिये पहले पढ़ना चाहिये। हां करणानुयोग का फायदा है, क्योंकि अन्य कोई कुछ भी कहें और हम उसको मान लेते हैं क्योंकि हमें तो उसमें कुछ समझता ही नहीं है। फिर दूसरे कोई अन्य बात कहते हैं तो फिर बहुत घोटाला होता है। फिर क्या कहते हैं ? आप ऐसा कहते हैं, वे ऐसा कहते हैं, तो क्या करेंगे ? चलो, आप आपस में वाद-विवाद करो हम मजा देखेंगे। क्यों ? उनको भिडा दो, आपस में चर्चा कराओ और हम मजे से सुनेंगे। ऐसी भी प्रवृत्ति देखी जाती है।

अभी तक तो हमने बस उदय की शुरुआत ही की थी और वह तो रह जायेगा अभी तो अपना पांच मिनट का समय बाकी रह गया है। हम केवल उनके नाम देखेंगे।

नामकर्मों के उदयकाल गुणस्थानों के अनुसार नहीं होते, क्या कहा ? नामकर्म के जो उदयस्थान हैं वे गुणस्थान के अनुसार नहीं होते। अपने-अपने अलग काल होते हैं, उस काल के अनुसार होते हैं। वे काल कौनसे हैं ? उतनी चर्चा करेंगे। उसमें कौनसी प्रकृति का उदय कहां शुरू होता है ? वह बाद में रखेंगे क्योंकि भविष्य में भी कुछ सुनने लायक है। हां, देखो हम चार्ट देखेंगे यहां पर।

यहां जो नामकर्म के उदयस्थानों के काल बताये हैं इसका अर्थ क्या है ? जैसे अब मनुष्यगति में आये हैं तो यहां नामकर्म की कुछ प्रकृतियों का उदय तो चलेगा। परंतु जब जीव १ से लेकर ३ समय तक विग्रहगति में है उसको कहेंगे कार्माणकाल। यहां सभी प्रकृतियों का उदय नहीं होता, कुछ विशिष्ट २० प्रकृतियों का उदय होता है, यह अधिक से अधिक ३ समय तक ही पाया जायेगा। ऐसा ही कार्माणकाल केवली समुद्घात में भी पाया जाता है, वहां भी यथायोग्य प्रकृतियों का उदय होगा। एक होता है - कार्माणकाल, दूसरा है - शरीरमिश्रकाल। शरीरमिश्रकाल का अर्थ क्या है ? जीव ने विग्रहगति के बाद अभी शरीर ग्रहण करना शुरू किया है और जब तक शरीरपर्याप्ति पूरी नहीं हुयी है उसके एक समय पूर्व तक। जैसे हमने एकांतानुवृद्धि देखा था न, यहां कार्माण काययोग विग्रहगति में है और उस समय नामकर्म की कुछ प्रकृतियां उदयरूप होती हैं, इसलिये उस काल को क्या कहेंगे ? कार्माणकाल। उसके बाद शरीर ग्रहण करने के समय से लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के एक समय पूर्व तक को कहेंगे शरीरमिश्रकाल। विग्रहगति में जिसका उदय नहीं था ऐसे संस्थान नामकर्म है, प्रत्येक या साधारणशरीर नामकर्म है, मनुष्य और तिर्यंचों में संहनन का उदय यहीं पर शुरू हो जायेगा। ऐसे अलग-अलग नामकर्म का उदय यहां आकर शुरू हो जाता है। इसको क्या कहेंगे ? शरीरमिश्रकाल। यह भी अंतर्मुहूर्त पाया जाता है।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर आगे की जब तक उच्छ्वासपर्याप्ति पूरी नहीं होती है उसके एक समय पूर्व तक, उस काल को कहेंगे शरीरपर्याप्तिकाल। अब यहां शरीरपर्याप्तिकाल यानी अभी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुयी है तो वहां विहायोगति और किसीको आतप हो, किसीको उद्योत हो तो उन नामकर्मों का यहां उदय शुरू हो जाता है। परघात का भी यहां उदय शुरू हो जाता है। अब उच्छ्वासपर्याप्तिकाल यानी उच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण हो गयी है अब यहां उच्छ्वास नामकर्म का उदय शुरू हो जायेगा।

फिर भाषा, भाषापर्याप्ति जब पूरी होती है तो उसको भाषापर्याप्तिकाल कहेंगे। यह भाषापर्याप्तिकाल कब तक रहता है ? भाषापर्याप्ति पूर्ण होने के समय से लेकर आयु के अंत तक यह भाषापर्याप्तिकाल है। उसमें वह सुस्वर या दुस्वर नामकर्म का उदय वहां शुरू हो जायेगा जो आयुप्रमाण होता है। तो जो लब्धिअपर्याप्त जीव है उसके तो विग्रहगति है, उसके कार्माणकाल भी होगा परंतु उसके एक भी पर्याप्ति पूरी नहीं होती। तो उसको शरीरमिश्रकाल तो है परंतु आगे के काल उसके नहीं हैं। बस इतने दो ही काल उसके हैं यानी उसके विग्रहगति में विशिष्ट २० प्रकृतियों का उदय हम कहेंगे और आगे जो कुछ है उतना होकर वह तो मर जायेगा।

अन्य एकेन्द्रियों को जो अपर्याप्त नहीं हैं उनके क्या होगा ? पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा - क्योंकि पर्याप्त है न इसलिये सभी चारों काल होंगे। आहारकशरीरवाले को कार्माणकाययोग तो होगा नहीं डायरेक्ट उनके छह पर्याप्ति शुरू होती है इसलिये - २,३,४,५ ये काल होंगे। केवलीसमुद्घात में वह दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण इस हिसाबसे ३,२,१ फिर २,३,४,५ मूलशरीर में प्रवेश करते हैं तो उनके नामकर्मों के अलग-अलग प्रकृतियों का उदय अलग-अलग कालों में यथायोग्य होता है। उसका तो बहुत विस्तार से वर्णन ग्रंथों में है और हम आगे चलकर उसका अभ्यास करेंगे। अभी तक हमने जो पढ़ा है, उसमें कहीं मेरे अज्ञानवश या कुछ बोलने में स्लिप ऑफ टंग भी होती है, कुछ गलती हुयी हो तो आगम के आधार से आप उसको जरूर सुधार कर लेना क्योंकि जिनवाणी में जो लिखा है, वह सही ढंग से हमें अंगीकार करना चाहिये। अभी हम यहीं विराम लेते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

- Pt. Dineshbhai Shah's Pen Drives -

D1	
विषय	*कुल घंटे*
लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	८२.५
जैन तत्त्व परिचय	४६.५
बालबोध पाठमाला	४३.५
वीतराग विज्ञान पाठमाला	५८.५
तत्त्वज्ञान पाठमाला	६०
जैन सिद्धान्त शिबिर - १	३०
जैन सिद्धान्त शिबिर - २	३०
छहढाला	४५
कारण कार्य रहस्य	१९
गुणस्थान	५७
बृहद् द्रव्यसंग्रह	९३
मोक्षमार्ग प्रकाशक	२६८
पंचास्तिकाय	१९९
योगसार	५४
मिथ्यात्व	९
	११४७

D2	
विषय	*कुल घंटे*
समयसार	९००
(प्रवचनरत्नाकर भाग १ से ११)	
आत्मा की ४७ शक्तिय	१५३
	१०५१

D3	
विषय	*कुल घंटे*
प्रवचनसार	८६०
तत्त्वार्थ सूत्र	२०८
	१०६८

D4	
विषय	*कुल घंटे*
कार्तिकेयानुप्रेक्षा	२२८
लघु तत्त्व स्फोट	८२
नियमसार	४३३
परमात्मप्रकाश	२७५
पुरुषार्थसिद्धिउपाय	७०
	१०८८

D5	
विषय	*कुल घंटे*
अष्टपाहुड	३००
आत्मसिद्धि	१३८
अनुभव प्रकाश	८८
ज्ञानस्वभावज्ञेयस्वभाव	१०५
इष्टोपदेश	५२
रत्नकरंड श्रावकाचार	१५७
नाटक समयसार	२४७
	१०८७

D6	
विषय	*कुल घंटे*
अध्यात्मयोगी राम	६५
धन्य महापुरुष	१२
हरिवंश पुराण	७४
द्रव्यसंग्रह प्रवचन	१७६
कारण कार्य रहस्य	९९
जैन सिद्धान्त (कुछ विषय)	२१
कलशामृत	५८३
	१०३०

D-SP	
विषय	*कुल घंटे*
अमृत प्रवचन	४००
प्रवचन सुधा	४००
जैन तत्त्व परिचय	९७.५
कारण कार्य रहस्य	९९
करणानुयोग परिचय	४८
	१०४५